ं ने जो विद्या दी है, वह काफी है। उन्होंने आध्यात्मिक विद्या सिखायी, इसके साथ-साथ इस दुनिया की जिन्दगी कैसे सुखी होगी, वह भी सिखाया। कहा कि इहलोक में सुखी होना है, तो त्याग सीखो; भोग भोगना है, तो त्याग सीखो। दुनिया भर के सब शास्त्रों के सार दो शब्दों में रख दिया—'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'—याने त्याग करके भोग। शरीर को भोग चाहिए, तुझको मिलेगा, तेरा अधिकार भी है। परन्तु थोड़ा त्याग करो। घर में बीज पड़ा है। घर में ही रखेंगे, तो फसल कैसे आयेगी? उत्तम से उत्तम बीज चुनकर बोयेंगे, तब अच्छी फसल आयेगी। इतना भी त्याग न करके उत्तम बीज खा जाओगे, तो क्या मिलेगा? किसान को खाने को नहीं मिलता है, तो वह फल, पत्ते खाकर पेट भर लेता है। लेकिन उत्तम से उत्तम बीज को वह कभी खाता नहीं है। वह उसे पेट में डालने के बदले मिट्टी में डालता है। इतना त्याग करता है, तो खूब फसल होती है। इसलिए कहा कि 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।' उन्होंने सिर्फ आत्म-प्राप्ति की और अध्यात्मिक विद्या सिखायी। हम दरिद्र ही बने रहें, ऐसा नहीं सिखाया। जिसके पास सच्ची आध्यात्मिक विद्या है, उसका उत्कर्ष ही होगा।

—विनोबा

'अणुव्रत' पसन्द न आवे तो ?

ग्राहक हो जाने के बाद भी बारह महीने तक 'अणुव्रत' पढ़ते रहिये और फिर सालभर की पूरी फाइल हमें लौटाकर हमसे मूल्य वापस मंगा लें। पत्र भेजने में जो डाक-खर्च वगैरह लगता है वह काटकर बाकी मूल्य ५॥) रु० हम वापस भेज देंगे। आशा है इस सूचना के बाद किसी सज्जन को 'अणुव्रत' का ग्राहक बनने में झिझक न रह जायगी।

अणुव्रत के पाठकों से !

'अणुव्रत' को और अधिक लोकोपयोगी व जन-रुचिकर बनाने की दृष्टि से 'अणुव्रत' में प्रकाशित रचनाओं के सम्बन्ध में अपने सहृदय पाठकों का मत जानना आवश्यक है।

अतः हमारा साग्रह निवेदन है कि भविष्य में सहयोगी पाठक 'अणुव्रत' के प्रत्येक अङ्क पर अपनी सम्मत्ति, विचार व सुझाव आदि निःसंकोच लिखकर भेजें।

जो पाठक हमारी त्रुटियों व अभावों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे उनके हम विशेष आभारी होंगे।

रचनात्मक विचारों व सुझावों को यथा शीघ्र क्रियान्वित करने का भी प्रयत्न हो सकेगा।

—*सम्पादक*

'अणुव्रत' के पाठकों की जानकारी के लिए

कि—

- नैतिक दृष्टि से देश में क्या हुआ है और क्या हो रहा है ?
- विदेशों में क्या-क्या प्रयत्न हो रहे हैं ?
- कौन-कौन सी गतिविधियां कार्य कर रही हैं ?
- किन-किन प्रयत्नों और प्रयोगों में सफलता मिली है ?
- कौन-कौन से उपायों से नैतिक विकास सम्भव है ? आदि आदि

को लेकर—

शीघ्र ही एक लेखमाला प्रारम्भ की जा रही है जिसका शीर्षक है।

'देश - विदेश में नैतिक - क्रांति'

खोजपूर्ण, मौलिक, गंभीर साथ ही रोचक एवं ठोस सामग्री से भरपूर लेख सादर आमन्त्रित हैं

इस लेख माला के अन्तर्गत प्रकाशित रचनाओं पर

यथायोग्य पारिश्रमिक भी दिया जायगा

रचना भेजते समय लेखमाला का उल्लेख अवश्य करें

—सम्पादक

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३ पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१
卐
वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १ मार्च, १९५६ [अंक १०

केवल धर्माचरण का बाहरी स्वांग रचने से आत्म-हित नहीं होता

संसार में मनुष्य आता है, चला जाता है, उसकी भलाई और बुराई के सिवाय उसका बच क्या रहता है, कुछ भी तो नहीं। इतना ही क्यों, वर्तमान जीवन में भी मानव की मानवता का मापदण्ड भलाई और बुराई ही तो है। यदि मानव भलाइयों में पगा है, तो वह वास्तव में मानव है, सच्चा मानव है। और यदि बुराइयों से उसका जीवन जर्जरित है तो मूर्तिमान पशुत्व के अतिरिक्त उसमें है क्या ? मानव मानवता से परे न हो, मानवोचित गुणों को वह तिलांजलि न दे बैठे, इसके लिये हमारे देश के ज्ञानी, तपस्वी, व सन्त लोगों को सदा धर्म प्रेरणा देते रहे हैं। धर्म ही तो वह साधन है, जो जीवन को शुद्धि की ओर ले जाता है। जीवन को विकारों और बुराइयों से बचाकर भलाई की ओर ले जाना धर्म का अभि-

प्रेत है। यदि यह उससे नहीं बन पड़ता है तो वह कैसा धर्म ! वह तो धर्म की विडम्बना है। धर्म संकीर्णता और ओछी मनोवृत्ति से दूर व्यापक, विशाल, उदार और असंकीर्ण भावना का प्रतीक है। अहिंसा और सत्य उसकी आत्मा है। जीवन-व्यवहार की परिस्कृति उसकी आभा है। ऐसा न कर धर्म को स्थितिपालकता और स्वार्थ पोषकता के दलदल में जो डुबोये रखते हैं, वे धर्म के नाम पर अधर्म का परिपोषक हैं। ऐसा कर वे अपने आप को तो गिरायेंगे ही, औरों के लिये भी बुरी मिसाल साबित होंगे।

आज सही माने में धार्मिक बनने की आवश्यकता है। केवल धर्माचरण का बाहरी स्वांग रचने से आत्म-हित नहीं होता, जीवन का उत्थान नहीं होता। जीवन को उठाने के लिये तो धर्म को जीवन में उतारना होगा। संसार में अनेक मत हैं, पंथ हैं पर हमें उनसे लड़ना झगड़ना नहीं है, उन पर आक्षेप नहीं करना है। हमारा कार्य तो सिर्फ इतना ही होना चाहिये कि उन मतों में समाहित सत्तत्वों को जीवन में उतारा जाय। सब धर्मों के मौलिक तत्व समान हैं, उनका लक्ष्य वैसे एक है पर देखना यह है कि उनके नियम, शील, और व्रत उनके अनुयायियों के जीवन में कितने क्या उतरे हैं। अपने आपको उच्च और धार्मिक समझने वाले जीवन को निर्लेप, शुद्ध, सात्विक और पवित्र बनायें। धर्म के नाम पर दिखावा, प्रदर्शन और आडम्बर को प्रोत्साहन दिया गया तभी तो धर्म बुद्धिजीवियों को आकृष्ट नहीं कर पा रहा है। टीका टिप्पणी, ईर्ष्या, जलन और देखादेखी से मानव क्या लाभ पा सकेगा ? उससे तो नुकसान ही होगा।

अणुव्रत-आन्दोलन किसी सम्प्रदाय विशेष का आन्दोलन नहीं है। यह तो मानवता का आन्दोलन है, जीवन शुद्धि का आन्दोलन है, चारित्र्य जागृति का आन्दोलन है। यह सर्व धर्म समन्वय का प्रतीक है। किसी भी सम्प्रदाय की मान्यता रखना इस आन्दोलन के अनुगमन में बाधक नहीं है। केवल शर्त यही है कि वह व्यक्ति अणुव्रत-आन्दोलन के नियमोपनियमों का हृदय से परिपालन करे। अणुव्रत-आन्दोलन जीवन को परिष्कृति देने का वह पावन स्रोत है जिसमें अवगाहन करने का अधिकार हर मानव को है। मैं आप लोगों को आह्वान करता हूं, इस ओर आप अग्रसर हों, इन आदर्शों को जीवन व्यवहार में स्थान देवें। यह आन्दोलन आजकी विभत्स, हिंस और विध्वंसमय स्थिति को बदलना चाहता है। इसे एक नई मोड़ देना चाहता है। वह है—समता की, मैत्री की, सद्भावना की, तितिक्षा की। वह चाहता है, कोई किसी को पीड़ा न दे, धोखा न दे, छल न करे, कितना अच्छा हो, इस अध्यात्म आलोक के सहारे व्यक्ति अपने को आगे बढ़ाये।

—आचार्य तुलसी

दांई ओर नहीं हम बाँई ओर चलें!

आज चारों ओर परस्पर संघर्ष के काले बादल मंडरा रहे हैं, द्वेष की अग्नि धूँ-धूँ करके जल रही है, स्वार्थ की विभीषिका जन-जीवन को नष्ट करने पर तुली है। स्नेह व कर्तव्य को ठोकर लगा भाई का भाई शत्रु बन बैठा है, माँ के हृदय से वात्सल्य की स्वाभाविक धारा सूखती-सी प्रतीत होती है। अधिकारों की लड़ाई देख आत्मीयता एक कोने में खड़ी आँसू बहा रही है, और मानवता! उसने तो मानों आज के युग को तलाक ही दे दिया है।

ऐसी विषम परिस्थिति में प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति का कर्तव्य हो जाता है कि वह इस पतनोन्मुख स्थिति का कारण ढूंढे, दिनों-दिन बिगड़ती हुई हालत की वजह खोजे, इंसानियत की आँखों से टपकते हुए आँसुओं को पौंछने का प्रयत्न करे, झुलसते हुए जन-जीवन को शान्ति प्रदान करने के उपाय सोचे और हमारे दिलों में बढ़नेवाली ईर्षा की विष-बेल को सींचने की नहीं अपितु समाप्त करने की कोशिश करे और सचमुच यही युग की माँग है, आज की अपेक्षा है और समय का तकाजा है।

जब हम इसका कारण ढूँढने का प्रयत्न करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि वस्तुतः पड़ौसी के अहित में हमने अपना हित समझा हुआ है, उसके समूल नाश में अपना कल्याण समझ बैठे हैं। यही आधार है जो हमें इस प्रकार का तांडव नृत्य करने की प्रेरणा दे रहा है और हमारे विनाश में भी सृजन की मृग-तृष्णा से हमें लुभाने की चेष्टा कर रहा है। ऐसी दुर्भावनाओं से जर्जरित इस प्राणहीन ढाचें को जबरदस्ती ढकेलने के दुस्साहस करने से ज़्यादा और पतन हमारा क्या हो सकता है!

एक साथी अधिक अध्ययन करता है, उच्च शिक्षा प्राप्त करने का प्रयत्न करता है व सर्वोच्च श्रेणी पाने की लालसा रखता है। उसीका दूसरा साथी यह देखकर अन्दर ही अन्दर जलने लगता है, उसको किसी प्रकार से नीचा दिखाने का दुष्प्रयत्न करना शुरू कर देता है। एक दुकानदार दूसरे की दुकानदारी व प्रगति होते देख डाह करने लगता है। एक साहित्यक की प्रतिष्ठा व सम्मान दूसरे के हृदय में जलन पैदा कर देता है। एक नेता अपने दूसरे सहयोगी के पतन की कल्पना ही करता रहता है। किसी को समाजसेवा करते देख दूसरे का हृदय इसी बात से आशंकित हो उठता है कि कहीं उसका स्थान व महत्व इस नये समाजसेवी को ही न मिल जाय। एक संस्था या पार्टी अपनी विरोधी या सहयोगी पार्टी को ही येनकेन

प्रकारेण नीचा दिखाने के स्वप्न देखा करती है। यह सब पतन की पराकाष्ठा नहीं तो क्या है?

हमारा जीवन एक लम्बा रास्ता है, जिस पर हमें फूंक-फूंककर कदम बढ़ाने हैं। यदि इसमें हमारी ओर से तनिक भी असावधानी हुई तो जीवन की इस राह पर हमें मात मिल जायगी, मार्ग भूल बैठेंगे और शायद इस बेफिक्री व लापरवाही के कारण कहीं टक्कर भी लग जाय एवं अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने से पहले ही जीवन का राहगीर राह में ही समा जायं। अतः जिन्दगी के रास्ते पर चलने के लिये उसके नियमों का पालन करना भी आवश्यक है।

हम नित्य प्रति ही देखते हैं कि सड़कपर सारे लोग बाँई ओर ही चलते हैं। भीड़-भाड़ होने पर बाँई ओर ही बचने का प्रयत्न करते हैं। सभी लोग जब ऐसा नियम निभाते हैं तभी सड़क पर चलना संभव हो पाता है। इसके बीच में जो भी गल्ती करने का प्रयत्न करता है या असावधानी करता है तब टक्कर हो जाती है, मुठभेड़ हो जाती है। इसे बचाने के लिये पुलिस का सिपाही बीच-बीच में सब लोगों का उनके कर्तव्य के प्रति ध्यान आकर्षित करता रहता है। कभी-कभी 'दांयीं ओर नहीं बाँई ओर चलें' के नाम से आन्दोलन भी होते हैं।

यही नियम हमें अपने जीवन-पथ पर बढ़ने के लिये पालन करना है। इसकी भी दांई और बाँई दो दिशायें हैं। एक सत्य की है तो दूसरी असत्य की, एक निस्वार्थ की है तो दूसरी स्वार्थ की। एक प्रेम, बन्धुत्व व सहयोग की है तो दूसरी द्वेष, घृणा, ईर्ष्या व वैमनस्य की। इस तरह हमारे मार्ग के दो पहलू हैं—एक प्रकाशमय और दूसरा अंधकारमय, एक सद् का तो दूसरा असद् का। जो सद् की दिशा है वह हमारे जीवन-मार्ग की बाँई और असद् की दिशा दाँई ओर है। जब तक हम अपनी बाँई ओर अर्थात् ठीक दिशा में बढ़ते हैं तो कोई रुकावट या बाधा उत्पन्न नहीं होती, किसी प्रकार का संघर्ष उत्पन्न नहीं होता और हम सब सरलतापूर्वक आगे ही बढ़ते चले जाते हैं। किन्तु जब हमारे पग दाँयी ओर पड़ने शुरू हो जाते हैं, उनकी दिशा बदल जाती है तो आमने-सामने टक्कर की नौबत आ जाती है। आज की स्थिति बिल्कुल ऐसी ही है। यदि हम सबके साथ मिलकर अपनी ठीक दिशा में अग्रसर हों तो आज जो कुकृत्य देखने को मिलते हैं, जो वीभत्स घटनाओं के समाचार पढ़ने को मिलते हैं वे प्राप्त ही न हों। यह कुअवसर तो तभी आता है जब हम अपना भाग छोड़ दूसरे

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

● विज्ञापन और प्रदर्शन

पिछले दिनों का एक समाचार है कि बिजनौर जिले में श्रमदान-पक्ष के अवसर पर सरकारी तथा गैरसरकारी सभी वर्गों और राजनैतिक दलों के लोग राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में जी-जान से लगे और सम्पूर्ण जिले में सवा लाख के लगभग व्यक्तियों ने श्रमदान किया।

जीवन में श्रम का मूल्यांकन व महत्त्व समझते हुए देश में होनेवाले इस प्रकार के आयोजन सचमुच ही राष्ट्र-निर्माण व जागरण की ओर बढ़ते चरण हैं, श्रम-निष्ठा की स्फूर्ति के लिये प्रेरणा-स्तम्भ हैं। ऐसे आयोजनों व कार्यक्रमों का हम सभी को स्वागत करना चाहिये। किन्तु साथ-साथ एक बात और ध्यान देने की है—वह यह कि ऐसे कार्यों में हम किसी पर कोई एहसान नहीं करते, यह तो हमारे कर्त्तव्य की पुकार है। फिर प्रदर्शन और विज्ञापन से यदि बचा जाय तो अच्छा है क्योंकि तभी हम अपने ठोस कार्य द्वारा अपनी कर्त्तव्य-पूर्ति का परिचय दे सकेंगे।

● अनुकरण करें !

'मद्य-निषेध जांच समिति' की कुछ सिफारसों को कार्यान्वित करने का फैसला लेते हुए राजस्थान सरकार ने यह निश्चय किया है कि १ अप्रैल से भोजनालयों, होटलों, क्लबों, सिनेमाओं और दावतों में मदिरा-पान बन्द कर देगी।

मद्य-पदार्थों का पान करके जो अभद्र व्यवहार व उत्पात खुले आम होते हैं उनसे कोई अपरिचित नहीं है। मदिरा आदि का कुसंस्कारों को जन्म देने व विकसित करने में भी पूरा हाथ रहता है। ऐसी दशा में इसका पूर्ण-रूपेण निषेध सब स्थानों पर शीघ्रातिशीघ्र होना परमावश्यक है। आंशिक रूप में ही क्यों न हो, पर राजस्थान सरकार ने मद्य-निषेध का जो शुभ निश्चय किया है उसके लिए वह धन्यवाद की पात्र है। अन्य राज्य भी इसका अनुकरण करेंगे ऐसी हमें आशा रखनी चाहिये।

● किया नहीं तो डर क्या ?

कहा जाता है कि 'पाप खुद ही सिर पर चढ़कर बोलने लगता है'। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा नियुक्त भ्रष्टाचार-विरोधी विभाग ने यद्यपि अब तक अपनी कोई कारगुजारी नहीं दिखायी है किन्तु इस विभाग की नियुक्ति ने ही सरकारी विभागों में और खासतौर पर कचहरियों तथा थानों में हलचल मचा दी है।

सरकारी मशीनरी में भ्रष्टाचार व घूंसखोरी आदि होती है यह तो 'विभाग' की नियुक्ति से उत्पन्न इस हलचल से स्पष्ट ही है क्योंकि

यदि ऐसा न होता तो इस विभाग की नियुक्तिमात्र से खलबली मचाने का कोई कारण ही नहीं। और फिर जब किया नहीं तो डर क्या ? इससे स्पष्ट है कि यदि निष्पक्ष होकर जाँच की जाय तो इन विभागों में होनेवाले भ्रष्टाचार के काले कारनामों के सही आँकड़े भी जनता के सम्मुख आ सकते हैं।

क्या हम आशा करें कि भ्रष्टाचार की दलदल में बिना फँसे 'भ्रष्टाचार-विरोधी विभाग' अपने कर्तव्य का पालन करेगा ?

● एक सही प्रार्थना

जयपुर में होनेवाले अ० भा० नैतिक और सामाजिक स्वास्थ्य संघ के पंचम सम्मेलन में केन्द्रीय और राज्य सरकारों से प्रार्थना की गई कि वह सस्ते, उत्तेजक और अश्लील साहित्य; पोस्टरों, चित्रों तथा फिल्मों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिये तुरन्त कदम उठाये। यह एक ऐसा विष है जो जनता के खासकर स्कूलों के बच्चों के नैतिक और सांस्कृतिक विकास को रोक देता है। इसी विष से अनाचार तथा वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।

छात्रों व जनता द्वारा होनेवाले आये दिन के भ्रष्टाचारपूर्ण, अनैतिक और उदंड कार्यों व प्रदर्शनों का यदि कारण ढूँढ़ा जाय तो हमें ज्ञात होगा कि इनमें अश्लील साहित्य और पोस्टरों आदि का भी प्रमुख हाथ है। ये मनुष्य की कुत्सित और विध्वंसकारी दुष्प्रवृत्तियों को बढ़ावा देते हैं। ऐसी अवस्था में सम्मेलन की उपरोक्त प्रार्थना सचमुच ही राज्यों द्वारा शीघ्रातिशीघ्र क्रियान्वित करने की आवश्यकता है जिससे समाज व राष्ट्र का नैतिक विकास अबाध गति से हो सके।

—*सनामि*

दो दुनिया

यह युग एक प्रकार से पैसे का युग है। चारों ओर धन की ही पुकार मची हुई है परन्तु फिर भी एक गरीब लेखक, एक कलाविद् तथा विद्वान व्यक्ति का करोड़पतियों से अधिक आदर होता है। पैसे की दुनिया में एक आदमी की सफलता हजारों को दुःख और असफलता में डाल देती है, बुद्धि की दुनियां में सफलता से समाज की उन्नति में सहायता मिलती है।

—स्वेट मोर्डेन

नैतिक दृष्टि में हमारा भारत

[श्रीमती पूर्णिमा पकवासा, बी० ए०]

कमिश्नर, बोम्बे स्टेट स्काउट्स एन्ड गर्ल्स गाइड्स

स्वाधीनता-प्राप्ति के उपरांत हमारी मातृभूमि विभिन्न दिशाओं में बहुमुखी प्रगति कर रही है। हमारे संविधान में महिलाओं के लिये पुरुषों के समान अधिकारों की स्वीकृति देश की प्रगति की द्योतक है। एक ओर जहां उन्हें समान अधिकार प्रदान किये गये हैं वहां दूसरी ओर वे अपने कर्तव्य-पालन में भी पुरुषों के समान ही उत्तरदायी भी बन गई हैं और इन कर्तव्यों को भविष्य में किये जानेवाले कार्य का पूरक समझना चाहिये। यह सर्वमान्य तथ्य है कि महिलाओं के जीवन की नैतिक और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि अधिक पुष्ट होती है। विश्व का इतिहास व भिन्न-भिन्न देशों का घटना-चक्र देखने से पता चलता है कि किसी भी देश के पतन से पहले वहां के नारी-समाज की अवनति प्रारम्भ हो जाती है और तब उस देश का अभ्युदय कठिन हो जाता है। मगर युद्ध-क्षेत्रों में कई बार हार खा जाने पर भी भारत की आत्मा पद् दलित-पतित नहीं हुई। आज भी आर्थिक दृष्टि से या भौतिक सुख-सुविधा के अन्यान्य कृत्रिम साधनों की दृष्टि से भारत एक पिछड़ा हुआ देश माना जा सकता है, परन्तु जहां मानवीय नैतिकता का प्रश्न है, भारत विश्व के किसी भी सभ्य देश से पीछे नहीं है। यदि देश की इस अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर का सदुपयोग करना है तो देश के महिला-समाज को आगे आना चाहिये और भारत को संस्कार जनित अमूल्य नैतिक विधि से समृद्ध बनाने के लिये सक्रिय हो जाना चाहिये। मुझे ऐसा लगता है कि यदि इस दिशा में प्रगतिशील कदम उठाया जाये तो भौतिक साधन-सम्पन्नता के क्षेत्र में भारत का विकास चाहे जैसा भी क्यों न हो— कम से कम आध्यात्मिक, नैतिक एवं मानवीय सद्वृत्तियों के विकास में अखिल विश्व में

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

तू ही अपना भाग्य विधाता !

[श्री परमेश्वर द्विरेफ]

बढ़ता जा जीवन-सागर में इन लहरों को जीत ले !
क्षुब्ध न हो भयभीत न हो रे,
प्रलयंकर तूफान से
ऊँचा ऊँचा शीश अड़ा दे
अम्बर में अभिमान से
घुमा घुमा पतवार हाथ में नौका कर विपरीत ले !
प्राणों के पंखों को भर ले
श्रद्धा से विश्वास से
नयनों को टकराने मत दे
उस नीले आकाश से
सूने में एकाकीपन में आशा का संगीत ले !
अपने बल पर सत्य बना ले
स्वप्न सभी उस पार के
इन चरणों को धो जायेंगें
लोचन नत संसार के
पद-चिन्हों पर चलनेवाली संसृति की यह रीत ले !
अवसर की पहिचान न कर रे,
तू पालों को तान दे
कुछ भविष्य की चिन्ता मतकर
वर्तमान पर ध्यान दे
छाने मत दे उस अतीत को, काल न योंही बीत ले !
उन्मन मन का भार बहा दे
मधु भावों के स्रोत से
साध्य पंथ का ध्वान्त चीर दे
प्रतिभा के नव पोत से
विस्मृत हो रे, अंतर्मा में साथ न कोई मीत ले !
अपने बन्द कपाट खोल ले
अपने अंतर्ज्ञान से
मुक्त विहर रे अपने नभ में
अपने स्वर्ण - विहान से
तू ही अपना भाग्य-विधाता, परिस्थितियां कर क्रीत ले !

हिंसा का विरोध क्यों?

श्री अगरचन्द नाहटा

[चहुँ ओर होनेवाले हिंसा के भयंकर ताण्डव को देख किसका हृदय कॉप नहीं उठता? इसके क्या-क्या दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं? कौन-कौन सी पाप-वृत्तियाँ इसमें निहित हैं? और सामाजिक जीवन की सफलता के लिये हिंसा का विरोध क्यों आवश्यक है? आदि प्रश्नों का उत्तर आप विद्वान लेखक के प्रस्तुत विचारों में प्राप्त कर सकेंगे।

—सम्पादक]

हिंसा का प्रभाव कमोबेस अनादिकाल से चला आ रहा है और अनन्त कालतक चलता रहेगा। ऐसा काल न कभी आया और न आनेकी संभावना ही लगती है कि जब हिंसा पूर्ण रूप से बन्द हो गई हो या हो जाय। इस बात को जानते हुए भी सभी तत्वज्ञ पुरुषों ने हिंसा का निषेध किया। उसे कम व दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न किये और अहिंसा को परम धर्म बतलाया। अतः हमारे सामने एक विचारणीय समस्या अवश्य हो जाती है कि जब यह बन्द नहीं हो सकती तो फिर उसके लिए अधिक प्रयत्न क्यों किया जाय? तत्वज्ञ पुरुषों ने हिंसा में इतना भारी क्या दोष देखा? जिसके कारण इसका इतना विरोध किया। इस समस्या का समाधान मैं अपने विचारानुसार यहाँ उपस्थित कर रहा हूं। आशा है अन्य विचारक भी अपने विचार प्रकट करेंगे।

यह मान लेने पर भी कि हिंसा का प्रभाव सर्वथा कभी बन्द नहीं हो सकता पर एक अन्य बात हमें साथ-ही-साथ दिखाई देती है कि सर्वथा भले ही बन्द न हों, पर इसे कम तो किया जा सकता है। भूतकाल इसका साक्षी है और वर्तमान में भी प्रयत्न करने पर कमी की जा सकती है। इसे हम अनुभव कर रहें हैं। अतः प्रयत्न करने से जब उसके अनुरूप फल मिलना ही है तो यथाशक्ति प्रयत्न करते रहना आवश्यक हो जाता है। आजकल अहिंसा की कमी नजर आ रही है तो वह प्रयत्न की कमी या परिस्थिति की विकटता के कारण ही। कल परिस्थिति अनुकूल होगी और प्रयत्न जोरों से किया जायगा तो फल अवश्य ही मिलेगा यह निश्चित है। तत्वज्ञ पुरुषों ने इसीलिए स्वयं प्रयत्न जारी रखा और सब समय सबको इस सत्-प्रयत्न में लगे रहने का उपदेश दिया। यह प्रश्न केवल हिंसा के लिए ही नहीं है, अन्य सभी दोषों पर भी यही बात लागू होती है। कोई भी पाप-प्रवृत्ति सर्वथा बन्द होजाय—यह संभव नहीं है। समय-समय पर उसमें कमी-वेशी होती रहती है। फिर भी जिन दोषों से व्यक्ति व समाज का अकल्याण होता है उनको कम या दूर करने का प्रयत्न सदा से ही किया जा रहा है और किया जाता रहेगा। रोग है तो दूर करने का प्रयत्न भी आवश्यक है। जितने भी अंश में वह कम होगा, उतने ही अंश में शांति मिलेगी। इसलिए हतोत्साहित होकर प्रयत्न में मंदता लाना इष्ट नहीं। दूसरी एक बात और भी है कि व्यक्ति की समष्टि ही समाज है पर व्यक्तियों के विकास में बड़ी तर-तमता होती है, इसलिए समस्त समाज चाहे एकरूप में दोष-निर्मुक्त न हो सके, पर यह बात लागू नहीं होती। उसका तो विकास असाधारण व अपूर्व में भी हो सकता है। इसके उदाहरण स्वरूप कई महापुरुष हमारे सामने आदर्श के रूप में उपस्थित हैं। समाज के सब व्यक्ति, ऊंचाई की समान भूमिका में नहीं हो सकते हों, पर व्यक्ति विशेष तो बहुत ऊँची उड़ान लगा ही सकता है। इसलिए सामूहिक प्रवाह के रूप में हिंसा आदि दोष चाहे कमो-वेश निरन्तर रहें, पर वैयक्तिक रूप से व्यक्ति विशेष सर्वथा उनसे दूर हो ही सकता है अन्यथा उसकी उपयोगिता व व्यवहारिकता भी नहीं रहती। इस विचार से हमें हिंसादि दोषों के कम करने का एक क्रम व महत्त्वपूर्ण सूत्र मिल जाता है कि सामूहिक रूप से दोष-निवारण का प्रयत्न जारी रखते हुए भी व्यक्ति के सुधार पर बल देना अधिकआवश्यक है, क्योंकि व्यक्ति अंशतः समाज का ही एक अङ्ग है, उसका असर दूसरे संपर्क में आनेवाले व उसके आस-पास के व्यक्तियों के विकास के अनुरूप कम-ज्यादा अवश्य ही पड़ेगा। 'टीपे-टीपे सरवर भरता है'—एक व्यक्ति जो समाज का ही अङ्ग है—सुधर गया तो दस-बीस सुधरने लगेंगे। इस तरह समाज के अच्छे व्यक्तियों की संख्या बढ़ने लगेगी और एक अच्छा वातावरण तैयार हो जायगा। इस दृष्टि से भी हिंसादि दोषों, के परिहार का प्रयत्न जारी रखना आवश्यक और लाभप्रद है।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि हिंसा में इतना बड़ा भारी क्या दोष है जिसे समस्त पापों में प्रथम स्थान दिया गया है और उसको

कम या दूर करने के लिए बहुत जोरों का उपदेश व प्रयत्न किया गया। मेरे विचार में हिंसा को सबसे प्रधान पाप-दोष इसलिए बनाया गया कि यह मूलोच्छेदक है। जीवमात्र जीना चाहते हैं, पर हिंसा के द्वारा उसके विपरीत उनका मरण होता रहता है। विश्व की सुव्यस्था के लिए जीव जगत का अस्तित्व आवश्यक है, इसलिए जीव जगत की रक्षा, जगत की सबसे प्रथम और बड़ी आवश्यकता है। यदि हिंसा का प्रवाह जोरों से बढ़े तो उसकी ज्वाला में सारा जीव जगत ही विध्वंस हो जायगा। तब तो विश्व की सारी व्यवस्था ही गड़बड़ा जायगी। इसलिए तत्वज्ञ पुरुषों ने जीवों की स्थिति व सुख शान्ति के लिए अहिंसा, प्रेम, दया, करुणा, सहानुभूति और सत्य योगादि गुणों के अधिकाधिक विकास की आवश्यकता बताई है और हिंसा को जो प्रकृति की सुन्दर सृष्टि को नष्ट-भ्रष्ट एवं दुखी बना देती है—मूलोच्छेदक प्रवृत्ति मानकर उसे कम व दूर करने पर बड़ा जोर दिया है। हिंसा भयानक है, भयावह है, रौद्र है, असहनीय है और विध्वंसक है। इसीलिए अपने लिए कोई भी उसे नहीं चाहेगा। दूसरे को हम चाहे सताकर आनन्द मान लें, पर जब वह हमें सतायेगा तब हम उद्विग्न हो ही जायेंगे।

हिंसा का दूसरा महान् दोष है उसका संक्रामक होना। रोग दो प्रकार के होते हैं—व्यक्ति-मूलक व संक्रामक। इसी प्रकार कई रोग स्वल्पकाल के लिए व साधारण दुःखदायी होते हैं तो कई भारात्मक व दीर्घकाल के लिए कष्टदायी होते हैं। कई व्यक्ति-विशेष तक सीमित होते हैं और कई आसपास के व्यक्तियों में भी फैल जाते हैं। कई एक शरीर तक ही लागू रहते हैं तो कई वंश-परम्परा तक चालू रहते हैं। कई अपने रूप में ही सीमित रहते हैं तो कई अनुसांगिक अन्य रोगों के उत्पादक भी होते हैं। उसी प्रकार दोष अनेक प्रकार के होते हैं। हिंसा-दोष इन सबमें महान् होता है, क्योंकि वह भारात्मक होता है, उसकी परम्परा बहुत लम्बे काल तक चलती है और अन्य दोषों का भी उत्पादन करती है, व्यक्ति तक सीमित न रहकर वह समाजव्यापी

युग जागरण मधुमास नूतन

—श्री स्वामीशरण सक्सेना :—

आज युग के जागरण तुम सृष्टि के मधुमास नूतन!
सत्य सपनों को करो अब विश्व के विश्वास नूतन!!

सांध्य के नीरव विजन में जल रहा है द्वेष से जग;
औ' शिशिर के क्रूर कर में तड़फड़ाता मोक्ष का मग;
लक्ष्य ओझिल घिर रहे घन, रक्त की भीषण पिपासा;
कौन जाने किस घड़ी में वह उठे फिर कर्मनाशा;
मांगता जग भीख इतनी शांति के कुम्हले सुमन सब—
आ खिला जाओ पुनः तुम शक्ति के आभास नूतन!
आज युग के जागरण तुम सृष्टि के मधुमास नूतन!!

दीन कुटियों के दृगों में छलछला उपहार कितने;
और निर्बल के हृदय में आह के उद्गार कितने;
कर रहे आह्वान प्रतिपल शीत से नित कँपकँपाते—
मूक शोषित के अधर के प्राण तुम आधार कितने;
ताप दो, संताप हर लो औ' निशा कर दो उजेली—
दीन मनुजों के चिराश्रय हीन के उल्लास नूतन!
आज युग के जागरण तुम सृष्टि के मधुमास नूतन!!

दीप सरसों के अभी तक लख रहे पथ खेत में हैं;
पिस रहे कंकाल कब से मील में औ' रेत में हैं;
एक आशा नव सृजन की—एक भाषा सुख-मिलन की;
औ' प्रतीक्षा के कठिन क्षण शक्ति कितनी है सहन की;
भूख से दल, प्यास से छल; त्रास सी छाई धरा पर—
चाह जल की, दे न पाये प्राण अपने मीन निर्बल—

ढ़ाल दो आ वारि दृग का क्षीण के आवास नूतन!
आज युग के जागरण तुम सृष्टि के मधुमास नूतन!!

हो जाती है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति को कष्ट दिया व मारा, तो जिसे कष्ट दिया जायगा वह वैरभाव धारण करेगा ही, साथ ही उस व्यक्ति के कुटुम्बी व प्रेमीजन मारनेवाले के प्रति वैर-भाव रखने लगेंगे। मौका मिला तो उसी समय या बाद में उसका बदला तो अवश्य लेकर छोड़ेंगे। जन्मान्तर मारनेवालों के लिए तो वह वैर-भाव कई जन्मों तक चलता रहेगा। अपने को सताने वाले व्यक्ति को भवान्तर में भी जब देखेगा तो उसके हृदय में वैर-भाव जग उठेगा। इसलिए हिंसा की परम्परा बहुत लम्बी मानी गई है। दूसरी बात यह है कि हिंसा का एक बार संस्कार बन जाने पर वह जीवन भर ही नही, जन्म-जन्मान्तर तक बना रहता है। एक व्यक्ति मांसाहारी है, शिकारी या कसाई है तो उसकी जीवघात करने की आदत चालू रहेगी और उसके द्वारा वह हजारों प्राणियों का संहार कर देगा। इतना ही नहीं उस व्यक्ति के पुत्र-पुत्रादि व परिवार या समाज भी उसका अनुसरण कर जीवघातकी प्रवृत्ति को अपनायेंगे और उन सब व्यक्तियों द्वारा होने वाली प्राणी हिंसा लाखों व करोड़ों तक पहुँच जायगी प्रकृति की सुन्दर सृष्टि ही जीव-जगत् है और उसकी स्थिति और सुखपूर्वक जीवन-धारणा में हिंसा महान् बाधक है। हम जीव को पैदा नहीं कर सकते तो उसका विनाश कर इस सुन्दर सृष्टि को असुन्दर क्यों बनाएं? स्वयं जीना चाहते हैं तो दूसरों को भी जीने दें, स्वयं सुख चाहते हैं तो दूसरों को भी सुखी रहने दें व सुखी बनाने का प्रयत्न करें।

जैन धर्म ने तो हिंसा-निवारण के लिए सदा और सबसे अधिक प्रयत्न किया है पर आज उसकी गतिशीलता बहुत ही कुण्ठित हो गई नजर आती है। सारे विश्व में आज हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा है। मानव दानवता की ओर इतना अधिक अग्रसर हो रहा है कि दिनोंदिन वह हिंसा के साधनों को बढ़ाये जा रहा है। भारत में ही देखिये—मध्यकाल में जैन धर्म के प्रभाव में दया-धर्म का बहुत अच्छा विकास किया था। राजस्थान गुजरात आदि अनेक प्रान्त मांसाहार से सर्वथा विरत हो गये थे। जीवोंका घात करना तो दूर की बात पर हिंसा का नाम सुनते ही वहां का जन-मानस थर्रा उठता है। जीवों की रक्षा के लिए नानाविध प्रयत्न किये गए। महाराजा कुमारपाल के समय उनके शासित १८ प्रदेशों में मांसाहार ही नहीं, शिकार, मद्यपान आदि दुर्व्यसनों को दूर करने का बड़ा प्रबल किया गया। जैनाचार्यों ने मुसलमान सम्राटों को ही प्रभावित कर हिंसा निवारण की, पर आज भारत में मांसाहार दिनोंदिन बढ़ रहा है फिर भी जैनमुनि चुपचाप बैठे हैं यह कितने आश्चर्य की बात है। अपने आप पड़ौस में चतुर्दिक् हिंसा का बोलबाला है फिर भी उनकी वाणी मौन है। अपने कर्त्तव्य के प्रति इतनी उदासीनता देखकर बड़ा दुःख होता है। जैन साधु और श्रावक समाज अपने कर्त्तव्य को संभार, हिंसा निवारण में प्राणपण से जुट जांय यही इस लेख का उद्देश्य है

नारी का आभूषण

बौद्ध भिक्षु उपगुप्त से एक बार एक सुप्रसिद्ध नर्तकी ने पूछा—"देव! नारी का सर्वश्रेष्ठ आभूषण क्या है?"

भिक्षु ने उत्तर दिया—"जो उसके सौन्दर्य में स्वाभाविक रूप से सौन्दर्य उत्पन्न कर सके। …अच्छा अपने आभूपण उतार डालो।"

नर्तकी ने आदेश का पालन किया।

"सुन्दरी वस्त्र भी उतार डालो!"

नर्तकी हिचकिचाई, पर सौन्दर्य का सर्वश्रेष्ठ साधन जानने की अभिलापा ने आज्ञा का पालन करा ही लिया।

"देवी, अब किंचित मेरी ओर देखो।"

किन्तु आरक्त मुख, नत नयन नर्तकी हृदय में अगाध विश्वास भर कर भी इस आज्ञा का पालन न कर सकी।

उपगुप्त उठ खड़ा हुआ—"देवी! नारी के सौन्दर्य का सर्वश्रेष्ठ आभूपण उसकी यह लज्जा ही है।"

—श्री 'अनल'

विचारप्रधान लेख—

व्रत नहीं दीखते, व्रती का व्यवहार दीखता है !

अकर्त्तव्य, सामान्य कर्त्तव्य, प्रधान कर्त्तव्य

खाना स्वाभाविक लगता है। नहीं खाना स्वाभाविक नहीं लगता। खाने का समय नहीं खाने के समय की अपेक्षा बहुत थोड़ा होता है। खाना शरीर की जरूरत है इसलिये प्राणी खाता है। जरूरत पूरी होने पर नहीं खाना, यह उसका हित है इसलिये वह खाना छोड़ देता है—खाने पर नियंत्रण कर लेता है। नियंत्रण शक्ति कम होती है; वह पेटू बन जाता है। जरूरत पूरी हो जाने पर भी खाता ही रहता है। यह विकार-पक्ष है। परिमित खाना स्वभाव-पक्ष है। आरोग्य-संवर्धन के लिये स्वभाव-पक्ष का प्रतिरोध करना—नहीं खाना, भूख सहना—यह हित पक्ष है। समाज की सारी वृत्तियां इन तीन पक्षों में समा जाती हैं। कानून या विधि-विधान व्यक्ति को विकार-पक्ष से स्वभाव-पक्ष की ओर अग्रसर करता है। व्रत स्वभाव-पक्ष से हित-पक्ष की ओर जाने की साधना है या यूं कहना चाहिये—विकार और स्वभाव में विरोध होता है तब सामाजिक विधि का निर्माण होता है तथा स्वभाव और हित में विरोध होता तब आध्यात्मिक या नैतिक व्रतों की साधना अपेक्षित होती है। विकार, स्वभाव और हित की परिभाषा की संज्ञा में अति मात्रा, मात्रा और अमात्रा कहा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप-वासना की अति मात्रा-पूर्ति विकार है। वासना की परिमित मात्रा-पूर्ति शरीर का स्वभाव है। वासना-विजय या वासना की अमात्रा हित है। स्वभाव की दृष्टि से विकार अकर्तव्य है और हित की दृष्टि से स्वभाव अकर्तव्य है। शरीर-स्वभाव की दृष्टि से अति मात्रा खाना अकर्तव्य है पर आवश्यक व उपयोगी खाना अकर्तव्य नहीं है। परन्तु हित की दृष्टि से परिमित खाना भी अकर्तव्य हो जाता है। दूसरे के लिये पहले का त्याग (उत्तरवर्ती के लिये पूर्ववर्ती का त्याग) कर्तव्य की विशेष प्रेरणा से ही होता है। व्यक्ति में विवेक जागरण का उत्कर्ष होता है तभी वह स्वभाव के लिये विकार का और हित के लिये स्वभाव का त्याग करता है।

जिस ओर मनुष्य की स्वाभाविक प्रेरणा हो वही उसका कर्तव्य माना जाये तो अकर्तव्य

अणुव्रत-दर्शन

९

जैसा कुछ बचा ही नहीं रहता। शोषण संग्रह और सत्ता की ओर मनुष्य की जैसी स्वतः स्फूर्त प्रेरणा होती है वैसी भले कार्यों के प्रति नहीं होती। किन्तु यह विकार के मोहक आवरण से ढंकी हुई स्वाभाविक प्रेरणा है इसलिये यह अकर्तव्य है। वैध ढंग से व्यापार, परिग्रह और अधिकार प्राप्ति की ओर जो स्वाभाविक प्रेरणा होती है उसके पीछे आवश्यकता या उपयोगिता की सामान्य भावना होती है इसलिये वह सामान्य कर्त्तव्य है। अपरिग्रह और असत्ता समाज के वर्तमान मानस में स्वाभाविक प्रेरणा लभ्य नहीं है इसलिये ये प्रधान कर्त्तव्य हैं।

[मुनिश्री नथमलजी]

अणुव्रती समाज व्यवस्था में—अकर्तव्य का वर्जन, सामान्य कर्तव्य का नियंत्रण और प्रधान कर्त्तव्य का विकास—ये तीन भूमिकायें होंगी जिनका स्थूल संकेत आन्दोलन की तीन श्रेणियों से परिलक्षित होता है।

आत्मोदय या आत्म-तुला की साधना

व्रत नहीं दीखते; व्रती का व्यवहार दीखता है। जो क्रूर नहीं है, उचित मात्रा से अधिक संग्रह नहीं करता है, अपने पड़ौसी या सम्बन्धित व्यक्ति से अनुचित व्यवहार नहीं करता है, अपने स्वार्थ को अधिक महत्त्व नहीं देता है, अपनी सुख-सुविधा व प्रतिष्ठा के लिये दूसरों की हीनता नहीं चाहता है, दूसरों के बुद्धि-दौर्बल्य, विवशता से अनुचित लाभ नहीं उठाता है—थोड़े में नैतिकता का मूल्यांकन करते हुए अपने आप पर नियंत्रण रखता है, ये वृत्तियां ही अणुव्रती होने का स्वयम्भू प्रमाण हैं। व्रतों की साधना के विना उनका स्वीकार मात्र इष्ट फल नहीं लाता। पहली मंजिल में केवल वस्तु का त्याग होता है। अन्तिम मंजिल में वासना भी छूट जाती है। वस्तु-संग्रह के संस्कार भी मिट जाते हैं। व्यक्ति संस्कारों का पुतला होता है। उसमें सबसे अधिक घने संस्कार अपनी सुख-सुविधा के होते हैं जिनका स्वार्थ वृत्ति में पूर्ण आकलन हो जाता है। पदार्थ वृत्ति के संस्कार स्वार्थ से कम होते हैं। पदार्थ की भी कई भूमिकायें हैं—परिवार, जाति, समाज, प्रान्त और राष्ट्र फिर मनुष्य और फिर प्राणी जगत्। इनमें क्रमशः व्यापकता है। व्यक्ति का स्व जितना विशाल बनता है उतना ही वह स्वयं विशाल बन जाता है। यह आत्मौपम्य बुद्धि या आत्म-तुला का विस्तार क्षेत्र है। पहले पहल वह अपने पारिवारिक जनों को अपने समान समझने लगा। फिर उसने क्रमशः अपनी

जाति, समाज, प्रान्त और राष्ट्र के व्यक्तियों को अपने समान माना। आगे जाकर मानव-मानव, भाई-भाई का स्वर गूंजा। अन्तिम चरण में 'प्राणी मात्र समान हैं' यह भी बुद्धि में समा गया।

समाज में आत्मौपम्य बुद्धिवाद फैला हुआ है पर आत्मौपम्य—बुद्धि से फलित होनेवाले स्वार्थ-त्याग के व्रत की साधना नहीं है। ज्ञान का आवरण दूर हुआ है किन्तु मोह नहीं छूटा है। यथार्थ ज्ञान भी मोह के रहते हुए क्रियात्मक नहीं बनता इसलिये एक कदम और आगे बढ़ाना होगा। जैसे अज्ञान को मिटाने का प्रयत्न किया वैसे मोह को उखाड़ फेंकने की साधना करनी होगी। ऐसा किये बिना अन्याय और अप्रमाणिकता का अन्त नहीं किया जा सकता। आत्म-तुला का संस्कार मोह से दबा रहता है तभी व्यक्ति दूसरों का दमन, शोषण, उत्पीड़न करता है, उन्हें मारता है, सताता है, हानि पहुँचाता है। जो दूसरों में अपने जैसे ही अनुभूति देखने लग जाय वह फिर किसी को न मार सकता, न सता सकता और न लूट सकता। जातीय और राष्ट्रीय समानता की भावना के कारण कई राष्ट्रों का नैतिक बल बहुत ऊंचा है। बाहरी समानता का भाव भी इतना फल ला सकता है तब भला आन्तरिक समता की वृत्ति के महान् परिणाम के बारे में कैसे सन्देह किया जाये? आत्मिक समानता की वृत्ति का उदय होने पर परिवार, जाति आदि के बाहरी भेद और भौगोलिक आदि कृत्रिम भेद रेखायें ही नहीं मिटतीं; उनका उन्माद भी मिट जाता है। उपयोगिता पूरक भेद के रहने पर भी सन्ताप बढ़ने का अवकाश नहीं रहता।

परिग्रह का अल्पीकरण

सामाजिक व्यक्ति के लिये अपरिग्रह का पूर्ण व्रत कल्पनामात्र हो सकता है। सचाई यह है कि वह परिग्रह से पूर्ण मुक्ति नहीं पा सकता, उसका अल्पीकरण कर सकता है, अपरिग्रह का व्रत ले सकता है। सम्पत्ति व्यक्तिगत रहे या उसका समाजीकरण हो जाये, दोनों परिग्रह हैं। परिग्रह के समाजीकरण में लालसा का रूपान्तर हो जाता है, उसकी निवृत्ति नहीं होती। यह समाज के लिये उपयोगी व्यवस्था हो सकती है पर इसे अपरिग्रह-व्रत नहीं कहा जा सकता।

व्यक्तिगत सम्पत्ति में केवल अपना अधिकार होता है और समाजीकृत सम्पत्ति में सामूहिक अधिकार में से व्यक्तिगत भाग मिल जाता है। सम्पत्ति से सम्बन्ध जुड़ा रहता है वैसी दशा में पूर्ण अपरिग्रह की बात नहीं आती। व्रत आत्मोदय की भूमिका पर टिके हुए हैं इसलिये मन में मुख्य बात परिग्रह के अल्पीकरण की है। उसके होने पर समाजीकरण की व्यवस्था स्वयं सरल बन जाती है। अपरिग्रह-अणुव्रत की भावना यही है कि कोई व्यक्ति परिग्रह करे ही नहीं किन्तु कल की चिन्ता जो होती है—काम किया जा सके या नहीं? कमाया जा सके या नहीं? मिले या नहीं? वही संग्रह का हेतु है। यदि सामाजिक व्यवस्था निश्चिन्तता की स्थिति पैदा कर दे तो फिर कौन संग्रह का मोह करेगा? विशिष्ट अणुव्रतियों ने एक लाख के संग्रह की छूट रखी है वह वैयक्तिक व्यवस्था पर आधारित है। जीवन के भरण-पोषण की व्यवस्था सामूहिक हो जाये तो उसकी अपेक्षा नहीं रहेगी। भारत की वर्तमान आर्थिक स्थिति का प्रतिशत देखते हुए एक लाख की संख्या अधिक है। पारिवारिक जीवन के सामान्य स्तर की अपेक्षा अधिक नहीं भी हो सकती है। अणुव्रत-आन्दोलन का दृष्टिकोण केवल भारत तक ही सीमित नहीं है। हिन्दुस्तान का आर्थिक स्तर भी ऊँचा उठ रहा है। सारी स्थितियों की विमर्षणा के बाद अणुव्रतियों को यही संख्या उपयुक्त लगी। यह उत्कृष्ट सीमा है। इससे अधिक संग्रह किया ही नहीं जा सकता। इतना संग्रह किया जाय या रखा जाय, यह अपेक्षा नहीं है। बहुत सारे विशिष्ट अणुव्रती इस संख्या का चतुर्थांश भी नहीं रख रहे हैं। बहुतों के पास इतना नहीं भी है। अर्जन पद्धति पर अंकुश लगने के कारण अधिक संग्रह बढ़ाने का उनके पास साधन भी नहीं है। संग्रह बढ़ाना उनका ध्येय भी नहीं है इसलिये व्यक्तिगत सम्पत्ति रहने में लालसा अधिक बढ़ेगी—ऐसी सामान्य कल्पना नहीं की जा सकती। लालसा का नियंत्रण व्रत की साधना से होता है। जीवन के निर्वाह के साधनों की सुलभता वैयक्तिक पद्धति से या सामूहिक पद्धति से इसमें विवाद नहीं। लालसा दोनों विकल्पों में भी बढ़ सकती है। व्रत व्यक्ति की आन्तरिक लालसा का नियंत्रण है। तत्त्वतः यह (लालसा का) नियंत्रण ही परिग्रह का अल्पीकरण है।

जीवन ?

तुममें जिस मात्रा में निष्ठा, आत्म-विश्वास और आशा है उसी मात्रा में तुम में जीवन भी है। इसी प्रकार तुममें जितनी मात्रा में सन्देह-भाव और निराशा होगी, उतने ही तुम निष्प्राण होगे।

—जनरल डगलस मैकार्थर

अनैतिकता का उद्भव

अनैतिकता आर्थिक और राजनैतिक वातावरण के वैषम्य से उद्भूत होती है—ऐसा

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

[नलिन का पावन व करुण हृदय उस असहाय की पीड़ाभरी अवस्था को न न देख सका। उसने जो कुछ किया अपने कर्त्तव्य की पुकार पर किया किन्तु, समाज की क्रूर और द्वेषपूर्ण दृष्टि भला यह कब सहन करनेवाली थी। आखिर उसे सब कुछ सहना ही पड़ा--संपादक]

एक कहानी—

गृहहीन

[सुश्री कामायनी श्रीवास्तव]

अनारकली के चौराहे पर पहुँचते ही घड़ी ने टन्-टन् बारह बजाए। सिनेमा का सैकेन्ड शो देखकर नलिन वापिस लौट रहा था। कड़ाके की सर्दी-ठंडी हवा मोटे चेस्टर को चीरती हुई हड्डियां कंपा रही थी। दो एक कुत्तों के भूंकने के शब्द के अतिरिक्त सब निस्तब्ध-नीरव! दोनों हाथों की मुट्ठियों में शीत को कसकर बाँधने का प्रयत्न करता हुआ नलिन शीघ्रता से पैर बढ़ाए चला जा रहा था कि अकस्मात् पैर ठिठक गये, सड़क की रोशनी के धुंधले प्रकाश में एक छाया सी दिखाई पड़ी। एक क्षण के लिए उसके हृदय में भय का कंपन हुआ फिर साहस बटोर कर आगे बढ़ा, पास जाकर स्तम्भित रह गया—एक स्त्री इस निर्जन अर्ध-रात्रि में एकाकी कुहरे के धूमिल आवरण से आच्छादित एक पाषाण प्रतिमा सी खड़ी थी। नेत्र अपलक मानों कहीं अदृश्य में कुछ खोजने का प्रयास कर रहे हों! आकृति सुन्दर ही कही जा सकती थी। अवस्था का ठीक अन्दाज लगाना नलिन के लिए कठिन था। साहस बटोर कर उसने पूछा—

"आप कौन" शब्द निस्तब्धता में गूंजकर रह गये। उस अडिग मूर्ति के कानों तक न पहुंच सके। फिर प्रश्न हुआ—

"आपका परिचय" उत्तर नहीं मिला।

नलिन की उत्सुकता जागी पास जाकर कंधा हिला दिया। स्त्री मानों सोते से जाग उठी हो···उसकी शून्य दृष्टि नलिन के हृदय के आर-पार चली गई। वह सहम गया, हृदय में पीड़ा का अनुभव हुआ—

"क्या मैं किसी प्रकार आपकी सहायता कर सकता हूँ" अस्वीकृति के रूप में सिर हिल गया। नलिन और समीप आ गया।

"सम्भवतः आप अस्वस्थ हैं। मेरे साथ चलिए" आग्रह के स्वर में नलिन ने कहा।

"कहाँ?" एक धीमी सी अस्पष्ट आवाज में प्रश्न हुआ। "मेरे घर" नलिन ने उत्तर दिया।

कुछ क्षण रिक्त नेत्रों से नलिन को देखकर वह उठ खड़ी हुई और नलिन के पीछे हो ली मानों उसको कुछ समझने या जानने की इच्छा न हो। नलिन उधेड़बुन में चला जा रहा था—

"इसका भविष्य क्या है?"

× × ×

घर पर सन्नाटा पड़ा था। सब प्राणी निद्रा देवी की गोद में विश्राम कर रहे थे। नलिन जीने से होता हुआ कोठे पर चला गया। अपने कमरे के बगलवाले कमरे में स्त्री के सोने की व्यवस्था कर स्वयं अपने कमरे में लेट गया परन्तु आँखों में नींद न थी। सिर भारी हो रहा था। नाना प्रकार की चिन्ताएं उसको घेर रही थीं। सवेरे सबसे इसका क्या परिचय देगा, वह स्वयं भी तो नहीं जानता! बाबूजी तो सुनते ही आग-बबूला हो जायेंगे! वह अम्मा से क्या कहेगा? नौकरों-चाकरों में खिशखिश होने लगेगी। यार लोग फब्तियां कसेंगे, सम्बन्धियों में खलबली मचेगी। परन्तु उसकी वह दृष्टि 'उफ' क्या इसको उसी निस्सहाय अवस्था में छोड़ा जा सकता था? सोचते-सोचते उसे झपकी आ गई!

सड़क पर फेरीवाले की आवाज से नलिन की आँख खुली। रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। रात्रि की समस्त घटना उसके मस्तिष्क में एक चलचित्र की भाँति घूम गई। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। सामने दृष्टि दौड़ गई कमरे का द्वार खुला हुआ था—कम्बल में लिपटा हुआ गौर वर्ण मुख, मुंदे नेत्र, रूखे-उलझे केश! नलिन कुछ चौंक-सा पड़ा जिसको असहाय समझकर कल उसने आश्रय दिया था वह सोलह-सत्रह वर्ष की एक बालिका उद्दण्ड वायु से तोड़े हुए एक मलान पुष्प के समान कोच पर पड़ी थी। नलिन ने सिहर कर आँखे बंद करली। कुछ देर तक वह इसी अवस्था में पड़ा रहा घर में सम्भ्रमपूर्ण सन्नाटा छाया हुआ था मानों आँधी उठने से पहिले संपूर्ण प्रकृति निस्तब्ध हो! कुछ देर बाद नलिन ने देखा कि माँ पास के कमरे में आई है। मुख पर क्षोभ के भाव भी स्पष्ट ही थे। अस्पष्ट वार्तालाप चलने लगी।

नलिन कान उठाकर सुनने का प्रयत्न करने लगा। कुछ देर में माँ का स्पष्ट प्रश्न सुनाई पड़ा—

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"कल तक था, आज कहीं नहीं !" कंपित सी आवाज में उत्तर मिला।

माँ सिहर उठीं। नलिन ने संतोष की सांस ली जिस प्रकार एक शिक्षक अपने कृपा-पात्र विद्यार्थी को मौखिक परीक्षा में सफल होते देखता है………

कुछ क्षण उपरान्त नलिन ने देखा कि माँ के नेत्रों से बड़ी २ आंसू की बून्दें ढुलक रही हैं। उनका हाथ उसके सिर पर है और उसका सिर माँ के वक्षस्थल पर ! माँ के प्रति आज के समान श्रद्धा के भाव नलिन के हृदय में शायद ही कभी उमड़े हों ? तीव्र इच्छा हुई कि जाकर माँ के चरणों में मस्तक टेक दे परन्तु वह उसी प्रकार चुपचाप पड़ा रहा।

× × ×

"क्यों रे नलिन, यह तूने कैसा बचपना किया ? मां ने नलिन की थाली के पास पंखा झलते हुए स्नेहपूर्ण शब्दों में पूछा।

"क्या मां ?" सिर झुकाकर नलिन ने प्रश्न किया।

"बिना घरबार की लड़की को घर ले आया।"

"तो इसमें उसका क्या दोष ?"

"दोष-वोष तो मैं कुछ नहीं जानती लेकिन सगे-सम्बन्धी क्या कहेंगे ? चार भले आदमियों को क्या मुँह दिखायेगा ? और फिर उसका होगा ही क्या ?

नलिन की छोटी बहिन प्रेमा कहीं से खेलती हुई आकर मां के गले में झूल गई।

'मां उस दिन मैंने तुमसे इतना कहा कि तुम कामदानीवाला काला दुपट्टा खरीद दो लेकिन तुमने नहीं खरीद कर दिया। अब मैं उस मखमल वाली सलवार पर क्या ओढ़ूँगी ? आखिर ब्याह में मैं क्या पहनूंगी ?"

"ओ किस का ब्याह ! ब्याह किस का ? मां हक्की बक्की रह गई।

"अरी जल्दी क्या है ? खरीद दूंगी, तुझे तो हर बात में रोना……"

"हूं जल्दी क्या है ?" और मेरे पास अच्छा दुपट्टा रहा कहां ? सभी कट गये हैं।

जीवन प्रकाश

—श्री गिरिजाशंकर—

सरिता ने उपकूलों के हृदय को विदीर्ण कर दिया; नभ के वक्षस्थल को विद्युत ने चीर दिया। स्वार्थ ने मानवता के प्रत्यय को खो दिया। ज्योत्सना का वैभव मेदनी के आंचल में बिखर गया। उदधि के आँसुओं को गगन ने पी लिया मगर धरा की निर्धनता पर वह भी रो दिया। जठराग्नि से दग्ध मानव-पास पड़ा रहा किन्तु उसका साथी विलासमयी क्रीड़ा में रत क्षीर-दुग्ध से श्वान को बहलाता रहा। जीवन की क्षणभंगुरता में भी सुमनों के अरुणिम अधरों पर मृदु-हास थिरकता रहा; विद्युत की क्षणिक स्मित मचलती रही; मनुष्य-मनुष्य के रक्त से अपनी तृषा शान्त करता रहा। हृदय पर वेदना और पाषाणत्व ने अधिकार किया; जीवन पर मृत्यु ने अधिकार किया, अमरत्व ने अधिकार किया; मनुष्यत्व पर दानवता ने अधिकार किया किंतु भावनायें अनधिकृत रहीं। अतः मनुष्यता के प्रकाश में मनुष्य को पहचानें। जीवन के प्रकाश में जीवन को जानें। श्रद्धा के प्रकाश में भावों को पहचानें। हृदय को हृदय से पहचानें। तभी मानव मानव है, अन्यथा दानव है—हेय है।

"हूं ! जैसे मैं कुछ जानती थोड़े ही हूं ?" गर्व से प्रेमा ने गर्दन टेढ़ीकर संकेत से नलिन को देखा और फिर संकेत से ऊपर की ओर देखा……

नलिन को जैसे किसी ने गर्म लोहे से छू दिया हो।

मां का मुंह सफेद पड़ गया।

प्रेमा उमंग में बकती ही गई—मां ! शान्ता की मां कह रही थीं कि बड़ी २ तैयारियाँ हो रही हैं। कल जब तुम बाजार गई थीं न तब तुम जेवर लाई थी ? मां तुमने दिखाया नहीं—अच्छी मां दिखा दो न…

मां की गंभीर मुद्रा देखकर प्रेमा और अधिक न कह, गला छोड़ भाग गई। नलिन का ग्रास गले में ही रह गया। किसी प्रकार जल से उतारकर चटपट उठ गया। मां चित्र लिखित सी रह गई।

× × ×

बाबू बृजमोहनलाल नगर के पुराने रईसों में से थे। बड़ी आलीशान कोठी तथा दो मोटरें, लड़का नलिन विलायत से डाक्टरी पास कर लौट आया है और पास ही उसका क्लीनिक है। सवेरे से सन्ध्या तक मरीजों की भीड़ रहती है क्योंकि गरीब आदमियों से उसका व्यवहार बहुत ही अच्छा रहता है। नीलिमा को इसी क्लीनिक में कार्य करने के लिए रख दिया था। नीलिमा ने जिस दिन से क्लीनिक में पदार्पण किया, उसमें एक नयी जान सी आ गई थी। प्रति घड़ी वह व्यस्त दिखाई पड़ती थी। नलिन के आने से पहिले ही वह उसके कमरे की सब चीजें ठीक कर जाती और उसे साफ सुथरा कर देती। इसके पश्चात् वह दिन भर मरीजों की सेवा में ही रहती। मरीजों के लिए 'नीलू बहिन' औषधि का कार्य करती क्योंकि उसको देखकर ही उनकी आधी तकलीफ दूर हो जाती थी।

नीलिमा भी नलिन और उसके घरवालों का स्नेह पाकर कुछ अंशों में सुखी हो गई थी। परन्तु क्लीनिक के ईर्षालु कर्मचारी नाना प्रकार की कानाफूसी करते तथा अफवाहें उड़ाते थे। कभी २ नीलिमा को यह अपमान असह्य हो जाता परन्तु वह फिर नलिन के स्नेह को पाकर सब भूल जाती थी। एक दिन अवकाश के क्षणों में जब वह किसी मरीज के बच्चे के साथ खेल रही थी कुछ कर्मचारियों की वार्तालाप उसके कानों को तीर सा वेधने लगी—

"गेहूं का भाव बढ़ गया है। अब रु० का दो सेर मिलने लगा है।" दूसरे सज्जन बोल पड़े—"अरे भाई! यह कल्युग है घोर कलयुग! धर्म की हानि से ही तो अकाल पड़ता है।"

"ठीक कहते हो भाई राधाचरण! धरती पाप के भार से बोझिल हो रसातल को जा रही है। धर्म की तो कहीं ठौर ही नहीं है। गंगा कसम खाकर कहता हूं भाई राधेचरण! अगर गृहस्थी का भार न होता तो अभी स्तीफा देकर चला जाता। यहां का तो जल ग्रहण करना भी पाप है।"

"हां भाई, कहते तो ठीक हो, यह तो गुड़ भरी हंसिया है न निगलते बनती है न छोड़ते और इस लौंडिया को तो देखो! सत्तर चूहे खाकर बिल्ली हज को चली है। चली है हम पर रोब जमाने! साहब की शान में अकड़ी घूमती है···

कार्य की घंटी बज उठी। सब अपने २ कार्य पर चले गये। नीलिमा पर घड़ों पानी पड़ गया। सच ही तो है उसे क्या अधिकार है यहां रहने का? अपनी पाप की छाया से वह कलंकित कर रही है नलिन को भी। उसको तो यही उचित है कि वह शीघ्र ही इस स्थान को छोड़ दे। नलिन का ध्यान आते ही उसे एक अव्यक्त वेदना-सी हुई वह शिथिल-सी बैठी रह गई।

× × ×

नीलिमा अनमनस्क भाव से खाट पर पड़ी थी। आज अस्वस्थ होने के कारण तड़के ही क्लीनिक न जा सकी थी। सहसा पास के कमरे से आनेवाली वार्तालाप की ओर उसके कान सतर्क हुए। कलक्टर इन्द्रभाल सिंह के शब्द सुनाई दे रहे थे। इनके विषय में वह प्रेमा से काफी सुन चुकी थी कि इनकी पुत्री इन्दिरा से नलिन का ब्याह तय हो चुका है। इस वर्ष वह बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण हो जायेगी और अगली सर्दी में ब्याह होगा।

× × ×

"लड़का तो आपका बड़ा होनहार था भाई साहब! लेकिन मेरी तो सारी आशाओं पर पानी ही पड़ गया। मैं तो सोचता था इन्दिरा को आप लोगों के संरक्षण में छोड़ चैन की सांस लूं लेकिन विधाता को मंजूर न था। फिर आप समझते ही हैं इन्दिरा भी पढ़ी-लिखी समझदार है उससे भी कोई बात छिपी नहीं रह सकती।"

"भाई इन्द्रभालसिंह! व्यथित स्वर से बाबू बृजमोहनलाल बोले—"यह आपकी गलतफहमी है। मेरा नलिन गंगाजल सा निष्कलंक है। उसके विषय में ऐसी बात सोचना भी पाप है। आप कुछ दुष्टों की बात में पड़कर बहक रहे हैं।"

"नहीं नहीं बृजमोहनलालजी! समाज की बातों की अवहेलना कैसे की जा सकती है? सत्य उसमें कितना है यह भगवान ही जाने। लड़की का मामला ठहरा जान-बूझकर मक्खी नहीं निगली जाती।"

नीलिमा के पैर तले से धरती खिसकती सी प्रतीत होने लगी। सारे शरीर में सहस्र बिच्छुओं के दंशन की पीड़ा का अनुभव होने लगा। "तो बात यहां तक बढ़ गई है? भगवान! तुमने मेरा जन्म इसीलिए दिया था कि जिस पर छाया पड़े उसीका अनिष्ट हो···। सहसा आंगन से नलिन की उत्फुल्ल आवाज आई—

"अरी सवेरे-सवेरे सो क्यों रही है नीलू? आज मिठाई-विठाई नहीं खिलायेगी? आज रक्षा-बंधन है न! अरी प्रेमा ले आ तो राखी! अच्छा सुन नीलू! कल पास वाली इमारत में उद्घाटन होगा जिसकी अधिष्ठात्री होंगी—"श्रीमती नीलिमा देवी।" इतना कहते २ नलिन ने नीलू का कान पकड़कर हिला दिया। नीलू हतबुद्धि सी खड़ी सोचती रह गई" यह मनुष्य है या देवता? और नेत्रों से अविरल अश्रुझड़ी प्रवाहित हो चली।

× × ×

पांच वर्ष पश्चात्—

पंजाब भूमि नर रक्त से होली खेल रही थी। मानव सभ्यता तथा मानवता को तिलाञ्जलि देकर दानव बन बैठा था। सारे प्रान्त में हाहाकार मचा हुआ था। मारो काटो रक्षा करो की आवाजें समस्त दिशाओं में गूंज रहीं थीं "अल्ला हो अकबर" तथा "जय बजरंगी" के नारे लग रहे थे। आर्तनाद तथा चीत्कारों से आकाश भी कांप उठता था। समृद्धिपूर्ण लाहौर नगरी उजड़ गई थी। "गृहहीन का गृह" पूरी संलग्नता से कार्य में संलग्न था। स्वयंसेवक तथा स्वयंसेविकाएं मोटर और स्ट्रेचर लिए आहत और पीड़ितों को ला-लाकर चारों ओर से डाल रहे थे। "रानी माँ, रानी माँ" की पुकार आ रही थी। नीलिमा और नलिन उनकी सेवा में व्यस्त थे अन्य कार्यकर्ता भी दौड़ रहे थे कि अचानक सामने कई स्वयंसेवकों के साथ खून से लथपथ एक मनुष्य आकर नीलिमा के पैरों पर कटे वृक्ष सा गिर पड़ा। "रक्षा करो रानी मां" उस व्यक्ति के चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही नीलिमा का माथा चकरा गया। पांच वर्ष पूर्व की घटना सम्मुख खिंच गई और वह वहीं मूर्छित हो गिर पड़ी।

अणुव्रत आन्दोलन की पृष्ठ भूमि

[श्री देशमित्र]

आचार्य विनोबा ने एक बार कहा था कि "सत्य और अहिंसा पर एक ऐसा समाज बनाने की कोशिश करना जिसमें जाति-पांति न हो, जिसमें किसी को शोषण करने का मौका न मिले, जिसमें व्यक्ति व्यक्ति को सर्वाङ्गीण विकास करने का पूरा अवसर मिले।" आज ठीक इसी प्रकार के विचार आचार्य तुलसी ने 'अणुव्रत आन्दोलन' के उद्देश्य के बारे में व्यक्त किये। "अहिंसा के प्रचार द्वारा विश्व-मैत्री और विश्व-शान्ति का प्रचार करना।" अणुव्रती के विचार-प्रवाह में भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों का अनूठा सामञ्जस्य मिलेगा। एक विशेषता मिलेगी जिसका अन्यों में पाना दुर्लभ है, वह यह कि अणुव्रत व्यवस्था की मूल भित्ति निषेधात्मकता पर आधारित है। वस्तुतः यह कहा भी गया है कि निषेध ही अधिक विशुद्ध रहा करता है।

भारत का इतिहास साक्षी है कि भारत सदैव से धर्म प्रधान देश रहा है। धर्म की पृष्ठभूमि पर ही भारतीय आदर्शों का चित्रण हुआ है। धर्म वह है जो धारण किया जाय। आज का युग भौतिकवादी युग है। विज्ञान के इस युग में भारतीय दार्शनिकों ने कभी प्रत्यक्ष को पूर्ण रूपेण स्वीकार नहीं किया। उनकी व्यवस्था में जीवन का मुख्य लक्ष्य निःश्रेयस् प्राप्ति रहा। परम्परा से चली आई हुई अक्षुण्य भारतीय संस्कृति सदैव ही अहिंसात्मक रूप में रही। जिस प्रकार बिन्दु-बिन्दु से घड़ा भर जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति के मिलने से समाज के एक मंगल सूत्र में बंध कर व्यष्टि से समष्टि का रूप धारण करता है। जन-जनकी आत्मा के रूप में अणुव्रत समाज से सम्बन्धित है। वह मानव का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता है कि वह अपने ध्येय में प्रवृत होता हुआ आशंकित दोषों की ओर से सावधान रहे और उनसे बचने का प्रयत्न करता रहे। इस सबका सरल रूपेण प्रयत्न अणुव्रतों के पालन से हो सकता है। अणुव्रतों का अर्थ है ऐसे व्रत जो जीवन के प्रतिदिन के व्यवहार में अहिंसा, शुद्धता, और सात्विकता की भावना का संचार करें तथा जीवन के नैतिक स्तर को ऊँचा करें। आज यह व्रत कुनीन की तरह कड़वे परन्तु बाद में निश्चय ही फलदायक हैं। इस विचारधारा के प्रणेता एवं प्रवर्त्तक भारतीय संस्कृति के मर्मज्ञ आचार्य श्री तुलसी ने आज के इस भौतिकवादी युग में मानव-कल्याण का जो बीड़ा उठाया है वह निश्चय ही महान् है। मानवीय इतिहास आध्यात्मिकता और भौतिकता का संकलन है। आध्यात्मिकता की छत्रछाया में मानव ने नैतिकता को ग्रहण किया और उसी नैतिक विकास का सक्रिय संचालन 'अणुव्रत आन्दोलन' कर रहा है। जनता के बिखरे हुए नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास ही अविलम्ब प्रयत्न है। आज हृदय परिष्कार की प्राथमिक आवश्यकता है, उस आवश्यकता की पूर्ति के लिये यह एक प्रबल प्रक्रिया है।

आज यदि मानव संसार के वास्तविक रूप की झाँकी देखनी है और भविष्य में उसके मुखरित रूप का आस्वादन लेना है तो चरित्र निर्माण के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं। आज यह निर्विवाद सत्य है और सभी विचारकों ने एक आवाज ही इस इकाई को पहचाना है कि व्यक्ति शुद्ध बने और अपने चरित्र को आदर्श बनाये। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता, चरित्र में सुधार करना है। आज हमारे सामने समस्याओं का ढेर लगा हुआ है, मानव-जीवन की नैतिक शृङ्खला उलझती जारही है। ऐसे समय जन-जन की भावना को आत्मरूप में परिवर्तन करने की जरूरत है। उनमें नैतिक आदर्शों का एकत्रीकरण हो, आज ऐसी आवश्यकता दीख रही है, क्योंकि व्यक्ति ही समष्टि का निर्माणकर्त्ता है। मानवीय कुप्रथाओं के विरुद्ध नैतिक संघर्ष ही इसका मूल आधार है। आज आत्म-विश्वास, श्रद्धा एवम् दृढ़ता के अभाव में मानव जर्जरित होता चला जा रहा है। भगवान् महावीर के वचनों में कितने सारगर्भित भाव निहित हैं कि आत्मा से आत्मा का सम्प्रेक्षण करो। इसी उद्देश्य को ले, नैतिक विश्वास पर व्यक्ति विकास 'अणुव्रत आन्दोलन" का प्रमुख आधार है।

आधुनिक अर्थवादी युग में हमारा यह पहला और अन्तिम लक्ष्य बन गया है "खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ"—जीवन की सुख सुविधाओं—भोगविलासी सामग्री का चरम विकास करना। आज से एक बार पहले भी इसी विचार प्रवाह ने सैद्धान्तिक रूप धारण किया था और चार्वाक्-दर्शन के नाम से हमारे सामने आया। उस समय भी हमने इसकी वास्तविकता को पहचाना। आज फिर अनैतिकता, भ्रष्टाचार आदि ने मानव पर आवरण डाल रखा है। परन्तु वह आवरण अब ज़्यादा देर तक नहीं पड़ा रह सकता। संसार परिवर्तन शील है। परिवर्तनशील संसार में परिवर्तन अवश्य होता है। युग प्रवाह है। संघर्षवेला

है। युग संघर्ष प्रिय है। संघर्ष-जीवन का मंत्र बन चुका है। यह संघर्ष भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का है। आज मानव की दशा शोचनीय है।

भौतिकवाद के चक्र में फंसा मानव अपनी वास्तविकता को भूले कराह उठा—"मैं देख रहा हूँ परिवर्तन, जाने परिवर्तन क्या होगा। परिवर्तन आजके युगका नारा है। आज के इस भौतिकवादी युग में विश्व-व्यवस्था के मूल आधार 'सत्य' को हम भूल रहे हैं। उसी दिव्य प्रकाश की ओर अणुव्रत आन्दोलन का कदम है।

आज की भ्रान्त धारणाओं को निर्मूल सिद्ध करने के लिए महात्मा गांधी का नाम भर ले देना पर्याप्त होगा। उन्होंने सत्य का प्रण और अहिंसा का साधन लेकर सामाजिक और राष्ट्रीय प्रश्नों को हल किया है। हमने अनुभव किया कि सत्य का आग्रह और अहिंसा की साधना व्यवहार के सूत्र हैं। वे शास्त्रीय होते हुए भी मानवीय हैं। यदि आज उन्हीं आदर्शों को सिद्धान्तों में बाँध व व्यवहार में लाकर साहित्य सृजना करें तो जीवन, समाज, राष्ट्र एवम् विश्व को दुगुना बल मिलेगा। इस युग में एक कार्य तो हुआ कि कुछ हृदयों में श्रद्धा के भाव जागृत हुए और उन भावों ने संकल्पनात्मक शक्ति भी दी। आज अकर्मण्यता फिर से कर्मण्यता का रूप ले रही है। अब धीरे २ आत्म-श्रद्धा की हीनता भी आचार्य तुलसी के नेतृत्व में दूर होगी ऐसी आशा होने लगी है। अधिकांश में भयंकर थपेड़ों से क्षत-विक्षत कराहते मानव को विश्व-जननि संगठन, आन्दोलन और योजना की आवश्यकता है।

अणुव्रत आंदोलन पाशविक प्रवृत्तियों के लिये एक सुदृढ़ चुनौती है। अनैनिकता, अनाचार और भ्रष्टाचारी गहन अमा को दूर करने-वाला दिव्य प्रकाश है। आज विश्व का कायाकल्प सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के व्रतों के पालन पर निश्चयात्मक रूप से हो सकता है, इसी मूलभूत आधार को लेकर अणुव्रत आंदोलन कार्य क्षेत्र में उतरा है। व्यक्ति ही समष्टि है। घोर अधार्मिकता, हिंसा, दुराचार, अशान्ति, शोषण सबके लिये यह एक अमोघ मन्त्र है। नैतिक विश्वास के सहारे जन २ के हृदय को झकझोर कर उसके उत्पीड़न में मानवता का सन्देश पहुँचाना ही अणुव्रत आन्दोलन की प्रमुख पृष्ठभूमि है। अणुव्रत आन्दोलन का मुख्य ध्येय मानव-मानव की बुराइयों को दूर करना है। तभी हम जीवन की प्रखर प्रतिभा, साधना और ज्ञान में वृद्धि कर सकेंगे। यह क्रान्तिकारी दृष्टिकोण सर्वोत्मुखी ज्ञान की प्रेरणा जागृत करता हुआ एक आत्मा, एक हृदय, एक भावना, एक आदर्श, और एक संगठन के रूप में है।

जीवन की स्थितियाँ ही जीवन को प्रेरणा देती हैं। मनुष्य की परिस्थितियाँ ही इतिहास निर्माण और युग परिवर्तन के लिये मनुष्य को प्रेरित करती हैं। मार्क्स ने कहा है—'अपना इतिहास स्वयं मनुष्य ही बनाता है। मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। वह चेतन अचेतन का सम्पूर्ण सामञ्जस्य है। जड़से उसका पिंड निर्मित होता है और मनस्तत्व से उसके मस्तिष्क की प्रक्रिया होती है। मनुष्य के भीतर एक कोई और मनुष्य है, जो अभावों में भी सन्तुष्ट और स्मृतियों के बीच भी भूख से व्याकुल रहता है। उसका आहार दाल रोटी नहीं बल्कि भाव और विचारों का सौन्दर्य है। जीवन की परिधि में जो भी उपकरण प्रवेश करते हैं, उनका एक उपयोग तो स्थूल मनुष्य करता है और दूसरा वह सूक्ष्म मनुष्य जो स्थूल के भीतर निहित है। हमारी संस्कृति देश के साधारण जनों में हजारों वर्षों से चली आ रही है। वह संस्कृति जिसकी आधारशिला है सेवा, त्याग और स्नेह की प्रवृत्ति और जिसने यहां के

चलाचल !

[मुनिश्री श्रीचन्दजी]

जीवन की अन्तिम साधना तक मानस सागर की उठती हुई उल्लास-उर्मियों के मर्मस्पर्शन में भय विह्वल मूर्च्छन को विलीन करतें और जीवन के स्मित हासमें मधुर विधासकी पराग-पूरित कोमल कलियों को पिरोते-पिरोते जबतक अपना गौरव-गुम्बज न दीख पड़े अपनी नव स्फुरित त्वरित गति को शिथिल न होने दे।

सैलानी ! परिस्थितियों की विह्वलता को मत देख ! प्रकृति की प्रतिकूलता तेरे अनुकूल बनेगी, पथ के काँटे तेरे फूल बनेंगे, विक्षिप्त मानवता का तुमलनाद तेरी हृदय सितार के तारों पर झनझनाकर मधुर संगीत बन जायेगा। तू परिस्थितियों का गुलाम नहीं, परिस्थितियाँ तेरी सहचरी होंगी, रौरव स्वर्ग होगा, संसार की विष घूंट को अपने सुधा-स्नात अधरों से छूकर अमृत कर दे। मानव की दुरित दलित भावना का नूतन परिष्कार करना चलाचल—

तेरे संगमरमर से करुणा स्निग्ध मानसको भले ही दुनिया पत्थर कहे—किन्तु एक दिन अगाढ़ श्रद्धा उसी में दैवत्व का आभास पाकर पूजेगी ! अपनी शतशत श्रद्धाञ्जलियाँ चढ़ाकर तेरी चरण-धूलि को पाकर फूल उठेगी !! पैरों की तीखी गम्भीर आहट से पथ के सोये मुर्दों को जगाता चल, चलाचल,-साथी चलाचल !

सामाजिक संगठन को, कौटुम्बिक जीवन को इननी शताब्दियों तक जीवित और सबल बना रखा है। आज का समाज भावना का प्रतीक भर रह गया है। उसके शब्दों में कला का सौन्दर्य है, प्रेरणा का सजीव स्पर्श नहीं। इस दिशा में भी अणुव्रत आन्दोलन अग्रसर है।

विश्व में शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सके, परस्पर सौहार्द की सद्भावना को जगा पृथ्वी पर स्वर्ग लाया जा सके, और ऐसे नवयुग का दर्शन हो सके जहाँ शोषण न हो, उत्पीड़न न हो, वंचना न हो, इस दिशा में आचार्य तुलसी की विश्व को अणुव्रत के रूप में एक अनुपम देन है।

इस प्रसंग में अब और अधिक कुछ न कह कर एक बात और कहकर समाप्त करता हूँ। मानव रुचियों की तृप्ति अनिवार्य है और उसमें स्वाभाविक मांगो की तृप्ति भी अनिवार्य है। उन स्वाभाविक मांगो में एक मांग कल्पना शक्ति की भी है। कल्पना मानव के ऐसे जूते हैं जिन्हें पहनकर वह वास्तविकता के कठोर मार्ग पर चलने के योग्य होता है। कल्पना मानव के ऐसे गर्म वस्त्र हैं, जिन्हें पहनकर वह वास्तविकता के तीव्र शीत को सहनकर सकता है। कल्पना उसका ऐसा गुदगुदा विस्तर है जिस पर वह जीवन की कठोर यात्रा से थक विश्राम करता है। इसके बिना मानव का जीवन असहनीय हो जाता है। यह उसके अभावों की पूर्ति का साधन है। विश्व की अन्तिम सत्यता के सम्बन्ध में मनुष्य के सिद्धांत उसकी कल्पना शक्ति के प्रकाश हैं। यह प्रकाश सत्य ज्ञान पर आधारित है। कल्पनाशील से ही मनुष्य आविष्कार, कला और साहित्य रचना के योग्य हुआ है। मानव की ऐसी कल्पना ललित कलाओं के रूप में प्रकट होती है।

जीवन में कठिनाइयों पर विजय पाने के अयोग्य व्यक्ति झूठ और बेईमानी का अभ्यासी बन जाता है। पागलपन कठिनाइयों का सामना न कर सकने का ही परिणाम है। आज मानव भौतिकवादी प्रयोगों के आधार-कठिनाईयों में जा घिरा है। मानव को कठिनाईयों का साहसपूर्वक सामना करने की क्षमता सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के पालित मार्ग की ओर संकेत करता हुआ अणुव्रत आन्दोलन आज एक निर्देशक के रूप में बढ़ रहा है।

卐 हमारे नैतिक व चारित्रिक पतन की जड़— 卐

शराब

[डा० श्री राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी पी० एच० डी, एम० ए०]

यदि आप अपने समाज की वास्तविक स्थिति जानने के इच्छुक हैं, तो इस आशय का एक विज्ञापन प्रकाशित करा दीजिए कि "मैं प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक समस्या का समाधान करता हूं। प्रत्येक व्यक्ति को मेरे सम्मुख अपनी सबसे अधिक महत्वपूर्ण कठिनाई प्रस्तुत करने के लिए आमन्त्रित किया जाता है।" आप विश्वास कीजिये आपके सम्मुख अनेक प्रकार की समस्याएँ उपस्थित न की जाएँगी। समस्या प्रस्तुत करनेवालों में महिलाओं की संख्या अधिक होगी। उनकी समस्याओं के स्वरूप विभिन्न होंगे, परन्तु उनका मूलाधार एक ही होगा। वे अपने पति की नशेबाजी से परेशान हैं, उनकी शिकायतों के नमूने इस प्रकार होंगे—मेरे पति आधी रात के बाद ही घर में घुसते हैं, वे प्रायः नशे में चूर रहते हैं तथा उनके होश-हवाश ठिकाने नहीं रहते हैं, मेरे पति नशे में चूर होने के कारण प्रायः बच्चों के खिलौने तोड़ डालते हैं, इतना ही नहीं वे कभी-कभी बच्चों को और अधिक पी लेने की दशा में मुझे भी मार बैठते हैं। मेरे पतिदेव अपनी सारी कमाई दारूवाले के यहां फेंक आते हैं, खाने के नाम खाने को दौड़ते हैं। मेरे दो-चार जेवरों के कौड़े भी कर चुके हैं···आदि।

यदि सरकार सदाचार सम्बन्धी व्यवस्था करने लगे, शराब पीने को अपराध घोषित कर दे और सदाचार के नियमों का उल्लंघन करने वालों को गिरफ्तार किया जाने लगे तो आप विश्वास कीजिए, गिरफ्तार होनेवाले अपराधियों में ८५ प्रतिशत संख्या शराबियों की होगी। इसका एक कारण है, आजकल शराब पीनेवालों की संख्या अत्यधिक बढ़ गई है, कोई शौकिया पीते हैं, कोई गम गलत करने के लिए उसका इस्तेमाल करते हैं। कोई दवा के रूप में अपनी तन्दुरुस्ती ठीक रखने के लिए उसकी खुराक चढ़ाते हैं, कोई दुनियां की नजरों में फॉर्वर्ड अथवा नई रोशनीवाले बनने के लिए उसकी चुसकी लगाते रहते हैं। ···इत्यादि।

शराब के बढ़ते हुए रिवाज के बारे में आप केवल इसी एक बात से अन्दाज लगा सकते हैं कि आजकल गिरजाघर जानेवाले बहुत से लोग तथा अनेक पादरी भी, शराब पीते हैं, विवाह आदि के अवसरों पर शराब के दौर

खुलकर चलते हैं, अफसर लोगों की नजरों में शराब के इस्तैमाल में कोई बुराई नहीं है। गिर्जाघर तो एक ओर रहा हिन्दुओं के अनेक देवी-देवताओं के मन्दिरों में भी शराब का प्रयोग वैध समझा जाता है। लोग न मालूम क्यों यह भूल जाते हैं कि यह मुमकिन नहीं कि शराब पीनेवाले में शरारत न आए क्योंकि शराब के शब्द के बनाने में 'शर' शब्दांश का विशेष योग है।

नैतिक और धार्मिक, सभी दृष्टियों से शराब समाज के लिए बहुत बड़ी समस्या बन गई है। इसके प्रयोग के परिणामस्वरूप अनेक घर बर्बाद हो जाते, अनेक स्त्रियों का जीवन अभिशाप बन जाना, अगणित बालक एक प्रकार से अनाथ हो जाते तथा समाज का सामान्य-जीवन अनेक प्रकार से दूषित हो जाता है। इतना होने पर भी कुछ लोग मद्यपान का समर्थन करते तथा मद्यनिषेध-नशाबन्दी का विरोध करते हैं, इसके साथ ही साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि केवल कानून के द्वारा नशाबन्दी करने की बात सोचना इस समस्या का समाधान नहीं है। हमें लोगों से यह नहीं कहना है कि वे शराब की दूकानों पर हमला बोल दें अथवा शराब पीनेवालों के प्रति द्वेषपूर्ण व्यवहार करने लगें। हमें तो शराब के दोषों को स्वयं समझकर तथा दूसरों को समझाकर उसके बहिष्कार के लिए समाज को तैयार करना है। हमारा उद्देश्य तो यह हो कि सामान्य-जनता शराब की बुराइयों को समझने लगे, समाज के लिए हानिकर समझ उसे समाज से निकाल फेंकना अपना कर्त्तव्य समझने लगे।

इस जनतन्त्रात्मक युग में सम्भवतः कुछ ऐसे भी व्यक्ति होंगे, जो यह कहें कि शराब पीना हमारा व्यक्तिगत कार्य है और प्रत्येक व्यक्तिगत कार्य को करने की हमें पूरी छूट होनी चाहिए। उन लोगों के लिए मेरा उत्तर है कि आज के युग में व्यक्तिगत कार्य जैसी कोई वस्तु नहीं रह गई है। इस मशीन के युग में विश्व एक देश तथा समाज एक व्यक्ति बन गया है। अर्थात् व्यक्ति और समाज दो पृथक सत्ताएँ नहीं रह गई हैं। हम जो भी कार्य करते हैं, उसका समाज पर सीधा प्रभाव पड़ता है, मान लीजिये एक एँजिन अथवा मोटर का ड्राइवर शराब के नशे में चूर होकर अपने कामपर आता है, अथवा किसी बड़ी मील को चलाने वाला व्यक्ति शराब पीकर मशीन खोलता है, तो आप ही बताइए कि उसकी व्यक्तिगत नशेबाजी कितनी भयावह सामाजिक क्षति का कारण बन सकती है। दुर्घटना का कारण बनने पर क्या वह इस तर्क द्वारा हट सकेगा कि "उसने शराब के नशेमें मोटर लड़ादी अथवा मशीन तोड़ दी शराब पीना उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का एक अंग है। अतः किसी को इससे कोई मतलब?', हमारी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तभी तक है, जब तक हम समाज से दूर रहते हैं, शराब पीकर यदि हम चिल्लाने लगते हैं तो क्या हम अपने पड़ौसियों की उस स्वतन्त्रता पर चोट नहीं करते, जिसके अन्तर्गत उन्हें अपना समय पूरे चैन के साथ व्यतीत करने का अधिकार है। दूसरों की स्वतन्त्रता का मार्ग रोकनेवाली स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रता न रहकर उच्छृङ्खलता बन जाती है। शराब पीकर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का दावा करना वैसा ही होगा, जैसा कि चोरी के अपराध में पकड़े जानेपर यह तर्क उपस्थित करना कि विधान के अन्तर्गत जब मुझे अपनी इच्छा के अनुसार प्रत्येक कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है, तब फिर चोरी के कृत्य में आप लोगों का बाधक बनना अवैध ही कहा जाना चाहिए। अस्तु।

पुरुष तो शराब पीते ही हैं और उनके इस दुर्गुण के कारण पारिवारिक जीवन अत्यन्त विषादपूर्ण बन जाता है। कभी-कभी स्त्रियाँ भी शराब पीते देखी गई हैं। ऐसी हालत में तो 'कड़वी और नीम चढ़ी' वाली कहावत चरितार्थ होती है। शराब की पीड़ा दुर्भाग्य, भयावह, अपराध सभी कुछ है। इसके प्रयोग के फल-स्वरूप आत्म-सम्मान की क्षति होती है, आचरण का स्तर गिर जाता और अन्त में नैतिकता एवं धर्माचरण के प्रति उदासीनता, उदासीनता ही क्यों निश्चित विरोध भावना उत्पन्न हो जाती है।

शराबियों के सम्पर्क में आकर मैंने दो बातें विशेष रूप से देखी, शराबियों का पैसा पानी की तरह बहता यानी यों ही बर्बाद हो जाता है, उनका जीवन अत्यन्त दुःखी एवं निराशापूर्ण बन जाता है। शराब पीनेवालों के चेहरे असमय में ही मुरझाने लगते हैं तथा वे शायद ही कभी प्रसन्न वदन दिखाई देते हैं।

आप तलाक-सम्बन्धी मुकदमों का अध्ययन कीजिये, इसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि "९० प्रतिशत तलाकों की जड़ शराब है।"

—आदर्श मनुष्य—

आदर्श मनुष्य वह है जो अक्षुण्ण शान्ति और निर्जनता में रहता हुआ भी अविराम गति से कर्मण्य रहता है तथा जो घोर कर्मण्यता का केन्द्र होते हुए भी वनकी सी शान्ति और निर्जनता पाता है।

—स्वामी विवेकानन्द

• समदर्शिता

ऊपर से चाहे हम साम्यवाद या समता का कितना ही ढिंढोरा क्यों न पीटें ? दूसरों को दिखाने के लिये कितना ही ढोंग क्यों न रचें, पर जबतक हमारे हृदय में समभाव के संस्कार जागृत नहीं होते सब व्यर्थ हैं। इसके लिये कौन-कौन से गुण अपेक्षित हैं यह 'चरित्र-निर्माण' में प्रकाशित श्रीकृष्ण उत्साही के विचारों से जानें—

"समदर्शिता प्राप्त करने के लिये हमें आवश्यकता है विनीत भाव धारण करने की। जब मनुष्य अपने व्यक्तित्व का अहंकार करके सबको तुच्छ समझने लगता है तभी वह दूसरे की मनःस्थिति को समझने में सर्वथा असमर्थ हो जाता है और उस दशा में समदर्शी कदापि नहीं हो सकता। इसके विपरीत विद्या विनय से सम्पन्न होकर जब विनम्र बन जाता है तब अपने आपको दूसरे की स्थिति में रखकर समस्त भावों में वर्तने में समर्थ हो सकता है। अहंभाव को त्यागकर विनम्र बन जाने से सारा जगत आत्मरूप दृष्ट आने लगता है और अपने पराये का भाव लुप्त होकर संसार के सारे प्राणी व पदार्थ आनन्दप्रद प्रतीत होने लगते हैं। न किसी के प्रति राग है न द्वेष, न कोई मित्र है न शत्रु, सभी कुछ परमात्मा का स्वरूप दृष्ट आता है। फिर किसी की ओर से कष्ट या हानि पहुँचने की शंका मन में उत्पन्न होकर वेदना कैसे पहुँचायेगी ?"

• उल्टी गंगा

भारत के स्वतन्त्र होने के उपरान्त भी शिक्षा-प्रणाली की जो उल्टी गंगा बह रही है उससे कौन परिचित नहीं ? उस दिशा में श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के ये विचार कितने मार्मिक हैं—

"अंग्रेजों ने क्लर्क बनाने के लिये जिस शिक्षा-प्रणाली का प्रचार देश में किया था वह आज भी ज्यों की त्यों प्रचलित है। परिणाम यह हो रहा है कि आवश्यकता से कई गुने अधिक क्लर्क देश में तैयार हो रहे हैं। उनके लिये कोई उपयुक्त काम नहीं है, वे बेकार हैं। देशमें बढ़ती हुई बेकारी का यह एक प्रमुख कारण है। यदि हम इस दृश्य को बदलना चाहते हैं तो हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली को सुयोग्य रूप से परिवर्तित करना होगा।

शिक्षित तरुण को शरीर से हृष्ट-पुष्ट, मन से सुविचारी तथा बुद्धि से ज्ञानी होना चाहिये। किन्तु वर्तमान शिक्षा-प्रणाली द्वारा तरुण शरीर से निर्बल, मन से कुविचारी तथा बुद्धि से अज्ञानी है।"

• समाज पर कलंक

वेश्या-वृत्ति एक नैतिक अपराध है। यह मानते हुए भी इसके प्रति हमारी जो मान्यताएं व दृष्टिकोण बना हुआ है वह विचारणीय है। श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख के निम्न विचारोंमें इस समस्या का कारण व समाधान दोनों का ही समावेश हुआ है—

"समाज में वेश्या-वृत्ति को प्रोत्साहित करनेवाले कई कारण हैं जिनमें महिलाओं की मानसिक तथा शारीरिक कमजोरियां, असंतुष्ट तथा अभावग्रस्त गृहस्थ-जीवन, पालन-पोषण के गलत ढंग, बचपन तथा यौवन के प्रारम्भ में उपेक्षावृत्ति, कम वेतन, बेरोजगारी, आर्थिक दृष्टि से हीन अवस्था, बच्चों के भरण-पोषण का भार तथा वेश्याओं का प्रभाव आदि मुख्य हैं किन्तु इन सबसे महत्त्वपूर्ण कारण समाज में आज वेश्याओं की आवश्यकताओं को दी जानेवाली मान्यता और उनकी मांग है जो किसी तरह ठीक नहीं है।

वेश्या-वृत्ति कुछ महिलाओं के प्रमाद, गरीबी और पाप का परिणाम नहीं है। इसे समाप्त करने के लिये हमें अपनी उन मान्यताओं और भावनाओं को बदलना होगा जो आज समाज में घर कर रही हैं। आवश्यकता तो इस बात की है कि वेश्या-वृत्ति पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय और इसके विरोध में एक प्रबल आन्दोलन हो।

मुझे यह सुन अत्यन्त दुःख होता है कि भिखारी व वेश्या-वृत्ति का कार्य करने का प्रत्येक को अधिकार है और हमारा संविधान भी उसे नहीं रोक सकता। वेश्यावृत्ति समाजके लिये कलंक है और कानून बनने से समस्या पर्दे के पीछे छिप सकती है। अतः विचारधारा बदलने पर समाज से बुराइयाँ दूर हो सकती हैं।"

• जुल्म की बुराई में—

क्रूर और अहंकारी व्यक्ति मदान्ध होकर निर्दोष जनता को सताता है, उस पर नाना प्रकार के अत्याचार और अनाचार करता है। पर काश ! वह जान पाता कि जुल्मे-सितम का जनाजा जल्द ही निकल जाया करता है। 'नया हिन्द' में प्रकाशित शेख शादी की 'करीमा' का पंडित सुन्दरलाल द्वारा किया हुआ यह रूपान्तित अंश हृदय को छूता चला जा रहा है—

"जुल्म करनेवाला दुनिया को इस तरह बरबाद करता है, जिस तरह पतझड़ की हवा हरे-भरे बाग को उजाड़ देती है। किसी हालत में भी जुल्म की इजाजत मत दे, ताकि तेरी बादशाहत का सूरज डूबने न लगे। जिस किसी

ने दुनिया में जुल्म की आग लगाई, लोगों के दिलों से उसके लिये आहें निकलीं। जिस पर जुल्म हुआ है उसके दिल से अगर आह निकले, तो उसकी लपट से मिट्टी और पानी में भी आग लग जाए। कमजोरों और लाचारों के साथ जबरदस्ती न कर, आखिर में कब्र की तंगी से डर। किसी सताए हुए को दुःख मत दे, जनता के दिल के धुएँ से बेखबर मत हो। ऐ नासमझ! लोगों को मत सता, ऐसा न हो कि ईश्वर का कोप तेरे ऊपर उतरे। कमजोरों और गरीबों पर सितम मत कर, जो जुल्म करता है उसके नरक पड़ने में कोई संदेह नहीं।"

● फोड़े की पीप

हम वैयक्तिक व सामाजिक जीवन में न जाने कितनी गल्तियां कर बैठते हैं और जब हमें उनका पता चलता है तब पश्चाताप से सिर धुनने लगते हैं। पर यह तो स्वाभाविक है और इनका मनोवैज्ञानिक निराकरण क्या है इसका उत्तर 'जिनवाणी' में प्रकाशित प्रो० श्री रामचरण महेन्द्र के इस विचारांश से ज्ञात हो सकेगा—

गल्ती और पाप की आदत तब मिटती है जब आन्तरिक मन से उसकी दुरुस्ती की जाय। ऊपरी ताड़ना से उसे दबा देना व्यर्थ है। उसे जब दबा देते हैं तो फोड़े में पीप की भांति वह फूट निकलती है और भयंकर रूप ले लेती है।

प्रत्येक गल्ती को दबाने के लिये उसके विरोधी सद्गुण को विकसित करने की आवश्यकता है। यदि आप चोरी करने की आदत का प्रायश्चित् करना चाहते हैं तो सचाई को विकसित करना प्रारम्भ कर दीजिये। यदि कपट और मिथ्याचार से मुक्ति चाहते हैं तो सदाचरण, सहयोग, सत्य और सेवा की भावना बढ़ाते रहिये। यदि हिंसा से मुक्ति पाना है तो प्रेम, सहानुभूति का दायरा बढ़ाइये।

महर्षि वाल्मिकी बड़े भयंकर डाकू हो गये थे। अनेक को लूट-मार कर जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करते थे। एक दिन उन्हें अपने पापमय जीवन का ख्याल हुआ। प्रायश्चित कैसे करें? वाल्मिकी विद्या प्राप्ति, ज्ञानार्जन तथा शुभ-चिन्तन में संलग्न हो गये राम-नाम का आश्रय लिये एक विद्वान के रूप में प्रसिद्ध हुए।

अन्धा वह नहीं जिसकी आँखें फूट गयी हैं। अन्धा वह है जो अपने दोषों को रोकता है। दोष ढके नहीं जा सकते। सद्गुणों के विकास द्वारा उन्हें फीका किया सकता है। दुर्गुणों को छोड़कर सद्गुणों को बढ़ाना स्वयं प्रायश्चित् है।"

युग-जागरण

[मुनिश्री दुलीचन्दजी]

नैतिकता के शुद्ध-जागरण के पथ पर चलना है

एक समय था जिसमें घर-घर में नैतिक बल पनपा
किन्तु आज उसका पद हिंसा रिश्वत ने आ हड़पा
कभी यहां पर विश्व-बन्धुता का झंडा लहराता
किन्तु आज तो प्रति मानव में बंधा फूट का तांता
घोर पाशविक कृत्यों से अब मानव को टलना है
नैतिकता के शुद्ध जागरण के पथ पर चलना है।

दम्भी नशाखोर औ लम्पटी बढ़ते ही जाते हैं
चोर जुआरी जन के गुट भी इतराते जाते हैं
अड़बंगी, अलमस्त, अफंडी, पग पग पर छलते हैं
जेब कतरनेवाले उनसे भी ज्यादा मिलते हैं
चेतो, उठो, मनुष्यों, अत्याचारों से घुलना है
नैतिकता के शुद्ध जागरण के पथ पर चलना है।

मानव की दुर्दशा देख दिल से गहराई तोलो
अन्यायों की घुली गुत्थियां, अपनी सत्वर खोलो
लुप्त हो गयी कहाँ तुम्हारी, चेतनता बतलाओ
अपने ही हाथों पर, अब मत शस्त्र चलाओ
इच्छाओं का करो दमन, फिर संयम में ढलना है
नैतिकता के शुद्ध जागरण के पथ पर चलना है।

नेताओं, मजदूरों, साहूकारों, ऊंघ निवारो
बाबू अथवा कर्मचारिजन अपनी भूल सुधारो
कितना पतन हुआ है जिसका लेखा-जोखा कर लो
बने त्यागमय जीवन फिर से ऐसी राह पकड़ लो
सदाचार सद्गुण की लौ में सबको आ मिलना है
नैतिकता के शुद्ध जागरण के पथ पर चलना है।

भ्रष्टाचार की भयंकरता ने जन-जीवन को दिन-प्रतिदिन दूभर कर दिया है। हमारे बढ़ते हुए कदमों को इसकी विकराल भुजायें जकड़ना चाहती हैं। आज अनेकानेक प्रमुख समस्याओं में यह भी हमारे सम्मुख मुंह बाये खड़ी है। तो फिर इसके छुटकारे के लिये पढ़िये।

यह कलंक कैसे मिटे ?

[श्री सुरेन्द्रप्रताप 'हृदयेश']

यद्यपि आज देश के आर्थिक व राजनैतिक विकास के लिये अनेकानेक योजनायें जनता के समक्ष प्रस्तुत की जा रही हैं; पर चन्द्र में कलंक के समान भ्रष्टाचाररूपी दानव को समाप्त करने के लिये जो प्रयत्न स्वतन्त्र भारत में होना चाहिये था वह होता दिखाई नहीं देता। इसका प्रमुख कारण तो यह है कि देश के कर्णधार राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशें क्रियान्वित करने, बेकारी की समस्या हल करने तथा अन्यान्य अनेक समस्याओं का हल ढूंढने में लगे हैं और शीघ्रातिशीघ्र अपने देश भारत को सर्वाङ्गीण विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँचने के प्रयास में संलग्न हैं और उन्हें इतना अवकाश ही नहीं है कि वे भ्रष्टाचार को दूर करने की दिशा में कुछ सक्रिय कदम उठा सकें।

इसके अतिरिक्त समय-समय पर विभिन्न स्थानोंपर केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों के अधिकारियों को जनता द्वारा जो धन थैलियों के रूप में भेंट किया जाता है तथा उनका जो स्वागत भोज आदि के रूप में होता है उसका प्रभाव भी अधीनस्थ कर्मचारियों पर अच्छा नहीं पड़ता और स्वाभाविक रूप से यह विचार उनके मनमें आता है कि जब बड़े-बड़े अधिकारी भेंट स्वीकार कर सकते हैं तो फिर हमारे लेने में हानि ही क्या है। इस प्रकार की भावना से भ्रष्टाचार को बढ़ावा ही मिलता है। आज स्थिति यहां तक बिगड़ गई है कि बहुत से सरकारी दफ्तरों में रिश्वतखोरी अंग्रेजी शासनकाल की अपेक्षा दुगुनी और चौगुनी तक हो गई है और घूंस लेना व देना आजकल कोई बुरा ही नहीं समझता बल्कि इसे हक के नाम से पुकारकर कर्मचारीगण खुल्लमखुल्ला लेते हैं।

प्रश्न उठता है कि ये कर्मचारीगण घूंस क्यों लेते हैं और जनता के लोग उन्हें घूंस क्यों देते हैं? इसके मूल में असन्तोष की भावना तो है ही और आधुनिक युग में मनुष्य का जीवन-स्तर इतना ऊँचा मान लिया गया है कि उसके अनुसार अपना जीवन बिताने के लिये अधिकांश स्त्री-पुरुष लालायित रहते हैं पर वैसा जीवन बिताने के लिये जितने रुपयों की आय होनी चाहिये उतनी आय वेतन द्वारा होती नहीं। फल यह होता है कि उस कमी की पूर्ति के लिये अन्य कोई उपाय मनुष्य खोज निकालता है। जिस विभाग के कार्यालय में वह व्यक्ति कार्य करता है उसमें वह पूरी शक्ति के साथ काम नहीं करता और जान-बूझकर टालनेवाली नीति अपनाता है ताकि संबन्धित व्यक्ति अपना कार्य सरलता से करवाने के लोभ से उसे कुछ आने या रुपये भेंट रूप में दें। घूंस देनेवालों की मनोवृत्ति भी यही होती है कि मेरा काम सबसे पहले सुगमतापूर्वक हो जाय और इसके लिये वह राज्य कर्मचारी को कुछ आने या रुपये देने में कोई पाप नहीं समझता। पर यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो इस प्रकार से घूंस देनेवाला और लेनेवाला दोनों ही नैतिक पतन की ओर बढ़ जाते हैं। दुःख भी इसी बात का है कि आज के भौतिकवादी युग में अधिकांश व्यक्ति नैतिकता को कुछ भी मान्यता नहीं देते और जैसे भी हो धन कमाकर ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिताना ही पसन्द करते हैं। मानो उनके जीवन का लक्ष्य ही खाना-पीना मौज उड़ाना हो।

और हां! तर्क दिया जाता है कि घूंसखोरी इसलिये होती है कि राज्य कर्मचारियों को वेतन इतना कम मिलता है कि वे ईमानदारी से उतनी कम आय में गुजर ही नहीं कर सकते। यदि उनका वेतन बढ़ाकर इतना कर दिया जाय कि वे अपना व अपने परिवार का निर्वाह अच्छी प्रकार कर सकें तो उन्हें घूंस लेनेकी आवश्यकता ही न होगी और इस प्रकार रिश्वतखोरी अपने आप ही समाप्त हो जायेगी। यदि यह तर्क मान लिया जाये तब फिर घूंस केवल कम वेतन मिलनेवाले कर्मचारियों को ही लेनी चाहिये मगर हम देखते हैं कि घूंस कम वेतन लेनेवाले कर्मचारी उतनी नहीं लेते जितनी अधिक वेतन लेनेवाले आफिसर। कोई चपरासी या साधारण सा क्लर्क यदि घूंस लेगा भी तो दो-चार आने या एक दो रुपया; परन्तु आफिसर तो घूंस में सैंकड़ों से कम की बात भी नहीं करेगा। तो क्या हजारों रुपये मासिक पानेवाले आफिसर का जीवन-निर्वाह भी उतनी आय में नहीं होता जो वह घूंस लेता है।

वास्तविकता यह है कि वह भी अधिक से अधिक धन संग्रह करना चाहता है। यही

अवस्था व्यवसायी वर्ग की भी है। वह भी रुपया कमाने के लिये कोई भी साधन अनुचित नहीं समझता। आर्थिक भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि रुपये के मुकाबले में व्यक्ति अपने पिता, माता, पुत्र तथा अन्य सम्बन्धियों तक का भी कोई विचार नहीं करता और समाचार पत्रों में प्रायः ऐसे समाचार पढ़ने को मिलते हैं कि अमुक व्यक्ति ने धन आभूषण या जमीन-जायदाद प्राप्त करने के लिये अपने निकटतम सम्बन्धी की हत्या कर दी। चोरी, डकैती आदि की घटनायें भी धन तथा आभूषणों की प्राप्ति के लालच से ही की जाती हैं।

अतः जो भ्रष्टाचार आर्थिक रूप में फैला हुआ है उसके दूर करने का एकमात्र उपाय है कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का लक्ष्य धन प्राप्ति ही न बनाकर उसे केवल अपने निर्वाह का साधन माने और कम से कम धन में अपना जीवन सादगी से बिताये। साथ ही शासन का भी यह कर्तव्य है कि वह प्रत्येक व्यक्ति का जीवन-स्तर निर्धारित करे और उसको वैसा जीवन-यापन के योग्य आमदनी होती है या नहीं इसकी उचित देखभाल करे।

भ्रष्टाचार के और भी कई रूप हैं जिनका सम्बन्ध मानव के चरित्र से है। आज देश में चारित्रिक भ्रष्टाचार भी अपनी चरम सीमा पर है। नित्य प्रति होनेवाली बलात्कार की घटनायें इसका प्रमाण है। साधारण व्यक्ति की तो बात छोड़िये अपने को साधु नाम से कलंकित करनेवाले भी ७-८ वर्ष की बालिकाओं से बलात्कार करने का निन्दनीय कृत्य करते पाये जाते हैं। इससे अधिक पतन हमारा क्या हो सकता है? इस प्रकार के भ्रष्टाचार को दूर करने के लिये जहां शासन को अधिक सतर्कता व कठोरता की नीति बरतनी चाहिये वहां देश के सभी नागरिकों को संयमी जीवन बिताने का निश्चय कर देश में पवित्रता की गंगा बहाने का अनवरत प्रयास करना चाहिये।

भ्रष्टाचार का समूल विनाश करना प्रत्येक भारतवासी का प्रमुख कर्तव्य होना चाहिये और अहर्निश हममें से प्रत्येक युवक-युवती, बाल-प्रौढ़ को भ्रष्टाचार दूर करनेका दृढ़ निश्चय कर लेना आवश्यक है तभी हम विश्व के समक्ष अपने देश का नाम उज्ज्वल रख सकेंगे। इसके लिये संगठित प्रयास की आवश्यकता है। भ्रष्टाचार को मिटाये बिना हमारे देश के अन्यान्य प्रयत्न भी ठीक उसी प्रकार होंगे जैसे किसी वृक्ष की जड़ें खोखली होजाने पर भी पानी देकर सींचने का कार्य।

अतः देश की सरकार व जनता को मिल कर भ्रष्टाचार के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाना होगा तभी हम अपने देश को भ्रष्टाचार से मुक्त कर सकेंगे और वही सच्चे अर्थों में हमारा विकास होगा।

जीवन डायरी का एक पृष्ठ—

मानवता का शेषांश

श्री शैवाल सत्यार्थी

[अवशेष-मानवता का यह खण्डहर किसी असत्यवादी-पृष्ठभूमि पर नहीं और न ही कहानीकार के भावुक-हृदय की कोरी-काल्पनिक उड़ान भर है। वरन् अजीबोगरीब-इन्सानियत की बुनियाद पर, यह एक आँखों देखा वाक्या है—और हां, इतना अवश्य है कि यथार्थ के नग्न-कंकाल को सौन्दर्य प्रदान करने के लिये शाब्दिक-मांस का लबादा उठाने का प्रयास। काश! हमारा मानव-समाज इसे हृदयंगमकर, वास्तविक अर्थों में मानवता की खाली झोली भर सके।]

मानवता कहां है? जीवन के एक भीड़-भरे चौराहे से गुजरते हुए, मैंने मानवता के शेषांश को देखा! उस चौमुहाने-स्थल पर शत-शत दर्शकों का विशाल जमघट देख, मैं भी कौतूहलवश रुका—देखा तो एक पक्षी प्राणघातक 'A, C.' के तार-पाशों में उलझा हुआ, जिन्दगी के मेले की अपनी दूकान बढ़ाने का अंतिम प्रयास कर रहा था।

बुझने के पूर्व लौ बढ़ी, पक्षी फड़फड़ा उठा। आँखों की मासूम-पाक कोरों से झांकता, सावन-भादों बरस ही तो पड़ा—

मालिक तेरी रजा रहे,
और तू ही तू रहे—
बाकी न मैं रहूं,
न मेरी आरजू रहे।

काश! उसकी अंतरात्मा की मूक-पुकार कोई सुन पाता—पर, वहां कदाचित् हृदयहीन पाषाणों का ही जमघट था?

मानवता अपनी लज्जा की चरम-सीमा का स्पर्शानुभव कर रही थी। इससे पहिले कि इन्सानियत का शर्मनाक-जनाजा, शराफत के बाजार से गुजरता—आध्यात्मवादी-कर्मभूमि भारत के एक लाल ने कहा "नहीं, रुको तुम्हें जीवित रहने का उतना ही अधिकार है!" कदाचित् किसी ने उसकी आत्मा का मूल्य, अपने प्राणों से चुकाना चाहा?

(शेषांश पृष्ठ २९ पर)

अध्यात्म-विद्या की आवश्यकता क्यों ?

मनुष्य के जन्म के साथ तीन चीजों का फौरन सम्बन्ध आता है। एक तो उसका शरीर, जिसके आधार से वह सारा जीवन बिताता है, जिसको वह अपना व्यक्तित्व कहता है। उस शरीर में मन भी आया, बुद्धि भी आयी, इन्द्रियाँ भी आयीं। यह सारा उनका वाह्य स्वरूप है। उसके साथ-साथ उसका सम्बन्ध समाज के साथ आता है। उसके माता-पिता हैं और उसके भाई भी हैं, आदि। तो इन तीन चीजों का सम्बन्ध स्वाभाविक तौर से उसके साथ आता है। एक तो उसके खुद के शरीर-मन के साथ और दूसरा समाज। शरीर और मन को अलग समझ करके हम तीन चीजें समझते हैं। इसके अलावा इन दिनों एक चौथी चीज और तैयार हो गयी है—वह है—सरकार। तो उसका शरीर जिसे हम कहते हैं, वह सृष्टि का ही अंश है। उसको हम सृष्टि में ही गिन सकते हैं। तो अब सामने ये तीन चीजें आयीं और यह चौथी चीज मनुष्य का मन। उसके सामने सृष्टि खड़ी है, जिसमें उसका शरीर, समाज और सरकार भी है। यह जो सरकार है, वह कोई नैसर्गिक वस्तु नहीं है। वह बनावटी चीज है। लेकिन आज की हालत ऐसी है कि जहाँ मनुष्य का जन्म हुआ, वहीं से सरकार का अंकुश लागू होता है। सरकार की शक्ति इतनी व्यापक है कि जीवन के सब अङ्गों को उसका स्पर्श होना है। जन्म से मरण तक। इसलिए यद्यपि वह वस्तु कृत्रिम है, तथापि उसके बारे में सोचना पड़ता है।

आचार्य विनोबा

[प्रायः अध्यात्मवाद का सम्बन्ध लोग पलायनवादी मनोवृत्ति से जोड़ते हैं। किन्तु आज के विकट, विषम व संघर्ष-मय जीवन में इस विद्या की कितनी आवश्यकता है इसका उत्तर प्रस्तुत विचापूर्ण लेख में प्राप्त करिये। —सं०]

यह जो तीन-चार सवाल हमारे सामने उपस्थित हैं, उन सबकी योजना किस प्रकार करनी चाहिए, इसी पर सारे जीवन का ढाँचा अवलम्बित है। मनुष्य का अपना एक मन है। उस मन में कई प्रकार के विकार भी होते हैं और कई प्रकार की वासनाएँ भी होती हैं। कुछ अंशों में उन वासनाओं की पूर्ति करनी होती है। उन विकारों और वासनाओं की पूर्ति के लिए उसे मर्यादा समझनी होती है। भूख लगती है, खाने की वासना मनुष्य में पैदा होती है। अधिक खाता है, तो बीमारी होती है और उससे क्षय होता है। अतः खाने की वासना भी तृप्त होनी चाहिए और वह अतिरिक्त नहीं होनी चाहिए। अपनी वासनाओं को बीच में रखना चाहिए। इसी को हम अध्यात्म-विद्या कहते हैं। अध्यात्म-विद्या का रहस्य यह है कि मनुष्य अपने को बिल्कुल समत्व में रखे। भोग करे, लेकिन अतिभोग न करे। वासना रखे, लेकिन ज्यादा वासना न रखे। इसलिए बीच की हालत में मन को रखना—इसे भी योग कहते हैं। जिस समाज में व्यक्तियों को योग की तालीम मिलती है, उस समाज के व्यक्ति सुखी होते हैं। इसलिए सर्वोदय समाज की शिक्षा में प्रथम अध्ययन होना है—अध्यात्म-विद्या का। हमने अभी स्थितप्रज्ञ के लक्षण सुने। हमने उसमें क्या सुना? यह सुना कि वह अपनी इन्द्रियों पर अंकुश रखता है और जैसे कछुआ खतरे के मौके पर अपने अवयवों को अन्दर खींच लेता है और जहाँ खतरा नहीं है, वहां उन अङ्गों को वह बाहर निकालता है; उसी तरह से अपनी इन्द्रियों का उपयोग करने की उसमें शक्ति होती है।

यह कोई असामान्य शक्ति नहीं है। अगर बचपन से इसकी तालीम मिले, तो यह मनुष्य के लिए बहुत ही स्वाभाविक चीज है। ठंड लग रही है; अग्नि की जरूरत है, तो किसी के कहने की जरूरत नहीं रहती है कि तुम अग्नि के पास मत बैठो कि जिससे तुम्हारे शरीर को ही आग लगे। अग्नि से बहुत दूर रहोगे, तो ठंड लगेगी। अग्नि के बिल्कुल नजदीक रहोगे, तो तुम्हारा हाथ जलेगा। इसलिए अति दूर नहीं, अति नजदीक नहीं; ठीक बीच की हालत में रहोगे, तो शीत-निवारण होगा और भय से भी बचोगे। यह कोई बहुत बड़ी वस्तु नहीं। यानि ऐसी कृत्रिम वस्तु नहीं है कि जिसकी प्राप्ति के लिए हमको मेहनत करनी पड़े; क्योंकि उसमें अपना भला है, यह बात अत्यन्त स्पष्ट है। परन्तु कृत्रिम

समाज-रचना जहाँ होती है, वहाँ बच्चों को बुरी आदतें उनके माता-पिता ही डालते हैं। ऐसा कोई बच्चा दुनिया भर में जन्म नहीं लेता, जिसको बचपन से मिर्च खाने की रुचि उत्पन्न होती होगी। सब बच्चों को मधुर रस प्रिय होता है। उसको तीखा, खारा अच्छा नहीं लगता। तो गीता यही तालीम दे रही है कि तीखा, खारा मत खाया करो, मधुर रस सेवन किया करो। तो कौन बड़ी और कठिन बात गीता ने हमसे कही? परन्तु माता-पिता बच्चों को तीखा-मिर्च इत्यादि खाने की आदत डालते हैं। थोड़ा-सा उसको खिलाते हैं, तो फौरन बच्चा 'नहीं' कहता है। तो कहते हैं थोड़ा-थोड़ा खाते जाओ। इस तरह आदत डालते हैं। आखिर उसकी जीभ यहाँ तक परक जाती है कि उसको बिना मिर्च के खाना अच्छा नहीं लगता। फिर उसको गीता की तालीम मुश्किल होती है। बिना मिर्च के खाना कठिन मालूम होता है।

मैंने यह मिसाल इसलिए दी कि ध्यान में आयेगा कि जो हमको सिखाया जा रहा है, वह बहुत कठिन विचार नहीं है, जिसकी हमसे अपेक्षा रखी जाती है। परन्तु गलत तालीम के कारण बुरी आदतें डाली जाती हैं। आपके इस आन्ध्र प्रदेश में बीड़ी और सिगरेट की आदत सिखायी जाती है। यहाँ तम्बाकू के खेत हमने इतने देखे कि हमने इसको 'आन्ध्राकू' नाम दे दिया। जैसे बच्चा सुगन्धित पुष्प देखेगा, तो स्वाभाविक है कि गुलाब लेने के लिये हाथ सामने करेगा; वैसे तम्बाकू की ऐसी सुगन्ध नहीं है कि बच्चे की नाक एकदम उस तरफ खिंच जाय। लेकिन तम्बाकू का, बीड़ी-सिगरेट का ऐसा व्यसन लग जाता है कि उसके बिना चैन नहीं पड़ता और कुछ लोग हमने ऐसे देखे हैं कि जिनको थोड़ा भी चिन्तन करना पड़ता है, तो फौरन सिगरेट जला लेते हैं। उस अग्नि-ज्योति के प्रकाश में उनका चिन्तन शुरू होता है और यह व्यसन छोड़ना अत्यन्त मुश्किल हो जाता है। इस कारण बुरी आदतें और बुरी तालीम के कारण संयम रखना कठिन हो जाता है। नहीं तो एक मामूली बात जो कछुआ भी जानता है, वह मनुष्य न जाने, यह कैसे हो सकता है? तो क्या बात कही गयी? इतना ही कहा गया कि जहाँ खतरा है, वहाँ अपनी इन्द्रियों को खींच लो। जहाँ खतरा नहीं है, वहां इन्द्रियों का उपयोग खुले दिल से करो। अब यह कोई कठिन बातें नहीं हैं कि जिनके लिए हमको बड़ा अभ्यास करना पड़े। परन्तु गलत तालीम दी जाती है, उसके कारण बड़ी भारी तपस्या करनी पड़ती है उसके विरोध में। इसलिये संयम की विद्या कठिन मालूम होती है, तब भी वह अति सरल है।

सर्वोदय-विचार में इस प्रकार की शिक्षण योजना उसका एक बड़ा अंग है—अपने मन को वश में रखना चाहिए, इन्द्रियों पर काबू रखना चाहिए। हमने देखा और आन्ध्र में बहुत देखते हैं कि मौन शुरू होता है, तो सबके सब मौन रखते हैं। हम इसको बड़ी शक्ति समझते हैं। यह संयम-शक्ति हर मनुष्य में होनी चाहिए। उसके वास्ते शिक्षण-योजना करनी चाहिये। यह योजना सारे समाज में अगर रहेगी तभी समाज और व्यक्ति की उन्नति होगी। तो इसका नाम, मैंने कहा, अध्यात्म-विद्या है, जिसमें मन पर, इन्द्रियों पर अंकुश रखा जाता है। यानि, इन्द्रियों और मनको मारने की बात नहीं है। उनका परिमित और योग्य उपयोग करने की बात है। जैसे घुड़सवार घोड़े पर बैठता है, उसको अंकुश में रखता है, तो घोड़ा उसको बड़ा काम देता है। उसी तरह से इन्द्रियों और मन पर अंकुश रहे, तो हम उनका उत्तम उपयोग कर सकते हैं। वे हमारी बड़ी शक्तियाँ हैं। उनका उपयोग करने की विद्या हमको हासिल हो, तो हम दुनिया में फतह पा सकते हैं। तो यह प्रथम कार्य सर्वोदय में करना होता है। दूसरा कार्य समाज के लिए करना होता है। समाज में अनेक व्यक्ति रहते हैं। उन सब व्यक्तियों के हितों का कोई विरोध नहीं आना चाहिए, ऐसी समाज में रचना करनी चाहिए। तो मैं कहता था कि समाज की रचना ऐसी करनी होगी कि एक दूसरे के हितों का एक दूसरे से विरोध न आये। वस्तुतः यह वाक्य जो मैंने कहा, उसको कहने की जरूरत ही नहीं होनी चाहिए थी। फिर समझने की इतनी जरूरत है कि एक के सच्चे हित के विरुद्ध दूसरे का हित हो ही नहीं सकता। यह भी अत्यन्त सरल वस्तु है, समझ लेना कोई कठिन बात नहीं है। जब हम समाज में रहते हैं, तो एक दूसरे का भला करने के लिए ही रहते हैं और एक दूसरे से हमारे हित अगर टकरायें, तो हमारा भला नहीं हो सकता। यह कोई समझने के लिए तो कठिन बात नहीं। एक मनुष्य अगर विद्वान् बना, तो सारे समाज को उसका लाभ मिलता है। उसके विद्वान् बनने में समाज का कोई अकल्याण होने का कारण नहीं। एक का आरोग्य सुन्दर हुआ, तो किसी का उसमें नुकसान नहीं है। इस तरह से सोचेंगे, तो दूसरे के हित में हमारा हित है, यह ध्यान में आयेगा। परन्तु आज एक कृत्रिम समाज-शास्त्र समाज में रूढ़ हुआ है और उसने कहा है कि हितों का परस्पर विरोध होता है। जिस प्रकार से गलत शिक्षण दिये जाने के कारण बुरी आदतें पड़ गयीं और इन्द्रिय-संयम मुश्किल

(शेषांश पृष्ठ २९ पर)

त्याग का परिणाम

मैं तीन वर्ष से अणुव्रती हूँ। अणुव्रत-दृष्टि को समझते हुए मैं खाने-पीने की अनिवार्य वस्तुओं को भी ब्लैक से नहीं खरीदता। विगत अकाल में मुझे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। गेहूँ के बदले जौ व चनों और चीनी के बदले गुड़ से काम चलाया। चावल खाने का सतत अभ्यास मुझे छोड़ ही देना पड़ा—कपड़ा जैसा मिला, उससे काम चलाया। अधिकतर मोटा कपड़ा ही पहनना पड़ा, जैसा पहनने का मैं अपने जीवन में आदी नहीं था। स्थितियां प्रतिकूल थीं, तो भी संकल्प को निभाने का विचार अटल रहा। मैंने सोच रखा था यदि यहां काम नहीं चला तो नेपाल जाकर रह जाऊँगा किन्तु कोई भी वस्तु ब्लैक से नहीं खरीदूँगा।

अपने पौत्र के विवाह में नियम-निषिद्ध जीमनवार न हो, इसलिये अपने सम्बन्धियों के घरों में संख्यावार न्यौते दिये। प्रथम तो उसके लिये तरह-तरह की बातें लोगों में हुई, किन्तु मेरे नियमों की स्थिति समझते हुए बाद में सभी ने इस पद्धति का स्वागत किया।

राशन कार्ड की संख्या सदैव मैंने सच्ची रखी। घरका कोई सदस्य बाहर जाता तो मैं राशन कार्ड ठीक करवा लेता। व्यवस्थापकों पर इसका ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे मेरी सचाई पर मुग्ध हो गये। अब मुझे राशन कार्ड की संख्या बढ़वाने में दूसरों की तरह श्रम नहीं उठाना पड़ता। अधिकांश व्यवस्थापक यह जानने लगे हैं कि यह अणुव्रती है, अतः झूठे राशन कार्ड नहीं बनवायेगा।

सुजानगढ़]

—गनेशमल माल्

बेकारी का सामना

मैं दिल्ली अधिवेशन पर अणुव्रती बना। वहां से कलकत्ते गया और व्यवसाय की टोह में लगा। मुझे कोई ऐसा व्यवसाय नहीं मिला, जिसे मैं बिना ब्लैक चला सकता। श्री दौलतरामजी छाजेड़ मुझे मिले। वे भी अणुव्रती होने के कारण मेरी तरह बेकार घूम रहे थे। दोनों ने मिलकर दलाली का काम शुरू किया, पर वह भी व्यर्थ। जहां जाते लोग दिल्लगी करते 'अणुव्रती हो गये, अब भी भूख लगती है क्या? ब्लैक का व्यवसाय नहीं करना है, तब तो घर बैठकर माला ही फेरा करिये।' आखिर निराश होकर हम दोनों को घर ही लौट जाना पड़ा। राजस्थान में आकर भी मैंने कई प्रयत्न किये पर राजकीय और सामाजिक सहयोग के अभाव में सब निष्फल रहे। इस बेकारी में कुछ कर्जा भी हो गया किन्तु नियमों पर चलने की भावना दिन-प्रतिदिन जागरूक ही रही।

बिहार के पूर्णिया जिले में मैं गत वर्ष से काम कर रहा हूँ। आसपास के वातावरण में लोग यह जानने लगे हैं—इसके यहां ब्लैक नहीं होता। एक बार एक राज कर्मचारियों को मेरे यहां ब्लैक होने का सन्देह हो गया। मैं डी० एस० ओ० से मिला और उन्हें बताया कि अणुव्रत-आन्दोलन क्या है और अणुव्रत क्या है तथा मैं इस आन्दोलन का सदस्य हूँ, मेरे यहां ब्लैक नहीं हो सकता। उसने एक भी नहीं सुनी और कहा—मैं यह सब कुछ नहीं मानता, दुनिया में बहुत प्रकार के ढोंग चलते हैं। दूसरे दिन इन्सपेक्टर आया और हमारे बही-खाते ले गया।

मुझे बहुत चिन्ता हुई कि बिना पूरी जांच किये ही मेरे पर कुछ कर दिया तो अणुव्रत-आन्दोलन की बहुत निन्दा होगी। लोगों में अणुव्रतियों के प्रति बनता हुआ विश्वास ढह पड़ेगा। मैंने संकल्प किया कि जैसा मैं हूँ, वैसा ही राजकर्मचारियों में प्रमाणित हो जाऊं तो मैं छः दिन का एक अनशन इस वर्ष कर लूंगा।

दूसरे दिन इन्स्पेक्टर दूकान पर आया और बही-खाते वापिस करते हुए बोला—लोग कहते हैं—आप ऐसे आदमी नहीं हैं, हम आपको कष्ट देना नहीं चाहते।

मोमासर]

गणेशमल सेठिया

नैतिकता की ध्वजा

नैतिकता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है—चरित्र से और चरित्र का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है संगति से। पुरुष का कैसा समाज है और किस प्रकार की संगति में पुरुष रहता है, इसी पर चारित्र-निर्माण निर्भर है। उत्पन्न होने के क्षण से और अन्तिम संस्कार तक सब कुछ संगति के ऊपर ही आधारित है। संसार में अब तक हमारे सम्मुख चरित्र-निर्माण के ऐसे अनेक उदाहरण उपस्थित हैं कि मनुष्य विना किसी पाठशाला में पढ़े महान बन गये।

कोई भी महान व्यक्ति हम ऐसा नहीं देखते जिसने सत्संग न किया हो। कबीर, नानक, रामतीर्थ, रैदास, चैतन्य महाप्रभु और विवेकानन्दादि सबने ही महान व्यक्तित्व के रूपमें संगति का फल प्राप्त किया है।

समाज में दोनों प्रकार के तत्व मौजूद हैं। जो पुरुष को गर्त में भी ले जाते हैं और वह भी हैं जिनसे मनुष्य, मनुष्य के पद से ऊंचा उठकर देवता का रूप भी ग्रहण कर लेता है। समाज में हमें शान्ति और आनन्द प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करना पड़ता है और तब हमें मनोवांछित फल भी प्राप्त हो सकता है। यदि मनुष्य सत्य कर्म, सत्य विचार और सत्य विश्वास से पथ पर अविचल अग्रसर होता रहे तो सचमुच ही उसको सुख लाभ हो सकता है। चरित्र का निर्माण भी सत्य कर्म, विचार एवं विश्वास की नींव पर खड़ा होता है। विश्वास सहित सत्य विचार से यदि कर्म किया जाय तो कोई कारण नहीं कि कोई दुख का सामना करे। मनोविकारों से परे सत्संग में रत पुरुष सद्भावों में लीन होकर ही सुख और शान्ति प्राप्त करता है। सुख और शान्ति की महिमा का गुणगान करते हुए कबीर ने कहा है

राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधु-संग में, सो बैकुण्ठ न होय॥

इस प्रकार बैकुण्ठ भी सत्संग से कम है। दूसरे स्थान पर फिर कबीर ने मन को स्वच्छन्द पंछी की उपमा देकर कैसा सुन्दर भाव रक्खा है:

कबिरा मन पंछी भया, भावै तहवां जाय।
जो जसी संगति करै, सो तैसा फल खाय॥

इसके साथ ही रहीम ने भी विभिन्न प्रकार की संगति को इस दोहे में किस प्रकार दर्शाया है:—

श्री महावीरसिंह 'गौतम'

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन॥

तो मनुष्य के पास अन्ततः संगति ही रह जाती है जिसके करने से वह विमल और स्वस्थ होता है। संगति एक सुन्दर पेय है जिसके सेवन से अन्तर-मानसके रोग मिटते हैं। संगति एक राग है जिसके श्रवण करने से स्वर्गिक आनन्द प्राप्त होता है। संगति वह की जड़ है जिसके आधार पर चरित्र-वृक्ष खड़ा होता है। संगति वह प्रकाश है जिसके द्वारा हमें विश्वशान्ति का मार्ग दीख पड़ता है। संगति जीवन है, ज्ञान है, प्रेम है सहानुभूति और सद्भावना है।

इसके एकमात्र अणु के प्रकाश से ही विकल और अधीर मानस प्रकाशमान हो उठता है और भव्य ज्ञान-ज्योति में मनुष्य अपने स्तर से उन्नत और उन्नयन होना प्रारम्भ करता है। उसके अन्दर की झंझा-ज्वाल सत्संग की शीतल-धारा से बुझ जाती है। तब ही मर्मर-मर्मर का स्वर नैतिकता का स्वनावरण लपेट गद्गद् भावों में शिव और सुन्दर बन जाता है और तब दंड होता है—सत्संग से बना चरित्र व ध्वजा-पताका होती है नैतिकता जो मानव के मस्तक पर शोभित होती है।

[निकट सम्पर्क में आनेवाले साथियों का हमारी जीवन-रचना में कितना बड़ा हाथ रहता है यह चाहे हम आज न जाने पर कुछ समय बाद उनका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सद्-संगत से अपने चरित्र को ऊँचा उठाकर क्या हम नैतिकता की ध्वजा फहराने का प्रयत्न करेंगे? -सं०]

पाप और पुण्य का परिणाम

"लोग समझते हैं कि पहले जन्म में कोई पाप किया होगा इसलिए गरीबी मिली और पुण्य से अमीरी मिली ऐसा समझते हैं। पर यह नहीं समझते कि पूर्व जन्म में पुण्य किया हो तो सुबुद्धि मिलती है धन मिलने को पुण्य का फल मानना गलत विचार है। शंकराचार्य अत्यन्त दरिद्र कुल में जन्मे थे तो क्या यह कहेंगे कि उन्होंने पिछले जन्म में पाप किया था? बुद्ध और महावीर समृद्ध परिवारों में राजा के घरों में पैदा हुए थे। अगर वह पुण्य का फल था तो उन्होंने फिर राज-पाट क्यों छोड़ दिया? पुण्य का परिणाम संपत्ति नहीं सुबुद्धि है। पाप का परिणाम गरीबी नहीं कुबुद्धि है। गरीबों को हीन नहीं बनाना चाहिये। धनी और गरीब दोनों की दुनिया में परीक्षा होती है।

—आचार्य विनोबा भावे

प्रभात की ओर

● कलकत्ता—अणुव्रत समिति के तत्त्वावधानमें १५ फरवरीको अणुव्रत आन्दोलन का प्रथम कार्य नैतिक फिल्मों एवं अणुव्रत-नियमों की स्लाइड्स द्वारा नगर के विभिन्न हिस्सों में, विद्यालयों में हर वाड़ियों की महिलाओं के वीच के सक्रिय रूप से किया गया।

स्थानीय वड़ावाजार स्थित वाड़ियों में अणुव्रत नियमों का व्यापक प्रभाव पड़ा। जिसके फलस्वरूप अनेक महिलाओं ने समाज के फैली हुई कुरीतियां, अँधविश्वास जैसे—विवाह में प्रदर्शनार्थ दहेज आदि को रखना, सौ व्यक्तियों से अधिक जीमनवार में बुलाना, छोटी उम्र में बच्चों की शादी करना आदि २ रूढियों को त्याग कर व्रतों को आंशिक रूप में ग्रहण किया। सेठिया हाउस, काजड़िया हाउस, ढांढनिया हाउस, वांसतल्ला, आरमनी स्ट्रीट, ढाकापट्टी आदि मुख्य २ जगहों में इस प्रकार का प्रचार किया गया, जिसमें हजारों वाल, वृद्ध व महिलाओं ने सम्मिलित होकर अणुव्रत आन्दोलन का परिचय प्राप्त किया और साथ ही छोटे २ नियमों को अपने जीवन में ढालने की उत्सुकता भी प्रकट की। १ नं० ढाकापट्टी में तो श्रीमति गजानन्दजी सरावगी ने अपनी प्रेरणा द्वारा बीसों महिलाओं को प्रवेशक अणुव्रती के ११ नियम ग्रहण करवाने का सराहनीय कार्य किया।

स्थानीय विद्यालयों में अणुव्रत प्रचार काफी प्रगति पर है। लगभग एक दर्जन विद्यालयों के हजारों छात्रों, छात्राओं एवं अध्यापकों तक क्रान्तिकारी नैतिक पुनरुत्थान अणुव्रत आन्दोलन की आवाज पहुँचाई गई और नैतिक फिल्मों व अणुव्रत नियमों का प्रदर्शन किया गया। अध्यापकों व विद्यार्थियों को भाषणों द्वारा अणुव्रत-दर्शन व इसकी व्यापक गतिविधियों द्वारा परिचित कराया गया। साथ ही उन्हें अणुव्रत-विद्यार्थी उद्‌बोधन सप्ताह के लिये प्रेरित किया। विद्यालयों के अध्यापकों ने इस सामयिक आन्दोलन की प्रशंसा की। इस सम्बन्ध में श्रीमती बसन्तीबाई वाड़ियों में जा-जा कर महिलाओं में वड़े उत्साह से कार्य कर रही हैं।

● मर्यादा-महोत्सव

भीलवाड़ा (डाक से) १८ फरवरी से प्रारम्भ होनेवाला मर्यादा-महोत्सव आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में सफलतापूर्वक सम्पन्न हो चुका है। आचार्यश्री अपने शिष्यों सहित यहाँ १४ फरवरी को ही पधार गये थे। आपके अतिरिक्त इस अवसर पर विभिन्न भागों से लगभग २५ हजार व्यक्ति और भी उपस्थित हुए। मद्रास, मैसूर, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, अजमेर, पंजाव, पेप्सू, दिल्ली आदि सभी स्थानों के लोग वहाँ पहुँचे और आचार्यश्री के शिक्षाप्रद व ओजस्वी प्रवचनों से लाभ उठाया।

इतनी भारी उपस्थिति पर भी उत्सव का वातावरण शान्त और उत्साहपूर्ण था। अशान्ति और अव्यवस्था का नाम तक नहीं था। उपस्थित व्यक्तियों ने वड़े शान्त और स्थिर भाव से वहाँ होनेवाले प्रेरक उपदेशों और प्रवचनों से जीवन निर्वाह की स्फूर्ति ग्रहण की।

आवश्यक सूचना

अणुव्रत समिति की शाखाओं के पदाधिकारियों, पाठकों व संवाददाताओ से सूचनार्थ निवेदन है कि वे अपने यहाँ के कार्य की प्रगति की सूचना व समाचार कार्यालय में अवश्य भेजें। समाचार संक्षिप्त और पृष्ठ के एक ओर स्याही से स्पष्ट लिखे होने चाहियें।

साथ ही भाषण व समाचार अलग-अलग लिखकर भेजना आवश्यक है अन्यथा हम इच्छा रहते हुए भी उनको प्रकाशित करने में असमर्थ रहेंगे।

—सम्पादक

(पृष्ठ ४ का शेषांश)

के भाग पर अधिकार जमाने की चेष्टा करते हैं, दूसरे के हित में बाधा उपस्थित करते हैं।

तो आज की इस भयंकर स्थिति को बदलने के लिये यह आवश्यक है हम अपने जीवन-पथ पर बाँई ओर हीं बढ़ें ! सत्य की दिशा की ओर ही उन्मुख हों !! प्रेम, बन्धुत्व व सहयोग की पगडंडियों का आश्रय लें !!! तभी आजका यह संघर्ष, मनमुटाव, द्वेष, ईर्ष्या, डाह व वैमनस्य समाप्त हो सकेगा और फिर कभी इस प्रकार टकराने की नौबत ही न आयेगी। किन्तु यह तभी सम्भव हो सकेगा जब हम सभी एक साथ इसका पालन करें, इसको सदैव ध्यान में रखें और तभी हम एक सच्चे राहगीर के गुणों का परिचय दे सकेंगे। ठीक दिशा में बढ़ने की आवाज को बुलन्द कर सकेंगे !!

—सनामि

(पृष्ठ ६ का शेषांश)

अग्रणी ही रहेगा। अतः इस क्षेत्र में महिलायें कार्य करके देश को समुन्नत बनाने में सहयोग देने के योग्य बन सकें इसके लिये आवश्यक है कि सामाजिक जीवन में नारी पर लगे सभी अविवेकपूर्ण एवं अनुचित प्रतिबन्ध जो उनके समुचित विकास में बाधक बनते हैं, दूर किये जाने चाहियें और साथ ही सामाजिकता के नामपर किसी भी प्रकार के भ्रान्तिमूलक भय को प्रश्रय नहीं मिलना चाहिये।

अपनी मातृभूमि के प्रति अपने उत्तर-दायित्व के वहन करने की शक्ति ईश्वर हमको दे।

(पृष्ठ २८ का शेषांश)

आदर्श वादी बनने पर

[श्री पद्मचन्द दूगड़ 'पद्म']

आजका मानव 'नैतिक विकास' की आवश्यकता का अनुभव करता है किन्तु उसके लिये प्रयत्न किञ्चितमात्र भी नहीं करता। यदि आप और हम प्रयत्न करें तो इस भ्रष्टाचार को कोसों दूर कर सकते हैं। कोई सोच सकता है कि यह सिर्फ सामूहिक रूप से ही सम्भव है। किन्तु ऐसा नहीं है।

हमारे सामने भ्रष्टाचार का पर्वत खड़ा है। हम अपनी शक्ति से—अपनी अहिंसा-शक्ति से अपने मनोबल एवं सत्य से—उस पहाड़ का चकनाचूर कर देंगे। आत्मा के सन्देश को हम पूर्णतया मानें। जैन संस्कृति एवं सभ्यता के सन्देशों को मुखरित करनेवाले महापुरुषों द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलकर ही हम उस आलोक को — जो हमारे जीवन का ध्येय है— प्राप्त कर सकते हैं। मार्ग दुरधिगम्य है किन्तु शान्ति, सौम्यता, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अचौर्य एवं नैतिकबल के सहारे हम इस दुर्गम पथ को भी सुगम बनाकर चढ़ते चले जायेंगे। प्रत्येक व्यक्ति यदि और कुछ न कर सकें, तो कम से कम महापुरुषों द्वारा प्रेक्षित और परीक्षित इन अणुव्रतों को तो अपनायें। इन्हीं व्रतों को ग्रहण कर यदि मनुष्यमात्र अपना जीवन संयम और निष्ठापूर्वक बिताये तो भ्रष्टाचार अपने आप दूर हो जावेगा।

भ्रष्टाचार से उत्पीड़ित मानवता को अब सदाचार चाहिये। भ्रष्टाचार को रोककर मानव अपनी तथा मानवता की रक्षा कर सकता है। अतः उत्तम मार्ग तो यही है कि हम अपने हृदय में कुछ आदर्श चरित्रों को रखें तथा अणुव्रत-प्रदीप हाथ में लेकर आगे बढ़ें। इन अणुव्रतों का, इन छोटे छोटे व्रतों को पालन करके ही हम मानवता का पोषण कर सकते हैं।

सदाचारी लोगों की नियुक्ति

[श्री तोलाराम वैद]

इस समय हमारे देश में भ्रष्टाचार जोर-शोर से पनप रहा है और उसे दूर करने के लिए सरकार नाना प्रकारके कानून बनाती है, लेकिन इसका फल यह होता है कि देश में भ्रष्टाचार बढ़ता ही जा रहा है, यहां तक कि भ्रष्टाचार विरोधी-समितियों में भी भ्रष्टाचार का बोलबाला है। इस बुराई को दूर करने के लिए सरकार को एक ठोस कदम उठाना होगा। हमारी राय में सरकार को चाहिए कि वह हर-महकमे व आफिस में वैसे लोगों को रखे जिन्होंने रिश्वत, चोरी व भ्रष्टाचार का त्याग ही कर रखा हो और वैसे लोग इस जमाने में आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन के सदस्य ही मिलेंगे। उन अणुव्रतियों के आदर्श व्यवहार से दूसरे सरकारी कर्मचारियों पर भी प्रभाव पड़ेगा और वे भी सदाचारी बनने की कोशिश करेंगे। जिसका फल यह होगा कि भारत में भ्रष्टाचार का नामो-निशान ही नहीं रहेगा। इससे अणुव्रत-आन्दोलन को प्रोत्साहन मिलेगा और सरकार को भी अच्छे सदाचारी मनुष्य मिल सकेंगे और देश में रामराज्य स्थापित हो जायेगा।

रचनात्मक विचार

"मनुष्य को चाहिये कि वह सदा अपने विचारों को रचनात्मक बनावे, उन्हें ध्वंसात्मक होने से रोके। जो तलवार के बल पर रहता है वह तलवार से मरता भी है। ध्वंसात्मक विचार दूसरे का विनाश करते हैं, पर वे अपना विनाश भी कर डालते हैं। रचनात्मक विचार सहायता के रूप में आते हैं। वे बुराई को अपने-आप ही अलग कर देते हैं।"

—प्रो० शुक्र

[समालोचनार्थ पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियाँ कार्यालय में भेजनी चाहिये]

मेरी सर्वोदय यात्रा—लेखक श्री भगवानदास केला, प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग। पृष्ठ संख्या ८४ मूल्य ।≡)

श्री भगवानदास केला से राजनीति व अर्थशास्त्र विषयों के अनेक ग्रन्थों के रचयिता के रूप में तो असंख्य पाठक परिचित हैं ही, परन्तु सर्वोदय विचारधारा के प्रचारक के नाते उन्हें बहुत कम लोग जानते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान लेखक ने राजस्थान, देहली, पंजाब, बिहार, कलकत्ता, मध्यभारत, की सर्वोदय यात्रा का वर्णन अत्यन्त ही रोचक ढंग से किया है। पुस्तक पढ़ने से सर्वोदय सम्बन्धी अनेक बातों की जानकारी प्राप्त होती है। इसके दूसरे भाग में ग्रामनिष्ठा, शिविरों का अनुभव तथा खादी का महान कार्य शीर्षकों से केलाजी ने पुस्तक का सारांश ही एक प्रकार से लिखा है। आशा है यह पुस्तक सर्वोदय के प्रचार-प्रसार में सहायक सिद्ध होगी और देश के अधिकाधिक नरनारी इसे पढ़कर सर्वोदय की प्रेरणा प्राप्त करेंगे। —हृदयेश

पं० किशोरीदास वाजपेयी और उनकी हिन्दी सेवायें—लेखक श्रीविपिनविहारी वर्मा शास्त्री, प्रकाशक:-हिमालय एजेंसी, कनखल (उ० प्र०) पृष्ठ १६, मूल्य ।)

हिन्दी साहित्य के सुपरिचित विद्वान श्री वाजपेयीजी के नाम से कौन साहित्य-प्रेमी अपरिचित होगा? अपने साहित्य व कार्यों से उन्होंने राष्ट्र-भारती की जो चिर-स्मरणीय व बहुमूल्य सेवा की है और कर रहे हैं वह किसी से छिपी नहीं हैं। उनकी महान सेवाओं का १६ पृष्ठ की इस लघु पुस्तिका में वर्णन करना वैसे तो सूर्य को दीपक दिखाने के समान ही है तथापि वाजपेयीजी के महत्व की किंचित झाँकी इसमें अवश्य मिलती है।

इन साहित्य व व्याकरणाचार्य के विशाल व्यक्तित्व, महान साहित्य सेवाओं, प्रकांड पांडित्य एवं विद्वता पर साहित्यिक जगत् पूर्ण व प्रामाणिक ग्रन्थ तैयार करे ऐसा हमारा अनुरोध है विश्वास है शीघ्र ही इस अभाव की पूर्ति हो सकेगी। —प्रभाकर

श्री प्रतापसिंह वैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित

लेखकों से !

१ 'अणुव्रत' में केवल नैतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व अन्य जीवनोपयोगी प्रेरक लेख, कविता, कहानी आदि ही प्रकाशित होती है। रचना भेजते समय इसका विशेष ध्यान रखें।

२ रचनाओं के घटाने-बढ़ाने, प्रकाशित करने या न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। प्रकाशित विचारों का उत्तरदायी स्वयं लेखक होगा, सम्पादक नहीं।

३ लेखादि संक्षिप्त व सार-गर्भित होने के साथ पृष्ठ के एक ओर सुस्पष्ट लिखे होने चाहियें।

४ प्रत्येक रचना की स्वीकृति अधिक से अधिक १५ दिन में भेज दी जाती है। स्वीकृति के अभाव में रचना अस्वीकृत समझें।

५ रचनाओं में यदि हिन्दी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा का उदाहरण या अंश प्रस्तुत करें तो वह सानुवाद हो और पुस्तकादि का पूरा विवरण भी अवश्य दें।

६ समालोचनार्थ पूर्ण विवरण सहित पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियां भेजनी चाहिएँ।

७ रचना के साथ लेखक या लेखिका का पूरा नाम, पता अवश्य होना चाहिए।

८ परिवर्तनार्थ पत्र-पत्रिका भेजने व सम्पादन सम्बन्धी हर प्रकार के पत्र व्यवहार का पता :—

सम्पादक—'अणुव्रत' पाक्षिक, ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता—१

अणुव्रत के पाठकों से !

'अणुव्रत' को और अधिक लोकोपयोगी व जन-रुचिकर बनाने की दृष्टि से 'अणुव्रत' में प्रकाशित रचनाओं के सम्बन्ध में अपने सहृदय पाठकों का मत जानना आवश्यक है।

अतः हमारा साग्रह निवेदन है कि भविष्य में सहयोगी पाठक 'अणुव्रत' के प्रत्येक अङ्क पर अपनी सम्मत्ति, विचार व सुझाव आदि निःसंकोच लिखकर भेजें।

जो पाठक हमारी त्रुटियों व अभावों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे उनके हम विशेष आभारी होंगे।

रचनात्मक विचारों व सुझावों को यथाशीघ्र क्रियान्वित करने का भी प्रयत्न हो सकेगा।

—सम्पादक

'अणुव्रत' के पाठकों की जानकारी के लिए

कि—

- नैतिक दृष्टि से देश में क्या हुआ है और क्या हो रहा है ?
- विदेशों में क्या-क्या प्रयत्न हो रहे हैं ?
- कौन-कौन सी गतिविधियां कार्य कर रही हैं ?
- किन-किन प्रयत्नों और प्रयोगों में सफलता मिली है ?
- कौन-कौन से उपायों से नैतिक विकास सम्भव है ? आदि आदि

को लेकर—
शीघ्र ही एक लेखमाला प्रारम्भ की जा रही है जिसका शीर्षक है।

'देश - विदेश में नैतिक - क्रांति'

खोजपूर्ण, मौलिक, गंभीर साथ ही रोचक एवं ठोस सामग्री से भरपूर लेख सादर आमन्त्रित हैं

इस लेखमाला के अन्तर्गत प्रकाशित रचनाओं पर

यथायोग्य पारिश्रमिक भी दिया जायगा

रचना भेजते समय लेखमाला का उल्लेख अवश्य करें

—सम्पादक

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३ पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१
卐
वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १५ मार्च, १९५६ [अंक ११

जीवन में सत्यनिष्ठा, संतोष व अशोषण जैसी सद्वृत्तियाँ संजोनी हैं !

दर्शन का अर्थ है—जीवन का निरीक्षण, आत्मा का अन्वेषण। आत्मदर्शी परमात्मदर्शी होता है, सर्वदर्शी होता है। "यः आत्मवित् स सर्ववित्, तत्तेन ज्ञातं येन आत्मा ज्ञातः"—ये उक्तियां स्पष्ट वताती हैं कि जिसने आत्मा को जाना, सब कुछ जाना। जिसने आत्मा को नहीं जाना, उसने कुछ नहीं जाना। भारतीय दर्शन अन्तर्दर्शन है। वह केवल वाहरी पदार्थों को ही नहीं देखता, जीवन के अन्तरतम की गुत्थियों को भी देखना है और उन्हें सुलझाने का पथ—दर्शन देना है। शरीर और मनके विकारों का परिहार कर आत्मा के शुद्ध स्वरूप की अभिव्यक्ति उसका अभिप्रेत है, जिसे शब्दान्तर में मोक्ष से अभिहित किया जा सकता है। भौतिक अभिसिद्धियां यहां जीवन का चरम लक्ष्य नहीं बन सकी। यही कारण है कि अध्यात्म विकास की उच्चतम पराकाष्ठा हस्तगत करने की तरह भौतिक अन्वेषण में भी उतने ही बढ़े चढ़े भारतीय तत्त्वद्रष्टा भौतिकवादी उग्र शक्तियों का प्रयोग कर जगत् में विनाश का ताण्डव मचाना नहीं चाहते थे। जैन-वाङ्मय में अनेकानेक भौतिक अभिसिद्धियों के विवरण के बीच तेजो लब्धि का विवेचन हमें मिलता है। उष्ण परमाणुओं के सघन संग्रहण का एक वैज्ञानिक प्रकार तेजो लब्धि है। तेजो लब्धि प्राप्त साधक यदि उसका प्रयोग करे तो वह सोलह देशों को भस्मसात् कर सकता है। पर नहीं, इसके लिये वैसा करने में कठोर निरोध और निषेध है, तेजो लब्धि का प्रयोग साधुता सम्मत नहीं है। ऐसा क्यों? इसीलिये कि शक्ति का प्रयोग हिंसा और विनाश में नहीं होना चाहिये। भारतीय दर्शन निर्माण और सृजन का दर्शन है, विध्वंस का नहीं। वह लोक-जीवन को एक ऐसी निर्मिति में ढालना चाहता है, जो सत्य, शौच, सदाचरण की निर्मिति है। यदि एक शब्द में कहूँ तो वह "संयम" की निर्मिति है।

आज चारों ओर से अशान्ति का करुण-क्रन्दन सुनाई पड़ रहा है। अर्थ है, अन्य सुख-सामग्रियां हैं फिर भी लोक जीवन अशान्ति से व्याकुल है। यह सब क्यों? इसलिये कि उसने अलक्ष्य को लक्ष्य माना। क्योंकि ऐहिक सुख और भोग की परिणिति दुःख में है, संक्लेश में है, इसलिये वह सच्चा सुख नहीं है सच्चा सुख अपने अन्दर है, आत्मा में है, संयम और चारित्र्य की आराधना में हैं। मानव ने इसे भुलाया। आज मानव को यह भूल सुधारनी है, गलत मार्ग को छोड़कर सही मार्ग पर आना है। जीवन को अधिक से अधिक संयम, शील, सदाचार, शौच, और नीति के पवित्र राजपथ पर आगे बढ़ाना है। दुःखों की भयावह वर्तमान परम्परा स्वतः उन्मूलित हो चलेगी।

मानव जीवन में व्याप्त बुराइयों का उन्मूलन करने के लिये उसे प्रामाणिकता, सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, संतोष और अशोषण जैसी सद्वृत्तियों से संजोना होगा, तभी वह शान्त, सुखी और स्थिर बन सकेगा। अणुव्रत आन्दोलन और कुछ नहीं, केवल यही करना चाहता है। वह धर्म के उत्कर्षमय आदर्शों का व्यावहारिक रूप है, जिसे अपनाकर मानव अपने जीवन में सचाई आदि सद्गुणों का संचय कर सकें। दूसरे शब्दों में कहूं तो यह आन्दोलन मानवता का आन्दोलन है। मानवीय आदर्शों से दूर हटते मानव समाज को पुनः उन पर आरूढ़ करने की यह एक रचनात्मक योजना है। लोग उसे समझें, जीवन को तदनुरूप बनाने का प्रयास करें। शान्ति का एक अभिनव आलोक वे पायेंगे।

आचार्य तुलसी

पहिले हम इन्सान बनें !

भारतीय जनता के हृदय में सदैव से ही त्यागियों, वैरागियों व सन्तोंके प्रति एक आदर और श्रद्धा का भाव विद्यमान रहा है। यहां के जीवन में ऐसे ही व्यक्तियों को महत्त्व दिया गया है। एक सन्त के सम्मुख राजा का राज-सिंहासन से नीचे उतरकर उसका आदर-सत्कार करना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, और इस भावना के पीछे कोरे संस्कार या वातावरण का ही प्रभाव हो यह भी बात नहीं थी। ऐसे विचारों के जन्म देने में एक ओर जहां संस्कारों का हाथ है दूसरी ओर उससे भी कहीं अधिक हमारे इन त्यागियोंका साधनामय जीवन और आदर्श कार्य हैं। राष्ट्र-निर्माणकारी एवं लोक मंगलमयी कार्यों को हाथ में लेकर जहां इन महापुरुषों ने अपने अद्‌भुत कौशल, सफल संघ-ठन-शक्ति व विश्वस्त नेतृत्व का परिचय दिया वहाँ जनता-जनार्दन को आह्वान कर विचार-क्रान्ति का ऐसा मन्त्र फूंका कि राष्ट्रीय जीवन में सफलता हमारे पग चूमने लगी, अन्याय और उत्पीड़न से जनता को छुटकारा मिला और अधर्म मानों दुम दवाकर भाग खड़ा हुआ। यही कारण है कि आज सदियां बीत जाने पर भी उनकी याद ज्यों की त्यों ताजा बनी हुई है।

किन्तु इस दृष्टि से यदि आजकी स्थितिपर विचार करें तो हमें काफी परिवर्तन मिलेगा। इस ओर पहले जहां कर्तव्य-पूर्ति की भावना थी, लोक-कल्याण की तड़प थी और विश्व को शान्ति का पाठ पढ़ाने की लालसा थी वहां अधिकांशतः आज हमारी इस श्रद्धा और विश्वास का दुरुपयोग ही किया जा रहा है, हमारी इस भावना के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है। साधनामय जीवन के बजाय यह आजीविका का एक साधनमात्र बनकर रह गया है। जिसके फलस्वरूप हम देखते हैं कि समाज में श्रद्धा व विश्वास का पात्र बनने के विचार से एक बहुत बड़ी संख्या 'सन्त' बननेमें प्रयत्नशील है। आधार को मजबूत किये विना आकाश में छलांग मारने से क्या हम सफल हो सकेंगे ? चोला बदल लेनेमात्र से ही क्या हम 'सन्त' नाम सार्थक कर सकेंगे ? इन्सानियत को ठुकराकर 'देवत्व' का स्वांग भरनेसे क्या हमें श्रद्धा और आदर मिल सकेगा ? आदि २ प्रश्न हमें विचार करनेको बाध्य कर देते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति क्रमिक विकास की सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ ही अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है, अपना निर्दिष्ट स्थान पा सकता है व सफलता की अन्तिम सोपान का दर्शन कर सकता है। अतः 'सन्त' बनने से पूर्व हमें मनुष्य बनने की आवश्यकता है, इन्सान बनने की जरूरत है। इन्सान बने विना 'सन्त' बनने का ढोंग रचाकर चाहे हम अपने मन को भले ही खुश करलें, कुछ समय के लिये चाहे दुनिया

सम्पादकीय

को धोखा भी दे लें किन्तु असलियतको कितने दिन छिपाया जा सकता है ? हममें जो कमजोरियाँ व दुर्बलताएँ हैं वे आज नहीं तो कल अवश्य ही सामने आयेंगी। तो-फिर हम पहले इन्सान क्यों न बनें ? मानवोचित गुणों को अपने अन्दर क्यों न लायें ? अपने 'आदमीपन' को सार्थक क्यों न करें ?

आज कोरे उपदेशमात्र से काम न चलेगा। धर्म, सत्य, अहिंसा और विश्व-बन्धुत्व का राग अलापने भर से कुछ न होगा। इन सभी गुणों को पहले स्वयं में उतारना होगा, सर्वसाधारण के सामने अपना आदर्श प्रस्तुत करना होगा तभी हम जनता के श्रद्धा व आदर के पात्र बन सकेंगे। जनता का हमारे में विश्वास टिक सकेगा।

एक व्यक्तिको पड़ौसीके न दुःखकी चिंता है न सुख की, साथी की मुसीवतमें हाथ बंटाने की बजाय और उल्टा उसकी परिस्थिति से लाभ उठाने का प्रयत्न करता है, समाज में होनेवाले नित्यप्रति के अत्याचार, उत्पीड़न और अन्याय से बेखबर है, जन-जन के करुण-क्रन्दन से जिसका हृदय पसीजता नहीं और राष्ट्र पर आनेवाली विपत्ति को सुनकर जिसके कानों पर जूं नहीं रेंगती ऐसा व्यक्ति यदि 'सन्त' बनने का प्रयत्न करे तो किसको आश्चर्य न होगा ?

वास्तव में यदि हममें अपना और संसार का हित करने की इच्छा है तो पहले स्वयंमें इन्सानियत का बीज बोना होगा, मानवता का पाठ पढ़ना होगा, हमें अपने मानव और इन्सान के नामके अनुरूप कार्य करके दिखाना होगा तभी हम विकास-क्रम की एक सीढ़ी को पार कर सकेंगे और सन्तरूपी अगली सीढ़ी के निकट पहुँच सकेंगे। इन्सान बने बिना सन्त बनने का प्रयत्न वैसा ही होगा जैसा एक कक्षामें अनुत्तीर्ण होने के उपरान्त भी विद्यार्थी को अगली कक्षामें दाखिल करवाना जिसकी यह कमजोरी उसे आजीवन सताती है। अतः जनता का विश्वास व श्रद्धा प्राप्त करनेके लिये हमारा कर्तव्य है कि 'सन्त' बनने से पहिले हम इन्सान बनें।

—स्वतंत्रता की रक्षा के साधन—

"हम अपनी सभ्यता और संस्कृति का पुनरुद्धार करें, अपने धर्म का नव-निर्माण करें और उसे परिस्थितियों के अनुकूल बनायें। अपनी भाषा को अपनायें और उसके साहित्य का भंडार अमूल्य रत्नों से भर दें। स्वदेशी सभ्यता, स्वधर्म और स्वभाषा ये तीन हमारी स्वतन्त्रता की रक्षा के अमोघ साधन हैं।

—श्री रविशंकर शुक्ल मु० मंत्री (म० प्र०)

● बधाई का पात्र

जन-जीवन को भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता और अनैतिकता की ओर प्रेरित करने में अश्लील साहित्य भी एक महत्वपूर्ण कारण रहा है। ऐसे दूषित साहित्य ने जहाँ एक ओर प्रकाशकों को स्वार्थ-पूर्ति में लगाया वहाँ दूसरी ओर पाठकों के विचारों व मनोभावों को ही बदल डाला। वासना की तृप्ति ही जीवन का ध्येय बना, दूसरों को धोखा देना आज की नीति-निपुणता कहलाई, व्यभिचार के अड्डों के लिये जहाँ हमारे दिलों में घृणा होनी चाहिये थी वहाँ एक विचित्र प्रकार का आकर्षण उत्पन्न हुआ, यह सब कुछ अश्लील साहित्य की ही तो करामात है। व्यभिचार और चरित्रहीनता की ओर से नागरिकों की दृष्टि हटकर जीवन-निर्माण की दिशा में बढ़ाने के लिये अश्लील साहित्य का बहिष्कार होना अत्यावश्यक है।

हर्ष का विषय है कि रेलवे मंत्रालय ने स्टेशनों के बुक स्टालों पर यौन सम्बन्धी पुस्तकों के संग्रह पर-प्रतिबन्ध लगाते हुए आदेश जारी कर दिया है। इस प्रशंसनीय कदम उठाने के लिये रेलवे मंत्रालय सचमुच ही बधाई का पात्र है। अन्य विभागों व स्थानों पर भी इस ओर ध्यान दिया जायगा क्या ऐसी आशा की जाय ?

● खिलवाड़ बन्द हों !

भारत में बेरोजगारी की समस्या दिन प्रति दिन उग्र रूप धारण करती जा रही है। देश भरके सब काम दिलाऊ केन्द्रों में दिसम्बर ५५ के अन्त में २ लाख १६ हजार १५७ तो केवल शिक्षित बेरोजगारों के ही नाम दर्ज थे फिर अन्य पेशे के या अशिक्षित लोगों की बात तो अलग रही। बेरोजगारी का आर्थिक जीवन पर तो प्रभाव पड़ता ही है इससे व्यक्ति की आत्मिक दुर्बलताओं को भी प्रोत्साहन मिलता है। आये दिन होनेवाले अपराध इसके साक्षी हैं। ऐसी स्थिति में हम सभी का यह नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि हम एक दूसरे की कठिनाइयों को बाँटकर परस्पर सहयोग का आदान-प्रदान करें और इस दुरावस्था को मिटाने की चेष्टा की जाय।

किन्तु जब एक मुसीबत के मारे से ही खिलवाड़ की जाय तो किस विचारवान् व्यक्ति को तरस न आयगा। पिछले दिनों का समाचार है कि एक व्यक्ति ने आल इण्डिया रेडियो में नौकरी दिलाने का ढोंग रचकर एक बेकार से १५०० रुपये ठग लिये और न जाने इस तरह की कितनी घटनायें हमारे सामने आती रहती हैं। अपने ही किसी साथी की परिस्थिति व मुसीबत से फायदा उठाकर खिलवाड़ करना अनुचित ही नहीं अपितु नैतिक अपराध है। हमें ऐसा खिलवाड़ बन्द करना चाहिये।

होली जलाओ !

[श्री रामअवतार चौरासिया 'अनन्त']

प्राण, तुम दुख-द्वन्द्व की होली जलाओ !

मिट रही आशा निराशा में बदलकर,
कल्पना का दिव्य मंदिर जीर्ण होकर—
ढह रहा है, छल-प्रपंचों में
फँसा है जग असत्याधार लेकर।
सत्य के शाश्वत स्वरों में गीत गाओ !
प्राण, तुम दुख-द्वन्द्व की होली जलाओ !!

बढ़ रही है दीनता हँसती दनुजता,
व्यापती विषण्णता रोती मनुजता,
हाय रोटी ! और रोज़ी !! की पुकारें रात-दिन;
दूर कर दो आज जन-जन की विकलता !
प्यार के मृदु भाव जन-मन में जगाओ !
प्राण, तुम दुख-द्वन्द्व की होली जलाओ !!

स्नेह के मंजुल मधुरतम फाग विकसें,
प्यार से करुणार्द्र नव-नव राग विहँसे।
बंधुता की पुण्यमय मनुहार कुंकुम,
साधुता दे; रंग में सब अँग सरसे।
आहतों-दलितों-अछूतों को उठाओ !
प्राण, तुम दुख-द्वन्द्व की होली जलाओ !!

प्राचीन भारतीय आर्थिक विचार

['बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' की पवित्र भावना को तिलांजलि दे भौतिक चकाचौंध में चौंधियाया हुआ आज का स्वार्थ-प्रधान अर्थशास्त्र जन-कल्याण में कहाँ तक सहायक सिद्ध होगा यह एक विचारणीय प्रश्न है। भारत का प्राचीन अर्थशास्त्र इसका हल कहाँ तक प्रस्तुत करता है इसका उत्तर विद्वान लेखक के विचारपूर्ण निबन्ध में पढ़िये।

—संपादक]

[श्री भगवानदास केला]

हमारा वर्तमान हमारे भूतकाल की उपज होने से उसका उससे थोड़ा-बहुत प्रभावित होना स्वाभाविक है। हमें अपने भूतकाल से चिपटे रहना नहीं है तथापि उससे केवल इसलिए अरुचि प्रकट करना भी ठीक नहीं कि हम सुधारवादी हैं। यदि हमारी प्राचीन वातों में कुछ, अपनाये जाने योग्य है तो हमें उनकी रक्षा करने में कोई संकोच न होना चाहिए। इस प्रकार अर्थशास्त्र का अध्ययन करते समय हमारे लिए प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारों का कुछ ज्ञान प्राप्त करना बहुत उपयोगी है। इस अध्याय में यह विचार किया जाता है कि आर्थिक विषयों में भारत की गति कितनी प्राचीन है और यहाँ की आर्थिक विचारधारा मूलतः क्या रही है।

भारत में आर्थिक साहित्य की प्राचीनता—अनेक पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि यहाँ अर्थशास्त्र का प्रादुर्भाव सब देशों में, सम्भवतः सबसे पहले हुआ। यद्यपि यहाँ का बहुत सा प्राचीन साहित्य नष्ट हो गया है, इसमें सन्देह नहीं कि यहाँ आर्थिक विचारों और सिद्धान्तों का उल्लेख वेदों तक में मिलता है, जो संसार भर में सबसे प्राचीन साहित्य माना जाता है।

कौटल्य (चाणक्य) ने अपने सुप्रसिद्ध 'अर्थशास्त्र' में स्थान-स्थान पर अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का मत दिखाया है और आवश्यकतानुसार उसकी आलोचना की है। ऐसे आचार्यों में कुछ ये हैं—विशालाक्ष (इन्द्र), पारा, तर, पिशुन (नारद), बाहुदन्ति, कौणपदन्त (भीष्म पितामह), वातव्याधि (अक्रूर या उद्धव), भारद्वाज (द्रोणाचार्य या कणक जो दुर्योधन का मंत्री था), खरपट्ट। इनके अतिरिक्त कौटल्य ने मनु, बृहस्पति, उशनस, और अम्भीय इन चार आर्थिक सम्प्रदायों के आचार्यों का उल्लेख किया है। इनके अधिकांश ग्रन्थ इस समय नहीं मिलते। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि आचार्य कौटल्य ने अपने ग्रन्थ की रचना उनका सम्यक् अध्ययन करके की है। उनके आवश्यक अंशों का संग्रह तथा आलोचना कौटल्य के अर्थशास्त्र में आजाने से उन ग्रन्थों की इतनी आवश्यकता नहीं रही और इसलिए उनकी यथेष्ट रक्षा भी नहीं की गयी। कौटल्य के अर्थशास्त्र से इस बात का अकाट्य प्रमाण मिल जाता है कि यहाँ अब से कम-से-कम सवा दो हजार वर्ष पहले इस विद्या के विविध ग्रन्थों का अध्ययन किया और कराया जाता था—जब कि आधुनिक राष्ट्रों का जन्म भी नहीं हुआ था।

प्राचीन अर्थशास्त्र का क्षेत्र बहुत व्यापक था—आचार्य कौटल्य के मत से अर्थशास्त्र के दो मुख्य अंग थे—वार्ता और दंड। वार्ता का अभिप्राय है कृषि, गोपालन और व्यापार ; और दंड का अर्थ है शासन-नीति, जिसके अन्तर्गत संधि और विग्रह भी आ जाता था। आजकल शासन-नीति का विषय तो अर्थशास्त्र से अलग है ही, जिसमें वार्ता का भी पूरे तौर से समावेश नहीं होता। कौटलीय अर्थशास्त्र में आचार्य ऐसी प्रत्येक बात का विचार करता है, जिससे समाज की सुख-शान्ति बढ़े, उसकी शारीरिक और मानसिक उन्नति हो। उसने ब्रह्मचर्य की दीक्षा से लेकर देशों को विजय करने तक की अनेक बातें दी हैं। शहरों का बसाना, खुफिया पुलिस का इन्तजाम, फौज की रचना, अदालतों की स्थापना, फौजदारी और दीवानी के कानून, विवाह सम्बन्धी नियम, दाय भाग, दत्तक, शत्रुओं पर चढ़ाई, किलेबन्दी, नये किले बनवाना, संधि तथा उनके भेद और परिवर्तन, ऐसी औषधियों का प्रयोग जिनके द्वारा शत्रुओं को युद्ध में भयंकर हानि पहुँचे, अनेक प्रकार की व्यूह-रचना आदि विविध बातों का वर्णन किया गया है। वास्तव में भारत के प्राचीन विद्वान अर्थशास्त्र का क्षेत्र बहुत व्यापक रखते थे। कौटल्य ने भी उनका अनुकरण करते हुए अपने ग्रन्थ का विषय बहुत विस्तृत रखा है।

प्राचीन विचारधारा की विशेपता—हमें यहाँ प्राचीन आर्थिक विचारधारा की दूसरी विशेषता का उल्लेख करना है। आजकल प्रायः अर्थशास्त्र में भौतिक आवश्यकताओं और उनकी ही पूर्ति के उपायों का विवेचन रहता है। बहुधा आवश्यकताओं को बढ़ाने, रहन-सहन का दर्जा ऊँचा करने, धन की उत्पत्ति

अधिक करने, सस्ता खरीदने, मँहगा बेचने, व्यापार-व्यवसाय द्वारा दूसरे व्यक्तियों या देशों का अधिक-से-अधिक धन आकर्षित करने आदि पर जोर दिया जाता है। समाज में रहनेवाले दूसरे भाइयों के प्रति यथेष्ट कर्तव्यपालन करने, लोक-सेवा और विश्व-बन्धुत्व आदि की भावनाओं की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। संसार को ऐसे विविध राष्ट्रों में, और राष्ट्र को ऐसे विविध मानव समूहों या श्रेणियों में विभक्त समझा जाता है, जिनके स्वार्थ एक-दूसरे से टकराते हों। इसका परिणाम राष्ट्रीय संकट और विश्वव्यापी महायुद्ध है। ऐसा अर्थशास्त्र लोक-हितकारी नहीं होता। भारतीय विचार-धारा के अनुसार चार पुरुषार्थ माने गये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। यहाँ अर्थशास्त्र में धार्मिक अर्थात् नैतिक और सामाजिक कर्तव्य सम्बन्धी विचारों का समावेश अनिवार्य माना जाता था। यही तो यहाँ की महत्वपूर्ण विशेषता है।

भारतीय विचारधारा का महत्व—

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति भोग-विलास या इच्छाओं और कामनाओं की पूर्ति की ओर होती है, और वह इसके लिए अधिक से अधिक अर्थ या धन उपार्जन करता है। यहाँ तक कि वह धनोत्पत्ति को ही जीवन का लक्ष्य बना लेता है। वह दिन-रात इसमें लगा रहता है। वह समझता है कि वह जितना अधिक द्रव्य संग्रह करेगा, उतनी ही अधिक उसकी इच्छाओं की पूर्ति होगी। परन्तु होता है इसके विपरीत। ज्यों-ज्यों उसके पास धन बढ़ता है, उसकी इच्छाएँ और भी अधिक बढ़ जाती हैं। इस प्रकार पहले की अपेक्षा उसके अभाव अधिक हो जाते हैं। उसे अपना सारा प्रयत्न छाया के पीछे दौड़ने के समान मालूम होता है। वह छाया को पकड़ने के लिए जितना अधिक जोर लगाता है, छाया उतनी ही तेजी से आगे बढ़ती जाती है। अस्तु, ऐसे आदमी को जन्म भर शान्ति नहीं मिलती; अन्त में जब जीवन-लीला समाप्त होने को होती है तो कवि के शब्दों में वह यह कहकर अपनी असफलता घोषित करता है कि 'भोगाः न भुक्ता, वयमेव भुक्ता'। वह सोचता है कि क्या ही अच्छा होता कि मैं भोग-विलास रूपी छाया के पीछे न दौड़कर उसकी ओर पीठ फेर लेता, फिर छाया स्वयमेव मेरी सेवा में उपस्थित

आचरण की दैनिकी

[*श्री वृन्दावनलाल वर्मा*]

जब हमलोग ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज में पढ़ते थे सौभाग्य से एक ऐसे प्रोफेसर मिले जिन्हें हम कभी नहीं भूल सकते। उन्होंने एक संघ बनाया जिसकी बैठक सप्ताह में एक बार अवश्य हुआ करती थी। बैठक में नीति सम्बन्धी बातों पर विचार-विमर्श हुआ करता था। अन्त में हमारे प्रोफेसर किसी न किसी नैतिक समस्या पर बड़े हृदयग्राही ढंग से बोला करते थे। नाम उनका प्रो० कुलकर्णी था।

उस प्रकार का संघ या उसमें होनेवाला विचार-विमर्श कोई बड़ी बात न थी, क्योंकि उसमें बहुत असाधारण कुछ न था। जो कुछ बहुत महत्वपूर्ण था वह अपने-अपने आचरण की दैनिकी रखने का आग्रह था।

हमारी संस्कृति—धर्म कह लीजिये उसे—बतलाती है कि हम ईर्षा, द्वेष, परस्वहरण, हिंसा और भय से दूर रहें एवं निष्काम सेवा भी करें। जो जितना कर पावे जीवन का ध्येय रहे यही। उस संघ के हम सदस्य अपने दिनभर के कार्यों और भावों की संक्षिप्त समीक्षा अपनी-अपनी दैनिकी में लिखते थे। कोई किसी की दैनिकी नहीं देख सकता था। कम से कम एक निष्काम कर्म करने का प्रण हम लोगों ने किया था, कोई ऐसा काम करने को न मिले तो किसी भी दुखग्रस्त के लिये अपनी-अपनी प्रार्थना में चुपचाप सद्भाव और सत्कामना रखने-करने का विधान था। यदि अपने प्रण में असफल हो जायं तो गुरु का आदेश था कि पछताओ मत, भविष्य में अधिक तत्परता के साथ बर्तो क्योंकि विफलता सफलता की सीढ़ी है। वे कहते थे कि मन के भीतर पछतावों का ढेर जमा करने की प्रवृत्ति से हीन भावनायें उत्पन्न होती हैं और मन सशक्त नहीं हो पाता। एक उपदेश उनका और था—खूब हँसो, परन्तु यथासंभव दूसरों पर नहीं, अपने ऊपर।

होती। भारतीय धर्मशास्त्रों का आदेश है कि मनुष्य अर्थ या धन के पीछे न लगा रहे, धनोपार्जन में धर्म अर्थात् कर्तव्यों (व्यक्तिगत और सामाजिक) का ध्यान रखे, अर्थ पर धर्म का अंकुश रहे। इसी प्रकार 'काम' अर्थात् वासना में स्वच्छन्द होना भी अनुचित और घातक है। जिस प्रकार अर्थ की बागडोर धर्म के हाथ में रहनी चाहिये, उसी प्रकार 'काम' पर मोक्ष-भाव का नियन्त्रण रहना आवश्यक है। मोक्ष का अर्थ है—भौतिक बन्धनों से मुक्ति।

इस विचारधारा पर और प्रकाश डालने के लिए श्री जवाहरलाल जैन का एक लेखांश ('लोकवाणी', ११-१२-४८ से प्रकाशित) आगे दिया जाता है।

वास्तविक अर्थशास्त्र—मनुष्य समाज का अविभाज्य अङ्ग है। वह समाज के अङ्ग के रूप में ही जन्म लेता है, बढ़ता है, बनता है और खत्म हो जाता है; किन्तु साथ ही वह एक व्यक्ति भी है, उसकी स्वतन्त्र आत्मा और अस्तित्व भी है। इन दो अस्तित्वों का समन्वय, इन दोनों की पारस्परिक प्रेरणा और उन्नति ही मनुष्य का पुरुषार्थ है और जो अर्थशास्त्र इस पुरुषार्थ की विवेचना करे, इसकी व्यवस्था करे, उसे ही वास्तविक अर्थशास्त्र कहना चाहिए।

चार पुरुषार्थ; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—भारतीय विचारधारा ने मानव पुरुषार्थ के कुछ खास विभाग कर दिये हैं। समाज के अंग के रूप में, समाज के पोषण और प्रगति के लिए मनुष्य जो कुछ करे उसे धर्म का नाम दिया गया है। धर्म नाम के पुरुषार्थ में व्यक्ति व समाज के प्रति समग्र कर्तव्य का समावेश हो जाता है। काम के पुरुषार्थ में व्यक्ति का अपने प्रति जो कर्तव्य है, अपने शरीर के, अपने भौतिक व्यक्तित्व के प्रति जितना कुछ उसे करना है, जितना कुछ करने के लिए वह भौतिक होने के नाते बाध्य है, कला और सौन्दर्य की जो कुछ अभिव्यक्ति उसमें स्वाभाविक रूप से होती है, वह सब काम के पुरुषार्थ में निहित है। धर्म और काम की साधना के के लिए, जो कुछ साधन, जो कुछ अवलम्ब मनुष्य को चाहिए वे सब अर्थ नाम के पुरुषार्थ से प्राप्त होते हैं।

मनुष्य, शरीर और आत्मा का संयोग है, शाश्वत और अनित्य का समन्वय है, क्षणिक और सनातन का सम्मेलन है। वह क्षणिक के रूप में उत्पन्न होकर सनातन की ओर, शाश्वत की ओर, आत्मा की ओर, निराकार की ओर बढ़ता है और अन्त में भौतिकता, क्षणिकता को छोड़कर, शरीर को छोड़ निराकार में, शाश्वत में लुप्त हो जाता है, मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। मनुष्य के जीवन की प्रगति भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर है। वह ज्यों-ज्यों भौतिक बन्धनों को कम करता-करता, उनसे ऊपर उठता, उनसे छुटकारा पाता है, मोक्ष पा जाता है, वह चौथे और अन्तिम पुरुषार्थ की ओर अग्रसर होता जाता है। भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर बढ़ना उसका चरम पुरुषार्थ—मोक्ष है, जहाँ व्यक्ति और समाज दोनों उसके लिये एकाकार होकर निराकार हो जाते हैं, खतम हो जाते हैं।

सच्चे अर्थशास्त्र का पश्चिमी अर्थशास्त्र से भेद—इस विस्तृत अर्थ में तो संसार के सारे शास्त्र पुरुषार्थ में शामिल हो जाते हैं, लेकिन अगर धर्म और काम के साधन के रूप में, अर्थ पुरुषार्थ की प्राप्ति के आशय में भी अर्थशास्त्र को समझा जाय, तब भी इसका रूप और क्षेत्र उस अर्थशास्त्र से दूसरे ही प्रकार का होगा, जो आज पश्चिम में और उसकी देखादेखी पूर्व में अर्थशास्त्र के नाम से प्रसिद्ध है।

सच्चा अर्थशास्त्र जैसा अभी कहा गया है धर्म और काम के साधनों का विवेचन और आयोजन है। वह पश्चिमी अर्थशास्त्र के 'आर्थिक मनुष्य'* और उसके हिताहित के कल्पनापूर्ण विवेचन से बिल्कुल अलग है। यह अर्थशास्त्र समाज और व्यक्ति की आवश्यकताओं का—धर्म और काम का समन्वय करता है।

इस अवस्था में यह अर्थशास्त्र उसी प्रकार के उत्पादन का समर्थन करेगा जिसमें समाज की रक्षा हो; समाज के अधिकांश भाग को हानि पहुँचाकर, अपने पेट को मोटा कर लेने को अर्थशास्त्र, उन्नति नहीं कहेगा। वह यन्त्रों के अन्धाधुन्ध उपयोग से मानव-श्रम को बेकार कर देने का समर्थन नहीं करेगा। वह कम-से-कम भाव में खरीदने और ऊँचे-से-ऊँचे भाव में बेचने को वाजिब नहीं मानेगा, बल्कि जिस चीज की अधिक-से-अधिक समाज को आवश्यकता हो उसका उत्पादन करने पर, परावलम्बन से अधिक-से-अधिक बचने पर जोर देगा। वह, ज्यादा मुनाफा होता है, इसलिए बम बनाना लाभदायक है—ऐसा नहीं सोचेगा, बल्कि बम बनाने के कारखाने के बजाय अगर लोहे का उपयोग हल बनाने में अच्छा होता हो, तो उसी का समर्थन करेगा, लाभ चाहे उत्पादक को सबसे कम हो या

* आर्थिक मनुष्य' पश्चिमी अर्थशास्त्रियों का वह कल्पित व्यक्ति है, जो अपने जीवन में प्रत्येक बात को केवल अर्थ की दृष्टि से सोचता और करता है। उसकी विचारधारा का केन्द्र-बिन्दु और उसके जीवन का प्रमुख कार्य यही है कि जैसे भी बने, अधिक से अधिक पैसा प्राप्त करे। उसके लिए किसी कार्य की उपयोगिता की कसौटी या मापदंड यही है कि उससे कितना द्रव्य मिलता है।

अधिक। दूसरी ओर वह व्यक्ति को केवल मशीन बनाकर, केवल 'आटोमेटन' बनाकर नहीं छोड़ देगा, वह व्यक्तित्व के अभाव, मानव आत्मा के अभाव को मानकर नहीं चलेगा। वह जीवन का परम-पुरुषार्थ मोक्ष, मानव-कमजोरियों का खात्मा मानकर ही आगे बढ़ेगा और मनुष्य के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के साधन देना अनिवार्य मानेगा। उसका इसी तरह का दृष्टिकोण वितरण, विनिमय और व्यय (उपयोग) के विषय में होगा।

कर्त्तव्यों और अधिकारों का समन्वय—संक्षेप में समाज को व्यक्ति के—आत्मा और शरीर के—कर्त्तव्यों तथा अधिकार का पूरा समन्वय, और आत्मा की उन्नति के लक्ष्य (मोक्ष) को परम पुरुषार्थ मानते हुए धर्म और काम के केवल साधन रूप में अर्थ को मानकर जिस शास्त्र की रचना की जाय, वही वास्तविक अर्थशास्त्र हो सकता है। वही जनता का वास्तविक हित कर सकता है। जहाँ साधन को ही लक्ष्य मान लिया जाय, अर्थ स्वयं देवता बनाकर विठा दिया जाय, जहाँ समाज केवल काम का दास होकर समाज और व्यक्ति दोनों की बलि करदे, वहाँ इस दृष्टिकोण से जो अर्थशास्त्र रचा गया है वह केवल विषमता द्वेष, युद्ध और नाश का ही कारण हो सकता है।

भारत और संसार की वास्तविक उन्नति—सच्चा अर्थशास्त्र समाज और व्यक्ति, धर्म और काम को साधन रूप में, मनुष्य को भौतिक और नैतिक उन्नति को लक्ष्य मानकर चलने से ही बन सकता है, और वही अर्थ-शास्त्र भारत और संसार की वास्तविक उन्नति का कारण हो सकता है। केवल भौतिकता, व्यक्ति और काम पर आधारित एकांगी पश्चिमी अर्थशास्त्र तो हमें बन्धन की ओर, दुख की ओर, नाश की ओर ही ले जा सकता है; आत्मा की ओर, शान्ति और समृद्धि की ओर, मोक्ष की ओर नहीं। यही उपनिषद्कारों के महान सूत्र 'सा विद्या या विमुक्तये' का रहस्य है।

ऊपर संक्षेप में अर्थशास्त्र सम्बन्धी भारतीय विचारधारा क्या है, यह बताने का प्रयत्न किया गया है। इसकी आवश्यकता इसलिये है कि यह सर्वोदय भावना युक्त है, इसमें सबके भले की कामना है। पाठकों की दृष्टि यह रहनी चाहिए कि वे किसी बात को केवल इसलिए ही मान्य न करें कि वह प्रचलित है, या वर्तमान बहुजन समाज अथवा राजनीतिज्ञों द्वारा स्वीकृत है, अथवा वह हमारे देश में बहुत समय से अमल में आती रही है। हमें स्वतन्त्र विचारक होना चाहिए और किसी बात को तभी मान्य करना चाहिए, जब वह सर्वोदय या मानवता की कसौटी पर कसे जाने के बाद ठीक जचे। अर्थशास्त्र का सर्वोदय दृष्टि से विचार होने पर ही सच्चे अर्थशास्त्र की रचना होती है।*

रचनात्मक कार्य की महत्ता

[श्री उच्छंगराय ढेबर]

यदि राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय दृढ़ता, ये आधारशिलाएँ हैं और यदि देशकी एकता के लिए राष्ट्रीयता आवश्यक है, तो इस एकता को प्राप्त करने का एक तरीका रचनात्मक काम है। रचनात्मक क्रान्ति एक मूक क्रान्ति होती है। वह रोग को जड़ से नष्ट कर देती है। इसके अलावा रचनात्मक कार्यों में, मरीज के साथ-ही-साथ हकीम का इलाज करने की भी शक्ति है। यह हमें एक नयी रोशनी भी देता है। यह हमें अपने आपको समझने का एक मौका देता है। यह समाज के साथ हमारे सम्बन्धों में क्रान्ति ला देता है। कोरी नारेबाजी और ऊपरी हमदर्दी की जगह जनता के मसलों को सुलझाने से सक्रिय सहानुभूति और स्नेह के बन्धन पैदा होते हैं। सिर्फ इसी तरह जनता के दिल और दिमाग पर असर डालने की उम्मीद की जा सकती है। एकता, समानता और सहानुभूति का दिखावटी प्रदर्शन हमारे काम में न आयेगा, जिस तरह कि वह भारत के पुराने राजपूत, मुगल या मराठा शासकों के काम न आया था। आखिर तक सिर्फ वही ढाँचा कायम रहेगा, जो सेवा और बलिदान द्वारा जनता के प्रेम और विश्वास की ठोस नींव पर आधारित होगा।

शिक्षा-प्रणाली

हमारा मकसद केवल आर्थिक समानता लाना ही नहीं है। इस राष्ट्र के समूचे व्यक्तित्व का हम एकीकरण चाहते हैं। हम अपनी शिक्षा-प्रणाली में क्रान्तिकारी तबदीली के लिए वचनबद्ध हैं। यह एक ऐसा काम है, जिससे हमारे समाज का भविष्य जुड़ा हुआ है। अगर मेहनत की इज्जत, सामाजिक समानता और आर्थिक न्याय की बुनियाद पर हमें नया समाज बनाया है, तो राष्ट्रीय शिक्षा के पहलू को नजरअन्दाज करना गंवारा नहीं किया जा

(शेषांश पृष्ठ २९ पर)

* लेखक के 'भारतीय अर्थशास्त्र' के नये संस्करण से जो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है।

विचारप्रधान लेख—

दोषपूर्ण तत्वों का उन्मूलन कर क्रमिक विकास का प्रथम सोपान

[समाज में रहकर हमें कोई न कोई काम अवश्य करना पड़ता है किन्तु उसके प्रति हमारा दृष्टिकोण संग्रह व शोषण का नहीं, अपितु कर्तव्य और सत्य का होना चाहिये। इस भावना को मानव जीवन में जाग्रत कर अणुव्रत आन्दोलन के पास आत्म-साक्षात्कार की क्रमिक भूमिका क्या है—इसका उत्तर मुनिश्री के प्रस्तुत विचारों में पढ़िये। —सम्पादक]

समाज का समतापूर्ण और स्थिर आर्थिक और राजनैतिक ढांचा ही नैतिकता का आधार है—यह भी अर्ध-सत्य है। लड़खड़ाती हुई आर्थिक स्थिति में भी त्याग के संस्कारों में पलनेवाले लोग अनीति से परे रहे हैं और रहते आ रहे हैं। आर्थिक साम्य में भी अपराधों का लम्बा सूचीपत्र बनता है। इन दोनों स्थितियों को अन्तिम छोर या आपवादिक घटनायें नहीं कहा जा सकता। यह सचाई है। इसीके सहारे हमें नैतिकता का आधार ढूंढ़ना है। बुराई न करने में अपनी भलाई का विश्वास, बुराई का बुरा फल भोगने के निश्चित नियम का विश्वास, आत्मा के अमरत्व का विश्वास ये तीन विश्वास नैतिकता के आधार हैं। इनका विकास किये बिना नैतिकता का प्रतिष्ठापन नहीं किया जा सकता। समाजार्पण और सामाजिक एकता की दृढ़ भावना भी नैतिकता का स्थूल आधार बन सकती है पर इस आधार पर नैतिकता व्यापक नहीं हो सकती। वह अपने समाज और राष्ट्र तक ही सीमित होती है। वह दूसरों के प्रति अधिक अनैतिक-कूटना के रूप में उभर आती है। जैसा कि बहुत सारे भौतिक विचारप्रधान राष्ट्रों में हो रहा है। यही हाल आर्थिक और राजनैतिक साम्य के आधार में बंध जानेवाली नैतिकता का है। इसलिये हमें पथ की लम्बाई को कम नहीं नापना चाहिये। नैतिकता के सही आधार को प्रकाश में लाया जाये और उसके संस्कार दृढ़मूल किये जायें—यह बहुत बड़ी अपेक्षा है।

अर्जन-पद्धति का विचार

शोषण और संग्रह-इन दोनों का आधार अर्जन-पद्धति है। अर्थार्जन की पद्धति जहाँ नैतिकता से पूरित होती है वहां शोषण और अनावश्यक और संग्रह नहीं होता और जब वह

अणुव्रत-दर्शन
१०

स्वार्थ-पूरित होती है वहां वैतनिक कर्मचारी की बुद्धि, क्षमता और श्रम का शोषण होता है, परिश्रम अधिक लिया जाता है, मूल्य कम चुकाया जाता है। यह स्थिति की विवशता से लाभ उठाने की पद्धति है। इससे हृदय में क्रूरता बढ़ती है। अणुव्रती क्रूर व्यवहार न करने और अतिश्रम न लेने का व्रत इसलिये लेता है कि वैसा करना संकल्पी हिंसा है, दूसरों के औचित्य और अधिकारों का जानबूझ कर किया जानेवाला हनन है।

संग्रह की लालसा तीव्र होती है तभी अर्जन-पद्धति को बड़ा रूप मिलता है। अणुव्रती संग्रह में विश्वास नहीं करते। वैसी स्थिति में अर्जन पद्धति को भारी भरकम बनाने या बनाये रखने का कोई अर्थ नहीं होता। उन्हें बड़े व्यवसाय, बड़े उद्योग से बचना चाहिये। दूसरों के श्रम पर निर्भर बने रहने की वृत्ति तोड़ फेंकनी चाहिये। जहाँ छोटा उद्योग या अपने श्रम पर निर्भर उद्योग या व्यवसाय चलता है वहां संकल्पी हिंसा की गुंजायश नहीं होती। अपने हाथ से श्रम करनेवाले व अपनी आवश्यकता—पूरक वस्तुओं का स्वयं उत्पादन करनेवाले दूसरों की बुद्धिबल, शक्तिबल, श्रमबल के शोषण से सहजतया बच जाते हैं।

जीवन-निर्वाह के अनिवार्य साधन तीन माने जाते रहे हैं—(१) कृषि, (२) वाणिज्य और (३) शिल्प। अन्न का उत्पादन, वस्त्र का उत्पादन और विनिमय। उत्पादन और विनिमय दो आवश्यक कर्म हैं। इनके आधार पर दो श्रेणियां बनीं—उत्पादक और विनिमयकर्ता, उत्पादक उत्पादन करते और विनिमयकर्ता विनिमय के माध्यम से उत्पादकों की भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं की पूर्ति करते। एक का उत्पादन से और दूसरे का विनिमयसे जीवन-निर्वाह हो जाता। सुरक्षा और विद्या दान-ये भी जीवन-निर्वाह के सामान्य साधन थे। यह तब की स्थिति है जब मनुष्य में संग्रह का भाव विकसित नहीं हुआ था। केवल जीवन-निर्वाह का ही भाव था। ज्यों-ज्यों कृत्रिम आवश्यकतायें बढ़ने लगीं, सुख-सुविधा, विलास व आलस्य या ऐशो-आराम बढ़ने लगा, त्यों-त्यों संग्रह बढ़ने लगा और अर्जन की पद्धतियां शोषणपूर्ण व क्रूर बनती गईं। हिंसा-प्रधान व भोग-प्रधान वातावरण में ऐसा हुआ और यदि समाज अहिंसा-प्रधान और त्याग-प्रधान

[मुनिश्री नथमलजी]

बनना चाहे तो उसे इन स्थितियों में परिवर्तन लाना ही होगा, कृत्रिम आवश्यकतायें मिटानी ही होंगी, सुख-सुविधा व विलास के एकाधिकार को मिटाना होगा, संग्रह को कम करना होगा और अर्जन पद्धति में से शोषण का भाग दूर फेंकना होगा। ऐसा किये बिना संकल्पी हिंसा से मुक्ति कहां ?

अणुव्रती खेती भी करते हैं, व्यवसाय और अध्यापन भी करते हैं इनमें से किसी के साथ भी संग्रह और दूसरों के स्वत्वहरण की वृत्ति जुड़ जाती है वहीं संकल्पी हिंसा आ जाती है। अर्जन-पद्धति में शोषण का दोष स्वयं नहीं आता। वह संग्रह-भोग और कृत्रिम आवश्यकता वृद्धि की कारण परम्परा से आता है। अणुव्रत-आन्दोलन के व्रत अर्थार्जन की पद्धति को दोषपूर्ण बनानेवाले कारणों का उन्मूलन किया चाहते हैं। उस दृष्टिसे कृत्रिम आवश्यकता नियन्त्रण, भोग-नियंत्रण और संग्रह-नियंत्रण के द्वारा अर्जन-पद्धति का नियंत्रण किया गया है।

व्रतों के श्रेणी-विभाग की भित्ति : क्रमिक विकास की परिकल्पना

अणुव्रत-आन्दोलन की तीन श्रेणियां हैं : (१) प्रवेशक अणुव्रती, (२) अणुव्रती और (३) विशिष्ट अणुव्रती। इनका आधार साधना का क्रमिक अभ्यास है। व्यक्ति अपनी वृत्तियों का परिमार्जन करे—यह व्रत-ग्रहण की दृष्टि है। एक ही वृत्ति के अनेक रूप और उसकी अभिव्यक्ति के अनेक मार्ग होते हैं। वृत्तिका शोधन नहीं होता, केवल रूप और मार्ग का निरोध होता है तब वह मिटती नहीं, रूपान्तरित व मार्गान्तरित हो जाती है। बुराई नहीं मिटती, उसके रूप और प्रगट होने का मार्ग बदल जाता है। जैसा कि मैंने एक कविता में लिखा है :—

"बुरी बुराई होती उससे,
बुरा कि वह संस्कार।
जो कि बुराई को देता है,
नित्य नया आकार ॥ १ ॥
पतझड़ होता फूल टूटते,
दृढ़ रहता है मूल।
फिर से आते ही रहते हैं,
पत्र और फल फूल ॥ २ ॥
अन्तर का शोधन नहीं होता,
भर जाता है घाव।
पीव दूसरा मार्ग बनाती,
सबका यही स्वभाव ॥ ३ ॥
नहीं वासनायें मिटती हैं,
होता कोरा त्याग।
मार्गान्तर से बाहर आता,
अन्तर का अनुराग ॥ ४ ॥
करो धारणा; नहीं व्रतों की,
सीमा प्रत्याहार।
जुड़ जायेगा चित्त ध्येय से,
होंगे तब शृङ्गार ॥ ५ ॥
नहीं बने ही बने रहेंगे,
व्रत केवल शिर भार।
करो न आँख मिचौनी उनसे,
वे अमूल्य उपहार ॥ ६ ॥
शान्ति भ्रान्ति में नहीं मिलेगी,
ढूंढो सच आधार।
परम तत्त्व है शान्ति साधना,
जो जीवन का सार ॥ ७ ॥

(शेषांश पृष्ठ २९ पर)

आँधियो ! मुझको न छेड़ो

[श्री पीताम्बरदत्त शास्त्री 'भ्रान्त']

सैकड़ों आये पतंगे प्राण खोने
राह पर अस्तित्व खोकर राख होने,
किन्तु मैं पलता रहा हूं पथ बताने
नाश के स्वर में सृजन का स्वर बजाने
आँधियो ! मुझको न छेड़ो घन तिमिर में-
स्नेह से जलता रहा हूं इस अजिर में।
स्वप्न में स्पन्दित हृदय का सत्य बोने
ज्योति से भरने जगत के अन्ध कोने,
चेतना में प्यार के लेकर बहाने
चल रहा हूं मृत्यु में जीवन जगाने,
आँधियो ! मुझको न छेड़ो घन तिमिर में-
स्नेह से जलता रहा हूं इस अजिर में।
आँधियां कितनी चलीं संताप ढोने
व्याधियाँ कितनी चलीं चीत्कार होने,
किन्तु मैं संसार में कब से न जाने,
जल रहा हूं कालिमा मन की मिटाने
आँधियो ! मुझको न छेड़ो घन तिमिर में-
स्नेह से जलता रहा हूं इस अजिर में।

[समाज में दो दृष्टिकोण हैं, दो अवस्थायें हैं, दो विचार हैं, दो वर्ग हैं और हैं दो पहलू। इनके बीच दोनों ही दृष्टियों से हमारा नैतिक कर्तव्य क्या है? इसकी ओर प्रेरित करना ही इस कहानी का आशय है। —सम्पादक]

एक कहानी—

सावनी

卐

[श्री रामरतन 'ज्वेल']

यह दरियागंज है, जो दिल्ली के मध्य भाग में स्थित है इसके सामने से एक सड़क सिधी क्वींस रोड को जाती है, और दक्षिणी भाग में एक सुन्दर छोटी सी बस्ती है। जिसमें अधिकांश मजदूर व मध्यम श्रेणी के लोग रहते हैं। दोनों ओर कुछ मकानात हैं, मध्य में से एक धूल भरी सड़क है, जो क्वींस रोडसे होती हुई राजघाट तक जाती है। मकान साधारण व बांस की चिपटीयों तथा कच्ची ईंटों के द्वारा बने हुए हैं। हरेक मकान के आगे एक-एक ओसारे बने हैं। पानी से बचने के लिए ओसरों पर कुछ टाट तथा छादरीया बांध दी हैं, हरेक मकान में कम से कम २ कमरे हैं, जिसमें किसी भी प्रकार निर्वाह करते है। हरेक मकान के पीछे एक-एक वाड़ा है, जिसे पिछ-वाड़ा कहते हैं जिसके अन्दर गुसलखाने बने हैं। बस्ती के मध्य में एक बारहा टोटी का नल है। जिसमें से सब पानी भरते हैं बस्ती के पश्चिमी भाग में एक शासकीय औषधालय है, जिसमें मुफ्त दवा नाममात्र को मिलती है। पास में ही डाकखाना है। जग्गु दादा भी इसी बस्ती में रहते हैं, जग्गु का साधारण सा परिवार है, उसकी उम्र लगभग ५०-५५ के आसपास थी, जग्गु दादा शरीर से अच्छे थे, और रोबदार मूछ तथा भरे हुए गाल इसके प्रतीक थे कि जग्गु अवश्य अपने समय का एक पहलवान होगा। उसके बाल सफेद हो चले थे।

जग्गु सुप्रीम कोर्ट में चपरासगिरी करता है, वह ११ से ५ तक ड्यूटी देता है, इस बीच में वह सत्-असत्य का व्यापार देखा करता है। जग्गु को ६५ रुपये प्रति मास वेतन मय मंह-गाई के मिलता है। पहिले भी जग्गुको गोरांग महाप्रभुओं के राज्य में इतनी ही तनख्वाह मिलती थी और आज भी...... । जग्गु को अदालत का काफी अनुभव हो चुका था। क्योंकि जग्गु को कम से कम ३० वर्ष हो गये थे चपरासगिरी करते-करते। जग्गु ६५) रु० में ही अपनी गृहस्थी चलाता था, परिवार में कुल ४ प्राणी थे, एक स्वयं, एक उसकी धर्मपत्नी रधिया तथा एक लड़की व एक ग्यारह वर्ष का लड़का। जग्गु की लड़की का नाम अयोध्या था, पर उसे घरवाले अजु कहकर पुकारते थे। अजु की उम्र १३ साल की थी, अजु में स्वाभाविक सौन्दर्य था, जग्गु ने जैसे-तैसे करके गत वर्ष दूर सुदूर मालवाके एक छोटे से कस्बे में, एक गरीब किसान के लड़के के साथ उसकी मंगनी कर दी थी।

अजु की ससुराल में खेती-बाड़ी थी, अजु के सुसर वृन्दावनलाल बहुत सज्जन व्यक्ति हैं सारे कस्बेवाले वृन्दावन कहकर पुकारते थे। वृन्दावन का एक ही लड़का है। जिसका नाम गोरधन है वही वृन्दावन के बुढ़ापे की एक मात्र लकड़ी था। ३ साल से पानी न गिरने के कारण अबके फसल नहीं आई थी, गोरधन जमींदार सा० के यहां साधारण क्लर्क है उसके वल प्रति मास ६०) रु० मिलते थे जिससे वृन्दावन की गृहस्थी चलती थी, वृन्दावन ने बड़े नाज़ों के साथ गोरधन को इतनी शिक्षा देकर इस योग्य दिया था कि वह दुर्दिन के समय काम आ रहा था।

वृन्दावन के मन में बड़े २ हौसले थे, वह वह चाहता था कि किसी भी प्रकार गोरधनकी शादी हो जाय तो मैं बहु के हाथ की गर्म-गर्म रोटी खाऊँ और जीवन के शेष दिन किसी भी तरह काट लूं। मालवा में सावन में बड़े साज-बाज के साथ मनाया जाता है। सावन में बन रचना तथा तीजों का त्यौहार विशेष महत्व रखता है। मालवा में यह रिवाज बहुत पुराना है, कि लड़केवाले लड़कीवाले के यहां "सावनी" ले जाते हैं। गोरधन के माता-पिता की बड़ी उत्कण्ठा थी कि गोरधन की सगाईका यह पहिलावर्ष है इसलिये बहुके लिये "सावनी" ले जाना चाहिये। वृन्दावन भी चाहता था कि वह अपनी आंखों के सामने एक बार अपनी बहु के यहां "सावनी" ले जाऊँ, मगर विवशता और लाचारी के सिवाय वृन्दावन के पास कुछ नहीं था। वह गरीब था पर उसका दिल अमीर था, वृन्दावन को न तो अपनी गरीबी से कोई झिझक थी, न कोई आतुरता।

वृन्दावन ने सोचा चलो जमींदार सा के यहां चलकर कुछ कर्ज के रूप में मांगकर अपनी रस्म अदा कर दूं। वह जमींदार सा

की कोठी की ओर चल दिया, कोठी नजदीक ही थी, वृन्दावन ने चौकीदार नन्द से कहा—क्यों भैय्या ! जमींदार-सा है ? इतना कह कर वह पुनः कोठी की ओर अनिमिष देखने लगा। चौकीदार ने कहा क्यों दद्दू क्या बात है, जो जमींदार सा से मिलने के लिये आये हो ?

वृन्दावन ने अपने भावों को बदलते हुए कहा, भैया जरा अन्दर जाकर जमींदार सा से कह दो कि आप से सुंदरसी से वृन्दावन नाम का किसान जरूरी काम से मिलने आया है। नन्दू ने अन्दर जाकर जमींदार सा से कहा, जो आराम से गद्दे पर लेटे हुए थे। हुजूर ! वृन्दावन नामका एक किसान आपसे मिलना चाहता है ! जमीदार सा ने पान को चबाते हुए कहा, अच्छा वह वृन्दावन सुंदरसी का, जाओ उसे ले आओ।

वृन्दावन ने डरते-डरते कोठी के अन्दर पैर रक्खे और चुपचाप हाथ जोड़कर गरीब गाय सा खड़ा हो गया। जमींदार-सा ने छूटते ही पूछा, क्यों वृन्दावन क्या तुम तकावी के रुपये भरने आये हो ? "तकावी" का नाम सुनते ही वृन्दावन का हृदय कांप उठा। उसने लड़खड़ाती हुई जवान में कहा नहीं हुजुर मैं—मैं तकावी का भुगतान देने नहीं आया, परन्तु कुछ कर्ज मांगने आया हूं।

क्या कहते हो वृंदावन ! तुमने ३ वर्ष से आज तक एक पाई तक नहीं दी और वल्कि मांगने आये हो ! शर्म नहीं आती ? वृन्दावन की हिड़की बंध गई, वह बुदबुदाया, पर हुजुर अबके पानी कहां गिरा और खेती भी कहाँ हुई जिससे मैं तकावी भर सकूँ।

पर मैं क्या करु' वृन्दावन ! पानी गिरे या न गिरे मुझे तो रुपया चाहिए, रुपया समझे। हां और एक बात सुनो मैं ३ साल से मौन था, पर याद रखो कि यदि आज से १ माह के बाद तुमने रुपया मय ब्याज के नहीं चुकाया तो मैं तुम्हारा सब सामान कुर्क करवा लूंगा। जमींदार सा ने जरा तैस से कहा।

वृन्दावन का मानस उभर आया, उसकी निरीह आंखों से दो बूँद आँसू चू पड़े। उसके अन्तस में एक भयानक दौर चल रहा था, उसके हृदय-प्रदेश को जो घायल था सहला दिया गया, फिर उसके अन्तस में एक ऐसा वेग से तूफान आया जिसे वह रोक न सका, "क्यों जमींदार-सा क्या तुम्हारा खजाना हमेशा खाली ही रहता है ? न मालूम कितने मजलूमों की सिसकती आहें तुम्हारे इस निष्ठुर व्यवहार के सामने दबकर रह जाती हैं। लेकिन जमींदार सा अब तुम्हें सोचना पड़ेगा, अपने किये पर पछताना होगा। तुम चन्द चाँदी के टुकड़ों पर इन्सान को खरीदना चाहते हो, पर......... ! कि जमींदार सा ने एक जोर का थप्पड़ वृन्दावन के निरीह गालों पर जड़ दिया, और साथ में एक लात भी। जमींदार ने झल्लाते हुए कहा निर्लज्जा बदमाश—कमीने—पागल कुत्ते ! नहीं तो जान ले लूंगा, पर वृन्दावन इतना कमजोर हो गया था कि वह भारी भरकम लात घूंसों को सहन न कर सका और वह हमेशा हमेशा के लिये इस दुनिया से प्रस्थान कर गया।

एक ओर—

वृन्दावन की "राम नाम सत्य है" के बीच से लाश चली जा रही थी,

दूसरी ओर—

जमींदार सा अपनी बहू के लिये बैंड-बाजों के साथ "सावनी" लिये चले जा रहे थे।

तीसरी ओर—

अजु मौन—अपने ओसारे पर खड़ी हुई थी, शायद "सावनी" की प्रतीक्षा में। पानी रिमझिम-रिमझिम करके बरस रहा था, बादल उसी प्रकार आकाश के रंगीन चित्रों को बटोर कर गरज रहे थे—बरस रहे थे—

और चौथी ओर—शायद इस कहानी का पाठक मानवोचित दुर्बलता के निराकरण की बात सोच रहा था।

आदर्श नागरिक कौन ?

[आचार्यश्री तुलसी]

भारत की जनता त्याग और त्यागियों के सामने सदा झुकती आई है पर वास्तव में तो सन्तों का स्वागत लम्बे-लम्बे वक्तव्यों और बातों से नहीं होता, उनका स्वागत त्याग से ही होना चाहिये। आज का लोक-जीवन दिन-ब-दिन अनैतिकता की ओर बढ़ता जा रहा है। उसे कोई भी बुराई करते समय यह विचार तक नहीं आता कि इस कार्य के कुपरिणाम में मेरी आत्मा, समाज और राष्ट्र का कितना बड़ा नुकसान होगा। जहाँ रिश्वत न लेना, मिलावट न करना, विश्वासघात न करना आदि उपदेश देने की आवश्यकता तक नहीं होती थी, वहाँ आज ये इतनी व्यापक बुराइयाँ हैं कि जन-जन इनका बुरी तरह शिकार है। आप इस तरह की बुराइयों में पड़ अपने जीवन को बरबाद न करें, उसे सत्य, प्रामाणिकता, सदाचार, स्नेह, आदि सद्गुणों से सजायें जिससे वह अपनी आत्मा के हित-साधन के साथ राष्ट्र का एक आदर्श नागरिक बन सके।

सर्वहितकारी अणुव्रत आन्दोलन

[प्रो० श्री विश्वेश्वरप्रसाद]

धर्म के लक्षण सर्वव्यापी हैं और उसका किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध नहीं रहता है, परन्तु जबतक धारण नहीं किया जाता धर्म सार्थक नहीं होता, अतः धर्म के लक्षणों की स्पष्ट परिभाषा और उनपर पूर्ण रूप से चलना यह दो बातें समाज के उद्भव के लिए नितान्त आवश्यक है। जब-जब समाज अशृंखल हो जाता है और उसका पतन होने लगता है तो इस अवनति का मूल कारण समाज के व्यक्तियों की धर्म के प्रति उपेक्षा होती है। यदि समाज उन्नतिशील होता है तो उसके व्यक्तियों की धर्म के प्रति निष्ठा होती है और वह अपने आचरण में धर्म के ध्रुव लक्षणों का समुचित व्यवहार करते हैं। अवनति से उन्नति के मार्ग का पथ-प्रदर्शन महापुरुष करते हैं और इनका संकेत अथवा उपदेश जनता को धर्मरत करने के लिए होता है। हमारे समाज में किन्हीं कारणों से साधारण जन समुदाय का दृष्टिकोण आध्यात्मिक न रहकर व्यावहारिक हो गया है और प्रगति उलटी और ही है। जिसका प्रमाण यही है कि क्षणिक लोभ में मनुष्य कर्तव्यहीन हो जाता है और अकर्तव्यता को ही मान्य समझता है। जो संस्था या महापुरुष समाज की इस दुर्गति का ज्ञान कराता है, उसके विपरीत ध्यान आकृष्ट करता है तथा सदाचार पर बल देता है वह श्रद्धा के योग्य है। अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्रीतुलसी ने आन्दोलन आरम्भ किया है वह श्लाघ्य है और सर्वव्यापी होने के योग्य भी।

धर्म के पांच विशिष्ट लक्षण हैं, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इनमें से प्रत्येक जीवन की सार्थकता, महत्ता और कर्तव्य-परायणता के लिये पर्याप्त है और यदि कोई मनुष्य इन पांचों को अपने आचरण का द्योतक बनाले तो वह पूर्णरूपेण सभ्य और शिष्ट बन जाता है। महात्मा गांधी ने अपने जीवन में इन नियमों का पालन किया और जनता को इनका पालन करने के लिए बल दिया। पूर्व काल से आज तक सभी महापुरुषों, धर्म प्रवर्तकों और आचार्यों ने चाहे जिस देश या काल में हुए हों, इन नियमों को लोक कल्याणकारी माना है और इनका आचरण करने के लिए पूर्ण बल दिया है। आजकल के कलहात्मक, हिंसापूर्ण संसार में जहां अन्य अधिकारापहरण और दूसरों को दमन करना यही मुख्य उद्देश्य हो गए हैं, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, या अपरिग्रह का प्रचार करना और प्रत्येक व्यक्ति को इन नियमों के पालन के लिए प्रेरित करना एक महान कार्य है। अणुव्रत इन नियमों के पालन का ही आन्दोलन है और इसके प्रवर्तक यह प्रयत्न करते हैं कि विशेष वर्गों के स्त्री-पुरुष इन महानियमों के आधीन अनेक उपनियमों का पालन करें जिनसे उनका स्वयं आचरण बने, और वे समाजविरोधी कार्यों के कर्ता न बनें।

अहिंसा सम्बन्धी उपनियमों में कतिपय ऐसे भी हैं जिनसे कदाचित कुछ लोग सहमत न हों, या अनेक देशों में उनका पूर्ण पालन न हो सके। परन्तु यह आन्दोलन जैन मुनियों का बनाया हुआ है और जैन धर्म के आचार-विचार का समावेश होना अवश्यम्भावी है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि पूर्ण अहिंसक होने के लिए इन उपनियमों पर चलना नितान्त आवश्यक है, अहिंसा का पुजारी सत्य और अचौर्य को छोड़कर नहीं चल सकता, अहिंसक के लिए इन दो नियमों पर पूर्ण दृढ़ व्रत होना आधारी है। इसीलिए इस आन्दोलन ने इन दो नियमों पर भी विशेष बल दिया है। अचौर्य और अपरिग्रह सम्बन्धी उपनियम बहुत ही व्यापक हैं और एक वर्ग विशेष में नैतिकता लाने में विशेष सहाय्य होंगे। हमारा व्यपारी दल धन कमाने के लिए आजकल अनेक ऐसे उपायों का आश्रय लेता है जो समाज के लिए घातक हैं। नित्यप्रति जनता इन समाजद्रोही व्यवसाइयों के हीन, समाज अहितकर और मनुष्य घातक उद्योगों का

[शेषांश पृष्ठ २९ पर]

जागो, हे जीवन जागो !

[श्री महेन्द्र भटनागर]

कूल बढ़े हैं नदियों के,
सोये जागे सदियों के,
मूक व्यथाएँ खो जाएँ ;
वंदी युग - यौवन जागो !
जागो, हे जीवन जागो !

उत्सर्ग भरे गानों से,
प्राणों के बलिदानों से,
त्रस्त मनुज के उद्धारक-
हे नवयुग के मन जागो !
जागो, हे जीवन जागो !

चंचल चपला के उर में,
ज्वालागिरि के अंतर में,
जो हलचल; उसको लेकर
जगती के कण-कण जागो !
जागो, हे जीवन जागो !

—०—

आनन्द कहां है ?

[श्री टेकचन्द गुप्त]

मनुष्य क्या चाहता है ? आनन्द। किन्तु आनन्द है कहां ? शारीरिक क्षुधा की पूर्ति में। भौतिक उपकरणों के बटोरने में ! स्वर्ग अर्थात् परलोक में ! आनन्द है कहां ? यही एक प्रश्न ऐसा है, जिसने सारे संसार को चमत्कृत कर रखा है।

संसार के अन्य धर्मों, पंथों के अतिरिक्त आनन्द की खोज में भारतीयों ने भी युक्ति युक्त, परमोच्च, सफल और व्यवहार्य मौलिकता का परिचय दिया है।

आज हम इस विवादग्रस्त प्रश्न को लेकर भी वादगत संकीर्णता में पड़ना नहीं चाहते। सर्व सामान्य सिद्धान्तों का, जिनपर भारतीय दर्शन का ज्ञानात्मक प्रभाव, बाह्य व अन्तर का एकीकरण स्पष्ट लक्षित है, विचार करेंगे।

विषय-वासनाकी पूर्ति सर्वथा असम्भव है। जिसने विषय-वासना की पूर्ति का, जितना प्रयास किया, उसी अनुपात से वह बढ़ती गई। इस प्रकार से बढ़ते हुये असन्तोष में आनन्द कहां ? भय, अशान्ति के भयङ्कर संघर्ष, आज संसार को किस गति के साथ, विनाश की ओर ले जा रहे हैं, कहने की आवश्यकता नहीं।

भौतिक उपकरणों को जुटाकर रमण करने की प्रवृत्ति, यद्यपि स्वाभाविक है; परन्तु रमण करने से पूर्व, जो आनन्द दिखाई देता है, क्या आगे चलकर भी वैसा ही आनन्द मिलता है ? एक ग्रामोफोन के आजाने पर रेडियो की इच्छा, रेडियो के आजाने पर टेलिविजन के स्वप्न और स्वप्नों की पूर्ति के लिये धन चाहिये। धन-लिप्सा को पूर्ण करने के लिये अनाचार, अत्याचार, शोषण, धोखा, दगा, फरेब, असत्य, कपट और न जाने क्या-क्या करना पड़ता है। इस असुर वृत्ति के प्रभावी हो जाने पर आनन्द कहाँ ? स्पष्ट है आनन्द वस्तु में नहीं, हृदय में है। भौतिक जीवन से ऊबकर संसार की चित्र-विचित्र रचना करनेवाली शक्ति-ईश्वर की ओर निहारना भी स्वाभाविक है। दुःख के भय से स्वर्गादि की कल्पनायें, मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होनेवाला जीवन आदि आनंदित, श्रद्धापूर्ण भाव, थोड़ी देर के लिये भले ही सुख दे दें, किन्तु दुःखपूर्ण दुनिया के शोक से मुक्त नहीं हो सकते। इस प्रकार के भयांक असमाधान के अनुभव में आनन्द कहां ?

मनुष्य अर्थात् जीव, विश्व और इसके चलानेवाला ईश्वर, यह तीनों विन्दु, जिस विस्तृत वृत को बनाते हैं, वही सर्वत्र व्याप्त आकार ब्रह्म अर्थात् आनन्द है। इस प्रकार ब्रह्म या आत्मा का साक्षात्कार ही आनन्द है। प्रश्न होता है कि ब्रह्म का साक्षात्कार कैसे हो ? यह प्रश्न, जब जिज्ञासा की तीव्रतर उत्कण्ठा बनकर, एकात्मकता की ओर बढ़ने का प्रयास करता है, तभी आनन्द का मधुर आभास होने लगता है। एकात्म्य होना ही वस्तुतः आनन्द का साक्षात्कार है।

जीव सीमित है अर्थात् एक विन्दु मात्र है, ब्रह्म सर्वव्यापी तीनों विन्दुओं पर स्थित मण्डलाकार है। जीवरूपी विन्दु जब अपनी लघु सीमा को छोड़कर असीम, ब्रह्म "मण्डलाकार" के साथ सम्बन्ध जोड़ देता है, तो वह स्वयं ही ब्रह्म बन जाता है। अर्थात् मनुष्य ही ब्रह्म है।

जब मनुष्य अपने लघुत्व को-अल्पत्व को छोड़कर विशालता का अनुभव, जिस अनुपात से करने की चेष्टा करता है, उसी अनुपात से आनन्द की प्राप्ति होती रहती है। किन्तु ममत्व की संकीर्ण बेड़ियाँ तोड़ना बड़ा कठिन कार्य है। आज इस संकीर्णता की सीमायें कितनी दृढ़ हो गई हैं कहने की आवश्यकता नहीं। सर्वसाधारण ही नहीं, विशेष विचारशील प्राणी 'मैं हूं, मेरा घर है, मेरा प्रान्त और मेरी भाषा' की लघु लालसा को लेकर बढ़ रहे हैं। क्या यह विशालता का ही मार्ग है ? नहीं, प्रान्तीयता के मोह के कारण विशुद्ध राष्ट्रीयता की हत्या अर्थात् ब्रह्म के प्रति विद्रोह है।

इस प्रकार की क्षुद्र भावनायें, संकुचित सीमायें अपने चारों ओर खींचकर मनुष्य स्वयं दुःख का अनुभव करता है। सीमित सीमाओं को छोड़कर, स्वार्थ से ऊपर उठकर, संयम व त्याग का परिचय दिये बिना, शान्ति कहां ! सुख कहाँ !! आनन्द कहाँ !!!

व्यष्टि, समष्टि, परमेष्टी अर्थात् व्यक्ति, समाज, विश्वात्मा का विचार ही आनन्द है ! संकीर्णता को त्याग कर, संयम और त्याग की प्रखर अग्नि प्रदीप्त करनी होगी। यही हमारा यज्ञ है, यही तप है, यही मोक्ष है !

समाज के साथ अभेद-दृष्टि रखने पर ही सद्भावनाओं के सत्य स्वरूप—प्रेम का प्रादुर्भाव हो जाने पर ही, असंख्य दीन, हीन, दुखी, निराश्रित प्राणियों को दिक्-दृष्टि

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

समन्वय और सहयोग की प्रतीक

भारतीय संस्कृति

श्री जवाहरलाल नेहरू

बहुत से मनीषी मार्क्सवाद और उसकी शाखाओं की ओर आकृष्ट हुए और इसमें सन्देह नहीं कि मार्क्सवाद ने एतिहासिक विकास का विश्लेषण उपस्थित करके समस्याओं पर सोचने और उन्हें समझने के काम में हमारी सहायना की। लेकिन आखिर को वह भी संकीर्ण मतवाद बन गया और जीवन की आर्थिक पद्धति के रूप में उसका चाहे जो भी महत्व हो, हमारी बुनियादी शंकाओं का समाधान निकालने में वह भी नाकामयाब है। यह मानना तो ठीक है कि आर्थिक उन्नति जीने और प्रगति का बुनियादी आधार है, लेकिन जिन्दगी वहीं तक खत्म नहीं होती, वह आर्थिक विकास से कहीं ऊँची चीज है।

इतिहास के अन्दर हम दो सिद्धान्तों को काम करते देखते हैं। एक तो सातत्य का सिद्धान्त है और दूसरा परिवर्तन का। ये दोनों सिद्धान्त परस्पर विरोधी से लगते हैं, लेकिन वे विरोधी हैं नहीं। सातत्य के भीतर परिवर्तन का अंश है। इसी प्रकार परिवर्तन भी अपने भीतर सातत्य का कुछ अंश लिए रहता है।

इतिहास में कभी ऐसा भी समय आता है जब परिवर्तन की प्रक्रिया और तेजी कुछ और अधिक प्रत्यक्ष हो जाती है। लेकिन साधारणतः बाहर से उसकी गति दिखाई नहीं देती। परिवर्तन का बाहरी रूप, प्रायः निस्पन्द ही दीखता है। जातियाँ जब अगति की अवस्था में रहती हैं तब उनकी शक्ति दिनों-दिन छीजती जाती है, उनकी कमजोरियाँ बढ़ती जाती हैं। परिणाम यह होता है कि उनकी रचनात्मक कलाओं और प्रवृत्तियों का क्षय हो जाता है और अक्सर वे राजनीतिक दृष्टि से गुलाम भी हो जाती हैं।

भारतीय जनता की संस्कृति का रूप सामाजिक है और उसका विकास धीरे-धीरे हुआ है। एक ओर तो इस संस्कृति का मूल आर्यों से पूर्व, मोहनजोदड़ो आदि की सभ्यता तथा द्रविड़ों की महान सभ्यता तक पहुंचता है। दूसरी ओर, इस संस्कृति पर आर्यों की बहुत ही गहरी छाप है जो भारत में मध्य एशिया से आए थे। पीछे चलकर, यह संस्कृति उत्तर-पश्चिम से आनेवाले तथा फिर समुद्र की राह से पश्चिम से आनेवालों से बार-बार प्रभावित हुई। इस प्रकार, हमारी राष्ट्रीय संस्कृति ने धीरे-धीरे बढ़कर अपना आकार ग्रहण किया। इस संस्कृति में समन्वय या नये उपकरणों को पचाकर आत्मसात् करने की अद्भुत योग्यता थी। जबतक इसका यह गुण शेष रहा, यह संस्कृति भी जीवित और गतिशील रही। लेकिन बाद को आकर इसकी गतिशीलता जाती रही जिससे यह संस्कृति जड़ हो गई और इसके सारे पहलू कमजोर पड़ गए।

सम्भावना यह है कि भारत में संस्कृति के सबसे प्रबल उपकरण आर्यों और आर्यों से पहले के भारतवासियों खासकर, द्रविड़ों के मिलने से उत्पन्न हुए। इस मिलन, मिश्रण या समन्वय से एक बहुत बड़ी संस्कृति उत्पन्न हुई जिसका प्रतिनिधित्व हमारी प्राचीन भाषा संस्कृत करती है। संस्कृत और प्राचीन पहलवी, ये दोनों भाषाएँ एक ही माँ से मध्य एशिया में जनमी थीं, किन्तु, भारत में आकर संस्कृत ही यहाँ की राष्ट्रभाषा होगई। यहाँ संस्कृत के विकास में उत्तर और दक्षिण दोनों ने योगदान दिया। तथ्य यह है कि आगे चलकर संस्कृत के उत्थान में दक्षिणवालों का अंशदान अत्यन्त प्रमुख रहा। संस्कृत हमारी जनता के विचार और धर्म का ही प्रतीक नहीं बनी, वरन्, भारत की सांस्कृतिक एकता भी उसी भाषा में साकार हुई। बुद्ध के समय से लेकर अबतक संस्कृत यहाँ की जनता की बोली जानेवाली भाषा कभी नहीं रही है, फिर भी सारे भारतवर्ष पर वह अपना प्रचुर-प्रभाव डालती ही आई है।

बहुत दिनों तक बाहरी दुनिया से अलग रहने के कारण, भारत का स्वभाव भी और देशों से भिन्न हो गया। हम ऐसी जाति बन गए जो अपने-आप में घिरी रहती है। हमारे भीतर कुछ ऐसे रिवाजों का चलन हो गया जिन्हें लोग न तो जानते हैं और न समझ ही पाते हैं। जाति-प्रथा के असंख्य रूप भारत के इसी विचित्र स्वभाव के उदाहरण हैं। किसी भी दूसरे देश के लोग यह नहीं जानते कि छुआछूत क्या चीज है तथा दूसरों के साथ खाने-पीने या विवाह करने में जाति को लेकर, किसी को क्या उज़्र होना चाहिए? इन सब बातों को लेकर हमारी दृष्टि संकुचित हो गई...

भारत में दोनों बातें एक साथ बढ़ीं। एक ओर तो विचारों और सिद्धान्तों में हमने अधिक से अधिक उदार और सहिष्णु होने का दावा किया। दूसरी ओर हमारे सामाजिक आचार अत्यन्त संकीर्ण होते गये। यह विभक्त व्यक्तित्व, सिद्धान्त और आचरण का यह विरोध आज तक हमारे साथ है और आज भी हम उसके विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं।

[१५ मार्च, १९५९

प्राचीन भारतीय जीवन घेरों में बन्द नहीं था और न तत्कालीन समाज में ही जड़ता या गतिहीनता की कोई बात थी। लेकिन पिछली शताब्दियों में "पतन की प्रक्रिया" शुरू हो गई। हमारे आचरण की तुलना में हमारे विचार और उद्गार इतने ऊँचे हैं कि उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। बातें तो हम शांति और अहिंसा की करते हैं मगर काम हमारे कुछ और होते हैं। सिद्धान्त तो हम सहिष्णुता का बघारते हैं लेकिन भाव हमारा यह होता है कि सब लोग वैसे ही सोचें जैसे हम सोचते हैं।

जब पश्चिम के लोग समुद्र के पार से यहां आये तब भारत के दरवाजे एक खास दिशा की ओर फिरसे खुल गए। आधुनिक औद्योगिक सभ्यता बिना किसी शोरगुल के धीरे-धीरे इस देश में प्रविष्ट हो गई। नये भावों और नये विचारों ने हमपर हमला किया और हमारे बुद्धिजीवी अङ्गरेज बुद्धिजीवियों की तरह सोचने की आदत डालने लगे। यह मानसिक आन्दोलन बाहर की ओर वातायन खोलने का यह भाव, अपने ढंग पर अच्छा रहा, क्योंकि इससे हम आधुनिक जगत् को थोड़ा-बहुत समझने लगे। इससे एक दोष भी निकला कि हमारे ये बुद्धिजीवी जनता से विच्छिन्न होगए क्योंकि जनता विचारों की इस नई लहर से अप्रभावित थी।

यह सम्भव है कि संसार में जो बड़ी-बड़ी ताकतें काम कर रही हैं उन्हें हम पूरी तरह से न समझ सकें, लेकिन इतना तो हमें समझना ही चाहिये कि भारत क्या है और कैसे इस राष्ट्र ने अपने सामाजिक व्यक्तित्व का विकास किया है, उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू कौन से हैं और उसकी सुदृढ़ता-एकता कहां छिपी हुई है। भारत में बसनेवाली कोई भी जाति यह दावा नहीं कर सकती कि भारत के समस्त मन और सारे विचारों पर उसीका एकाधिकार है। भारत आज जो कुछ है उसकी रचना में भारतीय जनता के प्रत्येक भाग का योगदान है यदि हम इस बुनियादी बात को नहीं समझ पाते तो फिर हम भारत को भी समझने में असमर्थ रहेंगे और यदि हम भारत को नहीं समझ सके तो हमारे भाव, विचार और काम, सबके सब अधूरे रह जाएंगे और हम इस देश की कोई सेवा नहीं कर सकेंगे जो प्रभावपूर्ण और ठोस हो।

श्रद्धांजलि !

अहा! क्या ही मनोहर दृश्य है! आर्य—संस्कृति की पुनीत पताका क्या कभी फहराती देखी है? यदि नहीं तो अब देख! यह किसी पुण्य-सलिला तटिनी का तट है। स्वर्गानुमोदित कर्मभूमि का अभिषेक इसी जल से हुआ था, शब्द-ब्रह्म की सुगेय गाथा इसी अनादि तरंगिनी की तरंग-तन्त्री से प्रतिध्वनित हुई थी, वेद वाणी को इसी तीर पर ईश्वरीय आदेश प्राप्त हुआ था। इन उपासकों की कैसी सरल और शुद्ध उपासना है? प्रथम प्रभात का दर्शन इन्हीं महात्माओं ने किया था। जीवन-संग्राम में इन आत्मवीरों ने अभूतपूर्व विक्रम से विजय-वैजयन्ती उड़ाई थी। विश्व-प्रेम का अमोघ मन्त्र इन्हीं विश्व-वन्द्य महापुरुषों के पाद-प्रक्षालन से मिलेगा, अन्यथा नहीं। अतएव उठकर प्रणत-भाव से इनके चरणों पर श्रद्धाञ्जलि चढ़ा! ये प्रसन्न होकर तुझे 'ब्राह्मी-स्थिति' का साक्षात्कार करा देंगे।

—*श्री वियोगी हरि*

मेल भरो !

[मुनिश्री मोहनलाल जी]

दीपक दीपक में तेल भरो।
सबमें प्रकाश का तत्त्व एक
गुरु-लघु कह मत बेमेल करो
दीपक दीपक में तेल भरो।

: १ :

यदि अवनीतल से ही तुमको
इस तम का नाम उठाना है
औ अपनी सरल सुघड़ता से
आलोकित विश्व बनाना है
तो फिर पल-पल निर्व्याज प्रीति से
व्यक्ति व्यक्ति में मेल भरो।

: २ :

तुम किसी एक की तो हलके-
झोंके से भी रक्षा करते
पर अन्य किसी का प्रलय पवन
फटकार मार जीवन हरते
इस तरह किसी के जीवन से
मत अरे अपावन खेल करो।

: ३ :

ये सब स्वभाव से ही साथी!
पर-हित जलने के आदी हैं
अपने पथ पर चलने की फिर-
भी कहां इन्हें आजादी है
अपने मतलब के लिये न यों
किसको भी कभी दबेल करो।

दीपक दीपक में तेल भरो।
सबमें प्रकाश का तत्त्व एक
गुरु-लघु कह मत बेमेल करो।
दीपक दीपक में तेल भरो।

[१५ मार्च, १९५६

विश्वशान्ति के लिए—

अहिंसा और मानवता का पाठ बच्चों को पढ़ायें

[श्री वी० खांदेवाले, बी० एस० सी०]

संसार को बारबार युद्ध का खतरा महसूस होता है। अमेरिका के पर-राष्ट्रमंत्री श्री डलेस ने अभी बड़े गर्व से कहा कि उन्होंने संसार को ३ बार युद्ध के निकट पहुँचाया था। पहले से से अब युद्ध और भी भयानक हुआ है। अमरीकी और रूसी गुट के प्रतिनिधि संयुक्त-राष्ट्रसंघ में और अन्य स्थानों पर भी शांति की भाषा बोलते हैं लेकिन उनका दिमाग यही सोचता है कि अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कैसे बढ़े? और संसार की जनता शांति से उतनी ही दूर जा रही है, जितनी कि वह शांति को अपनाना चाहती है।

संसार का हर इन्सान शांति, भर पेट रोटी, वस्त्र और जिन्दगीभर रोजगार चाहता है। मालूम नहीं यह सब चीजें उसे कब नसीब होंगी? लेकिन फिलहाल ऐसी कोई उम्मीद नजर नहीं आती। अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े-बखेड़े सुलझाने के लिये "राष्ट्रसंघ" की स्थापना हुई है लेकिन यह जागतिक संघटन और उसका प्राथमिक उद्देश्य उतना ही सफल रहा है जितना कि प्रथम युद्ध के पश्चात् स्थापित जागतिक संघटन का हुआ था।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि आखिर जागतिक संघटनाऐं असफल क्यों होती हैं? यह तो सब जानते हैं कि 'राष्ट्रसंघ' की कई शाखायें हैं, जिन्हें सांस्कृतिक कह सकते हैं। वे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सफलता से कार्य कर रही हैं। असफल हुई राजकीय शाखा। राजकीय शाखा का प्रथम उद्देश्य है अन्तर्राष्ट्रीय बखेड़े सुलझाना और तनाव कम करना, लेकिन यह उद्देश्य सफल नहीं होता। इसका कारण यह है कि राष्ट्रसंघ में देश-विदेश के प्रतिनिधि समीप बैठते हैं लेकिन उनके दिल और दिमाग उतने ही दूर रहते हैं जितने की उनके देश। हर प्रश्न को हल करने का एक ही रास्ता उन्हें मालूम है और वह है—युद्ध! जहाँ एक ओर संसार में समता की हवा चल रही है, वहाँ ऐसे भी उपनिवेश बाकी हैं जहाँ स्वतंत्रता के आन्दोलन को बंदूक की गोलियों से दबाने की कोशिशें जारी हैं। हर राष्ट्र को (भारत और उसके कुछ साथी राष्ट्र छोड़कर) सत्ता की लालसा है। सबके दिल स्वार्थ से भरे हैं। उनमें 'मानवता' नहीं रही है जो विश्वशांति के लिये परमावश्यक है। नीतिमत्ता पैरों तले कुचली जा रही है। अतः विश्व-शांति के लिये नैतिक स्तर ऊँचा करना और 'मानवता' उत्पन्न करना यह आजकी सबसे कठिन समस्या है।

महात्मा गांधी ने पहले भारत को अहिंसा का मंत्र दिया। पं० नेहरू उसी तत्व पर शांति का प्रचार कर रहे हैं और संसार ने यह देखा कि हर देश का साधारण आदमी पं० नेहरू की कितनी इज्जत करता है। पं० नेहरू ने संसार को 'पंचशील' का महान तत्व दिया है जिससे हर देश शांति से रह सकता है। फिर भी युद्ध का भय कम नहीं हुआ। अमरीका भारत के प्रति स्नेह दिखाता है, रूस भारत के प्रति स्नेह दिखाता है लेकिन अमरीका और रूस में आपस में जरा भी प्रेम नहीं है फिर युद्ध का भय कैसे नष्ट हो सकता है? जबतक विरोधी राष्ट्र एक दूसरे के प्रति स्नेह का बर्ताव नहीं करते तबतक युद्धका भय कम नहीं हो सकता।

आज राजनैतिक क्षेत्र में जो राजनीतिज्ञ हैं उनको अहिंसा का पाठ पढ़ाने से कोई लाभ की आशा नहीं है। अहिंसा और मानवता के पाठ बच्चों को शुरू से ही देना आवश्यक है। इसलिये संसार के सब स्कूलों में 'मानवता' की शिक्षा का अन्तर्भाव होना उचित है। इससे अमरीकी लड़के रूसी लड़कों को शत्रु नहीं मानेंगे, इतना ही नहीं अपितु हमेशा उनके अधिकारों का ख्याल करेंगे। ब्रिटेन के लड़के सायप्रोइट लड़कों को आजादी उनका पैदाइशी हक समझकर, आजादी देना पसन्द करेंगे। हर राष्ट्र के बच्चे दूसरे राष्ट्र के सम्बन्धमें सहानुभूति से सोचेंगे।

इस दृष्टि से 'अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल' चलाना एक अच्छा उपाय हो सकता है। ऐसे स्कूल में अमरीकी, रूसी, फ्रेंच, भारतीय, चीनी आदि सब राष्ट्रों के विद्यार्थी हों। वे सब एक दूसरे से मिलजुलकर रहें। इस सहयोग की वृत्ति का विकास हुआ तो युद्ध का हमेशा के लिये नामों निशान मिट जायगा।

ऐसा प्रयत्न अभी न्यूयार्क में शुरू हुआ है। राष्ट्रसंघ के कर्मचारियों के बच्चों के लिये वहाँ ऐसा ही एक स्कूल चलाया जा रहा है। उस स्कूल में सब राष्ट्र के लड़के हैं। लड़के छोटे

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

● *एक ही रास्ता*

आज देश की पतितावस्था देख नैतिक विकास की अत्यधिक आवश्यकता अनुभव हो रही है। 'चरित्र-निर्माण' में प्रकाशित श्री रामस्वरूप शर्मा के विचार इसी दिशा में एक संकेत है—

"नैतिक स्तर गिरने से ही पतन होता है। चरित्र-निर्माण और नैतिक-सुधार के बिना मनुष्य मनुष्य नहीं बन सकता। किसी भी राष्ट्र की उन्नति नैतिक उत्थान के बिना असम्भव है। अनैतिकता ही हमारे पतन का, इस दुरावस्था का मुख्य कारण है। आज यहाँ के समस्त अधिकारी, शिक्षा विशारद और पत्रकार ही नहीं, समाज के अग्रगण्य व्यक्ति भी इस ओर ध्यान देकर उपयुक्त कदम बढ़ाने में असमर्थ हो रहे हैं। जबतक व्यक्तिगत चरित्र के साथ-साथ राष्ट्रीय चरित्र का विकास न होगा, तब तक समष्टि के रूप में अन्य उन्नत देशों के समकक्ष न आ सकेंगे। हमारा देश स्वतन्त्र हो गया है और हम लोकतन्त्र के नागरिक हैं, तथापि वस्तु-स्थिति में अभी इतना सुधार नहीं हुआ है। सरकार की भी एक सीमा होती है। इसलिये यह तभी संभव हो सकेगा जब लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन होगा और मनोवृत्ति बदल जायगी। अतएव शिक्षा और प्रचार की अत्यावश्यकता है। नैतिक सुधार एवं सांस्कृतिक विकास के लिये जनमत को शिक्षित किया जाय। इससे लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन अपरिहार्य है। विलम्ब हो सकता है किन्तु आमूल सुधार का एकमात्र यही रास्ता है।"

● *मानसिक शक्ति*

प्रत्येक महान कार्य के पीछे उसकी महत्ता के अनुपात से मानसिक शक्ति छिपी रहती है। इस शक्ति को विकसित करके जीवन में किस प्रकार सफल हों, इसका व्यावहारिक उत्तर 'मनोविज्ञान' में प्रो० शुक्ल ने इस प्रकार दिया है—

"मनुष्य की कार्यक्षमता उसकी मानसिक शक्ति पर निर्भर है। यह मानसिक शक्ति तभी प्राप्त हो सकती है, जब मनुष्य को विश्व के अणु-अणु में आत्म-रूपता तथा अपने में विश्व की व्यापकता का बोध हो जाए अर्थात् जब वह अपने को विश्व में तथा अखिल ब्रह्माण्ड को अपने में देखने लगे।

जिस मनुष्य का अहंकार जितना अधिक होता है, उसके शत्रु भी उतने ही अधिक होते हैं। वह अपनी कल्पना में अनेक प्रकार के शत्रु बना लेता है। ऐसी अवस्था में उसकी मानसिक शक्ति अकारण की चिन्ताओं में ही खर्च हो जाती है। स्वार्थी मनुष्य को स्वयं प्रकृति भी अधिक शक्ति नहीं देती। वह उसे उल्टे विनाश की ओर ही ले जाती है।"

● *किसका उत्तरदायित्व ?*

समाज के नाम पर लगे वेश्यावृत्ति के कलंक का उत्तरदायित्व वस्तुतः किस पर है ? यह प्रश्न जितना विवादास्पद है उतना ही विचारणीय भी है। 'शक्ति' के प्रस्तुत विचार पढ़कर क्या हमारी आँखें खुल सकेंगी—

"वेश्यावृत्ति का उत्तरदायित्व वेश्या पर नहीं, विषयी पुरुष समाज पर है जिसने अपनी वासनापूर्ति के लिये अकारण ही इस निन्दनीय प्रथा की स्थिति आवश्यक बना रक्खी है। अतएव दंड की व्यवस्था उनके लिये होनी चाहिये न कि नारी जाति के इस वर्ग विशेष के लिये। समय बहुत बदल चुका है और हमारे समाज को शीघ्र ही सचेत होने की आवश्यकता है। अबलाओं की बलि चढ़ाकर आचार की रक्षा करने की युक्ति प्रस्तुत करना अनुचित और दोषयुक्त तो है ही, अब इस प्रकार के साधनों से समाज की रक्षा होनी भी असम्भव है। नारी की आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता के साथ उसका शीघ्र ही जीवन के विस्तृत क्षेत्र में पदार्पण निश्चित है। ऐसी अवस्था में विषयी पुरुषों का ध्यान वेश्या से हटकर दूसरी ओर चला जाना स्वाभाविक ही है। इसलिये यदि हमारा समाज आचार का महत्त्व समझता है तो इसकी रक्षा अन्य उपायों से ही करनी होगी, जिनमें आध्यात्मिक शिक्षा का स्थान सर्वोपरि है।"

● *हमारी खासियत*

यहाँ न जाने कितने विदेशी आये और उनसे कितनी बार संघर्ष हुआ किन्तु इतने पर भी भारत ने समन्वय करते हुए और उनकी अच्छाइयों को अपनाते हुए पचाने का ही प्रयत्न किया। श्री मिरजा इस्माइल की 'नया हिन्द' में प्रकाशित ये पंक्तियाँ हमारी उसी विशेषता का बखान कर रही हैं—

"साथ-साथ मिलकर रहने की जिस रीत को हमारे बुजुर्गों ने खोज निकाला था और जिसे हजार बरस तक तरक्की दी, क्या उस पुरानी रीत को हम भूल गये ? मेरा जवाब है नहीं, हम नहीं भूले। मेल-मोहब्बत का वह सोता अब भी ज्यों का त्यों है। खाली हमारे दिमागी फितूर ने उसकी सतह को परागन्दा कर दिया है। सात लाख गाँवों में हिन्दुस्तान के दिल में मुहब्बत की वही पुरानी धड़कन अब भी होती है। मौजूदा जमाने से गुजरने में कुछ दिक्कतों का सामना लाजमी था। चीजों को अपनाना और पचाना हिन्दुस्तान की खासियत रही है।"

● कलम की क्रान्ति

भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् साहित्यिकों का दायित्व और भी बढ़ गया है। राजस्थान की उपशिक्षा मन्त्राणी श्रीमती कमला बेनीवाल का निम्नलिखित भाषणांश उसी की ओर अह्वान कर रहा है—

"भारत की जनतंत्रीय समाज व्यवस्था में नई पीढ़ी के साहित्यिकों को कलम की क्रान्ति से नयी समाज-व्यवस्था के प्रति निष्ठा की भावना जाग्रत करनी चाहिये। कलम में तलवार से सहस्रों गुना अधिक शक्ति है, उस कलम की उपादेयता सिद्ध करने का भारत में यही उपयुक्त अवसर है। आज साहित्य के माध्यम से देश की आत्मा ग्रामों को जाग्रत करना है। एक सुन्दर और समृद्ध भारत के नव-निर्माण के लिये जन-जन को जगाना है, समाज की सड़ी-गली व्यवस्थाओं व अन्ध-विश्वासों और गलत परम्पराओं के विरुद्ध संघर्ष करना है, विद्रोह करना है। यथार्थवाद की तह पर खड़े होकर आदर्शवाद को सम्मुख रखते हुए सभी समस्याओं का निदान करना है और यही युग धर्म है। साहित्य शाश्वत है अतः सभी विघटक साहित्य-सृजन से उसे सर्वांगीण बनाना है। भारत के इस संधिकाल के युग में साहित्य राष्ट्रीय एकता की नींव को दृढ़ बना सकता है, इस दिशा में साहित्यकों को राष्ट्र-निर्माता बनना चाहिये।"

● भटक रहा है!

श्री असंगी के 'आदर्श' में प्रकाशित ये विचार क्या आज की दूषित शिक्षा-प्रणाली पर आँसू नहीं ढुलका रहे हैं?—

"आज समाज में जिसे शिक्षा के नाम से पुकारा जाता है, जिसके लिये समाज इतना त्याग कर रहा है, जिसकी दुहाई देकर लाखों नवयुवकों को कर्महीन बनाया जाता है। क्या शिक्षा के चोले में व्यापक होनेवाली भीषण आत्म-प्रवंचना ही वह उपलब्धि नहीं है जो नवयुवकों के जीवन में अनुचित क्रम, अनुशासन-हीनता एवं अविवेक को प्रोत्साहित कर रही है?

'सा विद्या या विमुच्यते' वेद की इस श्रुति के अनुसार विद्या वही है जो मोक्ष प्राप्त कराती है। क्या वर्तमान पद्धति की शिक्षा उसमें पड़े व्यक्ति को मोक्ष की कल्पना तक करा सकती है? क्या वह उसके मस्तिष्क का सर्वांगीण विकास करती है? क्या वह उसको सोचने की शक्ति देती है? क्या वह उसे अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक करती है?

खेद का विषय है कि विद्या से सम्पन्न जिस व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह समाज का दर्पण होगा, समाज में सत्य का प्रचार करेगा, पथ-भ्रष्ट हुओं को सत्पथ पर अग्रसर करेगा और सुन्दर समाज के निर्माण में योग देगा, वह स्वयं आज किंकर्तव्य विमूढ़ सा अँधकार में भटक रहा है।

संघर्ष का उत्तर

[श्री शिवचरण 'सन्तोष']

पथिक पथावरुद्ध होकर प्रचलन से नाता जोड़े अज्ञात पथपर चला जा रहा था। उसके पगों को मिला था कसकते फफोलों का आलिंगन और हृदयने परस किया था पीड़ा का प्यार..........वह विचार-वीथी में खो गया, "आखिर इस दुर्दम्य मार्ग का कोई अन्त भी है? कभी चांदी की रात, कभी प्लैटिनम सा चमचमाता घाँस, कभी वर्षा की मनोहारी बौछार तो कभी ओलों की मार! संघर्ष ही संघर्ष! आह! हर ओर से जकड़े हुए कठोर निर्दयी संघर्ष! तू ही बता आखिर क्या है अन्त तेरा?"

संघर्ष ने सहज हँसी से उत्तर दिया—"बस! घबरा गया अभी से! अन्त की बात पूछता है, अरे! मेरा अन्त ही तो तेरा अन्त भी है। तू अनादि है और तेरे साथ ही साथ मैं भी अनादि हूँ। जब तक तेरे में शक्ति का एक भी कण मौजूद है तब तक मैं रहूँगा। मेरा-तेरा साहचर्य तो सदा से ठहरा। मैं ही तो अनेक रूप धारण कर तेरे साथ रहता हूँ। यदि तू अपना अन्त चाहता है तो मेरा भी अन्त हो सकता है। परन्तु...नहीं......नहीं...न तेरा अन्त हो सकता है न मेरा......तेरा-मेरा साथ तो महान् कलावन्त ने उस क्षण में निश्चित किया था जबकि सब सोये हुए थे......तू भी और मैं...भ...ी......"

दो दम्पति

सुश्री यशोदादेवी कुशवाहा

इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम विदुषी पाठिकाओं की बहुमूल्य रचनायें व विचार सादर आमंत्रित करते हैं।

सरस और संक्षिप्त रचनाओं को प्राथमिकता दी जायगी।

एक, दो, तीन, चार, सन्तोष की टोकरी में पुष्प-मालाओं की ढेरी लग गई। शान्ति की फूल चुनते-चुनते अंगुलियां थम गई। उसकी बिंधी हुई कोमल अंगुलियों पर दृष्टिपात करता हुआ सन्तोष बोला—"शान्ति, तुझे मैं सुखी न कर सका। निर्धनता के मध्य रहकर सदैव तेरे सौन्दर्य का उपहास किया।"

"धन का आगार ही क्या सुख की पराकाष्ठा है? अलंकारलसित तन सौन्दर्य की परख है? नाथ, ऐसी कुत्सित भावनाओं को मन में स्थान देकर अपने नाम को कलंकित न करें।" शांति ने नम्रता से उत्तर दिया।

"तुम सत्यवक्ता हो प्रिये! पर अपनी निर्धनता एवं असमर्थता का क्षोभ तो होता ही है।"

"स्वामी, तुम कितने भोले हो! यह तुम्हारी निर्मूल भ्रान्ति है। मुझे तो केवल तुम्हारे निष्कपट स्नेह की अभिलाषा है। धन-लोलुपता दुखों का मूल है।" शान्ति ने प्रतिवाद किया। सन्तोष के मुख पर उल्लास की आभा प्रतिबिम्बित हो उठी।

शान्ति और सन्तोष को स्नेह-सूत्र में बंधे चिरकाल व्यतीत हो चुका था। न द्रव्य की चाह थी न विलास की आकांक्षा। उनके भोले बच्चे माधुर्य, मनन, क्षमा और सत्य ही धन राशि थे, जिनमें उनका सुख निहित था। नित्य ही रंग-बिरंगे, मीलित, उन्मीलित पुष्पों से लसित उद्यान में स्फटिक शिलाखंड पर बैठी मालिनी-शान्ति पुष्पहारों का सृजन करती। सन्तोष पुष्पों को चुन-चुनकर उसके समक्ष ढेरी लगाता जाता। ऋतु-परिवर्तन अथवा सुख-दुख का संयोग उनके सात्विक जीवन-क्रम में कभी बाधा उपस्थित न कर पाता।

ऋतुराज के पांव धरती पर पड़ चुके थे। वासन्ती-समीरण की थपकियों से प्रकृति प्रमुदित हो उठी थी। नित्य की तरह, शान्ति अपने कार्य में संलग्न थी, तभी राजप्रासाद के उन्नत झरोखे से किसी कोयल कंठी के रुदन का झीना स्वर, उसके कर्णपटों पर अग्निशिखा-सा स्पर्श कर गया। उसने आँखें ऊपर उठाईं। राजमहिषी कामना का सलोना मुख विषाद से पूर्ण दिखाई दिया। आँखें सावन-भादों सम बरस रही थीं अविरल व अनवरत।

"राजमहिषी! मुझ दासी की धृष्टता क्षमा हो। आपके विषाद का कारण जान सकती हूँ? कदाचित, दुख का कुछ अंश बांट सकूं।" शान्ति ने अनुनय किया।

कामना ने नेत्रों की मुक्ताओं को पट्ट में समेट लिया। कजरारी आँखें वर्षा से धुले तरु-पल्लव की तरह निखर आईं। उसके ललित अधरों में कम्पन हुआ—"शान्ति, तू मेरे दुख का कारण जानकर क्या करेगी, यही तो कहेगी कि यह सब राजरानी की मिथ्या वाक्पटुता है। राजप्रासाद में दुख की झलक कहाँ? स्वर्ण खचित आगार में चिन्तन का समावेश कैसे?"

"ऐसा न सोचें स्वामिनी। मैं आपकी दासी हूँ। दासी द्वारा राजरानी का उपालम्भ? यह मेरी अक्षम्य धृष्टता होगी।" शान्ति ने पुनः निवेदन किया।

शान्ति के स्नेह-पूरित शब्दों से कामना का रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसने कहा—"शान्ति, वास्तव में, तू शान्तिदायिनी है। तेरे शब्दों में अगाध शीतलता है। तू ने मुझे अपने में बांध लिया, किन्तु हाय, इस क्षणिक स्नेह-बन्धन से क्या सुख मिला?" कहते-कहते कामना ने अपना सिर झरोखे के सीकचों से टकरा दिया।

"आश्चर्य, इस मनोहर वेला में धीपति बिलासदत्त की प्रिया की इतनी चिन्तनीय दशा! जिसके चरणों में विश्व का वैभव निछावर है।" शान्ति की आँखें विस्फुरित हो गईं।

"शांति! अब तेरे ये मधुर शब्द व्यंग-

जागृत

वाणों से प्रनीत हो रहे हैं। कदाचित् मेरी दशा का तू मनन कर पाती।"

श्रीपति विलासदत्त की परम सुन्दरी भार्या कामना कभी सुखी न हुई। विलास ने विश्व के सम्पूर्ण वैभव उसके चरणों में अर्पित कर दिये, किन्तु वह अपना मन न दे सका। वह नित्य नवीन प्रिया की ही आकांक्षा रखता था सुख-विलास के अगणित प्रसाधनों के अतिरिक्त उसका लोलुप मन कुछ और की लालसा से सदैव प्रेरित रहता।

उन्हीं दिनों सरिता तटवर्तीय वन प्रान्त के राजा देव की कन्या धरणी अपने सौन्दर्य के लिये विश्व-विख्यात थी। विलास ने सुना। मन में कुटिल लालायें उद्दीप्त थीं ही।

एक अन्धेरी निशा में—

जब सम्पूर्ण प्रान्त सुख निद्रा में विभोर था; विलास ने धरणी का अपहरण कर लिया। धरणी के करुण-रुदन से विलास शंकित हो उठा। राज वैभव डगमगाने लगा।

कन्या-हरण से राजा देव का कुपित होना स्वाभाविक था। उसने विलास की सत्ता को धूल-धूसरित करने का प्रण किया। उसने विलास को युद्ध के लिये ललकारा। रणक्षेत्र में दोनों प्रतिद्वन्दी आ जमे। दम्भी विलास को हराकर वनदेव के वन्दीगृह में डाल दिया गया। यही कामना के विषाद का कारण था। वह पुनः सिसक पड़ी और बोली—

"आह, शान्ति तू ही बता, विलाससे वंचित रहकर मैं कैसे जीवित रह सकती हूँ?"

"देवी, आप धैर्य धरें......।"

"मालिनी सन्तोष को गवाँकर तू सुखी रह सकती है? मुझे तो धैर्य का पाठ पढ़ाती है।" कामना की वाणी कठोर हो उठी।

"यदि सन्तोष, विलास का रूप धरले तो उससे वंचित होना श्रेयस्कर समझूंगी रानी। जो केवल स्वार्थ का चिन्तन करता है, जिसके उत्पीड़न से धरती की छाती बोझिल होती है, जिसकी मृग-तृष्णा में अनगिनत आहों की ज्वाला धधकती हो, उसका तो सर्वनाश होना अवश्यम्भावी ही है ....।"

"शान्ति शीघ्रातिशीघ्र हार गूंथ लो।" शान्ति की वाग्धारा टूटने के पूर्व ही लता कुंज की ओट से सन्तोष ने कहा।

"शीघ्रता क्यों?"

"आज हम सब वनदेव का अभिनन्दन करने चलेंगे। जिसके पुण्य प्रताप से जन-जन के दुख का निवारण हुआ।"

"सत्य।" शान्ति उत्फुल्ल हो उठी निःशब्द कामना, सजल नेत्रों से इस दम्पति को निर्निमेष निहारती रही जिनका साथ अटूट था।

नर बढ़ो, चेतना के पथ पर!

[श्री राजेन्द्रराय 'राजेश']

है पूर्व क्षितिज पर चमक उठा,
रवि लेकर नव-प्रगति मशाल,
जन-गण के तमसावृत मन में,
रे फूट पड़ी नव क्रान्ति ज्वाल,

भू कण-कण में नव ज्योति जगी,
है जगा विश्व का उर विशाल,
किरणों की पाखों पर उड़ता,
है स्वर्ण विभा का मधु मराल,

मानव-मन मधुवन में कोयल,
अब लगी ढालने प्रगति-गीत,
नर बढ़ो, चेतना के पथ पर,
मत करो आज निज हृदय भीत,

मानव - मानव बन आज एक,
हो द्वेष - तमस् का प्राणसान,
लहरायें प्राणों में गंगा,
सब मिलकर गायें प्रीति - गान,

———

धर्म-सम्भाव

महात्मा भगवानदीन

[जबकि आये दिन के एक से एक नये व आश्चर्यजनक आविष्कार मनुष्य की प्रतिभा, लग्न व सतत साधना के प्रतीक हैं, तब परस्पर धर्म-सम्भाव की भावना में असमर्थता प्रकट करना सचमुच ही हास्यास्पद है। असंभव को भी संभव बनानेवाला इन्सान जीवन में धर्म-सम्भाव उत्पन्न कर विश्व-बंधुत्व की मधुर कल्पना को साकार रूप देगा ऐसा हमें विश्वास रखना चाहिये। —सम्पादक]

तन्दुरुस्त आदमी पर रहन-सहन, खान-पान की कोई रोक-टोक नहीं लगाई जाती। तन्दरुस्त आदमी पर तरह-तरह की पाबन्दियां लगादी जाती हैं। ऐसे रहो, वैसे रहो, यह खाओ वह न खाओ। इस तरह उठो इस तरह बैठो, इस तरह लेटो, इस तरह बैठो। ठीक यही हाल धर्म का है। तन्दुरुस्त धर्म पर कोई रोक-टोक नहीं होती। नातन्दुरुस्त धर्म पर अनेक पाबन्दियां थोपदी जाती हैं। तन्दुरुस्त धर्म रोक-टोक और पाबन्दियां बरदाश्त नहीं कर सकता। लेकिन नातन्दुरुस्त चुपचाप और खुशी-खुशी इन्हें बरदाश्त कर लेता है, वह अपना भला इसी में समझता है।

धर्म खालिस चांदी-सोने की तरह एक ही रूपवाला होता है लेकिन जैसे चांदी और सोना जेवर या सिक्के का रूप लेकर अनेक नामवाले बन जाते हैं और इस नामकरण के लिए अपने में थोड़ी बहुत खोट भी सह लेते हैं, वैसे ही धर्म भी नाम रूप लेकर खोट सहने के लिए मजबूत हो जाते हैं। चांदी का रुपया जब खालिस चांदी का था तब भी उसमें आध-माशे चांदी थी। आज भी सोने की गिन्नी में कुछ न कुछ तांबा अवश्य-मिला रहता है। उसके बिना वह गिन्नी नाम से नहीं पुकारी जा सकती। चलन में सभी की खातिर उसे यह खोट और चोट सहनी ही पड़ती है। धर्म को भी केवल चलन के लिए ही द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार नाम रूप के खोट में होकर निकलना ही पड़ता है।

धर्म सदा सौटंच का सोना रहना है और रहता आया है। पर हिन्दू या इस्लाम नामी धर्म बुद्ध या ईसाई नामी धर्म या कोई और नामधारी धर्म सौ टंच का सोना नहीं रह सकते। हर एक धर्म की अपने जन्म स्थान के रीति-रिवाजों, बोलचाल, रंग-ढङ्ग सबको अपनाना ही पड़ता है और अपनाने के फेर में पड़कर उसे अपने में से गंवाना भी पड़ता है और गंवाता वह क्या है—अपना शुद्ध स्वभाव। जिस तरह आदमी के हाथ शुद्ध सत्य या विशुद्ध परमात्मा कभी नहीं लग सकते वैसे ही नामधारी धर्म के हाथ धर्म का शुद्ध स्वरूप किसी तरह भी नहीं रह सकता। हर धर्मी को चाहिए कि वह मनुष्यमात्र और जीवमात्र को प्यार करे। पर नियमों में फंस कर वह ऐसा नहीं कर सकता। सम्भाव धर्म का स्वभाव है, धर्मका लक्षण है। पर नामधारी धर्म सम्भाव अवस्था में सिर्फ आ सकता है, टिक नहीं सकता। तराजू की डंडी जिस तरह बहुत ही कम सीधी रह पाती है वैसे ही नामधारी धर्मों का सम्भाव नामी डण्डा बहुत कम सीधा रह पाता है। उसे इधर या उधर झुकना ही पड़ता है।

जब यह हाल है तो क्या यह कह दिया जाए कि सर्वधर्म-सम्भाव जैसी चीज या सर्वधर्म-सम्भाव जैसी सामाजिक अवस्था गुलर के फूल की तरह कभी प्राप्त ही नहीं हो सकती या आकाश के फूल की तरह न कभी हुई न कभी होगी। ऐसा कह डालने में हम असत्य बोलने के भागी तो नहीं होंगे पर अव्यवहारी अवश्य माने जाएँगे। हम संसारी लोग किसी भी आदर्श को न पा सके हैं न पा सकेंगे। तो क्या हम आदर्शों की ओर दौड़ना छोड़ बैठते हैं? जब दुनियां के और कामों में हम इतने गहरे न जाकर आए दिन दौड़ लगाते रहते हैं तब धर्म के मामले में इतनी कमजोरी क्यों दिखाएँ?

धर्म-सम्भाव से कहीं मुश्किल विश्व-शान्ति का काम है। पर उसमें हम लगे हुए हैं और उस रास्ते में इतनी दूर दौड़ गए हैं कि विश्व-शान्ति की मंजिल हम में से कुछ को दिखाई देने लगी है तो क्या धर्म-सम्भाव के रास्ते पर चलकर हम उसे बहुत जल्दी नहीं पा सकते? जरूर पा सकते हैं।

हमारा पड़ोसी चीन एक तरह से धर्म-सम्भाव का नमूना बना हुआ है। एक ही घर में एक ही कुटुम्ब के सदस्य कई धर्म वाले मिल सकते हैं, मिलते हैं और इस तरह रहते हैं मानों धर्म अनेक धर्म-सम्भाव की जान हो। जो बात हमें सुनने में भारी मालूम हो रही है, उन्हें वह करने में बेहद आसान मालूम हो रही है।

जेलखाना शकल से बड़ा डरावना लगता रहा। उसके अन्दर की बातें बाहरी रूप से भी ज्यादा डरावनी मालूम होती रहीं पर उसके अन्दर रहना तो कुछ भी न निकला। उल्टा आसान मिला, ललचाने वाला मिला। मौत का भी यही हाल है, वह नाम से जितनी

डरावनी है, आलिंगन में उतनी ही प्यारी है। धर्म-सम्भाव हम भिन्न-भिन्न धर्मवालों को सुनने में शायद असम्भव और बेहद डरावना लगता हो, पर कर डालने में वह इतना आसान निकलेगा कि हम दाँतों तले ऊँगली दवाते रह जाएंगे। हम इस वात के लिए पछ्नाए विना न रह सकेंगे कि इतने आसान काम के लिए हम अवतक इतने डरते क्यों रहे? गुलदस्ते के लिए जिस तरह रङ्ग-विरङ्गे फूल और तरह तरह की पत्तियां जरूरी हैं वैसे ही धर्म सौन्दर्य के दर्शन के लिए अनेक धर्मों का धर्म-सम्भाव लिए मिलना जरूरी है। किसी अकेले धर्म को धर्म का आनन्द ही नहीं आ सकता।

यह वाक्य किसे नहीं मालूम कि "यह मनुष्य बड़ा धर्मात्मा है" सदा हर एक से नामधारी धर्मों में से किसी एक का भी नाम विना जोड़े वोला जाता है। यह हिन्दू धर्मात्मा है या यह मुसलमान धर्मात्मा है ऐसा बोलना अटपटा तो लगेगा हो व्याकरण-असिद्ध भी होगा और धर्म असिद्ध तो है ही। क्या यह अकेली वात हमें थप्पड़ मारकर या पुचकार कर यह कहती हुई नहीं मालूम होती कि धर्म "हैं नहीं" "धर्म है"। हमारी राय में धर्म का बहुवचन बनना कानूनन वन्द हो जाना चाहिए। धर्म अपना रूप वदले हुए बहुवचन में आसानी से प्रयोग होता भी है। जैसे १० धर्म २० धर्म।

जब कोई नामधारी धर्म अपने को दूसरे से अलग होकर खड़े करने की कोशिश करता है तो वह सिवाय इसके क्या करता है कि अपने धर्म के कुछ रिवाज़ गिना देता है जो दूसरे धर्म में नहीं पाये जाते। इस तरह से तो एक धर्म भी अनेक समयों में अनेक रूप वाला रहा है। इतना ही नहीं एक धर्म देशान्तर होकर ऐसे ही रिवाज़ वदल डालता है जैसे अनेक आदमी कालान्तर होकर तरह-तरह की वर्दी पहनकर अगर दिली दोस्त बने रह सकते हैं तो अनेक धर्मधारियों को भिन्न भिन्न रिवाजों को अपनाते हुए दिली दोस्त वने रहने में कठिनाई ही क्या हो सकती है?

हम भारतवासी आज़ाद होने का सबसे कठिन काम करने के वाद दुनिया में ऐसी जगह वना चुके हैं जहां धर्म-सम्भाव जैसे आसान काम के लिए उपदेश देने या किताबें लिखने की जरूरत नहीं। यह तो कलम के एक इशारे से एक दिन में ऐसे हो जाना चाहिये जैसे तुर्की में कमालपाशा के हाथों कलम के एक इशारे से एक रात में पर्दा प्रथा तुर्की से इस तरह भाग गई मानों वह कभी वहां थी ही नहीं।

लगाम पकड़े रहिये

श्री प्रभाकर

देखना कहीं भूल न हो जाय? यह घोड़ा बड़ा ही चंचल और मनमानी करनेवाला है। आपने जरा सी असावधानी की नहीं कि झट आपको गड्ढे में या नाले में जा ढकेला। यदि इसको कावू न कर पाये तो निश्चय ही यह अनर्थ कर डालेगा, ऐसी जगह जाकर फेंक देगा जहाँ आप स्वप्न में भी जाना पसन्द नहीं करेंगे। और हाँ! आपकी ढ़ील पड़ते ही यह किसी दूसरे की चीज में भी मुंह डाल देगा और फिर इसके लिये गाली खानी पड़ेगी आपको। बस फिर तो पछ्ताने के सिवाय आपके पास कोई चारा नहीं है। जो भी असावधानी कर चुके उसका फल तो भोगना ही है। अतः होशियार! इस घोड़े को काबू करने के लिये लगाम को जोर से पकड़े रहिये।

लेकिन आप यह न समझ बैठें कि मैं आपकी हंसी उड़ाने के लिये 'सईस' का काम आपको वना रहा हूं। नहीं नहीं, ऐसी भावना विल्कुल नहीं है, लेकिन इतना कहने से भी नहीं चूक सकता कि आप भी 'सईस' ही हैं। लीजिये आखिर आपको आज एक नई पदवी दे ही डाली न। पर यह झूठी नहीं है क्योंकि आपके शरीर के अन्दर भी एक चंचल और निरंकुश घोड़ा (मन) निरन्तर दौड़ लगाता रहता है और आपको उसका संचालन करना होता है। देखो ठीक है न आपकी 'सईस' की उपाधि?

और यह भी ध्यान रखें कि कोई उपाधि लेने से ही आपका यहां काम न चलेगा। यदि उसके अनुसार कार्य नहीं किया तो निश्चय ही आपको भी लज्जित होना पड़ेगा। यह मनरूपी घोड़ा वासना की दलदल में फंस जायगा, वाह्य-सौन्दर्य को देखकर चौंधिया जायगा, मोह के कारण इसका स्वभाव सठिया जायगा और क्रोध की अवस्था होने पर तो न जाने यह आपको कहांसे कहां ले जा पटके। समझ गये न इस विचित्र घोड़े की करामात! तो फिर आप इसे कावू में नहीं करेंगे? इसकी लगाम को हिम्मत और दृढ़ता के साथ नहीं थामेंगे?

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

नियम पालन की दृढ़ता

इस वर्ष हमारे रिस्तेदारों व सगे-सम्बन्धियों की तरफ से भोजनार्थ मुझको काफी निमंत्रण आये, परन्तु २५० व्यक्तियों से जहाँ अधिक हो जाते हैं वहां मैं भोजन करने में असमर्थ रहता। एक वार ऐसा मौका मिला कि एक व्यक्ति ने मुझे आमंत्रित किया, मैंने उससे पूछा भाई ! २५० व्यक्तियों से ज्यादा आदमियों को निमंत्रण तो नहीं दिया है। उसके आश्वासन पर मैं चला गया वहाँ जाने के पश्चात् देखा कि वहाँ २५० व्यक्तियों से अधिक भोजन कर रहे थे, मैंने निमंत्रण देनेवाले व्यक्ति को कहा कि यहाँ तो २५० व्यक्तियो से अधिक भोजन कर रहे हैं उन्होंने कहा मेरी भूल हुई, आपके लिए अलग रसोई बनादूँ, मैंने कहा यहाँ रसोई का सवाल नहीं है, यहाँ सवाल है व्यक्तियों की संख्या का, अगर मैं दुबारा रसोई कराऊंगा तो पुनः और ज्यादा आरम्भ-सम्भारम होगा, अस्तु। फिर मैंने उनके घर अन्य आये हुए व्यक्तियों को भोजन कराके फिर अपने घर आकर भोजन किया।

वैवाहिक भोजन सम्बन्धी एक संघर्षमय घटना और घटी, एक व्यक्ति से मेरी अविच्छिन्न् रूप से मैत्री थी। उसके घर पर किसी का विवाह था, उसने अपने वरात के दिन मुझे निमंत्रित किया, मैंने वही संख्या का प्रश्न किया? उसने कहा कि हजार के लगभग। तव मैंने उसको कहा कि यहाँ तो आपके वृहत् जीमनवार है मैं भोजन में शरीक नहीं हो सकूंगा। उसने मुझ से कहा कि तुम्हारे पहले जितनी बार काम पड़ा, हम आये। अगर तुम आज नहीं आवोगे तो अपनी मैत्री का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा, तब मैंने उससे प्रश्न किया कि क्या भोजन कराने से मैत्री अटूट रहती है। मैत्री और पारस्परिक प्रेम का अर्थ होता है कि अगर मैं बुराई के पथ पर चल रहा हूं तो मुझे भलाई के पथ पर लाना ही सहीमाने में मैत्री का अर्थ होता है भोजन कराना कोई वास्तविक मैत्री नहीं। वह तो सामाजिक व्यवहार है। अन्त में अत्यधिक आग्रह पर मैंने कहा कि आज तो तुम्हारे यहाँ किसी भी हालत में भोजन नहीं कर सकता। क्योंकि नियम को तोड़कर प्रेम रखना मेरी शक्ति से बाहर है। कल तुम्हारे इतने व्यक्ति इकट्ठे नहीं होंगे, पारिवारिकजनों के लिए जो साधारण रसोई बनेगी उसीमें भोजन करके चला जाऊँगा। इस प्रकार अपने नियम की मनोवल से निभाते हुए दृढ़ता रखी।

सरदारशहर] —चन्दनमल चिन्डालिया

सुख-शान्ति की प्राप्ति

अणुव्रती बनने से पूर्व मेरी आत्मा एकदम गिरी हुई थी, जितने भी दुर्व्यसन थे सभी ने मेरी आत्मा में प्रवेश कर, घर बना लिया था। मैंने चार की साल में आचार्यश्री तुलसी के दर्शन पडिहारा ग्राम में किये। उनके अमृतमय भाषण को सुनकर मेरे दिल में साधु-संगत व साधु-सेवा करने का प्रेम जाग उठा। अब मैं हर साल ३-४ महीना साधु-संगत में रहता हूँ। फल यह हुआ कि जितने भी दुर्व्यसनों ने मेरी आत्मा में घर कर लिया था, मैंने उन सभी को ज्ञान रूपी अस्त्र से निकाल बाहर किया। जोधपुर चतुर्मास में मैं सपरिवार अणुव्रती बन गया, यानि अणुव्रत नियम को पालने का दृढ़ निश्चय कर लिया, अणुव्रती बनने के पश्चात् मुझे जो शान्ति सुख मिला है, वह मैं कहाँ तक वर्णन करूँ ? शान्ति ही नहीं मिली कारबार व राजकाज में प्रतिष्ठा भी बढ़ गई।

हनुमाननगर बाजार (नेपाल) —बनेचन्द बोथरा

अणुव्रतियों से !

अणुव्रत आन्दोलन के अन्तर्गत जिन सज्जनों ने अणुव्रती के नियम ग्रहण किये हैं उनसे हमारा निवेदन हैं कि वे अणुव्रती बनने के बाद जो कुछ अनुभव कर पाये हैं, उनमें क्या परिवर्तन व सुधार हुआ है आदि बातों को कार्यालय में लिखकर भेजें।

संक्षिप्त और स्पष्ट लिखे हुए अनुभव ही प्रकाशित हो सकेंगें।

—सम्पादक

एक चित्र—

देश के निर्माता सोचें और समझें

[श्री उम्मेदमल पीतलिया]

दोपहर के लगभग दो बजे हैं। लाला हरद्वारीलाल की कोठी की दूसरी मंजिल का एक कमरा बड़े मखमल के गलीचे से सुशोभित है, चारों ओर रेशम के पर्दों से दरवाजे और खिड़कियां ढंकी हुई हैं। बीच में एक सुन्दर मेज रखी है जिसके चारों ओर कुर्सियों पर लाला हरद्वारीलाल, लाला किसनदास, पं० गिरिजाशंकर और काका नगपाल बैठे हैं। आपस में अनेकानेक विषयों पर बातचीत करते करते राजनीति की गरमागरम बहस शुरू हो जाती है। इसी बीच लाला किसनदास का भतीजा—राकेश बाहर से दौड़ा हुआ कमरे में आया और लालाजी के पैरों में लिपटकर रोने लगा।

वे यह सब देख बुरी तरह घबरा उठे। पूछने पर पता चला कि राकेश के बड़े भाई—शीतलप्रसाद ने अपने पास ही के मोहल्ले के एक कुएँ में गिरकर आत्महत्या कर ली है। अब क्या था? यह सुनते ही तो लालाजी हक्के-बक्के रह गये। राजनीति की गरमागरम बहस का तांता तोड़ वे एकदम राकेश के साथ हो लिये।

"आखिर समय कैसा आ गया है? ऐसी दुर्घटनाएँ नित्य-प्रति ही सुनने में आती हैं। क्या विधाता क्रूर हो गया है जो सदैव ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देता है" लाला हरद्वारीलाल के मुंह से एकदम निकल पड़ा।

"लेकिन लालाजी! आदमी भी क्या करे? वह आज जमाने की बढ़ती हुई रफ्तारसे घबरा गया है। उस पर न जाने कितनी बोझीली बौछारों का प्रहार हो रहा है। आखिर मनुष्य कल-कारखाने की मशीन या पुर्जा तो नहीं जो बिना खाये-पीये ही चौबीसों घंटों चलता रहे। इस पर भी बेरोजगारी का बोलबाला वैसे है। नौकरी कहीं नाम को भी नहीं, अगर कहीं लेन्दे के मिली भी तो घरका खर्च पूरा नहीं होता। सिफारिशवाले मैट्री-क्यूलेट के सामने बी० ए० और एम० ए० धूल फाँकते हैं।

आखिर आप ही सोचिये पंडित जी! (पं गिरिजाशंकर की ओर इशारा करके) इस तरह की विकट परिस्थिति में मनुष्य कब तक जिन्दा रह सकता है? आज के विषम वातावरण में एक असहाय और निर्धन व्यक्ति की दर्द-भरी कहानी कौन सुननेवाला है? और फिर सब ही तो अपनी-अपनी स्वार्थ-सिद्धि में लीन हैं। भला जिनके पास कोई पैसा नहीं, किसी प्रकार की एप्रोच (सिफारिश) नहीं वे फिर अपने जीवन के सफर को कैसे तय करें?" काकाजी ने समझाते हुए उत्तर दिया।

× × ×

शीतलप्रसाद भी ऐसे ही मुसीबत के मारों में एक निकला। इसी वर्ष उसने यूनिवर्सिटी से बी० ए० की डिग्री ली थी, एक छोटी फर्म में ६०) रु० मासिक का मुलाजिम था। विवाह तो पहिले ही हो चुका था अब ६० रुपल्ली में वह गृहस्थ का खर्च चलाये भी तो कैसे? शायद इसी के छुटकारे के लिये उसने यह अन्तिम मार्ग ढूंढ़ निकाला और कुएँ में ड······ऊ······ब······।

× × ×

इस प्रकार की घटनायें न जाने कितनी बार हमारे देखने व सुनने में आती हैं और शायद आज के सुप्त मानव के लिये तो यह कोई आश्चर्य की बात भी नहीं रह गयी है। तभी तो वह मौन साधे हुए पतन के इस भयंकर प्रवाह में बहा जा रहा है। शीतलप्रसाद की उपरोक्त घटना जहाँ उसकी आत्मिक कमजोरी का परिचय देती है वहां देश के निर्माताओं व नागरिकों को इसका रचनात्मक हल सोचने व ढूंढ़ने के लिये विवश भी करती है।

—:०:०:—

दीपक के प्रति

जोड़ा था सनेह जान करके सनेही तुम्हें,
यदि निरमोही हो तो मोह मत आने दो।
जानता नहीं था आग दिल में तुम्हारे होगी,
खैर है इसी में अनुराग से बुझाने दो।
भाग्य में लिखा था यही दीप! न तुम्हारा दोष,
मर कर ही इसको अमर पद पाने दो।
पथिक पतंग है 'प्रयाग' मत छेड़ो इसे,
प्रेम से सहर्ष जलता है जल जाने दो॥

—'प्रयाग'

संगठन के चौराहे से

अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी ने मध्यभारत की यात्रा सम्पन्न कर उदयपुर डिवीजन के भीलवाड़ा डिस्ट्रिक्ट में प्रवास व पर्यटन करते हुए वीकानेर डिवीजन के सुप्रसिद्ध नगर सरदारशहर की ओर प्रस्थान करना घोषित किया है। सम्भवतः अजमेर मेरवाड़ा प्रान्त में होते हुए वीकानेर डिवीजन की ओर जांय। आचार्य श्री तुलसी ने अध्यात्मवाद व अणुव्रत प्रसारक साधु साध्वियों के विहार तथा चातुर्मासिक प्रवास निम्नांकित रूप में उद्घोषित किये हैं :—

क्रम	नाम	स्थान
१—	मुनिश्री बुद्धमलजी	वीकानेर डिवीजन (राजस्थान)
२—	„ दुलीचन्दजी	
३—	„ रूपचन्दजी	
४—	„ समेरमलजी	
५—	„ झूमरमलजी	हरियाणा (पंजाब)
६—	„ सोहनलालजी	
७—	„ पूनमचन्दजी	
८—	„ पन्नालालजी	
९—	„ राजकरणजी	राणावास स्टेशन (मारवाड़)
१०—	„ सागरमलजी	उज्जैन
११—	„ जंवरीमलजी	जसोल (मारवाड़)
१२—	„ नगराजजी	दिल्ली की तरफ
१३—	„ मानमलजी	पेटलावद
१४—	„ वालचन्दजी	मेवाड़ (राजस्थान)
१५—	„ सिरेमलजी	पंचभद्रा
१६—	„ सोहनलालजी	सवाई माधोपुर
१७—	„ मीठालालजी	मेवाड़
१८—	„ डगमराजजी	„
१९—	„ धनराजजी	वीकानेर डिवीजन
२०—	„ चन्दनमलजी	जोधपुर
२१—	„ नोरतनलजी	हिसार
२२—	„ चयचंदलालजी	बोरावड़
२३—	साध्वी श्री भत्तूजी	वालोतरा
२४—	„ गुलाबांजी	पंजाब
२५—	„ केशरजी	रतनगढ
२६—	„ छगनांजी (छोटा)	गंगानगर
२७—	„ पन्नाजी	नोखामण्डी
२८—	„ जतनकंवरजी	वाव
२९—	„ पिस्तांजी	उमरा
३०—	„ रायकंवरजी	खींवाड़ा
३१—	„ इन्द्रुजी	टोहाना
३२—	„ तीजाजी	पंजाव
३३—	„ रूपांजी	लाडनूं चाकरी
३४—	„ रायकुंवरजी	काटाभांजी
३५—	„ प्रतापांजी	असाढा
३६—	„ किस्तूरांजी	मेवाड़
३७—	„ गोरांजी	„
३८—	„ कमलूजी	थामला
३९—	„ नोजांजी	उमरी
४०—	„ ज्ञानाजी	मोटा गांव
४१—	„ छगनांजी	सिसोदा
४२—	„ मनोहरांजी	जावद
४३—	„ गणेशांजी	रतलाम
४४—	„ रायकुंवरजी	मखनावद
४५—	„ मनोहरांजी	(सुजानगढ़) भादरा
४६—	„ हरकंवरजी	हांसी
४७—	„ सुन्दरजी	सिसाय
४८—	„ सोहनांजी	सिरसा
४९—	„ लिछमांजी	सायरा
५०—	„ पानकंवरजी (पंचभद्रा)	दिवेर
५१—	„ पानकंवरजी (सरदारशहर)	समदड़ी
५२—	„ मालूजी	वाड़मेर
५३—	„ सुखदेवांजी	फूलमण्डी
५४—	„ सिरेकंवरजी	जयपुर
५५—	„ झमकूजी	भिवानी
५६—	„ कुनणांजी	देशनोक
५७—	„ कंचनकंवरजी	लावा सरदारगढ़
५८—	„ दीपांजी	मेवाड़
५९—	„ मोहनांजी	बम्बई प्रान्त
६०—	„ निवरकंवरजी	रायपुर
६१—	„ मोहनांजी (डीडवाना)	मीनासर

अपने अपने विचार—

भ्रष्टाचार कैसे मिटे ?

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत उपरोक्त विषय पर इसी तरह हमारे पाठकों, कार्यकर्ताओं और साथियों के विचार प्रकाशित होते रहेंगे। विचार संक्षिप्त और स्पष्ट लिखकर कार्यालय में भेजें, उनको क्रमानुसार प्रकाशित किया जायगा। प्रकाशित विचारों का उत्तरदायी स्वयं लेखक होगा। —सम्पादक]

शिक्षा-विभाग अपना उत्तरदायित्व समझें

[सुश्री कृष्णा धौंचक]

यद्यपि आज भारत में नैतिकता के मूल्य को परखने का प्रयास हो रहा है। एक स्वाधीन और सुसंस्कृत राष्ट्र होनेके नाते भ्रष्टाचार का विरोध करना आध्यात्मिकता और मानवता दोनो दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। कहनेको रिश्वत लेने, चोरी करने, चरित्रहीनता, मद्यपान आदि अमानुषिक कार्यों के लिए नित्य नवीन दण्डों की व्यवस्था सरकार की ओर से की जाती है पर क्या इससे वांछित कल्याण की सिद्धि होती है ? बल्कि आये दिन भ्रष्टाचार बढ़ता ही नज़र आता है। इसका कारण यह है कि ये कुवृत्तियां शरीर से उतना सम्बन्ध नहीं रखतीं जितना कि मन से। आज हम देखते हैं धर्म का, नैतिकता का स्थान शून्य के बराबर है। हमारे पाठ्यक्रमों में छोटी २ क्लासों में तो फिर भी बालक पढ़ाई से पूर्व प्रार्थना करते हैं किन्तु उच्च कक्षाओं में जहां ढेरों पुस्तकें अन्य विषयों की लगाई जाती हैं वहां कोई पूछे कि धर्म या नैतिकता सम्बन्धी कोई पुस्तक हम तक आती है ? इसके अतिरिक्त धूम्रपान आदि व्यसनोंको तो आधुनिक शिक्षितवृन्द सभ्यता का चिह्न समझकर अभ्यास द्वारा अपनाता है ऐसी दशा में यदि भ्रष्टाचार न फैले तो आश्चर्य की बात है, फैलना तो स्वाभाविक है। और देखिये वकालत, राजनीति, तर्कशास्त्र आदि के विद्यार्थियों को झूठी, एकदम असत्य बातको सत्य सिद्ध करने की शिक्षा दी जाती है फिर इन व्यवसायों द्वारा न्याय या सत्य की आशा करना ही भूल है। आज राज्यकर्मचारी जिन्हें घूँसखोरी बन्द करनेके लिए नियुक्त किया जाता है, रिश्वत लेते पकड़े जाते हैं फिर औरों को क्या कहें। एक ओर बेइमान, रिश्वतखोर व्यक्ति चैन की बंसी बजाता है और ईमान-धर्म को माननेवाला उल्लू बनाकर परिश्रम की चक्की में पिसता भूखा मरता है। उसपर मजा ये है कि सरकार जी-जानसे रोक-थाम में लगी हुई है। हमारे विचार में स्वतंत्र भारत के शिक्षा-विभागों को अपना उत्तरदायित्व समझकर पाठ्यक्रम में धर्म, नैतिकता और चरित्र-विकास सम्बन्धी पुस्तकों को अवश्य स्थान देना चाहिए तभी मानसिक-विकास सम्भव हो सकेगा अन्यथा इन दण्ड विधानों द्वारा भ्रष्टाचार चाहे कुछ समय के लिए दवा दी जा सके, नष्ट नहीं किया जा सकता।

आध्यात्मिक चेतनाकी अनुभूतिसे

[श्री आचार्य नन्हूं]

अपने और पराये की अनुभूति ही भ्रष्टाचार करने के लिये बाध्य करती है भ्रष्टाचार दूर तभी होना सम्भव है जब हम प्रत्येक प्राणी की चेतना को अपनी आत्मा का ही एक अभिन्न अंश स्वीकार कर सकें, व्यवहार में ठीक वैसा ही अनुभव कर पायें। आत्मिक-चेतनाके विकास के बिना कोई भी नियम भ्रष्टाचारको समूल नष्ट न कर सकेगा। इसको शीघ्र सम्पन्न करनेके हेतु आवश्यक है कि भारत की सभी दार्शनिक, आध्यात्मिक, नैतिक, और कल्याणकारी संस्थाएँ मिलकर एक ही दिशा की ओर सबल पग उठायें और सरकार को बाध्य करें कि वह अपनी शिक्षा-प्रणाली में नैतिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों का अध्ययन अनिवार्य करें। अधिकसे अधिक संस्थाएँ जनता के नेतृत्व में गुरुकुल अथवा आश्रम के रूप में प्राचीन शैली की शिक्षण पद्धति पर चलाई जायँ। सरकार ऐसी संस्थाओं को पर्याप्त सहायता ही नहीं अपितु मुक्त हस्तसे दान दे तभी भ्रष्टाचार जड़मूल से समाप्त होना संभव है।

नैतिकता के अञ्चल से

[श्री हुकमचन्द चोरड़िया 'सुधारक']

कमसे कम परिश्रम में अधिक से अधिक सुख की आशा करनेवाला मानव समाज ही भ्रष्टाचार को आगे बढ़ानेवाला है। परिश्रम से सुख मिले तो कोई बात नहीं। अधिकतर लोग बिना परिश्रम के ही सुख की लालसाएँ करते हैं और उन्हीं आशाओं की जड़ में भ्रष्टाचार का जन्म होता है। आज का मानव विलासी है उसने विलास के गर्त में अपना नैतिक स्तर खो दिया है। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। इसी सिद्धान्त से

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

(पृष्ठ ६ का शेषांश)

सकता। जो तालीम हम अपने बच्चों को देते हैं, उसीमें हमारे सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टिकोण के विकास की वर्तमान अवस्था की झलक मिलती है।

अस्पृश्यता-निवारण

छुआछूत को पूरी तरह दूर करने से जाति-पाँति, साम्प्रदायिकता और उसकी भावना को मिटाने की दिशा में, जो हमारे सामाजिक जीवन, उसके समन्वय और उसकी तरक्की की नींव को खोखली कर दी है, हम एक साथ ही कई कदम उठा लेंगे। इसी तरह महिलाओं के संगठन द्वारा हमें अपनी घरेलू जिन्दगी को सही हालत जानने का मौका मिलेगा। हम सार्वजनिक रूप से जिन चीजों का प्रचार करना पसन्द नहीं करते हैं, उनका रूप हमें वहीं देखने को मिलेगा।

जन-सम्पर्क का महत्त्व

जरूरी यह है कि जनता की भावना की सतह पर हम उनके साथ मिल सकें। और यह तभी हो सकता है जब उसके मसलों में तथा उन्हें सुलझाने की कशमकश में हम उसके साथ हों और अपने सब कार्यों का केन्द्रविन्दु उसे ही समझें। मेरे खयाल में अब वह वक्त आ चुका है, जब हमको इन सम्पर्कों के कायम करने में अपनी सारी ताकत लगा देनी चाहिए।

(पृष्ठ ११ का शेषांश)

अणुव्रती का ध्येय व्रतों की भाषा में सीमित नहीं है। ध्येय है—जीवन की शान्ति। उसके साधन इतने ही नहीं हैं, आगे और बहुत हैं। बुराइयाँ अशान्ति लाती हैं। वे भी इतनी ही नहीं हैं जिनका कि यहां निषेध हुआ है। यह तो साधना-विन्दु पर दृष्टि को केन्द्रित करने का प्रयत्न है। उसके तीन वर्ग वस्तु-स्थिति पर आधारित हैं। व्यक्ति की असीम योग्यता या कर्तृत्व शक्ति में हमें विश्वास है। उसका सुप्त मानस जागरण का संकेत मिलने पर जाग उठता है। जागरण का क्रम किसी का लम्बा और किसी का छोटा हो सकता है। जागरण के बाद आत्म-नियमन की बात आती है। वह भी किसी के लिये दीर्घ प्रयत्न साध्य होता है और किसी के लिये स्वल्प प्रयत्न साध्य। ये तीन श्रेणियाँ इसी क्रम-विकास के आधार पर निर्मित हुई हैं। यह स्वल्प से मध्यम और मध्यम से उत्कृष्ट की ओर गति है। विशिष्ट अणुव्रती का मार्ग आगे ही बढ़ना ही जाता है।

व्रतों का निर्देशन साध्य की कल्पना का आभासमात्र है। पहुंचना उसकी आत्मा तक है। आचार्यश्री तुलसी के शब्दों में "अणुव्रत-आन्दोलन की विशाल कल्पना का आभास आन्दोलन के ४९ व्रतों में निहित है। पांच अणुव्रतों के ३१, शील और चर्या के १२ ये ४३ व्रत अणुव्रती के लिये हैं। विशिष्ट अणुव्रती के लिये ६ व्रत इनके अतिरिक्त हैं। अपेक्षा यह है कि प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट अणुव्रती बने। वह न बन सके तो अणुव्रती बने, वह भी न बन सके तो कम से कम प्रवेशक अणुव्रती तो अवश्य बने। प्रवेशक को अणुव्रती बनने और अणुव्रती को विशिष्ट अणुव्रती बनने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये तथा क्रमशः वृत्तियों की विशेष पवित्रता की ओर बढ़ना चाहिये।"

(पृष्ठ १४ का शेषांश)

शिकार बनती रहती है, परन्तु इनका यह व्यापार कम नहीं होता है। यदि अणुव्रत के द्वारा इस समुदाय में नैतिकता की धारणा उत्पन्न हो सके और यह अपने घृणित आचरण से हट सकें तो देश और समाज का विशेष कल्याण होगा। इस दृष्टि से अणुव्रत आन्दोलन के कार्य और उद्देश्य से सभी को सहमत होना चाहिए और इसकी सफलता के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

हमारा समाज उन्नत हो, उसमें नैतिक आचरण के प्रति श्रद्धा जागृत हो और वह आध्यात्मिक उन्नति की ओर आरूढ़ हो यह हमारी अभिलाषा है, इसके लिए सर्वाङ्गीण प्रयत्न करना होगा। अणुव्रत-आन्दोलन ने पथ-प्रदर्शन का कार्य किया है, इसके सदुद्योग को पुष्ट करना होगा और ऐसी अनेक संस्थाएं बनानी होंगी जो निस्वार्थ और अपरिग्रह रूप से देश और समाज की सेवा कर सकें और पुनः जन समुदाय में उच्चादर्शों के प्रति आस्था और श्रद्धा उत्पन्न करें। अणुव्रत आन्दोलन फले-फूले यह मेरी हार्दिक प्रार्थना।

(पृष्ठ २४ का शेषांश)

यह भी न भूलें कि इसे छूट देनेसे होने-वाले अनिष्ट की जानकारी के होते हुए भी यदि आपने इधर ध्यान नहीं दिया तो बदनाम हो जायेंगे, आप अपनी उपाधि को सार्थक नहीं कर पायँगे। उपाधि तो आपको मिल ही चुकी अब तो काम आपका है कि उसके अनुसार बुद्धिमता से कार्य करके दिखाओ। क्योंकि घोड़े को चाहे ठीक तरह से रक्खे या न रक्खे परन्तु कहलायेगा तो वह चालक (सईस) ही। फिर आप ही क्यों अपने उत्तरदायित्वको भूलकर अपयश मोल ले रहे हैं?

क्यों नहीं इसे काबू में करके सवारी का आनन्द लेते? यदि इससे काम नहीं लिया गया तो भी आपका ही नुकसान होगा या तो यह खड़ा-खड़ा अस्वस्थ हो जायगा अथवा फिर निष्क्रिय ही बन बैठेगा। लेकिन अगर इसे अपने नियन्त्रण में रखकर आपने अपनी मर्जीके मुताबिक चलाया तो आप इसपर सुखपूर्वक सवारी करने का सौभाग्य भी अदाकर सकेंगे।

इसकी प्राप्ति के उपरान्त आप अनेक कष्टों से छुटकारा पा जायेंगे। इसमें कभी उतावलापन पैदा नहीं होगा, अस्थिरता समाप्त हो जायगी, मनमानी नहीं करेगा, किसी का अनिष्ट नहीं सोचेगा, आपके इशारे पर नाचेगा जैसा भी आप चाहेंगे वैसा ही काम करने को तैयार रहेगा। इसलिये साहस और हिम्मत के साथ सब कुछ प्राप्त करने के लिये इस 'घोड़े' की जोर से लगाम पकड़े रहिये जिससे यह अपनी मनमानी न कर सके और आपको ही अपना मालिक जानकर आपके निर्देशानुसार आगे बढ़ सके।

क्या आपसे आशा की जाय कि निश्चय ही आप अपने नाम को सार्थक सिद्ध करेंगे? लोक या परलोक के लिये न सही आपके अपने ही लिये। तो फिर शीघ्र ही इसका प्रयत्न कीजिये न!

—:०:०:—

(पृष्ठ १६ का शेषांश)

पावनरूप देखनेवाली दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। वास्तव में यही सत्य आनन्द है। अपना अर्थात् मानवमात्र का।

मनुष्यमात्र इस एकमेवाद्वितीय, अखण्ड ब्रह्म का अभिन्न अंग है। स्थान विशेषका विचार नहीं, चाहे फिर वह ललाट हों या पांव, दोनों ही पूज्य पावन है। हमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति को समेटकर, आगे बढ़ना होगा। क्षुद्र स्वार्थ और भौतिक उपकरणों के आकर्षण से बुद्धिको अलग रखकर, विशाल, व्यापक प्रभावशाली बनने का प्रयास करना होगा। यही सफल, परमोच्च सत्य और स्थाई आनन्द है।

(पृष्ठ १८ का शेषांश)

होने के कारण दूसरी भाषा जल्दी आत्मसात करते हैं। उन्हें दूसरे विद्यार्थियों के प्रति उतनाही प्रेम है जितना वे स्व-राष्ट्रीय विद्यार्थियों से करते हैं। उन्हें दूसरे राष्ट्रों की कला और संस्कृति का ज्ञान प्रदान किया जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि ये लड़के आगे चलकर बड़े राजनीतिज्ञ बनें तो दूसरों से द्वेष नहीं करेंगे।

लेकिन इतने विशाल संसार में एक स्कूल कुछ नहीं कर सकता। हर राष्ट्र में ऐसे स्कूल होना जरूरी है। इन स्कूलों के अभ्यास क्रम में 'मानवता' की शिक्षा का अन्तर्भाव होना चाहिये। अध्यापक हर राष्ट्र के और स्वयं मानवतावादी हों और यह प्रयत्न सफल हुआ तो सचमुच ही युद्ध से हम हमेशा के लिये छुटकारा पा सकते हैं।

(पृष्ठ २८ का शेषांश)

किसी ने ऐसे घी की कल्पना की जो कमसे कम पैसों में जनता की एक ऐसी आवश्यकता की पूर्ति कर सके जो नितान्त आवश्यक है। वेजीटेबिल और उसकी ब्लेक बाजियाँ।

एक दूसरे को शोषण करने की प्रवृत्ति ने समाज में एक ऐसे अभिशाप को जन्म दिया जिसने आज के वर्तमान भ्रष्टाचार को बढ़ने में सहायता दी। खूब ब्लेक-बाजियाँ चलीं। असली घी की बताकर तेल की पुड़ियां बेची जा रही हैं, नकली को असली की संज्ञा दी जा रही है। अपने कोई भी काम करवाने के लिए कोई भी व्यक्ति शीघ्रता चाहेगा। फलस्वरूप उच्चाधिकारियों को रिश्वत दी जाने लगी जो देना और लेना दोनों ही तरह से एक अक्षम्य अपराध है।

अब प्रश्न यह है कि यह मिटे कैसे? सो तो इस तरह से सम्भव हो सकता है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का जीवन उच्च आदर्शमय उज्ज्वल हो। भारत का प्रत्येक मानव चाहे स्त्री या पुरुष अपना नैतिक स्तर ऊँचा उठाये। सबका जीवन त्यागमय हो किन्तु भोगमय नहीं। सभी को अपने कर्तव्य का पूर्णतया ध्यान हो। एक दूसरे से कोई अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहें, तभी भ्रष्टाचार का उन्मूलन हो सकता है। नैतिकता कर्तव्य और प्रेम ही इसके उन्मूलन के एकमात्र उपाय है।

मधु जनिषीय मधु वंशिषीय।
पयस्वानग्न आगमं तं मा संसृज वर्चसा॥

मैं मिठास को पैदा करूँ। मैं मिठास को आगे बढ़ाऊँ। हे अग्निदेव! मैं पुष्टि से भरा हुआ हूँ। मुझे प्रतापी बनाओ।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ गीता-६, ५,

मनुष्य स्वयं ही अपना उद्धार करे, कभी अपने को हीन न समझे। मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु है और शत्रु भी।

[समालोचनार्थ पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियाँ कार्यालय में भेजनी चाहिये]

हिन्दी शब्द-निर्णय:—लेखक पं० किशोरीदास वाजपेयी शास्त्री, प्रकाशक—हिमालय एजेंसी, कनखल (उ० प्र०) पृष्ठ संख्या ३२, मूल्य छः आने।

वाजपेयीजी हिन्दी के माने हुए विद्वान् हैं। हिन्दी राष्ट्र भाषा के पद पर अधिष्ठित हो चुकी है और इसे वैज्ञानिक दृष्टि से सुधारना नितान्त अपेक्षित है। यह प्रसन्नता की बात है कि वाजपेयीजी इस दिशा में सचेष्ट संलग्न हैं।

हिन्दी शब्द-निर्णय में वाजपेयीजी ने हिन्दी में प्रचलित कई शब्दों को लेकर उनकी छानबीन की है। ऐसा करते हुए वाजपेयीजी से कुछ भ्रमात्मक स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसकी ओर किंचित् संकेत कर देना उचित प्रतीत होता है। वाजपेयी जी ने य् व् र् के इ, उ, ऋ रूप को सम्प्रसारण कहा है। जहाँ तक सम्प्रसारण का सम्बन्ध है वह स्वर का ही होता है व्यञ्जन का नहीं। अतः यदि यह कहा जाता कि इ, उ, ऋ का य् व् र् के रूप में सम्प्रसारण हुआ है, तो अधिक उचित व व्याकरण संगत होता। इसी सम्प्रसारण के बल पर वाजपेयीजी ने उठिए, बैठिए, कीजिए आदि को शुद्ध व उठिये, बैठिये, कीजिये आदि को अशुद्ध ठहराया है जो उचित नहीं।

शास्त्री जी ने पढ़े, करे, लिखे आदि को पढ़ + इ, कर + इ, लिख + इ माना है। पर वस्तुतः ये शब्द संस्कृत के विधिलिङ् पठेत्, करेत्, लिखेत् आदि के तद्भव रूप हैं।

राम जाय, खाय, आय खड़ी बोली हिन्दी में न कभी चले हैं न चलेंगे। वाजपेयीजी जिनकी बात करते हैं वे शब्द हैं जाये, खाये, आये आदि। आय तो बंगला में चलता है हिन्दी में नहीं। वाजपेयीजी ने सोए, धोए, रोए, पाए आदि को विधिलिङ् के शुद्ध रूप माने हैं। पर भूतकाल में इनके रूप सोया, धोया, रोया, पाया आदि मिलते हैं। समझ नहीं पड़ता भूतकाल के इस 'य' का लोप विधिलिङ् में क्यों कर दिया गया? यदि सोए, रोए, धोए पाए को शुद्ध मानते हैं तो भूतकाल के सोआ, रोआ, धोआ, पाआ को भी शुद्ध मानने से इन्कार नहीं होना चाहिए; क्योंकि अ, आ व ए सभी का सम्बन्ध कण्ठ से है और ये सजातीय हैं। यह ठीक है कि हिन्दी में रखे व रखो लिखा जाता है पर बोला जाता है रक्खे व रक्खो ही।

वाजपेयी जी ने छी छी शब्द का बड़ा ही मनोरञ्जक भाषा में वैज्ञानिक इतिहास बताया है। दुःख है कि उनका अनुमान भ्रमात्मक है। छी छी शब्द संस्कृत धिक् धिक् का बिगड़ा रूप है न कि शी शी का।

उजड़ना शब्द को वाजपेयीजी ने सं० उन्मूलन का हिन्दी संस्करण माना है और अपने पक्ष के समर्थन में कहा है कि इसमें 'जड़' सं० के 'मूल' से सम्बन्धित है। वस्तुतः संस्कृत के 'उच्चाटन' शब्द ने भोजपुरी उचारन और हिन्दी उजाड़न या उजाड़ना को पैदा किया है।

समूची पुस्तक में बहुत से शंकास्पद स्थल हैं जिनपर विशद विवेचन की अपेक्षा है। पुस्तक से हिन्दी शब्दावली के विषय में भ्रम फैलने का अधिक डर है। फिर भी भाषा-विज्ञान के अध्येता एवं भाषा की गतिविधि में दिलचस्पी रखनेवालों के लिए पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी ऐसी आशा है।

—जगदीश एम० ए०

आवश्यक सूचना

'अणुव्रत' के सभी पाठकों को सादर सूचित किया जाता है कि वे वार्षिक चन्दे, नमूने, वी० पी०, शिकायत, ऐजन्सी व अन्य व्यवस्था सम्बन्धी बातों के लिये 'व्यवस्थापक अणुव्रत' और समाचार, रचना, सम्मति, सुझाव व अन्य सम्पादन सम्बन्धी बातों के लिये 'सम्पादक-अणुव्रत' के नाम पत्र-व्यवहार करें। कार्यकर्ताओं के व्यक्तिगत पत्रों पर ही उनके नाम लिखा करें। आशा है भविष्य में इसका ध्यान रखा जायगा।

श्री प्रतापसिंह वैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित

अणुव्रत
प्रकाशक अणुव्रत समिति

'अणुव्रत' के—

व्यवस्थापकीय नियम

(१) अणुव्रत हर महीने की पहली और पन्द्रहवीं तारीख को निकलता है।

(२) क्रमशः ५ और २० तारीख तक यदि किसी ग्राहक को अणुव्रत न मिले तो अपने पोस्ट आफिस से पूछताछ करने के उपरान्त उनके उत्तर के साथ अणुव्रत कार्यालय को लिखना चाहिये।

(३) वार्षिक मूल्य ६) रु० तथा एक प्रति का ।) आना है। वी० पी० प्राय नहीं भेजी जाती। समय और धन दोनों की ही बचत देखते हुए पाठक मनिआर्डर से ही रुपया भेजें।

(४) आप 'अणुव्रत' के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं।

(५) किसी तरह के पत्र-व्यवहार में अपनी ग्राहक संख्या, नाम व पूरा पता साफ अक्षरों में लिखने और जवाबी कार्ड भेजने की कृपा करें।

(६) पता बदलने की सूचना एक महीने पहले मिलने पर ही नये पते से 'अणुव्रत' भेजा जा सकेगा।

(७) नमूने के लिए यथासम्भव चार आने के टिकट अवश्य भेजें।

—व्यवस्थापक

अणुव्रत के पाठकों से !

'अणुव्रत' को और अधिक लोकोपयोगी व जन-रुचिकर बनाने की दृष्टि से 'अणुव्रत' में प्रकाशित रचनाओं के सम्बन्ध में अपने सहृदय पाठकों का मत जानना आवश्यक है।

अतः हमारा साग्रह निवेदन है कि भविष्य में सहयोगी पाठक 'अणुव्रत' के प्रत्येक अङ्क पर अपनी सम्मत्ति, विचार व सुझाव आदि निःसंकोच लिखकर भेजें।

जो पाठक हमारी त्रुटियों व अभावों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे उनके हम विशेष आभारी होंगे।

रचनात्मक विचारों व सुझावों को यथाशीघ्र क्रियान्वित करने का भी प्रयत्न हो सकेगा।

—सम्पादक

'अणुव्रत' के पाठकों की जानकारी के लिए

कि—

- नैतिक दृष्टि से देश में क्या हुआ है और क्या हो रहा है ?
- विदेशों में क्या-क्या प्रयत्न हो रहे हैं ?
- कौन-कौन सी गतिविधियां कार्य कर रही हैं ?
- किन-किन प्रयत्नों और प्रयोगों में सफलता मिली है ?
- कौन-कौन से उपायों से नैतिक विकास सम्भव है ? आदि आदि

को लेकर—

शीघ्र ही एक लेखमाला प्रारम्भ की जा रही है जिसका शीर्षक है।

'देश - विदेश में नैतिक - क्रांति'

खोजपूर्ण, मौलिक, गंभीर साथ ही रोचक एवं ठोस सामग्री से भरपूर लेख सादर आमन्त्रित हैं

इस लेखमाला के अन्तर्गत प्रकाशित रचनाओं पर

यथायोग्य पारिश्रमिक भी दिया जायगा

रचना भेजते समय लेखमाला का उल्लेख अवश्य करें

—सम्पादक

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१
卐
वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १ अप्रैल, १९५६ [अंक १२

विचारों के उजलेपन के बिना व्यक्ति पवित्र नहीं, अपवित्र है !

भारतीय संस्कृति में वह जीवन जीवन है, जो शान्त, तुष्ट और पवित्र है। जिसमें शान्ति, तुष्टि और पवित्रता नहीं, वह केवल कहने भर को जीवन है, जीवन का सच्चा सत्व वहां नहीं, भौतिक साधनों की उपलब्धि और उनके उपयोग में शान्ति नहीं। शान्ति संयम में है संयम अर्थात् असत्य, हिंसा आदि पतनकारी तत्वों से बचते हुये सत्य अहिंसा आदि पर डटे रहना। ऐसा करने वाला ही सच्ची शान्ति या सात्विक सुख पा सकता है। आपके विचारों में, वृत्तियों में जितना अधिक संयम को आप प्रश्रय देंगे, जीवन उतना ही शान्ति और सुख की ओर अग्रसर होगा। तुष्टि या सन्तोष का साधन है—स्वतन्त्रता। स्वतन्त्रता के विना जीवन दूभर जैसा होता है। पिंजड़े में बंधा पक्षी चाहे जितना मेवा मिष्टान्न पाने पर भी क्या सुख अनुभव करता है? राजनैतिक दृष्टि से आज देश स्वतन्त्र है पर मेरी दृष्टि में यह बाहरी स्वतन्त्रता है। देश के लोगों को आन्तरिक स्वतन्त्रता पाने की ओर प्रयास करना होगा। इसलिये यहां जो मैंने स्वतन्त्रता की बात कही, उससे मेरा आशय है—स्व अर्थात् अपना तन्त्र, आत्मानुशासन, आत्म नियमन, स्ववशता, जो अपने द्वारा शासित है, आत्मानुशासन में रमा है, सचमुच वह स्वतन्त्र है, क्योंकि स्वयं पर उसका अपना शासन है, दूसरे का नहीं। पवित्रता से मेरा मतलब बाहरी सफाई—धुलाई से नहीं है। विचारों और वृत्तियों में सात्विकता-निर्मलता ही सच्ची पवित्रता है। कपड़े खूब साफ सुथरे पहन रखें हैं, नहाया-धोया है पर यदि विचारों में उजलापन नहीं है तो वह व्यक्ति पवित्र नहीं, अपवित्र है। प्रत्येक व्यक्ति इन साधनों को लेते हुए अपने जीवन को शान्त, सन्तुष्ट और पवित्र बनाने की ओर आगे बढ़े।

आत्मा, परमात्मा, संसार का आदित्व अनादित्व आदि दार्शनिक गुत्थियां दार्शनिकों और विचारकों के लिये हैं, जब वे आपस में इन पर विवेचना करते हैं, विश्लेषण करते हैं तो कितना सुन्दर लगता है पर ध्यान रहे, जन साधारण के उलझने के लिये, आपसी संघर्ष के लिये वे तत्व नहीं हैं। जन साधारण को जीवन शुद्धि की उन सार्वभौम बातों को लेकर चलना है, जिनसे उनके जीवन की बुराइयां मिट सकें। अणुव्रत-आन्दोलन इसी विचार का प्रतीक है। वहां नियम लादे नहीं जाते, व्यक्ति स्वेच्छा के साथ स्वयं उन्हें स्वीकार करता है। वह स्वयं आत्म-निरीक्षण भी करता रहता है कि नियमों के परिपालन में कहीं स्खलना तो नहीं हो रही है। इस प्रकार सहज रूप में जीवन को सात्विक और उन्नत बनाने का यह उपक्रम है।

अणुव्रत-आन्दोलन जीवन की मूल भित्ति को सुदृढ़ बनाना चाहता है। पारस्परिक द्रोह और असदभावना के स्थान पर हमें प्रेम, भ्रातृभाव और सद्भावना का संचार कर जीवन में एक नई शक्ति भरना है। इसका अनुगमन करने वाला स्वयं आत्म तृप्ति के मधुर रस का आस्वादन करेगा। सबसे पहले लाभ उसे स्वयं को है, इसलिये इन आदर्शों में आना मुझ पर कोई एहसान नहीं है। यह तो उनका अपना काम है, जिसे करने पर उनको स्वयं लाभ मिलेगा। यह व्यक्ति के दैनिक व्यवहार को परिमार्जित और परिष्कृत करने का एक सफल साधन है। मानव का दैनन्दिन व्यवहार सात्विकता, शुद्धता और निर्मलता लिये हो, यह जीवन की पहली जरूरत है। दैनिक व्यवहार यदि क्लेश, कदाग्रह और शत्रु भाव से गन्दा बना हो तो ऊंची-ऊंची बातें बनाने से क्या बने?

—आचार्य श्रीतुलसी

नैतिक निष्ठा का आवश्यकता

पंचवर्षीय योजना का द्वितीय दौर प्रारम्भ हो रहा है। भारत सरकार ने इसके लिये एक वृहत धन राशि स्वीकार की है। विशेषता यह बताई जा रही है कि देश-विदेश के अनुभवी योजना-विशेषज्ञों द्वारा इस बार योजना को परिमार्जित और उन्नतशील रूप दिया गया है। यहाँ हमें योजना के स्वरूप, विस्तार और उसके तथ्यों पर चर्चा नहीं करना है और न उसके प्रकार के बारे में कुछ कहना है। राष्ट्रोन्नति और समाज-निर्माण के लिये शुद्ध साध्य को लेकर जो भी योजना प्रस्तुत होती है, उसका स्वागत किया जाना चाहिये। चाहे वह सरकारी, अर्द्ध-सरकारी या गैर सरकारी रंग में ही प्रस्तुत क्यों न हो? इस दृष्टि से भारत-सेवक-समाज, समाज-कल्याण बोर्ड, अ. भा. ग्रामोद्योग बोर्ड व अन्य संस्थाओं की निर्माण-योजनाएं एक प्रशंसनीय कदम है।

योजनाओं के इस आविर्भाव से निसंदेह देश में काम करने की एक प्रवृति जाग्रत हो-रही है। समाज-कल्याण की भावना बढ़ रही और विभिन्न दिशाओं में विभिन्न कार्यों के संगठन की एक लहर दौड़ रही है। अपने अपने दृष्टिकोण से सब काम में जुट पड़े हैं और जनता की अभिरुचि के केन्द्र बनते जा रहे हैं। जिन कार्यों की पहले कल्पना मात्र थी, उसे प्रारम्भ होते देख जन-जीवन में भी एक उत्साह की आभा दिखाई दे रही है। लेकिन योजनाओं के प्रारम्भ के साथ ही उनमें शंका व समस्याएं भी जड़ पकड़ती जा रही हैं। अन्यथा क्या कारण है कि राज्य का करोड़ों, अरबों रुपया लगते हुए और सरकारी मशीनरी की अपरीमित शक्तियां खर्च करते हुए भी योजना का परिणाम कल्पना से प्रतिकूल या कम दिखाई दे रहा है। यह प्रथम पंच-वर्षीय योजना की प्रगति का अंकन करते समय स्वयं निर्माताओं की वाणी से स्पष्ट है। इससे लगता है कि योजनाओं के मूल में या उसके आचरण में कहीं-न-कहीं नैतिक दुर्बलता है जो जन-जीवन में कल्याणकारी शक्ति का अभ्युदय तो करती है—लेकिन स्थायी प्रभाव या आत्मिक उत्साह नहीं छोड़ती। आज हमें इसी पर कुछ कहना है।

योजनाओं की कल्याणकारी शक्ति के मूल में यदि नैतिक पक्ष को प्राथमिकता दी जाय तो सफलता की बहुत कुछ आशा की जा सकती है। तिस पर भी सफलता का अंकन कम लगे तब भी आत्मोत्साह की भावना क्षीण नहीं होती और जन-शक्ति को प्रेरित करने में सहायक होती है। इसमें शक्ति व्यय होती है,

सम्पादकीय

लेकिन मन्द नहीं पड़ती। आजकी योजनाओं से व्यय के साथ मन्दता भी दिखाई दे रही है। यह शुभोदय होते हुए भी मन्द की गति हमारे मार्ग में बाधक ही बनेगी। प्रतिकूल इसके विनोबाजी का भूदान आन्दोलन योजनाओं की असीमित व राज्यव्यापी शक्तियों से कोसों दूर होते हुए भी आचरण में धीरे धीरे विचार-क्रान्ति की गहरी रेखाएं छोड़ रहा है और जन-जीवन को एक नया मोड़ दे रहा है। इसमें परिणाम पर इतनी दृष्टि नहीं है, जितनी उसकी भाव-सिद्धि पर है और वह अपने आप में बढ़ रही है। ठीक यही दृष्टि इन योजनाओं के साथ होना आवश्यक है और यह तब ही सम्भव है, जब कि उसका नैतिक पक्ष सबल हो। यह बहुत कुछ योजकों के जीवन व आचरण पर भी निर्भर करता है।

दुर्भाग्य यह है कि बड़ी-बड़ी योजनाओं का निर्माण ऊपर से होता है और उनके द्वारा होता है जिनके द्वारा योजनाएं लादी जाती हैं तथा उसे अधिकाधिक विस्तार व प्रचार का रूप दे दिया जाता है। उदाहरण स्वरूप गांवों के पुनर्निर्माण की योजना ग्राम-सेवकों द्वारा न बनकर उनके द्वारा बनती और कार्यान्वित होती हैं जिनका व्यवहारिक ज्ञान और चरित्र गावों के जीवन से दूसरा ही होता है। वह शहरी गतिविधि से एक मशीनरी की भाँति योजना का रूप गढ़ते हैं और अपनी टेबुल पर बैठे बैठे उसे चारों ओर प्रचलित कर देते हैं। इससे काम तो होता है लेकिन काम की वह आशा नहीं की जा सकती जो किसी एक सबल आन्दोलन से की जाती है। यह और अधिक आश्चर्य का विषय है कि इन सब योजनाओं को आन्दोलन का जामा पहिनाया जाता है। अखबार निकाले जाते हैं और आन्दोलन-कर्त्ता खड़े किये जाते हैं। लेकिन जनता कैसे समझे कि बड़ी बड़ी तनख्वाह लेकर, कारों में बैठकर, बंगलों में रहकर हमारी झोंपड़ियों में गावों के पुनर्निर्माण का प्रकाश फैलाने वाले हमारे हमदर्द हैं या हमारे आन्दोलनकर्त्ता हैं। यदि हैं भी तो हम उनके जीवन-स्तरको छू भी नहीं सकते। वह आकाश पर विचरण करते हैं और हम धरती पर रहते हैं। इन्हें हमारे जीवन की इतनी चिन्ता नहीं, जितनी इन्हें अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने की है। यह ठीक उसी तरह है, जिस प्रकार कारों में बैठ कर बैलगाड़ियों के पुनर्विकास की बात करना। योजनाओं के नैतिक पक्ष की प्रथम दुर्बलता यहीं सिद्ध होती है।

इसलिये आवश्यकता यह है कि योजनाओं के कर्त्ता और आन्दोलन-कर्त्ता इतने ऊपर उठें कि वह स्वयं योजना के रुपक बन सकें। इसके लिये वह शहरी जीवन का लालच छोड़ें, भार-

तीय जीवन के अनुसार अपनी वृत्तियों को बदलें और हर सम्भव त्याग का आदर्श प्रस्तुत करें। दिल्ली में एक सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए हमारे प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि जबतक राज्याधिकारी अपने रहन-सहन को भारतीय जनता के अनुरूप नहीं ढालेंगे, तब तक वह देश की सेवा करने में समर्थ नहीं होंगे।

योजना के दूसरे पहलू पर भी हमें कहना है और वह है उसका राजनैतिक रूप! योजना का शुद्ध सामाजिक स्वरूप होते हुए भी आज उसका प्रयोग एक राजनैतिक इकाई के रूप में अधिक व्यवहृत होता जा रहा है। इस पर हम कभी स्वतन्त्र रूप से लिखने का प्रयास करेंगे। इस समय तो हम यही कहेंगे कि योजना के प्रति अधिक निष्ठा पैदा करने के लिये आन्दोलनकर्त्ता इस ओर भी विचार करें, तब ही योजनाओं को अधिक क्रियाशील व प्राणवान बनाने के साथ शंका-समस्याओं का समाधान देकर जन-उत्साह को स्थायी बनाया जा सकता है।

योजनाओं के मूल में नैतिक निष्ठा ही उसकी प्रगति का सही मूल्याङ्कन है और आज जब कि सब ओर स्वार्थपरता व राजनीति बरती जा रही है इसकी ओर अधिक आवश्यकता है।

● निराशा में आशा ?

एक ओर जबकि अधिकांश राज्य सरकारों ने १ अप्रेल से १९५८ तक मद्य-निषेध लागू करने में असमर्थता व्यक्त की है, मद्य-निषेध से होनेवाली हानि की पूर्ति के लिये केन्द्रीय सरकार के सम्मुख अपनी-अपनी शर्तें पेश की हैं और अपने इस नैतिक कर्तव्य को पूरा करने में अनेकानेक मजबूरियां दिखाई हैं वहां भोपाल राज्य सरकार १ अप्रेल १९५८ से अपने राज्य में मद्य-निषेध की आज्ञा जारी करना ठीक वैसा ही प्रतीत होना है जैसा निराशा के काले बादलों में आशा की एक किरण का चमकना। ऐसी स्थिति में उपरोक्त शुभ समाचार को सुनकर प्रत्येक उत्तरदायी व्यक्ति का आनन्दित होना स्वाभाविक है।

क्या हम आशा करें कि मद्य-निषेध करने वाले कुछ राज्यों को देखकर अन्य राज्य भी इस ओर सक्रिय व जोरदार कदम उठायेंगे और अपने आत्मविश्वास, जन-कल्याण एवं नैतिक कर्तव्य-पालन का अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करेंगे।

● सावधान रहें !

राज्य-पुनर्गठन के प्रश्न को लेकर बम्बई में जो उत्पात, मारकाट और लूट-खसोट हुई थी, वह घटना यद्यपि आज पुरानी पड़ चुकी है किन्तु उस समय मानवता का जनाजा निकालकर मानव ने ही अपने जिस नृशंस रूप का परिचय दिया था वह कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। ज्ञात हुआ है कि इस दुर्घटना में अनुमानतः सैंतीस लाख रुपये की सम्पत्ति की क्षति हुई है।

उपरोक्त अवसर पर होनेवाले लगभग सभी प्रदर्शनों में जो जन-कल्याण व जनहित की दुहाई दी गई थी, वह किसी से छिपी नहीं है। आश्चर्य है कि प्रदर्शनकारी जब लाखों रुपये की सम्पत्ति नष्ट करने लगे तब उनकी लोक-मङ्गल की वह भावना कहाँ चली गई थी? क्या राष्ट्र व जनता की सम्पत्ति को क्षत-विक्षत करने में ही उनका तथाकथित 'जनहित' छिपा हुआ था? इससे स्पष्ट है कि जनता को गुमराह बनाने के लिये ही यह सब नारे अपनाये जाते हैं क्योंकि उनके मूल में तो दलगत स्वार्थ-सिद्धि ही निहित रहती है। भविष्य में इस प्रकार की कुचेष्टा करनेवाले स्वार्थियों से हमें सावधान रहने की आवश्यकता है।

● समाज के कोढ़

हमारे समाज में साधु-सन्तों व महात्माओं के प्रति जो श्रद्धा है उसका न जाने आज कितने नामधारी साधु दुरुपयोग कर रहे हैं और ऐसी अवस्था देखकर लज्जा व दुःख होना स्वाभाविक है क्योंकि चोला बदल-बदलकर ऐसे स्वार्थी व अनिष्टकारी तत्त्वों ने समाज को जो हानि पहुँचाई है वह किसी से छिपी नहीं है। त्याग का ढोंग रचकर सम्पत्ति के लिये मुकदमेबाजी करना, अन्ध-विश्वास व अन्ध-श्रद्धा में डूबी हमारी माँ-बहिनों के जीवन से खिलवाड़ करना व अहिंसा पर भाषण झाड़ते हुए हिंसात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना क्या यही उनके 'साधुपन' का नमूना है? ऐसे समाचार हमें प्रायः पढ़ने को मिलते ही रहते हैं।

जोधपुर का समाचार था कि पिछले दिनों पुलिस ने बच्चों को उड़ानेवाले तीन साधुओं को एक बच्चे को उड़ाकर ले जाते हुए रंगे हाथों गिरफ्तार कर लिया। यह भी ज्ञात हुआ कि इनके गिरोह से सम्बन्धित कुछ ऐसे साधु भी हैं जो अबोध बच्चों को मारकर खा जाते हैं।

समाज के कोढ़ और मानव-रूप में इन दानवों व पाखंडियों से जन-जीवन को बचाने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से आज का प्रत्येक विचारवान व्यक्ति हर समय हर स्थान पर सावधान रहे यह युग की माँग है।

—::o::o:—

किसी विद्वान् ने कहा है—यदि धन का क्षय हुआ तो समझो कि कुछ भी नहीं गया, यदि स्वास्थ्य बिगड़ गया है तो अवश्य कुछ हानि हुई है किन्तु यदि चरित्र बिगड़ गया है तो सर्वनाश ही हो गया।

यह कथन साधारणतः कितनी ही बार हमारे सन्मुख आता है किन्तु इसपर गम्भीर विचार शायद ही कभी किया जाता है। चरित्र ऐसी वस्तु है कि इसका सम्बन्ध जितना

[जीवन और चरित्र-निर्माण के बिना राष्ट्र-निर्माण की कल्पना ठीक बालू की दीवार बनाने के समान है और इसका प्रत्यक्ष दृश्य आज हम देख भी रहे हैं। विद्वान् लेखक का प्रस्तुत विचार-पूर्ण लेख उसी दिशा में हमें आह्वान कर रहा है। —सम्पादक]

का अकारण नाश करनेवाला समझा जाता है।

ऐसी स्थिति होते हुये भी कुछ ऐसे तत्त्व भी हैं जो प्रत्येक देश में समान रूप से मान्य हैं। चरित्र का अर्थ बहुत व्यापक है। कुछ व्यक्ति चरित्र से केवल यह अर्थ समझते हैं कि विपरीत योनि के प्रति असीम लिप्सा का होना या न होना ही है किन्तु व्यापक रूप से झूठ बोलना, घूँस लेना, चोरबाजारी करना, स्वार्थी होना और यहां तक कि निजी धन का अप-व्यय मात्र भी चरित्र की सीमा का उलंघन है।

राष्ट्रोन्नत योजना में—

चारित्र्य-विकास योजना की भी आवश्यकता

नवयुवकों से है उतना ही वयस्कों से भी है। इसकी निर्मलता ठीक उसी प्रकार से प्रत्येक व्यक्ति का प्रकाशपुञ्ज है जिस प्रकार से इस समस्त ब्रह्माण्ड का सूर्य।

देशकी संस्कृति का इतिहास हमारे चारित्रिक विकास का इतिहास है। जिस काल में हमारे जितने ही अधिक आदर्श पुरुष दिखाई देते हैं उस काल का हम उतना ही गर्व से उल्लेख करते हैं। महाभारत यदि भारतीय संस्कृति की आधारशिला है तो केवल अपने युग के आदर्श चरित्रों के बल पर। आज हम यदि अशोक के धर्मचक्र को अपने राष्ट्र का प्रतीक मानते हैं तो केवल उस चक्र के संस्थापक की महान् आत्मा के चारित्रिक विकास का प्रतिपादन करते हैं। हमारे प्रतिनिधि साहित्यकारों ने अपने उत्कृष्ट नाटकों और उपन्यासों के कथानक गुप्तकालीन इतिहास के पृष्ठों से प्रस्तुत किये हैं, इसका मुख्य कारण उस समय के केवल वे आदर्शपात्र ही हैं जिनको प्रस्तुत करने में साहित्यकार को सन्तोष प्राप्त हुआ है।

रामायण, भागवत, वेद और गीता सहस्रों वर्ष पुराने होते हुए भी नवीन हैं क्योंकि ये

[श्री कैलास 'कल्पित']

सब व्यक्ति के और समाज के उस चमत्कृत रूप को प्रस्तुत करते हैं जो अमरत्व को प्राप्त है। राम से पहले और राम के बाद आर्यावर्त में कितने ही पराक्रमी राजा-महाराजा हुए किन्तु राम-नाम ही क्यों अमर हो गया? इसका एकमात्र कारण है—उनका उज्ज्वल चरित्र।

कर्म का दूसरा नाम चरित्र है। व्यक्ति के कर्म ही इसके परिचायक होते हैं, किन्तु चरित्र की व्याख्या करना एक कठिन कार्य है। हमारा मापदण्ड दिन-प्रदि-दिन बदलता जाता है। हम प्रत्येक कर्म अपने दृष्टिकोण से लेते हैं। एक ही कर्म एक विचारधारा के अनुसार आदर्श है तो दूसरी विचारधारा से थोथा और निरर्थक माना जाता है। अध्यात्मवादी और नितान्त भौतिकवादी व्यक्ति आज के दर्शन की दो मूल सम्प्रदाय हैं। कोई व्यक्ति रातभर यदि ढोल और मजीरे बजाकर कीर्तन करता है तो एक विचारधारा के व्यक्ति के लिए वह पूज्य है और तपस्वी है किन्तु दूसरी विचारधारा के व्यक्ति के अनुसार वह व्यक्ति स्वार्थी और शक्ति

हमारी सरकार देश के स्वतन्त्र होने के बाद अनेकानेक नई योजनाएँ राष्ट्र के उन्नयन के लिए बना रही है किन्तु इन योजनाओं में चरित्र-निर्माण के कार्यों का अंशमात्र भी सम्मिश्रण नहीं है। यही कारण है कि हमारी प्रगति में अवरोध उत्पन्न हो रहा है। हमें जितनी तीव्रता से आगे बढ़ना चाहिये हम नहीं बढ़ पा रहे हैं। स्वार्थ की प्रवृत्ति और चरित्र का परिष्कृत रूप न होने के कारण राष्ट्र की निधि जन-कल्याण के कार्यों में उचित रूप से व्यय नहीं हो पाती। इतना ही नहीं, हमारे देश के भावी कर्णधार नवयुवक और युवतियां कुछ ऐसे वातावरण में पोषित होते हैं कि हम जितना ही आगे बढ़नेका प्रयास करते हैं उतना ही पीछे ढकिल जाते हैं।

हमारे राष्ट्रीय शरीर की व्याधियां इतनी बढ़ चुकी हैं कि हम यदि उसके प्रत्येक रोग की सुश्रूषा एक साथ प्रारम्भ करें तो विभिन्न गुण सम्पन्न औषधियाँ ही सम्भवतः एक अपवाद सिद्ध हो सकती हैं। अतः हमें रोग की जड़ पकड़नी है, हमें उन विद्यमान गढ़ों का न्यायोचित परिवर्धन करना है जो हमारे बीच घुन

का कार्य कर रहे हैं। मैं अब कुछ व्याधियों और गढ़ों की चर्चा सउदाहरण करूंगा और चिन्तनशील समाज, राष्ट्र के प्रति जागरूक व्यक्ति तथा सत्ताधिकारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहूँगा।

हमारे वर्तमान चारित्रिक पतन के चार मुख्य कारण रहे हैं। प्रथम, सहस्र वर्ष की पराधीनता, द्वितीय, निरक्षरता और अपरिष्कृत शिक्षा, तृतीय, अश्लील चल-चित्र और चतुर्थ, मर्यादा विहीन रोमांचकारी जासूसी और रोमाण्टिक साहित्य।

पराधीनता ने हमारे पूर्वकालीन निस्पृहः आचार पर और सामाजिक संगठन पर सबसे बड़ा कुठारोघात किया है। सब कुछ खो जाने के उपरान्त अधिक से अधिक सुख सामग्री जुटाने की प्रवृत्ति ने हमें स्वार्थी बना दिया। स्वतन्त्रता के युग के आठ वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी हमारी दशा बहुत कुछ वैसी ही है और यहाँ तक कि कुछ स्थानों पर उससे भी अधिक चिन्ताजनक स्थिति उत्पन्न हो गई है। स्वयं के साज-सामान के सम्मुख हम दूसरों की चिन्ता करते ही नहीं। व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन-स्तर में इतना अन्तर है कि ऊपरवाला नीचेवाले को हेय दृष्टि से देखता है, वह यह नहीं सोचता कि महलों की मीनारों की आधारशिला नींव में पड़ी हुई वह ईंट ही होती है जो दिखाई नहीं देती। उसकी इस सुप्त भावना के परिणाम से पारस्परिक वैमनस्य बढ़ता जाता है और सद्भावना कम होती जाती है। एक ओर तो राशि के बाहुल्य से उसके दुरुपयोग का श्रीगणेश होता है और दूसरी ओर धन के अभाव और प्राथमिक आवश्यकताओं तक की पूर्ति न होने की स्थिति से नित्य ही अनैतिक घटनाएं घटती रहती हैं।

निरक्षरता और अपरिष्कृत शिक्षा के कारण भी हमारे नैतिक स्तर का ह्रास कम नहीं हुआ। हमारी ८० प्रतिशत जनता अशिक्षित है, फलतः वे अपने कर्तव्य और दायित्त्व से अनभिज्ञ हैं। अपने पेट की भूख और ऋतुओं के प्रभाव से शरीर को प्राप्त होनेवाले सुख और दुःख सभी अनुभव कर लेते हैं। इस स्वाभाविक मांग की पूर्ति के लिये हमारा कुपढ़ समाज बहुत से अवांछनीय कार्य जाने और अनजाने में कर लेता है और जिसके उपरान्त भी उसे उसके प्रति सोचने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। उसका संस्कार अचिन्तनशील होता है, फलतः वह प्रातः से सन्ध्या तक केवल स्व-स्व के चक्कर में कितने ही अनिष्ट कर बैठता है। उदाहरण के लिये गाँवों की नित्य की फौजदारियाँ हैं जिसमें प्रायः छोटी-छोटी बात पर लाठियाँ चल जाती हैं।

उन्नतशील कहलानेवाले वैज्ञानिक युग ने जहाँ अनेक सुख-सामग्री के साधन दिये हैं वहीं चलचित्र भी दिया है जो आधुनिक सामाजिक जीवन का एक अंग सा बन बैठा है। नगर-नगर और गाँव-गाँव में इसका प्रदर्शन हो रहा है। वस्तुतः यह स्वयं में कभी भी बुरा नहीं है किन्तु पूर्व कथित कुछ कारणों से ये

काजल की कोठरी

[श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा 'मुकुर']

कितना भी गोताखोर कुशल, हर बार न मोती मिलता है।

लेकिन हर एक विफलता भी
लाती है नूतन समझ-बूझ,
हर अगला कदम जमाने को
देती नवीन बल, नयी सूझ;

कितना भी माली चतुर, शूल से उसका भी पग छिलता है।

फूलों को पाने की खातिर
है उसे उलझना शूलों से,
कोई चेष्टाएँ लाख करे
क्या बच सकता है भूलों से?

कितना भी ध्यानी सजग रहे, दो-एक बार मन हिलता है।

जिन्दगी कोठरी काजल की,
बिरला बेदाग निकलता है,
दागों से बचने की खातिर
बाहर रहना निर्बलता है;

कोयला-खान में कहीं-कहीं हीरक-नीलोत्पल खिलता है।

हमारे समाज में घुन का काम कर रहा है। मैं यहाँ पर आँखों देखा उदाहरण दूँगा। प्रयाग के पैलेस सिनेमा में 'द रोव' नामक अंग्रेजी चित्र सिनेमास्कोप पद्धति पर प्रदर्शित हो रहा था। इसके पूर्व हमारे नगर में सिनेमा स्कोप पर कोई भी खेल नहीं आया था। मुझे इस नई वस्तु के देखने की इच्छा हुई और मैं टिकट लेकर अन्दर गया। जिस दर्जे में मुझे बैठना था उनकी सीटों के पास पहुँच कर मैंने देखा कि वह प्रयाग के एक गर्ल्स कालिज की लड़कियों से भरा हुआ है। लगभग ४० युवतियाँ व महिलाएं होंगी। इन्हीं के बीच एक कोने में एक सीट खाली थी मैं उसी पर जाकर बैठ गया। मेरी दवी हुई आँखों ने देखा कि उनमें से कितनी ही लड़कियों ने विस्मयात्मक दृष्टि से मुझे ऊपर से नीचे तक देखा और झूठ नहीं कहूँगा, कुछ एक ने अपने साड़ी के आंचल को सम्भालते हुए मुंह भी विचकाया। मैं पुरुष दर्शकों से बिल्कुल प्रथक, शान्त मुद्रा में बैठा रहा। खेल प्रारम्भ हुआ और अपनी चरमगति पर आते-आते अंग्रेजी शिष्टाचार की छाप उसमें पड़ने लगी। मेरा तात्पर्य है कि प्रेमी और प्रेमिका के अधरों का चुम्बन शुरू हुआ। यह क्रिया खेल भर में २५, ३० वार से शायद कम न हुई होगी। उधर यह क्रिया होती थी और उधर मेरे कानों को सीसी की आवाज सुनाई देती थी। जोश वढ़ता जा रहा था; प्रतिक्रिया स्वरूप कितनी ही लड़कियाँ अपनी आँखों को बन्द करके अपने हाथों से अपने होठों को ढक लेती थीं। मेरी दृष्टि अनायास इधर खिंचती रही और मैंने यहाँ तक देखा कि कुछ एक लड़कियाँ आपस में एक दूसरे की कमर में वह हाथ डाल कर एक दूसरों को कस रही थीं। इन लड़कियों में जहाँ अधिकतर युवतियाँ थीं वहीं कुछ एक किशोर भी थीं। मैं नहीं कह सकता कि वे अपने मस्तिष्क में क्या सोचती रही होंगी।

ऐसे विलायती और देशी चित्रों का प्रभाव हमारे तरुण वर्ग पर क्या पड़ा है इसे सहज ही आंका जा सकता है। आजकल एक प्रथा और चल उठी है कि चित्र 'वयस्कों के लिये' निर्धारित करके उसमें बहुत कुछ अनैतिक प्रदर्शन करने की छूट दे दी जाती है। ऐसे चित्र वयस्क देखने के लिये उतने लालायित नहीं होते जितने हमारे किशोर देखने को विह्वल रहते हैं और येन-केन-प्रकारेण उसे देखते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे चित्रों के गाने तो और भी अधिक हमारे समाज में उधम मचाने की धृष्टता करते हैं। घर के छोटे-छोटे बच्चे अपने माता और पिता के सामने गाया करते हैं—"फीका-फीका कजरा, टूटा-फूटा गजरा, कह देंगे सारी बात, हो गई आधी रात, अब घर जाने दो।" सचमुच ये गम्भीर चिन्ता का विषय है।

ऐसी फिल्मों के साथ ही अश्लील और रोमांचकारी साहित्य का वहिष्कार भी आवश्यक है। सिनेमा-सम्बन्धी असंयत पत्र-पत्रिकाएं, जासूसी और तिलस्मी उपन्यास या इसी कोटि के मासिक पत्र और 'असली कोकशास्त्र' के भयंकर विज्ञापन बड़े उग्र रूप से हमारी नई पौध पर प्रहार कर रहे हैं। इनका प्रकाशन निश्चित रूप से सीमित कर दिया जाय और अभी ५ वर्ष के लिये तो बिल्कुल ही बन्द कर देना चाहिये। सरकार इस ओर कठोर कदम उठाये तो बड़ा कल्याण हो सकता है।

हम यदि चाहते हैं कि हमारा परिवार, हमारा समाज और हमारा राष्ट्र चारित्रिक स्तर से उन्नतमय हो तो हमें अपनी नई पौध के भावी उत्तरदायी नागरिकों में ऐसे संस्कार डालने होंगे जो उन्हें स्वतः आदर्श मार्ग पर ले जा सकें। हमें इस पौध की ऐसी रखवाली करनी होगी जैसी वसन्त की शोभा लाने के लिये चतुर माली अपनी फुलवाड़ी के छोटे-छोटे पौदों की करता है। हमें चाहिये कि जहां एक हाथ से नवविकसित कोंपलों को उचित मात्रा में धूप-खाद्य, पानी और छाया दें वहीं दूसरे हाथ से उन खरपतवारों को या अशोभनीय टहनियों को निर्दयता से काट कर या उखाड़ कर अस्तित्वहीन कर दें जो हमारी मधुर कल्पना में घातक सिद्ध होते हैं।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सामाजिक सेवाएं, मकान, पुनर्संस्थापन के मद में ९४६ करोड़ रुपये व्यय करने की योजना बनाई गई है जिसमें शिक्षा पर केवल ३२० करोड़ रुपया व्यय हो रहा है। आज शिक्षा का जितना अभाव है उसको देखते हुये ये निधि कभी भी पर्याप्त नहीं है फिर भी इस निधि का यदि उचित उपयोग हो सका तो बहुत सा कार्य बन सकता है।

सरकार को अच्छा साहित्य सस्ते दामों में जनता के हाथों में देने की एक योजना बनानी चाहिये। तरुणवर्ग में शिक्षा और पठन-पाठन की अभिरुचि उत्पन्न करने के मार्ग अपनाने चाहियें। देश के स्वतन्त्र होने के उपरान्त निश्चय ही हमारे प्रकाशन में एक क्रान्ति आई है और अखिल भारतीय मुद्रण कला एवं प्रकाशन प्रदर्शनी के देखने से आभास मिलता है कि हमने पर्याप्त उन्नति की है किन्तु ये व्यक्तिगत और व्यापारिक प्रयास होने के कारण बहुत सीमित क्षेत्र तक ही उपयोगी हो सकी है। अच्छा साहित्य और सुन्दर प्रकाशन बहुत महंगा मिलता है और जिसकी ओर से जनता का विमुख होना स्वाभाविक हो जाता है। अन्य को क्या कहूँ सरकार के अपने ही प्रकाशन

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

व्रतों की शब्दावली में गूढ़ता नहीं, उनमें भावनाएं गूढ़ हैं !

[प्रारम्भ में व्रतों की साधना का सम्बन्ध चाहे व्यक्तिविशेष से ही अनुभव होता हो परन्तु कालान्तर में साधना से तपा हुआ तेजस्वी व्यक्तित्व पास-पड़ौस को भी प्रभावित करने लगता है और यहीं आकर व्यक्ति समष्टि में समा जाता है। —सं०]

व्रत सारे के सारे वैयक्तिक होते हैं। धन सामाजिक होता है। एक की कमाई का लाभ अनेक को मिल जाता है। व्रत में वैसी बात नहीं है। एक व्यक्ति की व्रत-साधना का लाभ दूसरों को नहीं मिलता। प्रासंगिक लाभ तो मिलता है। एक व्यक्ति अपनी भलाई के लिये कोई भी बुरा काम नहीं करता वह समाज की भलाई में बिना कुछ किये अपना योग दे देता है। अनावश्यक संग्रह नहीं करनेवाला दूसरों की आवश्यकतापूर्ति का सहज भाव से निमित्त बन जाता है। यह प्रासंगिक लाभ की बात हुई। हमारा तात्पर्य व्रत के मौलिक लाभ से है। उसका प्रतिदान नहीं होता। शान्ति उसी को मिलती है जो व्रत के द्वारा अपनी वृत्तियों का शोधन करता है। दूसरों को वह नहीं मिलती। सगे-सम्बन्धियों को भी उसका दाय-भाग नहीं मिलता। प्रेरणा मिल सकती है, निमित्त मिल सकता है पर शुद्धि मूल रूप का समर्पण नहीं होता—यही उनका वैयक्तिक स्वरूप है। यह व्रतों के शुद्ध रूप की मीमांसा हो गई। यहां मेरा अभिप्राय दूसरा है। यहां उन्हीं व्रतों को 'वैयक्तिक' संज्ञा देनी है जो मुख्यतया व्यक्ति की निजी स्थिति को ही प्रभावित करनेवाली बुराई का नियंत्रण करें। व्यक्ति के अलावा छोटे या बड़े समूह को प्रभावित करनेवाली बुराई का नियन्त्रण करने वाले व्रत 'सामूहिक' हो जाते हैं। वृत्ति-शोधन की अपेक्षा दोनों प्रकार के व्रत एक रूप हैं। यह संज्ञा-भेद केवल प्रासंगिक परिणाम या दूसरों पर होनेवाले सहज परिणाम की अपेक्षा से है।

आन्दोलन के ४९ व्रतों में से दस व्रतों का परिणाम मुख्यवृत्त्या व्यक्ति पर ही होता है। इसलिये उन्हें वैयक्तिक कहा जा सकता है। २७ व्रत समाज की स्थिति को प्रभावित करते हैं इसलिये उन्हें सामाजिक व्रत कहा जा सकता है।

१७ व्रत राष्ट्रीय हैं और ६ व्रत अन्तर्राष्ट्रीय। इस गणना-पट्टक में व्रतों की संख्या ६० हो गई है। कई व्रत डमरू-मणि की स्थितिवाले या सचारी हैं। वे एक से अधिक क्षेत्र पर सीधा असर डालते हैं। इसलिये अनेक क्षेत्रों में उन्हें गिना गया है। व्रत-संख्या की वृद्धि का हेतु यही है।

व्रतों का यह विभाजन स्थूल-विचार से किया गया है। इनकी सञ्चरणशीलता बहुत सूक्ष्म है इसलिये उसे किसी एक ही साथ बांधा नहीं जा सकता।

दूसरी बात—व्रतों का यह विभाजन संक्षिप्त रुचि के अनुसार किया गया है। विशद रुचि के अनुसार व्रतों को विभिन्न क्षेत्र व कार्यों में बांटा जा सकता है। जैसे—तीन व्रत पारिवारिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले हैं। ३ व्रत शिक्षा क्षेत्र से सम्बन्धित हैं, २ व्रत चिकित्सा क्षेत्र से जुड़े हुए हैं, २० व्रतों का सम्बन्ध व्यवसाय व उद्योग से है। इसी प्रकार ५ व्रत विवाह से, २ व्रत न्यायालय से, ४ व्रत खान-पान से, २ व्रत परिधान से, २ व्रत परम्पराओं से, १ व्रत पर्व से, १ व्रत धर्म सम्प्रदायों से, १ व्रत-पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से, १ व्रत जातिवाद से, १ व्रत निर्वाचन से, ५ व्रत सामन्य व्यवहार से सम्बन्ध रखते हैं।

१—पारिवारिक जीवन—१।२, १।३, २।४।

अणुव्रत-दर्शन

१२

वैयक्तिक	सामाजिक		राष्ट्रीय	अन्तर्राष्ट्रीय
१।२	१।१	५।५	१।१	१।१
४।१	१।२	५।६	१।३	२।८
४।२	१।५	६।१	२।७	३।२
४।३	१।६	६।२	२।८	३।३
६।१	२।१	६।५	३।३	३।४
६।१	२।२	६।८	३।४	६।५
६।२	२।३	६।९	३।६	
६।३	२।४	६।१०	५।१	
६।६	२।५	६।११	५।२	
६।८	२।६	६।१२	५।३	
	३।१		५।४	
	३।२		६।१	
	३।४		६।२	
	३।५		६।५	
	४।४		६।७	
	४।५		६।८	
	५।१		६।११	

[मुनि श्री नथमलजी]

२—शिक्षालय—२।७-क, ख, ग, घ।
३—चिकित्सालय—२।७—क, ५।४।
४—व्यवसाय-गृह—१।६,२।१, २।५,२।६।,२।७-क, ख, ३।२, ३।३, ३।४, ६।९।
५—विवाह-संस्था—४।४,४।५,५।५,५।६,६।२।
६—न्यायालय—३।२,३।३।
७—खान-पान गृह—६।१,६।२,६।३।,६।४।
८—परिधान गृह—६।६,६।७।
९—परम्परा-प्रवाह—६।१०,६।११।
१०—पर्व—६।१२।
११—धर्म सम्प्रदाय—६।५
१२—प्रकाशन व सम्पादन गृह—२।८।
१३—जातिवाद—१।५।
१४—निर्वाचन-पेटी—५।३।
१५—सामान्य व्यवहार—२।४,२।५,३।२,३।६, ५।२।
१६—संस्था—२।४,३।५

व्रत-साधना के प्रासंगिक लाभ

व्रतों की शब्दावली में गूढ़ता नहीं है। उनमें भावनायें गूढ़ हैं। उनकी स्पष्ट रेखाओं को देखना जरूरी है। १।१ में संकल्पपूर्वक घात नहीं करने का व्रत है। उद्देश्यहीन हिंसा, आवेग-क्रोध, लालच, अधिकार, अभिमान, कपट—की स्थिति में होनेवाली हिंसा संकल्पी हिंसा है। इसका पहला रूप शौकिया मनोवृत्ति से बनता है—शिकार खेलना, भैंसों या दूसरे जानवरों के साथ लड़ते हुए उन्हें मारना ये और इस कोटि के दूसरे कार्य जीवन के आवश्यक अंग नहीं होते। केवल क्रीड़ा या मनोरंजनमात्र होते हैं इसलिये अणुव्रती उनसे बचें। दूसरा रूप साम्राज्यवादी व संग्रहवादी मनोवृत्ति, जातीय और साम्प्रदायिक विद्वेष की मनोवृत्ति से बनता है—आक्रमण करना, आग लगाना, भड़काना, विद्रोह फैलाना—ऐसी प्रवृत्तियां संकल्पी हिंसा के ही रूप हैं। 'संकल्पपूर्वक घात नहीं करना'—इसका अर्थ न मारने तक ही सीमित नहीं है किन्तु हिंसा को उत्तेजना मिले वैसी प्रवृत्तियां न करना—यह भी उसी में समाया हुआ है। इसलिये अणुव्रती ऐसी प्रवृत्तियों से दूर रहें। आक्रमण न करना—यह सामाजिक व राष्ट्रीय महत्त्व से भी आगे जाता है। इसका बहुत बड़ा महत्त्व अन्तर्राष्ट्रीय है। जिस पंचशील ने अनेक राष्ट्रों को मैत्री के सूत्र में बांधा है उसमें एक शिला है—आक्रमण न करना। यह अणुव्रत-भावना की बहुत बड़ी विजय है। साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का मूल हिला है तभी राजनीति के क्षेत्रों में अनाक्रमण की संधि का स्वर विवशता के बिना ही बलवान बनता जा रहा है। लोभ और विद्वेषवश वैयक्तिक या जातीय आक्रमण न हो, वैसा विवेक-जागरण भी अणुव्रत-आन्दोलन का प्रमुख ध्येय है।

अनाक्रमण की वृत्ति का लाभ है—शान्ति जातीय शान्ति, राष्ट्रीय शान्ति, विश्व शान्ति। अनाक्रमण मैत्री की पहली मंजिल है। आक्रमण की वृत्ति क्रूरता से बनती है। वह अंकुरित न हो उसके लिये छोटी-छोटी बातों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। (१) कठोर बन्धन से बांधना, (२) अङ्ग विच्छेद करना, (३) डाम देना, (४) निर्दयतापूर्वक पीटना, (५) पशुओं को आपस में लड़ाना, (६) त्रिशूल आदि के दाग लगाना, (७) बलात् दूसरों को अपने आधीन बनाना व आधीन किये रखना ये छोटी किन्तु क्रूरता की वृत्ति को पोषण करनेवाली प्रवृत्तियां हैं। अनाक्रमण की भावना को प्रबल बनाने के लिये इनका निवारण भी अपेक्षित है।

शस्त्रास्त्र और गोला बारूद के उद्योग धंधों का नियंत्रण भी अनाक्रमण की भावना को विकसित करने के लिये आवश्यक है। आक्रमण की भावना के रहते हुये निःशस्त्रीकरण की बात नहीं फलती वैसे ही अस्त्र-शस्त्रों के बढ़ते हुये उत्पादन के साथ अनाक्रमण की संगति नहीं होती। शस्त्रास्त्रों को निर्माण करनेवाले व्यापारी आक्रमण की वृत्ति को उभारने में ही अपना लाभ देखते हैं। आक्रमण की जड़ हिलाने के लिये पारिपार्श्विक पोषण तत्त्वों को उखाड़ फेंकना ही होगा।

जिस राष्ट्र की व्यापारिक साख नहीं होती उसका व्यापार भी अन्तर्राष्ट्रीय नहीं बनता। नैतिकता की कमी प्रतिष्ठा में भी कमी लाती है। आध्यात्मिक हानि के साथ-साथ व्यावहारिक हानि भी होती है। व्यापारिक अप्रामाणिकता छोड़ने का परिणाम केवल निर्यात वृद्धि ही नहीं होता, उससे राष्ट्र के सांस्कृतिक विकास का अनुमापन भी किया जाता है। व्यापार में क्रूर व्यवहार—(१) माल पाकर नहीं मिला या कम मिला, (२) अच्छा माल पाकर बुरा मिला, (३) मूल्य पाकर नहीं मिला या कम मिला, (४) सौदा करके नहीं किया—करने से ऊपर बताये हुये कार्य करने से प्रतिष्ठा टूटती है, नैतिक पतन होता है इसलिये ऐसे कार्य जो व्रत की भाषा में नहीं आये हैं किन्तु ये उनकी भावना से परे नहीं हैं। जिस समाज में (१) स्त्रियों का व्यापार, (२) वेश्या-वृत्ति से आजीविका, (३) लाइसेंस, नौकरी, ठेका आदि प्राप्त करने के लिये घृणित तरीकों का प्रयोग, (४) स्त्रियों को धमका, फुसला, बहका, लुभाकर विवाह करना, (५) विश्वासघात करना, (६) झूठा लाइसेंस, (७) अनिष्टकारी सलाह, (८) झूठे राशनकार्ड बनाना, (९) जुआखाना खुलवाना—ऐसी जघन्य प्रवृत्तियां चलती हैं वह उन्नत सांस्कृतिक चेतनावाला नहीं होता इसलिये व्यापार सम्बन्धी अनैतिकता निवारण की साधना सामाजिक स्वस्थता को भी कम महत्त्वशाली नहीं बनाती। (क्रमशः)

एक मनोवैज्ञानिक लेख—

हीन भावना का दुष्परिणाम

—डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी

हम किसी की आलोचना अथवा बुराई क्यों करते हैं ? उत्तर स्पष्ट है। अपनी नादानी अज्ञता अथवा अल्पज्ञता को छिपाने के लिये ही हम दूसरों की कटु आलोचना करते हैं, या यों कहिए कि उस आलोचना के पर्दे के पीछे हम अपनी अल्पज्ञता छिपाने का प्रयास करते हैं। आलोचना करके हम यह चाहते हैं कि लोग हमें अल्पज्ञ न समझें। सारांश यह कि प्रत्यक्ष रूपमें आलोचना अथवा पर-निन्दा, हमारी अल्पज्ञता के लिए आवरण का कार्य करती है, परन्तु परोक्ष रूपमें वह हमारी हीन भावना को व्यक्त करने का माध्यम बन जाती है।

मान लीजिये हम फटा कुर्ता पहने हुए हैं, अथवा हमारे कोट में बटन नहीं है। अब यदि हम अच्छे कपड़ों को ही सब कुछ समझते हैं, तो हमारे मन में सदा यही आशंका उठती रहेगी कि सब लोग हमारे फटे कुर्ते अथवा बटन-विहीन कोट की ओर ही देख रहे हैं, जब कि वस्तुस्थिति यह है कि केवल वस्त्रों को सम्मान का एकमात्र साधन समझनेवाले बहुत कम लोग हैं और उनसे भी कम उन लोगों की संख्या है, जिन्हें हमारी ओर अथवा हमारे कपड़ों की ओर ध्यान देने की फुर्सत है।

बड़े लोग बड़ी-बड़ी बातों को भी छोटा समझते हैं और छोटे लोग छोटी-छोटी बातों को भी बड़ा समझते हैं। एक बार महात्मा भगवानदीन को भिखारी समझकर स्वयंसेवकों ने पीट डाला। जब उन्हें उनका व्यक्तित्व मालूम हुआ तो वे स्वयंसेवक उनसे क्षमा-याचना करने लगे। महात्मा भगवानदीन ने बहुत ही सरल स्वभाव से कह दिया कि "अरे ! तो इसमें हुआ ही क्या? मुझे तो पिटने की आदत है।" भगवान विष्णु और ऋषि भृगु की कथा आपको विदित ही होगी। भृगुजी ने विष्णु के वक्षस्थल में लात मारी, विष्णु ने चरण पकड़कर भृगुजी से पूछा कि "महाराज चोट तो नहीं लग गई?" भृगुजी लज्जित हो गये। विष्णु का क्या घट गया ? वह तो आज भी विश्व के पालनकर्ताके रूप में विश्व द्वारा पूजित हैं। यही बात महात्मा भगवानदीन तथा उन जैसे व्यक्तियोंके सम्बन्ध में समझ लेनी चाहिये। इस श्रेणी के व्यक्तियों की धारणा होती है कि हमारा क्या घट जायगा ? अपने विरोधियों पर क्रोध करने के बजाय महात्मा ईसा उनपर दया करते थे। वे यही प्रार्थना करते थे कि वह इन नादानों को क्षमा कर दे, क्योंकि इन लोगों को भले-बुरे का, हिताहित का ज्ञान ही नहीं है। सारांश यह है कि जबतक मनुष्य स्वयं अपनी नजरोंमें नहीं गिर जाता है, तबतक संसार में कोई भी उसका अपमान नहीं कर सकता।

दो मित्र आपस में बातें कर रहे हैं। मान-लीजिये उनमें से एक काना है। अब यदि कोई तीसरा व्यक्ति किसी भी काने व्यक्ति की चर्चा करता सुनाई देता है, तो वह काना व्यक्ति यही समझेगा कि उसकी ही चर्चा हो रही है, जब कि दोनों आंखोंवाला मित्र शायद उस चर्चा को अच्छी तरह सुन-समझ भी न पावेगा। अगर एक आँखवाला व्यक्ति यह समझ लेता है कि एक आंख का नष्ट हो जाना दुर्भाग्य भले ही हो, परन्तु पाप नहीं है और दुर्भाग्य पर लज्जित होनेका कोई कारण नहीं है, तो वह भी काने व्यक्ति की चर्चा को सुनी-अनसुनी कर देगा।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी अत्यन्त कुरूप थे। उन्हें देखकर कुछ मनचले हंस दिये। जायसी ने तुरन्त ही हंसकर कह दिया कि तुम लोग मुझ पर हंस रहे हो या उस कुम्हार पर जिसने मुझे बनाया ?" उनकी बात सुनकर लोग लज्जित हो गये। जो अपनी नजरों में नहीं गिर गया है, उसे औरों की नजरों में उठने की फिक्र ही क्यों होगी ? हमारी हीन भावना ही हमें यह जानने को उत्सुक करती है कि लोग हमें कैसा समझते हैं। वे कहीं हमें छोटा, झूठा, बेईमान, धूर्त आदि तो नहीं समझते हैं ?

अब आप इसे भी समझ गये होंगे कि अपने विषय में कमसे कम चर्चा करना बड़प्पन का लक्षण क्यों माना गया है, अथवा जो लोग अपने विषय में, अपनी योग्यता के विषय में, अपनी कार्य-कुशलता, वंश-परम्परा आदि के विषय में बहुत वर्णन करते हैं, उन्हें दया का पात्र क्यों समझा जाना चाहिए। शेर ने आज तक किसी से शिकायत नहीं की कि उसका

राज-तिलक-समारोह क्यों नहीं किया गया, हीरे ने कभी नहीं कहा कि उसे अंगूठी में क्यों जड़ा गया? सर्वोत्तम होने के नाते उसे तो केवल मस्तक पर ही धारण किया जाना चाहिए था। स्वामी रामतीर्थ ने महत्वाकांक्षी व्यक्तियों को लक्ष्य करते हुए ठीक ही कहा था कि जो पत्थर दीवालों में लगने के योग्य है, वह सड़क पर कभी पड़ा नहीं रह सकता. हाथी भूकने वाले कुत्तों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है। हम मानव हैं, हाथी पशु है। हमारा स्तर उससे कहीं अधिक ऊंचा है। हम अपनी निन्दा करनेवालों पर तरस खा सकते हैं, उन्हें सद्‌बुद्धि प्रदान करने के लिये प्रार्थना कर सकते हैं।

कभी-कभी असफलता अथवा निराशा के वशीभूत होकर हम अपने आपको अपमानित हुआ समझने लगते हैं। हमारा अहंकार, मिथ्याभिमान की सृष्टि करता है, उसकी संतुष्टि के लिये हम अनेक इच्छाएँ करते हैं, इच्छाओं की अपूर्ति हमारे अहं पर आघात करती है। इस आघात के निराकरणके लिए अथवा अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिए हम फिर खड़े होते हैं और स्थितिमें तनिक सा भी विरोध हमारी हीन भावना को उभाड़ देता है। बस, हम आपे से बाहर हो जाते हैं। इस आपे को आपे में रखने के लिए हम कभी किसी की निन्दा करने लगते हैं, कभी किसी से लड़ पड़ते हैं, कभी आत्म-प्रशंसा में रत हो जाते हैं, कभी किसी की खुशामद करते हैं, कभी किसी को नीचा दिखाना चाहते हैं, कभी चोरी करते हैं, कभी बेईमानी करने लगते हैं आदि। सारांश यह है कि हमारी हीन भावना ही हमें समाज विरोधी अथवा नैतिकता विरोधी आचरणों में प्रवृत्त करती है। मनोविज्ञान-विशारद एडलर मतावलम्बियों को समझ लेना चाहिए कि हीन भावना से ग्रसित व्यक्ति औरों की नजरों में उठने का प्रयत्न करता है, हीन-भावना से मुक्त व्यक्ति औरों को अपनी नजरों में उठाने में संलग्न रहता है।

इस विश्व का निर्माण एक विशेष योजना द्वारा किया है। विश्व के प्रत्येक घटक का उस योजना में एक निश्चित् एवं पूर्वनिर्दिष्ट स्थान एवं महत्त्व है। तब फिर कोई अपने आपको किसी से कम क्यों समझे? यदि मैं निर्धन हूं और मेरा पड़ोसी लखपती, तो मुझे समझ लेना चाहिए कि मानवता के विकास में हम दोनों का इन दो विभिन्न रूपों में उपयोग है। तब कोई कारण नहीं है कि मैं अपने लखपती पड़ोसी के महल पर ईर्ष्या करूं, अथवा अपने आपको उसकी अपेक्षा किसी प्रकार हीन समझूँ। हम उसी व्यक्ति से ईर्ष्या करते हैं, जिसकी अपेक्षा हम अपने आपको हीन अथवा हेय समझते हैं। अपने आपको हीन समझने की स्थिति में पग-पग पर किंवा प्रतिक्षण हमारा अपमान होता रहता है। ऊपर दिये हुये उदाहरणवाला हमारा पड़ोसी अपनी मोटर में चाहे यों ही स्वाभाविक रूपसे हमारे बराबर होकर तेजी से निकल जाता है, तब भी हम यही समझने लगते हैं कि हमारा अपमान करने के लिये ही वह इस प्रकार तेजी के साथ मोटर भगाता हुआ निकल गया है। परन्तु मोटर न होने के कारण हम यदि अपने आपको अपने मोटरवाले पड़ोसी की अपेक्षा हीन समझते हैं, तो जिस तरह हम अन्य मोटरों की गति पर ध्यान नहीं देते, उसी प्रकार हम अपने पड़ोसी की मोटर की चाल की ओर से भी उदासीन बने रहेंगे। ऐसी स्थिति में अपमानित होनेका प्रश्न ही नहीं उठेगा।

हमें समझ रखना चाहिए कि हम सूर्य से भी अधिक तेजस्वी तथा हिम और हीरक से भी अधिक पवित्र हैं, तब हम किसी के सम्मुख अपना सिर क्यों झुकायें, अपनी आंख क्यों नीची करें? बादलों के कारण सूर्य कभी-कभी छिप जाता है। वासनाओं के इस शरीर रूपी

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

पथ वही, जिसका चरण आधार पाता है!

[मुनिश्री बुद्धमलजी]

जीतता आलोक ही, तम हार जाता है।

जब अमा ने दृप्त हो तम जाल फैलाया।
दीपमाला हंस पड़ी यह देखकर माया॥
विश्व नयनों में पुलक का ज्वार आता है।
जीतता आलोक ही, तम हार जाता है॥

तिमिर है अनिवार्य, पर कब मनुज को भाया।
क्योंकि; जीवन-सूत्र उसने ज्योति से पाया॥
तिमिर में छिप मृत्यु का संस्कार आता है।
जीतता आलोक ही, तम हार जाता है॥

शून्य है गत, शून्य की ही कल्पना भावी।
बस इसी क्षण में ज्वलित है सत्य मेधावी॥
पथ वही, जिसका चरण आधार पाता है।
आजीतता लोक ही, तम हार जाता है॥

डूबती पतवार

श्री रामअवतार चौरासिया "अनन्त"

[मन में उठनेवाले विचारों की लहरों ने धीरे-धीरे उग्र रूप धारण किया व संघर्षमय विचारों का ज्वार रामदीन की पतवार को हिलारे देने लगा। पतवार, वह सचमुच ही डूब गई और आखिर समाज को उसका रहस्य भी ज्ञात न हो सका।

—सम्पादक]

और भूखा रामदीन लाल किला के सामने वाले परेड-ग्राउण्ड में बैठ गया। भूख के मारे बुरा हाल हो रहा था। हाथ-पैर जवाब दे रहे थे। आज चार मास हो गए उसे इस दिल्लीकी गलियों की खाक छानते हुए। जो घर से पूंजी लाया था वह सब समाप्त हो गई थी। आंखें गड्ढे में धंसी, बढ़ी दाढ़ी, सूखा मुर्झाया चेहरा, व्याकुलता की पराकाष्ठा का परिचायक था। कपड़े गंदे हो चुके थे, जिनसे हल्की-हल्की दुर्गन्ध आने लगी थी। चार दिन से उसे ठीक से भोजन भी नहीं मिल पाया था। सस्ते होटल में खा लेना और इधर-उधर कहीं पड़ रहना और प्रातःकाल फिर काम की खोज में दिल्ली की सड़कों को नापना, यही रोज का काम था। पुरानी दिल्ली व नई दिल्ली की जगमगाती मोटर-तांगों से आच्छादित सड़कें, सब उसने अपने पैरों से नाप डाली और देखे ऊंचे-ऊंचे भवन, साइकलों पर जाते हुए छैलचिकनिया युवक, युवतियों को साइकल पर आगे बैठाले हुए तेजी से भगाते हुए। भविष्य की पेरिस दिल्ली जिसमें वैभव ठाठें मार रहा था। सारा दिन बीत जाता परन्तु काम कहीं भी न मिला। एम्प्लायमेंट-एक्सचेंज में भी उसने किसी तरह अपना नाम लिखा दिया था परन्तु तारीख आने के बहुत दिन थे। आज उसे कई दिन हो गए, अन्न का एक दाना भी उसके मुख में नहीं पड़ा था, मांगते लज्जा आती थी। केवल पानी के बल पर कहां तक निर्भर रहा जा सकता था?

आज उसे एक जगह काम मिलने की आशा थी, वहां गया, परन्तु वहां भी कल पर टल गया और फिर वह घूमता-घामता लाल किला के परेड-ग्राउण्ड में जाकर बैठ गया। सामने चांदनी चौक की सड़क चली गई थी, जिसके दाहिने लाजपत मार्केट के होटलों में खानेवालों की भीड़ थी। दरियागंज के रोड पर मोटरें भागी चली जा रही थीं। एक से एक खूबसूरत, नई पुरानी। जिन्हें देखकर यह असम्भव सा जान पड़ता था कि भारत निर्धन देश है।

एक तरफ मुगल साम्राज्य की वैभवता का प्रतीक लाल किला मायूसी में खड़ा था। जिसकी लाल पत्थर की दीवालें विगत वैभवका स्मरण कर मौन चुपचाप करुणा भरी दृष्टि से संसार को ताक रही थी। जहां पर कभी मुगलिया सल्तनत का इस्लामी झंडा इठलाया करता था और कभी केशरिया फहरा था और फिर ब्रिटिश साम्राज्य का यूनियन जैक लहराया था, वहां पर जनतंत्र-गणतंत्र का तिरंगा ध्वज गर्व से मस्तक उठाए झूम रहा था। रामदीन ने सब देखा, आंखें पसार कर देखा। किले के अन्दर लगे वायरलेस के खम्भे पर चीलें झपट्टा मार रही थीं। वह पुनः उठा और चुपचाप फुट-पाथ पर लगे हुए ठूठ-वृक्ष के नीचे बैठ गया। सामने जैनियों का श्री दिगम्बर जैन लाल मन्दिर खड़ा दीख रहा था।

सांझ हो गई थी। बिजलियों की बत्ती से सड़क जगमगा उठी थी। पर रामदीन वैसे ही बैठा रहा, शांत, मौन, निष्चेष्ट सोचता हुआ, शायद किसी को दया आ जाए और बढ़िया नौकरी मिल जाए, और फिर......वह रुपया कमाकर घर लौटे, जहां उसकी मां-बहिन और पत्नी उसकी राह देख रहे होंगे। वह उनको खबर सुनाएगा, खुशखबरी! और मां का बेहिसाब झुर्रियोंवाला मुंह, उसकी नजरों के सामने से घूम गया, बहिन का कुम्भलाया हुआ चेहरा, हंसता-सा दिखाई पड़ा पत्नीके सौन्दर्यमय चेहरे से मुर्दनी का अस्तित्व समाप्त होता-सा लगा।

"हूंह!.........कौन मुफ्त में दे देगा" उसने एक बार अपना सिर झंझोरा—वह दूसरी जगह चला जायगा—उसने सोचा—वह दिल्ली भूलकर भी न आयगा, कल यही बात उसने यमुना मैया के तट पर कही थी बहुत झुंझलाकर। पहले तो उसने यमुना में स्नान किया, फिर विनती की—हे यमुना मैया! तेरे द्वार पर आकर कोई खाली हाथ नहीं लौटता, मैंने सुना है मैया, तेरी नगरी में कोई भूखा नहीं रहता, मुझ पर भी दया करो। तुम्हारी महिमा ऋषि-मुनि गाते नहीं अघाते। तुम्हारे दर्शनसे

पाप-दुःख नष्ट हो जाते हैं! अ······आधा घंटा पश्चात् वह वहां से लौट आया। रास्तेमें एक पैसा पड़ा मिला तो उसने झुंझलाकर वह पैसा फेंक दिया।

रामदीन उठकर खड़ा हो गया। एक अंगड़ाई ली। देह की सारी हड्डियां चटर-पटर बोल गईं। भूख फिर जोर पकड़ गई। बस चल पड़ा दरियागंज की सड़क पर सोचता-विचारता, लड़खड़ाते दम बढ़ाता।

परेड-ग्राउण्ड में सन्नाटा हो चला था। सभी चले गये थे। केवल कुछ लोग रह गये उस असीम नीलांचल के तले। घरबारहीन।

तभी रास्ते में एक कपड़े की थैली उसके पैरों से टकराई, एक हल्की खन्न की आवाज गूंजकर मिल गई। रामदीन का हृदय धक्-धक् कर उठा। उसने चारों तरफ नजर दौड़ाई, केवल मोटरें ही आ-जा रही थीं। टटोलकर देखा—कुछ कागज के बंडल और गिलट के टुकड़े बज उठे। उसका रोम-रोम प्रसन्नता से कांप रहा था। थैली टेंट में कर वह शीघ्रता से एक ओर चल पड़ा। न जाने उसके शिथिल कदमों में कहां से इतनी शक्ति आ गई थी।

एकांत में बिजली की रोशनी में उसने थैली खोली। सौ-सौ के दो सौ नोट······ उसकी आंखों में हर्षैमता की एक विचित्र सी चमक फैल गई। थैली नोचकर एक ओर फेंक दी और नोट गुलेट में रख लिए, फुटकर रुपये ऊपरी जेब में डाल लिए और चारों ओर एक सतर्क दृष्टि डाली। कोई उसे देख तो नहीं रहा है। उसे भय हुआ······हुँह!······देखेगा तो क्या कर लेगा, मैंने चोरी तो की नहीं, किसी की जेब नहीं काटी, क्या कर लेगा कोई!···वह बड़बड़ाया, परन्तु हृदय अब भी धक्-धक् कर रहा था। सांस और जोर से चल रही थी।···आखिर भगवान ने कृपा की ही, यमुना मैया ने उसे खाली नहीं लौटने दिया। उसने कृतज्ञता से हाथ जोड़ दिए। अब वह जरूर घर लौट जायगा अब खाली हाथ नहीं है, यमुना मैया की कृपा से अब वह बीस हजार का मालिक है। उसे भूख फिर लग आई उसने पेट ठोंककर कहा—अब मत घबड़ाओ दोस्त! बढ़िया तर माल तुम्हारे पास आएगा और उसने दाढ़ी को खुजलाया······हुँह अरे! वह बोला—दाढ़ी भी बढ़ गई है, खैर खाना खाने के पहले दाढ़ी बनवा लूं और वह चल पड़ा कल्पना के संसार में डूबता-उतरता-सा। अब उसके सारे दुःख दूर हो जायंगे, घर पहुँचते ही वह सबसे पहले दो-तीन हजार का कर्जा जो उसके ऊपर है चुकाएगा। जिन कर्जदारों के सामने वह जाने में हिचकता था, जो उससे रोज तकाजा करते थे, उसे झिड़ सुनाते थे, उनके सम्मुख वह रोबगालिब करेगा, अपना मस्तक उठाकर चलेगा। गिरा हुआ घर बनवायगा। सुन्दर वस्त्राभूषणों से पत्नी और बहिन को लाद देगा। शान से बहिन की शादी करेगा, और···मां को···मां को क्या चाहिए, वह तो उन्हें सुखी देखकर ही सुखी है, उनकी परितृप्ता इसी में है। परन्तु···मां की एक इच्छा है, शौक है—गाय पालने का, वह उनके

—:होली:—

[श्री हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि']

होली खेलिएगा?

हुड़क रहा है हृदय तो फिर हिचक किस बात की? खेल डालिए एक-मन, एक-चित्त होकर।

झर-झर झर-झर झर रहा है आत्म-निर्झर—नित्य निरन्तर समान गति से, समान रूप में······देश, काल और परिस्थिति की सीमाएँ लांघता, उनका उपहास करता सा।

रह-रहकर, अविरल भी, निसृत हो रहा है इस अनन्त अखण्ड निर्झर में से सभी रंगों की झलक झलकाता और उनसे परे की भी झाईं देता आत्मीयता का रंग!······कितना अनूठा!····· कैसा अनूपम!!······नितान्त अवर्णनीय।

भर लीजिए इस अनूठे अनूपम रंग से अपने दृष्टि-पिचकारे और छूटने दीजिए उन्हें हजार-हजार धार-फुहार में इस रस-रंग की नित्य-भूखी जगती के जन-जन के कण-कण पर और इस तरह रंग डालिए समूचे विश्व को आत्मीयता के विलक्षण एवं अछूते रंग से। हां, चूकिये मत; सराबोर करके सम्पूर्णतया रस-विभोर कर दीजिए।

देख क्या रहे हैं आप? भर दीजिए······अविलम्ब······पलक की झपक में, सबको सबकी अपनायत से; कर दीजिए कृत्य-कृत्य उन्हें और हो जाइए कृत्य-कृत्य स्वयं भी होली······अनूठी होली खेल कर······सदा-सदा के लिए।

लिए एक सुन्दर गाय खरीदेगा न और जब वह यह सब चीजें लेकर घर पहुँचेगा तो लोग आश्चर्य करेंगे। मां बार-बार बलैयां लेगी। उसके परिवार के लोग जो उसकी दीनता का सदा ही उपहास करते रहे हैं। उसे तुच्छ समझते थे, उसकी प्रसंशा करेंगे, खुशामदी खींसे निपोरेंगे और जब वह उनको रुपया कमाने का झूठा अनुभव अपनी मूंछों पर ताव देकर गर्व से सीना फुलाकर लच्छेदार भाषा में समझाएगा। लोग वाहवाही के पुल बांधेंगे। यार-दोस्तों की दावतें उड़ेंगी और फिर वह एक बढ़िया रोजगार कर लेगा। फिर···फिर···क्या कहना !···अरे···वह चौंका, एक गाय की ठोकर लगी। वह क्षणभर उस सुन्दर गाय को देखता रहा। ऐसी ही बढ़िया कलोर गाय लेगा और उसने लपककर गाय के पैर छू लिए और बोला—मैया दया बनाए रखना। राह चलते लोगों ने उसे देखा और पागल समझकर उसपर हंस पड़े। किन्तु वह उनकी मूर्खता पर हंसी फेंककर चल पड़ा। वह फिर परेड-ग्राउण्ड के चौराहे पर जा खड़ा हुआ।

'अरे नरैगा।' पीछे से एक आवाज आई। वह ठिठककर खड़ा हो गया। एक मोटर रिक्शा फड़फड़ाकर निकल गया। उसने सड़क पार की। अब वह लाजपत मार्केट के सामने थे।

'आइए बाबूजी।' 'खाना तैयार है।' छोकरे चिल्ला रहे थे। एक ने उसका हाथ पकड़ लिया।

'नहीं भाई।' उसने अपना हाथ छुड़ा कर कहा—'पहले दाढ़ी बनवा लूं फिर खाऊँगा।' वह आगे बढ़ गया।

उसकी नजरें चाँदनी-चौक की अट्टालिकाओं से टकराने लगीं। वह उसकी विशालता के तूफान में डूब गया। तभी उसके कानों में एक जोर का शोर गूंजा। दो पास से निकले—'अरे भाई! कलयुग का जमाना ठहरा, कितना ईमानदार बनता था। बदमाश ने लम्बा हाथ मारा है।'

'एतबार का जमाना ही नहीं है।' दूसरे ने कहा—'जिसकी पत्तल में खाते हैं उसी में छेद करते हैं।'

'अब मजा मालूम होगा।' उसने चुटकी बजाते हुए कहा—'पुलिस के डंडे से खाल उधड़ेगी।'

'क्या बात है?' रामदीन ने पूछा।

'पूछ ले न जाकर।' उसके गंदे कपड़ों को घृणा से देखकर वह आगे बढ़ गए। उसने देखा—पुलिस स्टेशन के सामने भीड़ लगी हुई थी। आगे जाकर पूछा—'क्या बात है भाई?'

'अबे तुझे क्या करना?'

'भाई लगता है उस बेईमान का।' दूसरे ने व्यंग किया।

मानवता का अपमान! रामदीन का मुंह तमतमा उठा। जी में आया कमीने का मुंह तोड़ दे। काठ का उल्लू, नहीं समझता, अब वह बीस हजार का मालिक है, बीस हजार का। जिज्ञासा शांत करने वह एक रेवड़ी वाले के पास जा पहुँचा और उससे पूछा—दादा क्या बात है?

रेवड़ीवाले ने बताया—"बड़ा बुरा जमाना लगा है काका। मुनीमने बीस हजार का गबन किया है। कहता है कि रास्ते में गिर गये हैं। बीस हजार कुछ कम नहीं होते।"

"बीस हजार!" उसका मुँह खुला का खुला रह गया। उसके हृदय में जैसे किसीने नश्तर चुभा दिया हो। मुंह पर चोरी से पकड़े जाने का भय-चिन्ह बिखर गया। कण्ठ से आवाज चीखती ही जा रही थी—बीस हजार! बीस हजार!! ···क्या इसी के तो रुपये नहीं थे!···उंह! होने भी दो। रहने दो, क्या लेना है मुझे इससे। उसने लम्बी सांस खींचकर कहा—"हां दादा! भगवान का डर नहीं।" और वह तेजी से एक ओर चल पड़ा। उसे लगा जैसे पुलिस उसके पीछे लगी है। उसे पकड़ने दौड़ी जा रही है। दरोगा उसे डंडे मार रहा है। नहीं! नहीं!! उसके मुंह से चीख निकल पड़ी। वह बदहवास सा चला जा रहा था।

"पागल है!" चीख सुनकर लोग हंस पड़े।

उसने सुना ही नहीं। पेट की भूख खतम हो चुकी थी। उसके सामने एक चीज़ नाच रही थी—मानवता! मानवता!! वैभव! पाप और······कुछ नहीं! कुछ नहीं!! यह तो मन की धारणा है। पाप क्या है? पुण्य क्या है? मन की धारणा!! और कुछ नहीं। झूठ सरासर झूठ!

इन्सान बनो, करलो भलाई का कोई काम···
दुनिया से चले जाओगे, रह जायगा बस नाम···
इन्सान बनो······।

एक साधु उसके पास से निकला। रामदीन के मन में हाहाकार का बवंडर उठ खड़ा हुआ। इन्सान बनो! इन्सान बनो!!···तो क्या वह रुपया उसे दे दे। आई हुई लक्ष्मी को लौटा दे। हां हां, उसे लौटा देना चाहिएं। वह लौट पड़ा उसी पुलिस स्टेशन की ओर···

"मगर···वह ठहर गया। उसकी भूख फिर तेज हो गई। दाढ़ी खुजला उठी। बहिन और पत्नी का मुख और दयनीय बनकर उसके सामने नाच उठा। दुःख! अपमान!!······भूख!!! हुँह कुछ नहीं, मुझे इन्सान बनना है। वह तेजी से बढ़ चला, पुलिस स्टेशन की

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

नैतिक क्रान्ति का एक अभिनव उपक्रम

अणुव्रत आन्दोलन

[मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी]

अहिंसा और हिंसा, नैतिकता और अनैतिकता का संघर्ष हुआ और हो रहा है। मानव अपनी असीमित लालसाओं के कारण हिंसा और अनैतिकता की ओर आकृष्ट अवश्य हुआ पर उसने अपना साध्य अहिंसा और नैतिकता को ही माना। परिणामतः दैवी शक्तियों का समय-समय पर अभ्युदय हुआ और अहिंसा तथा नैतिकता का घर-घर में अवमूल्यन हुआ। इतिहास के अगणित पृष्ठों में ऐसा कोई भी समय दृष्टिगोचर नहीं होता जिसमें मनुष्य ने हिंसा, अन्याय, शोषण व अनैतिकता को आदर्श के रूप में स्वीकर किया हो। अपने असामर्थ्य के कारण कार्य चाहें उसने हिंसात्मक किये पर वह हिंसा उसके जीवन का अंग नहीं बन सकी। इसी का ही तो प्रतिफल है कि आज भी अहिंसा व अपरिग्रह के अनेक उपासक हमारे सामने हैं और अनेक योजनायें हिंसा-निष्ठ हृदय को झकझोर कर उसे शुद्ध करने में सफल हो रही हैं। अन्यथा अहिंसा, अपरिग्रह आदि शब्द भी किसी कोष में ही मिलते, जीवन-व्यवहार में नहीं।

अहिंसा और अपरिग्रह का महत्त्व व उसका तार्किक सूक्ष्मतम विश्लेषण शास्त्रों में भरा पड़ा है पर आज का समय उस महत्त्व व विश्लेषण के गौरव का नहीं है अपितु जीवन के हर व्यवहार का है। हरेक व्यक्ति पूछना चाहेगा कि वह अहिंसा और अपरिग्रह का महान् सिद्धान्त जीवन से कितना सम्बन्ध रखता है?

आन्दोलन का सूत्रपात

इस दिशा में आचार्यश्री तुलसी ने आज से लगभग सात वर्ष पूर्व सरदारशहर (राज०) में अणुव्रत-आन्दोलन की संस्थापना करते हुए एक प्रगतिमूलक कदम उठाया। समय के साथ वह एक प्रतिकूल मोर्चा था। क्योंकि अनहद चोर बाजारी, असीमित रिश्वतखोरी, अमानवोचित मिलावट मनुष्य का प्राकृतिक धर्म सा होता जा रहा था। सारी की सारी शक्तियों का केन्द्र बिन्दु अनैतिक वृत्तियों द्वारा सुरक्षित किया जा रहा था। सामाजिक आडम्बर मध्यमवर्गीय व्यक्तियों के हृदय को क्षत-विक्षत कर रहा था। ऐसे समय में एक साथ सहस्रों व लाखों मनुष्यों का ध्यान नैतिकता की ओर केन्द्रित कर देना नैतिकता के इतिहास में जुड़नेवाला एक अनूठा पृष्ठ था।

उद्देश्य

अहिंसा और अपरिग्रह का जीवन के साथ तादात्म्य सम्बन्ध हो—यह बात सबको प्रिय है पर प्रश्न यह होता है कि तदनुरूप आचारी और सहयोगी व्यक्ति कितने और कौन-कौन हैं? "बालादपि ग्रहितव्यं युक्त मुक्तं मनीषिभिः"—कि उक्ति मानव की वाणी पर अवश्य रहती है पर तत्सम प्रवृत्तियों का निर्माता वह हो नहीं पाता। उसमें उसे अपने अहं के हनन की प्रतीति होती है। यहाँ से नैतिकता और अहं का मार्ग अलग-अलग चलता है। नैतिकता की रक्षा में बलिदान आवश्यक है जिसका कि वह आदी नहीं है और अहं के पोषण में उसे केवल अपनी ही नैतिकता की मर्यादा अक्षुण्ण दीखती है जो कि जीवन का अभिशाप है। अतः अहिंसा और अपरिग्रह के आन्दोलन भी यदि अहं तुष्टि के साधन हैं तो वे उपेक्षणीय और साम्प्रदायिक हैं। बाड़ाबन्दी भी उसका दूसरा नाम हो जाता है। जिसमें भी यदि अहिंसात्मक आन्दोलन किसी धर्माचार्य के द्वारा प्रवर्तित होते हैं तो निसन्देह किसी साम्प्रदायिक स्वार्थ साधना के अंग मान लिये जाते हैं।

आचार्यश्री तुलसी के सामने भी यह प्रश्न था पर अकिंचित्कर महर्षि मूर्धन्य आचार्य प्रवर किसी भी कार्य को जन आलोचना के स्तर पर परखना नहीं चाहते। बल्कि जन भावना को आमूलचूल परिवर्तन करने की क्षमता रखते हैं। अतः साम्प्रदायिक स्वार्थ साधना, देशीय भेद, धर्मान्धता आदि शब्द उनके आन्दोलन की गति अवरुद्ध नहीं कर सके। आन्दोलन का उद्देश्य अपने धर्म से किसी को इतस्तत करना नहीं अपितु हरेक व्यक्ति को नैतिक अधिकारी बनाना है चाहे वह हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, क्रिश्चियन आदि किसी धर्म का पालन करनेवाला हो। किसी को धर्म-विभेदक बनाना आन्दोलन का लक्ष्य नहीं अपितु धर्मों के प्रति सहिष्णु तथा समभावी बनाना है। मानवीय भावनाओं के विकास में व्यष्टि और समष्टि को संयोजित करना तथा अपने कर्तव्य की ओर जागरूक रहना आन्दोलन की मौलिक नीति है।

अनैतिकता के दुर्भेद्य चक्रव्यूह को तोड़ना आसान नहीं है पर दुरुहता को देखकर भयभीत होना भी पलायनवादिता है। दुरुहता समय लेती है पर श्रम से वह स्वयं सुगम हो

जाती है। इसके लिये क्रमिक प्रयत्न ही अपेक्षित है। आवेश में आकर छलांग भरना व सब कुछ इसी क्षण में करने का संकल्प करना, कुछ भी नहीं करने का आरम्भ व सामर्थ्य का दुरुपयोग है। आज जबकि अनेक तरुण-हृदय सामाजिक रूढ़ियों, अनैतिकताओं व असमानताओं के उन्मूलन के लिये तड़फते हैं पर कर कुछ भी नहीं पाते। कारण कि आदर्शमूलक बड़ी-बड़ी योजनायें बनाई जाती हैं उनमें यह विचार नहीं रहता कि योजना व्यावहारिक हो सकेगी या नहीं। पहले पहल क्रमशः कार्य करने की कल्पना नष्ट हो जाती है और अन्तिम कार्य को इसी क्षण करने का स्वर दीखने लगता है।

नैतिकता और समानता अधिकाधिक विकसित हो तथा जन भावना का अंग बने यह सभी चाहते हैं पर उन्हें पनपाने की भी पद्धति होनी चाहिये। अणुव्रत-नियम-गठन में आदर्श की अन्तिम योजना नहीं बनाई गई है जिससे 'व्यक्ति वहां तक पहुँच ही न पाये और योजना केवल कागजी कार्यवाही ही रह जाये। किन्तु नियमों का लक्ष्य यह है कि धीरे-धीरे एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी श्रेणी में पहुँचता हुआ अणुव्रती अपने श्रेय की अन्तिम मंजिल पर पहुँच सके। अवश्य ही अणुव्रत नियम आलोचकों की पैनी दृष्टि में अधिक कड़े नहीं हैं अतः उन्हें और कसने की आवश्यकता है। नियमों को कसने के प्रसंग में कोई भी दो मत नहीं हैं पर सामर्थ्यानुसार यदि श्रेणियां निश्चित हो जाती हैं तो व्यक्ति के विकास का मार्ग खुला रहता है और नियमों को कसने की बात भी पूर्ण हो जाती है। अणुव्रत-आन्दोलन की "प्रवेशक अणुव्रती", "अणुव्रती" व "विशिष्ट अणुव्रती" तीन श्रेणियां क्रमिक जीवनोन्नति की ओर संकेत करती हैं। वह अणु से महा की ओर बढ़ने के लिये व्यक्ति को दृढ़ व्रती बनाती है।

नियमों को अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पांच भागों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक नियम में आध्यात्मिकता व व्यावहारिकता का पूर्ण ध्यान रखा गया है। अधिकांश नियम व्यापारिक अनैतिकताओं व सामाजिक रूढ़ियों के निवारक हैं। क्योंकि बुराइयों का उद्भव उनसे अधिक होता है। इस चयन में अन्यान्य वर्गों को भी दृष्टि से ओझल नहीं किया गया है।

नियमों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है। प्रवेशक अणुव्रती के लिये प्रारम्भिक ११ नियम, अणुव्रती के लिये पूर्व नियमों सहित ४३ नियम और विशिष्ट अणुव्रती के लिये इनसे आगे छै नियम और निर्धारित किये गये हैं। जहां पर व्यक्ति शोषण रहित तरीकों से भी एक निर्धारित मर्यादा से अधिक धन-संग्रह नहीं कर सकता। ज्यों-ज्यों जनता का नैतिक स्तर समुन्नत हो अन्य श्रेणियां और भी प्रारम्भ की जांय तथा पूर्ण आदर्श तक उसे पहुँचाने का प्रयत्न किया जाय। वह प्रयत्न भी शीघ्र सफल हो।

विभिन्न परिस्थितियों को देखते हुए सार्वकालिक नियम ग्रहण नहीं कराये जाते

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

गीत

[श्री विनोद रस्तोगी]

मेरे अतीत की कालिख ही बना दिया है धवल मुझे!
मुझको इस दुनिया में केवल मिल सके शत्रु, कब मिले मीत ?
जगके संघर्षों में मुझको बस मिली हार, कब मिली जीत,
सुख का अंचल तो रहा दूर सर पर आया दुख का पहाड़।
जगके कोलाहल में मैंने बस सुना रुदन, कब सुने गीत ?
सीधे सच्चे पथ पर भी तो ठोकर खाई है पगपग पर।
मेरी उन असफलताओं ने ही बना दिया है सफल मुझे!!
खुलकर खेला इस दुनिया में जो किये कर्म वे मिले पाप।
वरदानों के दर्शन न मिले घर बैठे ही मिल गये शाप!!
वासना-सिन्धु में डूब डूब जल का व्याकुल बन गया मीन!
जितनी पीता था उतना ही बढ़ता जाता था हृदय-ताप!!
देखा न पुण्य का मार्ग कभी देखी न धर्म की धवल ध्वजा।
मेरे उन पापों के मलने ही बना दिया है अमल मुझे!!
जगके निष्ठुर आघातों को मजबूरी कह सह लेता था।
दुख का सोता बेबस होकर इन आंखों से बह लेता था!!
थे लगे हुए नतमस्तक पर बदनामी के काले टीके!
था मैं अशक्त, थी लाचारी जैसे होता रह लेता था!!
व्यंग्यों के कठिन प्रहारों को सहने की थी मुझ में न शक्ति!
मेरी उन दुर्बलताओं ने ही बना दिया है सबल मुझे!!

जीवन का नैसर्गिक ध्येय

[साहित्याचार्य श्री पीताम्बरदत्त शास्त्री]

'सुखं मे स्यात् दुःखं न स्यात्' की भावना प्रत्येक मनुष्य के अन्तर में स्वभावतया बद्धमूल है। कीट से मानव पर्यन्त सारे जीव जीवन की महती अभिलाषा में पल रहे हैं। शारीरिक तथा मानसिक पीड़ाओं से त्राण पाने की चेष्टा प्रत्येक जीव में वर्त्तमान है।

आधुनिक ही नहीं प्राचीन मानव के मस्तिष्क में भी भौतिक बाधाओं का निराकरण करने की प्रवृत्ति सदा जागरुक रही है। दूरदर्शी महात्माओं की वाणी से अवनरित होनेवाले उदात्त उद्गार जीवन की भव्यतम रुपरेखा का मूर्त चित्र उपस्थित करते हैं। 'जीवेम शरदः शतम्' "मृत्योर्माऽमृतं गमय" मृत्यु से अमरता की ओर प्रेरित करो की कल्पना में मानव आत्मा का चिर अमर पहलू निबद्ध है, जो जीवन को शाश्वत सत्य की ओर प्रेरित करने के लिये सदा प्रबुद्ध रहता है। अहिंसा और आत्म संयम मोह ध्वान्त से अन्धीभूत रागात्मक चित्त वृत्तियोंको प्रकाश के प्रांगण में सत् का साक्षात्कार कराते-हैं। इस भूमिका में मानव का अन्य जीवों की अपेक्षा उच्च भाव संतुलित होता है।' केवल ऐन्द्रिक तृप्ति मात्र मानव का ध्येय कदापि नहीं है, यह तत्व इसी से सिद्ध है कि तिर्यगादि में भी क्षुधा,पिपासा, भय, ममत्व आदि के रहते हुए निश्रेयस की प्रवृत्ति शून्य देखी जाती है, यदि वाह्य तृप्ति को जीवन का चरम लक्ष्य स्वीकार कर लिया जाय तो यह निश्चय ही मानवीय धर्म की कोटि का धर्म न होकर काक धर्म है। क्योंकि आत्मा का औन्नत्य त्याग से संवलित होता है। स्वार्थ और परमार्थ की विभाजिका रेखा स्पर्धा न होकर अन्तर्योति है, जिसे हम व्यवहार में नैतिकता कहते हैं।

भ्रष्ट आचरणों से प्रपीड़ित युग में नैतिकता मानव के लिये अमोघ वरदान है। भौतिक शक्तियाँ उद्दाम होकर जब विनाश पथ की ओर प्रवृत्त होती हैं तो उनका उचित नियमन और नियंत्रण करने का साधन सांस्कृतिक नीति ही है। जगत् की प्रत्येक भूत वस्तु उपादेय सिद्ध हो सकती है यदि जागतिक हितों को ध्यान में रखते हुये उनका उपयोग किया जाय। जैसे अग्नि की नितान्त उपादेयता है, किन्तु कोई व्यक्ति आग से किसी का गृह दाह करदे या किसी जीवित व्यक्ति को जलादे तो हम अग्नि को सदोष नहीं समझ सकते। इसी प्रकार संसार के यावत् पदार्थों की उपादेयता उनके उचित प्रयोग पर निर्भर है।

वाह्य पदार्थों की अनुचित लिप्सा, अकाम्य कर्मों की नाशात्मक वाञ्छा और असत्य भावों की संदेहात्मक प्रवृत्तियाँ मानव के अन्तःकरण को पहले कुत्सित कर देती हैं फिर उसे कठोर आचरण व अनैतिक तत्वों की लालसा में रत करती हैं। आज का स्वार्थान्ध भूतवाद इसका द्योतक है। एक ओर विभीषिका का नग्न ताण्डव है दूसरी ओर निरीह प्राणियों का क्रन्दन रव है, फिर भी नाशोन्मुख भौतिक चेतना लुब्ध मानव की बुद्धि में सार्वभौमिक शान्ति स्वर नहीं गूँज पा रहा है। जीवन यापन की वर्तमान विषम समस्याओं की उलझन में पड़ा हुआ विश्व विकासोन्मुख नहीं अपितु संकीर्णताओं से कवलित हो रहा है। सामाजिक सद्भाव को असंतुलित अर्थ भूत ने ग्रस्त कर रखा है और सात्विक मर्यादाओं पर गृद्धता का पर्दा पड़ा हुआ है।

मर्यादित गतियाँ ठिठुर गयी हैं। मानव ने ऊर्ध्वमुखी आत्म चिन्तन का प्रकाशमात्र पथ छोड़कर संकीर्ण तथा अधोमुखी गर्त का वरण कर लिया है। निश्चय ही क्रूर मनोवृत्तियों का क्रीत दास होना मानव का ध्येय नहीं है। वस्तुतः मानव समाज का विकास जीवन साधना के व्रतों का अंगीकार करने से ही संभव है। विश्वशान्ति का उपक्रम तभी सफल हो सकता है जब मनुष्य का मनुष्य पर हार्दिक विश्वास हो। आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का विश्वास नहीं करता, हित संघर्ष और अनावश्यक वितंडावाद से जगत क्षुब्ध है। हिन संघात एवं वृथा प्राण नाश की चिन्ता से विश्व तभी मुक्ति पा सकेगा जब प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में दया दाक्षिण्यादि सद्भावों का उदय होगा। आश्चर्य है कि मनुष्य पीड़ित होकर भी पीड़ा को नहीं पहचानता। जिस मनुष्य को कांटा चुभने से या आँख में अल्पाति अल्प रेणु कण पड़ जाने से असह्य पीडा का अनुभव होता है वह एक साथ कोटि-कोटि जीवों के वध का उपाय रच रहा है। क्या इस कृत्य से उसकी आयु अधिक बढ सकती है? कितना अहंकारपूर्ण उद्देश्य है! बौद्धिक चातुर्य विध्वंशात्मक कार्यों से कभी नहीं शोभित हो सकता। आज आवश्यकता है जीवन-निर्माण की, विश्व को पंगु बनाकर मरघट पर श्मसान सेवन की नहीं, संसार में इस भावना का संचार जीवन के नैसर्गिक ध्येय को ग्रहण करने से ही होगा। जैसा कि कहा गया है—

जितोऽस्मिकेन हि ज्ञातं कषायैर्वर्द्धते च भीः।
तुन्नो मे तेभ्य एवेति मा हन्यां प्राणिन स्ततः॥

—o—o—

● *जान को रोशनकर !*

सब कुछ पाकर भी असन्तोष के अन्धकार में भटकनेवालों के लिये 'नया हिन्द' में प्रकाशित शेखसादी की 'करीमा' का पं० सुन्दरलाल द्वारा किया हुआ यह रूपान्तित अंश प्रकाश-स्तम्भ के समान है—

'ऐ दिल ! अगर तू सन्तोष करे,
तो सुख के संसार में सरदारी करे।
अगर तू गरीब है तो अपनी गरीबी की शिकायत मत कर,
समझदार आदमी के सामने धन-दौलत छोटी चीजें हैं।
अक्लमन्द आदमी फकीरों से शर्म नहीं करता,
क्योंकि नबी को भी फकीरी का फख्र हासिल था।
मालदार आदमी के लिये सोना-चाँदी ऊपरी सजावट की चीजें हैं,
फकीर को अपनी गरीबी से अन्दर का आराम मिलता है।
अगर तू मालदार नहीं है तो बेचैन मत हो,
क्योंकि बादशाह वीरान जगह से टैक्स नहीं लेता।
हर हाल में सन्तोष करना अच्छा है।
जो खुशकिस्मत हैं वह सन्तोष करते हैं।
अगर तू खुशकिस्मती चाहता है,
तो सन्तोष के प्रकाश से अपनी जान को रोशन कर !'

● *हमारा कर्तव्य*

देश की दरिद्रावस्था व पतितावस्था में हमारा नैतिक कर्तव्य क्या है? इसका उत्तर 'सरिता' में प्रकाशित श्रीमती सावित्री निगम के प्रस्तुत लेखांश से प्राप्त करें—

"यों तो आत्मसंतोष के लिये फुरसत के समय समाजसेवा करना अत्यन्त आवश्यक होती ही है, पर वैसे भी यदि हम गौर करें तो हमें यह जानते हुए देर न लगेगी कि इतने विशाल देश की जनता की सेवा सहायता करना अकेले किसी के वस का नहीं है। कौन नहीं जानता कि आज वे सब इसीलिये अशिक्षित, दुखी, दरिद्र अथवा पिछड़े हुए हैं। इसलिये वे सब जो अवसर पाकर आगे बढ़ गए हैं उनका कर्तव्य है कि वे खुशी से पिछड़े हुए लोगों को आगे बढ़ायें, उन्हें शिक्षित बनायें, उनका दुख दूर करने का प्रयत्न करें। यदि हर शिक्षित व्यक्ति एक अनपढ़ को फुरसत के समय पढ़ा सके तो थोड़े दिनों में पढ़े-लिखों की संख्या विना सरकार के ऊपर आर्थिक बोझ डाले हुए दोगुनी हो सकती है। इसी प्रकार हर माँ यदि यह तय करले कि वह किसी गरीब मजदूरनी के एक बच्चे के कपड़े स्वयं धोए या सिए तो वह देश को एक स्वस्थ नागरिक देने का पुण्य कमा सकती है।"

● *किसी की परवाह नहीं*

गाँधीजी को विश्वविख्यात बनाने में किन-किन तत्त्वों का हाथ रहा यद्यपि यह आज सर्वविदित है तथापि 'नया जीवन' में प्रकाशित श्रीमती सरोजिनी नायडू के ये विचार उसी की ओर संकेत कर रहे हैं—

"ऐसी क्या बात थी कि यह नन्हा-सा आदमी सारे जगत् पर इतना प्रभाव रखता था। वे अपने प्रशंसकों और भक्तों पर ही अपने असर का जादू डाल गये- यह बात नहीं, बल्कि उनकी विशेषता यह थी कि जो उनसे द्वेष रखते थे और जो उन्हें नहीं समझते थे, उनको भी वे अपने प्रभाव के मण्डल में समेट लेते थे और ऐसे लोग भी अनजान में ही उनका अनुसरण तथा अनुकरण करने लगते थे।

इस अभूतपूर्व और अश्रुतपूर्व प्रभाव का कारण यह था कि वे न तो निन्दा की परवाह करते थे, न स्तुति की, वे तो सत्य के मार्ग पर अटल रहते थे—चाहे कोई कुछ कहे।

उनका यह अविचलित विश्वास था कि चाहे सारा विश्व कटकर मर जाय और चाहे समस्त विश्व-वासियों का रक्त नदियों में भर कर सागर का रूप धारण करले, अहिंसा ही वह नींव होगी, जिस पर विश्व की नवीन सभ्यता की अट्टालिका खड़ी होगी; क्योंकि उनका यह विश्वास था कि जो जीवन को बचाएगा, वह खोएगा और जो उसे खोएगा, वह इसे बचाएगा।"

● *सौन्दर्य का केन्द्र ?*

जीवन का सौन्दर्य व्यक्ति में केन्द्रित है या समुदाय में? चाहे यह प्रश्न विचित्र-सा प्रतीत होता हो किन्तु 'जिनवाणी' में प्रकाशित कविरत्न श्री अमर जी का यह भावपूर्ण विचार सचमुच ही एक नई दिशा की ओर प्रेरित कर रहा है—

"आकाश के सघन बादलों से धरती पर उतरने वाली अकेली बूँद हवा में सूख जाती है या मिट्टी में मिलकर विलीन हो जाती है। न वह स्वयं बह सकती है और न किसी दूसरे को ही बहा सकती है। बहने और बहाने की शक्ति एकमात्र जल-प्रवाह में है, जो एक के पीछे एक लगे रहनेवाली कोटि-कोटि बूंदों का संघ है। कोई भी विचारक इससे निर्णय कर सकता है कि शक्ति का केन्द्र व्यक्ति नहीं संघ है।

हजारों मील के लम्बे-चौड़े रेतीले मैदान में एक ही वृक्ष हो, उसकी एक ही शाखा हो, शाखा पर एक ही पत्ता हो, तो कैसा लगेगा? सर्वथा अभद्र! और हजारों प्रकार के वृक्षों का

एक उपवन हो, प्रत्येक वृक्ष हरा-भरा और फूला फला हो, तो कैसा लगेगा? सर्वथा सुन्दर! कोई भी विचारक इससे निर्णय कर सकता है कि सौंदर्य का केन्द्र व्यक्ति नहीं, संघ है।"

● *सब कुछ एक साथ नहीं*

भौतिक चकाचौंध से चौंधियाकर और पथभ्रष्ट हो कर आज हम आँख मीचे किधर चले जा रहे हैं; यह शायद हम नहीं जानते। 'नया भारत' में प्रकाशित महात्मा गाँधी के निम्नलिखित विचार क्या हमारी आँखें खोल सकेंगे—

"यह बड़े मूल्य का आर्थिक सत्य है कि आप एक साथ ही ईश्वर और कुबेर की पूजा नहीं कर सकते। हमें दोनों में से किसी एक को ही चुनना है। आज पाश्चात्य राष्ट्र भौतिकवाद के राक्षस देव की एड़ी के नीचे दबे हुए कराह रहे हैं। उनका नैतिक उत्थान रुक गया है। वह अपनी उन्नति पौंड, शिलिंग, पेंस में गिना करते हैं। अमरीका की आर्थिक समृद्धि उनके लिये आदर्श हो गई और अमरीका की तरफ लोग ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं। हमने बहुत से देशवासियों को यह कहते सुना है कि हम अमरीका जैसी ही सम्पदा प्राप्त करेंगे, मैं यह कहने की हिम्मत करूंगा कि यदि ऐसा प्रयास किया भी गया तो वह निश्चित रूप से असफल होगा। हम एक ही अवसर पर बुद्धिमान, शान्त और क्रुद्ध नहीं हो सकते। मैं तो चाहूंगा कि हमारे नेतागण हमको यह शिक्षा देते कि हम नैतिक दृष्टि से संसार में सबके ऊपर रहें।"

● *हक की रोटी*

हम अर्जन करते हैं, संग्रह करते हैं और उस धन को देखकर फूले नहीं समाते किन्तु वास्तव में उस धन के कितने अंश के उपयोग करने का हमारा हक है इसका विचारपूर्ण उत्तर 'गीता संदेश' में प्रकाशित इस लघु कथा में पढ़िये—

"एक राजा के यहाँ एक संत आये। प्रसंगवश बात चल पड़ी 'हक की रोटी' की। राजा ने पूँछा—"महाराज हक की रोटी कैसी होती है?" महात्मा ने बतलाया कि आपके नगर में अमुक जगह अमुक बुढ़िया रहती है, उससे जाकर पूँछना चाहिये और उससे हक की रोटी माँगनी चाहिये।

राजा उस बुढ़िया के पास पहुंचे और बोले—'माता! मुझे हक की रोटी चाहिये।'

बुढ़िया ने कहा—'राजन्! मेरे पास एक रोटी है, पर उसमें आधी रोटी हक की है और आधी बेहक की।' राजा ने पूछा—'आधी बेहक की कैसे?'

बुढ़िया ने बताया—'एक दिन मैं कात रही थी, शाम का समय था अँधेरा हो चला था। इतने में उधर से एक जलूस निकला, उसमें मशालें जल रहीं थी। मैं अलग अपना चिराग न जलाकर उन मशालों की रोशनी में कातती रही और मैंने आधी पूनी कात ली। आधी पूनी पहले की कती थी उस पूनी से आटा लाकर रोटी बनाई। इसलिये यह आधी रोटी तो हक की है और आधी बेहक की। इस आधी पर उन जलूसवालों का हक है।'

राजा ने सुनकर बुढ़िया को सिर नवाया।

पुरुषार्थवादी भारतीय-दर्शन

[प्रो० श्री एम० कृष्णमूर्ति)

"भारतीय दर्शन आत्मा का दर्शन है। यह जीवन की आन्तरिक समस्याओं का एक सही और सच्चा समाधान देता है। केवल वाग्-विलोड़न और कथनी का दर्शन यह नहीं है। मैं यह कहूं तो अत्युक्ति नहीं होगी कि भारत का गौरव उच्चतम हिमाद्रि शिखरों से नहीं है और न उत्तरायण वाहिनी गंगा से ही है। इसका गौरव तो उस ज्ञान-गंगा से है जिसमें अवगाहन कर मनुष्य सच्ची निर्मलता और उज्जवता पाता है। क्या वैदिक दर्शन, क्या बौद्ध दर्शन और क्या जैन दर्शन—हम सर्वत्र एक स्पष्ट सत्य पाते हैं। अपने अहं का निरसन किया जाय। व्यष्टि को समष्टि में जोड़ दिया जाय। व्यष्टि और समष्टि का समन्वय जीवन में एक सन्तुलन देता है। विकार मार्ग को अवरुद्ध कर सन्मार्ग को खोलता है। जहां अहंकार या ममकार रहता है, वहां आत्म-शक्ति कुण्ठित रहती है। निर्द्वन्द्व अकुण्ठावस्था उसे नहीं मिलती।

साथ ही साथ एक और आवश्यक बात यह है, जो भारतीय दर्शन हमें देता है—व्यक्ति परमुखापेक्षी बन, अपने जीवन को, अपनी कर्मठ शक्तियों को परावलम्बी न बना दे। स्वावलम्बन भारतीय चिन्तन का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। जहां एक ओर हम ऐसे विचार देखते हैं कि अतीत चला गया, वर्तमान चल रहा है, भविष्य जैसा आयेगा, आयेगा—इन पर किसका नियन्त्रण? पर भारतीय दर्शन इससे सहमत नहीं है। वह तो ओजस्वी आत्म शक्ति द्वारा वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों को बदल देने का मार्ग देता है।

अनैतिकता और उसका निराकरण

[प्रो० श्री कामताप्रसाद सिन्हा 'मधुप' एम० ए०]

किसी नगर में जाइए या किसी देहात में, किसी राजपथ पर चलिए या किसी पगडंडी पर, किसी सभा में बैठिए या चौपाल में—यत्र तत्र सर्वत्र अनैतिकता की चर्चा सुनाई पड़ती है। कोई कहता है कि अमुक किरानी घूसखोर है, तो कोई कहता है कि अमुक अफसर बेईमान। कोई कहता है कि अमुक मास्टर दगाबाज है तो कोई कहता है कि अमुक डाक्टर धोखेबाज। कोई कहता है कि अमुक दूकानदार कालाबाजारी करता है तो कोई कहता है कि अमुक गोलेदार अनाज में मिलावट करता है। कचहरी के वकीलों और मुख्तारों का कुछ कहना ही क्या ? ये तो झूठ की रोटी ही खाते हैं। झूठ का व्यापार ही करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी वर्ग विशेष, व्यक्ति विशेष अछूता नहीं, निर्लिप्त नहीं। वास्तविकता यह है इस भौतिकवादी संसार में मानव आकंठ इसमें निमग्न हो गया है। अनैतिकता कूट-कूटकर जन-जन में समाहित हो गई है। कहीं भी इससे त्राण नहीं।

अनैतिकता पर जब हम दृगपात करते हैं—उसकी तह तक जब पहुँचना चाहते हैं—उसकी नींव का जब अन्वेषण करते हैं, उसकी जड़की जब छानबीन करते हैं; वह स्वतः चिल्ला-चिल्लाकर, डंका बजाकर, कर्णरंध्रों को विदीर्ण करती हुई कहती है कि स्वार्थ ही मेरा मूल है—स्वार्थ ही है मेरी जननी। भौतिकवादी दृष्टि में न तो कुछ पुण्य है, न कुछ पाप; न कुछ वरदान है न कुछ अभिशाप—धन ही अभिष्ट है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए, इसी स्वार्थ के निमित्त मानव एड़ी-चोटी का पसीना एक करता है। सिनेमा के गीत की एक कड़ी इस तथ्य पर पूर्ण प्रकाश डालती है—'बाप भला न भइया, सबसे भला रुपैया।' अतः यह निर्विवाद सत्य है कि अनैतिकता सर्वव्यापक है। सर्वव्यापकता की दृष्टि से यह भगवान है। दूसरे शब्दों में हम आसानी से आधुनिक भगवान कह सकते हैं। मानव इसकी तन, मन, धन से पूजा करता है, उपासना करता है, आराधना करता है और करता है—उसकी वंदना। लेकिन यह भगवान के सदृश लोक-कल्याणकारी नहीं, मंगलकारी नहीं। क्षणिक सुख तथा आनन्द अवश्यमेव मिलता है। मानव उसमें विस्मृत हो जाता है। परन्तु शाश्वत सुख की उपलब्धि इस भगवान के द्वारा नहीं। वह उस भगवान से प्राप्य है जो लोकरंजनकारी हैं, सबके हित हैं। भक्तों के लिए नंगे पांव दौड़ते हैं। इस भगवान के हेतु आधुनिक भगवान का परित्याग करना होगा।

जिस भांति ईश्वर के विविध रूप होते हैं और वे अपने नाना रूपों से अपने भक्तों की भलाई करते हैं, उसी भांति अनैतिकता के भी भिन्न-भिन्न रूप होते हैं और वह अपने विभिन्न रूपों से अपने भक्तों की सहायता करती है—अर्थ-लाभ कराती है। कहीं तो इसका रूप घूसखोरी है, कहीं कालाबाजारी; कहीं खाद्य-सामग्रियों में मिलावट, कहीं मुनाफाखोरी, कहीं बेईमानी, कहीं आवश्यकता से अधिक धन-संचय, कहीं निर्बलों का शोषण एवं दोहन। कहने का अभिप्राय यह है कि इनके रूपों की तालिका नहीं बनाई जा सकती और न उनकी गुण-गाथा ही लिखी जा सकती है।

अनैतिकता का इतिहास हमारी दृष्टि में अति प्राचीन है—स्यात् इसकी उत्पत्ति उस काल में हुई थी जब धरती पैदा हुई थी। किंतु मात्राओं में विभिन्न युगों में अंतर चल रहा है। आज तो दिन प्रतिदिन इसीका बोलबाला है। आदिमकाल में जब मानव असभ्य था, कंद मूल खाता था, नंगा रहता था, घूम-घूम कर रहा करता था—'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धान्त प्रतिपादित था। यह सिद्धान्त नैतिकता की दृष्टि से अनैतिक है। एक स्त्री बहुतों की पत्नी होती थी। यह भी अनैतिक है। इसके अनन्तर जब मानव सभ्य हुआ, परिवारों एवं गांवों का जन्म हुआ तब भी 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धांत अपने स्थान पर पूर्ण रूपेण आरूढ़ रहा। एक पुरुष की बहु पत्नियां होती थीं, जो अनैतिक था। वीर-गाथा काल में जब भारत छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया था, ये दोनों सिद्धांत चालू थे। एक राजा दूसरे राजा पर अपनी वीरता तथा दूसरे की कायरता प्रदर्शित करने के लिए चढ़ाई करता था और विजेता विजित की पत्नी को हरणकर अपने दुर्ग में लाता था। क्या ये काम नैतिक हैं ? कदापि नहीं। और हां, आज के विश्व के विषय में कुछ कहना ही क्या। अतः अनैतिकता उतनी ही पुरानी है, जितनी प्राचीन सृष्टि।

किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि इससे मानव को त्राण नहीं मिल सकता है। किसी ने कहा है Practice markes a man perfect (अभ्यास निपुण बनाता है), साथ ही यह भी कहा गया है It is

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

क्या ये अस्पृश्य हैं ?

★ सुश्री सुशीला नाहर

"तुम मंदिर में नहीं जा सकते, क्योंकि तुम अभद्र हो, जंगली हो, अस्पृश्य हो। मांस और मदिरा का सेवन करते हो, पहले तुम अपना आचरण शुद्ध करो, फिर तुम्हें हमारे मन्दिरों में आने दिया जायगा।"

गत वर्ष १३ जुलाई को एक धार्मिक प्रवृत्ति के सज्जन, जो अपने-आपको धार्मिक विचारों में सुधारवादी नेता कहते हैं। एक विशिष्ट समुदाय के सम्मुख भाषण दे रहे थे।

धार्मिक प्रवृत्तियोंवाले इस समूह में एक तरफ एक विचारक भी बैठा था। उपरोक्त कथन पर उसका अन्तर्मन-मानव के प्रति इस घृणा व विद्वेष की भावना के प्रतिशोध के लिये जल उठा।

विचारक ने वक्ता महोदय से प्रश्न किया--'महानुभाव! जीवन में कर्म महान् है या वंशानुगत चली आ रही समाज व्यवस्थानुसार प्रवृतियाँ ?

वक्ता महोदय ने कुछ देर सोचने के उपरान्त उत्तर दिया, "सभी को पापी पेट को भाड़ा देने के निमित्त कर्म तो करना ही पड़ता है। उससे वंश परम्परानुगत प्रवृत्तियों की स्पष्ट जानकारी तो नहीं मिलती।"

विचारक ने पुनः प्रश्न किया, "किन्तु महानुभाव! जीवन में उच्चता का मापदंड क्या है ?"

वक्ता विचार सागर में गोते लगाने लगे। थोड़ी देर बाद रुककर बोले, "बन्धुवर! कर्म करते रहकर भी, आत्मा से प्रेरणा प्राप्त कर जो बन्धु या जीव-दीनों की भलाई में लगता है, वही भगवान की सच्ची आराधना करता है वही सांसारिक श्रेणी के जीवों में उच्च जीव है।"

"तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र सभी जाति अथवा उपजाति के लोग कर्म करते समय कर्म के धर्म को धारण करते हैं, इससे उनके वंश की उच्चता अथवा निम्नता का तो कोई आभास नहीं होता।" विचारक ने पुनः प्रश्न किया।

"हर वस्तु का अपना धर्म होता है उस वस्तु का आचरण और आचरण ही उस कर्म का धर्म है।"

तब विचारक ने कहा—

"जिस तरह पानी का धर्म सब में मिलकर एकाकार हो जाना, अग्नि का धर्म सबको ताप देना, कोयले का धर्म जलकर राख हो जाना है, उसी प्रकार संसार के समस्त जीवों की अपनी सामर्थ्य के अनुसार सेवा करना मानव का प्रधान धर्म है।"

इसी धर्म को धारण किये रहने से मानव सत्य के नजदीक आता है। जब वह इस धर्म को छोड़ देता है तब वह सत्य से उतना ही दूर होता जाता है।

इसीलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र अथवा चाहे वह किसी भी जाति, उपजाति का हो, अगर अपना कर्म नियमित करता है, प्राणीमात्र की सेवा में अपने को अर्पण करता है, तो ही वह मानव धर्म का पालन करता है।

अतः हे बन्धुओं! क्या यह हरिजन, चमार, धोबी, नाई आदि सभी, जिनके शरीर में आपकी ही आत्मा निवास करती है, सच में अछूत हैं? अस्पृश्य हैं? जंगली हैं?

तभी मैंने देखा, उन नेता में आत्म-प्रकाश जग रहा था, उनके चेहरे के सामने से अहंकार का परदा हट रहा था। जो कुछ देर

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

तीन रुबाइयाँ

—श्री कन्हैयालाल फूलफगर

(१)

बज उठेंगे तार दिल के,
गर बजाना चाहते हो
आसमाँ भी झुक पड़ेगा,
गर झुकाना चाहते हो

है कौन ऐसा काम जो,
इन्सान कर सकता नहीं
मुश्किले आसान होंगी,
गर बनाना चाहते हो।

(२)

अँधेरी रात हो चाहे,
पथिक का काम चलना है;
मिटा कर जिन्दगी अपनी,
दिये का काम जलना है।

मनुज का काम है भूपर,
बहा दे प्रेम का दरिया;
घृणा को, द्वेष को अब इस-
जगत से दूर करना है।

(३)

स्वयं ही आग हूं मैं तो,
अरे अँगार क्या देखूं;
स्वयं ही हो गया मजनूँ,
किसी का प्यार क्या देखूं।

अनेकों बार बनबन कर,
मिटा हूं, और बना हूं मैं;
मुझे है गर्व अपने पर,
किसी का द्वार क्या देखूँ।

आन्दोलन की आवाज

त्याग के बिना शान्ति और सुख असम्भव

[श्री हरिभाऊ उपाध्याय, मुख्यमन्त्री, अजमेर राज्य]

जबतक मनुष्य का जीवन व्रतोंके आधीन नहीं होता, उसमें तेजस्विता नहीं आती, सतोगुण नहीं आते, वहां कमी दिखाई देती है; व्रत मानव को असंयम से बचाये रखने का साधन है। यदि व्यक्ति अपने जीवन को टटोलकर देखे तो कि उसमें जो कमियां आई हैं, वे क्यों आई हैं तो उसे पता लगते देर नहीं लगती कि उससे व्रतों का उल्लंघन हुआ है। आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन व्रतों का आन्दोलन है। जीवन व्यवहार को शुद्धि और सात्विकता का नया मोड़ देने का आन्दोलन है। नाना प्रकार के दुःखों से प्रपीड़ित मानवता के लिये यह शांतिदायी उपक्रम है। आजके मानव जीवन की मरुभूमि में यह एक जलस्रोत है। मैं तो क्या, संसार का बड़े से बड़ा व्यक्ति यह मानेगा कि आज संसार में इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। आज विभिन्न धर्मों के आचार्यों और सन्तोंका भी कुछ-कुछ ध्यान लोक कल्याणकारी कामों की ओर जाने लगा है पर आचार्य श्रीतुलसीने वर्षों पूर्व इस चरित्र शुद्धिमूलक आन्दोलन को शुरू किया, जब दूसरे इसकी चर्चा तक नहीं करते थे। यह वास्तव में बड़े गौरव की बात है। अणुव्रत आन्दोलन के कार्य के साथ केवल भारतवर्ष ही नहीं, संसार के लोग होंगे, ऐसी मेरी मान्यता है।

आज हमारा देश एक वैलफेयर स्टेट है, कल्याणकारी राज्य है। यह तो हम लोगों का कार्य है जो राज-काज में भाग लेते हैं कि देश के लोगों को सच्चे कल्याण की ओर लायें। हम वास्तव में आचार्यश्री के कृतज्ञ हैं कि वे हमारे इस कार्य को बड़ी लगन के साथ आगे बढ़ा रहे हैं। अपन सब लोगों को उनसे प्रेरणा लेनी है। अणुव्रत-आन्दोलन सद्भावना और प्रेम सिखाता है। सद्भावना और प्रेम की बहुत बड़ी कीमत है। आये दिन के झगड़े मिटाने को लोग न्यायालयों के दरवाजे खटखटाते हैं। न्याय मिलता है। एक को सन्तोष और दूसरे को असन्तोष होना सहज है। असन्तुष्ट और आगे बढ़ता है, ऊंची अदालतमें जाता है। सुप्रीम कोर्ट के बाद तो उसके लिये कोई रास्ता नहीं। यह सच है, वहां भी जो न्याय मिलता है, उससे दोनों को सन्तोष नहीं होता। पर प्रेम और सद्भावना से ऐसा होता है—दोनों को सन्तोष मिलता है, भाई-भाई में झगड़ा है। एक भाई प्रेम से दूसरे भाई को कह दे कि जो कुछ है तुम ले लो। मुझे कुछ नहीं लेना है, मैं घर छोड़कर चला जाऊंगा। तो क्या यह सम्भव है, दूसरा भाई उसे ऐसा करने देगा? कभी नहीं करने देगा। यह प्रेम और सद्भावना का प्रभाव है। न्याय जिसके पक्ष में है उसे पाने का वह अधिकारी जरूर है पर मैं न्याय से प्रेम और सद्भावना की कीमत ज्यादा करता हूँ।

अणुव्रत-आन्दोलन जीवन को त्याग और संयम की ओर मोड़ना चाहता है। त्याग की शिक्षा मैं आपको दूं, मुझे इसका अधिकार नहीं पर मुझे त्याग में रस है, मुझे उसमें मजा आता है, इसलिये मैं बात जरूर करूंगा। जबतक व्यक्ति त्याग की ओर उन्मुख नहीं होगा, न उसे शान्ति मिलेगी और न सुख।

[अजमेर में आचार्य श्री तुलसी के सान्निध्य में ११ मार्च को दोपहर में आयोजित अणुव्रत विचार परिषद् में दिये गये भाषण से]

कल्याणकारी आन्दोलन

[श्री अमृतलाल यादव, पुनर्वास मन्त्री, राजस्थान]

आचार्य श्री तुलसी के प्रति मेरे मन में एक निष्ठा है, श्रद्धा है। अहिंसा और सत्य जैसे आदर्शों को लोक जीवन में व्याप्त करने के लिये अणुव्रत-आन्दोलन के रूप में जो बहुत बड़ी देन वे दे रहे हैं, राष्ट्रमें उसकी बहुत बड़ी उपयोगिता है। अस्पृश्यता, शोषण, बेईमानी जैसी बुराइयों को मिटाने में वास्तव में यह आन्दोलन बहुत बड़ा काम कर रहा है। मैंने इस आन्दोलन के बारे में सुना है, पढ़ा है, समझा है, उसपर चलने का प्रयास किया है। इसलिये जैसा कि मुझे लगा, मैं कह सकता हूं—यह आन्दोलन मानव समाज के लिये एक कल्याणकारी आन्दोलन है।

बुराइयों के निरोध का सबल साधन

[श्री बृजमोहनलाल शर्मा, शिक्षा व न्याय मंत्री, अज० राज्य]

आज जिधर देखें, उधर से आवाज आती है—सब बुराई छोड़ें, भलाई को जीवन में स्थान दें पर हम स्पष्ट देखते हैं कि ये आवाजें मात्र हैं। इसके पीछे क्रियाशीलता नहीं है। यही कारण है आज लोगों का जीवन दिन पर दिन गिरावट की ओर आगे बढ़ता जा रहा है। यदि व्यक्ति अपने अन्तरतम को टटोले तो वह पायेगा कि उस पर कमजोरियां कितनी ज्यादा हावी हो रही हैं। बुराई के समक्ष डट जाने की उसमें हिम्मत नहीं। ऐसी स्थिति में आचार्य श्री तुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन एक मार्ग देता है, कमजोरियों से टक्कर लेने की शक्ति देता है ताकि जीवन को मिटा देनेवाली बुराइयों से छुटकारा पाया जा सके। वास्तव में अणुव्रत-आन्दोलन बुराइयों के निरोध का एक सबल साधन है। आचार्य श्री तुलसी एक त्यागी और संयमी संत हैं। वे त्याग और संयम की ऊंची बात जो कहते हैं, उसका

असर होता है। उनका जीवन त्याग का सजीव प्रतीक है। अणुव्रत-आन्दोलन के रूप में उनकी जो आवाज बाहर आई है, सचमुच उसने एक नया आलोक और स्फूर्ति दी है।

आज हम देखते हैं—संसार में एक ओर वैज्ञानिकों ने घातक विषैली गैसों व बमों जैसे विनाश और विध्वंस के भयानक साधनों की सृष्टि की पर इतने मात्र से उन्हें तृप्ति कहां? आज तो ऐसे प्रलयंकर हथियार बनाने की धुन में हैं, जो पल भर में संसार को मृत्यु, महामारी और विप्लव का घर बना दे। यदि उनका खुलकर उपयोग हुआ तो कह नहीं सकते, मानव समाज की क्या परिस्थिति होगी। पर साथ ही साथ हमें खुशी है कि इस तरह के विनाश और विध्वंस के युग में आचार्य श्री तुलसी जैसे आन्दोलन प्रवर्तक हमारे देशमें विद्यमान हैं, जो हिंसा नहीं, अहिंसा द्वारा, संघर्ष नहीं, मैत्री द्वारा संसार की इन विषम समस्याओं को सुलझाने का मार्ग देते हैं। अणुव्रत-आन्दोलन आपका इस ओर प्रशस्त कदम है। यह केवल भारत के लिये ही नहीं है, यह तो विश्व भर के लिये है। क्योंकि शान्ति की सबको चाह है। इसलिये मैं चाहूंगा कि आचार्यश्री इस आवाज को और ज्यादा बुलन्द करें।

आज हम सर्वत्र देखते हैं, जन-जीवन में स्वार्थपरता ओत-प्रोत है। अपने स्वार्थ के लिये बुरे से बुरा काम करते मनुष्य नहीं हिचकता। यह आदमी की बहुत बड़ी गिरावट है। अणुव्रत-आन्दोलन मनुष्य को सच्ची कर्तव्य निष्ठा की ओर प्रेरित कर स्वार्थ परायणता से दूर करता है, गिरावट से निकलकर सच्ची उन्नति की ओर जाने का मार्ग देता है।

[अजमेर में आचार्य श्री तुलसी के अभिनन्दन में आयोजित स्वागत समारोह में दिये गये भाषण से]

जीवन शुद्धि का विशाल-पथ

[श्री रमेशचन्द्र भार्गव, अध्यक्ष-अजमेर राज्य विधान सभा]

हमारी राष्ट्रीय सरकार चाहती है—राष्ट्र के लोगों की नैतिकता ऊंचे स्तर पर पहुँचे। उनका जीवन ज्यादा से ज्यादा प्रामाणिकता और सचाई लिये हो। क्योंकि राष्ट्र का ऊंचापन राष्ट्र के लोगों के ऊंचे जीवन पर निर्भर है। बुराइयों और विकृत प्रवृत्तियों पर रोक लगे, इसके लिये सरकार तरह-तरह के कानून बनाती है। पर हम देखते हैं, कानून बनने के बावजूद भी लोग उन बुराइयों से दूर नहीं हो पाते। प्रगट में नहीं तो छिपे रूप में उन्हें करते हैं। बात यह है—जबतक आदमीका दिल नहीं बदलता, बुराई को वह बुराई नहीं मानता, तबतक वह उसे दिल से नहीं छोड़ सकता। मुझे यह प्रगट करते प्रसन्नता है कि आचार्य श्री तुलसी उन महान् विभूतियों में से हैं, जो हृदय-परिवर्तन के द्वारा बुराइयों को दूरकर लोक-जीवन में सदाचरण और सद्वृत्तियां पैदा करना चाहते हैं। अणुव्रत-आन्दोलन एक ऐसा ही जन-निर्माणकारी आन्दोलन है।

हमारे देश में समय-समय पर ऐसा महापुरुष होते रहे हैं, जिन्होंने जनता को जीवन-विकास का मार्ग दिखाया, सच्ची उन्नति की ओर बढ़ने की प्रेरणा दी। आचार्य श्री तुलसी राष्ट्र की उन महापुरुषों की आदर्श परम्परा के महान् सन्त हैं, वे हमें जीवन-शुद्धि की उस मंजिल की ओर ले जाना चाहते हैं, जहां पहुंचकर हम आज की विषम और क्लेशपूर्ण समस्या से छुटकारा पा सकें। अणुव्रत-आन्दोलन इस ओर ले जाने का एक विशाल पथ है।

[अजमेर में आचार्यश्री तुलसी के अभिनन्दन में आयोजित स्वागत-समारोह में दिये गये भाषण से]

कितने दिवस रहोगे ऊपर?

[मुनिश्री मांगीलालजी]

मुदिर! अरे क्यों इठलाते हो?
मस्त बने भागे जाते हो, शून्य गगन से बातें करते।
अश्रुपूर्ण-लोचन-चातक-गण बूंद-बूंद के लिये तरसते॥
पथ में पलक बिछाये बैठे, फिर भी उनको ठुकराते हो।
मुदिर! अरे क्यों इठलाते हो?

जलधि-सलिल हर वितरित करते, मान रहे अपने को दानी।
जूं न रेंगती कानों पर हा! सुन कृषकों की करुण कहानी॥
उन्नत पदासीन होकर बस, मस्त बने गाने गाते हो।
मुदिर! अरे क्यों इठलाते हो?

कृष्ण घटायें लेकर आते, अभिनव आडम्बर दिखलाते।
गरज-गरज कर धोखा देकर, आंख मिचौनी सी कर जाते॥
मंडरा रही मृत्यु मस्तक पर, दया दृष्टि कब दिखलाते हो।
मुदिर! अरे क्यों इठलाते हो?

कितने दिवस रहोगे ऊपर, ओ! अभिमानी तुमने सोचा?
है भविष्य धारा धर कैसा, ध्यान-मग्न हो कब आलोचा?
मिट्टी में मिल जायेगी, सत्ता जिस पर तुम अकड़ाते हो।
मुदिर! अरे क्यों इठलाते हो?
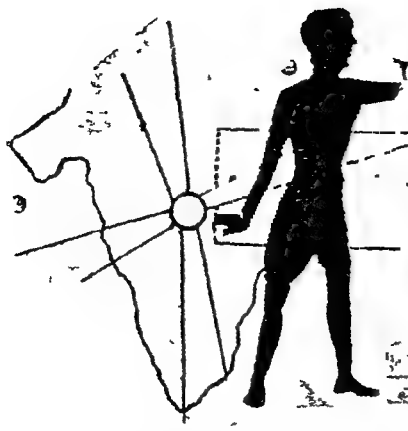
आचार्यश्री तुलसी के प्रवास से भीलवाड़ा के व्यस्त औद्योगिक जीवन में भी अणुव्रत-आन्दोलन का एक प्रवाह जागृत हुआ और उनके नेतृत्व में आयोजित मर्यादा-महोत्सव का कार्यक्रम विविध दृष्टियों का केन्द्र बन गया। इस अवसर पर अनेक अणुव्रती कार्यकर्त्ता सम्मिलित हुए और परस्पर विचारों का आदान-प्रदान हुआ। प्रमुखतः आचार्यश्री ने अणुव्रती कार्यकर्त्ताओं की एक गोष्ठि में संदेश देते हुए विचार के साथ आचार प्रधान कार्यक्रम की ओर मुड़ने और अणुव्रत समाज-व्यवस्था के लिये जीवन को तस्वीर बनाकर काम करने की प्रेरणा दी। कार्यकर्त्ताओं ने कतिपय प्रश्न भी किये और उत्साह की एक भावना लेकर लौटे।

विशेषाधिवेशन

इस अवसर पर अणुव्रत समिति का विशेषाधिवेशन हुआ और विधान उसका मुख्य केन्द्र-बिन्दु रहा। तीन बैठकों में विधान पर विस्तृत विवेचन के साथ १७ फरवरी को समिति का एक संक्षिप्त विधान अन्तिम रूप से स्वीकार किया गया। विधान की प्रतिलिपि पृथक से प्रकाशित की जा रही है। अणुव्रती कार्यकर्त्ता पत्र देकर मंगवा सकते हैं।

कार्य-समिति के निर्णय

कार्य समिति के दो-तीन वार अधिवेशन हुए। अब तक के कार्यक्रम पर विचार करने के साथ विभिन्न प्रदेशों में अणुव्रत-कार्यक्रम को संगठित करने के लिये प्रादेशिक संयोजकों का चुनाव किया गया। दिल्ली में शाखा कार्यालय संगठित करने का विचार किया गया और दोरे का एक देशव्यापी कार्यक्रम बनाया जाकर समिति के वार्षिक कार्यक्रमों को उसके साथ संयोजित करने का निर्णय लिया गया। आन्दोलन को दृष्टि में रखकर सर्वोदय व अन्य कार्यकलापों के साथ विचार-मंथन की दृष्टि से भी कार्य-समिति की बैठकें अत्यन्त महत्वपूर्ण रहीं। समिति की बैठकों में समिति के अध्यक्ष श्री पारस जैन, उपाध्यक्षा श्रीमती हुलासी बाई, श्री सुगनचन्द आंचलिया, श्री जवरमल भंडारी, श्री उत्तमचन्द सेठिया, श्री रिखपाल जैन, श्री छगनलाल शास्त्री व श्री प्रतापसिंह वैद की उपस्थिति समिति के निर्णयों की दृष्टि से अत्यन्त प्रेरणाप्रद व उत्साहपूर्ण रही और कार्य में एकलमता देखी गई।

दक्षिण का दौरा

कार्यसमिति में दोरे के एक व्यापक कार्यक्रम पर विचार किया गया और सर्वप्रथम अध्यक्ष महोदय के नेतृत्व में दक्षिण का दोरा करने का निश्चय किया गया। यह दौरा अप्रैल से प्रारम्भ हो जायगा। हैदराबाद, मद्रास, बेंगलोर, खानदेश, पूना आदि प्रदेशों का पूर्ण भ्रमण करते हुए स्थान-स्थान पर समितियों के संगठन और कार्यक्रम को प्रसारित करने का प्रयत्न किया जायगा। इस कार्यक्रम में समिति के संगठन मन्त्री श्री उत्तमचन्द सेठिया साथ रहेंगे, समिति के अन्य कार्यकर्त्ता भी साथ होंगे। प्रयास यह रहेगा कि निश्चित कार्यक्रम की सूचना हम प्रादेशिक संयोजकों व स्थानीय कार्यकर्त्ताओं को समय पर दे सकें। आशा है कि दक्षिण के कार्यकर्त्ता अणुव्रत-आन्दोलन के प्रसार में अध्यक्ष महोदय के इस प्रथम दौरे को सफल बनाने में उनके साथ पूर्णतया जुट पड़ेंगे और उनका उत्साहपूर्ण स्वागत कर अणुव्रत आन्दोलन के प्रसार में योग देंगे।

दिल्ली में शाखा केन्द्र

कार्य-समिति के निर्णयानुसार सम्भवतः अप्रैल से ही राजधानी में शाखा केन्द्र व्यवस्थित रूप से प्रारम्भ हो जायगा। दिल्ली के लोक-जीवन से अणुव्रत समिति का प्रारम्भिक सम्पर्क और प्रसार रहा है और इसके प्रमुख सूत्रधार समिति के प्राणवान नेता श्री मोहनलाल कठोतिया रहे हैं। उनके मार्ग दर्शन में विश्वास है, समिति का कार्यक्रम अधिक लोकप्रिय होगा। समिति के उत्साही कार्यकर्त्ता श्री सोहनलाल बाफणा आगामी मास से ही शाखा केन्द्र में बैठ रहे हैं। विश्वास है, प्रादेशिक संयोजक के नेतृत्व में दिल्ली में अणुव्रत कार्यक्रम की एक और नई शृङ्खला जुड़ेगी।

प्रादेशिक संयोजक

अणुव्रत समिति का देशव्यापी संगठन करने और आन्दोलन के प्रसार के लिये कार्य-समिति ने विभिन्न प्रदेशों में निम्नलिखित संयोजकों का चुनाव किया है। आशा की जाती है कि अणुव्रती कार्यकर्त्ता स्थान-स्थान पर अणुव्रत समिति की शाखाएं खोलने और समिति के कार्यक्रम को अपने-अपने प्रदेश में प्रसारित करने में संयोजकों के साथ पूर्ण सहयोग करेंगे।

(१) पूना (बम्बई) :—श्री फूलचंद मरलेचा
८१ खिड़की बाजार पूना—३

(२) कोल्हापुर (बम्बई) :—श्री खींवराज घोड़ावत
P. O. जयसिंगपुर (कोल्हापुर)

(३) गुजरात (बम्बई) :—श्री मानसिंह वैद
C/o पन्नालाल सागरमल नं० १५७ प्रिन्सेस स्ट्रीट, Bombay 2.

(४) सौराष्ट्र प्रान्त :—श्री नारायण भाई
C/o नारायण दास हरगोविन्द दास
P. O. ध्रागंध्रा (सौराष्ट्र)

(५) उड़ीसा प्रान्त :—श्री रिखपाल जैन
P/o Kanta Bhaji
(Orrisa)

(६) हैदराबाद प्रान्त :—श्री मिश्रीमल सुराना
C/o साधना मंदिर, बोलारम (दक्षिण हैदराबाद)

(७) बंगलौर (मैसूर प्रान्त) :—श्री धनराज भाई
C/o अणुव्रत प्रचार समिति नं० ३६५ चीकपेट
P.o. बेंगलोर नं० २.

(८) बीकानेर डिवीजन (राजस्थान) :—श्री सुखलाल माल्लू
P. O. श्रीडूंगरगढ़ (राज०)

(९) जोधपुर डिवीजन " :—श्री मनोहरमल लोढ़ा
मोती चौक
P. O. जोधपुर

(१०) उदयपुर डिवीजन " :—श्री हीरालाल सोनी
P. O. थामला
Via. Nathdwara (Raj.)

(११) जयपुर डिवीजन " :—श्री पन्नालाल बांठिया
C/o. अणुव्रत समिति
जौहरी बाजार, जयपुर (राज०)

(१२) कोटा डिवीजन
श्री चुनीलाल रिषभचंद सिंघी
P. o. बकाणी (कोटा)

(१३) अजमेर मेरवाड़ा :—सौ० सत्यभामा बहिन, गर्ग
६६१ इमली मौहल्ला
Ajmer (अजमेर)

(१४) पंजाब प्रान्त :—श्री मदनलाल गुप्ता
P. O. लुधियाना (पंजाब)

(१५) हरियाणा (पंजाब) :—श्री लूनियांमल जैन
C/o श्री रघुवीरसिंह नूनियामल
P. O. हांसी (हरियाणा)

निम्नलिखित प्रदेशों के संयोजकों के नाम अभी विचाराधीन हैं, शीघ्र ही इनकी घोषणा की जा सकेगी। इस सम्बन्ध में यदि किसी का कोई सुझाव हो तो अविलम्ब कार्यालय में भेजने का कष्ट करें।

(१) आसाम (२) पश्चिमी बंगाल (३) पूर्वी बंगाल राज्य (४) दिल्ली प्रदेश (५) नैपाल राज्य (६) मद्रास प्रान्त (७) उत्तर प्रदेश (८) बिहार राज्य (९) मध्य प्रदेश (१०) खानदेश (बम्बई)

अध्यक्ष एवं विभागीय मंत्रियों से पत्र-व्यवहार के लिए

(१) श्री पारस जैन (अध्यक्ष)
पायनूर बाजार P. o. बोलारम
(दक्षिण हैदराबाद)

(२) श्री भैरूलाल कुचेरिया (प्रचार मंत्री)
ठि० कुचेरिया ब्रदर्स
पो०—दोंडायचा Doudaicha
(पूर्वी खानदेश)

(३) श्री उत्तमचंद सेठिया (संगठन मंत्री)
कादराबाद पो०—जालना
E. Rly

(४) श्री शुभकरण सुराना (साहित्य मंत्री)
ठि० कन्हैयालाल शुभकरण
फैन्सी बाजार
पो०—गौहाटी (आसाम)

सार्वजनिक सभा का आयोजन

● मद्रास, ५ मार्च को मुनिश्री जसकरणजी विहार करके जकसा बाजार पधारे। १० मार्च को स्थानीय कारपोरेशन हाई स्कूल में अणुव्रत-आन्दोलन के प्रचारार्थ एक सार्वजनिक सभा का आयोजन हुआ। इस अवसर पर तमिल अरसु कलगम के नेता और जैन दर्शन के प्रकांड विद्वान श्री सिवज्ञान गिरामणी, दक्षिण के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो० एम० कृष्णमूर्ति, स्थानीय कारपोरेशन काउन्सीलर श्री जी० कृष्णन् एवं विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री ए० एन० सुन्दरम् आदि गणमान्य व्यक्तियों के अतिरिक्त उपस्थिति लगभग चार सौ रही।

अणुव्रत-प्रेरणा समारोह

● अजमेर (डाक से) राजस्थान व अजमेर राज्य के विभिन्न गांवों में होते हुए आचार्यश्री ८ मार्च को अजमेर पधारे। ९ मार्च की शाम को म्युजियम के सामनेवाले मैदान में अणुव्रत-प्रेरणा समारोह का विशाल आयोजन हुआ जिसमें लगभग पांच हजार की संख्या में नगर के विभिन्न वर्गीय नागरिक उपस्थित थे। अजमेर राज्य विधान सभा के सदस्य डा० अम्बालाल शर्मा तथा गौतम आश्रम के संस्थापक श्री जगन्नाथ उपाध्याय इस अवसर पर विशेष वक्ता के रूप में उपस्थित थे।

अजमेर से पुस्कर

● पुस्कर (डाक से) जन-जन तक नैतिक व आध्यात्मिक क्रान्ति का सन्देश देते हुए आचार्यश्री तुलसी १३ मार्च को प्रातः भारत के प्रमुख सांस्कृतिक स्थान पुस्कर पहुँचे। स्थानीय रंगजी के प्राचीन मन्दिर के मैदान में आपके प्रवचन का आयोजन रखा गया जहां स्थानीय नागरिकों के अतिरिक्त अजमेर, व्यावर, टाडगढ़, जेठाना आदि व राजस्थान के जयपुर, जोधपुर, बीकानेर तथा उदयपुर डिवीजन के भाई-बहिन उपस्थित थे। पुस्कर के प्रमुख वयोवृद्ध विद्वान पं० शिवदत्त शर्मा ने उपस्थित नागरिकों की ओर से आचार्यश्री के स्वागत में भाषण दिया।

इसके अनन्तर थांवला, डुडियाना, बड़ीपादू, पालियास, इड़वा होते हुए आचार्यश्री डेगाना पधारे। दोपहर के प्रवचन में आपने लोगों को सत्य और प्रामाणिकता की शिक्षा देते हुए उन्हें जीवन में इन सद्गुणों को अपनाने की प्रेरणा दी।

गांवों में त्याग की लहर

ता० १८ मार्च—को प्रातः आचार्य श्री चांदारुण से प्रस्थान कर ५ मील की दूरी पर अवस्थित कीतलसर पधारे। वहां प्रवचन हुआ। आचार्य श्री ने उपस्थित लोगों को मद्य, मांस आदि तामसिक खानपान व अन्यान्य अनैतिक वृत्तियों की परिहेयता बताते हुए उनको उनसे दूर रहने की प्रेरणा दी। अनेकों ने मद्य, मांस, तम्बाकू आदि का परित्याग किया। कइयों के मन में तो तम्बाकू के प्रति इतनी नफरत पैदा हुई कि तत्काल उन्होंने अपनी चिलमें व बीड़ियां फैंक डाली। किरड़े के ठाकुर साहब ने शिकार, मांस-मद्य सेवन का त्याग किया।

कीतलसर से प्रस्थान कर आचार्य श्री ३ मील की दूरी पर बाजोली पधारे। दोपहर में प्रवचन हुआ लोगों की अच्छी उपस्थिति थी। प्रवचन के पश्चात् आचार श्री ने पुनः विहार करवाया। ६ मील की दूरी पर अवस्थित जावला पधारे। रात्रि को प्रवचन हुआ। आचार्य श्री ने अणुव्रत-आन्दोलन के नैतिक-निर्माण व चारित्र्य शुद्धि मूलक भूमिका से जनता को अवगत कराते हुए जीवन में नैतिकता और सदाचार को प्रश्रय देने की प्रेरणा दी।

ता० १९ मार्च—को प्रातः जावला से विहार कर आचार्य श्री ६ मील पर स्थित गूलर पधारे। प्रवचन हुआ। लोगों में बड़ा उल्लास था। खेद एक ही था कि आचार श्री समय अत्यन्त कम दे रहे हैं। गूलर से विहार कर आचार्य श्री ३ मील की दूरी पर हरनावां पधारे। दोपहर में प्रवचन हुआ। लोग उत्कंठा लिये उपस्थित थे। वहां से अपराह्न में प्रस्थान कर आचार्य श्री ५ मील की दूरी पर स्थित बडू पधारे।

अपने अपने विचार—

भ्रष्टाचार कैसे मिटे ?

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत उपरोक्त विषय पर इसी तरह हमारे पाठकों, कार्यकर्ताओं और साथियों के विचार प्रकाशित होते रहेंगे। विचार संक्षिप्त और स्पष्ट लिखकर कार्यालय में भेजें, उनको क्रमानुसार प्रकाशित किया जायगा। प्रकाशित विचारों का उत्तरदायी स्वयं लेखक होगा। —सम्पादक]

आवश्यकताएं कम करें !

[श्री 'प्रेम']

भ्रष्टाचार देश के लिये कलंक है अतः इसका मिटना अत्यावश्यक है। इसके दो ही उपाय हैं। प्रथम तो यह कि शासन भ्रष्टाचार को रोकने के लिये काफी कड़ाई से कामले और भ्रष्टाचार में फँसे अपराधियों को कड़े से कड़ा दंड देकर जनता के सन्मुख एक आदर्श उपस्थित करे। इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का भी पक्षपात नहीं होना चाहिए; परन्तु केवल शासन ही भ्रष्टाचार को समूल नष्ट नहीं कर सकता। दूसरा और अत्यन्त आवश्यक उपाय यह है कि देश का प्रत्येक निवासी चाहे वह सरकारी नौकरी करता हो या व्यापार इस बात का निश्चय करे कि मैं स्वयं भ्रष्टाचार नहीं करूँगा तथा अपने प्रभाव से अपने पड़ौसी, मित्र व सम्बन्धित व्यक्ति को भी भ्रष्टाचार की महामारी से बचाऊँगा। आत्मिक विकास के निमित्त स्वाध्याय, सत्संग आदि का आयोजन अपने दैनिक जीवन में अधिकाधिक करना चाहिये जिससे चारित्रिक विकास होकर सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करने का अभ्यास हो। इससे मनुष्य की आवश्यकतायें सीमित होंगी और इस प्रकार धन का अपव्यय जो मनुष्य अपने झूठी शान दिखलाने के लिये करता है नहीं करेगा। भ्रष्टाचार का मूल कारण है—धन प्राप्ति की उत्कट इच्छा। अतः भ्रष्टाचार को रोकने के लिये सन्तोष का होना अत्यावश्यक है। तभी मनुष्य धन प्राप्त करने के लिये नैतिक उपायों का ही अवलम्बन करेगा और इस प्रकार भ्रष्टाचार समूल नष्ट हो जायेगा।

नैतिक भावना के प्रसार से

[श्री सुमेरमल सुखानी]

भारतवर्ष की तपोभूमि, जोकि प्राचीन समय में सदाचार और नैतिकता के क्षेत्र में विश्व का प्रतिनिधित्व करती थी, लेकिन आज की स्थिति ठीक उसके विपरीत है। आज भारतवासियों का इतना अधिक नैतिक और आध्यात्मिक पतन हो गया है कि वे धर्मस्थानों से जूतियों की चोरी करते हुए भी नहीं सकुचाते। वस्तुतः यह बड़े खेद का विषय है। अगर भ्रष्टाचार को दूर करने की ओर उचित कदम नहीं उठाया गया तो इसका बड़ा भयंकर परिणाम होगा। इसलिये हमारे देश से भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए सरकार व जनता दोनों को प्रयत्न करना होगा।

भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए सबसे अधिक आवश्यक यह है कि लोगों को सादा जीवन और उच्च-विचार के आदर्श की शिक्षा दी जाय। अगर लोगों का जीवन सादा होगा, फैसन-लोलुपता नहीं होगी, विचार पवित्र व उन्नत होंगे, तो वे कभी भ्रष्टाचार व अनैतिकता के द्वारा धन-संग्रह की चेष्टा नहीं करेंगे। इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि जन-मानस को अणुव्रत के नैतिक उत्थानकारी नियमों से अवगत कराया जाय, जनमानस में एक ऐसी नैतिक-भावना पैदा की जाय, जिससे वे भ्रष्टाचार के द्वारा अर्थार्जन करके समाज, राष्ट्र व स्वयं के जीवन को विकृत न बनायें।

अति-विलास और संग्रह की भावना से ही भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है, इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि लोगों में संयम और अपरिग्रह की भावना का प्रसार किया जाय। जब हमारे देश के लोग संयमी, सदाचारी व अपरिग्रही बनेंगे, तभी हमारे देश से भ्रष्टाचार का उन्मूलन हो सकेगा। अहिंसा, अपरिग्रह व नैतिकता के नियमों से ओतप्रोत अणुव्रत-आन्दोलन के नियमों को अपनाने से ही हमारे देश में भ्रष्टाचार दूर हो सकता है अन्यथा नहीं। आशा है भारत के लोग अणुव्रत-आन्दोलन के नियमों को अपना कर भ्रष्टाचार के विरोध में एक संयुक्त मोर्चा खड़ा करेंगे और इस प्रकार हमारे देश में भ्रष्टाचार समाप्त होकर सदाचार की पावन सुरसरि बहेगी।

सच्चं लोगम्मि सारभूयं
सत्य ही लोक में सारभूत है।

संयमः खलु जीवनम्
संयम ही जीवन है।

(पृष्ठ १५ का शेषांश)

भीड़ में कमी नहीं हुई थी। २० हजार का मामला था मामूली बात नहीं थी। २० हजार कम नहीं होते। २० हजार का गवन।

"ऊंह मरने भी दो।" वह झुंझलाया, मैं अपना भविष्य क्यों बिगाड़ूं, यह दुनिया है। सब योंही चला करता है। क्या मालूम इसी के रुपए हों या और किसी के गिरे हों। मुझे, मुझे इन्सानियत का नुसखा ·········।

सड़ाक्-सड़ाक्······कोड़े बरसे और दर्दनाक चीख पुलिस स्टेशन की दीवारोंको फोड़कर आदमियों के कर्ण कुहरों से टकरा······ दरोगाजी! भगवान कसम मैंने रुपए नहीं लिए। दरोगाजी! दया करो मुझपर!···भगवान!···

"अबे भगवान के बच्चे!"··· और फिर सड़ाक्-सड़ाक् की दो आवाजें टकराईं और पुनः जोर की चीख की आवाजें दीवालों से टकराकर कानों से टकराईं।

"मुझे इन्सान बनना है।" वह जोर से चिल्लाया और पुलिस स्टेशन से के फाटक की ओर बढ़ा। दरवाजे पर का सन्तरी जब तक उसकी ओर बढ़े वह सड़ाक से भीतर घुस गया।

"पकड़ो पागल को।" सन्तरी पीछे से चिल्लाया। दरवाजा खोलकर वह अन्दर कोठरी में दाखिल हो गया और चिल्लाया—दरोगा जी! सब चौंक पड़े।

"क्या है वे! निकालो बाहर साले को। न जाने कहां मर गया सन्तरी।" और उनका स्वर तीव्र हो उठा।

दरोगाजी! उसने गुलेट से रुपयों के बंडल फेंकते हुए कहा—यह लो रुपये। मुनीम को छोड़ दो। मैंने यह रुपये दरियागंज की सड़क पर पाये हैं। छोड़ दो इन्हें। मुझे इन्सान बनना है, इन्सान।

सन्तरी बाहर खड़ा हुआ इस पागल को देख रहा था। दरोगाजी का कोड़ा हवा में झूलता ही रह गया। सभी पागल की ओर देख रहे थे—उसके मुर्झाये आत्म-प्रकाश से प्रकाशित चेहरे को गौर से। उसकी गढ्ढे में धसीं पुतलियों में मानवता की ज्योति जल रही थी।

'मेरी तरफ मत देखो। इन्हें गिन लो।'

दरोगाजी ने झपटकर नोट उठा लिए। चटपट गिन डाले। बोले—ठीक है।

'पूरे हैं—वह हर्ष से गद्‌गद् बोला।'

और वह मुनीम कोड़ों की पीड़ा भूल चुका था। जबतक वह उस जवान पागल इन्सान को पकड़ने दौड़े, वह उस समय तेजीसे बाहर भागा जा रहा था—मुझे मत छूना। मैं पापी हूँ। मैं पापी हूं। मुझे इन्सान बनना है। नहीं नहीं, और वह एक गली में घुसकर गायब हो गया।

दूसरे दिन लोगों ने अखबार में पढ़ा—भूख से एक नवयुवक की मृत्यु। कल रात आठ बजे लाल किले के मैदान में एक व्यक्ति मरा पाया गया। पोस्टमार्टम से पता चलता है कि व्यक्ति चार दिनका भूखा था। लोगोंने उपेक्षा से पढ़ा और मुंह बिचकाकर कहा—ऊंह यह कोई खास खबर नहीं रोज का माजरा है। किन्तु पास ही छपी हुई पागल की सहृदयता की चर्चा लोगों में विशेष कुतूहल पैदा कर रही थी। कोई क्या समझे पतवार डूब गई किन्तु किसी को पता तक नहीं चला।

(पृष्ठ १७ का शेषांश)

क्योंकि कई दृष्टियों से विभिन्न परिवर्तन व परिवर्धन आवश्यक प्रतीत होने लगते हैं। अतः अणुव्रतियों की प्रति वर्ष अधिवेशन के अवसर पर प्रतिज्ञायें दुहराई जाती हैं और भविष्य के लिये आत्मबलके साथ भौतिकनाओं से मोर्चा लेने के लिये नवीन प्रेरणा व स्फूर्ति दी जाती है। अभी तक आन्दोलन के छै अधिवेशन हो चुके हैं जिनमें प्रथम अधिवेशन से हर १ से ३००० व्यक्तियों ने अणुव्रती व एक लाख से ऊपर प्रवेशक अणुव्रती के रूप में व्यक्तियों ने प्रतिज्ञायें की हैं।

अनूठी शक्ति

अणुव्रत—आन्दोलन के फलने-फूलने में आचार्य श्री तुलसी व उनका कर्मठ साधु समाज मुख्य कारण है। क्योंकि निस्वार्थवृत्ति व साधना परायण हुए विना कोई भी उपक्रम सफल नहीं हो सकता। आचार्यश्री तुलसी का साधु समाज इस दिशा में अनन्य उदाहरण उपस्थित करनेवाला है। लगभग ६५० साधु-साध्वियों के एक विराट् समाज के साथ आचार्यश्री स्वयं पाद-विहार करते हैं और कोटि-कोटि ग्रामीण नागरिक, शिक्षित-अशिक्षित जनता को प्रतिबोधित करते हैं। वे अकिंचन हैं और स्वल्पतम सामग्री से अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इनका अनुशासन, रहन-सहन की सात्विकता, पारस्परिक भ्रातृभाव अपने तरीके का अनूठा है। सारा समाजिक तीन-तीन, चार-चार व पांच-पांच के विभागों में विभक्त होकर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक पद यात्रा करते हैं। अस्तु—अणुव्रत आन्दोलन के पीछे इस प्रकार के त्यागी समाज का होना उसके सुन्दर भविष्य का सूचक है व भावी विकास के पीछे रही अनूठी शक्ति।

(पृष्ठ ८ का शेषांश)

इतने महंगे होते हैं कि वे केवल मिनिस्टर, सेक्रेटरी, गवर्नर, इंजीनियर, डाक्टर, प्रोफेसर या बड़े आफिसर ही खरीद सकते हैं। साधारण जनता की पहुँच के बाहर होने के कारण ज्ञान-विज्ञान और साहित्य भी केवल सम्पन्न व्यक्तियों की वस्तु रह जाती है। पं० जवाहरलाल नेहरू के ३ वर्ष के भाषणों की पुस्तक ४॥) रु० की मिलती है जबकि मार्शल स्तालिन और माओत्से-तुंग के भाषणों की पुस्तक हमें दस आने में ही उपलब्ध हो जाती है। स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में हम स्तालिन और माओत्से-तुंग को अधिक जानेंगे और जवाहरलालजी को समझने का अवसर ही नहीं पायेंगे। अभी हाल ही में मार्शल-बुल्गानिन और खुरश्चेव के भारत में दिये गये भाषणों का संकलन तास प्रतिनिधि द्वारा प्रकाशित हुआ है जिसका कलेवर २१० पृष्ठों का है और जिसका मूल्य केवल दो आने है। अब सोचने की बात है कि बुल्गानिन और खुरश्चेव के विचारों को लोग अधिक जानेंगे या जवाहरलाल जी को? राजनीति की बात जाने दीजिये साहित्य की पुस्तकों का भी यही हाल है। टर्गनोव, चेखव, पुश्किन, टाल्सटाय या लू शिंग, ली चुन, वांग याओ और शु चुं व लू शुह का साहित्य नयनाभिराम मुद्रण के सहित जितना सुलभ है उतना प्रेमचन्द, पंत या निराला का साहित्य सुलभ नहीं है। चरित्र-निर्माण के लिये पुस्तकेंही सबसे बड़ा अस्त्र है और जिसका सस्ता प्रकाशन सरकार की निश्चित योजना ही कर सकती है। समय बड़ा गम्भीर है। हमारे देश के बड़े-बड़े नेता अपने वृद्धावस्था के अन्तिम चरणों में चलकर हमसे विदा लेने आ रहे हैं और बहुत बड़ा दायित्व अपने ऊपर आ रहा है। इस महान दायित्व को हम बिना निर्मल चरित्र के कभी भी सम्हाल न सकेंगे। हमें राष्ट्रोन्नत योजनाओं में चारित्रिक उन्नत एवं विकास की योजना बनाना आवश्यक है।

(शेषांश पृष्ठ १२ का)

आवरण के कारण हमारा वास्तविक तेज हमारी आंखों से ओझल हो गया है। वासनाओं के बादल के पीछे हमें अपना सूर्य सदृश तेजस्वी व्यक्तित्व झांकता दिखाई देगा। हिमालय पर जमा हुआ हिम सर्वथा पवित्र है, वही गंगा, यमुना आदि नदियों का स्रोत है। आगे चलकर कूड़ा-करकट मिल जाने से उनका पानी गंदा हो जाता है, हम भ्रमवश समझने लगते हैं कि इनके उद्गम-स्थल पर भी ऐसा ही कूड़ा-करकट होगा। वासनाओं के संयोग से हमारी भावनाएं दूषित हो जाती है, हम समझने लगते हैं कि इनका वह बाह्य रूप ही इच्छाएं सब कुछ है वही हमारे निर्माण तत्व का परिचायक है। उसी भ्रम के कारण ही हम अपने आपको एक हीन व्यक्ति समझ बैठते हैं और हमारी यह हीन भावना ही हमें अपनी नजरों में गिरा देती है। अपमान इसी हीन भावनाकी प्रतिच्छाया है, उसका बाह्य रूप है।

(पृष्ठ २१ का शेषांश)

never too late to mend (सुधार का समय सदैव है) और यह भी कहा गया है कि Where there is will there is way (जहां चाह वहां राह)। अगर वस्तुतः आप अपने में सुधार चाहते हैं तो आप में सुधार सम्भव है। अगर नहीं चाहते तो कोई भी आपको सुधार नहीं सकता। अतएव सर्वप्रथम यह संकल्प करें कि मैं अपने को सुधारना चाहता हूं। आपके इस संकल्प से आपका आधा कार्य समाप्त हो जायगा। इसके पश्चात् आप व्रत लें कि मैं अपना चरित्र-गठन करना चाहता हूं। चरित्र-गठन के हेतु आत्म-संयम आवश्यक वस्तु है। 'स्व' पर अधिकार जमा के जिसे उचित समझें उसे करें, जिसे अनुचित समझें उसका परित्याग करें।

मानव के मन में दो प्रवृतियां पाई जाती हैं। एक सुप्रवृति दूसरी कुप्रवृति। सुप्रवृति सदैव सत्कार्य की ओर मानव को प्रवृत करती है, कुप्रवृति दुष्कार्य की ओर अग्रसर करती है। जब कुप्रवृति दुष्कार्य की ओर मन को ले जाना चाहती है सुप्रवृति अवरोध उपस्थित करती है, मना करती है, समझाती है और दोनों प्रवृतियोंमें संघर्ष उपस्थित हो जाता है। मानव की बनावट के आधार पर कुप्रवृतियां सुप्रवृति की विजय होती है। सुप्रवृति देव है और कुप्रवृति दानव। दानव ने कभी किसीका कल्याण किया है? अतः कुप्रवृतियों से सम्बन्ध विच्छेदकर सुप्रवृतियोंसे तादात्म स्थापित करना श्रेयस्कर है। देव के संयोग से मानव सत्य, अहिंसा, आत्म-बल तथा समता आदि गुणों से विभूषित हो सकता है। अतः आप भी इस देव को अंगीकार कीजिए। आपका जीवन ज्योतिपूर्ण एवं आदर्श बन जायगा, मिथ्याचरण से जीवन भार होकर रहेगा।

(शेषांश पृष्ठ २२ का)

पूर्व कह रहे थे—"……तुम मंदिर में नहीं जा सकते हो………"अब कह रहे थे… "महानुभावों! जिन्हें तुम अभद्र कहते हो, अस्पृश्य कहते हो, जंगली कहते हो, वे न तो अभद्र हैं, न अस्पृश्य ही, वे तो पूज्य हैं, उनके जिस काम से तुम घृणा करते हो, क्या वे तुम्हारी मातायें और बहिनें नहीं करती हैं? क्या तुम उनका जूठा नहीं खाते हो, तब फिर इनसे घृणा क्यों? तुममें और उनमें फर्क केवल इतना है कि वे अपने लिये दूसरों का करते हैं और तुम अपने लिये अपनों का ही करते हो। पर यह तो बताओ, जिन्हें तुम अपना कहते हो, वे कब तुम्हारे रहे?

तभी मैं अनुभव कर रही थी, सारा समाज आत्म-चिन्तन में डूबा था।
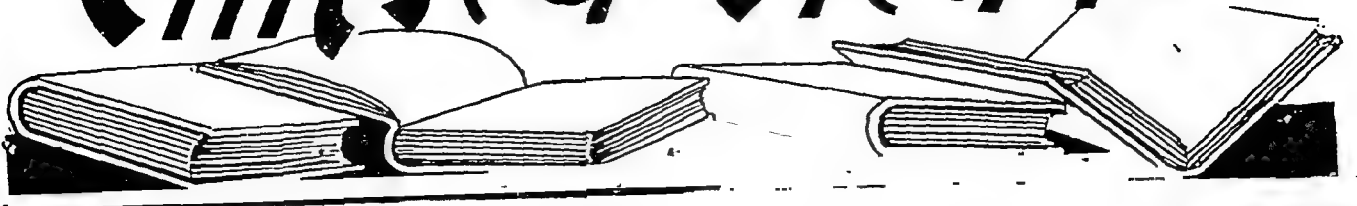
[समालोचनार्थ पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियाँ कार्यालय में भेजनी चाहिये]

साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण—ले० किशोरीदास वाजपेयी; प्रकाशक—हिमालय एजेन्सी, कनखल (उत्तर प्रदेश) मूल्य २) रु०

वाजपेयीजी सन् १९२३ से हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे हैं। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन में अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं अनुभवों और संस्मरणों का दिग्दर्शनमात्र है। लेखक के कथनानुसार 'साहित्य-क्षेत्र में 'सफलता' चाहने वालों के लिए पुस्तक बड़े काम की है। असफलता के कारण और सफलता की कुंजी दोनों इसमें है। अनांशतः ठीक है।

इस पुस्तक के अनुसार वाजपेयीजी ने अपने साहित्यिक जीवन को चार उन्मेषों में विभक्त किया है। प्रथम उन्मेष (१९१९ से १९३० तक) द्वितीय उन्मेष (१९३१ से १९४० तक) तृतीय उन्मेष (१९४१ से १९५० तक) एवं चतुर्थ उन्मेष सन् १९५२ से आगे तक चल रहा है; पुस्तक में इन सभी उन्मेषों का क्रमशः पूर्ण विवरण दिया गया है।

लेखक के साहित्यिक जीवन के इन चारों उन्मेषों पर एक विहंगम दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि इस पुस्तक के अन्दर लेखक ने अपने साहित्यिक क्षेत्र के अनुभव और संस्मरणों को सार्वजनिक रूप से वसीयतनामा या अपनी सफाई के रूप में प्रकट किया है। साथ ही वाजपेयीजी जैसे संत, सज्जन और गुणी व्यक्ति पर लगाये गये झगड़ालू, हठीले और गर्वीले स्वभाव के आरोप पुस्तकावलोकन से पूर्णतः निराधार हो जाते हैं।

वाजपेयीजी ने हिन्दी में जिन बहुमूल्य ग्रन्थों की रचना की और उसके फलस्वरूप उन्हें अपने पाठकों से जो सम्मान मिलना चाहिए था, वह न मिल सका। यह लेखक का दुर्भाग्य नहीं समझा जा सकता, बल्कि यह दुर्भाग्य है—हिन्दी का। आनेवाली पीढ़ियाँ उनके इस अनुभव और संस्मरण को पढ़ेंगी और नव लेखक के प्रति हुई भूल को पहिचानेंगी।

अन्त में पुस्तक की उपयोगिता इसी से सिद्ध होती है कि उसमें एक लेखक के साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण का इतिहास क्रमबद्ध किया गया है। इस कारण इस पुस्तक का अध्ययन कर आज के लेखक-वृन्द सफलता का रहस्य सहज ही में जान सकते हैं और स्वयं को असफलता के गर्त्त में जाने से रोक सकते हैं, कारण कि एक साहित्यकार जो सर्वदा से जनसाधारण में उपेक्षित रहा है, 'साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण' उनका पथ प्रशस्त और आलोकित करने में सहायक बन सकेंगे।

—प्रेमचन्द महेश

"शक्ति" मासिक, (फरवरी ५६) संपादक श्री ब्रह्मानन्द नन्दा बी० ए०, शक्ति कार्यालय अजमेरी गेट देहली। पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ६) वार्षिक, एक प्रति का ॥)

आज जबकि देश में हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि के नाम पर नित्य ही नई-नई पत्रिकायें प्रकाशित हो रही हैं, शक्ति का प्रकाशन भी कोई नवीनता नहीं रखता पर उसके संचालक महोदय की इस घोषणा के फलस्वरूप कि अपनी गौरवमयी आध्यात्मिक संस्कृति के शुभ्र आलोक में वर्तमान समस्याओं का उचित समाधान ढूंढ़कर भारतीय समाज के पुनर्निर्माण करने के हेतु जन-साधारण में एक नवीन चेतना का संचार करना शक्ति का निश्चित ध्येय है, पाठकों में एक उत्सुकता अवश्य उत्पन्न कर देता है।

पत्रिका की सामग्री अपेक्षाकृत सुन्दर होने पर भी निश्चित उद्देश्य से सम्बन्ध कम रखती है। प्रूफ रीडिंग में अधिक सावधानी की आवश्यकता है। विश्वास है कि 'शक्ति' भविष्य में और भी आकर्षक रूप में पाठक-पाठिकाओं के समक्ष उपस्थित होगी तथा देश व समाज की वास्तविक रूप में सेवा करने में सफल होगी। हम सहयोगी पत्रिका की सफलता की कामना करते हैं।

—हृदयेश

श्री प्रतापसिंह वैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित

अणुव्रत
प्रकाशक अणुव्रत समिति

लेखकों से !

१ 'अणुव्रत' में केवल नैतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व अन्य जीवनोपयोगी प्रेरक लेख, कविता, कहानी आदि ही प्रकाशित होती है। रचना भेजते समय इसका विशेष ध्यान रखें।

२ रचनाओं के घटाने-बढ़ाने, प्रकाशित करने या न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। प्रकाशित विचारों का उत्तरदायी स्वयं लेखक होगा, सम्पादक नहीं।

३ लेखादि संक्षिप्त व सार-गर्भित होने के साथ पृष्ठ के एक ओर सुस्पष्ट लिखे होने चाहिये।

४ प्रत्येक रचना की स्वीकृति अधिक से अधिक १५ दिन में भेज दी जाती है। स्वीकृति के अभाव में रचना अस्वीकृत समझें।

५ रचनाओं में यदि हिन्दी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा का उदाहरण या अंश प्रस्तुत करें तो वह सानुवाद हो और पुस्तकादि का पूरा विवरण भी अवश्य दें।

६ समालोचनार्थ पूर्ण विवरण सहित पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियां भेजनी चाहिएँ।

७ रचना के साथ लेखक या लेखिका का पूरा नाम, पता अवश्य होना चाहिए।

८ परिवर्तनार्थ पत्र-पत्रिका भेजने व सम्पादन-सम्बन्धी हर प्रकार के पत्र-व्यवहार का पता :—

सम्पादक—'अणुव्रत' पाक्षिक, ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता—१

अणुव्रत के पाठकों से !

'अणुव्रत' को और अधिक लोकोपयोगी व जन-रुचिकर बनाने की दृष्टि से 'अणुव्रत' में प्रकाशित रचनाओं के सम्बन्ध में अपने सहृदय पाठकों का मन जानना आवश्यक है।

अतः हमारा साग्रह निवेदन है कि भविष्य में सहयोगी पाठक 'अणुव्रत' के प्रत्येक अङ्क पर अपनी सम्मत्ति, विचार व सुझाव आदि निःसंकोच लिखकर भेजें।

जो पाठक हमारी त्रुटियों व अभावों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे उनके हम विशेष आभारी होंगे।

रचनात्मक विचारों व सुझावों को यथाशीघ्र क्रियान्वित करने का भी प्रयत्न हो सकेगा।

—सम्पादक

नयी भेंट

○ स्कूल, कालेजों व विद्यापीठ आदि

○ सार्वजनिक पुस्तकालयों तथा वाचनालय व

○ अन्य सार्वजनिक संस्थाओं को

'अणुव्रत' आधी कीमत पर

अर्थात् ६ रुपये की बजाय तीन रुपये वार्षिक चन्दे में

सीमित प्रतियाँ ही इस नियम के अन्तर्गत भेंट की जायेंगी।

यदि आप चाहते हैं कि आपको भी इस सुविधा का अवसर प्राप्त हो तो तुरन्त ही चन्दा भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करायें।

नोट :—जो वाचनालय तीन रुपये भी देने में असमर्थ हैं वे शीघ्र ही आवेदन करें, उनको निःशुल्क 'अणुव्रत' भिजवाने का भी सामर्थ्यानुसार प्रबन्ध हो सकेगा।

व्यवस्थापक—'अणुव्रत' पाक्षिक

३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१
卐
वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १५ अप्रैल, १९५६ [अंक १३

दूसरे के सुखों को लूटनेवाला भला कैसे सुखी बन सकता है ?

क्रान्ति का स्वर

संसार में हर मानव चाहता है कि उसका जीवन सुखमय बने, दुख से सदा परे रहे पर हम देखते हैं एक मानव अपने सुखके लिये, सुविधा के लिये, स्वार्थ के लिये दूसरे का गला घोंटते जरा भी नहीं हिचकिचाता। वह भूल क्यों जाता है कि दूसरा भी तो उसकी तरह सुख की चाह रखता है। दूसरे के सुखों को लूटनेवाला उन्हें उत्पीड़ित करनेवाला भला कैसे सुखी बन सकता है ? उससे पीड़ा पाये व्यक्ति क्या उसके शत्रु नहीं बन जायेंगे ? वे भी तो उसके आक्रमण से अपने सुखों के बचाव के लिये भयावह बन सकते हैं फलतः ऐसा वातावरण तैयार होगा, जिसमें नृशंस, निर्दय, क्रूर और क्लिष्ट भावों की भरमार होगी। जिसमें एक दूसरे के खून का प्यासा होगा। क्या ऐसा जीवन भी कोई जीवन है ?

सुख और शान्ति चाहनेवाले मानव के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने जीवन में संयम को अधिकाधिक स्थान दे। संयम का अभाव जीवन के लिये जितना अलाभकारी सिद्ध हुआ है उतना और कोई दुर्गुण नहीं। संयम में रमे रहनेवाले व्यक्ति के जीवन में विकार नहीं समाते। संयम जीवन को बुराइयों से सुरक्षित रखने का अमोघ साधन है। सरोवर के चारों और मेड़ (दिवाल) होती है, उसका कार्य है सरोवर के भीतर स्थित जल को बचाये रखना है, यदि वह न हो तो जल की क्या गति हो जाये यह स्पष्ट है। सारा जल विखर जायेगा। संयम जीवन को, जीवन तत्व को, सुरक्षित रखने के लिये मेड़ (दिवाल) जैसा है। असंयत मनोवृत्ति का ही परिणाम आज हम देख रहे हैं—लोग न्याय, अन्याय, औचित्य, अनौचित्य, सत्य, झूठ किसी की भी परवाह न करते हुए संग्रह और शोषण में जी जान से लगे हैं। ऐसा दीखता है, मानो जीवन का सर्वाधिक श्रेयस्कर लक्ष्य यही है। पर वे भूलते हैं, यह लक्ष्य नहीं है, अलक्ष्य है। यह ग्राह्य नहीं है, त्याज्य है। यह श्रेय नहीं है अश्रेय है। यह शान्ति नहीं, जीवन को अशान्ति की ओर ले जाता है। इतिहास इस बात का साक्षी है—अनेक ऐसे लोग हुए जिन्होंने येनकेन प्रकारेण प्रभुता और सम्पदा उपार्जित करने में अपने आप को जोड़ दिया था। पर लोगों ने देखा, जब वे मरने लगे तो अशान्ति, दुःख, क्लेश और क्रन्दन के साथ मरे। क्योंकि संग्रह और शोषण में शान्ति का बीज नहीं है। जब तक मानव अपने आपको संयम की ओर नहीं मोडेगा, पिशाचिनी की तरह मुंह बायें दौड़ी आ रही विषम समस्यायें उसका पीछा नहीं छोडेंगी।

संयम का अर्थ है अपने आप पर नियंत्रण, अपनी इच्छाओं पर अपना काबू। यद्यपि यह नियंत्रण है पर सही माने में सच्ची स्वतंत्रता भी यही है संयम के लिये अपने आप में दृढ़ता और आत्मबल पैदा करना होगा। यह साधारण कार्य नहीं है पर आत्मबल को जगाने वाले के लिये असाधारण भी क्या है। सामने अनगिनत भोग्य पदार्थ पडे हैं, जिह्वा पर वस रखनेवाला उनकी सुलभता के बावजूद भी अपने को संयत रखता है। संसार के भोगोपभोग सामने हाथ बांधे उपस्थित हैं पर संयम के आनन्द में उल्लसित बना मानव उनसे आकर्षित नहीं होता। अभाव वश बचे रहना और इन्द्रिय नियंत्रणपूर्वक बचे रहना दोनों में यही तो फरक है। जिनको भोग उपलब्ध नहीं हैं, यदि मिल जाये तो वे भूखे भेड़िये की तरह टूट पड़ें, इस प्रकार अभाव और अवशता वश भोग से बचने वाला कोई त्यागी थोड़ा ही कहा जा सकता है।

—आचार्य तुलसी

विचारप्रधान लेख—

आर्थिक बोझ से अनैतिकता की ओर

सामाजिक परम्परा जितनी जटिल होती है, अर्थ का बोझ जितना अधिक होता है उतनी ही कठिनाइयां जीवन में भर जाती हैं। अनैतिकता बढ़ने में लालसा मुख्य कारण है। परिस्थितियों से वह उबल उठती है। वे सामाजिक धारणाओं या मान्यताओं से निर्मित होती हैं। सामाजिक धारणाओं को बदले बिना परिस्थितियां नहीं बदलतीं। परिस्थितियों के बदले बिना लालसा की उग्रता नहीं मिटती। लालसा की तीव्रता रहते हुए अनैतिकता का अन्त नहीं होता। समाज के रीति-रिवाज और परम्परायें बड़ी खर्चीली होती हैं। तब ज्यों-त्यों धन कमाने की बात प्रधान बन आती है। इसलिये अनैतिकता को उखाड़ फेंकने के लिये सामाजिक धारणाओं को बदलना आवश्यक है। वे बदलती हैं तब अर्थ-संग्रह की वृत्ति अपने आप शिथिल बन जाती है।

दहेज, मृत्यु-भोज, विवाह-भोज, कन्या-वर-विक्रय आदि परम्परायें रूढ़ हो चुकी हैं, परम्परा का जन्म कभी किसी विशेष प्रसंग से होता है, फिर वह चल पड़ती है। आदिकाल में इच्छा ग्राह्य होती है और मध्यकाल में अनिवार्य बन जाती है। यह अनिवार्यता ही रोग या बुराई का स्रोत है।

साधारण स्थितिवाले लोगों में अनिवार्य परम्पराओं को पूरा करने की क्षमता नहीं होती। किन्तु उन्हें पूर्ण किये बिना गति भी नहीं, इसलिये ज्यों-त्यों वैसा ही करना पड़ता है। यहीं से अनैतिकता की ओर पैर चल पड़ते हैं।

किसी की मान्यता है—ऐसा किये बिना परलोक नहीं सुधरता, कोई मानता है—प्रतिष्ठा को बट्टा लगता है। कोई स्पर्धा लिये चलता है—अमुक ने ऐसा किया तो मैं उससे कम कैसे रहूँ ? कोई शक्ति से आगे पैर फैलाना न चाहे, उसे दूसरे लोग शिकार बना लेते हैं। समाज की आज की मनोदशा पर वह पुराना अनुभव सही हो रहा है। "केचिद् ज्ञानतो नष्टाः, केचिन्नष्टाः प्रमादतः। केचिज् ज्ञानावलेपेन, केचिन्नष्टैश्च नाशिताः।"

कई अज्ञान से नष्ट होते हैं, कई प्रमाद से, कई ज्ञान के अहंकार से और कई खराब हुये लोगों द्वारा नष्ट होते हैं। विनाश का स्रोत बहुमुखी है।

अणुव्रत-दर्शन

१२

आय और व्यय अर्थ के सहज रूप हैं। आय के अनुपात से व्यय करनेमें अधिक खतरा नहीं। व्यय के अनुपात से आय बढ़ाने की बात में गम्भीर खतरा है। आय के साधनोंको दोषपूर्ण किये बिना व्यय बढ़ाने की बात नहीं होती। अनैतिकता से वही बच सकता है जो आय के स्रोतों पर नियन्त्रण करने के साथ २ व्यय पर भी नियन्त्रण रखे। व्यय पर नियंत्रण होता है तो आडम्बर, दिखावा, फिजूल खर्चियां और स्पर्धायें अपने आप टूट जाती हैं। इन्हें उखाड़ फेंकने का मतलब है—संग्रह की रीढ़ तोड़ना।

बड़प्पन की मान्यता, भोग वृत्ति और आलस्य ये भी अर्थ गौरव के हेतु हैं। अर्थ गौरव की भावना जहां है, वहां अनीति का स्रोत नहीं सूखता।

अधिक खाना, अधिक मात्रा में खाना, अधिक वस्तुएं खाना, आवश्यकता की पूर्ति नहीं है। यह भोग वृत्ति का उग्रभाव है।

दूसरों को सुलभ न हो वैसे घर बनाना, वैसे वस्त्र पहनना, वैसी वस्तुएं खाना, वैसी वस्तुओं का उपयोग करना—बड़प्पन की मान्यता है, दूसरों से काम करवाने की वृत्ति में आलस्य और बड़प्पन की मान्यता है। इन दोनों के बीज छिपे हुए हैं। इन सबकी पूर्ति का हेतु अधिक संग्रह है। अधिक संग्रह का हेतु अनैतिकता है। उससे बचनेके लिये जीवन को अर्थ भार से दबा देनेवाली सामाजिक मान्यता, बड़प्पन की मान्यता, भोग वृत्ति और परावलम्बन से किनारा लेना होगा।

अणुव्रत-आन्दोलन जीवन का संयम-दर्शन है। जीवन चलाने की जो प्रक्रियायें हैं उनमें असंयम की मात्रा का तरतम भाव हो सकता है, हिंसा और परिग्रह की कमी-बेसी हो सकती है। संयम की ओर जाने की दुर्लभता या सुलभता हो सकती है, आसक्ति की न्यूनाधिकता हो सकती है पर उनमें स्वयंभूत संयमशीलता या स्वरूपतः संयममयता नहीं होती है। अणुव्रत स्वयंभूत संयम है। इसलिये यह जीवन चलाने की प्रक्रिया नहीं है, यह जीवन को संयत करने की साधना है। जीवन निर्वाह की दिशा बड़ी हिंसा से अल्प हिंसा, बहु परिग्रहसे अल्प परिग्रह, अति आसक्ति से अल्प आसक्ति की ओर चलती है। वह संयम प्राप्ति की सुलभता का हेतु है। जीवन प्रक्रिया को सरल बनाये बिना संयम आता नहीं और आ जाये वह टिकता नहीं। इसलिये अणुव्रती जीवन-निर्वाह की प्रक्रिया को भारी बनाये नहीं रख सकता

[मुनिश्री नथमलजी]

[१५ अप्रैल, १९५६

प्राचीन भारत का मैत्री एवं शांति का सन्देश

[श्री कृष्णदत्त वाजपेयी]

[आज के तथाकथित प्रगतिशील विश्व में जबकि व्यापार व वाणिज्य में ही नहीं अपितु धार्मिक क्षेत्र में भी प्रतियोगिता का बोलबाला है। चारों ओर अपने प्रचार के लिये आपाधापी मची हुई है और जहाँ साधन-रूप में वाणी के साथ-साथ तलवार का आश्रय लेने में भी कोई झिझक मालूम नहीं होती वहाँ पाठक प्राचीन भारत के मैत्री एवं शान्ति के पुनीत सन्देश को प्राप्त करने की उत्कंठा से वाजपेयीजी के प्रस्तुत खोजपूर्ण लेख को पढ़ने के लिये विवश हो जाता है। —सम्पादक]

अपने पड़ोस के कई देशों के साथ भारत के यातायात सम्बन्ध बहुत पुराने हैं। बाहर जाने के लिये स्थल और जल-मार्गों को खोजने तथा उन्हें चालू करने का काम बड़ा टेढ़ा था, जिसे भारत के प्राचीन लोगों ने पूरा किया। विदेशों के साथ सम्बन्ध स्थापितकर भारतीयों ने देशी शिल्प और वाणिज्य की वृद्धि में महत्वपूर्ण योग दिया। साथ ही उन देशों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध भी स्थापित हुए। इसका फल भारत के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ। अपनी सांस्कृतिक महत्ता और आर्थिक समृद्धि के आधार पर भारत के प्राचीन सभ्य संसार में अपना प्रमुख स्थान बना लिया, जो शताब्दियों तक कायम रहा। इसका प्रधान श्रेय इस देश के विद्वान् प्रचारकों, अध्यवसायी शिल्पियों एवं वणिकों को है।

यहां संक्षेप में उन कारणों की ओर संकेत कर देना प्रासङ्गिक होगा, जिनसे प्रेरित होकर भारत के लोगों ने अपने देश की सीमाओं के बाहर पदार्पण किया और धीरे-धीरे विदेशों में अपनी अनेक बस्तियां बसाई। घर छोड़कर दूर जाने का प्रधान कारण दूर देश के स्वर्ण का आकर्षण था। दक्षिण-पूर्वी प्रायद्वीप एवं सुदूर द्वीपों में अपार सम्पत्ति होने की कहानियां भारतीयों ने सुन रखी थीं। स्वभावतः उसे प्राप्त करने की उमंग उनमें उत्पन्न हुई। नवीं-दसवीं शताब्दियों में अरबवालों को भी देशान्तरों की सम्पत्ति का आकर्षण हुआ और उसके लगभग ६०० वर्ष बाद युरोपवालों में भी अज्ञात जगत् में जाने एवं वहां की सम्पत्ति से घर भरने की लालसा जागृत हुई।

भारतीयों के प्रवास का दूसरा मुख्य कारण अपनी संस्कृति का प्रचार था। मनुस्मृति, महाभारत आदि ग्रन्थों में इस प्रवृत्ति की ओर स्पष्ट संकेत मिलते हैं। प्राचीन भारत के धर्म-प्रचारकों ने संसार के अनेक भागों में अपने धर्म, भाषा और रीति-रिवाजों का प्रचार किया परन्तु इस प्रचार-कार्य में उन्होंने तलवार का जोर नहीं लगाया, बल्कि सत्य और अहिंसा के सहारे मानवमात्र के प्रति प्रेम एवं सद्भावना को ही उन्होंने अपना आदर्श बनाया।

तीसरा कारण था—नये स्थानों को ढूंढ़कर उन्हें विजित करने की महात्वाकांक्षा। भारत के क्षत्रिय विशेष रूप से अपनी इस महात्वाकांक्षा के लिये प्रसिद्ध रहे हैं। प्राचीन महाकाव्यों एवं पुराणों में कितने ही शासकों द्वारा अपने लड़कों, भाइयों या भ्रातृ-पुत्रों को राज्य से निष्कासित करने के उल्लेख मिलते हैं। इनमें से महात्वाकांक्षी व्यक्ति दूर देशों में जाकर अपने शौर्य का प्रदर्शन करते थे। फलस्वरूप कुछ लोग प्रभूत सम्पत्ति एवं भूमि के स्वामी बन जाते थे। वे लोग विजित देश के राजवंश या अन्य कुलों से वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लेते और धीरे-धीरे वहां नई शासन-व्यवस्था का सूत्रपात करते थे।

प्रवास के अन्य कारणों में जनसंख्या की वृद्धि एवं विदेशी आक्रमण भी कहे जा सकते हैं। कुषाण काल के आरम्भ से भारतीय जनता का एक वर्ग जनसंख्या की वृद्धि के कारण दक्षिण-पूर्वी देशों की ओर जाने लगा था। इसी प्रकार हूणों, गुर्जरों एवं अरबों के आक्रमण के कारण भी मध्यभारत, गुजरात तथा सौराष्ट्र से बहुत लोग अपने आवास-स्थलों से निकलकर पूर्व की ओर चले गये और वहां जाकर स्थायी रूपसे बस गये।

प्राचीन काल में यातायात की अनेक कठिनाइयां थीं। उस समय आजकल की-सी सड़कें नहीं थीं। व्यापारियों आदि को दुर्गम पहाड़ी एवं जङ्गली रास्तों से होकर गुजरना पड़ता था। अनेक स्थानों में रास्ते बड़े टेढ़े-मेढ़े तथा ऊबड़-खाबड़ होते थे। सूर्य, चन्द्र और तारों की गति द्वारा इन रास्तों में दिशा का ज्ञान प्राप्त होता था। अँधेरी रात में, जब आकाश मेघाच्छन्न होता, यात्रा तय करना बड़ा कठिन हो जाता था। मार्ग में डाकुओं तथा हिंसक पशुओं का भी भय रहता था।

यद्यपि यात्री लोग प्रायः इन सभी आपदाओं से बचने के लिए आवश्यक संबलों से युक्त रहते थे, तो भी यात्रियों में दुर्घटनाएँ हो ही जाया करती थीं और कभी-कभी यात्रियों को जान-माल से हाथ धोना पड़ता था। जलमार्ग की यात्राएँ भी आपत्तियों से रहित न थीं। माँझी लोग प्रायः वायु के अनुकूल दिशा में बहने पर ही अपने जहाजों को चलाते थे। समुद्रों में तूफानों, चट्टानों एवं समुद्री डाकुओं का भय भी सदा बना रहता था।

परन्तु इन सब कठिनाइयों से प्राचीन भारतीय विचलित नहीं हुए। उन्होंने अपने जीवन का उपयोग नयी भूमियों के अन्वेषण एवं नवीन बस्तियों के बसाने में किया। ईसवी सन् के आरम्भ के पहले ही इन भू-स्थापकों ने दक्षिण-पूर्वी जगत् में कई उप-निवेशों की स्थापना करली। तब से लेकर भारतीयों की यह प्रवृत्ति कई शताब्दियों बाद तक जारी रही। प्रसिद्ध यूनानी लेखक टालमी के वर्णनों से प्रकट होता है कि उसके समय (ई० दूसरी शताब्दी) में बङ्गाल के ताम्रलिप्ति नगर से लेकर तौंकिन की खाड़ी तक अनेक भारतीय बस्तियां बसी हुई थीं। इनमें से अधिकांश के नाम भारतीय प्रान्तों तथा नगरों के ही अनुरूप रखे गये थे। आधुनिक कम्बोडिया का प्राचीन नाम 'कम्बुज' हिन्दचीन के लाओस प्रान्त का नाम 'मालव' उसके पूर्व का 'दशार्ण' तथा हिन्दचीन के पूर्वी छोर की बस्ती का, जिसे अनाम कहते हैं, चम्पा रखा गया। उसी प्रकार आधुनिक युइनान प्रान्त का नाम 'गंधार' रखा गया। ई० तीसरी शताब्दी के अन्त में सुमत्रा में 'श्रीविजय' नामक एक महत्वपूर्ण राज्य की स्थापना हुई। उसके कुछ पूर्व हिन्दचीन के दक्षिणी भाग में 'कौठार' तथा "पाडुरंग" नाम के दो उपनिवेश स्थापित किये गये।

उक्त दक्षिण-पूर्वी देशों में अनेक नगरो के नाम भी भारतीय रखे गये। उदाहरणार्थ कुछ नगरों के नाम थे अयोध्या, वैशाली, मदुरा (मथुरा), श्रीक्षेत्र, तक्षशिला, कुसुमनगर, रामावती, धान्यवती, द्वारवती तथा विक्रमपुर। हिन्दचीन तथा हिन्देशिया में बहनेवाली नदियों के नाम भी चन्द्रभागा, गौमती आदि मिलते हैं। भारतीय रीति-रिवाज, रहन-सहन, लिपि, भाषा, कला, आदि का इन देशों में प्रसार हो गया। वहां के आदिम निवासियों के साथ भारत के लोग खान-पान तथा वैवाहिक सम्बन्ध भी करने लगे। उन पर भार-

निश्चय

[श्रीउपेन्द्र]

कर लिया निश्चय अभी मैंने यही
मैं न हारूँगा किसी भी शक्ति से!

शूल का अस्तित्व चकनाचूर है
पाँव चलने के लिये मजबूर है
थक चलीं उठकर समय की आँधियाँ
और फिर अब तो अँधेरा दूर है
मिल चुका आकाश का सम्बल मुझे
जीत लूंगा मैं धरा को भक्ति से!

वासना की दुर्विजित अमराइयाँ
पाप के पाताल की गहराइयाँ
अब मुझे ये स्वप्न छल सकते नहीं
जीत लीं मैंने समय की खाइयाँ
छिप सकेगा अब नहीं मेरा हृदय
द्वेष से या अन्ध मोहासक्ति से!

न्याय से चलता हमेशा राज है
सृष्टि का आधार एक समाज है
वज्र दन्तों की रगड़ के बीच भी
प्यार की रुकती नहीं आवाज है
नाश कर दूँगा कपट छल द्वेष का
प्राणमय अपनी सरल अभिव्यक्तिसे!

जो समझता विश्व को परिवार है
स्वर्गमय उसके लिये संसार है
भावना उसकी मलय प्लावित पवन
शब्द जैसे फूल का शृङ्गार है
धर्म तो कहता यही सौ बार है
व्यक्ति का सम्बन्ध है हर व्यक्ति से!

तीयों की इस उदार सामाजिक नीति का आशातीत प्रभाव पड़ा। शीघ्र ही ये प्रदेश भारतीय संस्कृति के रङ्ग में रङ्ग गये और उनकी गणना वृहत्तर भारत के अन्तर्गत की जाने लगी।

दक्षिण-पूर्व में अन्वेषण एवं भूस्थापन के लिए जानेवालों में कलिंग या उड़ीसा, बंगाल, मद्रास प्रांत के पूर्वी तट तथा गुजरात के निवासियों का प्रमुख भाग था। इन प्रवासियों ने स्थल तथा जल दोनों के द्वारा हिंदचीन प्रायद्वीप के विभिन्न भागों में तथा उसके आगे चीन तक पहुंचने की राह खोज निकाली। हिन्देशिया के द्वीपों में मलाया के जलडमरू मध्य से वे जहाजों द्वारा पहुंचते थे। स्थलवाला मार्ग पूर्वी बंगाल से मणिपुर और प्रयाग होकर इरावती, सालवीन तथा मेकांग नदियों की उपरली दूनों में होता हुआ हिन्दचीन को जाता था। उत्तरी बर्मा से एक मार्ग सीधे दक्षिण—चीन तक जाता थाता था। समुद्र मार्ग कई थे—कुछ लोग तम्रलिप्ति से बङ्गाल के किनारे-किनारे दक्षिण बर्मा पहुंचते। फिर वहां से हिन्द चीन और हिंदेशिया के विभिन्न भागों में पहुंचते थे। कुछ जहाज बंगाल के तक्कौल बन्दरगाह से सीधे पूर्वी द्वीपों को जाते थे। तक्कौल से श्याम और कुंबुज को भी व्यापारिक मार्ग जाते थे। कलिंगतट पर गोपालपुर के पास पालुरा नामक स्थान में तथा आधुनिक मछलीपट्टं के समीप कई बड़े पोताश्रय थे, जिनसे दक्षिण-पूर्वी जगत का बड़े रूप में यातायात होता था। इसी प्रकार पश्चिमी तट पर स्थित मरुकच्छ तथा शूर्पारक बन्दरगाहों से जहाज हिंदचीन तथा हिन्देशिया को जाते। पूर्वोक्त स्थल मार्ग बीहड़ जंगलों आदि के बीच से गुजरता था। अतः उससे होकर प्रायः बड़े काफले ही जाते थे। इस काल में जलवाला मार्ग अपेक्षाकृत आसान होने के कारण अधिक चालू हो गया था।

मध्यकालीन कथा-साहित्य में भारतीय वणिकों के द्वीपांतरों में जाने के मनोरंजक उपाख्यान मिलते हैं। वृहत्कथामंजरी, तिलक मंजरी, कथासारित्सागरआदि ग्रन्थों में ऐसी कितनी ही कथाएं संगृहीत हैं जिनसे भारत के विभिन्न भागों से जलमार्ग द्वारा दूर देशों में जानेवाले व्यापारियों के साहस और लगन का पता चला है। प्राकृत भाषा में लिखे हुए कथा साहित्य के ग्रन्थ 'समराइच्चकहा' नामक ग्रन्थ में विदेशी व्यापार सम्बन्धी कई—मनोहर कथाएं हैं। एक कथा में आया है कि ताम्रलिप्त या तमलुक का अरुणदेव नामक व्यापारी यानपात्र अर्थात् जहाज में माल लादकर कटाह द्वीप के लिए रवाना हुआ। दुर्भाग्य से समुद्र के बीच उसका जहाज डूब गया। अरुणदेव के साथ एक बहता हुआ तख्त पड़ गया, जिसके सहारे तैरता हुआ वह तट पर जा लगा और कुछ समय के बाद पाटलिपुत्र नगर पहुंचा।

समुद्र यात्रा की अनेक कठिनाइयों के बावजूद मध्यकाल के उत्साही भारतीय वणिक दूर द्वीपों की यात्राएं करने से न हिचकते थे। वे अपने साथ अन्य साहसी लोगों को भी ले जाया करते थे। जिन लोगों के लिये मार्ग के लिये अपेक्षित पाथेय न होता उन्हें धनी बनिये मार्गव्यय प्रदान करते थे। कभी-कभी वणिक लोग समुद्र-यात्रियों में स्त्रियों को भी साथ ले जाते थे। लगभग बारहवीं शती तक हिंदचीन तथा हिन्देशिया में अनेक भारतीय राज्य कायम रहे। इससे भारत को पूर्वी एशिया में अपने आर्थिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध दृढ़ करने में बड़ी सुविधा मिली।

गुप्तयुग में दक्षिण-पूर्वी उपनिवेशों के माध्यम से भारत के व्यापारिक संपर्क बहुत उन्नत हुए। हिन्दू व्यापारियों के अतिरिक्त गुजरात, सौराष्ट्र और मालवा से शक, हूण तथा गुर्जर लोग भी पूर्व की ओर गये। इसमें से अधिकांश जावा तथा सुमित्रा में बस गये। इन लोगों ने भारतीय विदेशी व्यापार के प्रसार में योग दिया। चम्पा के भारतीय राज्य की शक्ति का बढ़ना इस काल की एक उल्लेखनीय बात थी। इस राज्य के द्वारा भारत को पूर्वी एवं दक्षिण-पूर्वी जगत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ाने में बड़ी सुविधा प्राप्त हुई।

पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी देशों की तरह मध्य एशिया के साथ भी भारत का यातायात सम्बन्ध बहुत समय तक स्थापित रहा। मध्य एशिया के प्रसिद्ध खोतन नगर से स्थल मार्ग यारकंद को जाता था। वहां से काशगर होकर चीन को रास्ता जाता। इस मार्ग से होकर बड़ी संख्या में भारतीय आते-जाते थे। कुषाण और गुप्तकाल में मध्य एशिया में अनेक भारतीय उपनिवेश स्थापित हो गये थे, जिनके शैलदेश (काशगर) कोचकुक, यारकंद, तोतन्न (खोतन), कल्मद (शान-शान), भरुक (तुरफान) कूची (कूचार) तथा अग्निदेव (कराशहर) मिलते हैं। इनमें से दक्षिण में खोतन्न तथा उत्तर में कूची प्रदेश बौद्ध धर्म के प्रधान केन्द्र थे और इन्हीं में से होकर भारतीय सभ्यता मध्य एशिया के अन्य प्रदेशों में तथा चीन में फैली थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारत एक दीर्घकाल तक संसार में अपना गौरवपूर्ण स्थान बनाये रहा। यहां के धर्म, भाषा, साहित्य और आचार-विचार का व्यापक प्रभाव सुदूर प्रदेशों में पड़ा। भारतीय विजेताओं में विदेशों में जो उपनिवेश स्थापित किये उनके

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

संगठन के चौराहे से

मन्त्री—केन्द्रीय अणुव्रत समिति, कलकत्ता

अणुव्रत समिति के साथी कार्यकर्त्ता श्री प्रतापसिंह ब्रद के साथ विहार और नेपाल के कतिपय नगरों में 'अणुव्रत' के प्रचारार्थ जाने का सुयोग मिला। इस ओर प्रवास का हमारा यह प्रथम अवसर था। समयाभाव के कारण हम पूरा समय नहीं दे सके और न अधिक स्थानों का लाभ ले सके। लेकिन जहाँ भी गये, वहाँ के साथी कार्यकर्त्ताओं और सहयोगी बन्धुओं का हार्दिक उत्साह व सहयोग पाकर ऐसा लगा कि समाज की अपरिमित शक्तियाँ न जाने कहाँ-कहाँ बिखरी पड़ी हैं और इनकी संगठित शृङ्खला से क्या नहीं किया जा सकता? यहाँ हम अपने प्रवास की संक्षिप्त झांकी प्रस्तुत कर रहे हैं।

साहिबगंज

यह विहार का एक अच्छा कस्बा है। किराना की मंडी होने से अनेक मारवाड़ी बन्धु यहाँ बस गये हैं। डूंगरगढ़ के श्री भीखमचन्द व श्री पूनमचन्द पुगलिया के सहयोग से यहाँ अनेक व्यक्ति अणुव्रत के ग्राहक बने और कतिपय आजीवन सदस्य बने। आजीवन सदस्यों में श्री रावतमल बीजराज पुगलिया, श्री थानमल मनोहरलाल, श्री बोथरा ट्रेडिंग कम्पनी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

यहां के सार्वजनिक पुस्तकालय को देखकर भी प्रसन्नता हुई। राजलदेसर के उत्साही साथी श्री उत्तमचन्द घोषल के अनायास यहां मिल जाने से काम में काफी सहायता मिली।

विराटनगर

यह नेपाल राज्य का दूसरा बड़ा शहर है। लेकिन यहाँ की सड़कें, बस-व्यवस्था व सार्वजनिक इमारतों को देखकर ऐसा लगा कि भारत की किसी एक तहसील से भी यह अधिक पिछड़ा हुआ है। लगभग तीस-पेंतीस हजार की आबादी है। बसावट में सीधा लम्बा चला गया है।

यहां के सुप्रसिद्ध मारवाड़ी व्यवसायी श्री रामलाल हंसराज गोलछा के अतिथि बने। उनकी रघुपति जुट-मिल्स नेपाल की एक प्रसिद्ध मिल है। हृदय के अत्यन्त उदार व्यक्ति हैं और समस्त राज्य में अपना एक विश्वसनीय प्रभाव रखते हैं।

साथी श्री हंसराज, श्री फूसाराम व्यास, श्री मोहनलाल पटावरी, श्री रायचन्द माल, श्री दुलीचन्द जैन व श्री हनुमानलाल पुच्चा के सहयोग से यहां 'अणुव्रत' के लगभग ४५ ग्राहक बने। इन साथियों की टोली 'अणुव्रत' के मिशन को लेकर जहां भी निकल पड़ती, लोग उत्साह के साथ स्वागत करते और खुशी-खुशी ग्राहकों में अपना नाम देते। युवक साथियों का यह नगर-व्यापी प्रभाव देखकर हमें अपने समाज की शक्ति को पहचानने का अवसर मिला। मालूम हुआ कि यहां कुछ वर्षों से 'अहिंसा-दिवस' व महावीर-जयन्ती बड़े उत्साह से मनाई जाती है और इसका श्रेय अधिकतम इन्हीं साथियों को है।

बीकानेर के सुशिक्षित व उत्साही अणुव्रती कार्यकर्त्ता श्री जेठमल सेठिया का भी यहां अपना व्यवसाय है। बीकानेर 'अणुव्रत समिति' के मन्त्री भी हैं। इनसे मिलकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। हमने उनसे नेपाल राज्य में 'अणुव्रत समिति' के प्रान्तीय संयोजक का दायित्व लेने के लिए निवेदन किया। यह और भी हर्ष की बात है कि उन्होंने अपनी स्वीकृति के साथ यथासम्भव कार्य का विश्वास दिलाया है।

'अणुव्रत-आन्दोलन' को लेकर स्थानीय कार्यकर्त्ताओं की एक विचार-गोष्ठि हुई और आन्दोलन-सम्बन्धी सामयिक भाषण भी हुआ।

नेपाल राज्य राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता व भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री श्री रिग्मी से भी एक मुलाकात हुई। उस समय उनकी कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। उन्होंने अणुव्रत-आन्दोलन की पृष्ठ-भूमि को बहुत पसन्द की और नेपाल राज्य में अधिकाधिक सहयोग की भावना प्रदर्शित की। श्री हंसराज गोलेछा, श्री भँवरलाल जेठमल अणुव्रत के आजीवन सदस्य बनें।

फारबिसगंज

यह विहार राज्य का एक अच्छा व्यवसायी केन्द्र है। कोशी बांध, जिसका निर्माण कार्य जारी है, यहाँ से थोड़ा ही दूर है। श्री कन्हैयालाल रांका, श्री पुनमचन्द, श्री गजराज डागा और श्री नथमल डागा के सहयोग से 'अणुव्रत' के यहां लगभग ३५ से अधिक ग्राहक बने और ३ आजीवन सदस्य बने। उनमें श्री अमोलकचन्द नथमल, श्री कन्हैयालाल माणकचन्द गोलेछा, श्री जयचन्दलाल बाबूलाल का नाम प्रमुख है। श्री गजराज डागा के पैर में चोट होते हुए भी वह बराबर हमारे साथ फिरते रहे। उनका यहां के सार्वजनिक क्षेत्र में अच्छा प्रभाव है।

समय कम होने से हम सुबह जाकर शाम को ही लौट आये। अन्यथा यहां अधिक कार्य की आशा थी। राजलदेशर के हमारे साथी श्री शुभकरण रांका भी यहां मिल गये, जो समाज के एक उत्साही साहित्य-सुरुचि के युवक हैं।

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

एक मनोवैज्ञानिक लेख—

सत्संगति का प्रभाव

[प्रो० श्री लालजीराम शुक्ल]

[जीवन निर्माणमें संगति का महत्वपूर्ण योग रहता है। और फिर सौभाग्य से यदि किसी को सद्संग की प्राप्ति हो जाय तो उसका जीवन ही निखर उठे। विद्वान् और अनुभवी लेखक ने इसकी व्याख्या मनोवैज्ञानिक आधार पर की है जो सचमुच ही पठनीय और मननीय है। —सम्पादक]

हम सर्वदा विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के सम्पर्क में आते ही रहते हैं। वे हमारे मस्तिष्क को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार अपने परिवेश को निरन्तर प्रभावित करता रहता है, अपने विचार एवं अनुभवों को अपने समीपवर्ती लोगों के मस्तिष्क में पहुँचाता रहता है। इस प्रकार हम सिर्फ उनके कथन अथवा कार्य से ही प्रभावित नहीं होते, अपितु उनका प्रच्छन्न उद्देश्य भी हमारे मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालता है।

सज्जन व्यक्ति अपने आन्तरिक सद्गुणों के संदेश औरों तक पहुँचाता है। सज्जन व्यक्ति सद्भावों का भण्डार है, अमृत का आगार है अपनी वाणी एवं क्रियाओं के द्वारा वह उन्हीं शक्तियों को प्रकाशित करता है, जिनके ग्रहण से विश्व को नया जीवन मिलता है, मानव को अमरता प्राप्त होती है। सतोगुण से परिपूरित होने के कारण ऐसे व्यक्ति समाज को सुख, शान्ति, स्नेह एवं कल्याण के पथ की ओर ले जाने के लिए प्रयत्न करते हैं। इनके हृदय में सदा मानव-कल्याण की भावनाएं ही उठा करती हैं, जिनका प्रकाशन इनके वचन अथवा कार्य द्वारा सतत होता ही रहता है। ऐसे व्यक्ति अपने विचारों एवं कार्यों से अपने वातावरण को प्रभावित करते हैं, अपने संसर्ग में आनेवाले लोगों पर अपने गुणों का आरोपण कर उन्हें आत्म-मय बना लेते हैं। यही कारण है कि संत-समाज में सत्संगति को इतनी महत्ता प्राप्त है।

दूसरी ओर दुर्जनों की निन्दा इसलिए होती है, कि वे दुर्वृत्तियों के पोषक होते हैं, उनके विचारों के प्रकाशन (चाहे वाणी-रूप से हो अथवा कार्य-रूप से) से समाज का अनिष्ट होता है। किसी भी व्यक्ति की शक्ति उसके विचारों के प्रकाशन से ही बढ़ती है, और विचारों के अभिव्यक्तिकरण द्वारा ही वह अन्यान्य लोगों को प्रभावित कर उनके विचारों पर अपना आधिपत्य जमा लेता है। इस प्रकार एक व्यक्ति के मस्तिष्क में उद्बुध बीज-रूप क्षुद्र विचार आत्म-प्रकाशन के द्वारा क्रमशः विराट् सर्व-शक्तिमान होकर संसार को चकित कर देता है विश्व का भाग्य-विधाता हो जाता है। कुजनों की संगति धर्म एवं कानून की दृष्टि से इसीलिए वर्जित है, कि समाज यह नहीं चाहता कि उनके विचारों का प्रकाशन हो। मनुष्य को सज्जन अथवा दुर्जन बनानेवाला उसका मनोभाव ही है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए मनुष्य के हृदयमें जब ऐसे कुविचार आने लगते हैं, जिनके पूर्तिकरण से समाज की हानि होती है, तब समाज ऐसे व्यक्तियों को दूध की मक्खी की तरह अपनी सीमा से दूर हटा देने में ही अपना कुशल समझता है। समाज का निर्माण बहुतों के हित एवं सुख के लिए हुआ है। समाज यही चाहता है कि सभी व्यक्ति बहुतों की भलाई के लिए अपनी वैयक्तिक-इच्छाओं का बलिदान करना सीखें। समष्टि-हित के लिए कार्य करनेवालों का उद्देश्य एक ही होता है, जिससे उनमें सहयोग एवं मैत्री-भावना का विकास होता है। स्नेह एवं प्रेम की सुधामयी सरिताएं बहु-जन-हिताय के मार्गमें ही प्रवाहित होती हैं।

परन्तु जब कोई व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति का प्रयास करता है, तो समाज के साथ उसका संघर्ष होता है, जिसके परिणाम-स्वरूप उक्त व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत होना पड़ता है। कानून कारादण्ड अथवा फांसी की सजा देकर उसे समाज से दूर कर देता है, अथवा उसे पापी की संज्ञा दे धर्म-शास्त्र समाज को ही उसके सम्पर्क से हटा लेता है।

परन्तु विचारों के संक्रामक रोग से मुक्ति पाने के लिए उस रोग के रोगी को ही इस संसार से मुक्त कर देना उसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं है, जिस प्रकार घाव की वेदना से मुक्ति पाने के लिये अंगुली को काट फेंकना। रोग का उपचार होना चाहिए, न कि रोगी का संहार। प्रत्येक व्यक्ति समाज का आवश्यक अंग है, और अपूर्ण अङ्गवाला व्यक्ति चाहे कितना भी स्वस्थ क्यों न हो, कदापि सुन्दर नहीं कहला सकता।

अब प्रश्न उठता है कि क्या दुर्जनों का भी सुधार हो सकता है? तो उसके उत्तर में निवेदन यह है, कि हां, हो सकता है—बड़ी ही सुगमता से हो सकता है। कोई व्यक्ति दुष्कर्म (समाज-विरोधी कार्य) इसलिए करता है कि उस कार्य के करने की इच्छाएं उसके

मन में उठा करती हैं, उसके मन में उस प्रकार के विचार ही आया करते हैं। अतएव इच्छाओं में परिवर्तन करना ही व्यक्ति के जीवन में परिवर्तन लाना है। कानून के अनुसार दंड देने अथवा चोर बदमाश कहकर उसकी निन्दा करने से मनुष्य वास्तव में नीच मनोवृत्तियोंवाला हो जाता है। उसके मन में यह बात घर कर जाती है, कि वस्तुतः मैं दोषी हूं, नीच हूं,—मुझसे किसी प्रकार का उत्तम कार्य नहीं हो सकता। इस प्रकार उसका और भी पतन होता है। ऐसे व्यक्तियों के लिए इस बात की अपेक्षा है कि उन्हें समाज के ऐसे उदारचेत्ता व्यक्तियों के सम्पर्क में आने दिया जाए, जो इनके मनोभावों को बदल सकें। सन्त की उक्ति है कि दुर्जन व्यक्ति सत्संगति पाकर ही सुधरता है। यह यथार्थ ही है।

सज्जन व्यक्ति न तो दुर्जनों से घृणा करते हैं, और न उन्हें किसी प्रकार की सजा ही देते हैं। वे तो सिर्फ उसके विचार को बदल देते हैं उसे इस बात का विश्वास दिला देते हैं, कि तुम महान हो, तुमसे संसार का बड़ा ही उपकार हो सकता है। फलतः दोषी मनुष्य भी आत्म-ग्लानि को त्याग अपने मन में सद्-विचार लाने लगता है और विचार पवित्र हो जाने से मनुष्य की सभी क्रियाएँ शुद्ध एवं कल्याणकारिणी होती हैं।

आज प्रातःकाल लेखक के एक मित्र उससे मिलने आए। वे आजकल आध्यात्यिक आत्म-निर्देश द्वारा अपने को उन्नत बनाने में संलग्न हैं। इस रीति से उन्होंने सिर-दर्द के पुराने रोग से मुक्ति प्राप्त कर ली है। उनकी दृष्टि-शक्ति भी तीव्र हो गई है। उनके रोग का कारण एक प्रकार की हीनता की मनोवृत्ति थी। वे अपने जीवन से इसलिये असन्तुष्ट थे कि उनसे कम योग्य व्यक्ति भी उनसे ऊँचे पद पर थे। यही आत्म-हीनता का भाव उनके मस्तिष्क को असंतुलित किए रहता था। परन्तु आत्म-निर्देश के विचारों ने उन्हें इस दुःखद मनोवृत्ति से निवृत्त किया, जिसके परिणाम-स्वरूप उनके मन में स्फूर्ति आई एवं शारीरिक कष्टों का भी नाश हुआ।

कुछ ही दिनों पूर्व ये मित्र बड़े ही चिन्तित रहते थे। अपनी चिन्ता-मग्नता का कारण उन्होंने जो बताया, उसे उन्हीं के कथनानुसार नीचे लिखा जाता है।

"कल मेरा परिचय एक प्रसिद्ध शिक्षा-विद से कराया गया। परिचय करानेवाले सज्जन भी एक कुशल शिक्षा-विद थे तथा शिक्षा-विभाग के उच्च पदस्थ कर्मचारी थे। जिन सज्जन से मेरा परिचय कराया गया वे बड़े ही अभिमानी थे। मुझसे उन्होंने ऐसा वार्त्ताव किया मानों मैं योग्यता में उनसे बहुत ही छोटा होऊं। उन्होंने मुझसे सिर्फ दो-एक बातें कीं।

इस घटना से मेरा मन खिन्न हो गया। मुझे घोर आत्म-ग्लानि हुई। रात को मुझे नींद नहीं आई।

परन्तु प्रातःकाल मेरा विचार बदला। मैंने मन-ही-मन कहा कि वह व्यक्ति असभ्य था, गंवार था, उसे शिष्टाचार के नियम भी नहीं मालूम हैं। सज्जन व्यक्ति कभी घमंडी नहीं होते। मुझे तो उस पर दया करनी चाहिए, ईर्ष्या नहीं।

इस प्रकार के विचारों से उन्हें यथार्थ ही लाभ हुआ। जब हम किसी नीच मनोवृत्ति के व्यक्ति के पास जाते हैं, तो वह अपने वार्त्तालाप द्वारा हीन विचारों को ही हमारे मस्तिष्क में प्रविष्ट कराता है, जिससे हम अपने को भी तुच्छ और निम्नकोटि का समझने लगते हैं। क्षुद्र विचारवाले व्यक्ति यदि दैवयोग से कोई उच्चपद प्राप्त कर लें, तो अपनी महत्ता दिखलाने के लिये वे अपने अधीनस्थ व्यक्तियों को सतत क्षुद्र बनाने की चेष्टा ही किया करते हैं। उनकी यह मनोवृत्ति किसी न किसी रूप से प्रकट होती ही रहती है। उनके इस व्यवहार से निम्न-पदस्थ लोगों के अचेतन मन में एक प्रकार की आत्म-ग्लानि होती है, जिससे उन्हें मानसिक अशान्ति होती है। परिणामतः वे उस व्यक्ति से घृणा करने लगते हैं, जिसके कारण उन्हें मानसिक कष्ट होता है।

इस प्रकार के कुविचारों के प्रभाव से मुक्त रहने के लिए ही एकान्तवास एवं सामाजिक व्यक्तियों से दूर रहनेकी आवश्यकता पड़ती है। अपनी प्रशंसा सुन मनुष्यको हर्ष-विह्वल न होना चाहिए, जिससे अपनी निन्दा सुन अथवा अनादर होते देख उसे दुःख भी न होगा। जो व्यक्ति बराबर आदर पाने के लिए ही उत्सुक रहता है, उसे निरादर होने के लिए भी सतत् तैयार रहना चाहिए। सुख-दुःख अथवा मानापमान को समभाव से देखनेवाला कभी भी मानसिक अशान्ति का शिकार नहीं होता।

दूसरे के विचार मनुष्य को तभी तक प्रभावित कर सकते हैं, जबतक उसकी इच्छा-शक्ति का विकास न हुआ हो। दृढ़ विचारवाले व्यक्ति को कोई प्रभावित नहीं कर सकता। उसी मनुष्य के विचार दृढ़ होते हैं, जो किसी निश्चित सिद्धान्त के अनुसार जीवन को गढ़ता है। जब व्यक्ति को कर्त्तव्य-ज्ञान हो जाता है, तो वह दूसरे की निन्दा-स्तुति से सर्वथा परे हो जाता है। आत्म-ज्ञानी व्यक्तियों के संपर्क से मनुष्य में अच्छे विचार आते हैं, जिससे संसार का हित-साधन होता है। अस्तु प्रत्येक व्यक्ति के लिए साधु-सम्पर्क आवश्यक है।

सज्जनों के सम्पर्क से मनुष्य को आत्म-निर्देश का अवकाश मिलता है। अच्छी पुस्तकों के अध्ययन से भी मनुष्य आत्मोन्नति कर सकता है। अस्तु, सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन लोक-मंगल की दृष्टि से अत्यन्त ही लाभदायक है।

नैतिक मूल्यों की आवश्यकता

श्री सरस वियोगी
[जन-सम्पर्क अधिकारी अजमेर]

[हमारे परिवार कलह के अड्डे बने हुए हैं, समाज संघर्ष व विषमता की शृंखला में जकड़ा हुआ है और विश्व में चारों ओर महायुद्ध के काले बादल मंडरा रहे हैं, ऐसे समय में जीवन-व्यवहार में नैतिक मूल्यों की कितनी आवश्यकता है—यह विद्वान लेखक के प्रेरक विचारों में पढ़िये।

—सम्पादक]

आज के विगलित पूंजीवादी व सामन्तवादी युग में नैतिक मूल्यों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। महानता का युग समाप्त हो चुका है। आज का युग संघ-शक्ति का है। अणु में ही विभु का दर्शन करना और अणु के संगठन में ही शक्ति का उद्‌भव देखना युग का सत्य है। सामान्य जन की इकाई में जो सत्य राजनीतिज्ञ देखता है, वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में उसी सत्य का अनुसंधान करता है। ऐसे युग में अनिवार्य ही था कि नैतिक दृष्टिसे कोई विद्वान 'अणुव्रतों' का रहस्य उद्‌घाटित करता। यही कार्य आचार्यश्री तुलसी कर रहे हैं। मेरा उनसे मिलनेका सौभाग्य ब्यावर और अजमेर दोनों ही स्थलों पर हुआ था और मैंने उनके दर्शन के महत्व को उसी समय समझ लिया था जब मेरा उनसे साक्षात्कार हुआ। आज हिमालय महान् है पर वह महत्ता अणु-शक्ति पर ही अवलम्बित है जो उसे चारों ओर से आच्छादित किये हुए है। रहीमने कहा है—'भार धरे संसार को तहू कहावत शेष'। शेष नाग की स्तुति क्या कम है? शेष क्या है? अणु-शक्ति ही तो है जो संसार को साधे हुए है बुद्धिमान कहते हैं—जब सब कुछ जा रहा हो तब अल्प को ही ग्रहण करना चाहिये। न्याय-शास्त्र कहता है—साधक वही है जो साधकको साधे। असाध्य को साधनेवाले के कार्य को दुस्साहस ही कहा जायेगा। उससे भी अधिक दुविधाजनक स्थिति सामान्य लोकमानस की है। वह आदर्श के गौरी शिखर तक नहीं पहुँच सकता पर शील-तत्व की अधिकता के कारण उन्हें छोड़ भी नहीं सकता। समाज में सभी धर्म, कला, संस्कृति और इतिहास का रक्षक यही वर्ग है जो भौतिक संघर्षों में पिस कर भी उपरोक्त मूल्यों की रक्षा करता रहता है। आज के युग में इन मूल्यों की रक्षा करना कितना कठिन है इसे वही समझ सकते हैं जिन्होंने जीवनमें कभी महान् आदर्शोंके स्वप्न देखे हैं। आज का युग वर्ग-संघर्ष का है। स्वामी-सेवक, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य आदि सभी वर्गोंमें जहां पहले कार्य श्रद्धा, स्नेह और विश्वास से चलता था आज निरन्तर संघर्ष की भूमिका है। परिणामतः चारों ओर अधिकारों की मांग बढ़ती जाती है और कर्त्तव्यों के प्रति ध्यान नहीं सा है। गुरुत्व के हटने से सामाजिक मूल्यों में उथल-पुथल उपस्थित हो गई है और उसका प्रभाव नैतिक मूल्यों पर भी पड़ा है। परिवार में जिन्होंने सदैव अपने को 'पुरुष की छाया' कहा है वह मुंह खोलने लगी है। समानाधिकार की मांगे उठ रही हैं जब कि सत्यता यह है कि स्त्री-पुरुष में समानता का प्रश्न नहीं उठता। दोनों का क्षेत्र अलग-अलग है। दोनों की पूर्णता अपने-अपने क्षेत्रों में पूर्ण बनने में है। न स्त्री पुरुष बन सकती है और न पुरुष स्त्री। दोनों में से किसी एक का अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करके दूसरा रूप ग्रहण करना उभय पक्षों के लिये अहितकर होगा। आज यही हो रहा है। स्त्रियां पुरुष बन रही हैं और पुरुष स्त्रियां। जब पारिवारिक स्थिति यह हो तो राष्ट्र का निर्माण कैसे हो सकता है?

गुरु और शिष्य के सम्बन्धों को लीजिये-यद्यपि यह कहा जाता है—'बिनु गुरु होय न ज्ञान' पर हममें से कितने ऐसे हैं जो इस सत्य को समझते हैं? आज जो शिक्षा दी जाती है वह व्यापारिक पद्धति पर है। परिणामतः करोड़ों रुपये खर्च कर भी यह विश्वविद्यालय, नालन्दा और तक्षशिला सरीखे एक भी विद्यापीठ स्थापित नहीं कर सके हैं और न एक टैगोर, मुंशी प्रेमचन्द प्रसाद व निराला सदृश दिव्य विभूति उत्पन्न कर सके हैं। गुरु शिष्य की परम्परा का जितना निर्वाह सामाजिक जीवनमें कम पड़ता जा रहा है उसी के अनुरूप में हम देखते हैं ज्ञान के क्षेत्र में रिक्तता आती जा रही है। आजका ज्ञान किताबी ज्ञान है उसमें अनुभव की रिक्तता है इसीलिये आज का पढ़ा लिखा मानव एक भी अरस्तू, प्लैटो, पाणिनि, वेदव्यास, बुद्ध ऐसी महान प्रतिभाओं के स्तर को नहीं पा सका है। यदि ऐसी महाशक्तियां आप उत्पन्न करना चाहते हैं तो आपको गुरु शिष्य परम्परा को पुनर्जिवित करना होगा। यदि आप इस सत्य को समझना चाहें तो गुरु-

देव रवीन्द्र के शान्ति-निकेतन में जायें। यही वस्तु आपको रामकृष्ण परमहंस व योगिराज अरविन्द के आश्रमों में मिलेगी। गांधीवादी गुरुकुलों में क्या इस परम्परा की अवहेलना है? यही विशुद्ध भारतीय पद्धति है जिसे हमें पुनः प्रारम्भ करना होगा। जबतक हम ऐसा न कर सकेंगे हम सदैव ऐसे मेधावी ब्राह्मणों को न पा सकेंगे जिनके सम्मुख वसुधा के बड़े-बड़े सिंहासन झुकते थे।

स्वामी-सेवक के सम्बन्ध को लीजिये। वे महामानव कहां गए जो एक बार मालिक का नमक खा लेने पर हमेशाके लिए गुलाम बन जाते थे। आजका मानव कर्म और निरन्तर कर्म तथा उनके तात्कालिक परिणामों में विश्वास करता है परिणामतः आज वह यन्त्रवत हो गया है और उसके सामने जीवन-विश्वास का एक ही सिद्धान्त है निरन्तर आय में वृद्धि और उसके अनुरूप व्यय के नलपट में खर्च। विगलित पूंजीवादी सभ्यता में जितना उसका अंग-भंग हुआ है उसी ही मात्रा में सड़े-गले मानव का रूप हमारे सामने है जो निरन्तर संघर्ष करता और पेट की विषम ज्वालाओं में मरता रहता है। समाज से स्वामी उठ गई है और राज्य ने स्वामित्व ले लिया है। यह केन्द्रीयकरण की स्थिति कबतक और कैसे चलेगी इसे तो समाजवादी जानें परन्तु मैंने अपने व्यक्तिवादी जीवन में यह जाना है कि मनुष्य की नेक-नीयती पर जितना शक किया जाता है वह उतना ही पतित हो जाता है। अगर मनुष्य को ऊपर उठाना है तो उसका विश्वास करना होगा। समान से ही समान की उत्पत्ति है घृणा प्रेम उत्पन्न नहीं कर सकती और प्रेम में घृणा नहीं हो सकती। दोनों ही विरोधी तत्व हैं। समाज व्यवस्था सहकारी पद्धति पर आश्रित है जहां वर्ग-विद्वेष, घृणा-वाद व अविश्वास की जड़ें हैं वहां समाजवाद कैसे पनप सकता है? जो मनुष्य सबको खा गया है। वह अपने को भी खा जायगा। इसीलिए संसार के सभी बौद्धिक विचारकों ने हमें श्रद्धा, विश्वास, दया, क्षमा, करुणा, प्रेम आदि के उदात्त पथ दिए हैं जो मानव-जीवन में महत्वपूर्ण मूल्यों का निर्माण करने में सहायक हैं। आजकी गुरु-शिष्य परम्परा में निर्वाह की कमी जहां संगीत के क्षेत्र में तानसेन को देनेमें असमर्थ रही है वहां काव्य के क्षेत्र में तुलसी सा महान् कवि भी नहीं दे सकी है।

ऐसे ही संक्रान्तिकाल में भारतीय-दर्शन परम्परा ने आचार्यश्री तुलसी के रूप में एक ऐसे संत को हमारे बीच में भेजा है जो सत्य की परम्परा में विश्वास रखता है। पृथ्वी सत्य से सधी हुई है यह वैदिक कल्पना है। जैन और बौद्ध इसी हिमालय से निकली हुई ज्ञान की गंगायें हैं। वह अभागा है जो इस त्रिवेणी में स्नान नहीं कर सकता। 'पृथ्वी सत्य से सधी है' इसमें सत्य तो माध्यम हुआ पर सीधे कौन है?" यह प्रश्न गौण नहीं है क्योंकि आत्म-वादी देश में कर्म के ऊपर कर्त्ता की मान्यता सदैव रही है। वैदिक ऋषियों ने इसीलिए सत्य से शक्ति का सन्देश लिया और शक्ति की प्रतिष्ठा व्रतोंमें मानी "महीव्रतो ब्राह्मणः शुचिः" अर्थात् ब्राह्मण वही है जो महाव्रतों का अनुष्ठाता है और पवित्र है। यह विशुद्ध वैदिक वार्ता है जब स्त्री का सतीत्व उठ रहा है और पुरुष की मर्यादाएँ खण्डित हो रही हैं ऐसे आपद्ग्रस्त कालमें यदि पृथ्वी की रक्षा व्रतों से नहीं हो सकती तो फिर पृथ्वी को साध कौन सकता है? मुझे याद है अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त का अनुवाद करते समय जो मंगलाचरण मैंने लिखा था वह एक मन्त्र ही था। पृथ्वी सधी है उस शेषनाग से जो महाव्रती है। उसकी स्तुति है:—

सत्य, व्रत, संयम, शील स्वभाव,
तपस्या, दीक्षा होवे ज्ञान।
निरन्तर जले अग्नि की ज्योति,
धरा में हो विस्तृत स्थान।

कितनी उदात्त वृत्ति है—पृथ्वी सत्य से सधी है और सत्य की शक्ति व्रतों में है। व्रतों का परिणाम संयम है। और संयम स्वयं एक तपस्या है। जिसे दीक्षित ही कर सकते हैं। इतना सब होनेपर ही ज्ञान की उत्पत्ति है पर इसकी रक्षा के लिये निरन्तर साधना का अग्निहोत्र जलाना अनिवार्य है। यही महाव्रतों की साधना है—इसी से संसार में महत्ता का बोध होता है—व्यक्ति ऊपर उठता है।

यहांतक तो हुई महाव्रतों की चर्चा है, पर कितने ऐसे हैं जो इस महत्ता तक पहुंच सकते हैं इसलिये आचार्यश्री तुलसी सदृश विद्वानों ने 'अणुव्रतों' की रचना की। 'अणुव्रत' सृष्टि के वह मूल आधार हैं जिनपर सारे नैतिक दर्शन शास्त्र का शिलान्यास किया गया है।

जब आचार्यश्री तुलसी से मेरी अणुव्रतोंके सम्बन्ध में चर्चा हुई तब आचार्यश्री ने बताया कि सबसे पहला अणुव्रत है अपने को दिन में एक बार देखना। कितना स्पष्ट और सरल दर्शन है। "Know thyself" महात्मा सुकरात का कथन है। 'आतम पहिचाने' गोरख साधू पुकार-पुकार कर कह रहे हैं। सारा ज्ञान आत्म-ज्ञान है और सारे ज्ञान की आत्मा में लय है। आत्मा के पहचानने के पश्चात् सृष्टि रसमय हो जाती है। जीवन प्रयोजनमय बन जाता है। सभी वृक्ष एक से नहीं हो सकते। आत्मदर्शन का सिद्धान्त भी ऐसा ही मनोमय है। दर्शन से ज्ञान की, ज्ञान से विराग की, विराग से आनन्द की ओर

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

वैभव और मानवता का मूल्यांकन !

[मुनिश्री मोहनलालजी 'शार्दूल']

[वैभव व अर्थ के आकर्षण ने आज हमारे दृष्टिकोण को ही बदल डाला है। परिणामतः मानव भावना के स्थान पर जड़ता की पूजा करने में लग गया। दीनानाथ भी शायद इन्हीं संस्कारों का प्रतीक था। —सम्पादक]

एक विचारपूर्ण कहानी—

सहानुभूति स्वतः जाग उठी। लोग दौड़े-दौड़े आये और आग की लपटों को बुझाने में लग गये। कुछ लोग सुरक्षापूर्वक अन्दर घुसे और महार्घ्य वस्तुओं को निकालने लगे। दीनानाथ रुआंसा-सा दौड़-धूप कर रहा था। आंसू लुढ़क जाना चाहते थे परन्तु पलकों में ही सूख जाते थे। उसके अङ्ग-अङ्ग में इतनी बेवसी और पीर भरी थी कि कुछ कहते नहीं बनता था। आज उसका आयु भरका सञ्चित द्रव्य, जवाहिरात, सुखोपकरण और यह भव्य भवन उसकी आंखों के आगे स्वाहा होने जा रहा था।

दीनानाथ को लखनऊ में रहते लगभग २१ वर्ष बीत चुके थे। उसके लम्बा-चौड़ा परिवार न था। वंश-परम्परा में कई पीढ़ियों से केवल एक कुल-दीपक ही घर के अखिल वैभव का स्वामी और कुल-परम्परा को आगे चलानेवाला होता था। दीनानाथ और सीता को तरसते-तरसते २० मनमोहक बसन्त बीत गये तब कहीं जाकर घर अंकुरित हुआ। दीनानाथ और सीता के मन-गगन में नव-नव आशाओं की घटायें उमड़ने लगीं। इस घर की कमला (लक्ष्मी) के भण्डार का निरुपाय, निरापद एकमात्र अधिकारी होने के नाते दीनानाथ ने पुत्र का नाम 'कमलेश' रखा। कमलेश की परिचर्या के लिये दीनानाथ ने एक धाय रख दी। गुलाब के फूलका-सा रक्ताभ और सुकोमल, शशि-सा आकर्षक और सौम्य कमलेश धीरे-धीरे बढ़ने लगा। दीनानाथ और सीता के तड़फन, दुःख और जलते उष्ण निःश्वासों के दिन पूर्णतः अवसान पा चुके थे। अब तो उनके मधुरिम मुस्कान भरे, तृप्त और अवर्णनीय मानसिक आह्लाद के दिन थे। वह दिन भर स्नेहार्द्र और तृप्त नयनों से कमलेश के मुख-चन्द्र को निहारती और किसी अनिर्वचनीय सुख का अनुभव करती।

× × ×

आज दीपमालिका थी। सारे शहर में जगमगाहट हो रही थी। स्थान-स्थान पर मकानों के मुंडेरों पर खड़ी दीप-पंक्ति व्योम के बिखरे दीपकों को चुनौती दे रही थी। लोग पूजा की तैयारियां कर रहे थे। सीता भी आनन्द में झूमती हुई पूजा का साज सजा रही थी। उसमें आज नई स्फूर्ति थी; नया उत्साह था; सब कुछ नया-नया-सा दीख रहा था। उसी स्फूर्ति में काम से जल्दी निपट गृह स्वामी की प्रतीक्षा में बैठी थी। प्रतीक्षा जब असह्य होने लगी तब उसे एक बात सूझी। वे दुकान से घर आयें, इतने समय के लिये वह धाय को साथ लेकर अपनी छोटी बहिन से मिलने चली गई जोकि पास के एक मौहल्ले में रहती थी और कई दिनों से बीमार थी।

सीता अपनी बहिन के घर पहुँच ही पाई होगी कि दीनानाथ दुकान से निवृत्त होकर घर आये, धाय के दसवर्षीय पुत्र आईदान ने कमलेश का झूला हिलाते हुए कहा—मालकिन अपनी बहिन से मिलने अभी-अभी गई है। दीनानाथ ने स्वीकारात्मक सिर हिला दिया और कमरे में एक नजर दौड़ाई। पूजा का सारा सामान सजा हुआ था। सीता आये इतने शहरकी रोशनी क्यों न देख ली जाये—ऐसा सोचकर वे सड़क पर आये ही थे कि एक मित्र मिल गया। दोनों बातें करते हुए कुछ दूर निकल गये।

अकेले बैठे-बैठे आईदान का मन ऊब चुका था। वह बरामदे में आया तो देखा—लोग दीपकों की कतार लगा रहे हैं। बच्चे पटाखे छोड़ रहे हैं। कुछ बच्चे फूलझड़ी और रोशनाई जला रहे हैं। इसका भी जी मचलने लगा और उसने अपनी फूलझड़ी बरामदे में जलते हुए दीपक से जलादी। जब वह बरामदे में घूमता हुआ ऊपरवाले कमरे में घुसने लगा तो अचानक फूलझड़ी कमरे में बिछी हुई सतरंजी पर गिर पड़ी और पास में पड़ी रेशमी चद्दर में आग लग गई। आईदान ने बुझाने की कोशिश की तो आसपास के और कपड़ों में आग लग गई। हवा के झोंकों ने कुछ ऐसी सहायता दी कि क्षण भर में आग सारे कमरे में फैल गई। आईदान घबरा गया। रोता हुआ वह मालकिन की बहिन के घर की ओर दौड़ा।

दीनानाथ भी बाजार में थोड़ी दूर जाकर

ही लौट आये। घर में धुंआ उठते और लोगों को इकट्ठे होते देखा तो कलेजा मुंह को आ गया। उसकी जबान सूख गई और पैर कांपने लगे। हृदय डूबता-सा जा रहा था। कुछ लोगों ने उसे सहारा दिया और एक ओर बैठाते हुए आश्वासन भरे शब्दों में कहा—घबराने जैसी कोई बात नहीं है। अभी सब कुछ बाहर निकाल लिया जायेगा। आग इतनी तेज नहीं हुई है कि कुछ भी नहीं किया जा सके। डबडबाई आंखों से दीनानाथ ने कहनेवालों की ओर आशाभरी नजर से देखा।

थोड़ी ही देर में लोगोंने आग से बचा निकाली हुई वस्तुओं का दीनानाथ के सामने ढेर लगा दिया। इन सबको देख उनका दिल कुछ जमा और थोड़ी देर के बाद तो एक-एक वस्तु को याद कर-कर कहने लगा—अरे! उस कमरे में अमुक वस्तु रह गई है उसे तो अवश्य निकाल लाओ। लोग दौड़कर उन वस्तुओं को भी निकाल लाये। दीनानाथ ने गद्‌गद्‌ होकर कहा—तुमने तो मुझे बचा लिया है। मैं तुम्हारा उपकार कभी नहीं भूल सकता। लोगोंने कहा—नहीं जी! इसमें उपकार और एहसान की कौन-सी बात है। यह तो हमारा कर्तव्य था और भी कुछ निकालना अवशिष्ट हो तो याद कर लीजिये। आग तेज होती जा रही है और रास्ता भी बन्द होता जा रहा है। दीनानाथ ने फिर से सभी वस्तुओं की ओर ध्यान दिया पर कोई भी ऐसी मूल्यवान वस्तु ध्यान में नहीं आई जो न निकाल ली गई हो।

किसी वस्तुओं को निकाल लेने के बाद लोगों का ध्यान आग के विस्तार को रोकने की ओर गया। आसपास के मकानों को सुरक्षा के निमित्त खाली किया जाने लगा और पानी आदि डालकर आग के बढ़ाव को रोकने का उपाय किया जाने लगा।

इधर आईदान से खबर पाकर सीता भी दौड़ी आई। सामान के ढेर को सम्भालते हुए उसकी हिम्मत बनाये रखने के लिये दीनानाथ ने कहा—मकान तो सारा का सारा जल ही गया समझो पर समान प्रायः बचा लिया गया है। सीता ने अपनी घबराई हुई दृष्टि इधर-उधर डालते हुए चिल्लानेकी-सी आवाज में पूछा—लड़का कहां है?

इतनी देर तक दीनानाथ का ध्यान केवल वस्तुओं की ओर ही था। लड़का उसे याद ही नहीं आया था। सीता के प्रश्न ने उसके सिर पर मानों वज्रपात कर दिया। हाय! मैं मारा गया, मेरा लड़का पिछले कमरे में रह गया। हाय! कोई उसे बचाओ। पागल की तरह चिल्लाता हुआ दीनानाथ आग की ओर दौड़ा परन्तु अब बहुत देर हो चुकी थी। आग ने सारे रास्ते घेर रखे थे। अन्दर जाना प्रयास-साध्य भी नहीं रहा था।

दूसरे दिन आग बुझ चुकी थी। सीता और दीनानाथ का आनन्द भी बुझ चुका था। साथ-साथ लोगों की सहानुभूति भी बुझ चुकी थी!

इस घटना की आलोचना करते हुए एक ने कहा—विचित्र बात है। लोग अपने लड़के को भूल जाते हैं।

दूसरे ने कहा—लोभी को लड़का इतना प्यारा होता है? जितना कि वैभव!

तीसरे ने कहा—क्या काम लगेगा यह वैभव!! जबकि उसको भोगनेवाला ही भुला दिया गया!!!

वैभव और मानवता का मूल्यांकन!!!!

—*:०:*:—

स्वयं मार्ग बन जाता है!

[मुनिश्री सुखलालजी]

जिस ओर चरण बढ़ चलते हैं, वह स्वयं मार्ग बन जाता है।

जो जानकार हो मंजिल का,
पैरों में जिसके दृढ़ता हो।
मन में नव जागृति लेकर के,
रहता जो प्रतिपल बढ़ता हो॥

उत्पथ भी उसके लिये सुखद शुभ राज-मार्ग बन जाता है।
जिस ओर चरण बढ़ चलते हैं वह स्वयं मार्ग बन जाता है॥

उर्वर धरती पर उचित समय,
सामग्री से सापेक्षित हो।
सीधा टेढा चाहे जैसे,
आलोचित या अनपेक्षित हो॥

जो बीज भूमिगत हो जाता वह नव पौधा पनपाता है।
जिस ओर चरण बढ़ चलते हैं वह स्वयं मार्ग बन जाता है॥

———

इंजन और पटरी

[श्री विनोबा]

जिसे हम ईश्वर-श्रद्धा कहते हैं, वह आत्म-निष्ठा में भिन्न वस्तु नहीं है। ईश्वर-निष्ठा का अर्थ ही यह है कि हम अपने को शून्य समझते हैं और पूरे प्रयत्न में लग जाते हैं। शास्त्र भी यही कहता है कि कर्ता ईश्वर जरूर है, परन्तु उससे सिर्फ सतत् प्रेरणा अपेक्षित है, हम लोगों के प्रयत्न की ईश्वर अपेक्षा रखता है। उसीकी कृपा से आम की गुठली में से आम पैदा होता है। यह योजना उसकी है, परन्तु वह गुठली हमको बोनी पड़ती है। इसलिए हमें अपने विचारों में और कार्य-योजना में ईश्वर को ज्यादा तकलीफ नहीं देनी चाहिए। बुद्धि उसने दी है; तो वह हमारी नहीं है, इतना हम मन में रखें, तो निरहंकार हो जायेंगे और बुद्धिपूर्वक काम करेंगे। अगर किसी ने यह मान रखा हो कि यह ईश्वरीय संकल्प से प्रेरित कार्य है, इसलिए वह तो हो ही जायगा; याने उसकी कोई खास चिन्ता नहीं, वह हमारी हलचल के बिना भी हो जायगा और अगर हलचल करते हैं तो करें, शोभा होगी—इस तरह से अगर कोई मान बैठा है, तो वह गलती है। कोई विचार हमको सूझता है, अपने निज की शक्ति से वह करने की हमको हिम्मत नहीं होती है। फिर भी दिल कहता है कि वह काम हमको जरूर करना चाहिए और करना धर्म है और फिर अन्दर से एक शक्ति आती है और वह कहती है कि 'तू क्यों झिझक करता है? यह विचार सद्विचार है। तू काम में लगजा।' उसीको हम अपनी तोतली भाषा में ईश्वर-प्रेरणा कहते हैं। अपने निज का कोई बल मालूम न होते हुए भी एक विचार का बल आ जाता है और मनुष्य उससे प्रेरित होकर काम करता है। इसीका नाम हमारी भाषामें ईश्वर-प्रेरणा है।

मैंने 'सत्त्वगुण' शब्दका उपयोग एक दूसरे अर्थ में किया है और ऐसे शब्द दो अर्थ रखते हैं। एक अर्थ तात्त्विक होता है, एक नैतिक होता है। मैंने नैतिक अर्थ में इस्तेमाल किया है। तात्त्विक अर्थ में तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण, ये दोष नहीं हैं, बल्कि ये गुण हैं। तीनों में कोई श्रेष्ठ नहीं है, न तीनों में कोई कनिष्ठ है। तीनों की समान आवश्यकता होती है। अगर हममें तमोगुण न हो तो हमको नींद नहीं आ सकती। तो वह तमोगुण हमारे लिए अत्यन्त जरूरी है। उसको साम्यावस्था में रखना चाहिये। याने वह गुण इतना न बढ़े कि दूसरे गुणों को अवसर न दे। कर्म के लिए भी वह अवसर दे, ज्ञान के लिए भी अवसर दे, इतनी मात्रा में वह रहेगा, तो बहुत जरूरी है और उसके बिना न कर्म-शक्ति होगी, न ज्ञान-प्रेरणा होगी। तमोगुण बड़ा ही उपकारक गुण है। वह दोष नहीं है। वैसे ही रजोगुण में भी दोष नहीं है। तात्त्विक अर्थ में वह बड़ा गुण है, तो उसके विरोध में हम नहीं हैं। हम चाहते हैं जोरदार कर्म-प्रेरणा। एंजिनमें शक्ति बहुत चाहिए और ट्रेन जोरोंसे दौड़नी चाहिए। लेकिन रजोगुण तो एंजिन हो, परन्तु सत्त्वगुण की पटरी हो, ऐसा हम चाहते हैं। ऐसी पटरी अगर बनायी जाय जो कि रजोगुण की हो और एंजिन भी रजोगुणवाला हो, तो नतीजा दूसरा निकलेगा। परन्तु पटरी अगर सत्त्वगुण की हो, तो रजोगुण कितने ही जोरोंसे जायगा, तो भी वह पटरी को छोड़ेगा नहीं। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि आन्दोलन का जो नेतृत्व होगा, उसकी जिम्मेवारी यह रहेगी कि प्रजा का सारा रजोगुण पूरे जोरों के साथ, लेकिन हमारी निश्चित पटरी पर चले। उस दृष्टि से देखा जाय, तो सत्त्वगुण के जरिये काम शीघ्र से शीघ्र होगा, क्योंकि अच्छी दिशा मिलेगी और रजोगुण को तो हम मंजूर ही करते हैं, क्योंकि उसके बिना तो हमारी गाड़ी स्टेशन पर ही पड़ी रहेगी। रजोगुण तो हमको जरूर ही चाहिये। इसलिए उससे कोई विरोध नहीं आता है। परन्तु हाँ, काल-मर्यादा आजाती है। कितने समय में यह काम बनेगा, इसकी मर्यादा आजाती है। इसलिए कि हममें ही सतोगुण की कमी है। उसके उत्कर्ष के लिए जो समय जायगा, उतना समय तो जरूर जायगा। परन्तु ऐसे आन्दोलन, जो वैचारिक आन्दोलन हैं, बशर्ते कि जमाने की मांग के अनुसार हैं, अगर सत्त्वप्रयोग से चलाये जाते हैं, तो उनका जोर बहुत ज्यादा होता है। और अगर रेल की पटरी न बनी हो, तो एंजिनकी गति खूब होते हुए भी एंजिन को काम करने के लिए अनुकूलता नहीं होगी, तो पटरी का बनना एंजिन की गति के लिए बाधक नहीं है, बल्कि साधक है। वैसे ही सत्त्वगुण-युक्त रचना होगी, तो प्रजा पूरे जोश के साथ दौड़ेगी। इस तरह बहुत ही शीघ्र काम होता है। जैसे भागवत में कहा है कि हमने ऐसा मार्ग बनाया कि आंख बन्द करके दौड़ते चले जायँ, तो भी इससे

आपको कोई ठेस नहीं लगेगी। यहां कोई आपको चिन्ता की जरूरत नहीं है। खतरा कुछ नहीं है, सत्त्वगुण को अगर हम अपना मार्ग-दर्शक बराबर रखेंगे, तो लोग पूरे वेग के साथ जा सकेंगे, उनको रोकने की हमें कोई जरूरत नहीं होगी। अगर सत्त्वगुण नहीं होगा, तो रजोगुण अपना काम पूरे जोर से कर नहीं पायेगा और तब हमको उसे जल्दी से रोकना होगा। गलत दिशा में काम जाने लगा, तो एकदम से हमको ब्रेक लगाना होगा और उसको अटकाना पड़ेगा, यही मेरे कहने का तात्पर्य है।

जब हृदय-परिवर्तन की बात हम करते हैं, तब उसके मूल में एक बहुत बड़ा विचार यह है कि जिसके पास कोई चीज है, वह दे और वह चीज सबके लिए है, ऐसा मानें। अब माना यह जाता है कि देना तो श्रीमानों का ही काम है। मैं इस तरह से नहीं सोचता। मैं ऐसा मानता हूं कि जो दे नहीं सकता, ऐसा कमबख्त कोई जन्मा नहीं। हरएक को देना है। किसीको सम्पत्ति देनी है, किसीको बुद्धि देनी है, किसीको श्रम देना है, किसीको जमीन देनी है, किसीको ये चारों चीजें देनी हैं और यदि कोई ऐसा भी शख्स है कि जो ये चारों चीजें नहीं दे सकता, तो भी वह खूब दे सकता है—उसके पास प्रेम पड़ा है। वह अपना प्रेम ही देगा। इस तरह हमको सबसे लेना है। इसमें देनेवाला एक पक्ष है, लेनेवाला दूसरा पक्ष है, ऐसी कोई बात नहीं। लेनेवाला तो समाज है और सबको देना ही है।

—*::*—

जीने की राह अनोखी है !

[श्री राजेन्द्रमोहन शर्मा 'शृङ्ग']

(१)

जीने की राह अनोखी है,
जिनकी सबको पहचान नहीं।
ज्ञाता हैं कुछ इन्सान यहां,
बाकी को उनका ज्ञान नहीं॥

(२)

जो जीवन से होते निराश,
वे कब जग में जी पाते हैं?
जो आश निराशा में खोजें,
वे ही जग में जी पाते हैं॥

(३)

असफलताओं के ही उर में,
रहती है निहित सफलता भी।
जो कई बार होते असफल,
मिलती है उन्हें सफलता भी॥

(४)

जो फल-प्राप्ति की आश छोड़,
करते जीवन में कर्म यहां।
उन इने गिने इन्सानों को,
जीने का है अधिकार यहां॥

(५)

यों आश-निराशा के भीतर,
जीवन क्रम चलता जाता है।
जो धैर्य सदा उर में धरता,
वह ही पथपर बढ़ जाता है॥

मूर्ख के समान कौन ?

यदि तुम योगी बनना चाहते हो, तो तुम्हें स्वतंत्र होना पड़ेगा और अपने आपको ऐसे वातावरण में रखना होगा, जहां तुम सर्व चिन्ताओं से मुक्त होकर अकेले रह सकते हो। जो आराममय और विलासमय जीवन की इच्छा रखते हुए आत्मानुभूति की चाह रखता है, वह उस मूर्ख के समान है, जिसने नदी पार करने के लिये, एक मगर को लकड़ी का लट्ठा समझकर पकड़ लिया।

—स्वामी विवेकानन्द

एक करुण शब्द-चित्र—

रूपा

[श्री हरिनारायणप्रसाद सक्सैना 'हरि']

घुटनों के बल चलनेवाली रूपा बचपन में ही मां-बाप के प्यार से वंचित होगई। उसके होठ 'मां-बावू' की रट लगाकर थक गए पर निर्दयी काल ने उसकी एक भी न सुनी। भाई ने बड़े लाड़-प्यार से रूपा को पाला। उसके हर अभाव को यथाशक्ति पूर्ण करने की चेष्टा की—फलतः सखी-सहेलियों से घनिष्ठता बढ़ी और गुड्डे-गुड़ियों से दिलचस्तगी हुई। लेकिन ये सब उस अभाव की पूर्ति करने में असमर्थ थे जो रूपा चाहती थी। रूपा तो स्नेह की भूखी थी, दुनिया की बेशुमार दौलत, कारू का खजाना भी उसकी भूख मिटाने में असमर्थ थे। मां-बाप के प्यार से वंचित रूपा सखी-सहेलियों से मिलकर क्षण भर के लिए भले ही संतुष्ट हो जाती थी पर आन्तरिक चाह तो उसे नित्य रुलाती थी जब वह काम-काज से छुटकारा पा, निद्रा देवी की शरण में जाती थी। संभवतः रूपा का विवाह इसी कारण अल्पावस्था में ही संपन्न हो गया। रूपा छोटा सा घूंघट काढ़कर, नई-नवेली दुलहन बनकर पी के घर आई। सुहाग रात की वेला-पति-पत्नी के प्रथम मिलन की वेला और पिया के ये वाक्य उसके दिलो-दिमाग में चक्कर काटते रहे :—"रूपा! तुम्हें धोखा दिया गया है। मैं टी० बी० का पेसेन्ट हूं। चन्द दिनों का मेहमान हूं। फिर भी मैं अपनी अमिट निशानी छोड़ जाना चाहता हूँ और इसके लिए हमें······आवश्यकता है।" भोली रूपा ने हँसकर पति के इस कटु वाक्य को टाल दिया और पति की एकमात्र चाह पूर्ण की।

× × ×

रूपा का एकमात्र भाई किशोर इन दिनों ज्वर से पीड़ित था। डॉक्टर, वैद्य और हकीम जब ईलाज कर थक गए तब स्पष्ट शब्दों में कह दिया—"किशोर बाबू की जिन्दगी पर अब भरोसा नहीं किया जा सकता है, किसी भी समय इनका प्राण रूपी दीपक बुझ सकता है।" और अन्त में वही हुआ, जिसका खतरा था। बेरहम हवा के झोंके तो कई बार आये पर यह अन्तिम झोंका ऐसा आया जिससे किशोर का टिमटिमाता हुआ प्राण रूपी दीपक सदा के लिए बुझ गया। असहाय रूपा सिर और छाती पीटकर चुप हो गई।

× × ×

रूपा का कुम्हलाया हुआ जीवन रूपी पौधा, पति-स्नेह की छांह में धीरे-धीरे पनपने लगा। पति के असीम स्नेह ने रूपा को नव-जीवन प्रदान किया। रूपा की कोख से एक नवजात शिशु ने जन्म लिया जिसका नाम 'रूपकुमार' रक्खा गया। इधर कई दिनों से पति की हालत अच्छी नहीं थी और पुत्र-जन्म के तेरहवें दिन ही पति सदा के लिए इस नश्वर संसार को छोड़कर चल बसा। रूपा का सुहाग-सिन्दूर उजड़ गया, लिबास बदल गया, रहन-सहन बदल गया और हाथ सूने पड़ गए। कंचन-सा दमकता, यौवन के बोझ से लदा शरीर दुःख के बोझ से पीला पड़ गया। पति को विदाकर रूपा ने गौर से रूप को देखा। सचमुच रूप पिता का प्रति-रूप लेकर आया था। वैसा ही चेहरा, वैसे ही बाल, जैसे सब कुछ एक से ही हों। फिर भी रूपा की आँखों में खून के आँसू उतर आये थे। सुहाग-रात के वे चुभते हुए वाक्य उसके मस्तिष्क को बुरी तरह कुरेद रहे थे। पर बेवसी थी—बेचारी अपने आंसू पोंछकर चुप रह गई और फिर स्नेह के उमड़ते हुए उबाल से तंग आकर बड़े प्यार से रूप का मुखड़ा चूम लिया। रूप ही तो अब विधवा का एकमात्र सहारा था जिसे अपना कहकर पुकारने का अधिकार शेष बच रहा था। इतनी बड़ी दुनिया में अब रूपा के और कौन था? रूप ही तो वह आशा सूर्य है जो कभी न कभी अपनी जाज्वल्यवान रश्मियों से एक बार फिर रूप के उजड़े हुए चमन में बहार लायेगा। क्यों कर रूपा को ऐसा विश्वास न हो—हर मां-बाप को अपने पुत्र-रत्नों से ऐसी ही उम्मीदें हुआ करती हैं। इसी कारण रूपा पुत्र के साथ उलझी रहती थी। उसे सजने-संवारने में रूप को कितना आनन्द आता था वह हर्ष से फूल उठती थी और उस समय तो उसके हर्ष की कोई सीमा ही न थी जब रूप मैट्रिक की परीक्षा में बैठा था। आज रूपा न जाने कैसी-कैसी कल्पना कर रही थी—रूप का विवाह होगा, छोटी-सी दुलहन आयेगी, उसे बढ़िया-बढ़िया खाना खिलायेगी, माथा दबायेगी और·········।

× × ×

आज रूप का परीक्षाफल निकलनेवाला था। इसी कारण वह सवेरे से ही परेशान

नजर आ रहा था। वृक्षों की ओट में कामिनी कुल-वल्लभ अस्त हो चले थे और रूप द्रुत गति से उनका पीछा करता हुए आगे बढ़ता जा रहा था। अभाग्यवश मार्ग में ही वह बस से टकराकर पृथ्वी पर गिर गया। गिरते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। घटनास्थल पर अपार जन-समूह एकत्रित हो गया। राहगीरों ने रूप के शव को घर पहुँचाया और उधर मित्रगण खुशी से उछलते हुए उसके घर पहुँचे कारण रूप प्रान्त भर में सर्वप्रथम हुआ था। हरे-भरे घर में ईद-मोहर्रम मच गया। विधवा का एक मात्र सहारा टूट गया। वह असहाय अवला बन गई, जैसे जीते जी किसी ने उसका कलेजा निकाल लिया हो और रूप मानों उसका उपहास कर रहा था—

"माँ! रूप तो वह अन्तिम कर्ज चुकाने आया था जिसे एक अरसे से सभी चुकाते आ रहे हैं—किशोर बाबू और पिताजी भी इस ऋण को अदा कर चुके पर तुम तो आज भी इस मोह-माया के झूठे बन्धन में जकड़ी पड़ी हो। आँखें खोलो और देखो! धरती और आकाश दोनों तुम्हें टकटकी लगाकर देख रहे हैं। तुम स्वर्ग तक पहुंचना तो चाहती हो पर धरती का मोह त्यागना नहीं चाहती और आज धरती भी तुम्हें कर्ज के भारी बोझ से दबी देख तेजी के साथ अपना भुगतान पाने के लिए अग्रसर हो रही है। अब तुम्हें मोह-माया का साथ छोड़ना ही होगा, प्राण की बलि देनी ही होगी। जन्म-जन्म तक तुमने धरती पर रहकर जीवन के समस्त सुखों का उपभोग किया और इस भोग-विलास ने ही तुम्हें यह भी याद नहीं रहने दिया कि तुम मुक्ति पाने के लिए ही धरती पर भेजी गई हो। तुम आडम्बरमय सुख में पड़कर जीवन के सच्चे सुख को भूल गई हो। लेकिन वह तुम्हें कैसे भूल सकता है जो तेरे एक-एक पल का लेखा-जोखा रखता है। अब तुम इसे वज्र-पात न कहना, पुत्र वियोग न कहना, अन्तिम कर्ज ही मानकर जीवन की बलि दे देना चाहे हंसकर या रोकर।"

× × ×

रूपा दुनिया की निगाहों में कुछ-कुछ पागल हो गई थी। उसे न भूख लगती थी और न रात में नींद आती थी और एक दिन आधी रात के समय जब सारी दुनिया सो रही थी, वह गृह को अन्तिम नमस्कार कर न जाने कहाँ चल पड़ी। चलते-चलते उसके पैर में छाले पड़ गए थे फिर भी पत्थर का कलेजा बना, वह रात्रि के घटाटोप अंधकार में घने जंगलों को पार करती हुई आगे बढ़ती जा रही थी। शरीर सूखकर कांटा हो गया था, आगे बढ़ने की शक्ति शेष न रह गई, फलस्वरूप उसका फूल सा कोमल शरीर लुढ़क-कर वहीं ढेर हो गया जिसपर पेड़-पौधे पुष्प-वृष्टि कर रहे थे। रूपा फूल बनकर धूल में मिल चुकी थी जो शनैः-शनैः पवन के झोंकों के साथ ऊपर उठने की सतत् चेष्टा कर रहे थे—मानों वे उस मानव का चित्र उपस्थित कर रहे थे जो आशा भरी दृष्टि से आकाश को निहारकर पुनः किसी मोहवश अपनी गरदन नीची कर लिया करते हैं।

चार रूबाइयाँ

—श्री विपिन जारोली—

(१)

जो झेले विपत्ति हजार है!
अपना ही उसे संसार है।
परमार्थ में लीन रहे नित वो
जन-जन के गले का हार है।

(२)

माया से लिप्त वही साकार है।
ब्रह्म में लीन रहे निराकार है।
विश्व के बंधन तोड़ सभी—
दुष्वृत्ति तजे, अवतार है।

(३)

सिन्धु से उठे वो ज्वार है।
नयन से निकले अश्रुधार है।
अधरों से अधर मिल जा क्षण में।
बस कहते इसी को प्यार है।

(४)

आह से निकला वो गीत है।
आत्म विजय जीवन जीत है।
दीप की लौ से मिला है शलभ ये
बस कहते इसी को प्यार है॥

धर्म बदनाम हो रहा है!

[श्री गोपीनाथ 'अमन']

[आज हमारा धर्म मन्दिरों व मस्जिदों तक सीमित होकर दीमागी खेल भर रह गया है। यही कारण है कि इसकी व्यवहार-शून्यता इसेदिन-प्रतिदिन वदनाम करती जा रही है और हमें कुछ सोचने, समझने व करने को विवश कर रही है।

—सम्पादक]

संसार की बहुत सी समस्याएं धर्म और कर्म को अलग-अगल समझाने से पैदा हुई हैं। आज हम देखते हैं कि मन्दिरों और मस्जिदों में खासी भीड़-भाड़ रहती है परन्तु हमारे सामूहिक जीवन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पूजा करली व भगवान से अपने पापों के लिये क्षमा याचना करली परन्तु मन्दिरों से निकलकर यह समझ लिया कि भगवान की वात तो भगवान के साथ है और दुनियां की वात दुनियां के साथ। इसी भूल के कारण धर्म वदनाम हो रहा है। सच्चे धर्म का सम्बन्ध तो हमारे सारे जीवन के साथ है। भगवान मन्दिर में भी देखते हैं और दूकान पर भी। वस इतनी-सी वात है जिसे समझने और जीवन में धारण कर लेने की आवश्यकता है।

अणुव्रत-आन्दोलन हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखता है वह हमें वार-वार यह याद दिलाता है कि हमें अन्दर देखने की वड़ी जरूरत है। मैं मानता हूं कि इसके नियम कठिन हैं परन्तु कठिन तो ऐसी सारी वातें होती ही हैं। यदि एक साधारण सी फांस लग जाय तो उसे निकालने में भी दर्द होता है फिर जव अन्दर विकार भरा हो तो उसे निकालने में तो कठिनाई अवश्य ही होगी। परन्तु ऐसे वीर भी हमारे देश में हैं जो इस वेदना को सह जाते हैं। लोग कहते हैं कि जव हमारे चारों तरफ वेईमानी, ब्लैक मार्केटिंग और छल-कपट का व्यवहार है तो हम इससे कैसे वचें? इसका सीधा सा उत्तर यह है कि यह शक्ति सच्चे धर्म के द्वारा मनुष्य में आती है। कर्म के विना धर्म नहीं हो सकता और इसी प्रकार धर्म के विना कर्म नहीं हो सकता। कर्म का मूलाधार धर्म है और धर्म का द्योतक कर्म।

यह वात और समझ लेने की है कि आरम्भ में जितनी कठिनाई होती हैं उतनी अभ्यस्त होने के पश्चात् नहीं रहती। प्रकृति का यह साधारण नियम है कि अभ्यास के साथ-साथ सहनशीलता वढ़ती जाती है। इसलिए पहली मञ्जिल पर जो कठिनाइयाँ वड़ी गम्भीर होती हैं वे आगे चलकर साधारण रह जाती हैं। यह वात दूर तक पहुँचती है। प्रश्न यह उठता है कि सुख और आनन्द है कहां? यदि वह वाह्य वस्तुओं में है तव तो किसी प्रकार इन वाह्य वस्तुओं को प्राप्त कर लेना ही मनुष्य का ध्येय हो सकता है, परन्तु यदि इनका स्थान मनुष्य के हृदय में है तो फिर वाह्य वस्तुओं के पीछे दौड़ना और येन-केन प्रकारेण उन्हें प्राप्त करने का साहस करना जीवन का लक्ष्य नहीं रह जाता। अणुव्रत-आन्दोलन मनुष्य को जीवन का सच्चा लक्ष्य वताता है। यदि हम अपनी आकांक्षाएं सीमित रखें तो हमारा जीवन नियमवद्ध हो सकता और हम 'मागृधः कस्यास्विद्धनम्।' के पुनीत आदर्श पर चल सकते हैं और यदि अपनी वासनाओं को खुली छूट दे दी जाय तो फिर हमें दूसरों के अधिकार पर अवश्य छापा मारना पड़ेगा।

अपनी वासनाएँ घटाओ, जीवन को नियमवद्ध वनाओ, दूसरों के अधिकारों का विचार रखो, इन वातों में अणुव्रत-आन्दोलन के मूल सिद्धान्त आ जाते हैं। साम्यवाद जो कुछ मारकाट के द्वारा अथवा तानाशाही राज्य के द्वारा करना चाहता है अणुव्रत-आन्दोलन उस कार्य की पूर्ति मनुष्य की स्वेच्छा से चाहता है। साम्यवाद इच्छाओं को वढ़ाने में देश या समाज की उन्नति मानता है, जहाँ हमारी सभ्यता से उसका टकराव स्पष्ट हो जाता है। वे लोग वड़ी भूल करते हैं जो साम्यवाद के सिद्धान्तों को तो देखते हैं परन्तु साधनों को नहीं देखते। साधनों को सिद्धान्तों से पृथक् नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि अणुव्रत-आन्दोलन में साधनों पर भी उतना ही वल दिया गया है जितना कि सिद्धान्तों पर।

आदर्श समाज की स्थापना आत्म-संयम के द्वारा ही हो सकती है। अणुव्रत में इसीका सन्देश है। इसकी जड़ें हमारी भारतीय सभ्यता में हैं। जो काम राजनीतिक दलों से नहीं हो सकता वह 'भू-दान' और 'अणुव्रत' जैसे आन्दोलनों से हो सकता है। विदित है कि इन नियमों पर चलनेवाले वर्तमान अवस्था में

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

अणुव्रत आन्दोलन और नारी समाज

[श्रीगणेशमल सेठिया]

विश्व का चक्र आदि काल से चलता रहा है और चलता रहेगा। उत्थान-पतन— इसका स्वाभाविक क्रम है। पूर्व की अपेक्षा आज का घटनाचक्र विषम गति से चल रहा है। मानव चिन्ताग्रस्त है। चारों तरफ अन्याय, शोषण व अनैतिकता व्याप्त है। इस प्रकार का परिवर्तन आज स्पष्ट लक्षित हो रहा है।

संसार में चौदह रत्न हैं, जिनमें दो मुख्य हैं—स्त्री और पुरुष। मेरे चन्द विचार इसी विषय पर हैं। इन दोनों में आज आमूल परिवर्तन हो रहा है। इस भौतिकवादिता की चमक-दमक के कारण उनकी धर्म के प्रति श्रद्धा लोप होती जा रही है। उसके जीवन का लक्ष्य एकदम धूमिल और लक्ष्यहीन है। अपनी अज्ञानता और कुतर्कों के कारण धर्म को बेकार व काल्पनिक करार देने में भी पीछे नहीं रहते। उनका दृष्टिकोण एकदम जड़वादी होता जा रहा है। साथ साथ सुधार के लिए भी तैयार होता है, लेकिन लक्ष्यहीन होने के कारण कुछ भी कर नहीं पाते। यह दशा आज के युवकों में प्रायः दृष्टिगोचर होती है।

स्त्री समाज में अभी तक थोड़ा प्राणदायक तत्त्व जरूर मौजूद है। उनकी धर्म के प्रति निष्ठा विश्वास व दृढ़ता प्रशंसनीय है। मानो वे त्याग और तपस्या की साक्षात् मूर्ति हैं। उन्हें गुरुजनों व चारित्रात्माओं के पद-चिन्ह तथा उनके उपदेशों पर चलने में दिलचस्पी है। आज साधु-साध्वी समाज को देखिये जिनका जीवन कितना महान और स्वच्छ है और अपनी आध्यात्मिक शिक्षा से हमारी नैया को कर्म रूपी समुद्र से पार कर रहे हैं।

अपनी माताओं और बहनों में सब चीजों की पूर्णता होते हुए भी ज्ञान का कुछ अभाव है। लेकिन प्रसन्नता की बात है कि साध्वी-

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

छलनामय जगत्

[*मुनिश्री वच्छराजजी*]

स्वार्थ-तुला पर पर-जीवन का, दुनियां माप किया करती है।
इसीलिये तो धर्म नाम पर दुनियां पाप किया करती है॥

-१-

लुट-लुटकर कलियों पर मन चाहा, अलि रस पान किया करता है।
गूंज-गूंज कर पागल अपना, गौरव गान किया करता है॥
मधु गुंजन से रीझ मुझे कुछ, विधि वरदान दिया करता है।
मेरे खातिर ही फूलों का, वह निर्माण किया करता है॥
पता नहीं क्यों पर-पर में को, दुनियां छाप दिया करती है।
इसीलिये तो धर्म नाम पर दुनियां पाप किया करती है॥

-२-

विकल धरा की पीड़ाओं पर, रह-रह दीप हृदय जलता है।
करता जगजीवन को रसमय, जग का स्नेह उसे मिलता है॥
किन्तु तल स्थित तम कहता है, भोले दीपक क्यों जलते हो?
स्नेह नाम पर विष की घूंटे पीकर जगमें क्यों पलते हो?
कृत्रिम प्रेम दिखा यों दुनियां, माया जाप किया करती है।
इसीलिये तो धर्म नाम पर दुनियां, पाप किया करती है॥

-३-

उड़-उड़ उर्ध्व गगन में बादल जाता, पर कब गिरि को भाता।
क्योंकि किसी के गौरव से तो, अहं दुर्ग उसका ढह जाता॥
निम्न सदा गति जलकी होती, चढ़ने का अधिकार अरे! क्या?
चरणों में रुलनेवालों का, मस्तक पर आधार अरे! क्या?
उच्च स्वयं बन; पर को नीचा, दुनियां थाप दिया करती है।
इसीलिये तो धर्म नाम पर दुनियां पाप किया करती है॥

विश्व-शांति की सही खोज

[श्री देवीप्रसाद अहिरवार]

[विश्व-शान्ति का दिन-रात ढोल पीटने वाले व्यक्ति या राष्ट्र अपने व्यवहारिक जीवन में इस ओर कितना प्रयत्न करते हैं—यह किसी से छिपा नहीं है। आज बातों की आवश्यकता नहीं कुछ करने की अपेक्षा है।
—सम्पादक]

मानव जीवन का विकास मानवता की एक लम्बी कहानी है। उसके क्रिया-कलापों का क्षत-विक्षत लम्बा इतिहास है। अपने सतत प्रयत्नों के द्वारा उसे कभी सफलता प्राप्त हुई तो कभी असफलता को वरण करना पड़ा। लेकिन ऐसा क्यों? कारण स्पष्ट है कि जब किसी वृक्ष की जड़ें सशक्त होंगी तो उसकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ भी सुदृढ़ और उनसे अंकुरित कोंपलें भी स्निग्ध और सुन्दर होंगी।

मानव समाज को सुदृढ़ और सुस्थिर चित्त बनाने के लिए उसकी नींव का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है और वह नींव है—नैतिक एवं चारित्र्य बल पर अटल रहना। आज का मानव समाज एक-दूसरे को शंका की दृष्टि से देखता है, परस्पर की आस्था एवं सौहार्द्रता का तो जैसे लोप ही हो गया है। आखिर इसकी वजह क्या है? ऐसा क्यों होता है? वह इसलिए कि वास्तव में मनुष्य, मनुष्य जैसा नहीं है, वाह्याडम्बरों का परिधान धारण कर वैसा दिखाने का प्रयत्न करता है। वह समाज को धोखा देता है—महज़ अपना उल्लू सीधा करने के लिए। अपनों के अतिरिक्त सबको पराया और अजनबी-सा समझता है और यही संकुचित मनोवृत्ति स्वार्थ-लोलुपता की एकमात्र जननी है। वह दूसरों को, अपना स्वार्थ साधने के लिए जितना अधिक धोखा दे सकता है, स्वयं को उतना ही पटु समझ बैठता है। किन्तु यह भी सच है कि जब अग्नि बुझने को होती है तो एकबार उसकी भयंकर ज्वालाएँ इतनी ऊँची उठती हैं कि समस्त आकाश-मण्डल को अपनी प्रचण्ड ज्योति से व्याप्त कर देती हैं और फिर सदैव के लिए पृथ्वी पर राख की ढेरीमात्र के अलावा कुछ नहीं रह जातीं।

इस वैज्ञानिक युग को विद्वान लोग भले ही मानव विकास का युग कहें, किन्तु मैं तो इसे जड़तावाद का युग कहना ही पसन्द करूंगा। आज इस बात से कौन इन्कार कर सकता है कि विगत दो महायुद्ध इसी वैज्ञानिक युग के भीषण विनाशकारी दुष्परिणाम नहीं हैं? आज मनुष्य की बुद्धि ने हृदय पर अधिकार जमाकर उसे बिलकुल पंगु-सा बना दिया है। लाख प्रयत्न करने पर भी बुद्धि के सामने उसकी एक भी नहीं चलती। जबतक एक के मुकाबले में दूसरे को अनुचित बढ़ावा और प्रोत्साहन मिलता रहेगा तबतक दोनों में साम्य होना असंभव है। आज के कल्पना-जीवी मानव-समाज के मस्तिष्क में अहर्निश गलत-सही विचारों का संघर्ष निरन्तर चर्खे की माल की तरह चलता रहता है। गलत क्या है और सही क्या? इसका निर्णय करने की विवेक-बुद्धि मानों रही ही नहीं है। जिस कार्य के करने से अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाये, देश, समाज और व्यक्ति का भले ही सर्वनाश क्यों न हो जाये, वही सच्चा और सही मार्ग है।

सत्य, अहिंसा, प्रेम, अस्तेय, असंग्रह और सर्वधर्म-समभाव आदि को तो जैसे उठाकर ताक पर ही रख दिया गया है। आज कितने लोग ऐसे हैं जो संत विनोबा के "सर्वोदय-सिद्धान्त" और आचार्य श्री तुलसी के "अणुव्रत-दृष्टिकोण" को सच्चे हृदय से ग्रहण करते हैं और उसको क्रियान्वित कर औरों का मार्ग दर्शन करते हैं? यदि यह कहा जाये कि बहुत ही कम, अँगुलियों पर गिने जाने योग्य, तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी।

आज समाज में एक के घर में इतना अधिक संग्रह है कि उसके चूल्हे में रोटियाँ जल रही हैं तो दूसरे के घर में चूल्हा ही नहीं जलता। एक अपच से पीड़ित है तो दूसरा क्षुधा से पीड़ित होकर जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है। यह एक कटु सत्य है और जबतक देश में और समस्त विश्व में सन्त विनोबा के "सर्वोदय-सिद्धान्त" और आचार्य श्री तुलसी के "अणुव्रत-दृष्टिकोण" का प्रतिपादन नहीं किया जाता तब तक संसार में शान्ति स्थापित कर सकना सर्वथा असम्भव है।

आज इस बात की आवश्यकता है कि हमारे पास जो वस्तु है, उसे केवल अपनी ही न समझ कर सारे समाज की धरोहर समझें। दूसरों के कष्टों को अपना कष्ट समझें। औरों की सुविधा-असुविधा पर पहले ध्यान देना ही हमारा पहला कर्तव्य हो। हम अपने हृदय को इतना उदार और विशाल बनायें कि समस्त सृष्टि को अपने अन्दर ही देखने लग जायें और अपनी दृष्टि को इतना पैना कर लें कि सृष्टि के अणु-अणु में भी अपने-आपको विभक्त कर सकें।

मनुष्य का जीवन तो चर्खा कातनेवाली कत्तिनी के उलझे सूत के धागों जैसा ही है कि वह सूत को जितना ही सुलझाने का प्रयत्न करती है वह उतना ही उलझता चला जाता है और उसकी समस्यायें तो रहँट की घड़ियों जैसी एक के बाद एक भरती और रीतती चली जाती हैं। ये सारी समस्यायें कहीं बाहर से उत्पन्न नहीं होतीं बल्कि मनुष्य के आन्तरिक मनोविकारों की ही उपज और देन है। काँस के डाभ की नाईं चौमासे का पानी पड़ते ही बार-बार अंकुरित हो उठती है। बुराई को दूर करने के लिए बुरे आदमी की आंतरिक मनोवृत्ति की खोज करना नितान्त आवश्यक है।

आज समस्त विश्व में तृतीय विश्व युद्ध के बादल उमड़-घुमड़ कर एटमबम, उद्जनबम और हाइड्रोजन बम के रूप में घोर गर्जन-तर्जन के साथ दुनियाँ को भयभीत और आतंकित कर रहे हैं। भारतवर्ष ने दुनियाँ को पंचशील के सिद्धान्त पर चलने का बिगुल बजाया, विश्वशान्ति का एक माध्यम संसार के सामने रखा। संसार के रूस, अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस आदि बड़े-बड़े राष्ट्र शान्ति-शान्ति तो चिल्लाते हैं किन्तु अपने दिलों से, एक-दूसरे के प्रति जो शंका के विषैले कीटाणु बिलबिला रहे हैं, उनको नष्ट करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं करते। रोटी का नाम जपने से कभी किसी की भूख नहीं मिटती। शान्ति के माध्यम बिना दुनियाँ की कसमस कदापि दूर नहीं हो सकती। आज "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना का दीपक लोगों के हृदय में प्रज्ज्वलित करने की अत्यन्त आवश्यकता है। "सर्वोदय-सिद्धान्त" और "अणुव्रत दृष्टिकोण" रूपी युग-दृगों द्वारा देखकर ही विश्वशांति का सही और उचित मार्ग देखा जा सकता है। अन्यथा यंत्र युग से विश्व को कल्पनातीत क्षति होने की आशंका सदैव त्रस्त करती ही रहेगी क्योंकि संसार आज शांत और युद्ध के दुराहे पर खड़ा हुआ है।

फिल्मों में सुधार की आवश्यकता

—साहित्यसेवी श्री किसलय

आज गन्दी व सामाजिक तथा नैतिक गिरावट की फिल्मों का विरोध एक स्वर से सभी करते देखे जाते हैं। देश में अश्लील और गन्दी फिल्मों का निर्माण जिस तेजी के साथ हो रहा है, वह चिन्ता का कारण बन रहा है। यदि इन फिल्मों का सुधार निकट भविष्य में नहीं किया गया, तो समस्या और भी विकट रूप धारण कर सकती है और फिर शायद सुलझाये भी नहीं सुलझेगी। फिल्मों के जरिये देश में शिक्षा और प्रचार, चरित्र निर्माण तथा राष्ट्रोन्नति की दिशा में बहुत कुछ किया जा सकता है, यह सभी स्वीकार करते हैं। शिक्षा-प्रचार में सफलता प्राप्त करने के लिए पाश्चात्य देशों ने फिल्मों का ही आश्रय लिया है। वहाँ पर इसके द्वारा इतिहास, भूगोल और विज्ञान की शिक्षा दी जाती है; इतिहास की घटनाओं को रजत-पट पर दिखलाया जाता है। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न स्थानों का रहन-सहन, स्थिति, वेश भूषा, पैदावार तथा जलवायु का ज्ञान भी फिल्मों द्वारा कराया जाता है। वैज्ञानिक प्रयोगों, भौगोलिक विषयों एवं ऐतिहासिक तथ्यों का जितना सुन्दर तथा प्रभावोत्पादक प्रदर्शन फिल्मों द्वारा हो सकता है, उतना अन्य किसी माध्यम द्वारा सम्भव नहीं। पर, हमारे देश में फिल्म-निर्माता इन बातों की ओर ध्यान न देकर रुपये के प्रलोभन में निम्न कोटि के चित्र ही दर्शकों के सम्मुख पेश करते हैं। इतना ही नहीं, आधुनिक भारतीय फिल्मों में प्राचीन काल की आदर्श परम्पराओं तक को रूढ़िवादी और आडम्बर युक्त दिखाया जाता है, जिससे अज्ञान और अन्धविश्वास को ही प्रश्रय मिलता है। इसे मनोरंजन कहना अपने को धोखा देना है। ऐसी ही फिल्मों का यह प्रभाव है कि हमारा समाज उसके दुर्गुण-रूपी व्याधियों से ग्रस्त है। आवश्यकता है इन फिल्मों का सुधार होने की, इनमें भारतीय शील और संस्कृति लाने और इन्हें शिक्षाप्रद बनाने की, जो नहीं हो रहा है। आज तो कृत्रिम प्रेम-मिलन अथवा भोंडे विरह की फिल्मों की संख्या ही अधिक है। जहाँ ऐसी फिल्मों का निर्माण ९५ प्रतिशत हुआ है, वहाँ वीरता, भक्ति आदि की ठीक ढंग की फिल्में मुश्किल से ५० प्रतिशत होंगी। इनमें सुधार लाने के दो तरीके हो सकते हैं; पहला तो फिल्मों का राष्ट्रीयकरण करके अथवा कड़े प्रतिबन्ध द्वारा। चित्रपट को राष्ट्रोत्थान में सहायक बनाने के लिए आवश्यक है कि इनका व्यापारिक रूप समाप्त कर दिया जाय। जबतक इनमें व्यापारिक भाव रहेगा, निर्मातागण देश के हित की ओर ध्यान नहीं देंगे, बल्कि इससे रुपये ऐंठने के फेर में ही लगे रहेंगे। सुधार का दूसरा तरीका यह हो सकता है कि सरकार फिल्म निर्माताओं की संख्या को जो दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ रही है, कम कर दे और केवल उन्हीं निर्माताओं को फिल्म निर्माण का अधिकार दे, जो शिक्षा, शुद्ध मनोरंजन और भारतीय संस्कृति का पूरा-पूरा ध्यान रख सकें। इसके अलावा, यदि सरकार एक ऐसी समिति का निर्माण कर दे, जो फिल्म निर्माण के पूर्व ही उसके कथानक, टेकनीक, प्रभावोत्पादकता आदि पर विचार करने के उपरान्त फिल्म-निमाण की

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

विचार-दोहन

● *आजादी के बाद ?*

आजादी के बाद धांधलेबाजी, गड़बड़-घुटाले और भ्रष्टाचार आदि की तो मानों बाढ़ ही आ गई। इसी स्थिति का एक जीता जागता संस्मरण श्री आराधक के 'नया रास्ता' में प्रकाशित 'देश की आजादी ने क्या दिया ?' से प्राप्त करें—

"एक मेरे मित्र विहार के हैं। वे आजादी के आन्दोलन में कई बार जेल गये। आज के विहार में बने मंत्रियों, संसद सदस्यों, विधान सभाई सदस्यों से काम करने तथा जेल जाने में अगुवा रहे। आजादी के बाद कुर्सी पर जो लोग चढ़ गये उन्होंने उन्हें पूछा तक नहीं। अब उन्हें विहार सरकार ने ३००)—देने की सूचना दी है। दिल्ली से उन रुपयों को ले जाने में यदि दो-तीन चक्कर भी उन्हें लगाने पड़े तो वह मिलनेवाला रुपया राह खर्च पर ही खत्म हो जायगा। इस प्रकार आप देखिये कि राजनीति के नाम पर सारे देश के साहित्यकार और पत्रकार अस्पृश्यों के समान अलग कर दिये गये हैं। उनके जीवन भरण-रक्षण का इस आजाद देश में कोई प्रश्न ही नहीं। एक मेरे गुरुजनों में से विद्वान हैं। गुरुकुल महाविद्यालय के आचार्य रह चुके हैं। देश के प्रमुख विचारकों में उनकी गणना है। उनकी विद्वता की सराहना महात्मा गाँधी, डा० भगवानदास और श्री एम० एस० अणे ने कई अवसरों पर की है किन्तु ऐसे सम्मानित साहित्यकार को अपमानित किया, उत्तर प्रदेश के एक मंत्री के मुंह लगे कलक्टर ने। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो आज आजादी के बाद भी साहित्यकारों की सहायता तो अलग रही उनकी मान-मर्यादा तक का ध्यान नहीं रखा जाता।"

● *शक्ति, लक्ष्मी और विद्या*

समाज के लिये शक्ति, लक्ष्मी और विद्या कहाँ तक और किस रूप में आवश्यक हैं, इसकी व्याख्या के लिये देश के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री शिवाजी भावे का 'भूदान-यज्ञ' में प्रकाशित निम्न उत्तर कितना मार्मिक है—

"शक्ति शिव के पासवाली चाहिये, रावण की शक्ति नहीं। हनुमान की शक्ति, राम-भक्ति की शक्ति हो, सैनिक शक्ति नहीं। सेना का सिपाही गुणवान तो खैर होता ही नहीं, उजड्ड, शराबी, विलासी और शरीरनिष्ठ भी होता है। लक्ष्मी भी विष्णु के पासवाली चाहिये जो विष्णु के कब्जे में नहीं है, वह लक्ष्मी नहीं, अवदशा है, विपत्ति है। विद्या भी सद्विद्या चाहिये। स्वार्थी विद्या अविद्या है। विद्या से विनय प्राप्त हो। अहंकार, आप-पर भाव, भोग-विलास की वृत्ति आदि उससे निर्माण होनेवाली हो तो वह कतई नहीं चाहिये। आज जगत शाक्त बन गया है। शाक्तों के बदले लोग सेवक और भक्त बनें।

"अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्र करुण एव च"

गीता में अद्वेष, मैत्री और करुणा, इस क्रम से भक्तों के लक्षण बताये गये हैं।"

● *यह समाजद्रोह रोकें !*

आज धर्म के नाम पर क्या कुछ हो रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है। हमारी लकीर की फकीरी ने एक भीषण समस्या का रूप ले लिया है। इस दिशा में दादा श्री धर्माधिकारी के ये विचार क्या हमारी आंखें नहीं खोलेंगे—

"इस दरिद्री देश में धार्मिक संस्कार भोग-विलास के अवसर नहीं बनने चाहिये। धार्मिक विधियों के अवसर से लाभ उठाकर एक दूसरे से मिलना और साथ बैठकर खाना-पीना एक सामाजिक शुभ-व्यवहार माना जा सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं। परन्तु आज तो बेटी की शादी में दहेज का देना, बेटे की शादी में दहेज लेना, आतिशबाजियां उड़ाना, अनाप-शनाप खर्च करना सामाजिक प्रतिष्ठा का लक्षण माना जाता है। अपनी प्रतिष्ठा निबाहने के लिये 'शतदरिद्री' लोग भी दूसरों से कर्जा लेकर धूमधाम से समारोह करते हैं। इन मूल्यों को हम जड़-मूल से बदल देना चाहते हैं। इसलिये इस समय धार्मिक विधियों में तथा संस्कारों में अधिक खर्च करने के बदले सादगी और मितव्यता का आदर्श उपस्थित करना प्रतिष्ठित नागरिकों का कर्तव्य है। अगर वे ऐसा नहीं करते हैं तो नागरिक सभ्यता के विकास में बाधा डालकर अप्रत्यक्ष समाजद्रोह करते हैं।"

● *साहस का सम्बल लें !*

दहेज की दावानल ने न जाने कितनी खिलती कलियों को जिन्दा ही भून डाला है, और इस भयंकर दृश्य को देखकर श्री शरत्चन्द्र चटर्जी के मुखसे यदि 'दीदी' में प्रकाशित ये विचार निकल पड़े तो क्या आश्चर्य है—

"संसार में कोई सुधार गिरोह बांधकर नहीं होते। अकेले ही खड़ा होना पड़ता है। इसमें कष्ट है, लेकिन इस स्वेच्छाकृत अकेलेपन का दुःख एक दिन संगठित होकर बहुजनों के लिये कल्याणकारी होता है। लड़की को जो मनुष्य समझता है, केवल लड़की समझकर नहीं, वही उसके दुःख को ढो सकता है दूसरा नहीं। और केवल दुःख को बर्दाश्त करना ही नहीं, लड़की को आदमी बनाने का भार भी उसी के ऊपर है और यही पिता होने का सच्चा गौरव है।

इन बातों को मैं केवल कहने के लिये ही नहीं कह रहा हूं बल्कि मनुष्यत्व के आदर्शों का अभिमान लेकर कह रहा हूँ। आज मैं ठोकर खाकर ही यह बातें कह रहा हूँ। लड़कियों को हम लोगों ने लड़की बना रखा है। आदमी नहीं बनने दिया है।

यहां एक आपत्ति उठ सकती है कि नारी का सतीत्व तुच्छ वस्तु नहीं है और देश के लोगों ने अपनी मां, बहन, लड़की को जान-बूझकर छोटी बना रखा हो, यह भी तो संभव नहीं है। सतीत्व को मैं तुच्छ नहीं कहता। लेकिन इसी को ही नारी-जीवन का चरम और परम श्रेय समझने को भी मैं कुसंस्कार समझता हूं। अतः लड़की के पिता में इतना साहस नहीं कि वह अपनी कन्या को कुमारी रख सके तो लड़की को ही चाहिये कि वह साहस के साथ कुमारी रहने का व्रत ले। पर किसी दहेज मांगनेवाले के साथ कभी विवाह न करें।

● *खून का जनून*

अपने-पराये की दृष्टि ही स्वार्थ, अन्याय और उत्पीड़न की जननी है। काश! हम 'गीता प्रवचन' में दिये श्री विनोबा के इस दृष्टान्त से एकात्मकता का पाठ पढ़ सकें—

"एक न्यायाधीश था। उसने सैकड़ों अपराधियों को फांसी की सजा दी थी। परन्तु एक दिन खुद उसी का लड़का खून के जुर्म में उसके सामने पेश किया गया। उस पर खून का इल्जाम साबित हुआ व खुद अपने ही लड़के को फांसी की सजा देने की नौबत उस पर आ गई। पर तब वह हिचकने लगा। वह बुद्धिवाद बघारने लगा—"फांसी की सजा बड़ी अमानुष है। ऐसी सजा देना मनुष्य को शोभा नहीं देता। इससे अपराधी के सुधार की आशा नष्ट हो जाती है। खून करनेवाले ने भावना के आवेश में, जोश व उत्तेजना में, खून कर डाला परन्तु उसकी आँखों पर से खून का जनून उतर जाने पर उस व्यक्ति को संजीदगी के साथ फांसी के तख्ते पर चढ़ाकर मार डालना समाज की मनुष्यता के लिये बड़ी लज्जा की बात है, बड़ा कलंक है।" आदि दलीलें वह देने लगा। यदि अपना लड़का सामने न आया होता तो न्यायाधीश साहब बेखटके जिन्दगी भर फांसी की सजा देते रहते। किन्तु न्यायाधीश अपने लड़के के ममत्व के कारण ऐसी बातें करने लगे। वह आवाज आन्तरिक नहीं थी। वह आसक्ति-जनित थी। 'यह मेरा लड़का है' इस ममत्व से वह वाङ्मय निकला था।

● *प्रेम की प्रतिमा*

प्रेम का सम्बन्ध हृदय से है अथवा शरीर से यह एक विचारणीय प्रश्न है किन्तु 'सरिता' में प्रकाशित श्री प्रभात त्यागी के लेख का यह उदाहरण इसका कितना हृदय-स्पर्शी उत्तर दे रहा है—

"एक व्यक्ति एक महान् दार्शनिक के पास पहुँचा और बोला—"मैं जानना चाहता हूँ कि प्रेम क्या है?"

दार्शनिक ने पल भर उसे निहारा और फिर मुसकराकर कहा—"तुम प्रेम को देखना चाहते हो? सच तो यह है कि तुम प्रेम नहीं अपितु प्रेम की प्रतिमा में रमे हो। शब्दों की नाव में प्रेम की लाश बैठाई जा सकती है। सच्चा प्रेम तो केवल हृदय की वस्तु है, जो केवल महसूस होता है किन्तु जो हमेशा ही गूंगे का गुड़ बना रहता है।"

● *भागीरथ प्रयत्न की आवश्यकता*

देश के नैतिक व चारित्रिक पुनरुत्थान में सद्साहित्य की कितनी आवश्यकता है और साहित्यकार का कितना बड़ा दायित्व है यद्यपि यह सर्वविदित है तथापि 'तरुण' में प्रकाशित श्री हंसकुमार तिवारी के प्रस्तुत विचार उसी दिशा में सबल संकेत कर रहे हैं—

"आज के युग की सबसे बड़ी समस्या मनुष्य का नैतिक ह्रास है। मनुष्य की नैतिक रीढ़ के स्थान पर आज जो अनैतिकता की रीढ़ जुड़ गई है, उसे हटाने का काम राजनीति नहीं कर सकती। वह काम साहित्य और कला ही कर सकते हैं क्योंकि इनकी बुनियाद ही मनुष्यता की प्रतिष्ठा है।

ऐसी हालत में यह भी कथन है कि आज का साहित्य जनता का साहित्य बने। किन्तु जिस देश की जनता १० प्रतिशत शिक्षित हो, वहाँ उस जनता-साहित्य को पढ़ेगा कौन? यह एक समस्या है। जनता का साहित्य बने यह तो ठीक है; किन्तु अभी तक उसका माध्यम साहित्यकार तय नहीं कर पाये हैं।

साहित्य की भाव-गंगा हमारे युग-साहित्य-कारों के भागीरथ प्रयत्न से फूट तो निकली है किन्तु आज भी वह चन्द-लिखे-पढ़े लोगों के घेरे में याने शिव-जटा में ही उलझी हुई है। साहित्य की भाव-गंगा को जन-जन के लिये सुलभ करने के लिये फिर एक भागीरथ प्रयत्न की आवश्यकता है।"

दोनों में फर्क ?

साधक की हंसी में सौन्दर्य, गाम्भीर्य और गरमी होती है जिसको सुनकर लोगों में आनन्द और स्फूर्ति आ जाती है। आलसी और काहिलों की हंसी में छिछोरापन और चरित्र-भ्रष्टता साफ-साफ झलकती है। सुनते ही दिल में भय और घृणा छा जाती है। देखा, दोनों में फर्क ?

—*स्वामी शिवानन्द सरस्वती*

नियमों की अपेक्षा भावों पर बल दें !

[श्री पूर्णचन्द्र बड़ाला]

मानव स्वभाव की यह एक विशेषता है कि वह अपने साथ अन्य व्यक्तियों द्वारा सत्याचरण की आशा रखता है, न्याय चाहता है और प्रेम रत्न व्यवहार की अपेक्षा रखते हुए सहानुभूति का पात्र बनने की कामना करता है। किन्तु व्यवहार में हम देखते हैं कि ऐसा बहुत कम होता है, बल्कि होता इससे ठीक विपरीत ही है। इसका मूल कारण यह है कि मानव स्वभाव अपनी विरासत में मिले रूढ़िगत संस्कारों के कारण इस गुण को कि दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा अपने साथ चाहते हो उसको बहुत अच्छी तरह जानते हुए भी अमल में नहीं ला पाता है। कारण कि बिना सतत् प्रयत्न के जितनी जानकारी है उसके अनुसार आचरण करना सर्वसाधारण के लिये संभव नहीं होता; और इस प्रकार के आचरण में सफल होने के लिये मनुष्य को बुद्धि की अपेक्षा हृदय की अधिक आवश्यकता रहती है। यह ठीक है कि हृदय को प्रेरणा कहीं से उधार नहीं मिलती, किंतु अन्तःकरण में सोई प्रेरणा को जगाने के लिये एक प्रबल वातावरण की हर समय आवश्यकता रहती है और आज भी मानव समाज को उसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति अणुव्रत-आन्दोलन कर सकता है, किन्तु कब ? जब इसे नियम प्रधान न मानकर भाव प्रधान माना जाय !

मानव स्वभाव की विकृति की उपज है कि मानव-मानव से घृणा करता है। वह अपने ही समान रूप-रंग, हाथ-पांव, आंख-कान, नाक आदि रखनेवाले प्राणी को अपने से हीन और अपवित्र समझता है और इसीको हम अस्पृश्यता कहते हैं। मानव में जब अहम् भाव जागृत हुआ तो उसने अपने-आपको अन्यों से अधिक पवित्र माना और इस व्यवस्था को अन्यों से मनवाने के लिये उसने इस पर धर्म की मोहर लगाई। धीरे-धीरे उसके संस्कार में अहम् घुल-मिल गया। परिणामतः धर्म-मर्मज्ञों का चोटी और एड़ी का पसीना भी इन रूढ़िगत संस्कारों पर विजय नहीं पा सका, किन्तु उन्होंने समाज के इस रूढ़िगत संस्कारों के परिणाम स्वरूप उठे प्रबल विरोध के बावजूद भी अपने जीवन में इस समस्या पर समाज से समझौता नहीं किया। प्रश्न उठता है क्या आज ऐसी ही भावना हम में है ?

अणुव्रत आन्दोलन का लक्ष्य बताते हुए कहा गया है कि:—

क—जाति, वर्ण देश और धर्म का भेदभाव न रखते हुए मनुष्य मात्र को आत्म-संयम की ओर प्रेरित करना !

ख—अहिंसा और विश्व-शान्ति की भावना का प्रसार करना।

लक्ष्य की साधना के लिये कई नियमोपनियम बनाये गये हैं, किन्तु जहां तक लक्ष्य का सवाल है, वह अपने आपमें काफी स्पष्ट है, किन्तु व्यवहार में उसके पीछे जो मूलभूत भावना है आन्दोलन उससे हटकर लक्ष्य की साधना के लिये बने नियमोपनियम के इर्द-गिर्द ही अधिक चक्कर काटने लग गया है। इसके परिणामस्वरूप आम लोग इसके पीछे रही मूलभूत भावना से आज अपरिचित हैं, उन्हें केवल यही जानकारी है कि बने नियमोपनियम के शब्दों का भावना रहित जो अर्थ है, वही अणुव्रत-आन्दोलन है। यही कारण है कि आज सैकड़ों व्यक्ति जो एक लम्बे अर्से से अणुव्रत-आन्दोलन के सम्पर्क में हैं और जिनमें से कई एक अणुव्रती भी हैं—इस भावना से अपना छुटकारा नहीं करा पाये हैं कि ऊंच-नीच की भावना धर्म पर आधारित है, जाति, वर्ण आदि के भेदभाव समाप्त करने से धर्म नष्ट हो जायगा आदि-आदि, जबकि लक्ष्यकी पूर्ति के साधना स्वरूप 'अहिंसा-अणुव्रत' के पांचवें नियम में कहा गया है कि :—

"किसी भी व्यक्ति को अस्पृश्य नहीं मानूंगा।" किन्तु व्यवहार जो आज प्रचलित है उससे कोई भी अनभिज्ञ नहीं हैं। पर हमारा ध्यान उस ओर कभी जाता ही नहीं और जो कुछ व्यवहार में चलता है उसे चलता रहने देकर ही हम अणुव्रत-आन्दोलन की सफलताके स्वप्न देखते हैं। ऐसा करके हम आन्दोलन के साथ न्याय नहीं कर रहे हैं। यह एक बुनियादी प्रश्न है, जिसे हमें हिम्मत के साथ उठाना है। यह जानते हुए कि समाज इसका प्रबल विरोध करेगा। किन्तु लक्ष्य की साधना की पूर्ति बिना इस प्रश्न को पूरी ताकत के साथ उठाये असंभव है। वैसे हमें अपने रूढ़िगत संस्कारों के कारण यह प्रश्न साधारण सा दिखाई देता है, किन्तु यदि हम इस प्रश्न पर हिम्मत के साथ समाज के सामने नहीं आये तो हमारा लक्ष्य केवल पुस्तक रह जानेवाला है। इसके मूलभूत कारण की खोज में

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

महिला व नैतिक सम्मेलन

● लाडनूं (डाक से) ३१ मार्च को प्रातःकाल जब आचार्यश्री यहाँ (आचार्यश्री की जन्मभूमि) पधारे तो वातावरण में एक विचित्र आनन्द और हर्ष की लहर दौड़ गई। लगभग १० सहस्र भाई-बहनों के बीच आचार्यश्री के स्वागत का आयोजन हुआ। स्थानीय नगर कांग्रेस के प्रधान श्री सुखदेव शर्मा दीपंकर व नगरपालिका के अध्यक्ष श्री जेठमल शर्मा ने आचार्य प्रवर के स्वागत में भाषण किया व अभिनन्दन-पत्र पढ़ा।

४ अप्रैल को दोपहर में आचार्य श्री के सान्निध्य में महिला-सम्मेलन का आयोजन रखा गया जिसमें महिलाओं ने बड़ी संख्या में भाग लिया। आचार्य श्री के अतिरिक्त सुश्री गुलाबकुमारी वैद, उमराव कुमारीजी भुतोड़िया व शिक्षार्थिनी जतनकुमारीजी ने भी प्रस्तुत आयोजन में अपने विचार प्रकट किये।

५ अप्रैल को नैतिक सम्मेलन का कार्यक्रम रखा गया जिसमें नगर के सभी वर्गों के भाई-बहिनों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। छात्र और छात्राओं की भी खासी उपस्थिति थी। नैतिक विकास के लिये आचार्यश्री ने आत्म-शुद्धि व जीवन की पवित्रता पर जोर दिया। प्रस्तुत आयोजन में आचार्यश्री के सम्मान में कई कवितायें भी पढ़ी गईं।

अणुव्रतियों से !

शील और चर्या के नियम नं० ११ में "वृहत् जीवनवार नहीं करूंगा और न उसमें भोजनार्थ सम्मिलित होऊंगा।" का स्पष्टीकरण (वृहत् जीमनवार की व्याख्या)—

क— जिस जीमनवार में दोनों पक्षों की ओर से २५०+२५० कुल ५०० से अधिक व्यक्ति भोजनार्थ सम्मिलित होंगे वह वृहत् जीमनवार कहलायेगा।

ख—जीमनवार के पूर्व चौके पर जीमनेवाले या काम करने के लिये रखे जानेवाले व्यक्ति इस संख्या में सम्मिलित नहीं होंगे।

ग—तीन वर्ष से ऊपर की व बारह वर्ष से नीचे की अवस्थावाला बालक आधे व्यक्ति की संख्या में गिना जायेगा।

घ—विवाह के अलावा अन्य जीमनवार में २५० से अधिक की संख्या नियम में बाधक होगी।

ङ—दूसरे गांव बरात में १०० से अधिक व्यक्तियों को ले जाना वृहत् भोज का ही एक प्रकार माना जायेगा। बाजेवाले इस संख्या में नहीं गिने गये हैं।

च—जिस गांव में बरात जाये, वहां के स्थानीय व्यक्तियों के सिवाय बाहर से आनेवाले सभी बराती १०० की संख्या में ही गिने जायेंगे।

छ—वर पक्ष की ओर से बरात में शामिल होनेवाले बराती व स्थानीय व्यक्ति यदि २५० से अधिक हों तो वह नियम में बाधक होगा।

ज—दूसरे पक्ष की संख्या वृद्धि के लिये अणुव्रती अपने पक्ष की संख्या कम करे और वह संयुक्त संख्या ५०० से अधिक नहीं हो तो वह वृहत् की सीमा में नहीं आयेगा।

झ—सामूहिक चन्दे से किया जानेवाला भोजन वृहत् भोज में शामिल नहीं होगा।

ञ—जिस कुटुम्ब में अणुव्रती के मना करने पर भी यदि वृहत् जीमनवार किया जाये तो वह अणुव्रती के नियम में बाधक नहीं है, बशर्ते कि वह उस भोज में सम्मिलित न हो।

नारी जागरण की सही दिशा

श्रीमती हुलासीबाई भुतोड़िया
उपाध्यक्षा, अ० भा० अणुव्रत समिति

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम विदुषी पाठिकाओं की बहुमूल्य रचनायें व विचार सादर आमंत्रित करते हैं। सरस और संक्षिप्त रचनाओं को प्राथमिकता दी जायगी। —सम्पा०]

पुरुष और नारी—दोनों समाज के जरूरी अंग हैं। दोनों का सही रूप में विकास हो, इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। एक की उन्नति के बिना दूसरा अधूरा है। पर दुःख की बात है कि हालत कुछ ऐसी ही है। यदि नारी समाज की ओर हम नजर दौड़ायें, तो उसे बहुत पिछड़ा हुआ पायेंगे। ऐसा होने में पुरुष वर्ग का भी कुछ कम अपराध नहीं है। पढ़ना, लिखना, सार्वजनिक और जनसेवा के कार्यों में भाग लेना जैसे जिन्दगी के बहुत जरूरी पहलुओं से पुरुष ने नारी को अलग रखा। ऐसा कर उसने अपने लिये कोई लाभ नहीं पाया। बल्कि नुकसान ही उठाया। क्योंकि समाज का आधा अंग जो शिक्षित, जानकार और खुले दिल का होता तो समाज की उन्नति के लिये बहुत काम का साबित होता, वह वैसा नहीं हो सका। पर मैं बहिनों से पूछना चाहूंगी कि पुरुषों ने यदि इस ओर लापरवाही बरती तो क्या बहिनों को निश्चेष्ट रहना चाहिये, क्या उन्हें अपनी उन्नति के लिये कोशिश नहीं करनी चाहिये?

कितने दुःख की बात है, बहिनों का जीवन दिन पर दिन गिरावट की ओर जा रहा है। बाहरी दिखावा और फैशनपरस्ती जीवन में घर करती जा रही है। जिन्दगी का सच्चा ध्येय क्या है, इसका हमें भान तक नहीं। यह हमारी सबसे बड़ी कमी है। जीवन में सादगी और सरलता का बहुत बड़ा स्थान है। ऊंचे जीवन की यह सही निशानी है। इससे अभिमान मिटता है, अहंकार दूर होता है। बहिनों को चाहिये कि वे अपने रहन-सहन, पहनावा, खानपान आदि जीवन के हर पहलू में सादगी भरें। विलासिता से आज जीवन मिटता जा रहा है। क्योंकि उसके लिये साधन पैदा करने के वास्ते अधिक पैसे की जरूरत पड़ती है। अधिक पैसा पैदा करने के लिये शोषण में पड़ना पड़ता है। इसका मतलब यह हुआ कि इससे जीवन ज्यादा से ज्यादा बोझिल बनता जाता है। जीवन जितना बोझिल बनेगा उतनी ही अशान्ति बढ़ेगी।

हमारा खानपान आज बहुत बिगड़ता जा रहा है। चटकीले, चरपरे, मीठे पदार्थ खाने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ रही है। सिर्फ जीभ का स्वाद ही इसका कारण है। अगर इससे होने वाले लाभ-नुकसान में हम जायें तो पता चलेगा कि तन्दुरुस्ती को ये बुरी तरह बिगाड़नेवाले हैं। सादे खान-पान में जहां एक ओर मितव्ययिता की दृष्टि में, वहां दूसरी ओर तन्दुरुस्ती को भी वह सुधारनेवाला है। मेरा अपना अनुभव है, जबसे मैंने प्राकृतिक चिकित्सा के अनुरूप सादा, मोटा खान-पान शुरू किया मेरे स्वास्थ्य में बहुत बड़ा लाभ पहुँचा। मेरी अनेक भयानक बीमारियां दूर हो गईं। यह भोजन कोई बेस्वाद लगता है, ऐसा भी मुझे अनुभव नहीं होता। मुझे तो उसमें बहुत अच्छा जायका अनुभव होता है। वास्तवमें जीवन खाने के लिए नहीं है, खाना जीवन के लिए है।

यह तो हुई रहन-सहन और खानपान की बातें। खानपान और रहन-सहन में जिस तरह सादगी, सरलता की जरूरत है, विचारों में भी ऊंचापन और सीधापन होना चाहिये। जीवन का हर व्यवहार प्रेम, मित्रता और सद्-भावनासे भरा होना चाहिये। खासतौर से बहिनों में आपसी प्रेम की वृत्ति की बहुत बड़ी जरूरत है।

हम देखती हैं—घर में देवरानी, जिठानी, ननद, सास, बहू आदि में सदा झगड़े चलते रहते हैं। ये सब आपसी प्रेम के अभाव के कारण होते हैं। एक दूसरी को ठंडी आंखों से देखना नहीं चाहती। यह कितनी ओछी बात है। बहिनों का दिल विशाल होना चाहिये। उनको तो यह खुशी माननी चाहिये कि कितने पारिवारिक लोगों के बीच उनका रहना हो रहा है, जहां आपस में सब एक दूसरे के दुःख-सुख के साथी हैं।

यदि बहनें चाहें और कोशिश करें तो वे अपने घर का, परिवार का वातावरण फौरन बदल सकती हैं। उसमें ईर्ष्या और द्वेष की जगह सद्भाव और सहयोग पैदा कर सकती हैं। लेकिन इसके लिये उन्हें सबसे पहले अपने मन को उजला करना होगा। उसे प्रेममय बनाना होगा। दूसरों के आराम और सुख में अपना सुख मानना होगा, जबतक यह भावना नहीं पनपेगी तब तक कुछ बनने का नहीं।

अपने-अपने विचार—

भ्रष्टाचार कैसे मिटे ?

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत उपरोक्त विषय पर इसी तरह हमारे पाठकों, कार्यकर्ताओं और साथियों के विचार प्रकाशित होते रहेंगे। विचार संक्षिप्त और स्पष्ट लिखकर कार्यालय में भेजें, उनको क्रमानुसार प्रकाशित किया जायगा। प्रकाशित विचारों का उत्तरदायी स्वयं लेखक होगा। —सम्पादक]

नैतिकता का दीप जलाने से

[श्री विजयकुमार जैन 'मधुप']

भारत स्वतन्त्र हुआ, दासता की बेड़ियाँ खनखनाकर दूर जा पड़ी परन्तु समाज भ्रष्टाचार-दानव के कठोर पाश में पड़ा हुआ अब भी तिलमिला रहा है। देश का मान अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अवश्य बढ़ा है लेकिन देश के नागरिकों एवं भावी कर्णधारों की ओर दृष्टिपात करने पर मालूम होगा कि वे किस पथ की ओर अग्रसर हो रहे हैं। देश की उन्नति के लिए योजनाएँ बनाई जाती हैं लेकिन भ्रष्टाचार के कारण पूर्णरूपेण सफल नहीं हो पाती। भाखड़ा नांगल में कथित भ्रष्टाचार इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। देशके नागरिकों का चारित्रिक पतन होता जा रहा है तथा नागरिकगण भौतिकता की चकाचौंध में पड़कर पश्चिम की ओर अग्रसर हो रहे हैं। अगर देशके प्राचीन गौरव को पुनः स्थापित करना है तो पहले इस भ्रष्टाचार को मिटाना होगा।

अगर इस भ्रष्टाचार का कारण देखा जाय तो मालूम पड़ेगा कि वह है……त्याग मार्ग से अरुचि तथा भोग-विलास में आसक्ति। आज का मानव भोग-विलास में लिप्त होकर अपनी मानवता को भूलता जा रहा है। अपनी सुख-सुविधा के लिए वह नैतिक-आदर्शों को छोड़कर जघन्य से जघन्य कार्य करने पर उतारू हो जाता है बस यहीं से भ्रष्टाचार का जन्म होता है। विचारा कम वेतनवाला अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ होने के कारण भ्रष्टाचार का उपाय अपनाता है। तो क्या आर्थिक-विषमता को दूर करने से भ्रष्टाचार मिट सकता है? लेकिन हम देखते हैं कि उच्च पदाधिकारी भी इससे अछूते नहीं। इसका कारण मानव की संग्रह-वृत्ति और त्याग-मार्ग की उपेक्षा है।

सरकार भ्रष्टाचार के निराकरण के लिए कानून बनाती है तत्सम्बन्धी भ्रष्टाचार निरोधक समितियों की स्थापना करती है लेकिन उनमें भी भ्रष्टाचार चलने लगता है—दूसरी बात कानून से हृदय-परिवर्तन नहीं हो सकता। भाव-क्रान्ति से हृदय-परिवर्तन हो, तभी भ्रष्टाचार मिट सकता है। हम देख चुके हैं कि भ्रष्टाचार का मूल कारण मानव की त्याग-मार्ग से अरुचि तथा भोग-विलास में आसक्ति ही है। अगर हम त्याग-मार्ग पर चलें तो भ्रष्टाचार मिट सकता है। हृदय-परिवर्तन के द्वारा ही यह सब कुछ सम्भव है। व्यक्ति सुधार ही समष्टि सुधार है। व्यक्ति-व्यक्ति में नैतिकता के प्रसार से ही राष्ट्र की उन्नति होनी सम्भव है। व्यक्ति सुधार "सादा जीवन और उच्च विचार" से ही सम्भव है। 'अणुव्रत' आन्दोलन के द्वारा ऐसा ही प्रयत्न हो रहा है। "अणुव्रत" मानवता, चरित्र विकास एवं त्यागमय मार्ग का आन्दोलन है। अणुव्रत-आन्दोलन व्यक्ति २ में प्रामाणिकता, सत्यनिष्ठा, सन्तोष व ईमानदारी लाना चाहता है। घर-घर में नैतिकता के प्रकाशक 'अणुव्रत' प्रदीप के फैलने से ही भ्रष्टाचार का तम दूर होना सम्भव है।

हृदय-परिवर्तन से

[श्री देवेन्द्र हिरण]

आज का संसार क्षुब्ध है, अशान्त है। त्राहि-त्राहि की आवाज चारों ओर से गुञ्जारित हो रही है। मानव सुख चाहता है शान्ति चाहता है अपने जीवन को सुखप्रद, वैभवशील व प्रगतिशील बनाना चाहता है। विचारों व भावनाओं का पुतला मानव क्रान्ति चाहता है। उत्थान चाहता है। मगर यह भी कभी सोचनेकी हिम्मत की कि क्षमता, योग्यता व सहिष्णुता के अंकुर मानवमात्र के दिलों में उत्पन्न है या नहीं, सुख की मोड़ तक पहुँचना आज के युगानुसार चकाचौंध प्रवृत्तियों के आधार पर बड़ा असंभव प्रतीत होता है।

समाज में किस प्रकार के भ्रष्टाचार अपना अड्डा जमाये हुए हैं? कहीं वेश्या उन्मूलन वृत्ति का विरोध सुना जाता है। कहीं जालसाजी व ठगी के कारनामों से मानव गिरफ्तार होता है। कहीं चोर बाजारी से दण्डित मानव जुर्माने का शिकार बनता है। कहीं रिश्वतखोरी व बेईमानी के आधार पर मानव कलंकित है। शान्ति के युग में अशान्ति क्यों? सरकार भी इन प्रवृत्तियों से परेशान है। आये दिन नये २ कानून निर्धारित करने पड़ते हैं।

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

(पृष्ठ १२ का शेषांश)

आनन्द से अहं की उत्पत्ति है—वही जो अनहद नाद है, जिसे आचार्यश्री तुलसी ने 'शान्ति' और 'तुष्टि' का रूप दिया है और बौद्धों ने 'निर्वाण' तथा वेदान्तियों ने 'आनन्द' के रूप में स्वीकार किया है।

अणुव्रत-आन्दोलन की दूसरी महत्वपूर्ण वस्तु व्यक्ति पर कुछ न लादकर उसे ही चुनने का अधिकार देता है। किसी प्राचीन धर्म की पुस्तक को उठा देखिये और आप देखेंगे सारा धर्म निषेधात्मक है। शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जो उनकी दृष्टि से पापी न हो। 'पाप' का यह सतत् दर्शन हमें कालुष्यमय बनाता है। अणुव्रत-आन्दोलन हमें ही चुनने का अधिकार देता है और प्रत्येक व्यक्ति में 'हित-अनहित' की स्वतन्त्र संज्ञा स्वीकार करते हुए उसे प्रज्ञाशील प्राणी बनाता है। स्पष्ट है नैतिकता के इन दो अमूल्य सिद्धान्तों की ओर अणुव्रत-आन्दोलन की दृष्टि है और यही इस आन्दोलन की विशेषता है। सम्भवतः कल आचार्यश्री तुलसी न रहें और उनसे बड़ा कोई आचार्य इस आन्दोलन में हिमालय बने पर यह मानना पड़ेगा कि आज के भौतिकवादी युग में आचार्यश्री तुलसी का यह प्रयत्न सिन्धु में एक तिनके के सदृश होकर भी श्लाघनीय और अभिनन्दनीय है।

(पृष्ठ १६ का शेषांश)

तो थोड़े ही मनुष्य हो सकते हैं परन्तु वातावरण ज्यों-ज्यों स्वच्छ होता जायगा त्यों-त्यों अणुव्रतधारियों की कठिनाइयां कम होती जायेंगी। भविष्य अन्धकारमय नहीं है, यह मेरा निश्चय है। मैं मानता हूं कि धर्म और कर्म के बीच जो एक खाई बन गई है वह दूर हो जायगी और एक दिन यह विश्वास मनुष्य जाति कार्य रूप में परिणत करेगी कि जो धर्म है वही कर्म है। धर्म का विरोध साम्यवाद ने जिस भूल से किया है वह उसकी वर्तमान विकृत अवस्था है। अणुव्रत-आन्दोलन जैसा आन्दोलन इस भूल का जवाब ही नहीं, वरन् वह उसे दूर भी कर सकता है।

(पृष्ठ २० का शेषांश)

गण इस तरफ पूर्ण सचेष्ट हैं। जीवन का भला व बुरा तथा तात्त्विक बातों के लिए ज्ञान की परम आवश्यकता मालूम होती है। उदाहरणार्थ अपने गांव में चुनाव होता है। अगर नारी समाज में सोचने की बुद्धि होगी कि जिस आदमी द्वारा गांव समाज व राष्ट्र का भला हो सकता है उसे ही वोट दिया जाय, तो हम ग्राम का, देश का सुधार कर सकते हैं।

अतः नारी समाज को आज बहुत से कार्य करने हैं। सर्व प्रथम उन्हें पुरुष वर्ग को जागृत कर सही रास्ते पर लाना है। यह कार्य नारी ही सुगमता से कर सकती है। एक प्राचीन कहावत है कि परिवार की एक सुशिक्षित स्त्री सारे परिवार को सुशिक्षित बना सकती है।

अणुव्रत आन्दोलन का घोष भी यही है। आशा है कि बहिनें स्वयं अणुव्रती बनकर अपने पति, भाई, व लड़कों को भी अणुव्रती बनने की प्रेरणा देकर नये नैतिक समाज की सृष्टि करेगी।

पुराने ग्रंथों में सैकड़ों ऐसे उदाहरण मिलेंगे। जैसे राजा श्रेणिक अपनी रानी चेलणा द्वारा ही सुपथगामी बनाया गया था। आज जितनी भी विलासिता व अलंकारप्रियता आदि बुराइयां हैं उनको वे त्यागें। अब जमाना श्रमकर रोटी खाने का है। अगर हम अभी से सम्भल कर नहीं चलेंगे तो भविष्य में तकलीफों का सामना करना पड़ेगा। अतः हम सब को अणुव्रती बनकर एक आदर्श नागरिक बनना चाहिए।

(पृष्ठ २२ का शेषांश)

अनुमति प्रदान करे, तो सेंसर की असावधानी से होने वाले दोष तो मिट ही जायेंगे, साथ ही ऐसी फिल्मों का निर्माण हो सकेगा, जिनमें राष्ट्र कल्याण की आशा ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण विश्वास भी किया जा सकता है। आज हमारे फिल्म निर्माण का उद्देश्य होना चाहिए, पीड़ित जनता के लिए सहनशीलता का भाव, आशा एवं आकांक्षा राष्ट्र के लिए त्याग और समाज के कल्याण के लिए समुचित पथ-प्रदर्शन। फिल्म निर्माताओं को चाहिए कि वे ऐसी फिल्मों का भी निर्माण करें, जिनमें प्राचीन काल के महापुरुषों एवं महात्माओं के अच्छे गुणों एवं कार्यों का दिग्दर्शन कराया गया हो, जिससे दर्शकों को ज्ञान हो और वे स्वयं भी वैसे कार्यों को करके मानव समाज के सम्मुख आदर्श उपस्थित कर सकें। इसके साथ ही साथ फिल्म-निर्माताओं को ऐसी फिल्मों का भी निर्माण करना चाहिए, जिनमें प्राचीन काल के वैज्ञानिकों के आविष्कारों को चित्रित किया गया हो, जिनसे दर्शक यह जान सकें कि उस वैज्ञानिक ने कब और किस तरह से अमुक वस्तु का आविष्कार किया।

(पृष्ठ २५ का शेषांश)

हम जायें तो यह एक निर्विवाद बात है कि अस्पृश्यता और ऊँच-नीच की भावना मानव-मानव के बीच घृणा के आधार पर खड़ी हुई है और मनुष्य के हृदय के किसी कोने में बैठ अहम् की इससे पुष्टि ही होती है। यह एक स्पष्ट हिंसा है जिसके समाज में रहते विश्व-शांति स्वप्न में भी संभव नहीं। भला मानव-मानव के बीच घृणा के व्यवहार को समाज में कायम रखकर हम विश्व-शांति की कल्पना भी कैसे कर सकते हैं? इसलिये इस आन्दोलन का केवल नकारात्मक स्वरूप ही दुनिया के सामने

रखकर हम चैन की स्वांस न ले लें, बल्कि इसके सही-सही स्वरूप को मूलभूत भावना और उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए इस प्रकार के व्यवहार को प्रचलित करें, जिससे समाज के सभी तत्वों तक इस आन्दोलन की पहुँच संभव हो जाय।

(पृष्ठ ७ का शेषांश)

मूल में प्रेम और समानता की भावना थी, न कि उत्पीड़न और आत्मवरिष्टता की। इसलिए भारतीय नीति देश और विदेश में सफल हुई। वास्तव में अतीत भारत के विजेता और व्यापारी उच्च मानवीय आदर्शों से अनुप्राणित साहसी व्यक्ति थे। वे स्वदेश की आर्थिक उन्नति तथा राजनैतिक दृढ़ता के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। साथ ही उन्होंने देश के बाहर मैत्री और शान्ति का सन्देश प्रचारित करने में में महत्वपूर्ण योग दिया।

(पृष्ठ ८ का शेषांश)

पूर्णिया

यह विहार राज्य का एक जिलास्थल है। प्राचीन समय में यहां नवाब का राज्य रहा है। प्राकृतिक दृष्टि से यह एक हरा-भरा और सुन्दर स्थान है। गुलाबबाग, मधुवन आदि विभिन्न उपक्षेत्रों के नाम भी बड़े सुन्दर हैं। लेकिन साधारण लोगों में दरिद्रता का अभास अधिक मिला।

यहां हमारे मन पर श्री गुलाबचन्द वैद व श्री फतेहचन्द रांका के व्यक्तित्व का प्रभाव सर्वाधिक पड़ा। अत्यन्त सरल व सौम्य प्रकृति के निष्ठावान कार्यकर्त्ता हैं और इनका यहां के सामाजिक क्षेत्र में अच्छा प्रभाव भी है।

श्री गुलाबचन्द वैद ने हमारे जाने से पूर्व लगभग दस-पन्द्रह ग्राहक बनाकर भी भेजे हैं। इनके और श्री मांगीलाल दूगड़ का सहयोग पाकर कुछ और ग्राहक बने तथा श्री गुलाबचन्द स्वयं आजीवन सदस्य बने।

समय सिर्फ दो घंटे का ही मिला। अन्यथा यहां बहुत कुछ काम की आशा थी।

(पृष्ठ २८ का शेषांश)

मगर सुख लिप्सा में भूला मानव उन विधानों की अवहेला करता है। प्रति दिन समाचार पत्रों में—भ्रष्टाचार मूलक घटनाएँ पढ़ा ही करते हैं जिससे पढ़नेवालों को व सुननेवालों को दाँतों तले उंगली दबानी पड़ती है। मगर यह व्यवहार मिटेगा कैसे—क्या कोई उपाय भी है। कोई सूझ भी हो। जिसके आधार पर मानव चलकर नैतिकता के स्वच्छंद क्षेत्र में जीवन यापन कर सकें।

आज मानव में जो मानवता की कमी है, नैतिक दृष्टिकोण का परिहास है। सत्य, त्याग, ब्रह्मचर्य मानव जीवन से कोसों दूर हैं, उस ओर बढ़ना होगा। नैतिक चारित्रिक शुद्धियों के बीजों का प्रसव करना होगा। मानव में मानवता व इन्सान में इन्सानियत का खून भरना होगा। अहिंसा का पाठ पढ़ाना होगा। ईमानदारी का सच्चा रहस्य बताना होगा। हृदय परिवर्तन कर उसमें नैतिकता का संचार करना होगा। तब संभव कि मानव उक्त प्रवृत्तियों को अपनाकर सुखकी सांस ले सके और संसार में एक उच्च आदर्श उपस्थित कर सके। व इस प्रकार की विचार-धाराओं का प्रचार व प्रसार कर व्यक्ति २ को इस नये मोड़ की राह दिखायेगा।

(पृष्ठ ३१ का शेषांश)

चारित्रिक उत्थान-पतन व्यक्तिगत मनोभावों पर निर्भर करता है अन्यथा अनेक प्रकार के ग्रन्थों का अध्ययन करनेवाले दिग्गज विद्वान् आलोचक भी चरित्रहीन हो जाते। वज्रयानी बौद्धों के, सिद्धों के, नाथ पंथियों के युग में सारा देश चरित्रहीन था। सभी साधु-संत विलासिता के पंक में डूबे हुये थे, चरित्रवान् व्यक्तियों का सुतरां अभाव था यह मानने में हमें महान् आपत्ति है, चाहे इतिहास कुछ भी कहे, किसी सम्प्रदाय विशेष के संत के मन को संपूर्ण समाज या देश का आदर्श सिद्ध करना उचित नहीं।

अन्त में इतना अवश्य कहना पड़ता है कि वाजपेयीजी ने रहस्यवाद का गंभीर अध्ययन किया है, उनके विचार ओजस्वी हैं, उन्होंने इस छोटी सी पुस्तक में जिस विद्वत्ता से विषय का प्रतिपादन किया है, स्पृहणीय है। अश्लील साहित्य का सृजन करनेवालों को उनकी यह अपरिहार्य चुनौती है, यद्यपि उनका दृष्टिकोण प्राचीन है फिरभी अत्यधिक उपादेय है, साहित्य की आलोचना में ऐसा प्रयास सत्य की स्थापना करता है।

—पीताम्बर शास्त्री

भूल सुधार

अणुव्रत के गत १५ फरवरी ५६ के अङ्क में पृष्ठ २१ पर श्रीतोताराम शर्मा 'पंकज' (तथाकथित लेखक) द्वारा प्रेषित 'विजय तो निश्चित है' नाम से जो लेख प्रकाशित हुआ, वह सस्ता साहित्य मंडल, न० दि० से प्रकाशित 'दिव्य जीवन' पुस्तक के एक लेख की प्रतिलिपि मात्र है।

अनजाने में हुई इस भूल का हमें अत्यन्त खेद है। आशा है हमारे सहृदय पाठक व उपरोक्त पुस्तक के प्रकाशक इसके लिये क्षमा करेंगे।

—सम्पादक

[समालोचनार्थ पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियाँ कार्यालय में भेजनी चाहिये]

काव्य में रहस्यवाद:—पं० किशोरी दास वाजपेयी, प्रकाशक—हिमालय एजेन्सी, कनखल (उ० प्र०) पृ० ३२ मूल्य ६ आना।

पं० किशोरीदास वाजपेयी ने इस लघुकाय पुस्तक में, रहस्यवाद शब्द पर पर्याप्त प्रकाश डालने का प्रयास किया है। तत्वतः उनका उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य से वासनात्मक विचारों का मार्जन करना है। जैसा कि उन्होंने 'रोड़े बने' शीर्षक लेख में 'सम्मेलन' के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर घटित अपने कुछ अनुभव व्यक्त करते हुए साहित्यिकों के नैतिक पहलू की ओर स्पष्ट संकेत किया है। जहां तक साहित्य में नैतिक एवं सांस्कृतिक स्तर का सम्बन्ध है हम वाजपेयी जी के विद्वत्तापूर्ण विचारों के समर्थक हैं। परन्तु उन्होंने रहस्य वादी साहित्य का पाठ्यक्रम से बहिष्कार करने पर जो बल दिया है वह विचारणीय है। वाजपेयीजी स्वयं स्वीकार करते हैं कि रहस्यात्मक साहित्य थीसिस जो लिखी जायेगी वह किसके काम की होगी? इसका कुछ भी निर्देश नहीं किया गया है। क्योंकि एम० ए० तक के छात्रों को रहस्यात्मक काव्यों का अध्ययन न करने की सलाह दी गयी है। अतः 'काव्य में रहस्यवाद' स्वतः रहस्य सा प्रतीत होता है।

वाजपेयीजी ने रहस्यवाद के मूल का आलोचन ऐतिहासिक दृष्टिसे किया है, उन्होंने साहित्यिक उतार चढ़ाव को इतिहास के पन्नों में खोजने की चेष्टा की है। उनके अनुसार भारत में रहस्यवाद का सृजन सिद्धों की वाणी से प्रारम्भ हुआ है। चौरासी सिद्ध शीर्षक लेख इस तथ्य की ओर दबा हुआ संकेत करता है, ऐतिहासिक आधार पर किसी वाद विशेष की गवेषणा करना व्यर्थ मूंड मारना है। इतिहास और साहित्य दोनों भिन्न-भिन्न तत्व हैं। उनका क्षेत्र तथा उद्देश्य दोनों अलग हैं। साहित्य जीवित समाज का आदर्श लेकर चलता है और इतिहास सदैव मृत समाज का। अतः इतिहास साहित्य की अपेक्षा कनीयान् है। साहित्य, समाज का दर्पण है। उसमें हम युगीन आदर्शों का प्रतिबिम्ब देखते हैं, साहित्य – सदा क्रमागत परिस्थितियों से प्रभावित होता रहता है। वह एक ही मार्ग पर एक ही गति से न कभी चला न चल सकता है। वैदिक काल के साहित्य से आधुनिक साहित्य तक जो परिवर्तन देखने में आते हैं वे इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। अतः रहस्य शब्द को सशंकित दृष्टि से देखने की अपेक्षा विश्वस्त दृष्टि से देखना अधिक श्रेयस्कर है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने ईश्वर के के अव्यक्त स्वरूप को "रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु" कहा है अरूप में रूप का, अरेख में रेखा का, अजाति में जाति का, युक्ति रहित में युक्ति का, निर्गुण में गुण का आरोप करना ही वास्तविक रहस्यवाद है, पहुंचे हुए सन्त महात्माओं को ही ईश्वरीय चर्चा करने का अधिकार है सामान्य जन को नहीं ऐसा मानने में हम असमर्थ हैं।

न जाने नक्षत्रों से कौन,
निमंत्रण देता मुझको मौन

× × ×

तब चमक जो लोचनों को मूँदता।
तड़ित की मुसकान में वह कौन है।

× × ×

कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित?
कौन प्यासे लोचनों में घुमड़ फिर भरता अपरिचित?

× × ×

बिजुली माला पहने फिर, मुसकाता सा आँगन में,
हाँ कौन बरसा जाता था, रस बूँद हमारे मन में?

इन पंक्तियों में वासनाभिभूत मन की गंध खोजना उचित नहीं। समष्टि की अनुभूति व्यक्त करना वासना कदापि नहीं है। स्वयं तुलसीदासजी ने अपने इष्ट को—"कामिहि नारि पियारी जिमि" प्रिय लगने की कामना व्यक्त की है। क्या उनके मानस को इतने से ही मलीमस समझा जाय? यदि काव्य में श्रृंगारिकताको सदोष कहा जाय तो कालिदास भवभूति, बाण, श्रीहर्ष आदि संस्कृत के धुरंधर कवियों की रचनाओं को भी दूध की मक्खी की तरह दूर फेंक देना चाहिये।

[शेषांश पृष्ठ ३० पर]

श्री प्रतापसिंह वैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं
रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित

अङ्क १४

आत्म विवेक झटपट प्राप्त नहीं हो जाता—इसके लिये भारी साधना की आवश्यकता है। महर्षि जनों को बहुत पहले से ही संयम पथ पर दृढ़ता से खड़े होकर काम-भोगों का परित्यागकर, समतापूर्वक स्वार्थी संसार की वास्तविकता को समझकर अपनी आत्मा की पापों से रक्षा करते हुए सर्वदा अप्रमादी रूप से विचरना चाहिये।

जो मनुष्य ऊपर-ऊपर से संस्कृत जान पड़ते हैं परन्तु वस्तुतः तुच्छ हैं, दूसरों की निन्दा करनेवाले हैं, रागी-द्वेषी हैं, परवश हैं, वे सब अधर्माचरणवाले हैं—इस प्रकार विचारपूर्वक दुर्गुणों से घृणा करता हुआ मुमुक्षु शरीर-नाश पर्यन्त केवल सद्गुणों की ही कामना करता रहे।

आत्मा ही अपने दुखों और सुखों का कर्ता तथा भोक्ता है। अच्छे मार्ग पर चलनेवाला आत्मा मित्र है, और बुरे मार्ग पर चलनेवाला आत्मा शत्रु है।

—भगवान् महावीर

१ मई १९५६

अणुव्रत के विषय में—

कौन क्या कहता है ?

"संसार में मासिक व वृत्तपत्रों की कोई कमी नहीं है। मगर कार्य-निर्माण की गति उतनी ही मंद है। मैं ऐसे वृत्त पत्रों को बहुत जरूरी समझता हूँ, जिनका कार्य नैतिक सुधार करना, घूंसखोरी बन्द करना, व्यसनों को छोड़ना और लोगों को अध्यात्म-प्रेमी बनाना है।

इसकी पूर्ति के लिये अणुव्रत समिति की ओर से जो यह'अणुव्रत' पत्र निकल रहा है, मैं उसकी उन्नति चाहता हूं। जो जनसेवा का काम करें। और आचार्यतुलसी जी का तो आशीर्वाद इसको रहेगा ही क्योंकि यह अणुव्रत संघ (आन्दोलन) उन्हीं की देन है। यह पत्र पक्षापक्ष में न पड़े यह मेरी अपेक्षा है।"

(संत) तुकड्यादास, बंबई

" 'अणुव्रत' का अंक मिला। धन्यवाद। अंक सुन्दर है। हर प्रकार के भ्रष्टाचार की बाढ़ को रोकने के लिये आपका सत्प्रयास सुदृढ़ बाँध का कार्य करेगा, ऐसा विश्वास है। आशा है 'अणुव्रत' नैतिक उत्थान की महाक्रान्ति में सक्रिय सहयोग देता रहेगा। शुभ कामनाओं के साथ"

—विनोद रस्तोगी, कानपुर

" ... सदाचार की ओर अग्रसर करने की सामग्री से युक्त यह पत्र आज के नैतिक पतनवाले युग में मानव समाज के लिये निश्चय ही अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। इस सुन्दर और जन-कल्याणकारी प्रयत्न के लिये हार्दिक बधाई।"

—वेद प्रकाश सम्पा० सोमूदादा, देहली

" इस पत्रिका ने नैतिक जागरण का अग्रदूत वास्तविक रूप में बनकर समाज का स्तर ऊँचा करने में सफल प्रयत्न किया है। वर्तमान युग में अनेकानेक पत्रिकायें निकल रही हैं परन्तु इस पत्रिका की भांति किसी ने भी समाज का मार्ग-प्रदर्शन नहीं किया। इसका कार्य स्तुत्य है।"

—शान्ति कुमारी चौहान, वाराणसी.

"अणुव्रत साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विकास का प्रतीक है। युग की रेखाओं में मचलते स्वप्नों को साकार करने में यह समर्थ सिद्ध हो सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।"

—सृजन, फर्रुखाबाद

"निःसन्देह रोगी समाज को निरोग करने के लिये उत्तम साहित्य सबसे बड़ी औषधि है।

... अणुव्रत आन्दोलन के सफल संचालन के लिये 'अणुव्रत' जैसे पत्र की अत्यन्त आवश्यकता थी जिसे समिति ने पूरा किया है। मैं भगवान से पत्र की उत्तरोत्तर वृद्धि की कामना करता हूँ।"

—चिरंजीलाल पाराशर, गाजियाबाद

"आपकी पत्रिका का उद्देश्य वस्तुतः सराहनीय है। हमारी हार्दिक कामना है कि अणुव्रत की दिन-दूनी उन्नति हो। मेरे विचार में पाठ्य सामग्री में अभी रोचकता का अभाव है जो कि पत्रिका का प्रमुख आकर्षण है। एक कहानी की अपेक्षा दो या तीन हों तो अच्छा रहे।"

—कृष्णा धोंचक, देहली

अणुव्रत के पाठकों से !

'अणुव्रत' को और अधिक लोकोपयोगी व जन-रुचिकर बनाने की दृष्टि से 'अणुव्रत' में प्रकाशित रचनाओं के सम्बन्ध में अपने सहृदय पाठकों का मत जानना आवश्यक है।

अतः हमारा साग्रह निवेदन है कि भविष्य में सहयोगी पाठक 'अणुव्रत' के प्रत्येक अङ्क पर अपनी सम्मत्ति, विचार व सुझाव आदि निःसंकोच लिखकर भेजें।

जो पाठक हमारी त्रुटियों व अभावों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे उनके हम विशेष आभारी होंगे।

रचनात्मक विचारों एवं सुझाओं को यथाशीघ्र क्रियान्वित करने का भी प्रयत्न हो सकेगा।

—सम्पादक

'अणुव्रत' पसन्द न आवे तो ?

ग्राहक हो जाने के बाद भी बारह महीने तक 'अणुव्रत' पढ़ते रहिये और फिर सालभर की पूरी फाइल हमें लौटाकर हमसे मूल्य वापस मंगा लें। पत्र भेजने में जो डाक-खर्च वगैरह लगता है वह काटकर बाकी मूल्य ५॥) रु० हम वापस भेज देंगे। आशा है इस सूचना के बाद किसी सज्जन को 'अणुव्रत' का ग्राहक बनने में झिझक न रह जायगी।

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१

卐

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १ मई, १९५६ [अंक १४

मनुष्य ने अलक्ष्य को लक्ष्य के आसन पर बिठा दिया है !

आज मानव में यदि सबसे बड़ी कमी आई है तो वह यह है कि वह लक्ष्यहीन बनता जा रहा है। जीवन का वास्तविक लक्ष्य क्या होना चाहिये—इसे भूल कर वह अलक्ष्य को लक्ष्य मानने लगा है। जैसा कि अधिकांश मनुष्यों के जीवन को देखते हैं—जिस किसी तरह पैसा इकट्ठा कर लेना ही वे अपनी जिन्दगी का सबसे बड़ा काम समझते हैं। इसे ही अपना चरम लक्ष्य माने बैठे हैं कि येनकेन प्रकारेण धन से अपनी तिजोरियां भरली जायं। आदमी जैसा मन में मान बैठता है, स्थिर कर लेता है उसके जीवन की गतिविधि, क्रिया-प्रक्रिया वैसी ही बन जाती है। जब आदमी ने धन को जीवन का लक्ष्य माना तब वह उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय, जायज-नाजायज, सभी तरह से इस ओर मुड़ा, शोषण वृत्ति जागी,

विषमता बढ़ी, सामाजिक जीवन में वैमनस्य और शत्रु भाव पनपा। यह सब इसलिये हुआ कि मनुष्य ने अलक्ष्य को लक्ष्य के आसन पर बिठा दिया। यदि इन विषम समस्याओं और क्लेश परम्पराओं से व्यक्ति बचना चाहता है तो वह अलक्ष्य को छोड़ लक्ष्य की ओर बढ़े। जीवन का सही लक्ष्य है—चारित्रिक शुद्धि, वृत्तियों का परिष्कार, नैतिक विकास। इन्हें पाने के लिये इन्सान को जी जान से कोशिश करनी चाहिये। ईमानदारी, सचाई, नीति, सद्भावना, विनय, सद् आचरण और मैत्री ये सब सच्चे लक्ष्य की ओर दौड़नेवाले को सहज ही मिल जाते हैं।

आज के शोक सन्तप्त और क्लेशपूर्ण जन जीवन में यदि शान्ति और सुख लाया जा सकता है तो इन्हीं के सहारे लाया जा सकता है।

हृदय की सरलता, निष्कपटता, विचारों की सादगी, शुद्धता जीवन व्यवहार में सहज रूप से सात्विकता का समावेश करनेवाले सद्गुण हैं। यदि इनके साथ अहंकार का मेल हो जाये तो ये सब लुप्त से होते जाते हैं। इसलिये दूसरी विशेष बात मैं आपसे यही कहूंगा कि आप अपने अहं को संयत बनाइये। अहंकार आत्म गौरव नहीं है, आत्म पतन है। इन्हीं शाश्वत तत्वों को आप लोग जीवन में उतारने की कोशिश करें आपको एक नई प्रेरणा, नया बल, और नई स्फूर्ति मिलेगी।

आज दुनियां में विनाश का ताण्डव सा मच रहा है। एक आदमी दूसरे आदमी को, एक समाज दूसरे समाज को, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को चबा जाना चाहता है। अणुबम जैसे विध्वंसकारी और भयावह अस्त्र शस्त्रों का निर्माण क्या यह साबित नहीं करता। घटना ज्यादा पुरानी नहीं हुई है। जापान पर अणुबम गिरा, मानवता थर्रा उठी। कीड़ों मकोड़ों के तरह लाखों प्राणी देखते-देखते मृत, अर्द्ध मृत, मूर्च्छित और संज्ञा शून्य से हो गये। आज भी उसे स्मरण करते मनुष्य का कलेजा कांप उठता है। मानव ऐसा दानव क्यों बन जाता है? क्या वह धन, सत्ता और वैभव मरते वक्त अपनी छाती पर ले जायगा। इतिहास बताता है न कभी ऐसा हुआ और न आगे ऐसा होने की सम्भावना है। फिर भी मानव गुमराह बन रहा है। क्योंकि उसका विवेक सोया है। तभी तो ऐसा होता है। आज उसे अपना विवेक जागृत करना है। अपने आपकी ओर मुड़ना है। विध्वंस की ओर विनाश की काली पीली आंधियों को को नवनिर्माण, नव सृजन के मलयानिल में बदलना है। वह भौतिक वस्तुओं का नहीं होगा, वह होगा—आत्मा का, अपने आप का। अपने आपको सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह के ढांचे में ढालना होगा।

—आचार्य तुलसी

सम्पादकीय

भारत साधु समाज

अभी हाल ही में संत तुकड़ोजी के नेतृत्व में 'भारत साधु समाज' की स्थापना की गई है। संस्था के उद्देश्यों की वृहत् तालिका को देखते हुए ऐसा लगता है कि साधुओं की शक्ति को अधिकाधिक रचनात्मक कार्यों में लगाने का यह एक प्रयत्न है। यह उन व्यक्तियों के लिये तो अच्छा है, जो आज तथाकथित साधु वेप में समाज पर भारमात्र वने हैं और आध्यात्मिक भावना से कोसों दूर हैं। हम देखते हैं, आये दिन मठाधीश और महन्तों के रूप में अपनी वासना, अय्यासी और प्रतिष्ठा कायम करने का कुचक्र चलता रहता है और उनकी चारित्रिक दुर्वलता समाज में स्वेच्छाचारिता और अनैतिकता को पोषण देती रहती है। अच्छा होता 'साधु-समाज' सर्व प्रथम अपने उद्देश्यों की ११ वीं धारा में निर्धारित साधुओं में फैली हुई बुराइयों को दूर करना, प्राथमिक लक्ष्य मान कर चलती। क्योंकि विना जीवन और व्यवहार-शुद्धि के लक्ष्य की पूर्ति नहीं की जा सकती। हमारा किसी अंग विशेष पर आक्रमण नहीं है। लेकिन आज गांजा, भांग, चरस और माल-मिठाइयों के रूप में जो तामस प्रवृत्तियाँ और मठों के नामपर अर्थ-लोलुपता, स्वार्थपरता व वैपयिक-सुखों की हेय भावना समाज के श्रद्धापात्र कहे जानेवाले साधु समाज में वढ़ चली है, उसकी शुद्धि हुए विना उनसे कैसे जन-सेवा या जन-नेतृत्व की आशा की जा सकती है। भ्रष्टाचार का निवारण करने के लिये स्वयं का वलिदान आवश्यक है। आध्यात्मिक भावना का प्रसार करने के लिये आत्मवादी होने की जरूरत है। चाहे वह किसी भी दर्शन या मान्यता से सम्वन्धित हो, साधु होने का अर्थ ही आत्म-साधना है। यह इतना कठोर पथ है कि उसके वाद भौतिक सुखों की कोई इच्छा नहीं रह जाती और पग-पग पर आत्म-वलिदान की भावना निहित रहती है। आज भी ऐसे सन्तों की कमी नहीं। लेकिन ऐसे लाखों लोग हैं, जो साधु वेप में साधुता को वदनाम और कलंकित करने के साथ समाज में अनाचार का पोषण कर रहे हैं।

भारत साधु समाज को सावधान रहना होगा कि संगठन में ऐसे आचारहीन, सत्तावादी और प्रतिक्रियावादी तत्त्व प्रवेश न कर पायें, जिससे यह एक मुफ्तखोरों और मठाधीशों की जमात वन जाय। यही नहीं संगठन में इतनी तेजस्विता होनी चाहिए कि तथाकथित और वेपधारी साधुओं का अहिंसात्मक प्रतिकार किया जा सके। यदि एक कदम और आगे वढ़ सके तो यह उत्तम होगा कि साधु-समाज साधु के चारित्रिक मापदण्ड को एक सैद्धान्तिक और सर्वमान्य व्याख्या स्वीकार करे और तदनुकूल कसौटी में जो खरा उतरे उन्हें ही संगठन मान्यता दे। ऐसा होने से तो फिर भी कुछ सुधार की आशा की जा सकती है। अन्यथा साधु-समाज से रचनात्मक उद्देश्यों की आशा तो दूर, कहीं वह इस शक्ति को हथियार मानकर संगठन प्रतिक्रियावादी तत्त्वों की खिचड़ी न वन जाय और सरकारी सहारा पाकर समाज में और अधिक अनाचार का पोषण न करे। अभी की स्थितियों से तो संगठन पर अर्द्ध-सरकारीकरण की छाप अधिक लगती है और ऐसा प्रतीत होता है कि भारत सेवक-समाज ऐसे व्यक्तियों को अपने काम का साधन वनाना चाहती है। जैसाकि हम प्रारम्भ में ही कह चुके हैं, यह उन व्यक्तियों के लिये एक अच्छा मार्ग है, जो साधुवेप में आज उद्देश्यहीन दिखाई दे रहे हैं। चारित्रिक-शुद्धि के मूल मंत्र को ध्यान में रखते हुए यदि संगठन इस शक्ति का उपयोग कर सका तो निसंदेह अपने में स्वयं यह एक रचनात्मक कार्य होगा।

लेकिन हमें भय है कि रचनात्मक कार्यों के नाम से कहीं साधुता और अधिक वदनाम न हो या रचनात्मक कार्य की प्रतिष्ठा पर धब्बा न लगे। सेवा स्वयं गुमराह न वने। जैसाकि आज हम देखते हैं कि अनेक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता सेवा के नाम पर पथभ्रष्ट होते जा रहे हैं और अनेक सेवाभावी व्यक्ति रचनात्मक काम के नाम पर अपना स्वार्थ पोपण कर रहे हैं। यही नहीं अपनी धाक जमाकर आज वह पद-प्रतिष्ठा के लोलुप वन गये हैं। सत्ता लोलुपता उनमें जागती जा रही है और उनके तथाकथित रचनात्मक केन्द्र भी एक दूसरे की शक्ति को हथियाने के हथियार वना गये हैं। यदि यही स्थिति संगठन की रही तो साधुता श्रृङ्खलित होने की अपेक्षा और अधिक विसर्जित होगी और इसके परिणाम प्रतिकूल भी हो सकते हैं।

अस्तु, हमारी विनम्र सम्मति में साधु-समाज को सरकारी, अर्द्धसरकारी प्रलोभनों से दूर रखा जाकर इनकी आध्यात्मिक शक्ति को ही जागृत किया जाता और इनके चरित्र को पुनः उद्वोधित कर एक ऐसा संगठन किया जाता जो अपनी चारित्रिक मशाल से समाज की खोई हुई नैतिक शक्ति को संगठित करता। आज चहूँ ओर अनैतिकता छाई हुई है। आत्म-विश्वास का अभाव उत्तरोत्तर वढ़ता जा रहा है और हमारे हर कार्यों में अप्रमाणिकता, असत्य और भौतिकता हावी हो रही है। यह एक ऐसी वुराई है, जो धीरे-धीरे भयङ्कर रूप ले सकती है। साधु-समाज, जैसाकि उसका सनातन लक्ष्य रहा है, अपने सत्य को पुनः जीवित कर समाज की आध्यात्मिक और नैतिक लोक-शक्ति को संग्रह करे तो आज के विश्रृङ्-

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

● सेवा का पुरस्कार

आज हम सेवा का ढोंग रचकर किस प्रकार अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करते हैं यह कोई नया विषय नहीं रह गया है। स्कूल व कालिजों की ओर से विद्यार्थी समाज सेवा करते हैं परन्तु किस लिये, केवल समाज सेवा का प्रमाणपत्र लेने के लिये। सार्वजनिक नेता और सरकारी पदाधिकारी हाथ में फावड़ा या झाड़ू लेते हैं पर जनता में सेवा व श्रम की आदर्श प्रस्तुत करने के लिये अपितु फोटो खिंचवाने के लिये। चुनावों में उम्मीदवारों द्वारा जनता के प्रति जो हमदर्दी व्यक्त की जाती है क्या वह सच्ची होती है? जन हित के जो नारे लगाये जाते हैं क्या उनमें कुछ वास्तविकता होती है? शायद बनावटी रूप में और भी चुनाव जीतने तक।

अभी पिछले दिनों करनूल में विनोबाजी ने कहा था कि किसी भी राजनीतिक-पीड़ित को कोई भूमि स्वीकार नहीं करनी चाहिये क्योंकि राष्ट्र के प्रति अपनी सेवाओं के बदले जमीन मांगने या स्वीकार करने से वह पुण्य नष्ट हो जाता है जो उन्होंने पहले प्राप्त किया था।

वास्तव में यह निष्काम कर्म व सेवा की सर्वोत्कृष्ट भावना है। जो व्यक्ति सेवा की जगह दिखावा करते हैं उन पर तो यह बात लागू ही नहीं होती, हां जिनके मनमें सचमुच ही राष्ट्र व समाज की कुछ सेवा करने की अथवा अपना कर्त्तव्य निभाने की तड़प है और जिन्होंने इस दिशा में कुछ किया भी है उन्हें इस सेवा के लिये किसी प्रकार का पुरस्कार व भेंट स्वीकार करके अपने उज्ज्वल व प्रेरक चरित्र को हीन नहीं बनाना चाहिये। क्योंकि ऐसी अवस्था में यह सेवा न रहकर नौकरी बन जाती है।

अतः हमें सभी प्रकार के ढोंग, प्रदर्शन, दिखावा, स्वार्थ और अन्य लाभ की भावना को त्यागकर समाज या देश सेवा करने का प्रयत्न करना है। इससे हम राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य तो पूरा करेंगे ही, साथ ही भावना की एक एक ईंट से ऐसा सुदृढ़ व सुन्दर 'मातृ-मन्दिर' निर्मित कर सकेंगे जिसमें बैठकर उसके सभी पुत्र आपसी कलह व द्वेष को भूल कर प्रेम व सहयोग का पाठ पढ़ सकेंगे।

● आनन्द और मस्ती

होली आई और चली गई। इसकी हुड़दंग में न जाने हमने कितनी बार कीचड़ उछाला, अश्लील व असभ्य व्यवहार किया, लोगों के किवाड़ों व अन्य लकड़ी के उपयोगी सामान को उठाकर होली की लपटों में स्वाहा कर दिया और मनोरंजन के नाम पर कितने कामोत्तेजक और वाहियात कुकृत्य किये गये, इनकी एक लम्बी गाथा है। परन्तु विचारणीय विषय यह है कि होली की मस्ती के प्रतीक क्या सचमुच हमारे यही कारनामें हैं? तो एक स्वर से यही उत्तर मिलेगा 'कदापि नहीं'।

और यह सब कुछ जानते हुए भी हमने जो मन में आया वह किया, क्या यह कम आश्चर्य की बात है? इसका मूलभूत कारण यदि खोजा जाय तो ज्ञात होगा कि हम अपने इस प्रकार के राष्ट्रीय उत्सवों के वास्तविक स्वरूप को भूल कर कोरी परिपाटी निभाने का प्रयत्न कर रहे हैं। अतः हमें होली के यथार्थ रूप को समझने की आवश्यकता है।

हर्ष का विषय है कि इस अवसर पर ग्वालियर के लगभग एक हजार हरिजनों ने शराब न पीने की प्रतिज्ञायें कीं और उनको निभाया। क्या ही अच्छा हो कि हम सभी ऐसे अवसरों पर अपनी अपनी बुरी आदतों को छोड़कर परस्पर प्रेम, बन्धुत्व व सहयोग की भावना से उत्पन्न असीम आनन्द व मस्ती लूटें।

● गरीबी का गर्व

एक ओर जबकि धन प्राप्ति में रात-दिन एक किया जा रहा है, अन्याय और अत्याचार का सहारा लिया जा रहा है, चार सो बीसी और धोखेबाजी करके भी आज का मानव संग्रह के लिये प्रयत्नशील है वहाँ अमरावती के वयोवृद्ध नेता व नाटककार श्री वीर वामनराव जोशी द्वारा मध्यप्रदेश सरकार की ओर से सहायता के तौर पर प्राप्त चार हजार रुपये को लौटा देना और गरीबी में ही अपना जीवन बिताने की इच्छा प्रकट करना सचमुच ही असाधारण बात है।

इस त्याग और गरीबी के गर्व के सम्मुख हम नतमस्तक हैं।

अपनी पहिचान कब?

मनुष्य सांसारिक व्यामोह त्यागकर अपने भान को प्राप्त कर सकता है। जबतक वह माया, मोह, छल-कपट और ईर्षा-द्वेष से लिप्त है तबतक वह अपने आपको पहचान नहीं सकता। जब वह इनसे मुक्त होगा, तभी अपने आपको पहचान सकेगा।

—समर्थ गुरु रामदास

सभ्यता एवं संस्कृति के मूल में

[प्रो० श्री अर्जुन चौबे काश्यप एम० ए०]

———:o:———

● *प्रबुद्ध चेतना की यह माँग है कि हम अपने गलत एवं भ्रामक स्वार्थों से प्रेरित वृत्तियों का परित्याग कर मानव की मूल-प्रवृत्तियों के सम्यक् परिष्कार में लग जाँय।*

● *जब तक अन्तः एवं वाह्य प्रवृत्तियों में एकाकार नहीं उत्पन्न होता तब तक संस्कृति का निर्माण नहीं हो सकता। आज के तथाकथित सभ्य संसार में विशेषतः पश्चिमी सभ्यता में इस एकरूपता की नितान्त अभाव है।*

● *भारतीय कृत्रिमता से सदैव दूर रहे हैं। वे भीतर और वाहर से एक रहे हैं। वाहर की पवित्रता भीतर की और भीतर की पवित्रता वाहर की रही है।*

● *यदि हमने भारतीय परम्पराओं से पूजित सुसंस्कृत विचारधाराओं को सामूहिक रूप से आगे नहीं वढ़ाया तो हमारा ज्ञान-गौरव व्यर्थ ही सिद्ध होगा। हमें अपना परिष्कार करना है, समाज का परिष्कार करना है।*

संसार की एक महान् विभूति ने कहा—विश्वव्यापी संकटकाल में मानव जाति के उद्धार के लिए भारत ही समर्थ होगा, इस वात में मैं अटल विश्वास रखता हूँ। जब यह उक्ति महान् विचारक एवं साहित्यकार मनीषी रोम्याँ रोल्याँ की लेखनी से उमगी तो कोई भी विज्ञ पाठक इस तथ्य की कल्पना कर सकता है कि उस विचारक के मन में विश्वव्यापी सङ्कट की कल्पनाएँ स्पष्ट थीं और साथ-ही-साथ उसे यह भी भान हुआ था कि संसार की अन्य संस्कृतियों में उतना वल एवं स्थायित्व नहीं है जितना कि भारतीय संस्कृति एवं भारतीयता में। जिस संकटकालीन स्थिति की ओर उपर्युक्त कथन में संकेत है, वह अव उपस्थित होना चाहती है। इतना ही नहीं, अव भारत भी अपनी संस्कृति के गूढ़ तत्त्वों को, जो युगयुगान्तर से दुर्भेद्य गुहा में छिपे-से थे, जिनकी परिचर्या के लिये पराधीनता के कारण भारतीयों को अवकाश नहीं मिलता था और जो किसी प्रकार युगों की वाह्य मारों के पड़ने पर भी भारतीयता के साथ लगे-से रहे, प्रकट करना चाहता है। यदि हम भारतीय राजनीति-शास्त्र, समाज-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र, साहित्य-शास्त्र का अवलोकन करें और उनमें अविछिन्न रूप से प्रवाहित विचारधाराओं को आज की वैज्ञानिक उत्प्रेरणाओं की सन्निधि में परखें तो पता चलेगा कि भारतीयता सदा गत्यात्मक रही है। वही संस्कृति विद्यमान रह सकती है, जो गत्यात्मक हो, और यह वात भारतीय संस्कृति के लिये पूर्णतः लागू है। ऋषियों, मुनियों, महापुरुषों एवं धर्मशास्त्रकारों को मानो यह वात ज्ञात थी, क्योंकि सभी के विचारों में युग की माँगें स्पष्ट रही हैं और सदा नयी-नयी अभिचेतनाएँ समाज में गूंजती रही हैं।

आज विश्व में महानाश के जो वादल मँडरा रहे हैं, उनका एकमात्र कारण है विभिन्न संस्कृतियों का पारस्परिक संघर्ष। आज यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पता चलेगा कि मानव अपने जीवन के विशिष्ट तत्त्वों को भूलकर ऊपरी आवरण के मोह में पड़ गया है। कहीं श्वेतों ने रंगीन हब्शियों के, कहीं आर्यों ने सेमेटिरो के विरुद्ध, तो कहीं पूँजीवादी राष्ट्रों ने नयी संस्कृतिमूलक एवं जड़वादी चेतनाओं से उत्प्रेरित साम्यवादी राष्ट्रों के विरुद्ध जन्म-मरण के युद्ध छेड़ दिये हैं। आज प्रबुद्ध व्यक्ति सची शान्तिदायिनी नींद नहीं सो पाता। तथाकथित ज्ञानी एवं बौद्धिक व्यक्ति समाधान ढूंढ़ना चाहते हैं। कुछ लोग अतीत की ओर झुक पड़ते हैं तो कुछ लोग नवनिर्मित भविष्य के स्वप्न देखने लगते हैं। प्रस्तुत लेखक का मत है कि यदि प्रभावशाली व्यक्ति अपनी स्वार्थवृत्ति को छोड़ दें और सच्चे मन से मानव के व्यक्तित्व के विकास के पहलुओं पर विचार करें तो समस्या का समाधान अपने-आप हो जाय। एक व्यक्ति का व्यक्तित्व क्या है? वह कितने तत्वों पर आश्रित है? क्या सभी व्यक्ति समान हो सकते हैं? यदि देखा जाय तो व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक सङ्गठन है, जो वातावरण के प्रति होनेवाले उसके अपूर्व अथवा अनूठे अभियोजनों का निर्णय करते हैं। व्यक्तित्व-सम्बन्धी यह व्याख्या हमें व्यक्ति के सत्व के भीतर के जैव एवं सामाजिक तत्वों की ओर ले जाती है। व्यक्ति अपने वंश की दैहिक परम्पराओं अर्थात् आनुवांशिकता लेकर आता है और समाज के तत्वों में निर्मित होता अन्ततोगत्वा जैव एवं सामाजिक तत्वों का गुणनफल वनता जाता है। आज का मानव-समाज बहुत विशाल

हो गया है। आज केवल देशगत ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण विश्वगत भावनाएँ हमारे सामाजिक-तत्वों में निहित हो गयी हैं। आज का शिशु-विद्यार्थी क्रमशः बढ़ता विश्व की ओर उन्मुख होता जाता है। विश्व की महान् विभूतियों का प्रभाव उसपर पड़ता जाता है। संसार में जो कुछ होता जाता है, उसको समेटता आज का व्यक्ति आगे बढ़ रहा है। समाज के नियम प्रकृति के नियमोंपर आधारित हो सकते हैं, किन्तु व्यक्ति-विशेष की विचारधाराएँ समाज का नियमन कर ही देती हैं। आज लोक-नीति के नामपर संसार में बड़े उथल-पुथल हुए हैं। कहीं अधिनायकत्व अपनी चरम सीमापर पहुँच गया है, तो कहीं मानव की स्वार्थ-वृत्ति रोटी और नींद के प्रश्नों को और जटिल बना डालती है। वास्तव में यदि देखा जाय तो आज की प्रमुख क्रान्तियों के मूल में रोटी एवं नींद का ही प्रश्न सबसे बड़ा जटिल है। सच्ची क्रान्ति वही है जो भूखे व्यक्तियों को रोटी दे और धनाढ्य लोगों को भूख अथवा दूसरे अर्थ में नींद दे! किन्तु इस प्रकार की रोटी एवं नींद अथवा भूख की समस्या हमें अपने को ऊपर उठा ले जा सकती है। यदि हमने संस्कृति के वास्तविक मर्म को समझ लिया तो आज की व्यापक समस्याएँ अपने-आप हल हो जाएँगी। किन्तु सबसे बड़े व्यवधान को, जिसे स्वार्थ-वृत्ति अथवा संकीर्णता कहते हैं, हमें छोड़ना होगा। प्रबुद्ध चेतना की यह मांग है कि हम अपने गलत एवं भ्रामक स्वार्थों से प्रेरित वृत्तियों का परित्याग कर मानव की मूलप्रवृत्तियों के सम्यक् परिष्कार में लग जायँ जिससे संसार में अच्छे व्यक्तित्व उत्पन्न हों और विश्व-संस्कृति का समुचित निखार हो जाय। तो, संस्कृति क्या है? वह संस्कृति, जिसकी गरिमा का गान सभी देश-

गीत

[श्री बाबूलाल तिवारी 'नयन']

मैंने पथ को पहिचाना है, मुझको मँजिल की चाह नहीं!

मेरी गति में तन्मयता है, बाधाओं का डर नहीं मुझे-
मेरी गति में नश्वरता है, संकल्पों का भय नहीं मुझे!
मेरा स्वर केवल अपना है, जग के बोलों का मोल नहीं-
मेरा संयम सुदृढ़ता से, केवल संस्कृति का बोल नहीं!
मैंने अंतर को जाना है, मुझको सीमा की थाह नहीं-
मैंने पथ को पहिचाना है, मुझको मँजिल की चाह नहीं!

पथ केवल द्युतिमान रहे, ऐसा मेरा विश्वास नहीं!
अपने अंतर की ज्वाला का, उत्थान हो सके भान नहीं,
तूफानों का डर है उसको, जिसने कुछ डरना जाना है,
मिट जाने का भय सदा उसे, जिसने कुछ बनना जाना है!
अपने स्वरूप का बना हुआ, मुझको आडँबर चाह नहीं,
मैंने पथ को पहिचाना है, मुझ को मँजिल की चाह नहीं।

जब लँगर खोल दिया तुमने, तब छोर-मध्य की बात नहीं
पतवार हाँथ की देख रहे, यह आदि-अँत की बात नहीं!
जब तक झँझाओं में बल है, जीवन-नौका को तौलेगी
जब तक आशाओं में बल है, जो प्रखर वेग से दौड़ेगी!
इतना मैं जग में देख रहा, मँजिल मुझको आसान रही
मैंने पथ को पहिचाना है, मुझको मँजिल की चाह नहीं।

वाले करते हैं, क्या है?

इसके पूर्व की हम 'संस्कृति' शब्द का वास्तविक अर्थ लगावें, हमें यह जान लेना है कि बहुधा लोग 'संस्कृति' एवं 'सभ्यता' को एक ही अर्थ में समझ लेते हैं। दोनों शब्दों में बहुत अन्तर है। इस अन्तर को बहुधा पाश्चात्य लोग नहीं समझ पाते, तभी उनमें भ्रामक मान्यताएं प्रविष्ट कर गयी हैं, और आज वे संसार की शान्ति को भङ्ग करने के लिए सन्नद्ध हैं। पश्चिमी देशों में सभ्यता जीवन के एक स्वरूप मात्र का द्योतक है, जो वास्तव में संस्कृति का प्रतिपक्ष अथवा विरोध मात्र है। संस्कृति मानव मन के विकास का द्योतक है, जैसा कि हम अभी देखेंगे। मन के उचित संगठन में अथवा उसके विकास में अन्तः एवं बाह्य प्रवृत्तियों एवं आचरणों का सामञ्जस्य होना चाहिये। सच्ची संस्कृति की अभिव्यक्ति हमारे जीवन-मूल्यों के संगठन के अन्तः एवं बाह्य स्वरूपों की एकरूपता में पायी जाती है। जबतक अन्तः एवं बाह्य प्रवृत्तियों में एकाकार नहीं उत्पन्न होता संस्कृति का निर्माण नहीं हो सकता। आज के तथाकथित सभ्य संसार में और विशेषतः पश्चिमी सभ्यता में इस एकरूपता का नितान्त अभाव है। एक व्यक्ति

अपने अन्तः में ईर्ष्या, क्रोध, घृणा से उबलता हुआ व बाह्य रूप से कुछ और ही व्यक्त करता दृष्टिगोचर होता है। वहां तो यह कहा जाता है कि जो अपने संवेगों को जितना दबाकर शान्तिमय मुद्रा बना सके वह उतना ही सभ्य एवं संस्कृत है। भीतर को बाहर न प्रकट करना ही पाश्चात्य सभ्यता है। अभी कुछ दिन पूर्व अमेरिका के परराष्ट्र-मन्त्री श्री डलेस महोदय कराची में "सीटो" की बैठक के उपरान्त भारत में आये थे और भारत से अपनी मित्रता की डींग हांक गये। पाकिस्तानवाले सभ्य रूप से भारत से दोस्ती का दावा करते हैं। किन्तु राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के देश भारत के प्रधान मंत्री सच्ची संस्कृति की अभिव्यक्ति करते हैं। उन्हें लल्लो-चप्पो की सभ्यता में विश्वास नहीं है। सभ्यता तो कृत्रिम आचरण का सूचक है। किन्तु संस्कृति में आचरण एवं प्रेरक-वृत्ति अथवा इच्छा का समन्वय एवं एकाकार होता है: उसमें अतः एवं बाह्य अभिव्यंजनों में तादात्म्य पाया जाता है। सभ्यता तो विश्व में क्षणिक सफलता के लिए साधन मात्र है। किन्तु संस्कृति विश्व के ऊपर उठने का साधन है। भारतीय संस्कृति की यही देन है। परब्रह्म तक पहुंचने के लिए अथवा परमानन्द के ऊपर ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को सभी सहज प्रवृत्तियों को परिष्कृत करके ऊपर उठना होगा, बहुत से दैहिक एवं मनोमय वृत्तियों के उदूर्ध्वायान के उपरान्त शान्ति-नद में स्नान करना होगा। यह दार्शनिक उक्ति मनोवैज्ञानिक भी है। वास्तव में, जब व्यक्ति अपनी मूलप्रवृत्तियों, ईहाओं, एवं वासनाओं को परिष्कृत करना अपने में अच्छे स्थायी भावों एवं रसों की उद्भावना करता है तो कालान्तर में वह प्रकृत रूप में अपने व्यक्तित्व का निखार करता है और अपने जीवन में आनन्द की सृष्टि करता है। दूसरे को दुखी कर वास्तविक सन्तोष नहीं प्राप्त किया जा सकता। आज स्वार्थी राष्ट्र दूसरे को हड़पकर अथवा उसपर अपनी स्वार्थ वृत्ति का झंडा गाड़कर आनन्द का उपभोग करना चाहता है। क्या इस प्रकार उसे शान्ति मिल सकती है? क्या ऐसे देशों के नेताओं पर संसार की शांति का भार सौंपा जा सकता है? कभी नहीं, कभी नहीं। भारत की विश्व-व्यापी महत्ता इसी में नहीं है कि वह एक विशाल भूमि में फैला हुआ है, अथवा उसमें धन-धान्य के प्रचुर साधन हैं, प्रत्युत वह इसमें है कि वह स्वार्थ-वृत्ति से ऊपर है, वह सुख से रहना चाहता है और दूसरों को सुखी देखना चाहता है। "अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" की अद्वितीय संस्कृति-गर्भित उक्ति भारतीयता एवं इसके मनीषियों की सच्ची संस्कृति की द्योतक है। भारतीय कृत्रिमता से सदैव दूर रहे हैं: वे भीतर और बाहर से एक रहे हैं। बाहर की पवित्रता भीतर की और भीतर की पवित्रता बाहर की ओर रही है। हमारे यहाँ कृत्रिम आडम्बर एवं आचरण की सदैव भर्त्सना की गयी है। पश्चिमी देश में ऐसी पुस्तकों के सैकड़ों संस्करण निकल जाते हैं, जो यह बतलावें कि किस प्रकार अपने स्वार्थ के लिये औरों को धोखा दिया जा सकता है। अस्तु, अब हम संस्कृति के मर्म को समझें।

संस्कृति को हम सांस्कृतिक वस्तुओं के अवलोकन से भी समझ सकते हैं। आदि मानव ने गुफाओं में अपनी संस्कृति के चिह्न छोड़े हैं: मिस्र के विशालकाय पिरामिड, अजन्ता की गुहा-चित्रकारियाँ तत्कालीन संस्कृति के प्रतीक हैं। दर्शन, कला एवं विज्ञान, भाषा एवं साहित्य, संगीत एवं नृत्य, चित्रकारी, तक्षण-कला और यहाँ तक कि भोजन भी संस्कृति के अभिव्यञ्जन हैं। ये सांस्कृतिक वस्तुएँ संस्कृति के मर्म के विभिन्न स्वरूप ही तो हैं। विश्व में संस्कृति-सम्बन्धी बहुत से ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। किन्तु उनसे संस्कृति के विषय में अधिक प्रकाश नहीं मिल पाता। आदि मानव संस्कृति पर लिखनेवाले श्री टेलर ने कहा कि "संस्कृतिमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, नियम, रीति-रिवाज तथा समाज के किसी भी व्यक्ति द्वारा अर्जित समर्थताएं एवं आचरण' पाए जाते हैं। किन्तु इस उक्ति में 'सभ्यता' एवं 'संस्कृति' विषयक विषम तथ्यों का सङ्कलनमात्र पाया जाता है। इतना ही नहीं, इसमें यह भी कहा गया है कि संस्कृति एक समाज के सदस्य के रूप में ही व्यक्ति द्वारा अर्जित की जाती है। आचार-शास्त्रों एवं धर्मों के विश्व-कोश में कहा गया गया है कि संस्कृति का सम्बन्ध इच्छा एवं बुद्धि से है। किन्तु हमारे भावों एवं संवेगों का स्थान इस उक्ति में नहीं है, अतः यह परिभाषा भी युक्तिसंगत नहीं, क्योंकि मन का समन्वय इसकी तीनों ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक धाराओं में पाया जाता है। वास्तव में, यदि मनोविज्ञान का सहारा लिया जाय तो पता चलेगा कि हमारे मन के भावात्मक पहलू से संस्कृति का गहरा सम्बन्ध है। भावात्मक मानसिक शक्ति ही संस्कृति का आधार है, यही बुद्धि एवं ज्ञान को ऊपर उठाती है: वास्तव में, ज्ञान तो सांस्कृतिक जीवन में गौण स्थान पाता है। समाज-विज्ञानों के विश्व-कोश में भी संस्कृति की चर्चा हुई है और कहा गया है कि संस्कृति में आनुवांशिक तत्व, सामग्रियाँ, यान्त्रिक गतियाँ, विचार, आचरण एवं मूल्य पाये जाते हैं...संस्कृति के वास्तविक तत्व

मानव की क्रियाओं के सङ्गठित रूपों अर्थात् संस्थाओं में पाये जाते हैं। "अंग्रेजी के भाषा-कोश में संस्कृति को मन के प्रबोधन, संस्कार निवास, परिष्कार, शक्तियों आचरणों आदि की शिक्षा तथा शिक्षण द्वारा विकसित एवं उन्नत करने को कहा गया है। इस परिभाषा में 'प्रबोधन' 'संस्कार' आदि शब्द हमें संस्कृति के मूल की ओर ले जा सकते हैं। वास्तव में, संस्कृति मन का ऐसा प्रबोधन, संस्कार एवं विकास है जो मन को वातावरण में पाये जानेवाले तत्वों को सङ्गठित तथा उन्हें उन्नत एवं विकासशील करने को उद्वेलित करता है। प्रो० मैक्डूगल के मत से संस्कृति का मनोवैज्ञानिक स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। जब व्यक्ति की सहज प्रवृत्तियाँ निखरकर उसे ऊपर उठाती हैं और उसमें प्रत्यक्ष एवं परोक्ष स्थायी भावों का निर्माण का एक सार्वभौम स्थायी भाव उत्पन्न करती हैं तो व्यक्ति सुसंस्कृत हो उठता है। प्रथमतः प्रारम्भिक जन्मजात वासनाएं अपने संवेगों का सङ्गठन करती हैं और प्रेम, ईर्ष्या, घृणा, श्रद्धा साहस आदि के स्थायीभाव बनते हैं, यथा भय, क्रोध एवं विकर्षण से घृणा नामक स्थायीभाव बनता है और हम किसी वस्तु, व्यक्ति या विचार को घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं; आगे चलकर इस प्रकार के स्थायीभावों से एक ही अर्थात् सार्वभौम स्थायीभाव का निर्माण होता है। यह सार्वभौम स्थायीभाव ही संस्कृति का द्योतक है। जिस प्रकार एक व्यक्ति से व्यक्तिगत संस्कृति का निर्माण होता है, उसी प्रकार एक दल या समाज से दलीय या सामाजिक संस्कृति बनती है। सामाजिक संस्कृति में दलीय एवं सामाजिक शक्तियों का प्रमुख हाथ पाया जाता है। सभी प्रकार की संस्थाएं चाहे वे सामाजिक हों, राजनीतिक हों, चाहे धार्मिक हों, दलीय संस्कृति के ही परिचायक हैं। संस्कृति का अभिव्यञ्जन आचरण द्वारा होता है। एक व्यक्ति, एक समाज अथवा एक देश का अभिव्यञ्जन उसकी संस्कृति में है। कहना न होगा, इस प्रणाली से हम किसी भी व्यक्ति, समाज या देश की संस्कृति की परख कर सकते हैं। पश्चिमी देशों में आत्म-प्रकाशन ही सार्वभौम स्थायीभाव माना जाता है, अतः वहाँ के व्यक्तियों, समाजों, संस्थाओं में स्वार्थ-वृत्ति अथवा संकीर्णता की मात्रा ही अधिक पायी जाती है। हमारे भारत में मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य ब्रह्मानन्द की प्राप्ति है और उसके लिये व्यक्ति का पूर्णरूपेण सुसंस्कृत होना परमावश्यक है। पश्चिम में ही अधिनायकत्व की प्रशंसा हो सकती है। हमारे यहां सबके ऊपर एकत्व की प्राप्ति, परब्रह्म में मिल जाना ही परम सिद्ध है। प्राकृतिक वासनाओं के परिष्कार, उदर्वायान से ही अच्छे स्थायीभाव बन सकते हैं, और व्यक्ति क्रमशः उठता हुआ परमपद प्राप्त कर सकता है। हमारे देशमें ही महात्मा गांधी ऐसे परम सुसंस्कृत व्यक्ति उत्पन्न हो सकते हैं। अस्तु; आज विश्व की समस्याओं के समाधान का उत्तरदायित्व भारत पर आ पड़ा है। हमें इस उत्तरदायित्व को भलीभांति निबाहना है।

हम संकीर्ण मार्गों से गुजर चुके हैं, हमने अपनी संस्कृति का ढोल भी बहुत पीटा है और एक समय ऐसी मनोवृत्ति की परम आवश्यकता भी थी, क्योंकि पराधीन भारत को अपने अतीत का ही बड़ा भरोसा था। किन्तु आज हमें भ्रामक सभ्यता-विषयक पचड़ों से ऊपर उठना है और सच्ची संस्कृति को अपनाकर विश्व को नयी दिशा देनी है। हमें समस्याओं को विश्व की शान्ति के लिए ही परखना है और सच्चे समाधान की खोज करनी है। यह कार्य कठिन नहीं है। यदि हमने भारतीय परम्पराओं से पूजित सुसंस्कृत विचार-धाराओं को सामूहिक रूप से आगे नहीं बढ़ाया तो हमारा ज्ञान-गौरव व्यर्थ ही सिद्ध होगा। हमें अपना परिष्कार करना है, समाज का परिष्कार करना है और साथ-ही-साथ स्वार्थी राष्ट्रों को समझाना है कि वे सभ्यता के भ्रामक नामपर भ्रामक वैज्ञानिक व्यामोह न उत्पन्न करें। हमारी शक्ति कम नहीं है। हमने सभ्यता के नामपर अपनी नैतिकता एवं चरित्र-बल खो दिया है, हमारा सामाजिक पतन बहुत अंशों में हो गया है। हमें अपनी स्वार्थ-वृत्ति त्यागकर अपनी वासनाओं का परिष्कारकर ऐसे स्थायीभावों का निर्माण करना है जिनके बलपर हम न केवल सत्यं, शिवं, सुन्दरम् नामक तीन जीवन मूल्यों की प्राप्ति कर सकें, प्रत्युत विश्वास नामक एक अन्य जीवन-मूल्य प्राप्तकर विश्व को विश्वास दें कि उसका वास्तविक कल्याण मूल प्रवृत्तियों के परिष्कार अथवा संस्कृति के उन्नयन में है।

> भारत में विपुल कोटि की महान शक्तियां साथ मिलकर काम नहीं करतीं, परस्पर सहयोग नहीं करतीं, एक शक्ति दूसरी को व्यर्थ कर देती है, एक शक्ति दूसरी शक्ति के भार के विरुद्ध खड़ी होती है और फलतः परिणामभूत राष्ट्रीय शक्ति कुछ भी नहीं हो पाती।
>
> —स्वामी राम

पारिवारिक जीवन-व्यवहार में अहिंसा का महत्त्व

अणुव्रत

जीवन-दर्शन

[मुनिश्री नगराजजी]

शास्त्रकारोंने गाया—'अहिंसा प्राणीमात्र के लिये कल्याणकर है' 'अहिंसा प्राणीमात्र के लिये प्रशस्त आचरण योग्य कही गई है' अतः किसी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये।' शास्त्रों की बात शास्त्रों तक ही नहीं मनुष्य के जीवन में भी आई है। यदि ऐसा न होता तो परिवार, समाज आदि रूप समष्टि जीवन की कोई स्थिति ही नहीं बनती। एक क्षणके लिये भी मानव व्यवहार से यदि अहिंसा सर्वांशतः निकल जाये तो मानव-जीवन की सारी समष्टियां व्यक्ति में परिणत हो जायेंगी। मानव मानव को खाने के लिये दौड़ेगा और समस्त संसार में एक विप्लव मच जायेगा। अहिंसा ही एक ऐसा सूत्र है जिसमें समस्त मानव मनके पिरोये जाकर मानव समाज रूप एक माला बनी है। फिर भी मनुष्य के जीवन-व्यवहार में हिंसा की प्रबलता है और इसी हेतु उसे आये दिन नाना समस्याओं का सामना करना पड़ता है और नाना आतङ्क भोगने पड़ते हैं। अणुव्रत भावना है अहिंसा के विकास का स्रोत—मानव समाज प्रतिक्षण आगे बढ़ता रहे और हिंसा की मात्रा घटती जाये। मनुष्य विवेकशील प्राणी है। उसी में यह सब सम्भव है। एक पशु की मांद में दूसरा पशु आ धंसता है उसे समझाकर विदा करने का उपाय पशु-समाज में विकसित नहीं है। घुर्राना, झपटना, नोंचना आदि ही वहां अधिकार रक्षा के एकमात्र साधन हैं। मानव ऐसी स्थितिमें समझा-बुझाकर अहिंसात्मक विधिसे ही पहले पहल अपनी समस्या हल कर लेना चाहता है। जीवन में नाना समस्यायें हैं उन्हें अणुव्रती किस प्रकार अहिंसात्मक विधि से हल करता जाये वह उसके जीवन का इष्ट विषय होना चाहिये।

अहिंसा एक विराट तथ्य है। क्षमा, मैत्री, सहिष्णुता, आत्म-संयम, आर्जव, विनय, अभय आदि उसके नाना अणु हैं। एक-एक अणु को परखना और नाना समस्याओं पर उसका दृढ़ संकल्पपूर्वक प्रयोग करना ही जीवन-व्यवहार में अहिंसा अणुव्रत है। अहिंसा की तरह ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, मद, माया, लोभ आदि हिंसा के भी नाना अणु हैं जो जीवन-व्यवहार के वायु-मंडल में छाकर मनुष्य के लक्ष्य को धूमिल ही नहीं आंखों से ओझल कर देते हैं और उस राही को आधि-व्याधि के भूल-भूलैया में भटका देते हैं।

अहिंसा मनुष्य को निःश्रेयस् की ओर बढ़ानेवाली तो है ही उसके साथ-साथ वह उसके वर्तमान जीवन को भी आलोकित करती है। जीवन-व्यवहार का एक भी पहलू ऐसा नहीं जो अहिंसा के आलोक की अपेक्षा न रखता हो। चाहे वह पहलू पारिवारिक रूप या अन्तर्देशीय रूप हो। इसीलिये तो आर्ष वाणी में यह उद्घोष निकला—'भागवती अहिंसा भयभीत के लिये शरण, पक्षियों के लिये गति, प्यासों के लिये जल, क्षुधा-पीड़ित के लिये भोजन, समुद्र तरने के लिये जल-पोत चतुष्पदों के लिये आश्रम-स्थल, रोगी के लिये औषधि, अटवी में भटकनेवाले मनुष्य के लिये साथ-सहयोग, जैसा होता है उससे भी विशिष्टतर है।' परिवार से अणुव्रती का समष्टि जीवन आरम्भ होता है। वहां उसे माता-पिता, भाई-बहिन, पत्नि, पुत्र-बधू आदि के बीच अनुशासन मानते हुये और मनवाते हुये चलना पड़ता है। वहां यदि वह धैर्य, गाम्भीर्य, औदार्य व आर्जव गुणों को लेकर चलता है तो उसे आत्मिक शान्ति, पारिवारिक जनों का प्रेम, विश्वास और प्रोत्साहन मिलता है और जीवन की गाड़ी सुगमता से चलती रहती है। साथ साथ क्रोध, मान आदि की अल्पतामें निःश्रेयस् का मार्ग सधता ही जाता है। इसके बदले जहां व्यक्ति आवेश, अहं, स्वार्थ, अनीति व अन्याय का आचरण करता है वहां उसे नित-नये सवेरे कलह, आक्रोश अपमान आदि भोगने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ—नौकर यथोचित सेवा नहीं निभा सका या अकस्मात् उसने कोई भूल कर डाली चट से मालिक का मन क्रोध तथा आवेश से भर जायगा। वह मूर्ख, बेईमान कहते हुए दो चार गालियां भी दे डालेगा और बस चला तो एक दो चांटे भी। मन में वह विश्वास हो जायेगा कि इसकी भूल का मैंने सही-सही इलाज कर दिया। किन्तु बहुधा तो इस विश्वास के बनने से पहले ही गालियोंके बदले गालियां और चांटे के बदले मुक्का उसकी ओर आने लगता है। तत्काल नहीं तो दो-चार प्रसङ्गों के बाद कोई दुष्परिणाम सामने आ ही जाता है। ऐसी घटनायें बहुत देखी जाती है कि जहां गणमान्य व्यक्ति छोटे आदमियों पर आवेश में आकर प्रहार कर देता है और उस समय वह यह नहीं सोचता मेरी तरह छोटे आदमी को भी आवेश आ सकता है। लेकिन ज्योंही वह छोटा आदमी चांटा या जूती लगा देता है तब उसे अपने आवेश के लाभालाभ का ज्ञान होता है। इधर तो वह स्वयं पश्चाताप करता है मेरे दस चांटें खाकर भी उसने कुछ नहीं खोया और मैंने बाजार में या बहुत सारे लोगों

के बीच एक ही जूती खाकर अपनी स्थिति को नष्ट (Position-Loose) कर दिया है। दूसरी ओर उसके साथी व सगे सम्बन्धी आकर उसकी बुद्धिका अपमान करते हुये शिक्षा देते हैं—'बड़े आदमी को कभी छोटे आदमीके बराबर होना नहीं चाहिये।'

दूसरा पहलू अहिंसा का है। जिसके प्रयोग की बात एकाएक मनुष्य सोचता ही नहीं। साधारणतया यह एक धारणा बन गई है कि अहिंसा केवल कायरों का मोटी धारवाला शस्त्र है जो केवल धर्म स्थानों में बैठकर दो-चार घड़ी के लिये अजमाया जा सकता है। पर बात उल्टी है। जीवन-व्यवहार के प्रसङ्गों पर भी हिंसा की अपेक्षा अहिंसा अधिक सफल है। मानो कि कमरे के बीच स्याही से भरी दवात पड़ी हो। कोई व्यक्ति अचानक आया। दवात के ठोकर लगी, स्याही इधर-उधर पुस्तकों पर व कपड़ों पर फैल गई। उस समय यदि गुस्से में आकर कोई उस व्यक्ति को कहता है 'अंधा होकर चलता है? तुझे इतनी बड़ी दवात भी दीखती नहीं? कैसा मूर्ख है?' तो अवश्य यही उत्तर मिलेगा—मैं क्या मूर्ख हूँ। मूर्ख है दवात को बीच में ही रखनेवाला। यह भी कोई दवात रखने का स्थान है? यदि उस परिस्थिति में शान्ति एवं मधुरता से स्याही के बिखरते ही यह कहा जाता है अहा! किसने भूलकर दवात बीचमें रख दी। तो सामनेवाला व्यक्ति यही कहता है—दवात रखनेवालों की ही क्या गलती, देखकर तो मुझे भी चलना चाहिये था। अस्तु: अहिंसा एक सधा हुआ मनोवैज्ञानिक प्रयोग होता है जिसे काम में लेकर सास बहू को, पिता पुत्र को, तथा भाई अपने भाई को बिना किसी कटुताके ही आत्म-निरीक्षण की भूमि पर ला सकता है।

यह आर्षवाणी सत्य है—'अपने सुख-दुःख का कर्ता व्यक्ति स्वयं है।' अपने असंयम के कारण व्यक्ति दुःखी होता है और अपने संयम के कारण व्यक्ति सुखी होता है।' 'इसलिये साधक को परदोष द्रष्टा न होकर अपनी आत्मा से अपनी आपको ही देखते रहना चाहिये।' 'आप भला तो जग भला' यह कहावत मिथ्या नहीं है। प्राचीन आचार्यों ने इन्हीं तथ्यों को जीवन-व्यवहार में लाने के लिये एक सुन्दरतम कहानी का प्रयोग किया है।

एकधनी सेठ की लड़की केवल लाड़-प्यार में पली-पुसी जब पहली बार ससुराल में आई तो ससुराल के लोग उसे बड़े-बुरे लगने लगे। उसका कारण था कि वह स्वयं क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या व आलस्य से भरी थी। उसकी प्रकृति के कारण उसे नित्य सवेरे सास, जेठानी, ननद व अन्य किसी न किसी से झगड़ा मोल लेना ही पड़ता। सारे घरके लोग उससे कतरा गये और वह उन सबसे। चार छै महीने के

खंडहरों से प्यार

[रानी लक्ष्मीकुमारी चूड़ावत]

न जाने क्यों मुझे इन खंडहरों से प्यार हो गया है? भग्न महरावों से क्या जाने कैसी आत्मीयता हो गई है? इन लटककर टूटते हुए खम्भों को देखने में आनन्द आने लग गया है।

यह खंडहर नहीं, मानवीय कामनाओं की समाधि है, आकांक्षाओं के अवशेष हैं।

इसके आँगन में मधुमास और पतझड़ ने धूप छांह के खेल खेले थे।

इसके कोनों में बने शमादानों में दीप पतंगों के लिये जला है, पतंगे दीप के लिये जले हैं।

इसकी खोखली पड़ी दीवारों के उर में आज भी उद्गारों का कोष भरा पड़ा है।

कभी हँस-हँस कर और कभी रो-रो कर ये मिट्टी की ईंटें गाथायें सुनाया करती हैं।

क्या तुम सोचते हो ये पत्थर मूक हैं? इनके जिह्वा नहीं है?

नहीं, नहीं, ऐसा नहीं।

निशा की नीरवता में, मध्यान्ह की नीरवता में—

एक पाषाण को दूसरे पाषाण से बात करते मैंने सुना है। चुप, चुप, सुनो तो वह प्रस्तर की टूटी पुतली हमें इङ्गित कर क्या कह रही है?

युगल राहियों! तुम भी अपना कुछ अवशेष काव्य पंक्तियां ही छोड़ जाओ।

जो तुम्हारे प्यार की स्मृति को, जिज्ञासु के पूछने पर थोड़ा तो बता सके।

तुम भी तो होनेवाले खंडहर हो न।

बाद उसका पिता उसे अपने घर ले जाने के लिये आया। ससुराल के सब लोग इस बात से खुश थे ही और तत्काल उसे अपने पिता के साथ विदा कर दिया। घर आकर पिता ने लड़की से पूछा—बेटी! ससुराल कैसा लगा? उसने कहा पिताजी, क्या बताऊँ मैंने तो इतने दिनों में यहां आकर सुख की सांस ली है। पिता ने कहा—क्यों सास, श्वसुर अच्छे नहीं हैं? वह बोली, अच्छे क्या वे तो सचमुच ही डाकी और डाकिन हैं। पिता बोला—तुम्हारा पति? वह तो बना बनाया यमराज ही है। इस तरह एक एक करके उसने सब ससुरालवालों को उपाधियां दी। उसका पिता बहुत चतुर था। उसने समझ लिया वास्तव में मेरी लड़की ही बुरी है। उसने उसको ठीक करने के लिये एक अहिंसा प्रधान मनोवैज्ञानिक प्रयोग किया। वह बोला—तेरी ये बातें सुनकर मुझे भी बड़ा कष्ट हुआ है। इस विषय में और तो मैं क्या कर सकता हूँ क्योंकि ससुराल कभी बदला नहीं जाता। किन्तु मैं तुम्हें एक महामंत्र सिखला दूंगा जिसकी साधना यदि तू छै महीने के लिये भी कर लेगी तो अवश्य सारा ससुराल तेरे वस में हो जायेगा। यह सुनकर लड़की बड़ी प्रसन्न हुई और बोली—पिताजी! ऐसी साधना तो मैं कर ही लूँगी, चाहे वह कितनी ही कठिन क्यों न हो।

बहुत दिन हुये ससुराल से उसे लेने के लिये कोई नहीं आया। पिता जानता था कोई आयेगा भी नहीं। इसलिये अपनी लड़की को बुलाकर उसने एक दिन कहा—बेटी! आज मैं तुझे तेरे ससुराल के गांव पहुँचा आता हूँ। लड़की बोली—पिताजी! मुझे वह मन्त्र तो बता दीजिये। नहीं तो वहां मेरा काम कैसे चलेगा? पिता ने उसे नमस्कार मंत्र सिखलाया और कहा—इसकी साधना यह है कोई तुम्हारे पर क्रोध करे, तुम्हें गाली दे या भला-बुरा कहे तो चुप रहकर मन ही मन इस मन्त्र का जाप करती रहना। पर याद रखना एक बार भी यदि यह साधना भंग हुई तो पिछली साधना का सारा फल नष्ट हो जायेगा।

बिना बुलाये बहू घर आ गई। सब लोग टेढ़ी नजरों से उसे देखने लगे। पिछली बातों को यादकर कुछ उपहास करते तो कुछ ताना मारते थे। पर वह अपनी मंत्र साधना में तल्लीन रहती और अपना कर्तव्य निभाती जाती। तीसरे ही दिन की बात होगी उसकी ननद व देवरानी, जेठानी उसके साथ जब अपमानजनक व्यवहार कर रही थी तो सास ने उन सबको डांटा और कहा—जब बहू तीन दिनों से किसी को कुछ बुरा-भला नहीं कह रही है और तुम सब इसके पीछे पड़ रही हो यह बहुत बुरी बात है। मैं ऐसा सहन नहीं करूँगी। यह सुनकर बहू को बहुत आश्चर्य हुआ कि सास मेरा पक्ष लेती है। क्योंकि उसके जीवन में ऐसा देखने का यह पहला ही अवसर था। उसे अब स्पष्ट लगने लगा कि मेरे मंत्र का प्रभाव अब शुरू हो गया है। दिन बीते। बहू सबको प्यारी लगने लगी। घरका झगड़ा शान्त हो गया और घर में प्रेम की अविरल धारा बहने लगी। छः महीने के बाद पिता पुनः लेने के लिये आया तो ससुरालवालों ने कहा—इतनी जल्दी आप लेने के लिये न आया करें। बहू के बिना हमारे घरमें काम नहीं चलता। आज तो इसे ले जाइये। पर वापिस जल्दी पहुँचा देना।

पिता ने घर आकर लड़की से पूछा—बेटी! मंत्र कैसा रहा? उसने कहा—पिताजी! मंत्र क्या था जादू ही था। छै महीने की क्या बात केवल तीन महीनों में ही सब घरवालों पर मेरा प्रभाव छा गया। अब तो मुझे मेरे सास-श्वसुर देवी-देवता जैसे लगते हैं और पति परमेश्वर जैसा।

यह है पारिवारिक जीवन-व्यवहार में क्षमा व सहिष्णुता के प्रयोग का परिणाम। अणुव्रती का ध्येय आत्मगवेषण का होना चाहिये। इससे परोक्ष के साथ-साथ प्रत्यक्ष भी सधेगा।

—क्रमशः

अग्नि और काम

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

—भागवतम्

"जिस प्रकार घृत की आहुति डालने से अग्नि बुझती नहीं है किन्तु और अधिक प्रज्वलित हो जाती है उसी प्रकार कामनाओं के उपभोग से काम शान्त नहीं होता है किन्तु और अधिक बढ़ जाता है।

बालकों व विद्यार्थियों के बीच बोलना मेरा एक विशेष रुचिकर कार्य रहा है। मैं समझता हूँ कि रचनात्मक कार्य के लिये यह सर्वोपरि श्रेष्ठ कार्य-क्षेत्र है जिसमें कार्य करने की प्रवृत्ति को बल मिलना चाहिये। जबतक मूल से कार्य शुरु नहीं होगा तबतक लोक निर्माण का मंगल कार्य स्थायी नहीं बनेगा। यह जो संस्कारी अवस्था है उसमें भावी जीवन की क्षमतायें निहित होती हैं। कौन बालक आगे जाकर कितना विकास कर सकता है, एक रूप में यह इस अवस्था में पता चल जाता है। अतः आगामी जीवन को प्रतिभावान बनाने के लिये इस अवस्था में अनेकानेक प्रयत्नों की आवश्यकता होती है।

शिक्षा केन्द्र जेलखाने के रूप न हों !

आज राष्ट्र में नाना शिक्षण केन्द्र खुल रहे हैं। शासन भी इसके लिये जागरूक है। अध्ययन की नई-नई परिपाटियां चल रही हैं और उसे सर्व सुलभ तथा उपयोगी बनाने के बहुविध प्रयास चल रहे हैं। शिक्षण जीवन का आवश्यक पक्ष है पर आज आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा केन्द्रों में शिक्षार्थियों के सहज संस्कारों को जगाया जाये। अगर शिक्षा विद्यार्थी के जीवन पर भार बनकर आती है तो वह शिक्षा विद्यार्थी के लिये विशेष उपयोगी नहीं रह जायेगी। विद्यार्थी स्कूल में पढ़ता है, अध्यापक के डर से पढ़ता है, घर जाकर शायद पुस्तक की शक्ल भी नहीं देखता होगा। यह जो शिक्षा को थोपने की वृत्ति बनती है उससे शिक्षार्थी का मानसिक स्तर गिरता है और शिक्षा केन्द्र जेलखाने की तरह बन जाते हैं। शिक्षा में आनन्द आना चाहिये, भार बनकर वह क्या जीवन का कल्याण करेगी। भगवद्-गीता में कर्म को जिस तरह अकर्म कहा गया है उसी तरह शिक्षा होनी चाहिये। शिक्षार्थी अध्ययन करता-करता उसमें इतना निमग्न हो जाये कि उसे अध्ययन का पता ही न चले। अध्ययन भार महसूस न हो तभी विद्यार्थी गहन अध्ययन कर सकता है। जी चुराने की जो वृत्ति विद्यार्थियों में आती है, वह थोपी हुई शिक्षा के कारण आती है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि शिक्षार्थी शिक्षण को भार न समझ उसे अपने जीवन का एक आवश्यक कर्म समझ उसमें प्रवृत्त हों।

संस्कार-जागरण की आवश्यकता

मूल गुण प्रत्येक व्यक्ति में होते हैं। महानता का गुण प्रत्येक व्यक्ति में है पर महान् विरले ही बनते हैं। कारण क्या? आन्तरिक शक्ति जबतक विकसित नहीं होती, तबतक महानता का आविर्भाव नहीं होता। सोना भूमि में ही होता है पर जबतक वह परिमार्जित नहीं कर लिया जाता तबतक उसका मूल्य मिट्टी के पिण्ड से अधिक नहीं होता। अन्तर-जागरण के लिये आवश्यक सहारा जब व्यक्ति को मिलता है तब व्यक्ति महान् बन जाता है। जगत् में असंख्य व्यक्ति होते हैं पर सब महावीर और बुद्ध नहीं होते। सुषुप्त चेतना का जागरण होना चाहिये। शेर का बच्चा भेड़ों के साथ में रहकर भेड़ जैसे संस्कार ही पायेगा। भेड़ के संस्कारों की प्रबलता शेर के संस्कारों को दबा सकती है और भेड़ की तरह बन जाता है। यही तो संस्कारों प्रभाव है—शेर के बच्चे की जन्मते ही माता मर गई। गड़रिये ने उसे पाला-पोसा भेड़ों का दूध पिलाया। भेड़ों के साथ रह शेर का बच्चा घास खाने लगा। शेर की चेतना हट उसमें भेड़ के संस्कार जम चले। बड़े-बड़े हाथियों की कुम्भस्थली को खानेवाला शेर रोगी और असहाय होने पर भी घास नहीं खाता पर बाल सुलभ संस्कारों ने शेर को भेड़ जैसा बना दिया। संस्कार-जागरण की दशा देखिये—शेर का बच्चा घास चरते-चरते दूर जङ्गल में चला जाता है। वहां शेर की दहाड़ को सुन, उसकी आकृति को देख अपने वास्तविक जीवन की अनुभूति करता है। यह क्या है? संस्कार जागरण ही तो। इसी तरह बालकों के संस्कारों को जगाने की आवश्यकता है। अनन्त शक्तियां उनके अन्तःस्थल में छिपी पड़ी हैं उन्हें जगानेवाला हो तो इनमें से ही अनेक महावीर और बुद्ध बन सकते हैं।

शिक्षा प्रणालीमें नैतिक शिक्षणकी अपेक्षा

शिक्षालय सार्वजनिक होते हैं उनमें किसी धर्म विशेष की शिक्षा सम्भव नहीं होती। मैं इसे सही मानता हूँ पर सर्व धर्म सम्मत या सर्व धर्म समन्वित तत्वों की शिक्षा शिक्षालयों में सम्भव हो सकती है और आज उसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। हम उस शिक्षा को नैतिक शिक्षण कहकर पुकार सकते हैं। आज लोक जीवन में जितनी अनीति है क्या उसका कारण बाल जीवन में नैतिक शिक्षा का अभाव नहीं है? अगर उनमें शुरु से ही नैतिक जीवन के संस्कार डाले जायें तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनका आगामी जीवन बहुत कुछ नैतिक रह सकता है। आज बहुत सारे शिक्षाधिकारी भी यह आवश्यकता महसूस करते हैं शिक्षालयों में नैतिक शिक्षण दिया जावे पर खेद का विषय है कि नैतिक शिक्षा का जबतक कोई क्रम नहीं बन

है। इस विषय पर गहराई से सोचकर क्रियात्मक कदम उठाने की आवश्यकता है।

विनयमूल शिक्षण पद्धति

आजकल विद्यार्थियों में विनय और अनुशासन की प्रवृत्ति नहीं रही है। अध्यापक विद्यार्थी से कोई बात कहेगा—विद्यार्थी वहां स्वीकार करेगा, अध्यापक की शर्म से स्वीकार करेगा पर बाहर जाकर बड़बड़ाहट करेगा, अध्यापक को बुरा-भला कहेगा। आम तौर पर यह स्थिति बनती है। कभी-कभी विद्यार्थी अध्यापकों को पीट डालते हैं। स्वतन्त्रता का युग है। विद्यार्थी अध्यापक का कहना क्यों माने? उन्हें भी तो समान अधिकार प्राप्त है। यहां आकर स्वतन्त्रता का दुरुपयोग होता है। शायद स्वतन्त्रता का यह अर्थ तो नहीं होता होगा, जिसका लोग प्रयोग कर बैठते हैं। स्वतन्त्रता का सही अर्थ आत्मानुवर्तिता है, अनुशासनहीनता नहीं। स्वतन्त्रता जहां अनुशासनहीनता का रूप लेकर चलती है वहां अव्यवस्था होती है। शिक्षा क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा है। विनीतता और अनुशासन शिक्षा की पहली अपेक्षा है। पर आज लोग इनकी हंसी में उड़ा रहे हैं। हमारे यहां साधुओं में एक परिपाटी है—कोई बड़े साधु से कोई बात पूछनी है तो विनय और नम्रता के साथ पूछो। कोई साधु अपने आसन पर बैठा ही किसी साधु से कोई प्रश्न पूछता है तो शास्त्रकार कहते हैं कि उसको उत्तर मत दो। कोई खड़ा होकर पूछता है तो उसे भी उत्तर मत दो। शास्त्रकारों ने कहा है—वह पास आकर बद्धांजलि हो पूछे तो उसे इस बात का उत्तर दो। यह ज्ञान सीखने की वास्तविक पद्धति है। लोग कहेंगे—यह क्या? ये तो आदर्श की बातें हो गई। पर

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

सहचर सहचरी से!

[श्रीहरिकृष्णदास गुप्त 'हरि']

अपूर्णत्वानुभूति से छुटकारा पाने के लिए इधर-उधर क्या ताक-झाँक रहे हो? दूर-पास क्यों निगाह दौड़ा रहे हो? इस-उस पर किस लिए डोरे डाल रहे हो?

तुम्हें हो क्या गया है? कलुषता की मूसलाधार वर्षा में भीग कर जीवन में वसन्त लाना चाहते हो! पागलपन की कोई सीमा भी है!!

याद रक्खो—ताकाझाँकी से दूर-दूर ही पाओगे। निगाह की दौड़ से मन ही दौड़-भाग करके रह जाएगा हाथ कुछ नहीं लगने का। किसी पर डोरे डालने से उसे बाँधने से रहे; स्वयं ही बँधे-बंधे फिरोगे—लोक-परलोक में सम्मान क्या सर्वस्व खो कर। सम्मान गया तो रहा ही क्या स्वाभिमानी के लिये।

तनिक चेत में आओ तो।

पूर्णत्व तो तुम्हारी अपनी निजी थाथी है। विस्मृति-गर्त में गड़प हो गई है वह। उसे वहां से निकालने के लिए, तुम्हें उसकी सहज अनुभूति कराने के लिए तुम्हारी धर्म-सहचरी ही पर्याप्त है। उसे देखकर मुँह मत मसकोड़ो, उसमें कोर-कसर मत निकालो। सौन्दर्य पारखी होने के चक्कर में कोरे सूरदास बनकर बाहर बाहर ही मत रहो। आँख खोलकर भीतर-बाहर सब समूचा देखो। और तब तुम यह देखकर—आश्चर्य-चकित—सच हर्षाश्चर्यचकित रह जाओगे कि उसके पास वह सब है जिसकी तुम्हें जरूरत है, जिसके लिए तुम अन्यत्र दौड़-धूप कर रहे हो और वह दौड़-धूप भी कैसी! उचितानुचित का एक सिरे से सब भेद भुला कर।

भाई सहचर से बात करते-करते यही बात बहिन सहचरी से भी कह रहा हूं।

सहचर-सहचरी वास्तविकता में जागें। एक दूसरे के लिए ही सोलहो आने होकर, एक-दूसरे के मिस पूर्णत्वानुभूति करके जीवन सार्थक करें।

और भी।

यही करके न रह जाँएगे, परस्पर एक-दूसरे में सीमित होने की भी एक सीमा है। आगे बढ़ें। उस सीमा को भी असीमता का—सदृष्टि असीमता का रसास्वादन कराएँगे, अपने में से पूर्णत्व को समुद्र बहाएँ और इस अपूर्ण विश्व को पूर्णत्व-विभोर करदें—ऐसा कि युग-युग तक उनकी कहानी चलती रहे—भावी सन्तति के लिए प्रेरणा-स्रोत बनकर और अपूर्णत्व के सागर में इच्छाओं के तूफान में डूबते-उतराते, झकोले खाते पोतों के लिए प्रकाश-स्थम्भ बनकर।

सहज लीला ही होगी यह इन पूर्णत्व के धनियों के लिए तो, पर लीला का भी अपना महत्व है। बेचारा अपूर्ण विश्व इसी से पूर्णत्व का भान करेगा। अतः चूकें नहीं; अवश्य करें इस लीला को मेरे ललाम लीलामय। और कुछ नहीं तो मेरे निवेदन की ही लाज रख लें मेरे ही आत्मस्वरूप ये सहचर-सहचरी।

वास्तव में यही तो उसकी गंगा थी जिसमें वह रात-दिन खोयी और डूबी रहती, रोगियों की सेवा में समा जाती और उनके दुःखों को.....................

●

निस्वार्थ सेवा व स्नेह की एक हृदय-स्पर्शी और मार्मिक कथा

गंगा स्नान

[श्री शिवकुमार शर्मा 'शैल']

●

ग्रहण का समय था। उसको कई लोग कह चुके थे कि वह भी गंगास्नान कर आए। वह भी लोगों की राय से सहमत थी। मालूम नहीं पिछले जन्म में कौन से पाप किये कि इस दुर्गति में थी। अब तो कुछ पवित्र-कार्य करके पुण्य-लाभ ले ले। संसार में नेकी-बदी ही तो रह जाती है। बाकी मनुष्य तो पानी का बुलबुला है। आखिर अब उसका रहा ही कौन है, जो उस घर से मोह रहेगा। किसके लिए वह दुनियाँदारी के बीच रहेगी। सारी उमर ढल-सी गई किन्तु उसकी गोद नहीं भरी। जवानी ठीक से बीती भी न थी कि पति भी साथ छोड़ चले। नहीं, नहीं, वह अपने स्वामी के लिए ऐसे अपशब्द नहीं निकालेगी। उसका पति आज भी जीवित है। क्या हुआ जो उससे दूर है। वह जहाँ भी रहे हे गंगामाई! तुम उसे सुख से रखना। वह तुम्हारे दर्शन करेगी। किन्तु उसके पास है ही क्या? कुछ जमीन थी सो भी बिक गई। इलाज का असर न हुआ। पति का पागलपन ज्यों का त्यों रहा। अन्त में गाँव वालों ने उसे पागलखाने भिजवा दिया। कुछ भूमि बाकी थी सो वह पिछले पाख सहायता में दे दी। हाँ! वह कई बार डाक्टरों से सलाह भी ले चुकी किन्तु सभी ने कहा उसका पति अच्छा नहीं हो सकता यदि हुआ भी तो बहुत दिनों के बाद।

तभी पड़ोसवाले साहूकार की कर्कश-ध्वनि सुन पड़ी।—" बेइमानों! कर्ज लेते समय तो बाप के माल के समान ले गये अब देने के दिन मुँह छिपाते फिरते हो। आखिर मैं कब तक सहूंगा। मूल से ज्यादा तो तुम्हारा व्याज ही बढ़ गया है। याद रखो रुपये जल्दी अदा नहीं किये तो कानूनी-कार्यवाही कर तुम्हारा खून तक चूंस लूंगा। जाओ यहाँ से अपना मुँह काला करो।" रुपयों की तो उसे भी आवश्यकता थी अतः साहूकार के पास गई। वह चाकू से गन्ना छील-छील कर चूस रहा था। उसने कहा—कौन, सेवक की बहू! आओ बैठो। कहो क्या बात है?" "कुछ रुपये चाहिए। गंगा-स्नान को जा रही हूं।" साहूकार ने गन्ना चूसते हुए एक कोरे कागज पर लकीर खींचते हुए उसकी ओर बढ़ा दिया। "बहू इसमें जरा दस्तखत कर देना। बाकी रुपया जितना चाहो ले लो। जानती हो मैं भी व्यापारी हूं।"

सेवक की बहू ने बिना सोचे समझे, देना या न देना, चाहिए भी या नहीं, विचार नहीं किया; चुप दस्तखत कर दिये! सच तो यह था कि उसे सम्पति का, यहाँ तक की प्राणों का भी मोह नहीं के बराबर था। साहूकार ने गन्ने के टुकड़े को अपने दो बड़े दांतों के बीच जोरों से दबाकर उसे चूसते हुए कहा—"बहू, कब जाओगी प्रयाग? हम भी चलेंगे। अकेली मत जाना। बड़ा बुरा जमाना आया है। संसार में छल-कपट बहुत चला है। साथ ही चलेंगे।" बहू को साथ क्या मिला, परदेस का पक्का सहारा सा मिल गया।

आखिर एक दिन बहू, साहूकार की युगल जोड़ी प्रयाग को रवाना हुई। राह में दो-तीन स्टेशन के बाद बहू को प्यास लगी। एक स्टेशन में पानी के लिये उतरी। ग्रहण का समय जो था,—भीड़ थी। वह भीड़ को पार-कर अपने डिब्बे में न पहुँच सकी। गाड़ी छूट गई। वह वहीं रह गई। वह मन मारकर एक ओर बैठी रही। अब उसका वहां कोई सहारा नहीं था। पास में रुपये-पैसे भी न थे वह तो सब साहूकार को रखा दिये थे। तो क्या वह किसी के सामने हाथ पसारे? नहीं वह भीख नहीं मांगेगी। उसका हृदय घृणा से कडुआ हो गया। वह गंगास्नान जैसे पवित्र कार्य के लिए आई थी। भाग्य में गंगामाई के दर्शन नहीं बदे थे तो क्या हुआ? वह ओछे काम नहीं करेगी। उसने देखा प्लेटफार्म की एक ओर एक रोगी बार-बार खांस रहा था। पास ही एक युवा स्त्री उसकी ओर पीठ किए दूसरी गाड़ी की प्रतीक्षा कर रही थी। वह उस ओर गई और स्त्री से अप-नत्व भरी भाषा में उसके खांसने का कारण पूछा। कई बार पूछने पर स्त्री ने हिचकिचाते हुए कहा—"इन्हें क्षय रोग है।" बहू का दिल धक् से रह गया—टी० बी०। फिर बहू ने उससे बहुत देर तक बातें की और कुछ देर की ही बातचीत में वह उनसे घुल-मिल गई। उसने अपना दुखड़ा सुनाया फिर पूछा—क्यों,

२ बाल-बच्चे तो हैं न ? स्त्री ने 'हाँ' कहा। वह बोली—देखो अपने बच्चों की जतन और देखरेख के लिए तुम्हें स्वस्थ रहना जरूरी है। यद्यपि तुम्हारा पति रोगी है फिर भी उसके पास अधिक न रहा करो क्योंकि क्षय रोग फैलनेवाली बीमारी है। तुम्हें अभी जीना है।" स्त्री ने कहा—"फिर उनकी सेवा कौन करेगा ?" वह ने दृढ़तापूर्वक कहा—"मैं! तुम्हारा पति मेरे बेटे के समान है। मेरी कोई सन्तान नहीं। आज से यही मेरा बेटा है। यदि मुझे बीमारी लग भी गई तो कोई बात नहीं। जीवन के सब साध पूरे हो चुके। मैं मर भी जाऊंगी तो तर जाऊंगी।"

माँ के मुख से सन्तोष और शान्ति के भाव झलक रहे थे। पति-पत्नी उसकी इन बातों को सुनकर मन ही मन धन्य-धन्य कहने लगे। स्त्री ने कहा—"किन्तु माँ! तुम तो गंगास्नान को जा रही थी नाहक हमारे साथ तकलीफ क्यों मोल लेनी हो ?" माँ ने कहा—"क्या दुखियों की सेवा करना गंगास्नान नहीं है।" इसी तरह थोड़ी देर के पश्चात् गाड़ी आ गई। वे तीनों 'सेनिटोरियम' के लिए चढ़ गए। डिब्बे में रोगी को जो देखता, घृणा से मन ही मन गाली देता दूर जा बैठता। माँ केवल उसके पास बैठी रही और उसे सान्त्वना देती रही। आवश्यकतानुसार उसकी सेवा भी कर देती। वह रोगी से इतनी हिलमिल गई कि रोगी का मन हर लिया। रोगी माँ के ममत्व-पूर्ण और अपूर्व धैर्यपूर्ण समझावे में शान्ति-सी पाता। उसे अपने जीवन की आशा हो चली थी। माँ के स्वर्गीय-मिलन के बाद उससे वह बिछुड़ना नहीं चाहता था।

सेनिटोरियम पहुँचा गया। डाक्टर ने मुलाहिजा किया। कहा—'सीरियस' है। बहुत दिनों में आराम होते २ होगा।" उपचार आरम्भ हुआ। डाक्टर और नर्स रोगी की सेवा जिस ढंग से बताते माँ पूरी सावधानी से करती। मरीज की पत्नी को उससे दूर रखती ताकि उसपर भी बीमारी का असर न हो जाय। पत्नी भी सेवा की साक्षात्-मूर्ति को पाकर पति-सेवा की ओर से कुछ निश्चिन्त सी हो गई थी। माँ पर उसका पूरा-पूरा विश्वास था। वह रात-दिन रोगी के सिरहाने बैठकर उसकी दवा-औषधि का प्रबंध और निगरानी करती। अधिक पीड़ा से व्याकुल हो मरीज जब चीखने लगता तब आधी रात को भी माँ उसके सिर पर हाथ फेर उसे अच्छी २ कहानियाँ सुनाती और उसका मन बहलाती। दिन को छोटी २ किताबें पढ़कर सुनाती। हमेशा उसे विश्वास दिलाती कि क्रमशः अच्छा हो रहा है और जल्द ही बिलकुल अच्छा हो जायगा। वह स्वयं भूखी-प्यासी रहती, हाथ-पैर दर्द करने लग जाते, रात-रातभर जगनेसे सिर में पीड़ा रहती, मुख पर वेदना की करुण छाया घिर आती किन्तु वह सेवा करने में कमी नहीं करती। रोगी उसकी सेवा व उसकी बातों से अत्यधिक तृप्त और सन्तुष्ट था। उसके रगरग में माँ छा गयी थी। पीड़ा में उसका अन्तरतम पुकार उठता "माँ"! रोगी के हृदय में यह विश्वास बैठता जाने लगा कि वह अच्छा हो रहा है। इधर माँ दुबली होती जा रही थी। शरीर काला पड़ता जा रहा था। रह-रहकर माथे पर पीड़ा की रेखाएं खिंच जाती थीं। डाक्टर, नर्स और पत्नी कहती कि वह एक निरे पराये के लिये इतनी तकलीफ क्यों उठाती है ? पर वह सबकी बातों को कृत्रिम हंसी हंसकर टाल देती। किन्तु सेवा कार्य में वह कमी नहीं करती। जैसे उसने अपनी जान को सेवाकार्य के लिए होम दी थी।

अविरल प्रयास, निस्वार्थ सेवा से रोगी की हालत में कुछ सुधार के लक्षण नजर आ रहे थे एक दिन डाक्टर ने कहा—बहन, आज मैं ऐसा इनजक्शन देनेवाला हूँ कि रोगी दो-तीन दिन बेहोश रहेगा। यदि इस इनजक्शन से वह अच्छा हो गया तब तो ठीक है वर्ना...। "माँ का हृदय आशंका से जोरों से धड़क उठा। इनजक्शन दिया गया। रोगी दो दिन तक बिलकुल बेहोश था। माँ ने दोनों रात पलकों में काटी। वह डरती थी कि कहीं उसकी सेवा में ऐसी कोई कमी न आने पावे जिससे रोगी को लाभ के अपेक्षा नुकसान पहुँचे। उसने रात-भर प्रार्थना की। भगवान को सच्चे हृदय से गुहारा। तीसरे दिन रोगी ने आँखें खोल दी। डाक्टर साहब खुश हो गए और माँ से कहा—"बहन! मुझे इस मरीज के बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। किन्तु यह तुम्हारी निरन्तर सेवा का परिणाम है कि अब यह अच्छा हो गया। मैं तुम्हें किन शब्दों में धन्यवाद दूं ?" माँ के चेहरे पर खुशी के भाव फैल गए। इस खबर से सेनिटोरियम के सभी कर्मचारी बहुत प्रसन्न हुए। वे सब रोगी को देखने के बहाने उस त्यागी और साक्षात मूर्ति के दर्शन करने आते और मन ही मन उसको प्रणाम करते। कुछ दिनों में रोगी चंगा हो गया। लेडी डाक्टर, सर्जन, नर्स इस माँ की कर्मठता से प्रभावित थे ही।

माँ अब मिडवाइफ बना दी गई। मिड-वाइफ का काम करते हुए वह नर्सिंग भी सीख गई। फिर उसे शीघ्र ही नर्स बना दिया गया। माँ ने अब अपने जीवन के शेष दिनों को लोगों की सेवा में ही व्यतीत करने का निश्चय किया। उसकी सेवा, उसकी नम्र भाषा और सदाचार से सारे वार्ड के रोगियों के हृदय में माँ के लिए आदर की भावना और श्रद्धा भरी थी। वह सुविख्यात हो गई। उसके वार्ड के

रोगी उसे एक भी जून न देखते तो व्याकुल हो जाते। न जाने माँ के हृदय में कितनी नम्रता, वात्सल्य और सेवाभाव था। जिस समय वह वार्ड में जाती चारों तरफ से सुन-पड़ता "मां!" जिस समय वह अपने वार्ड के बरण्डे में रोगियों के कतार से लगे पलंग को दूर से देखती तो सफेद कपड़े बिछे ऐसे दिखते मानों पावन गंगा की धारा वह रही हो। वास्तव में यही तो उसकी गंगा थी जिसमें वह रात-दिन खोयी और डूबी रहती। रोगियों के हृदय में समा जाती और उनके दुखों को धीरे से दूर कर देती।

एक दिन! एक नया रोगी आया। वह खाट पर लेटा बड़ी आकुलता से कराह रहा था। मां ने देखा टी० बी० से उसका शरीर खोखला हो चुका था। उसकी आँखों में तेज नहीं था। आंखों के नीचे काले गड्ढे पड़े हुए थे। गालों के ऊपर की उभरी हुई हड्डी तक उसकी खुरदरी और बेतरतीब दाढ़ी थी। सारा शरीर पीला पड़ चुका था। वह बार-बार खांसता और थूकता था। उसके थूक से खून का अंश निकला करता था। शरीर में खून नहीं था यहां तक कि नाखून सफेद पड़ चुके थे। मां के हृदय में दया और सहानुभूति के मार्मिक भाव झांक गए। उसने प्यार से पूछा—भाई, पीड़ा बहुत है?...घबराओ नहीं अब जल्द अच्छे हो जावोगे"। इतना कहने के पश्चात ही मां और रोगी दोनों एक दूसरे को आपस में अचरज की आंखों से पहचानने की कोशिश कर रहे थे। सहसा मरीज ने चीखकर कहा—"सेवक की बहू!" रोगी की आवाज में क्षमा मांगने का भाव स्पष्ट था मां ने भी आश्चर्य से कहा—साहूकारजी आप? उस समय मैं ट्रेन से आपसे बिछुड़ गई थी। क्या बताऊँ मैं आभागिनी तो गंगास्नान न कर सकी।"

"बहू, मेरी अच्छी बहू, ऐसा न कहो, तुम देवी हो। केवल गंगास्नान कर लेने से कुछ नहीं होता। पीड़ितों और असहायों की सहायता करना गंगास्नान से भी पवित्र कार्य है। फिर जिसकी नस-नस में पाप छाया हो

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

गीत

[श्री सुरेश सेठ एम० ए०]

यदि मुझे खोजना किसी समय भी चाहो तुम,
मेरे भावों में खो जाना बस एक बार।

दुनियाँ तो एक दिवस का है बाजार यहाँ,
जिसमें माटी के सुघड़ खिलौने विकते हैं।
इनकी भोली चितवन में ऐसा जादू है,
कि ठिठक पांव, हर यहाँ पथिक के रुकते हैं।
श्वासों की धड़कन का कुछ भी है पता नहीं,
कब रुक जायेगी निज जीवन से स्वयं हार।

हर मिलन यहाँ अनदेखा एक सवेरा है,
जो थकन मिटाने को हमको मिल जाता है।
जब विकल व्यथित ये आँखें भर २ आती हैं,
तब गीत हृदय से स्वयं निकल कर आता है।
लेकिन क्या अचरज कहीं उजाले से पहले,
हो विसुध चेतना सो न जाय मेरी उदार।

मत डरो प्रलय के घोर यहाँ तूफानों से,
जीवन में सबके छिपी हुई है तपन यहाँ।
है कठिन चुकाना कर्ज किन्तु उस दीपक का,
जो सिहर २ हर क्षण सहता है जलन यहाँ।
मुझको ये ही वरदान मिला है जीवन में,
तुम हँसो, और मैं सहता जाऊँ सभी भार।

यदि तुम्हें नहीं मैं मिल पाया इस जीवन में
मैं प्यार तुम्हारा फिर से लेकर आऊंगा।
अनजान गगन-पथ की अनजान दिशाओं से,
मैं बादल बनकर घुमड़ यहाँ घिर जाऊंगा।
लेकिन उस क्षण तुम महा तिमिर के स्वयं बीच,
जीवन में बनकर किरण उतरना एक बार।

भौतिक प्रवृत्तियां और अहिंसा

[श्री पीताम्बरदत्त शास्त्री, साहित्याचार्य]

ज्यों-ज्यों भौतिक सभ्यता का विकास होता जा रहा है, विश्व के समक्ष नई-नई समस्यायें उपस्थित हो रही हैं और मानव आत्म-विश्वास से वंचित होता जा रहा है। आधुनिक मानव संस्कृति की धारा राजनैतिक षड्यन्त्रों और शक्तिशाली विषाक्त अस्त्रों के मध्य में बह रही है। इस विकट वातावरण में मानव को सत्पथपर अग्रसर करने का उपाय खोज निकालना असम्भव भी नहीं तो कठिन अवश्य सिद्ध हो रहा है। यह तो सुनिश्चित है कि विनाशक अस्त्रों का बाहुल्य विश्व को सही मार्गपर कभी नहीं चला सकता, क्योंकि अस्त्र-शक्ति स्वयं अन्यथा-सिद्ध है। अस्त्रों का विनियोग केवल भयोपादक है। राजनैतिक सङ्गठन भी जबतक स्वार्थ के पङ्क से निकलकर विशुद्ध वातावरण में नहीं आ जाते, उनका वास्तविक लक्ष्य सिद्ध नहीं हो सकता।

राजनैतिक दलबन्दियों के परिणामस्वरूप शान्तिपूर्ण जीवन का आधार डगमगा गया है, मनुष्य के स्वाभाविक अधिकारों में ताला लगा हुआ है। एक सीमित परिधि के अन्दर चक्कर काटता हुआ विश्व जीवन का सरल सूत्र सर्पाकार प्रतीत होता है। यान्त्रिक साधनों ने औद्योगिक क्रान्ति के नामपर सार्वजनीन उन्नति में दुर्वार बाधा पहुँचायी है। एक ओर यन्त्रों के ढेर लगे हुए हैं, दूसरी ओर नर-कङ्कालों का समूह दृष्टिगोचर होता है। ऐसी दशा में नव निर्माण का स्वप्न देखना निश्चय ही हास्यास्पद है। आर्थिक प्रलोभन का विस्तार नाना प्रकार की गुटबन्दियों को जन्म दे रहा है। प्रचुर परिमाण में वस्तुओं का उत्पादन भी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ है। क्योंकि खपत करने की प्रणाली पूर्णतया दोषयुक्त है।

दिन प्रतिदिन बढ़ता हुआ क्रय शक्ति का ह्रास एक ओर से सारे संसार में दारिद्र्य ला रहा है। फलतः उद्योगों के बल से सम्पन्न राष्ट्र अपना उल्लू सीधा करने के लिये शोषण में प्रवृत्त हैं। विवश होकर उन्हें ऐसा करना पड़ता है अन्यथा उनके प्रभुत्व को क्षति पहुंचे बिना नहीं रह सकती, यही कारण है कि विश्व में पिछड़ी जातियों का निर्दलन हो रहा है और औपनिवेशिक सत्ताओं का अन्त नहीं हो पाया है। उद्‌जन युग में लोगों की आवश्यकतायें जहां व्यापक हुई हैं वहां जीवन-यापन के साधन अनर्थ और सीमित हो चले हैं। इन मौलिक समस्याओं को देखते हुए भी आज का विश्व निःशस्त्रीकरण जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर चुप्पी साधे बैठा है। साम्राज्य की अखण्डता तथा अर्थ लोलुपता के भूत ने मानवता को चुनौती दे दी है। अतएव आज के युग में जितना विनाशात्मक वस्तुओं के निर्माण में योग लिया जा रहा है उससे कहीं अधिक रचनात्मक तत्वों को प्रश्रय देने की आवश्यकता है। संसार को नाना प्रकार के क्षोभों से मुक्त करने का उपाय वैषम्यों का निराकरण ही है। दलनात्मक प्रवृत्तियों का विरोध स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकेगा इसमें कोई सन्देह नहीं। बुद्धिवाद की गोद में जहां व्यक्तिवाद निःशङ्क होकर इठला रहा है, समष्टि का नैतिक हित भ्रष्टाचार की खाइयों में भटक रहा है। यांत्रिक साधनों से पुंजीभूत धन की वितरण प्रणाली मानवीय तत्वों पर आवरण डालकर जगत को प्रभुत्व पिपासा से पीड़ित कर रही है। सभी लोग करोड़पति हो जांय यह नितान्त असम्भव है। बेकारी और भुखमरी के चंगुल में बँधे हुए व्यक्ति धैर्यपूर्वक रहेंगे यह भी उतना ही असम्भव है। ऐसी परिस्थिति में विभिन्न वर्गों का मेल होना कठिन है, इसीलिये वैषम्यों की छाया से आक्रान्त व्यक्तित्व-संघर्ष की ओर उन्मुख हो रहा है।

भौतिक साधनों की ढेरी में सामाजिकता दब गयी है। मनुष्य का नैतिक चिन्तन अपने केन्द्र से विचलित होकर बुद्धिवाद के कठोर एवं स्थूल ढांचे से टकरा रहा है। बाहर तो चकाचौंध है किन्तु अन्तर्दृष्टि से मलिन होती जा रही है। स्थूल आदर्शों पर घसीटनेवाला बुद्धिवाद अपना प्राबल्य प्रकट कर रहा है। मनुष्य ने भौतिक आराम को ही जीवन का सर्वस्व मान लिया है। यह प्रत्यक्ष है कि विज्ञान जीवन के नैतिक पक्ष की उपेक्षा में रत है। फलस्वरूप विश्व को अशान्ति से मुक्त करने की चेष्टा में विफल हो रही है। आज जगत को नैतिक शक्तियों का निर्माण करने की आवश्यकता है। मानव शक्ति का उपयोग जगत के कल्याण के लिये होना चाहिये। विश्वविख्यात वैज्ञानिक आइंस्टीन ने विज्ञान का उपयोग मानव समाज की नैतिक उन्नति के लिये होना चाहिये—ऐसा विचार प्रकट किया था। उसने कहा था यदि विज्ञान की शक्ति विनाशक अस्त्रों का निर्माण करने में ही लगा दी जायेगी तो सारा संसार उसकी भयानक ज्वालाओं में भस्म हो जायेगा। मानव सभ्यता की रक्षा के लिये नैतिकता की अपेक्षा है। मनुष्य को अपनी आवश्यकतायें सीमित करनी होंगी। विलास, ऐश्वर्य और वासनाओं को दमित रखना होगा, तभी

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

● *यह अतृप्ति क्यों ?*

अनेकानेक भौतिक साधनों के हुए भी आज का मानव असन्तुष्ट, अतृप्त और दुःखी है। इन सबका क्या कारण है? 'जीवन साहित्य' में प्रकाशित श्री टालसटाय के विचारों में उपरोक्त प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है :—

"किसी राजा के एक पुत्री थी जिसका विवाह किसी करोड़पति सेठ के पुत्र से हुआ। सेठ के लड़के ने राजपुत्री को खुश करनेके लिये विपुल धन खर्चकर बहुत सुन्दर महल बनवाया। देश-विदेश से जेवर तथा कपड़े मंगवाये। राजकुमारी के स्वागत में बृहद् भोज दिया। जिसमें अनेक प्रकार की मिठाइयाँ बनवाई और नृत्य तथा गायन का आयोजन किया। अपनी संपत्ति का राजकुमारी के सम्मुख प्रदर्शन किया, पर राजकुमारी को इससे सन्तोष नहीं हो सका, क्योंकि उसने पिता के घर इससे भी अधिक समृद्धि देखी थी, इसलिये उसे यह समृद्धि आकर्षित नहीं कर सकी, उसे सन्तोष नहीं हो सका।

यही बात जीवात्मा की है। सृष्टि अपने साधन-सम्पत्ति के भंडार मानव के सामने खोलकर रख देती है। इन्द्रियजन्य सुख के सारे साधनों को पाकर भी उसे सन्तोष नहीं होता। भौतिक सुखों से तृप्ति नहीं होती। इसका कारण यही है कि उसने इससे बढ़कर सुख तथा समृद्धि परमेश्वर के पुत्र के रूप में देखी है। उसे ये सब अधूरे से लगते हैं। इसलिये भौतिक साधनों से उसकी तृप्ति नहीं होती।"

● *सतत प्रवाहित झरना !*

वास्तविक स्वरूप को भूलकर हमारी दृष्टि-कौन से रूप तक पहुंच सकी है यह शायद हम न सोच पाते हों किन्तु 'गीता-प्रवचन' में श्री विनोबा के विचार इसी दिशा में हमें प्रेरित कर रहे हैं—

"देह तो कपड़े की तरह है। पुराने फट जाते हैं, इसी से तो नये धारण किये जा सकते हैं। यदि कोई एक ही शरीर आत्मा से सदा के लिये चिपका रहना, तो आत्मा की बुरी गत होती। सारा विकास रुक जाता, आनन्द हवा हो जाता और ज्ञान-प्रभा मन्द हो जाती। अतः देह का नाश शोचनीय नहीं हो सकता। हां, यदि आत्मा का नाश हो सकना होता, तो अलबत्ता वह एक शोचनीय बात होती। पर वह तो अविनाशी है, वह मानो एक अखण्ड बहता हुआ झरना है। उस पर अनेक कलेवर आते और जाते हैं। इसलिये देहके नाते-रिश्तों के चक्कर में पड़कर शोक करना और ये मेरे तथा ये पराये हैं, ऐसे भेद या टुकड़े करना बिल्कुल अनुचित है।"

● *राष्ट्र की आत्मा*

आज जबकि सम्पूर्ण देश में चारों ओर विघटनकारी तत्त्व मुंह बाये खड़े हैं तब राष्ट्र की आत्मा को जानना और समझना हम सभी का परम कर्त्तव्य हो जाता है और 'शिव-साहित्य' में प्रकाशित श्री देवकृष्ण पुरोहित के प्रस्तुत विचार उसी के लिये मानों आह्वान कर रहे हैं :—

"वे योजनाएं कौन-सी हैं—जिनसे हमारी राष्ट्र की आत्मा बलशाली होगी, यदि यह जानना हो तो आवश्यक है कि हमें यह ज्ञान हो कि राष्ट्र की आत्मा क्या है? हमारे पूर्वजों ने राष्ट्र की एकात्मकता को ही राष्ट्रकी आत्मा माना है। राष्ट्र के व्यक्ति-व्यक्ति को इसी एकात्मकनाकी अनुभूति कराना ही उन्होंने राष्ट्र के चिरंजीवत्व के लिये आवश्यक माना है। उनके सारे प्रयत्न व सारी योजनाएं इसी एकात्मकना को बल देने की दृष्टि से ही रही हैं। उनका यह विश्वास रहा है कि राष्ट्र की एकात्मकता रूपी आत्मा बलशाली रही तो आर्थिक और राजनैनिक प्रगति रूपी शरीर सौन्दर्य अपने आप तर्क-सिद्ध परिणाम के रूप में स्वतः ही प्राप्त हो जायेगा। शरीरों के भिन्न रहते हुए भी माता के पुत्र इस नाते हम सब एक हैं—इसी भावना के प्रचार व प्रसार में उनके जीवन बीते हैं, ऐसा हमें स्पष्ट दीखता है।"

● *दो भाव-चित्र !*

'शक्ति' में प्रकाशित श्री महेशचन्द्र सोनी के ये दोनों भाव-चित्र कितने मार्मिक एवं हृदय-स्पर्शी हैं। एक में जग का एक अटल सत्य छिपा है तो दूसरे में प्रेम की व्याख्या :—

"अपने गन्तव्य स्थान की ओर बढ़ते हुए दो पत्र आपस में मिले। उनमें से एक पत्र ने दूसरे पत्र से कहा—"मैं अपने स्वामी के पास एक शुभ समाचार लेकर जा रहा हूं, सुनोगे?"

'सुनाओ' दूसरे पत्र ने उत्तर दिया।

'मेरे स्वामी के घर पुत्र ने जन्म लिया है। क्यों है न शुभ समाचार?' बड़े गर्व से उस पत्र ने कहा।

'मैं भी एक शुभ समाचार अपने स्वामी के समीप ले जा रहा हूँ।' दूसरे पत्र ने बड़ी गम्भीरता से कहा।

'तनिक हम भी तो सुनें तुम्हारा वह शुभ-समाचार' पहले पत्र ने उत्सुकता प्रदर्शित की।

"मेरे स्वामी की पत्नी तथा एकमात्र पुत्र का देहान्त हो गया है और अब वह इस संसार में एकाकी है।"

"यह शुभ समाचार है? तुम होश में तो हो?"

'हाँ मैं पूरे होश में हूँ। वास्तव में मेरा सन्देश ही शुभ है। जानते हो, जन्म मोह को द्विगुणित करता है और वह कभी शुभ नहीं होता। मृत्यु इस संसार का अटल सत्य है और सत्य सर्वदा शुभ ही होता है।'

पहला पत्र तब मौन हो गया।

× × ×

दो युवा हृदय! प्रथम मिलन की वेला। भावातिरेक में विभोर-सा युवक बोला—"आज मैं तुम्हें एक सत्य बताना चाहता हूँ, सुनोगी"

युवती ने स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया।

"मैं तुमसे बहुत प्रेम करता हूँ" युवक ने उल्लसित हृदय से कहा।

"अब मैं भी कुछ कहना चाहती हूँ, सुनोगे" युवती के आनन पर व्याप्त गाम्भीर्य प्रखर हो उठा।

"सुनाओ"

"तुम मुझसे बिल्कुल प्रेम नहीं करते"

"भला क्यों?" युवक ने साश्चर्य पूछा। बड़ी शालीनता से युवती ने उत्तर दिया—"इसलिये कि प्रेम व्यक्त करने के लिये कभी वाणी की आवश्यकता नहीं होती।"

संघे शक्तिः कलौ युगे

संगठन से राष्ट्रीय एकता को कितना बल मिलता है यह किसी से छिपा नहीं है 'जिन वाणी' में प्रकाशित श्री पुष्कर मुनिजी के निम्न-लिखित विचार इस दृष्टि से सचमुच ही पठनीय और माननीय हैं—

"संगठन में अपार शक्ति है, वही समाज, धर्म, पन्थ और राष्ट्र जीवित रह सकता है जिसमें संगठन है। संगठन ही जीवन है और विघटन ही मृत्यु है। जल जब भिन्न-भिन्न धाराओं में बहता रहता है, तब मिट्टी उसे सुखाने के लिये दौड़ती है। हवा उसे नष्ट करने का प्रयत्न करती है। क्या यह अकेली धारा हजारों मील के लम्बे-चौड़े रेतीले मैदान को पार कर समुद्र को प्राप्त कर सकती है? नहीं, समुद्र को प्राप्त करने के लिये भिन्न-भिन्न धाराओं को मिलाकर एक विराट् नदी का रूप धारण करना होगा। नदी बनने के बाद कितनी ही आँधियाँ आयें, तूफान आयें, उमड़-उमड़ कर घनघोर घटायें आयें, पशु और पक्षियों का, नर और नारियों के समूह आयें, भीष्म ग्रीष्म भले ही आग उगले किन्तु उस महानदी को इन उपद्रवों से क्या भय? वह तो इठलाती, अठखेलियाँ करती और मुस्कराती हुई, अपने ध्येय-स्थान को प्राप्त कर लेती है, किन्तु नष्ट नहीं होती। कौन-सी शक्ति है जो उसे नष्ट कर सके?"

विचारों की अपार शक्ति

संसार के महापुरुषों ने जो भी बड़े-बड़े कार्य किये हैं वे सब उनकी विकसित विचार-शक्ति का ही तो परिणाम है। 'आरोग्य' में प्रकाशित श्री स्वामी कृष्णानन्दजी ने मनो-वैज्ञानिक आधार पर कितने स्फूर्तिदायक विचार प्रकट किये हैं—

"आप नक्षत्र का निर्माण कर पृथ्वी की तरह घूमते रहने के लिये उसे आकाश में छोड़ दे सकते हैं, पर संसार को एक सुन्दर विचार दे जाने के समक्ष यह कार्य फीका है।

अपने विचारों की दुनियां को सुन्दर बनाइये। अपने अभ्यस्त विचारों के छिद्रों का निरीक्षण कीजिये। उनमें यदि अनुदारता या विशृङ्खलता है तो उसे दूर कीजिये।

संसार की श्रेष्ठ वस्तुएं आपसे दूर अथवा आपके लिये अप्राप्य नहीं हैं। वे आपके निकट हैं, आपकी पकड़ के अन्दर हैं और प्राप्य हैं। सुन्दरतम समय भविष्य के गर्भ में नहीं छिपा है। यह समय ही सुन्दरतम है। श्रेष्ठ अवसर आनेवाला नहीं है, वह आ गया है। वह जहाँ आप हैं, वहीं और इसी समय उपस्थित है।

जीवन को सुन्दर और भव्य बनानेवाली सभी वस्तुयें इसी समय प्राप्य हैं। इन अमूल्य विधियों के स्वामी बनने के लिये इसी समय कटिबद्ध होइये और अपनी शक्तियों को पह-चानिए और विकसित कीजिये। जो बड़े काम आप भविष्य में करना चाहते हैं उनका आरम्भ इसी समय कीजिये। इस प्रकार बड़े-बड़े काम आज ही कीजिये।"

तुम्हारा देवता कौन?

आगामी पचास वर्ष तक तुम लोग एकमात्र 'स्वर्गादपि गरीयसी' जननी जन्मभूमि की उपासना करो। इन वर्षों में देवताओं को भूल जाने में भी कोई हानि नहीं। दूसरे देवगण सो रहे हैं, इस समय तुम्हारा एकमात्र देवता है तुम्हारा राष्ट्र। सभी स्थानों में उसका हाथ है, उसके सतर्क कर्ण सभी जगह मौजूद हैं। वह सभी स्थानों में व्याप्त होकर विद्यमान है। तुम लोग किसी निष्फल देवता की खोज में दौड़ रहे हो और अपने सामने तथा चारों ओर जिस देवता को देख रहे हो, उस विराट की उपासना नहीं कर रहे हो। ये सब मनुष्य तथा ये सब पशु ही तुम्हारे ईश्वर हैं और तुम्हारे स्वदेश-निवासीगण ही तुम्हारे प्रथम उपास्य हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

सोचें और विचारें कि क्या यह बुद्धिमानी है?

श्रीप्यारचन्द मेहता साहित्यरत्न

लग्न के शुभ मुहूर्त में आजकल चारों ओर विवाहादि का तांता लगा हुआ है। प्रतीत होता है मानो परवी लुट रही हो। ऐसे मंगल-मय समयमें किसी प्रकारका विचार या आशंका मन में लाना अस्वाभाविक अवश्य दीखता है किन्तु आज के बेमेल और असामयिक रिश्ते प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति को इसके लिये विवश कर देते हैं और ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण नित्य-प्रति हमारे सामने उपस्थित होते हैं।

हाल ही में बिरादरी के एक व्यक्ति अपने पौत्र की शादी कर रहे हैं। बालक की आयु १४ वर्ष है। आठवीं कक्षा की परीक्षा देनी है। ठीक परीक्षा तिथि को ही शुभ लग्न आते हैं। कठिन समस्या खड़ी हो गई है, आखिर क्या किया जाय। कन्या का पिता मानता नहीं। उनका आग्रह है—लग्न इसी वर्ष होगा। मालूम नहीं कल क्या हो, भूस्वामियों का आन्दोलन चल रहा है, डाके भी यदाकदा पड़ते रहते हैं, शायद कल हम लुट ही जांय, पैसा ही न रहे। आज तो जो कुछ पास है उसे खर्चकर अपने हाथों से आनन्द ले लें, इसी में बुद्धिमानी है। लड़की की भी आयु १२-१३ वर्ष की हो गई है, फिर बेमतलब क्यों देर की जाय? आदि-आदि। लड़की की शिक्षा का प्रश्न ही क्या जब लड़के की ही परीक्षा की लग्न तिथि के कारण उपेक्षा की जा रही है।

लड़की के पिता की ओर से तैयारी भी बड़ी जोरों से हैं। तिलक दहेज आदि का सामान खरीदा जा चुका है। जिसके फलस्वरूप कई वस्त्र विक्रेताओं, सर्राफों, किनारी फरोशों आदिमें प्रतिस्पर्द्धा भी रही और देखिये, सैंकड़ों रुपये व्यय करके खरीदे जानेवाले सामान की उपयोगिता का ख्याल नहीं, वहां तो बाहरी दिखावा और शो ही शो है। इसी के कारण चमकीले, भड़कीले व मूल्यवान् लेकिन अनुपयोगी और अनावश्यक वस्त्रों आदि का ढेर लग गया है। यह सब तैयारी है सिर्फ दहेज देनेके लिये, अपनी शान ऊँची करने के लिये।

लाउडस्पीकर का पूरा प्रबन्ध है लेकिन सद्-विचारों के प्रचार व प्रसार के लिये नहीं। भला वे तो स्कूलों व धर्मस्थलों की चीज है न, उन विचारों का यहाँ विवाह में क्या काम? यहां तो आखिर ठहरी प्यार की बातें, फिर दिल डोले, मन डोले और तन डोले की बात सामने आये तो क्या आश्चर्य? रंगरेलियां और मह-फिलें रचें तो क्या शर्म? यह है हमारा दृष्टि-कोण! कितनी पतन की पराकाष्ठा है?

यह सब कुछ प्रदर्शन होता है उन बालकों के जीवन-निर्माण का नारा लगाकर जिन्हें देश की भावी बागडोर सम्भालनी है, जिनपर राष्ट्र व समाज का एक बड़ा उत्तरदा-यित्व आनेवाला है। भला इन खिलने से पहले ही मुर्झा जानेवाले बालकों से क्या यह अपेक्षा की जा सकती है?_ कदापि नहीं। इस प्रकार बच्चों के साथ अन्याय करके व अपनी संतुष्टि पर फूले न समाते हुए उल्टा सुधारवादियों को यह उत्तर दिया जाता है।

"नाहक ही कुछ लोग कहते हैं कि वर और कन्या की आयु जबतक स्वावलम्बनपूर्वक जीवन-निर्वाह करने योग्य न हो जाय तबतक विवाह नहीं होना चाहिये। जब पिता और दादा आदि मौजूद हैं तो उनके स्वावलम्बन का फिक्र सुधारवादियों को क्यों हो? थोड़े दिनों पश्चात् सब ठीक हो जायेगा। रहा खर्चे का सवाल सो विवाह जैसे अवसर पर भी यदि दिल खोलकर खर्चा न करें तो किसमें करें। आखिर कमाते किसके लिये हैं?"

इसे क्या कहें? विवेकशून्यता का कैसा नमूना है? जिस भावी पीढ़ी पर इस देश का भार होगा उनका जीवन बनाने में हम कितने असावधान हैं! कन्या का पिता विवाह के अवसर पर दिल खोल खर्चा करता है। बरा-तियों की खातिरदारी में किसी प्रकार की कमी नहीं की जाती। उनकी प्रत्येक मांग की पूर्ति की जाती है। सम्बन्धी को तिलक जुहारी दहेज में खूब पैसा दिया जाता है। किन्तु कन्या के जीवन-निर्माण की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। छोटे गांवों में तो कन्या की शिक्षा की बिल्कुल ही उपेक्षा रहती है। इसके अतिरिक्त उसपर पर्दे का भार बलात् लाद दिया जाता है। फलस्वरूप उसका विकास कुछ भी नहीं होता। बदलते हुए नये युग में उसका जीवन बिल्कुल निकम्मा रहता है। जितना द्रव्य कन्या के पिता ने व्यय किया उसमें से कुछ आभूषण यदि दैवयोग से उसके पास रह गये, उसको छोड़ उसकी भलाई में या उसकी कठिनाई के समय कुछ काम नहीं आता। उसका सारा जीवन योग्य अथवा अयोग्य ससु-रालवालों की कृपा पर निर्भर रहता है। दुर्भा-ग्यवश यदि पति विछोह हो गया तो उसका जीवन दो कौड़ी का भी नहीं रहता।

यदि विवाहके अनावश्यक और महत्त्वहीन खर्चे को कम करके कन्या के अभिभावक कन्या की शिक्षा और उसे योग्य बनाने में खर्चकर उसे पूर्ण स्वावलम्बी बना दें तो कितना उत्तम हो। निसंदेह सबसे उत्कृष्ट दहेज यही है।

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

अणुव्रत की अनुपम देन

[श्री गोकुलचन्द भण्डारी]

आज हिंसा के तांडव नृत्य ने दुनियां के प्रत्येक भाग की शान्ति का अपहरण कर प्राणीमात्र के जीवन को दुखमय बना दिया। नैतिकता तथा संयम से विचलित कर दानवता तथा भ्रष्टाचार की ओर मानव को प्रेरित किया। परिमाणतः इस अनैतिकता की आग में दुनियां की शांति भस्मीभूत हो गई। उस मृत शांति में प्राण फूंकने के निमित्त वैज्ञानिकों की अनुपम सूझ ने अणुबम जैसे विध्वंसक आयुध के निर्माण का उपाय खोज निकाला। उनका यह दावा था कि अणुबम संसार में शांति स्थापित करने में कामयाब सिद्ध होगा, क्योंकि संसार इसकी अपूर्व तथा तेज शक्ति के भय से लड़ाई के निर्माण का साहस नहीं करेगा। जब युद्ध का सूत्रपात नहीं होगा तो अशान्ति स्वतः ही रण छोड़ कर भाग जायेगी। परन्तु जब अणुबम का निर्माण कर प्रयोग किया गया तो उनको निराश के गहन गर्त में डूबना पड़ा तथा शान्ति स्थापित करने की मोटी-मोटी कल्पनाएँ नौ-दो ग्यारह हो गईं। इधर आचार्यश्री तुलसी का भी इस ओर प्रयास जारी था। आखिर उनकी प्रखर बुद्धि ने अणुव्रत आयुध का निर्माण कर डाला, जिसने आशान्ति का दमन करने में अशातीत सफलता उपलब्ध की है।

किसी चीज में मिलावट कर या नकली को असली बताकर न वेचना—

प्राचीन समय में व्यापारी वर्ग सत्य और ईमानदारी के पथ का अनुगामी था। आदर्श के लिये अपने प्राणों को न्योछावर करने में अहोभाग्य समझता था। कुटिलता तथा चोरी से धनोपार्जन करना पाप समझता था। इस कारण सभी प्राणी शुद्ध वस्तु की प्राप्ति से स्वर्गीय आनन्द की प्राप्ति करते तथा उत्तम स्वास्थ्य से अच्छी तरह व्यतीत करते थे।

परन्तु अर्वाचीन व्यापारी वर्ग तृष्णा के वशीभूत होकर नैतिकता को बिल्कुल भूल गया है तथा अनैतिकता से धनोपार्जन करने में ही अपना गौरव समझता है। असली चीजों में नकली चीज का समावेश कर विक्रय शुरु कर दिया है। पापों से किंचित भी भय नहीं है परन्तु सरकार का भय अवश्य उनके आंखों के समक्ष छाया रहता है। जब वे पकड़े जाते हैं तो उनकी इज्जत धूल में मिल जाती है और जेल की काली कोठरी की हवा खानी पड़ती है। व्यापारी वर्ग के उस मिलावटी व्यापार से मानव के स्वास्थ्य पर भी कुप्रभाव पड़ा है। पौष्टिक पदार्थों के अभाव से शक्ति दिनोंदिन क्षीण होती जा रही है तथा रोगों के जाल में फंसकर समाज करुण क्रन्दन कर रहा है।

इस व्याप्त अनैतिकता और अशान्ति का दमन करने के लिये अणुव्रत रामबाण दवा सिद्ध होगी। वह मानव हृदय में विशुद्ध भावना की ज्योति जगायेगा तथा अनैतिकता समूल नष्ट हो जायेगी। असली चीजों में नकली वस्तु की मिलावट करने का जब त्याग हो जायेगा तब मानव सच्चा आनन्द प्राप्तकर सकेगा।

परस्त्री व वेश्यागमन मत करो—सभ्य समाज में परस्त्री गमन महान अनर्थ का कारण माना जाता है। जो व्यक्ति इसका आदि होता है उसको ऐश्वर्य एवं सुखों से हाथ धोना पड़ता है तथा पग-पग पर अपमानित होना पड़ता है। आज लंकेश रावण का नाम कोई श्रद्धा से स्मरण नहीं करता है। एक दिन वह था जब वह तीन खण्ड का अधिपति था। अपरिमित धनराशि उसे उपलब्ध थी। उसके पराक्रम से बड़े-बड़े राजा कांपते थे। परन्तु जब उसने सती सीता का अपहरण कर अपनी अर्द्धांगनी बनाने का प्रयत्न किया तो उसको राज्य तथा जान से हाथ धोना पड़ा तथा मरकर दुर्गति में जाना पड़ा।

वेश्याओं का प्रेम धन के प्रति होता है मनुष्य के प्रति नहीं। जबतक कामुक के पास धन राशि होती है तबतक वह प्रेम प्रदर्शित करती रहती है। जब वह दिवालिया हो जाता है तो वह उससे सम्बन्ध तोड़ देती है। वह धन राशि को प्राप्त करने के निमित्त किसी बीमार धनिक से घृणा नहीं करती चाहे वह कोढी ही क्यों न हो। इस कारण जो स्वस्थ कामुक इसके सम्पर्क में जाता है तो उसके भी वह बीमारी लग जाती है और उसका जीवन दुखमय बना देती है।

अणुव्रत दुनियां को यह सन्देश देता आया है कि परस्त्री और वेश्या से उसी तरह परहेज करो जैसे हलाहल से करते हो। भोग-विलास को नदी फल के समान समझ कर त्याग करो। नदी फल बहुत स्वादिष्ट होता है परन्तु ज्योंही इसको खाया जाता है तो प्राणी को प्राणों का त्याग करना पड़ता है। परस्त्री गमन चौरासी लाख योनी में भटकानेवाला होता है इस कारण इसको वमन समझकर त्याग करो और आध्यात्म पथ का अनुशरण कर जीवन को उच्च बनाओ।

अणुव्रत आन्दोलन की आवश्यकता

[श्री लखपतराय 'प्रभाकर' बी० ए०]

आज का मानव विकट परिस्थितियों में है द्वितीय विश्व-युद्ध को समाप्त हुए आठ वर्ष हो चुके हैं किन्तु संसार के किसी कोने में भी शान्ति दिखाई नहीं देती। चहूँओर आतंक, परस्पर सन्देह और सुलगती हुई युग की चिनगारियां हैं अणुवम, हाईड्रोजन वम और अव कोवाल्ट वम्ब जैसे विनाशकारी शस्त्रों का आविष्कार हो रहा है। और न जाने कव तृतीय विश्वयुद्ध की लपेट में आकर यह संसार नष्ट भ्रष्ट हो जाय।

परन्तु आज के मानव को गम्भीरता से विचार करना है कि क्या इस भयानक परिस्थिति के निवारण करने का कोई उपाय है ? और यदि है तो उसकी खोजकी जाय और उसे अपनाया जाए इसके अतिरिक्त द्वितीय विश्वयुद्ध के फलस्वरूप जहां इतना मानव तथा संपति इत्यादि का विनाश हुआ वहां उसी के कारण संसार में नैतिक और चरित्र का घोर पतन भी हुआ। सरल रुपये प्राप्त करने की चकाचौंध में आज का मानव यह भूलगया है कि उसका अपने देश तथा मानवता के प्रति क्या कर्तव्य है ? चोरबाजारी, घूंसखोरी, चरित्र-हीनता आदि इसी विश्वयुद्ध के अभिशाप हैं। इन्हीं समस्याओं को सुलझाने के लिये युग-द्रष्टा विचारक आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत-आन्दोलन को प्रारम्भ किया।

इस का मुख्य लक्ष्य आज के प्रपीड़ित किंकर्तव्य विमूढ़ विश्व को शांति और शाश्वत सुख का मार्ग प्रदर्शन करना है तथा सादा जीवन और उच्च विचार द्वारा जीवन का पुनर्निर्माण करने की प्रेरणा देना है और उसमें एक नवीन जागृति और उल्लास का संचार करना है जिससे उसका इहलोक तथा परलोक सुधरे। इसी कारण यह आन्दोलन एक सम्प्रदाय तथा विचारधारा के लोगों के ही लिये नहीं वल्कि संसार के प्रत्येक व्यक्ति के लिये जो इसके नियमों को पालन करने का वचन देता है, इसके द्वार खुले है।

स्पष्ट है कि इस उच्च कार्य के लिये त्याग तथा वलिदान की आवश्यकता है और जीवन को सत्यता, पवित्रता, आध्यात्मिकता तथा अहिंसा के ढांचे में ढालना अनिवार्य है। इसी कारण इसके प्रत्येक सदस्य को अहिंसा, सत्याचरण; आचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह नामक पांच दृढ़ प्रतिज्ञाओं का पालन करना पड़ता है किन्तु ये प्रतिज्ञायें इस सांचे में ढालदी गई हैं कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति इन्हें अपना सकता है। इसी कारण इसके सदस्यों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है।

(शेषांश पृष्ठ २९ पर)

अखण्ड - दीप

[श्री गिरिजाशंकर पाण्डेय]

असंख्य दीप बुझ चुके पर निखर मैं जल रहा!
अंधड़ों के बीच भी चिर प्रदीप्त हूं अमर।
बुझ सकूं न मैं, अनेक आयें उलझनें अगर॥
लघु है जिंदगी मगर, है प्रशस्त मम डगर।
जगको ज्योति दानकर, हँसरहा अवसान पर॥
स्नेह खो रहा हूं पर
मुस्करा के हिल रहा।
असंख्य दीप बुझ चुके
पर निखर मैं जल रहा॥
कांपती हो लौ कभी, न सोच कि मैं डर गया।
नेह आयेगा न, जो तन मेरा विखर गया॥
मिट रहा हूं पर नहीं, चाहना है प्रीत की।
पथ वनूं किसी का मैं, है इसी में जीत ही॥
लक्ष्य ओर नयन बांध
आश ले मैं चल रहा।
असंख्य दीप बुझ चुके
पर निखर मैं जल रहा॥

संगठन के चौराहे से

मन्त्री—केन्द्रीय अणुव्रत समिति, कलकत्ता

सेंथिया

पूर्णिया से कलकत्ता आये, और यहाँ के आवश्यक कार्यों से निवृत होकर पुनः १४ अप्रेल को सेंथिया के प्रवास पर निकल गये। मार्ग से ही हमारे मन में अणुव्रत समिति के भूतपूर्व संयोजक और मूक समाजसेवी श्री आंचलियाजी से मिलने की प्रबल उत्कंठा थी। कहते हैं सही लग्न सफल होती है, वह रात को ही आये थे। उनसे भेंटकर हमारी सारी थकावट दूर हो गई और काम की चिन्ता भी मिट गई। दोपहर को विश्राम और साधारण वार्तालाप के बाद सायंकालीन समय में हम आंचलियाजी के साथ अपने मिशन पर निकले। मार्ग में श्रीत्रिलोकचंद सुराना व श्रीकन्हैयालाल छाजेड़ भी साथ होगये। इनके सहयोग से लगभग २० ग्राहक बने और तीन आजीवन सदस्य बने इनके नाम इस प्रकार हैं। (१) श्री सुगनचन्द-आंचलिया (२) श्री पृथ्वीराज त्रिलोकचन्द (३) श्री मानचन्द कन्हैयालाल छाजेड़।

छोटे से गांव में २० ग्राहक बनना हमारे लिये उत्साहप्रद था। यदि एक दिन और ठहर सकते तो काम अधिक भी हो सकता था। आंचलियाजी का निजी पुस्तकालय और सर्वोदय साहित्य के प्रति उनकी अध्ययनशीलता देखकर हमें एक जाग्रत प्रेरणा मिली।

रात को कार्य के साथ साथ वहाँ के वयोवृद्ध समाजसेवी श्रीजशकरणजी से अणुव्रत सम्बंधी वार्तालाप हुई। प्रसंग के विवाद होते हुए भी उनसे हमें एक मानसिक खुराक मिली। कभी कभी इस तरह का आहार भी विचारों में रसशक्ति का काम आता है।

शांति निकेतन

प्रातःकाल श्री आंचलियाजी के साथ हम बोलपुर गये और सामान रखकर सीधे शान्ति निकेतन पहुँचे। भाई वेदजी तो पहिले भी आये थे मेरी बहुत दिनों से गुरुदेव के इस साधना स्थल को देखने की तीव्र लालसा थी। लेकिन जब भी अवसर आये, तवही कोई न कोई बाधा मार्ग में उपस्थित हो गई। आज यह अनायास सुयोग मिला था। शांति निकेतन में प्रवेश करते ही एक मानसिक तुष्टिका आभास हुआ। सबसे मिले, हम गुरुदेव के आवासस्थल उत्तरायण की ओर गये। उदयन पुनश्चः और लताकुन्ज को देखकर विश्व-कवि की स्मृतियां उभर गई। वह आज नहीं रहे लेकिन वहाँ के पत्थर-पत्थर में उनकी कला बोल रही है। उनके बैठने उठने और नित्यचर्या को देखकर ऐसा लगता था कि मानो वे कला के परम उपासक थे। अत्यन्त सात्विक वस्तुओं में भी उन्होंने कला के द्वारा जीवन भर दिया था। ऐसा लगता था मानों कवीन्द्र की 'गीताञ्जली' इन सब निर्मित उपत्यकाओं, वृक्षों और वृक्षावलियों में गूंज रही है। वहाँ से हम कला भवन गये और विशाल पुस्तकालय को देखने का सुअवसर मिला। छायादार और विशाल वृक्षों के नीचे छात्र छात्राओं का अध्ययन देखकर प्राचीन आश्रम की कल्पना जागृत हो उठी। बड़े-बड़े विशाल कक्ष का काम यह वृक्ष कर रहे थे व उनकी प्राकृतिक व मीठी-मीठी हवा विजली के पंखों को भी मात कर रही थी। मन को रह रहकर शान्ति का आभास मिल रहा था।

समयाभाव अखर रहा था, और एक नजर से इन सबको देखकर हम चीनी भवन गये। इसके अध्यक्ष श्री तान मानसान आंचलियाजी के परिचित थे और अणुव्रत-आन्दोलनके प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी के निकट सम्पर्क में आये हुए भी थे। उन्होंने आन्दोलन के बारे में जानकारी ली और पत्र को देखकर प्रसन्नता व्यक्त की। फिर उन्होंने अपने संग्रहालय और पुस्तकालय को दिखाया तथा साधारण बात-चीत के बाद हमने उनसे विदा ली।

चीनी भवन से हम हिन्दी भवन गये। जहां श्री तिवारीजी मिल गये। उन्होंने अणुव्रत आन्दोलन के प्रति अपनी जिज्ञासा प्रकट की और अणुव्रत को अपने पत्रों की सूची में स्थान देने के लिये विचार करने का आश्वासन दिया।

सायंकाल हमने बोलपुर में ग्राहक बनाने का प्रयत्न किया। कुछ ग्राहक बने, तथा श्री हीरालाल देवकरण आजीवन सदस्य बने। आंचलियाजी के साथ दो दिन का सहवास हमारे लिये अत्यन्त प्रेरणाप्रद रहा।

दो चतुष्पदी

[*श्री शतानन्द सक्सेना 'सन्तोषी'*]

धर्म जग के सब पुराने हो गये
चाहिये भगवान की नव कल्पना।
विश्व-मन्दिर और नर-प्रतिमा वहां,
मांगता युग ये नई आराधना॥

सुर-असुर संग्राम ही सर्वत्र है,
व्यक्ति हो, या देश हो या हो समाज।
चाहिये उर-सिन्धु मथकर हर मनुज,
फिर करे शंकर सदृश विष-पान ओज॥

आन्दोलन की आवाज

मृतप्राय मानवता में जीवन का अभिनव संचार

[श्री जगन्नाथ उपाध्याय, संस्थापक—गौतम आश्रम, अजमेर]

सत्य और ईमानदारी मानवता का प्राण है। जिस मनुष्य में ये नहीं, वह तत्वतः निर्जीव है, मुर्दा है। हृष्ट-पुष्ट कलेवर को मैं जीवितमन नहीं मानता। यह तो वहिर्जीवन है। अन्तर जीवन दूसरा है, वह आत्म-साधन, सदाचारण, सद्भावना, तितिक्षा और त्याग में है। आज लोग इसे भूलते जा रहे हैं। इस ओर किसी का ध्यान नहीं आता। ध्यान है एकमात्र जिस किसी तरह अपना स्वार्थ साधने में, पैसा बटोरने में, तभी मैं अक्सर कहा करता हूं—आज घर में मुर्दे, बाजार में मुर्दे, कचहरी में मुर्दे, दफ्तरों में मुर्दे, कारखानों में मुर्दे—सर्वत्र मुर्दों-ही-मुर्दों से यह भूमि भरी है। यदि इन मुर्दों को पुनर्जीवन नहीं मिला तो इनकी गन्दी सड़ान से वातावरण भमक उठेगा, और अधिक गन्दा व दूषित हो जायेगा। इसलिये मैं चाहता हूं यह मुर्दानगी जल्दी से जल्दी मिटे। अणुव्रत-आन्दोलन इस मुर्दानगी में एक नया जीवन फूंकनेवाला है। यह बताता है—व्यक्ति केवल प्रदर्शन के लिये धार्मिक न रहे। धर्म के ऊँचे सिद्धान्तों की कसौटी पर वह जीवन को कसे।

जबतक मनुष्य अनीति और अनाचरण से मुंह नहीं मोड़ेगा, तब तक वह लाख कोशिश क्यों न करे, उसका जीवन, शान्ति और सन्तोष नहीं पायेगा। आज प्रत्येक मानव के लिए सबसे पहला कार्य यह है कि वह अपने जीवन को अप्रामाणिकता, अनीति और दुराचरण से उन्मुक्त बनाये।

संसार में मुझे सब प्रकार की सुविधाएँ मिले, आराम मिले, किसी तरह की कठिनाई क्यों देखनी पड़े, यह वृत्ति मनुष्य को लोलुप बनाती है। लोलुप और सतृष्ण बना मनुष्य नीचे से नीचा काम कर सकता है। वह जो न कर सके, थोड़ा है। इसलिये सबसे पहले मनुष्य को अपनी उद्दाम लालसाओं पर नियंत्रण करना होगा। अणुव्रत—आन्दोलन आत्म-नियंत्रण का उपक्रम है। वह परवशता—भोग लोलुपता की जगह आत्म-संयम ही सही माने में जीवन है।

जीवन-विकास का एक अमोघ नुक्सा

[डा० अम्बालाल शर्मा, सदस्य—अजमेर राज्य विधानसभा]

महाभारत में एक कथा है—पाण्डव वनवास में थे। युधिष्ठिर के अतिरिक्त चारों भाई एक-एक कर जल भरने को एक सरोवर पर गये। वहां एक यक्ष ने उन्हें उसके प्रश्नों का उपयुक्त उत्तर न दे पाने पर निष्प्राण-मूर्च्छित कर दिया। अन्त में युधिष्ठिर गया। यक्ष ने युधिष्ठिर को पहला प्रश्न पूछा—संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? युधिष्ठिर ने हिमालय के उत्तुंग शिखरों को नहीं बताया और न ताजमहल जैसी किसी तत्कालीन इमारत को ही बताया : युधिष्ठिर ने कहा—

> अहन्यहनि भूतानि, गच्छन्ति यममन्दिरे।
> शेषा जीवितुमिच्छन्ति, किमाश्चर्यमतः परम्।

सब देखते हैं—प्रतिदिन प्राणी मृत्यु के ग्रास बनते जा रहे हैं। जो अब तक बचे हुए हैं वे नहीं सोचते कि उनको भी जाना होगा। वे तो सोचते हैं—हम अमर रहेंगे, स्थायी रहेंगे। इससे बड़ा आश्चर्य और क्या हो सकता है?

सचमुच युधिष्ठिर ने जो कहा—हम आज देख रहे हैं। भौतिकवाद की भूलभुलैया में मानव जैसे खो सा गया है और यह मान बैठा है कि उसे यह संसार छोड़ना थोड़ा ही है। वह तो अमर पट्टा लिये है। विलासिता, ऐश और आराम को जीवन का सार उसने मान लिया। उसमें तृप्ति ढूंढता है। कैसे मिल सकती है तृप्ति। अग्नि में घी होमते रहिये और उसे बुझाने की सोचते रहिये, क्या यह कभी सम्भव हुआ है। वह तो उल्टी अधिक प्रज्वलित होगी। इस प्रकार विषय—वासनाओं का सेवन जीवन में कभी भी तृप्ति नहीं देता, वह और अधिक अतृप्त करता है।

जीवन में वास्तविक सन्तुष्टि और तृप्ति धर्म देता है। पर कब? जब कि उसके आदर्शों को जीवन में स्थान दिया जाये। केवल धर्म की बड़ी-बड़ी बातें बनाने से कुछ नहीं बन सकता है। यह कहते हर्ष होता है कि आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन उन धार्मिक आदर्शों का व्यावहारिक संस्करण है, जो जीवन में व्याप्त जड़ता और क्षुद्रता पर गहरी चोट करता है।

अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह आदि महाव्रतों की परिपूर्ण साधना की जाये यह तो बहुत ही ऊँची बात है। अभिनन्दनीय है। पर कम से कम अणुव्रतों का पालन तो मानवमात्र के लिये आवश्यक है। आचार्यश्री ने उनका जो सुगठित रूप दिया है, मैं मानता हूँ, जीवन-कल्याण का यह सुन्दर साधन है। क्योंकि यह जीवन को सुपथगामी बनाता है, इसलिये मेरी दृष्टि में यह परम ज्ञान है, परम तत्व है, मानव धर्म है। अनीति, अनाचरण और असदाचार के भयावह रोगों से जर्जरित मानव को स्वस्थ और पुष्ट बनाने का यह एक अमोघ नुक्सा है।

यद्यपि कहने में ये अणु-छोटे व्रत हैं पर जीवन में बहुत बड़ी देन ये देते हैं। जैसा कि गीता में कहा है :—

"स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।"

अर्थात् धर्म की आंशिक साधना भी बहुत बड़े भय से छुटकारा दिलाती है।

यह मानवता की सच्ची कसौटी है

[श्री लालचन्द सेठी, मैनेजिंग डायरेक्टर, विनोद मिल्स, उज्जैन]

तलवारों, मशीनगनों और बमों का प्रयोग हुआ, संसार में हाहाकार मचा। पर शान्ति नहीं आयी। हिंसक साधन कभी भी शान्ति नहीं ला सकते। शान्ति का साधन अहिंसा है। अहिंसा सबसे बड़ी शक्ति है। जो ताकत अहिंसा में है, वह हिंसा में कहां। अहिंसा जहां जीवन को बनाती है, वहां हिंसा मिटाती है। हिंसा द्वारा शान्ति लाने का प्रयास मृगमरीचिका के जल के सिवाय और क्या है?

अणुव्रत-आन्दोलन अहिंसा का आन्दोलन है, आचार्य श्री तुलसी ने इस आन्दोलन के द्वारा अहिंसा का जो व्यवहार्य रुप प्रस्तुत किया है, वास्तव में जैन, अजैन सब के लिये मानव समाज के लिये यह सची उन्नति का रास्ता है। यह मानव की सची कसौटी है।

आज मानव की सही माने में मानव बनने की आवश्यकता है। टील-डौल और बाहरी कलेवर की मानवता किस काम की, यदि मानवीय गुण उसमें नहीं।

स्थिति आज जैसी बन गई है, यदि बाजार में कोई चीज खरीदने जाता है तो पूरे पैसे देने पर भी असली चीज उसे मिल सके, यह कम सम्भव रहता है। मनोवृत्ति कुछ ऐसी हो गई है कि दुकानदार उचित तादाद और माप में भी कुछ न कुछ कटौती कर टालना चाहता है। इसी तरह दूसरे क्षेत्रों में भी देखने पर पाते हैं—जिस किसी तरह अपना स्वार्थ पूरा होना चाहिये। प्रामाणिकता और ईमानदारी रहे, इसकी किसी को कोई चिन्ता नहीं। झूठ और छल का इतना फैलाव आज हो रहा है कि सत्य और ईमान उसमें छुपते से जा रहे हैं। इसी का यह फल है कि जीवन विशृंखल बनता जा रहा है। अणुव्रत—आन्दोलन आपके विशृंखल, व्यवस्थाशून्य और नीति-वर्जित जीवन में शृंखला, व्यवस्था और नीति को जोड़ना चाहता है।

वैसे अणुव्रत-आन्दोलन के आदर्श भारतीय दर्शन और तत्वज्ञान के व्यापक आदर्श हैं। यदि बारीकी में जायें तो यह जैन धर्म के मौलिक तत्वों पर आधारित है। जैन धर्म का नाम लेने से यह मत मानिये कि ये कोई सम्प्रदाय विशेष के तत्व हैं। जैनधर्म जिसका अर्थ है—जीतनेवालों का, राग द्वेष जैसे विघातक तत्वों पर विजय पानेवालों का धर्म—मानव धर्म है, विश्व धर्म है। हां, जैनधर्म के तथाकथित अनुयायी उसे जहां तहां संकीर्णता के कठघरे में बांधने की जरूर कोशिश करते दीखते हैं। यह अनुयायियों की संकीर्णता और कमी है, जैनधर्म के सिद्धान्तों की नहीं, आचार्यश्री तुलसी ने आज के जन-जीवन को परखते हुए इन सिद्धान्तों का जो व्यवहारोपयोगी रूप दिया है, यह जैन-दर्शन के व्यापक और विश्व-जनीन स्वरुप का स्पष्ट परिचायक है। इससे जैनधर्म और जैन समाज का गौरव बढ़ा है। इन आदर्शों को आगे बढ़ाने का जैनों पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है, यद्यपि यह कोई नया तत्त्व नहीं, यह वही तत्त्व है, जो भगवान् महावीर ने निरूपित किया। आचार्यश्री ने मौलिकता की रक्षा करते हुए इसे युगानुकूल रूप दे दिया है, मानव समाज की आवश्यकता को समझते हुए उन्हें समयानुरूप ढांचे में ढाला है, वास्तव में बहुत बड़ी इसकी उपयोगिता है।

आज के युग की मांग है, जैन समाज अपने दर्शन के तत्व-रत्नों को सन्दूक में बन्द किये न रखे। स्वयं उसका उपयोग लेते हुए दूसरों को भी उसका लाभ लेने देवें। जैसा कि अणुव्रत-आन्दोलन की अब तक की गति-विधि से स्पष्ट है, जहां जैनों ने इससे लाभ लिया है, वहां हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और हरिजन भी इसमें आये हैं, प्रेरित हुए हैं। यह बहुत बड़ी बात है।

ज्यों-ज्यों ये सार्वजनीन और व्यापक आदर्श आगे बढ़ेंगे, जन-जीवन में एक नई स्फूर्ति और चेतना का संचार होगा।

यह दीप निशा का प्रहरी!

[मुनिश्री बुद्धमलजी]

सोया जग, पर जाग रहा यह अपने मन का लहरी
यह दीप निशा का प्रहरी!
आदि काल से ही जीवन के मृत्यु जिसे ललकारे
गूढ़-शत्रु बन, पवन जिसे छलना करके पुचकारे
संघर्षों से ही जीवन का जिसने रस खींचा हो
अपने प्राणों से ही अपना जिसने पथ सींचा हो
उससे इन सुख कीट तारकों की क्या तुलना ठहरी?
यह दीप निशा का प्रहरी!

आत्म लीन, एकाकी; तम - सरिता के नीरव तट पर
बैठ लिखा, इतिवृत्त निशा का इसने नभ के पट पर
ज्वार उठा जब स्वप्नों का नयनों के लघु सागर में
विद्यमान ने पढ़ा उसे, रख पैर विगत के घर में
और हुई तब इसके अधिकारों की रेखा गहरी
यह दीप निशा का प्रहरी!
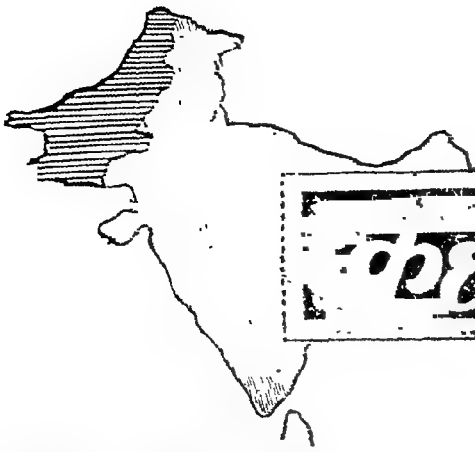
विद्यार्थी व महिला सम्मेलन—

● सुजानगढ़ (डाक से) ९ अप्रेल को स्थानीय हाई स्कूल में विद्यार्थियों को आह्वान करते हुए व अनुशासन और सदाचारी जीवन की प्रेरणा देते हुए आचार्यश्री का प्रवचन हुआ। इस अवसर पर स्कूल के विद्यार्थियों व अध्यापकों के अतिरिक्त नगर के अन्य प्रतिष्ठित नागरिक व दर्शनार्थी भी बड़ी संख्या में उपस्थित थे।

१० अप्रेल को आचार्य श्री के सान्निध्य में महिला सम्मेलन का आयोजन रखा गया। इसमें माताओं और बहिनों ने बड़ी संख्या में पहुँचकर आचार्यश्री के प्रेरक और स्फूर्तिदायक विचारों को तन्मयता से सुना।

११ अप्रेल को यहाँ अणुव्रत प्रेरणा समारोह भी किया गया। १३ से १६ अप्रेल तक आचार्यश्री का लाडनू में कार्यक्रम रहा। १७ अप्रेल को पुनः सुजानगढ़ पधार गये।

अणुव्रत प्रेरणा सम्मेलन—

● श्री डूंगरगढ़ (डाक से) यहाँ १४ अप्रेलको मुनिश्री सोहनलालजी के सान्निध्य में अणुव्रत प्रेरणा सम्मेलन का आयोजन रक्खा गया जिसमें मुनिश्री के प्रेरणाप्रद प्रवचन के अतिरिक्त मुनिश्री मोहनलालजी, श्री रामलाल पुगलिया, बीकानेर विभाग अणुव्रत समिति के संयोजक श्री सुखलाल मालू व श्री धनराज पुगलिया आदि ने भी अपने विचार प्रकट किये। इस अवसर पर ४०० के लगभग उपस्थिति रही।

अणुव्रत-गोष्ठी का आयोजन—

● अजमेर (डाक से) प्रदेश अणुव्रत समिति के तत्वावधान में तथा आन्दोलन प्रवर्त्तक आचार्यश्री तुलसी की विद्वान शिष्या साध्वी श्री सीरेकुंवरजी के सान्निध्य में रविवार दिनांक ८ अप्रैल को प्रातः स्थानीय 'समीर-भवन' में एक 'अणुव्रत-गोष्ठी' का आयोजन हुआ, जिसमें श्री गुलाबचन्द मुणोत द्वारा साध्वी श्री का परिचय कराने के उपरान्त 'नैतिकता और सदाचार का महत्व' विषय पर भाषण करते हुए साध्वीश्री ने कहा—"जब तक मानव में मानवता ही नहीं तबतक उसके सामने गहरे तत्वों को रखना कोई अर्थ नहीं रखता। ऋषियों की वाणी को ठीक से न समझने के कारण ही आज धर्मों में वादविवाद की स्थिति और भेदभाव की दीवारें खड़ी नजर आती हैं। मानव को इस तरह की दीवारों में अपने को बांधकर संकुचित नहीं होना है। संकुचित सम्प्रदायिकता ने मानवता का खूब हनन किया है।"

इस आयोजन में श्रद्धालु बहिन-भाईयों के अलावा कुछ पत्रकारों, अध्यापकों, छात्र-छात्राओं ने भी भाग लिया।

अध्यक्ष व संगठन मन्त्री का दौरा—

● जलगाँव (डाक से) समिति के सङ्गठन, आन्दोलन के प्रचार व कार्य को गति देने के लिये १३ अप्रैल को अध्यक्ष श्री पारस जैन, संगठन मंत्री श्री उत्तमचन्द सेठिया व प्रचार मंत्री श्री भैंरुलाल कुचेरिया यहां पधारे। औपचारिक मीटिंग के उपरान्त प्रचार कार्य को शीघ्रातिशीघ्र और तीव्र गति से बढ़ाने का निश्चय हुआ। श्री ओंकार जगन्नाथ वानखड़े व श्री मानकचन्द बाफणा को वैतनिक प्रचारक नियुक्त किया गया।

● जालना (डाक से) यहां से औरंगाबाद व भुसावल का भी दौरा किया गया। औरंगाबाद की अपेक्षा भुसावल के कार्यकर्त्ताओं में उत्साह व कार्य करने की लग्न अधिक पाई गई। साथ ही अणुव्रत के रचनात्मक कार्यक्रम पर भी विचार हुआ। खानदेश विभाग में अणुव्रत के २०० ग्राहक बनाने का निश्चय हुआ जिसका उत्तरदायित्व श्री सरूपचन्द और श्री पन्नालाल चोरड़िया को सौंपा गया।

१० मई के पश्चात् बंगलौर और मद्रास की ओर भी दौरा होनेवाला है। २७ व २८ मई को मद्रास में दक्षिण प्रान्तीय अणुव्रत सम्मेलन होने की भी सम्भावना है।

अपने-अपने विचार—

भ्रष्टाचार कैसे मिटे ?

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत उपरोक्त विषय पर इसी तरह हमारे पाठकों, कार्यकर्ताओं और साथियों के विचार प्रकाशित होते रहेंगे। विचार संक्षिप्त और स्पष्ट लिखकर कार्यालय में भेजें, उनको क्रमानुसार प्रकाशित किया जायगा। प्रकाशित विचारों का उत्तरदायी स्वयं लेखक होगा। —सम्पादक]

सदाचारी जीवन से

[श्री धर्मचन्द भंसाली "कलाधर"]

आज संसार में भ्रष्टाचार अत्यधिक पनप रहा है जो कि मनुष्यमात्र के लिये कलंक का धब्बा है। बहुत बड़ी संख्या में लोगों के भ्रष्टाचारी होनेसे हमारा देश भी आज भ्रष्टाचार की परिधि पर पहुँचा हुआ है। प्राचीन काल में सच्चरित्रता को प्रधानता दी जाती थी, लेकिन नैतिक स्तर नीचा गिरनेके कारण आज कल लोग भ्रष्टाचार की ओर आकर्षित हो रहे हैं। हम यह नहीं सोच पाते कि हमारा जीवन नीचे गिर रहा है हम रसातल की ओर जा रहे हैं। जिस देश के नागरिक चरित्रवान होंगे वही देश उन्नति के पथ पर अग्रसर होगा। इसलिये हर व्यक्ति को सदाचारी होना नितांत आवश्यक है—कहा भी है कि "आचारः प्रथमो धर्मः" परन्तु यह बात तभी पनप सकती है जबकि प्रत्येक नागरिक के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाया जाय तथा सच्चरित्रता की शिक्षा दी जाय। सच्चरित्रता एक दैवी शक्ति है। जीवन में इसका कितना महत्व है यह किसी से छिपा नहीं है। वास्तव में इसके न रहने पर जीवन में कुछ भी नहीं रह जाता है। चरित्रहीन व्यक्ति प्राण रहित शरीर से किसी प्रकार अच्छा नहीं। वह समाज का कोढ़ है।

मनुष्य की वास्तविक महत्ता उसके चरित्र में रहती है। यह वह कसौटी है जिसपर उसका मूल्य आंका जाता है। सदाचारी बनने के लिये मनुष्य को भले-बुरे का ज्ञान होना आवश्यक है, केवल भले-बुरे के ज्ञान से ही काम न चल सकेगा उसको अपनी प्रकृति भी ऐसी बनानी चाहिये जो उसे सदा अच्छी बातों की ओर प्रेरित करे। यदि कभी बुरा काम हो भी जाय तो उसके लिये पश्चात्ताप करें और भविष्य में पुनः वैसा काम न करने का निश्चय कर लें। महात्मा गांधी में बचपन से ही यह प्रवृति देखी जाती थी ? एकबार उन्होंने मांस खा लिया पर पश्चात्ताप करके भविष्य में पुनः मांस न खाने का पक्का विचार कर लिया। इस प्रकार उन्होंने अपने को कई बार पतित होने से बचाया और धीरे-धीरे आचरण की उच्चता प्राप्त की।

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

साधक

[मुनिश्री सागरमलजी]

कांटों से भय नहीं किन्तु, कुसुमों से मैं भय खाता।
आतप से भी नहीं किन्तु छाया से हूं मुरझाता॥
बहुसंख्यक जन समुह प्रायः, अनुस्रोत में बहता।
प्रतिस्रोत का पक्ष अल्प संख्यक ही जग में रहता॥
भोगों का नश्वर प्रदीप, सबको आकर्षित करता।
अज्ञ शलभ आनन्द लूटने, सहसा उसमें गिरता॥
पर भोगों में नहीं, त्याग में नूतन जीवन पाता॥ १॥

आदर्शों का अभ्युदयी पथ, कठिन हुआ करता है।
भूमि खिसकती जबकि मनुज, बढ़ने कुछ पग भरता है॥
आता है भूचाल और भीषणतम अंधड़ चलता।
दुर्बल का अस्तित्व वहीं, आमूल चूलतः हिलता॥
नहीं शान्ति में, संघर्षों में मैं प्रतिपल मुसकाता॥ २॥

प्रगतिशीलता का आशय, होता है गतिमय बनना।
बाधाओं को चीर वहीं, जीवनदायी-पथ चुनना॥
दोषान्वेषी वहां प्रतिक्षण, दोषारोपण करता।
स्वार्थान्वेषी 'जीहजूर' का, गरल निरन्तर झरता॥
आलोचक से नहीं, प्रशंसक से केवल घबराता॥ ३॥

(पृष्ठ १४ का शेषांश)

मैं उनसे कहना चाहूंगा कि ये बातें नहीं हैं। ये ही तो आदर्श हैं जो जीवन में आने चाहियें। मेरी दृष्टि में हवाई आदर्शों की तनिक भी उपयोगिता नहीं है।

अध्ययन के बाधक तत्व

शास्त्रकारों ने अध्ययन के पांच बाधक तत्व बतलाये हैं :—

१—स्तब्धता-अहङ्कार।

२—क्रोध।

३—प्रमाद।

४—रोग।

५—आलस्य।

विद्यार्थियों को चाहिये कि वे इन पांचों दुर्गुणों से दूर हों। इनसे न सिर्फ अध्ययन में ही रुकावट आती है बल्कि व्यक्ति का जीवन अशान्त और असन्तुष्ट बनता है। अहंकार और क्रोध से मानसिक शान्ति नष्ट हो जाती है। प्रमाद, रोग और आलस्य हरएक सद्-प्रवृत्ति में बाधक होते हैं। इसलिये विद्यार्थी इनसे दूर होने की साधना करें। पुरुषार्थ बलवान होता है। वे अपने में हीन भावना को प्रश्रय न दें। पुरुषार्थवादी बन अपने जीवन को विकास-मार्ग की ओर अग्रसर करें।

---

९ अप्रैल को सुजानगढ़-हाई स्कूल में दिये गये प्रवचन के आधार पर।

(पृष्ठ २१ का शेषांश)

इसी प्रकार लड़कों के अभिभावकों को भी चाहिये कि विवाह के समय जो खर्चा अन्धे बनकर किया जाता है उसमें एकदम आमूल सुधार किया जाय। विवाहके समय की क्षणिक झूठी वाहवाही की अपेक्षा बच्चों के जीवन-निर्माण पर अधिक ध्यान देना चाहिये। अल्पायु के विवाह का समाज में गहरा रोग फैला हुआ है। पूर्ण आयु एवं स्वावलम्बी होने पर ही विवाह करने का सिद्धान्त दृढ़ कर लिया जाय तो कितना उत्तम हो।

इस ओर ध्यान दिया ही जाना चाहिये क्योंकि व्यर्थ के खर्च से व वाहवाही के प्रलोभन से होडाहोड बढ़ती है जिससे समाज का नैतिक पतन होता है। इसी खर्च के लिये द्रव्य प्राप्ति में अनैतिकता बढ़ती है। झूठ, रिश्वत, धोखा, ठगी आदि नाना प्रकार के साधन जो काम में लाये जाते हैं वे किससे छिपे हैं? यदि विवाह के खर्च में एकदम सुधार किया जाय तो उपयुक्त बुराइयों से अपने आप छुटकारा हो सकता है।

(पृष्ठ २३ का शेषांश)

यद्यपि जैसा ऊपर कहा जा चुका है इस आन्दोलन को स्थापित हुए सात वर्ष हुए हैं फिर भी इस अल्पकाल में इसने काफी सफलता प्राप्त की है और आशा है कि यह उत्तरोत्तर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होगा। वस्तुतः आचार्यश्री तुलसी का यह आन्दोलन समयानुकूल और मानव कल्याण के लिये है। इसीलिये उनका हम सब पर इस विषय में उपकार है और आनेवाली पीढ़ियां आचार्य जी के इस शुभ कार्य का श्रीगणेश करने के लिये ऋणि होगी, और सदैव आदर से उन्हें स्मरण करेंगी

(पृष्ठ २८ का शेषांश)

सत्संगति और उत्तम ग्रन्थ से भी मनुष्य सद्‌चरित्र बन सकता है। जीवन में शरीर और मस्तिष्क से बढ़कर आचरण का महत्व अधिक है—कहा भी है कि, "खोयी हुई सम्पत्ति कम खर्च और परिश्रम से प्राप्त की जा सकती है, भूला हुआ ज्ञान अध्ययन से प्राप्त हो सकता है, परन्तु नष्ट किया हुआ चरित्र सदा के लिये चला जाता है। चरित्रकी पवित्रता से भिखारी भी राजाओं के हृदय पर अपना अधिकार जमा लेता है। महात्मा गान्धी को ही देखिये। यदि कोई ऐसी वस्तु है जिसने उनको पवित्र बनाया है, जिसने उनको झोंपड़ी से लेकर महल तक प्रतिष्ठित किया है, तो वह उनका श्रेष्ठ आचरण ही है। आचरण के नष्ट हो जाने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है।

शिक्षा इस महत्वपूर्ण वस्तुकी प्राप्ति कराती है। वह आचरण के बीज को मानव हृदय में बोती है। वह सिखाती है कि हर एक व्यक्ति को अपने माता-पिता की आज्ञा मानना बड़ोंका आदर करना एवं भाई-बहिनों से स्नेह करना चाहिये। सत्संगति का भी आचरण पर प्रभाव पड़ता है ईश्वर की इस अद्भुत सृष्टि में उत्थान के अनेक साधन हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम उन साधनों की खोज करें।

—):(०):(—

(पृष्ठ १७ का शेषांश)

हृदय में कपट और स्वार्थ का जहर फैला हो उसे दण्ड मिलना ही चाहिए। सेवक की बहू! तुम नहीं जानती। मैं अत्याचारी हूँ, पापी हूँ। सुनो, मैं साहूकारी करता था। मैं ऐसे लोगों को कर्ज देता था जो आसानी से कर्ज अदा न कर सकते थे। जब गरीब किसान रुपये अदा नहीं कर सकते थे तब मैं उनकी जमीन को सस्ते दामों ठग लिया करता और ऊंची कीमत में बेचकर तिगुना चौगुना रुपया ले लेता था। उन पर ऊंचे दर का ब्याज लादा करता था। बेचारे किसानों की लहलहाती खेती उनकी खड़ी फसल में खेतों ही से कटवाकर ले आता था। मैं गरीबों का खून चूँसा करता था। उनके दुधमुंहे बच्चों के मुँह का कौर कई दफे छीन चुका हूं। जो रुपये देने में देरी करता और मेरी बात नहीं मानता उसकी झोपड़ी में चुपके से आग लगवा दिया करता। मैंने गरीबों को हन्टरों से मारा है। सेवक की बहू, क्या गंगास्नान के बाद मेरे इतने घोर पाप

धुल सकते हैं ? वहू, सुनो, मेरे पाप की कहानी सुनो। मेरा हृदय पाप के जंग खाए लोहे के समान है। मैंने कभी किसी की भलाई नहीं की। मैं इतना पाखण्डी और लालची हूं कि मैंने तुम गरीबन की भी जायदाद पर हाथ साफ किया। गंगास्नान के लिए तुम मुझसे रुपये मांगने आई। मैंने तुम्हारे दस्तखत कोरे कागज पर ले लिये। वैसे ही दस्तखत स्टाम्प पर उतारकर झूठे गवाह के दस्तखत ले चुपके से तुम्हारी वाड़ी-मकान को बिक्रीनामा लिखा लिया। मेरा इरादा था कि तुम्हें गंगास्नान से लौटाकर तुम्हें तुम्हारे ही घर से धक्के देकर निकाल दूं और तुम्हारे घरपर अपना पूरी तरह कब्जा जमा लूं। जब तुम मुझसे गाड़ी से छूट गई तब मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे रास्ते से कांटा हट गया। सेवक की वहू! उसने मार्मिक और आंसू भरे शब्दों में कहा—सुनो, मेरे पाप की कहानी सुनो! मैंने ही सेवक को पागलखाना भिजवाकर उसे तुमसे जुदा किया। वहू! तुमने गरीबों की निस्वार्थ सेवा की और मैंने उनपर तरह-तरह के जुल्म किये। मैं पापी हूं, अत्याचारी और स्वार्थी हूं।" साहूकार क्रोध, घृणा और पश्चाताप से अपनी छाती पीटने लगा।

मां अवाक खड़ी थी। उसका रोम-रोम सहानुभूति से भर उठा। साहूकार ने फिर कहा—सेवक की वहू, मैं तुम्हारे लिए एक खुश-खबरी लाया हूं। तभी अचानक उसकी आवाज वदल गई। आंखें घूमने लगीं। जवान भी लड़खड़ाने सी लगी। किन्तु वह पूरी कोशिश करके कराहता ही रहा—कहता ही रहा—तुम्हारा पति सेवक, पागलखाने से गांव वापस आ गया है। वह तुम्हें ढूंढ रहा है। उसका पागलपन दूर हो गया है। अब वह अच्छा हो गया…है। …देवी…तुम…ध…न्न…हो! S…S। फिर वह जोरों से हिचका और खून उगलने लगा। उसका सारा शरीर उसीके खून से लथपथ हो गया। तब वह चला गया, शायद सदा के लिए—"गंगास्नान।"

—*:X:*—

(पृष्ठ १८ का शेषांश)

मनुष्य का मनुष्य में विश्वास हो सकेगा और परस्पर हितकामना से एक-दूसरे के साथ सहानुभूति एवं सहयोग निभा सकेंगे। अहिंसा की उज्ज्वल भावना संसार को सही पथ दिखा सकती है। अहिंसा विश्व का सांस्कृतिक आधार है, जीवन में विना इसका व्रत लिये शान्ति की अभिलाषा करना निरर्थक है। विषम संघर्षों का मार्जन मानव संस्करण से ही सम्भव है।

(पृष्ठ ४ का शेषांश)

लित सामाजिक वातावरण में इससे बढ़कर रचनात्मक कार्य की अपेक्षा नहीं की जा सकती और इससे साधुओं की साधना भी अक्षुण व गौरवशाली बनी रहेगी। सत्य के सजग प्रहरी के रूप में सर्व प्रलोभनों और सरकारी छाप से दूर रहकर वह समाज का सनातन मार्ग-दर्शन करने में सफल हो सकेगा।

जैसा कि हमें मालूम हुआ है कि आध्यात्मिक भावना से ओतप्रोत साधुओं का इस संगठन में समावेश नहीं हो सका है और यह सम्भव भी नहीं है। संगठन की वर्त्तमान धुरी को देखते हुए हम यह कल्पना करते भी नहीं हैं। लेकिन हम यह सुझाव अधिक पसन्द करेंगे कि देश की आध्यात्मिक शक्तियां जो आज विभिन्न सम्प्रदाय और संस्थाओं के रूप में अहिंसा और सत्य का वास्तविक मार्ग अपनाये हुए हैं, अपनी अपनी मान्यताओं में रहते हुए भी सर्व धर्म सद्भाव के रूप में अधिक निकट आये और वह मानवता की अखंड आध्यात्मिक ज्योति को विश्व प्रज्वलित कर सके। वर्त्तमान समय में यह कार्य अहिंसा के आलोक को विश्वव्यापी बनाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा।

—x—

आवश्यक सूचना

अणुव्रत समिति के उज्जैन अधिवेशन पर जिन सज्जनों ने जो मासिक, वार्षिक व अन्य आर्थिक सहायता प्रदान करने की घोषणा की थी, वे केन्द्रीय कार्यालय को भेजने का कष्ट करें।

साथियों से !

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि चारों ओर हमारे साथी व सहयोगी 'अणुव्रत' के वार्षिक व आजीवन ग्राहक बनाने में लगे हुए हैं और इसमें आशातीत सफलता भी मिली है। ऐसे सभी मित्रों के स्नेहमय सहयोग के लिये हम अत्यन्त आभारी हैं और उनको धन्यवाद देते हैं।

साथ ही एक निवेदन भी करना चाहते हैं, वह यह कि वे जिन्हें भी ग्राहक बनायें उनका चन्दा तुरन्त कार्यालय में भेज दें जिससे 'अंक' समय पर ग्राहकों की सेवा में पहुँच सके।

—व्यवस्थापक

[समालोचनार्थ पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियाँ कार्यालय में भेजनी चाहिये]

सरस्वती संवाद (विद्यार्थी अङ्क) माघ, १९५६ । सम्पादक—डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, मोती कटरा, आगरा ।

आगरे से जो दो मुख्य साहित्यिक मासिक पत्र निकलते हैं उनमें 'सरस्वती सम्वाद' भी एक है। यह पत्र गत चार वर्षों से साहित्यिक लेखों व सामग्रियों द्वारा विद्यार्थियों व अन्य साहित्यिक जिज्ञासुओं की सेवा कर रहा है।

'सरस्वती सम्वाद' का यह विद्यार्थी अंक विद्यार्थियों की परीक्षा सम्बन्धी कठिनाइयों व उनकी अन्य साहित्यिक समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुये प्रकाशित किया गया है। विद्यार्थी अंकमें संगृहीत लेख प्रधानतः एम० ए०, बी० ए०, साहित्यरत्न, विशारद आदि (हिन्दी) के पाठ्य-क्रम के आधार पर लिखे गये हैं जिनसे विद्यार्थियों को काफी सहायता मिल सकेगी ऐसी आशा है। विद्यार्थीवर्ग व साहित्यिक जिज्ञासु इस सम-सामयिक साहित्यिक पत्र से भरपूर लाभ उठायेंगे ऐसा विश्वास है। प्रूफ की अशुद्धियों की ओर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है।

—*जगदीश, एम० ए०*

राष्ट्रवीणा (त्रैमासिक) (जनवरी १९५६) सम्पादक—श्री जेठालाल जोशी, प्रकाशक—गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति अहमदावाद, पृष्ठ संख्या ६६, वार्षिक ४) एक प्रति १) ।

जनता को राष्ट्रभाषा के प्रचार कार्य की नियमित रूप से जानकारी देते रहने के लक्ष्य से विगत पांच वर्षों से इसका प्रकाशन किया जा रहा है। पत्रिकामें प्रकाशित पं० रविशंकर शुक्ल का "श्रेष्ठ साहित्य का खड़ी बोली में अनुवाद" तथा श्री मोहनलाल भट्ट का "राष्ट्र भाषा का कार्य राष्ट्र निर्माण का कार्य है" लेख जहाँ साहित्य प्रेमियों को हिन्दी भाषा के अभावों को दूर कर इसके प्रचार की प्रेरणा प्रदान करते हैं वहाँ श्री सीताराम चतुर्वेदी की "सैंया भये कोतवाल" कहानी व श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन का एकांकी "कास्मा पालिटन क्लब" पाठकों का मनोरञ्जन करता है। श्री धूमकेतु की भावना प्रधान कहानी "बाप का दिल" भी पाठक के हृदय पर गहरा प्रभाव डालती है। श्री गुरुदयाल मलिक के "जवाहरलाल नेहरु—एक झलक" में नेहरुजी के कुछ गुणों पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। इसके अतिरिक्त पत्रिका की अन्य रचनायें भी सुन्दर बन पड़ी हैं। छपाई व मुख पृष्ठ आकर्षक है। लिपि में इ ई उ ऊ ए ऐ वर्णों के स्थान पर अि अी अु अू अे अै आदि अक्षरों का प्रयोग यद्यपि अधिकांश पाठकों को विचित्र सा लगेगा पर राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति की धारणा के अनुसार उसका पर्याप्त प्रचार हो जाने पर जनता उसमें अधिक सुविधा अनुभव करेगी। लिपि का प्रश्न विवादास्पद होने पर भी पत्रिका संक्षेप में सुन्दर बन पड़ी है। राष्ट्र भाषा के विकास व प्रसार की दृष्टि से "राष्ट्रवीणा' के प्रकाशन का आयोजन स्तुत्य है। हमारी कामना है कि 'राष्ट्र वीणा' राष्ट्र भाषा के प्रचार में अधिकाधिक सहायक सिद्ध हो।

—*हृदयेश*

श्रद्धाञ्जलि !

नमाणा (मेवाड़) की एक निष्ठावान अणुव्रती बहिन श्रीमती सुन्दरबाई बाफणा का ३१ मार्च को देहवासान हो गया। अणुव्रत नियमों के प्रसार में आपने अपने क्षेत्र में प्रशंसनीय सहयोग दिया था। आपका जीवन अत्यन्त सात्विक तथा त्याग पूर्ण था।

आप अपने पीछे अपने होनहार सुपुत्र श्री सुमतिचन्द्र को छोड़ गई हैं, जिनसे समाज को बहुत कुछ आशाएं हैं। वह प्रगतिशील विचारों के एक तरुण कार्यकर्त्ता हैं।

सापोल (मेवाड़) के प्रतिष्ठित अणुव्रती व्यापारी श्री वरदीचन्द कछारा के आसामयिक देहवासान से राजसमंद के व्यवसायी क्षेत्र से एक ऐसा व्यक्ति उठ गया है, जिनके नैतिक जीवन की बड़ी छाप थी। अपनी सचाई व इमानदारी के कारण लोगों में वह श्रद्धा के पात्र बन गये थे। घी का व्यवसाय करते हुए भी लोग उनके कार्यों में शंका नहीं करते थे। वह एक निष्ठावान अणुव्रती और धर्म परायण श्रावक थे।

दोनों को 'अणुव्रत' परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि !

—*सम्पादक*

श्री प्रतापसिंह वैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं
रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित

अङ्क १५

मनुष्य-स्वभाव हिंसा नहीं, परन्तु अहिंसा है: क्योंकि वही अपने अनुभव से निश्चयपूर्वक कह सकता है—'मैं देह नहीं हूँ, परन्तु आत्मा हूँ, और इस देह का आत्मा के विकास के अर्थ, आत्मदर्शन के अर्थ ही उपयोग करने का मुझे अधिकार है।' और उसमें से वह देह-दमन, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि शत्रुओंको जीत लेने की नीति की रचना करता है, उन्हें जीतने के लिये बड़ा प्रयत्न करता है और उसमें वह सम्पूर्ण विजय प्राप्त करता है और जब वह ऐसी विजय प्राप्त करता है तभी कहा जा सकता है कि उसने मनुष्य जाति के अनुकूल कार्य किया है। इसलिये राग-द्वेष आदि को जीत लेना कोई अमानुषी कार्य नहीं है परन्तु मानुषी कार्य है। अहिंसा का पालन बड़े उच्च प्रकार की वीरता का लक्षण है। अहिंसा में भीरुता के लिये कहीं भी स्थान नहीं हो सकता।

—महात्मा गांधी

आपके अणुव्रत के विषय में—

कौन क्या कहता है ?

"मैं 'अणुव्रत' की कल्पना और उसकी योजना को समाज के लिये बहुत उपयोगी मानता हूँ। मेरा अनुमान है कि इस योजना द्वारा देश के कई भागों में मनुष्यों के जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा और उनके जीवन में नैतिकता का संचार हुआ है। परन्तु मैं अणुव्रत को केवल लिखने-पढ़ने और दिखावे अथवा बौद्धिक वाद-विवाद की वस्तु नहीं समझता। उसमें जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाने की प्रबल प्रेरणा होनी चाहिये।"

—(राजर्षि) पुरुषोत्तमदास टंडन, न० दि०

"बड़े-बड़े नेताओं, विद्वानों, दार्शनिकों एवं लेखकों के लेखों एवं विचारों से ओत-प्रोत यह पत्रिका निस्सन्देह नैतिक जागरण का संदेश देती है। अच्छे कागज पर सुन्दर छपाई एवं आकर्षक गेट-अप सहज ही पाठकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। पत्रिका में बिखरे हुए संतों के विचार भी पाठकों की ज्ञान वृद्धि में सहायक होते हैं। इसमें कहीं कहीं कविताएं भी दृष्टिगोचर होती हैं जोकि पाठकों के मनोरंजन के साथ-साथ कवि की भावनाओं से परिचित कराती हैं। मुखपृष्ठ पर के मानव के भावनात्मक चित्र से उस जागे हुए मानव का बोध होता है जिसने कि अब विश्व के लोगों को जगाने का बीड़ा उठाया है। इसके स्तम्भ भी उच्चस्तर के हैं। छुटपुट त्रुटियों का ख्याल न करते हुए पत्रिका पठनीय है तथा अपनी कीमत का पूरा मूल्य चुकाती है, इसमें जरा भी संदेह नहीं।"

—रेखा, मासिक, नागपुर

"...१३ वां अंक मिला। धन्यवाद। पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई कि वर्तमान 'आपाधापी' और 'ले-लूट' के युग में कोई ऐसे भी व्रती हैं जो संयम, सदाचार और अपरिग्रह की मांगलिक शहनाई बजा रहे हैं। विचार-दोहन आपका सर्वश्रेष्ठ स्तम्भ है। उसे कुछ अधिक स्थान दीजियेगा। इस अङ्क की कहानी 'मानवता का मूल्य' बड़ी गहरी चोट करती है धन-लोलुपता पर। बधाई। 'क्रान्ति के स्वर' में (आचार्यश्री) ने कठोर सत्य कहा है। गोपीनाथ अमन का लेख भी दिशाबोधक लगा। कुल मिलाकर वन्दनीय प्रयत्न है यह! मेरा अभिनन्दन स्वीकार कीजिये।"

—विश्वनाथ भटेले, इटावा

अणुव्रत के नैतिक उद्बोधन से मैं स्वभावतः अनायास ही आकृष्ट हुआ। आज जीवन में जो नीरसता व छलना छाई हुई है, उनके निवारण के लिये मैं इस पत्रिका को अपनी प्रसन्नता प्रदान करता हूँ...धन्यवाद।

—परमेश्वर द्विरेफ, पिलानी

"मैं पूर्ण विश्वास करता हूँ कि पत्र द्वारा आपका कृत प्रयास इस प्रगति के युग में वास्तविक विधेय पथ का निदर्शन बन भ्रान्त जगत् की गलत दिशा को आलोकित करने में सफल होगा।

—चम्पालाल शास्त्री, उदयपुर

अणुव्रत के पाठकों से!

'अणुव्रत' को और अधिक लोकोपयोगी व जन-रुचिकर बनाने की दृष्टि से 'अणुव्रत' में प्रकाशित रचनाओं के सम्बन्ध में अपने सहृदय पाठकों का मत जानना आवश्यक है।

अतः हमारा साग्रह निवेदन है कि भविष्य में सहयोगी पाठक 'अणुव्रत' के प्रत्येक अङ्क पर अपनी सम्मत्ति, विचार व सुझाव आदि निःसंकोच लिखकर भेजें।

जो पाठक हमारी त्रुटियों व अभावों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे उनके हम विशेष आभारी होंगे।

रचनात्मक विचारों एवं सुझावों को यथाशीघ्र क्रियान्वित करने का भी प्रयत्न हो सकेगा।

—सम्पादक

भाई श्री प्रतापसिंह बैद अपने बिहार व आसाम के सफल दौरे में 'अणुव्रत' के लगभग १५० वार्षिक ग्राहक और सात आजीवन ग्राहक बना कर ८ मई को वापस आ गये हैं। दौरे सम्बन्धी विस्तृत समाचार आगामी अंक में प्रकाशित हो सकेगा।

आगामी २७ मई ५६, को मद्रास में होनेवाले सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर अध्यक्ष श्री पारस जैन व श्री प्रतापसिंह बैद आदि पहुंच रहे हैं। अणुव्रत सम्बन्धी विशेष जानकारी के लिये सम्मेलन में लगे राजस्थानी कैम्प में पधारें।

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१

卐

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १५ मई, १९५६ [अंक १५

स्वार्थ-वृत्ति पर नियंत्रण किये बिना क्या शान्ति के प्रयत्न सफल होंगे ?

भारतीय दर्शन में त्याग की एक लम्बी परम्परा रही है। यहाँ वस्तु पाने की अपेक्षा वस्तु का त्याग अधिक महत्वशाली रहा है। अपार भौतिक सामग्रियों के स्वामी भी अकिंचन ऋषि-महर्षियों की चरण-धूलि के लिये तरसते और उस असीम अनन्तर आनन्द को प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। पदार्थ—निरपेक्ष-आनन्द की वह परम्परा एक स्वानुभूत सत्य है जो साधना-लभ्य है। खाना सहज है पर उपवास सहज नहीं। सहजता सुविधावाद है पर सुविधावाद स्थायी सुख का सर्जन नहीं करता। उपवास शारीरिक सुख नहीं देता किन्तु उपवास में जो आनन्द आता है वह खाने में नहीं आता। इसकी अनुभूति के लिये एक लम्बी साधना की आवश्यकता है। वह आनन्द अन्तर से उपजता है। आनन्द का असीम और अटूट खजाना अन्तरात्मा में भरा पड़ा है। उसको विकसित करने की अपेक्षा है।

क्रान्ति का स्वर
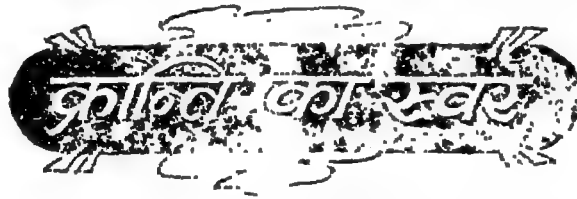
भर्तृहरि ने कहा है—"भोगाः न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः" अर्थात् भोगों को हमने नहीं भोगा, भोगों ने हमको भोग लिया, हमें निःसार बनाकर छोड़ दिया। इस तरह के व्यक्ति जिनका सामर्थ्य मिट गया है, जिनमें भोगोपभोग की शक्ति ही नहीं रही है अथवा जैसा मैंने कहा जिनको प्राप्त नहीं है उनका विषय विकारों से बचे रहना कोई उत्कृष्ट त्याग नहीं है। उत्कृष्ट त्याग उनका है जो सब प्रकार की सुविधाओं, अनुकूलताओं के बावजूद भी अपने-आपको आत्म-साधना में जुटाते हुए स्वेच्छापूर्वक भोगोपभोगों को तिलांजलि दे देते हैं। अतः मेरा सभी को यह सन्देश है कि अपने जीवन में अधिक से अधिक संयत बनने का प्रयास करें। संयम वह बहुमूल्य रत्न है, जिसकी तुलना संसार का बड़े से बड़ा रत्न नहीं कर सकता।

शान्ति का सबसे बड़ा बाधक तत्व स्वार्थ है। स्वार्थ वृत्ति छोड़े बिना व्यक्ति सुखी नहीं बनता। उसकी विषमता में जहाँ मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन दूभर बनता है, वहाँ समाज और राष्ट्र की स्थितियाँ भी विषम बनती हैं। स्वार्थ वृत्ति के परिणामस्वरूप भाई-भाई का दुश्मन बनता है, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के प्रति विद्रोहकर मानव समुदाय को युद्ध की भयावह ज्वालाओं से झुलसा डालता है। स्वार्थ वृत्ति से पैदा हुई भीषण परिस्थितियाँ अभी-अभी हमारे सामने से गुजरी हैं। राष्ट्र के सामने प्रान्तों के सीमा निर्धारण का प्रश्न आया। उस छोटे से प्रश्न ने कितना वीभत्स दृश्य हमारे सामने प्रस्तुत किया। उसको यादकर आज भी लोगों का हृदय कांप उठता है। स्वार्थवाद में अन्धे बने व्यक्ति ने राष्ट्र को बड़े से बड़ा नुकसान पहुँचाया। जातिवाद, भाषावाद और प्रदेशवाद का यह भयानक पिशाच आज भी राष्ट्र के नागरिकों को इस बात पर विचार करने के लिये प्रेरित कर रहा है कि वे इतने संकुचित क्यों बनते जा रहे हैं? जहाँ मानव-मानव में समता की भावना को बल मिलना चाहिये वहाँ ये संकुचित वृत्तियाँ राष्ट्र के नागरिकों के लिये शर्मनाक होंगी। स्वार्थ वृत्ति का यह खुला प्रयोग मानव समुदाय के लिये विध्वंस का संकेत है। इस वृत्तिपर नियन्त्रण किये बिना शान्ति व सुख के समग्र प्रयत्न सफल नहीं हो सकते।

अणुव्रत-आन्दोलन जीवन-शुद्धि का आन्दोलन है। यह एक सर्व धर्म सम्मत कार्यक्रम है। झूठा-तोल-माप न करना, विश्वासघात न करना, रिश्वत न लेना, किसी को अस्पृश्य न मानना, व्यवहार में अप्रामाणिकता न बरतना, व्यभिचार में न पड़ना—कोई भी धर्म इनका विरोध नहीं करेगा। अणुव्रत-आन्दोलन इसी प्रकार के जीवन-शुद्धि मूलक छोटे-छोटे नियमों का संकलन है। जीवन को ध्वस्त-विध्वस्त बनानेवाली बुराइयों का यह सफल परिहारक है।

—आचार्य तुलसी

नागरिक भावना का अभाव

रेलवे मन्त्रालय के कार्यों के बारे में आकलन समितिने १९५५-५६ के लिये अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए कहा है कि बिना टिकट यात्रा करनेवालों से रेलवे को प्रतिवर्ष २-३ करोड़ से अधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ रही है। प्रतिवेदन में बताया गया है कि १९५४-५५ में ७५ लाख ८६ हजार व्यक्ति बिना टिकट यात्रा करते हुए पकड़े गये।

समिति ने स्वीकार किया है कि आर्थिक हानि के अतिरिक्त इतनी बड़ी संख्या में बिना टिकट यात्रा करने की प्रवृत्ति से यह प्रकट होता है कि जनता में नागरिक भावना की कितनी कमी है। अतः रेलवे को आर्थिक हानि से बचने के लिये नहीं, अपितु जनता में नागरिक भावना पैदा करने के लिये बिना टिकट यात्रा करने की प्रवृत्ति को समाप्त करना चाहिए। रेलवे अधिकारियों को ऐसी परिस्थितियां पैदा करनी चाहिए, जिससे किसी को भी बिना टिकट यात्रा करने का अवसर ही न मिले।

समिति का प्रतिवेदन, आंकड़े और उनके सुझाव भारतीय नागरिकता के स्तर का एक नग्न चित्र उपस्थित करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे नागरिक जीवन का नैतिक स्तर दिन प्रति दिन गिरता जा रहा है। समाचार पत्रों में आये दिन कभी हम मिलावट करने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति और उनके चौंका देनेवाले आंकड़े पढ़ते हैं तो कभी चोरी, ठगी और जालसाजी के विचित्र और हृदय द्रावक समाचार पढ़कर आश्चर्य में रह जाना पड़ता है। क्या यही हमारा नागरिक जीवन है? भारत की स्वतन्त्रता के बाद विरासत में कहिये या हमारी आत्म-दुर्बलता कहिये, नागरिक जीवन का भयङ्कर अधःपतन हुआ है। अन्यथा कहां यह हमारा अध्यात्म-प्रधान देश और कहां हमारी यह अनात्मवादी प्रवृत्तियां! अतीत का गौरव आज स्वयं अपने पर अट्टहास करता हुआ दिखाई दे रहा है।

प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में बिना टिकट यात्रा करनेवालों के आंकड़े प्रकाशित होते हैं। अपराधियों को दण्ड दिया जाता है। जुर्माने वसूल किये जाते हैं और फिर भी मर्ज घटने की अपेक्षा बढ़ता ही जा रहा है। यह इस वर्ष के आंकड़ों से और भी स्पष्ट हुआ है। अपराधियों के पकड़ने के लिये नये-नये कानून व विधेयक भी निकले हैं। लेकिन वह भी आज इतना असर नहीं कर पा रहे हैं। सच तो यह है कि कानून और विधेयकों से समस्या का समाधान ढूंढ़ना वस्तुस्थिति से आंखें मूंदकर चलना है। आज देशका नागरिक जीवन इतना भ्रष्ट हो गया है कि उसे पुनः प्रतिष्ठापित करने के लिये एक बड़े पैमाने पर जीवन के हर

सम्पादकीय

पहलू में नैतिक मूल्यों का आविर्भाव करना होगा और उसे आन्दोलनका रूप देना होगा। उसके दो ही मार्ग होंगे :—

(१) अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण से शोषण और भ्रष्टाचार के द्वार को वन्द करना, जिससे आज की बेकारी और गरीबी का अन्त होकर हर व्यक्ति अपनी नागरिक प्रतिष्ठा का अनुभव कर सकें।

(२) भारतीय संस्कृति और आदर्शों को पुनर्जीवित कर व्यक्ति-व्यक्ति में नैतिक मूल्यों का संचार करना, जिससे हर व्यक्ति पापमात्र से घृणा करे और सत्य एवं अहिंसा प्रधान समाज के लक्ष्य को ग्रहण कर अपने जीवन का अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करे।

नागरिक जीवन की सुस्थिरता लाने के लिये दोनों प्रयास आवश्यक है। परिस्थितियों की प्रतिकूलता मिटाये बिना केवल नैतिकता की बात उपदेशमात्र होगी। लेकिन यह भी सुनिश्चित है कि नैतिक विकास को प्रधानता दिये बिना केवल आर्थिक-क्रान्ति की बात नागरिकता को सुस्थिर नहीं कर सकेगी। हमें केवल पश्चिमी सभ्यता का अनुशरण नहीं करना है, वरन् उनकी अच्छाइयों और अनुभवों का लाभ उठाते हुए वहां की घटनाओं से भी सबक लेना है। तबही हम आज के क्रान्तिकारी समाजवादी प्रयोगों में व धधकते हुए विश्व के समक्ष कल्याणकारी समाजवाद की एक बेजोड़ नैतिक परिकल्पना रख सकेंगे।

अस्तु आज समाजवादी औद्योगिक नीति की घोषणा से प्राथमिक आवश्यकता है, भ्रष्टाचार के द्वार समाप्त हो! दुर्भाग्य यह है कि सरकारी कार्यालयों में भी भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है। फिर कैसे आशा की जाय कि भ्रष्टाचार करनेवालों से नागरिक-जीवन की भ्रष्टता दूर हो जायगी। आज रेलवे कर्मचारियों द्वारा छिपे-छिपे जो भ्रष्टाचार होते हैं और उससे अशिक्षित व्यक्तियों को किस तरह ठगा जाता है यह कौन नहीं जानता है? इसीलिये स्वयं आकलन समिति ने सुझाव देते हुए कहा है कि :— ईमानदार टिकट-चेकरों को पुरस्कार दिया जाय! नागरिक-जीवन को सम्मानित करने और अनैतिकता पर चोट करने के लिये यह भी एक सुन्दर मार्ग है। ईमानदारी और अनैतिकता को प्रतिष्ठापित किये बिना सुनागरिकता सम्भव नहीं। इसी विचारपूर्ण दृष्टिकोण को लेकर आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन के द्वारा भारत के प्रत्येक नागरिक को ईमानदार, चरित्र-शील और नैतिक बनने का संदेश दिया है। उनका आन्दोलन आज की

भ्रष्ट नागरिकता को खुली चुनौती है और सीधा नकारात्मक रूप में प्रत्येक व्यक्ति को बिना टिकट यात्रा न करने, मिलावट न करने, भ्रष्टाचार न करने, रिश्वत न लेने का एक वैयक्तिक क्रान्तिकारी संदेश देता है। अस्तु आन्दोलन का विधायक रूप न होते हुए भी वर्त्तमान अवस्था में यह सीधा एक विधायक कार्यक्रम बन गया है। आवश्यकता है व्यक्ति-व्यक्ति आन्दोलन के हृदय को समझकर समाज के नैतिक आदर्शों को ग्रहण करे। हमारे उपरोक्त सुझावों में से दूसरे मार्ग का अणुव्रत आन्दोलन एक व्यवहारिक हल है। अब रहा प्रथम सुझाव के अनुसार स्थितियों को अनुकूल बनाकर शोषण और भ्रष्टाचार को समाप्त करने की जिम्मेदारी हमारी और हमारी प्रतिनिधि सरकार पर है और जो अर्थ-व्यवस्था को बदले बिना सम्भव नहीं।

समिति ने भी इस बात को मान्यता दी है कि बिना टिकट यात्रा करने के विरुद्ध व्यापक प्रचार किया जाय। अणुव्रत-आन्दोलन अपने नियमों में "बिना टिकट यात्रा न करने का" एक जागृत संदेश देता है और व्यक्ति-व्यक्ति को प्रतिज्ञा के लिये आह्वान करता है। आइये! हम सब देश में अणुव्रत अभियान के अनुसार व्यक्ति-व्यक्ति में बिना टिकट यात्रा न करने का नैतिक उत्साह जागृत करें और एक व्यापक लोकमत संग्रहकर इस आन्दोलन को आगे बढ़ायें। अन्यथा हमारे नागरिक-जीवन का यह प्रति वर्ष लगनेवाला कलंक हमारे देश को अधःपतन की ओर अग्रसर करेगा। हमारा परम कर्त्तव्य है कि इस कालिख को मिटाकर अपने अतीत के गौरव को सुरक्षित रक्खें।

ये भाग्य निर्माता!

समाचार पत्रों में यह पढ़कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि राजस्थान के वित्तमंत्री श्री बृजसुन्दर शर्मा को चुनाव में भ्रष्ट तरीके काम में लेने और चुनाव व्यय का हिसाब झूठा प्रस्तुत करने के अपराध में चुनाव अदालत ने ६ वर्ष तक उन्हें चुनाव में खड़ा होने और मतदान देने के अयोग्य करार दिया है। यह है हमारे नेताओं का नैतिक आदर्श? सार्वजनिक भाषणों में त्याग, बलिदान और नैतिकता की दुहाई देनेवाले, मालाएं पहन कर जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाले और देश का भाग निर्माण करनेवाले मंत्री बनने के लिये चुनाव के निमित्त कितने भ्रष्ट और अप्रमाणिक तरीके काम में ले सकते हैं, यह इसका एक जीता जागता उदाहरण है। हम आये दिन देखते हैं कि अपनी कुर्सियों पर चिपके रहने और एक दूसरे की कुर्सियों को झपटने के लिए भाग्य निर्माता कहे जानेवाले इन सार्वजनिक नेताओं में किस प्रकार की उचित अनुचित प्रतिस्पर्द्धा चलती रहती है। दुर्भाग्य से राजस्थान की बागडोर तो ऐसे ही तथाकथित नेताओं के हाथ में रही है और उनकी हेय मनोवृत्ति का शिकार प्रान्त की आम जनता बनती रही है। आजादी के लिये किये गये अपने त्याग और बलिदान के पट्टे पर आज अपनी बपौती मानकर निसन्देह प्रजातंत्र के साथ बड़े से बड़ा खिलवाड़ किया जा रहा है। कटु सत्य हो सकता है लेकिन तथाकथित नेताओं की यह स्वार्थवृत्ति उनके सार्वजनिक जीवन को भी कलंकित कर रही है और राजस्थान के उज्ज्वल पृष्ठों पर कालिख पोत रही है। श्री शर्मा के बारे में प्रकाशित समाचार ने एकबार पुनः यह सोचने का अवसर दिया है कि हम कितने पानी में हैं? मानों हमारी यह नैतिकता और यह मीठे मीठे उपदेश हम ही पर अट्टहास कर रहे हैं। जनता का भाग्य-निर्माण करनेवाले अच्छा हो, पहले अपना निर्माण करें। सार्वजनिक व्यक्तियों की सच्ची कसौटी तो यही है!

अनुकरणीय आदर्श

नेपाल नरेश का २ मई को राज्याभिषेक सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर विदेशों के अनेक प्रतिनिधि भी उन्हें बधाई देने पहुँचे थे। राज्य में कल्याणकारी योजनाओं की घोषणा के साथ उस समय उनके व्यक्तित्व की एक प्रमुख उल्लेखनीय घटना यह थी कि राज्याभिषेक के समय शुभ रूप में द्वितीय विवाह करने की राजकीय परम्परा को तोड़कर एक पत्नी व्रत स्वीकार किया और खानदानी तथा राणाशाही परिवार के आग्रहपूर्ण प्रतिरोध के बावजूद भी दूसरा विवाह करने से दृढ़तापूर्वक इनकार कर दिया। यह वर्त्तमान नरेश की चरित्र-शीलता का एक सुन्दर उदाहरण तो है ही लेकिन समाज के लिये भी यह एक अनुकरणीय आदर्श है। आज के राजा महाराजा और विलासी व्यक्तियों की स्वेच्छाचारिता से कौन परिचित नहीं है? राजकीय और सामाजिक आदर्शों को ठुकराकर भी जहाँ लोग सुरा और सुन्दरी के रस में डूबे रहते हैं वहाँ नेपाल नरेश द्वारा सब तरह की सम्पन्नता, सुविधा और यहाँ तक कि राजकीय मर्यादा के अनुसार अनिवार्यता होते हुए भी इस प्रकार की असामाजिक क्रियाओं को ठुकराकर सुधार प्रियता का परिचय देना एक अनुकरणीय आदर्श है है। इस शुभ कार्य के लिए हमारा हार्दिक अभिनन्दन!

नैतिक अवमूल्यन की समस्या

[प्रो० श्री प्रेमचन्द विजयवर्गीय एम० ए०]

[एक ओर अनेक वर्षों की परतंत्रता के बाद हमने स्वतन्त्रता की सुखद सांस ली और दूसरी ओर हमारे कदम नैतिक पतन की बेड़ियों से जकड़ते गये। इसका आखिर कारण और उपाय क्या है यह जानने के लिये विद्वान लेखक का प्रस्तुत निबन्ध सचमुच ही उपादेय सिद्ध होगा। —सम्पादक]

साधारणतः आज हम सब यह अनुभव करते हैं कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे जीवन के—देशव्यापी जीवन के—नैतिक मूल्यों में गिरावट आई है। यों तो प्रत्येक युग में नैतिक दृष्टि से पतित व्यक्ति रहते हैं—सतयुग तक में भी रहे होंगे—परन्तु जब समाज का समाज नैतिक अवमूल्यन की दिशा में बढ़ता है तब वह एक विचारणीय प्रश्न बन जाता है। क्या कारण है कि वह भारत जो आध्यात्मिकता में विश्व का शिरोमणि रहा है, आज अपने ही घर में नैतिक दृष्टि से नीचे जा रहा है। आध्यात्मिकता को हम आज भी जीवन के आदर्श के रूप में हृदय के गहन-तल से स्वीकार करते अवश्य हैं, अपनी महान संस्कृति की दुहाई भी देते हैं, पर—व्यवहार में, आचरण में, हमारी स्थिति कुछ दूसरी ही है। आज हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में दृष्टि दौड़ाएँ, सर्वत्र मनुष्य के नैतिक अधःपतन की पराकाष्ठा-सी दिखलाई पड़ेगी। सरकारी कर्मचारी बिना भेंट पूजा लिए आपका कोई काम कर ही नहीं सकता, व्यापारी बिना मिलावट किए, बिना धोखा दिए, कुछ बेच ही नहीं सकता और साधारण नागरिक सम्भवतः बिना कुदृष्टि डाले किसी स्त्री की ओर देख ही नहीं सकता। इन अपराधों के तरीके यद्यपि इतने भद्दे (Crude) नहीं रह गए हैं उनमें कुछ सूक्ष्मता और परोक्षता आगई है, परन्तु जितने वे सूक्ष्म बनते जा रहे हैं, नैतिक मूल्यों के पुनर्स्थापन की समस्या भी उतनी ही जटिल बनती जा रही है।

आखिर यह सब क्यों हो रहा है? विशेषतः आज़ादी के बाद ऐसी स्थिति क्यों बन गई? इसके कारण पर हम सामयिक और सैद्धान्तिक दोनों दृष्टियों से विचार कर सकते हैं। सामयिक दृष्टि से विचार करने पर तो लगता है कि साधारणतः मानव स्वभाव की यह विशेषता है और इसीलिए समाज की भी, कि उसके सद्गुणों का विकास और प्रकाश कठिन संघर्ष में होता है। लगभग ५० वर्षों की साधना का चरम-बिन्दु जब सन् १९४२ के स्वतन्त्रता संग्राम या अहिंसक क्रान्ति के रूप में प्रस्फुटित हुआ तो जनता की त्याग और बलिदान की सक्रिय भावना भी अपने चरम-बिन्दु पर पहुँच गई। परन्तु पर्वत के उच्चतम शिखर पर आरोहण के पश्चात् जैसे अवरोहण की स्थिति आती है, उसी प्रकार समाज और राष्ट्र के नैतिक आरोहण के उपरान्त उसके जीवन में भी अवरोहण की स्थिति आती है। भारत में भी यही हुआ। हमने अपने महानतम त्याग और बलिदान का पुरस्कार स्वतंत्रता के रूप में पाकर सन्तोष की साँस ली; साधन को साध्य समझ लिया, गति को गन्तव्य मान लिया, भार को भोग्य जान लिया और अपने बोये हुए बीज का अंकुर फूटते ही उसके पत्तों-फूलोंपर ही ऐसे टूट पड़े मानों वे ही फल हों। त्याग सामयिक क्रिया है और भोग वैयक्तिक प्रक्रिया। इसीसे त्याग के अवसर की परिणति प्राप्ति की सफलता में होते ही हमारे भाव और कर्म समाजोन्मुख से आत्मोन्मुख हो उठे। वस्तुतः जिस मनुष्य में सामाजिक भावना जितनी ही अधिक है वह उतना ही नैतिक है और उसकी भावना जिस सीमा तक वैयक्तिक या आत्म-केन्द्रित है, वह उसी सीमा तक अनैतिक है। क्योंकि सामाजिकता से ही नैतिकता उत्पन्न होती है और वैयक्तिता से अनैतिकता। दूसरे शब्दों में सामाजिक्ता ही नैतिकता है और असामाजिकता ही अनैतिकता। यदि राजकर्मचारी यह समझ ले कि रिश्वत लेने से वह या तो देनेवाले के किसी समाज-विरोधी कार्य को प्रोत्साहन अथवा संरक्षण दे रहा है या फिर उस सामाजिक व्यक्ति के उचित और आधिकारिक कार्य के लिए अनुचित एवं अनधिकृत प्रतिदान ले रहा है; यदि व्यापारी यह जान ले कि विक्रय पदार्थों में मिलावट करके, या ग्राहक की विवशता अथवा अजानकारी का अनुचित लाभ उठाने के लिए उससे अधिक मूल्य लेकर, वह समाज के व्यक्तियों को धोखा देकर उनके गाढ़े पसीने की कमाई का एक भाग अनुचित ढंग से ले रहा है। यदि इसी प्रकार कोई भी व्यक्ति किसी भी छोटे-बड़े अपराध को करने के पूर्व अथवा करते समय, यह अनुभव करले कि वह सामाजिक वातावरण में एक विक्षुब्धता उत्पन्न करने जा रहा है तो वह कोई अनैतिक

आचरण करेगा ही नहीं। हमारे देश में भी स्वतन्त्रता के पश्चात् तेजी से गिरते हुए नैतिक मूल्यों का कारण यही मानसिक शिथिलता एवं सामाजिक भावना का अभाव है। महान त्याग और बलिदानों के पश्चात् आने के कारण प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न यह व्यक्ति-केन्द्रिकता इतनी तीव्र और गहन हो गई कि नेहरू जैसे विशाल व्यक्तित्ववाले नेता भी उसको झकझोर नहीं सके।

इस सामयिक दृष्टि के अतिरिक्त यदि हम सैद्धान्तिक दृष्टि से आलोच्य समस्या पर विचार करें तो हमारे सम्मुख दो विषम मान्यताएँ आती हैं। एक तो वह साम्यवादी मान्यता है जो हमारे नैतिक अवमूल्यन का कारण देश की आर्थिक विषमता में खोजती है। इस धारणा के अनुसार राजकर्मचारी की रिश्वतखोरी, व्यापारी की बेईमानी और व्यभिचार—सबके मूल में अर्थ का असमान वितरण और तद्जन्य अर्थाभाव है। यदि सबके पास समान सम्पत्ति हो तो क्यों कोई किसी के द्रव्य को अवैधानिक या अनुचित रीति से हड़पने का प्रयत्न करेगा? इस प्रकार यह दृष्टिकोण व्यक्ति के नैतिक मूल्यों को भी समाज के आर्थिक मूल्यों पर आधारित कर देता है। परन्तु यदि हम समाज में होनेवाले समस्त अनैतिक कामों का तथा मानवीय स्वभाव और आवश्यकताओं का वर्गीकरण करें और फिर उनके पारस्परिक सम्बन्धों की स्थापना करें तो हमें ज्ञात होगा कि प्रत्येक सामाजिक अपराध, या अनैतिक आचरण का कारण आर्थिक विषमता नहीं है। यदि ऐसा ही होता तो रिश्वत, बेईमानी और व्यभिचार केवल गरीब लोगों में ही पाये जाते पूंजीपतियों या पूंजीवालों में नहीं। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। इसके उत्तर में या तर्क में हमारे साम्यवादी भाई कह सकते हैं कि बड़े-बड़े अफसरों और उद्योगपतियों में भी जो रिश्वतखोरी और बेईमानी पाई जाती है, उसका कारण भी देश की पूंजीवादी व्यवस्था ही है। पर, दूसरी ओर शुद्ध वैयक्तिक और आध्यात्मिक कह लीजिये नैतिक—दृष्टि से विचार करनेवाले कहेंगे—इसमें आर्थिक विषमता का क्या लेना देना है—यह तो व्यक्ति-चरित्र की अपनी बुराइयां है। इसीसे दो कदम आगे बढ़कर हमारे समाज का एक भोला-भावुक-भक्त वर्ग कह देगा—यह तो सब कलियुगका प्रभाव है। पर यह अन्तिम दृष्टिकोण तो समस्याको टालना मात्र है उसको सही और व्यवहारिक रूप में देखना नहीं। इससे पहलेवाला दृष्टिकोण—व्यक्तिगत-नैतिकता का दृष्टिकोण—अवश्य विचारणीय है। वस्तुतः यह दृष्टिकोण शुद्ध भारतीय दृष्टिकोण है, जो भारतीय चेतना की

गीत

[श्री सुरेशचन्द्र अग्निहोत्री एम० ए०, साहित्यरत्न]

इस जीवन की डगर सुनहली पंथी आगे बढ़ते जाना
यह माना पथ भी लम्बा है,
आवेंगी ही कुछ बाधाएं
अनजाने पथ पर चलने में,
आ सकतीं हैं कुछ विपदाएँ
ऊँचा नीचा विषम पंथ है चरण तुम्हारे डिग सकते हैं
पर कर्मठ जन को क्या बाधा उसको तो उन पर जय पाना
जग की विष मधुमय धारा में
तुमको अपनी तरणि बहाना
चाहे जितना बहे प्रभंजन
तुमको नैया खेते जाना
मेघों के गर्जन - तर्जन को तुम समझो अपना अभिनन्दन
जल की बूँदों को तुम समझो मेघों का मोती बरसाना
समय कभी बदलेगा ही प्रिय
सुख - दुख रहते आते जाते
खिलते कुसुम और मुरझाकर
लगता मिट्टी में मिल जाते
इस जीवन की भी है सीमा और मृत्यु के बाद जन्म है
पर फूलों-सा मुरझाकर है तुमको प्रिय फिर से खिल जाना
इस जीवन की डगर सुनहली पंथी आगे बढ़ते जाना

नस-नस में इतनी गहराई से व्याप्त है कि आधुनिक दो युग-द्रष्टा महात्माओं—गांधी और विनोबा भी इसीको अपनाकर चले हैं। अणुव्रत आन्दोलनके प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी भी इसीलिए समाज में नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए व्यक्ति-चेतना के अणु-अणु के परिष्करण, परिमार्जन और पुनरुत्थान और इस प्रकार पुनर्गठन की बात कहते हैं। उनका यह आन्दोलन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा और जन-मानस के कितना अनुकूल है उसको दोहराने की आवश्यकता नहीं। निःसन्देह इस रीति से स्थापित नैतिक मूल्य समाज में अधिक स्थायी हो सकते हैं और होंगे। व्यक्ति चेतना की शक्ति बड़ी प्रबल होती है। दही का एक कतरा सारे दूध को दही बना देता है। समाज में व्यक्ति की—उसकी उत्थित और समुन्नत चेतन-शक्ति की—इसी प्रभावकारिताको हमने बुद्ध में देखा, गांधी में देखा और विनोबा में देख रहे हैं। यदि एक-एक व्यक्ति समाज के नैतिक धरातल को इतना ऊँचा उठा सकता है तो अनेक व्यक्ति क्या कर सकते हैं, इसकी कल्पना की जा सकती है। परन्तु हमारा ऐतिहासिक अनुभव हमें यह बतलाता है कि नैतिकता के उच्च शिखर पर एक बार में कोई एक ही सूर्य उगता है। व्यक्ति अवतार-सा आता है और चला जाता है, समाज कुछ खिंचता है, और फिर वैसा का वैसा अपनी स्थिति पर आ जाता है, वैसे ही, जैसे तीर के साथ ही साथ प्रत्यञ्चा भी खिंचती है, पर तीर के धनुष से अलग होते ही प्रत्यञ्चा अपनी पूर्व स्थिति में आ जाती है। तीर का लक्ष्य भेद तो पूरा हो जाता है पर धनुष की डोरी जहां की तहां आ जाती है। क्योंकि यह उसकी स्वाभाविक गति है। गांधीजी के नैतिक नेतृत्व के बाद उनके चले जाने पर हमारी भी यही स्थिति हुई। बात यह है कि लोक-मानस बड़ा लचीला होता है—रबर की भांति—उसको ऊपर खेंचनेवाले की शक्ति पर वह खिचता जाता है, पर उस शक्तिवाले हाथ के छूटते ही, वह तेजी के साथ, बल्कि झटके के साथ, संकुचित हो जाता है, सिमिट जाता है, अपने नीचेवाले आधार पर ही चोट मारता हुआ।

तब फिर नैतिक अवमूल्यन की समस्याका समाधान क्या हो?—यह प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित है। इसका उत्तर खोजने के पूर्व हमें जीवन के मूलभूत प्रश्न पर जाना होगा कि मनुष्य और उसका जीवन क्या है? विश्लेषण करने पर हम उसके दो स्वरूप पाते हैं—वैयक्तिक और सामाजिक। वैयक्तिक स्वरूप का सम्बन्ध भी दो बातों से हैं—एक अन्तर्जीवन से दूसरा बहिर्जीवन से। अन्तर्जीवन या अन्तर्व्यक्तित्व में उसके विचार और भाव आते हैं तथा बहिर्जीवन या बहिर्व्यक्तित्व में उसका शरीर और उसकी आवश्यकताएँ। इस प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व के तीन अङ्ग बन जाते हैं—(१) आत्मा (मन, भाव और विचार) २, शरीर, ३, समाज या सामाजिक परिवेश। चूंकि प्रत्येक नैतिक या अनैतिक कार्य का संबंध व्यक्ति से आता है और व्यक्ति के व्यक्तित्व के ये उपरोक्त तीन अङ्ग हैं अतः एक या अनेक व्यक्ति के नैतिक अभ्युत्थान या अधोपतन के कारणों की खोज में हमें इन तीनों बातों पर ध्यान रखना होगा। यह सत्य है कि माता-पिता के रक्त से प्राप्त चारित्रिक तत्त्व या संस्कार का भी उसमें अपना योग और स्थान है, पर यहां हम उसे मनुष्य के अन्तर्व्यक्तित्व में ही समाहित कर लेते हैं। तो, आज समाज के नैतिक मूल्यों की गिरावट का कारण केवल ऐतिहासिक, आर्थिक अथवा वैयक्तिक नहीं माना जा सकता, वरन् तीनों की समष्टि में उसको खोजना होगा। स्पष्ट रूपसे कहें तो उसका ऐतिहासिक (या सामाजिक) कारण है स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उत्पन्न स्वार्थ और भोगपरक आत्म-केन्द्रिकता; आर्थिक कारण है आर्थिक विषमता और उससे उत्पन्न संघर्ष तथा वैयक्तिक कारण है व्यक्ति-चरित्र की दुर्बलता। इसलिए यदि हम चाहते हैं कि जीवन में नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना हो तो हमें तीनों मोर्चे पर काम करना होगा—व्यक्ति में सामाजिक दृष्टि बनानी होगी, उसके जीवन की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी तथा उसके व्यक्तिगत-चरित्र का पुनर्गठन करना होगा। क्योंकि केवल वह सामाजिक दृष्टि, जो अगस्त आन्दोलन जैसे भावावेश के अवसरों पर उपस्थित होती है, स्थायी नहीं होती, केवल आर्थिक सुख-सुविधा भी उन्नत चारित्रिक गुणों के अभाव में अनैतिकता की ओर जाने में नहीं रोकते और केवल किसी भी नेतृत्व अथवा आन्दोलन के प्रभाव और प्रवाह से प्राप्त सामूहिक, नैतिक उन्नयन भी व्यवहारिक धरातल के अभाव में बहुत समय तक ऊपर-ऊपर उठा नहीं रह पाता। मरु में चलनेवाली आँधी धरती की धूल को ऊपर उड़ाकर तो ले जाती है, पर जब आंधी थमती है तो धरा की धूल फिर धरा पर ही उतर आती है। जीवन की कठोर व्यवहारिक समस्याएँ, एक प्रवाह में नैतिकता के आकाश को छूता-सा दिखाई देनेवाले लोक-व्यक्तित्व को, सामान्य सामाजिक स्थिति आने पर, सदासद् की इसी धरती पर खींच लाती है।

वस्तुतः नैतिक मूल्यों को प्रेरणा, स्थिति और स्थायित्व तीनों की आवश्यकता है। व्यक्ति के जीवन में इन नैतिक मूल्यों की प्रेरणा उसे सामाजिक परिवेश और सामाजिक दृष्टि से, स्थिति उसकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति, तथा स्थायित्व उसके वैयक्तिक उन्नत चरित्र से प्राप्त होता है। अतः इन तीनों के संतुलन और समन्वित प्रभाव से ही समाज में नैतिक अवमूल्यन की समस्या हल हो सकेगी, ऐसा हमारा विचार है।

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अहिंसाका स्वरूप

जब अणुव्रती पारिवारिक जीवन से सामाजिक एवं सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करता है तब भी उसकी सफलता की कुञ्जी अहिंसा ही रहती है। विचार-भेदों के वातावरण में भी शान्ति, धैर्य व सहिष्णुता को अपनाकर ही आगे बढ़ सकता है। मत-भेद में भी उसे समन्वय की राह खोजनी चाहिये। आर्जव (सरलता), नम्रता आदि अहिंसक गुण उसके जीवन को ऊँचा उठानेवाले होते हैं। अहंवाद तो संघर्षों का मूल है ही। जीवन में जितने ही असामञ्जस्य खड़े होते हैं वे सब अहंवाद (मैं वाद) के परिणाम हैं। अहंवाद की त्रिपदी ऐसे बनती है।

बुद्धिमान कौन है ?
जो मेरी तरह सोचता है।
मूर्ख कौन है ?
जिसके विचार मेरे से नहीं मिलते।
आदर्श क्या है ?
जिस पर मैं चलता हूँ।

दूसरे किसी व्यक्ति को परखने का हरएक व्यक्ति के पास अपना-अपना यही मानदंड है। इससे नापजोख कर किसी व्यक्ति के विषय में हरएक अपनी राय देता है। यहाँ तक तो एक मनोवैज्ञानिक वास्तविकता है। इसके अतिरिक्त कोई हेय और उपादेय को समझने का व्यावहारिक मान-दंड बनता ही नहीं। पर उलझन यहां पैदा होती है जहां वह अपने अहं को आगे बढ़ा, दूसरों से भी अपनी ही राह पर चलने का आग्रह करता है। बात ठीक है यदि सारे लोग वैसे ही चलने लगें तो कोई झगड़ा शेष नहीं रहता। पुत्र यदि पिता की इच्छानुसार करे, समाज के सब कार्यकर्त्ता यदि एक किसी के चाहने पर ही चलते रहें, एक राष्ट्र यदि दूसरे राष्ट्र की उदाहरणार्थ रूस और अमेरिका, में से कोई एक दूसरे की सारी शर्तें मान ले तो कोई असमंजसता पैदा नहीं होती। पर यह कैसे हो ? जैसे एक व्यक्ति चाहता है वैसे दूसरा व्यक्ति क्यों न चाहे कि सब लोग वैसे चलें जैसे मैं चाहता हूं ? मानस की यही वास्तविकता जीवन-व्यवहार में अनुपात लाने के लिये समन्वय व समझौते की बात लाती है। एक दूसरे का सहयोग कायम रखने के लिये दोनों को एक दूसरे के सामने झुकना पड़ता है। नहीं तो वह समष्टि व्यष्टि

अणुव्रत

जीवन-दर्शन

[मुनिश्री नगराजजी]

का मार्ग पकड़ लेती है। जो जितना बड़ा दायित्व रखता है उसे उतने ही अधिक समझौते करने पड़ते हैं अर्थात् उसे उतनी ही अधिक 'गम' खानी पड़ती है। अस्तु—इस प्रकार अणुव्रती यदि सामाजिक व सार्वजनिक क्षेत्र में समन्वय एवं समझौते के आधार पर आगे बढ़ते रहें तो पग-पग पर आनेवाली समस्याओं से मुक्त होंगे और जिन हिंसामूलक भावनाओं को वे अपने जीवन का सहज धर्म मान बैठे हैं उन्हें अनावश्यक मानने लगेंगे। परिणाम स्वरूप लौकिक और पारलौकिक जीवन के दोनों पक्ष सत्यं शिवं सुन्दरम् के समीप होंगे।

हिंसा का ज्वलन्त स्वरूप विभिन्न देशों के पारस्परिक युद्धों और महायुद्धों में प्रकट होता है। वहाँ निर्दयता साहस का रूप लेती है, धूर्तता नीति का रूप लेती है, और मानव का व्यवहार हिंस्र पशुओं की प्रवृत्ति को भी पीछे ढकेल देता है। लोग कहते हैं—मानव जीवन के इस पहलू में अहिंसा क्या कर सकती है ? किन्तु आज तो विश्व की घटनायें स्वयं तथा प्रचार के प्रश्नों का मुंह तोड़ रही हैं। जहां हिंसा से कुछ नहीं हुआ वहां अहिंसा ने आकर सामंजस्य स्थापित किया। दक्षिणी और उत्तरी कोरिया से उभरने वाले महायुद्धों के आसारों का शान्त होना, हिन्दचीन की लम्बी लड़ाई का अन्त होना व चालीस करोड़ भारतीय जनता का अपने देश की विदेशी सत्ता से मुक्त कर लेना इस दशक के ज्वलंत उदाहरण हैं। आज अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी अहिंसा का पक्ष प्रबल है और ऐसा लगता है इतिहास के पृष्ठों में अहिंसा की विजय का यह स्वर्णिम युग होगा। आज धीरे-धीरे तोपों और तीरों का स्थान सह-अस्तित्व, अनाक्रमण आदि पंचशील ले रहे हैं। अब और भी आवश्यकता उपस्थित हो गई है इस दिशा में अहिंसा का विकास अधिकाधिक किया जाय। कौन नहीं जानता अबतक मानव जाति की असीम शक्ति, असीम धन और असीम बुद्धि सैनिक, शिक्षण व अस्त्र-शस्त्र के निर्माण में लग रही है। वही शक्ति यदि अहिंसा के विकास की ओर मुड़ जाती है तो अहिंसा की विजय में चार चाँद और लग जाते हैं।

संकल्पी-हिंसा

भारतीय-विचारधारा के अनुसार मुख्यतः दो प्रकार के प्राणी माने गये हैं। स्थावर और जंगम। स्थावर जिनके एक इन्द्रिय होती है, स्वयं चलफिर नहीं सकते, पृथ्वी, जल, वनस्पति आदि। दो इन्द्रिय से लेकर पांच इन्द्रिय तक के प्राणी जंगम हैं, ये स्वयं गतिशील होते

हैं। द्वीन्द्रिय—लट, सीप, कृमि आदि। त्रीन्द्रिय चींटी, मकोड़ा, जूँ आदि। चतुरीन्द्रिय—मक्खी, मच्छर, टिड्डी, बिच्छू आदि। पन्चेन्द्रिय—गाय, भैंस, मछली, सर्प, मोर, कबूतर, मनुष्य आदि। अणुव्रती के लिये चलने-फिरने वाले निरपराध प्राणी की संकल्पपूर्वक की जाने वाली हिंसा वर्जित है। सामान्यतः हिंसा तीन कारणों से होती है; समारम्भ, विरोध और संकल्प। समारम्भ—जहां व्यक्ति का ध्येय किसी जंगम (त्रस) प्राणी को मारने का नहीं होता, किन्तु कृषि, वाणिज्य, गृह-निर्माण व गमनागमन आदि समारम्भ में अनायास द्विन्द्रिय आदि प्राणियों की हिंसा हो जाती है। विरोध—जहां व्यक्ति अपने पर आक्रमण करने वाले मनुष्य, पशु, पक्षी आदि पर प्रहार करता है। संकल्प—यत्किञ्चित प्रयोजन व निष्प्रोयजन व्यक्ति स्वयं आक्रान्त होकर संकल्पपूर्वक मनुष्य, पशु, पक्षी आदि की हिंसा करे।

टिड्डी, बन्दर व कुत्तों की हत्या

यद्यपि नियम में संकल्पजा हिंसा का ही निषेध है तथापि उक्त प्रकार की अन्यान्य हिंसाओं से भी बचते रहना अणुव्रती का आदर्श है। सांप, बिच्छू आदि जहरीले जानवरों को लोग घातक समझकर देखते ही मार देने का प्रयत्न करते हैं। बहुत सारे लोग उन्हें पकड़कर किसी दूर एकान्त स्थान में छोड़ देते हैं। अणुव्रती पहले प्रकार से तो अवश्य बचें।

बन्दर, मोर, हरिण जानवरों को लोग खेती के विध्वंसक समझकर मारने और मरवाने का प्रयत्न करते हैं। अणुव्रती एक अहिंसानिष्ठ प्राणी है वह यह मानते हुए अपना जीवन सबको प्रिय है इस प्रकार की हिंसा से बचे।

टिड्डी मारने का भी आजकल एक ज्वलन्त प्रश्न है। टिड्डियाँ खेती का सर्वनाश करती हैं अतः उनकी हिंसा संकल्पजा न होकर विरोधजा है ऐसी भी एक दृष्टि है। राजकीय व्यवस्थाओं से भी कभी-कभी सर्वसाधारण जनता को टिड्डी मारने-मरवाने को बाध्य किया जाता है। ऐसी स्थिति में अणुव्रती क्या करें यह एक प्रश्न है। अणुव्रती साधना के मार्गपर है। उसका प्रयत्न यथासाध्य हिंसा से बचना होता है। तथा प्रकारकी हिंसा संकल्पजा है या विरोधजा इस विवाद को छोड़कर भी अणुव्रती का आदर्श यही होना चाहिये कि वह तथोक्त हिंसा से बचे ही।

शहरों में कुत्तों को मरवा डालना भी नगरपालिकाओं ने सुधार की दिशा में हो सकनेवाला पहला कार्य मान लिया है। स्थिति यह है 'मानव महान' के इस युग में मनुष्य की सुख सुविधा में रोड़ा बननेवाले सभी प्राणी जीवन के किनारे पर खड़े हैं। आज का भौतिकवादी मनुष्य जहां बस चलता है वहां ऐसे प्राणियों को मार देने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग सोचता ही नहीं ऐसा लगता है। हो सकता है कुत्ते शहरी जीवन की नागरिक व्यवस्था में कुछ गड़बड़ी पैदा करने का अपराध करते हों। किन्तु सड़कों पर चलते हृष्टपुष्ट कुत्तों को जहरीला खाद्य जब नगरपालिकाओं के कर्मकर डालते हैं और कुत्ते उन्हें खाकर अपने जीवन की सारी शक्ति केवल दो चार छटपटाहट में पूरी करते हैं। यह दंड देखने और सुननेवाले लोगों को रोमांचित करता हुआ अनिर्वचनीय व्याकुलता में डाल देता है। अणुव्रती कभी-कभी पूछा करते हैं नगरपालिका सदस्य व अध्यक्ष होने के नाते हम ऐसी व्यवस्थाओं के विषय में क्या करें? उत्तर स्पष्ट है उक्त प्रकार के कार्यों के लिये वह कभी भी मत-दान प्रदान नहीं करे।

घरेलू वातावरण में भी अणुव्रतियों को समारम्भ हिंसाओं से बचना आवश्यक है। बहुत सारी बहिनें सवेरे उठते ही बिना कुछ देखे चूल्हा जला डालती हैं। ऐसी असावधानी में बहुत बार त्रस प्राणियों की निरर्थक हिंसा हो जाती है। बहुधा घी, तेल, आचार आदि के बर्त्तन लोग खुला छोड़ देते हैं। उससे अपने ही घी, तेल, अचार आदि के साथ-साथ बहुत सारे त्रस प्राणियों का नाश होता है। जहां बहुत सारा अनाज एक साथ संग्रहीत कर असावधानी से रखा जाता है; उसमें अगणित घुन, इल्ली, लट आदि पैदा हो जाते हैं। उसी धान को बिना कुछ देखे चक्की में दे दिया जाता है तो वहां कितनी निर्मम हिंसा होती है। अस्तु इन्हीं असावधानियों से जूँ, खटमल, चींटी, मच्छर आदि पैदा किये जाते हैं और फिर उनकी हिंसा की अनिवार्यता अनुभव करते हैं। यह अहिंसा की साधना का मार्ग नहीं है। अणुव्रती को विवेक से अहिंसा के पथ पर बढ़ना है अतः वह उपयोग रखे कि मेरी असावधानी से न तो उक्त प्रकार के जीवों की उत्पत्ति हो और न मैं उनकी हिंसा का भागी बनूं।

श्रम व श्रेय

'श्रम' ने पथिकों की सुविधा के लिए कुआं खोदना शुरू किया।

'श्रम' अपने कार्य में मग्न था। सहसा कुएँ से एक देवी प्रगट हुई।

'श्रम' ने पूछा—"देवी! तुम्हारा परिचय?"

"मैं हूं 'श्री' तुम्हारी सेविका"—वह बोली।

श्रम अपने काम में लगा रहा, जबतक कि कुआँ बनकर तैयार न हो गया। 'श्री' उसके अभिनन्दन की बाट जोह रही थी। 'श्रम' लौट रहा था। पीछे पद-चाप सुनाई पड़ा। मुड़कर देखा तो स्वयं श्रेय उसका अनुगमन कर रहा था।

—श्यामू सन्यासी

एक एकांकी—

परिवर्तन

[कुमारी लक्ष्मी शर्मा की प्रसिद्ध कहानी 'नीलू' का एकांकीकरण]

[श्री गिरिजाशंकर पाण्डेय]
बी० ए०, साहित्यरत्न, प्रभाकर

[वह इन्सान जो सदा गरीबों के जीवनसे खेलता रहा, एक अभागिन माँ के आँसुओं के सामने झुक गया। पर उस अवला को अपने जीवन की सबसे बड़ी आहूति देनी पड़ी और वह क्या थी ?...]

पात्र :—कामिनीरंजन घोष—जमींदार
दुर्जय मजूमदार—कारिंदा
मोहनराय—मुनीम
छोटे सरकार—जमींदारका पुत्र
मृदुला—मोहन राय की स्त्री
मृणालिनी—जमींदार की नौकरानी
नीलू—मृणालिनी का वेटा
पंजू—जमींदार का नौकर

प्रथम दृश्य

[सिर पर पुआल का ढेर लिए नीलू और उसके पीछे दुर्जय मजूमदार का प्रवेश।]

दुर्जय : [बालक को आगे ठेलता हुआ] दिनभर ढेर-सा खा लेना होगा। जरा-सा बोझ लेकर नहीं चला जाता। तुम लोग हराम की खाते हो और मजा मारते हो। इसे साफ करके कोठे में बिछा आ और देख, अभी बैलों के लिए न्यार भी तैयार करना है। तब घर जाना, समझे।

नीलू : [गिड़गिड़ाकर] मेरी माँ बुखार से जली जा रही है। घरमें मेरे सिवा और कोई नहीं है। ले देके उसकी दवा-दारु कर लेने दीजिये। वरना वह यूँ ही तड़फ २ कर मर जायगी।

दुर्जय : अबे चल कलयुगी सरवणकुमार! दवा-दारु पीछे कर लेना।

[जोर से धक्का देता है। बालक मुंह के बल जा गिरता है। खून बहने लगता है। पुआल इधर-उधर बिखर जाता है। इतने में जमींदार घोष बाबू आ जाते हैं। दुर्जय महाशय सकपका जाते हैं।]

दुर्जय : [बात बनाते हुए] नीलू के बच्चे! जब तुमसे इतना बोझ नहीं उठाया जा सकता था तो लेके क्यों चला था? यहाँ मरने चला आया। ताकत से ज्यादा काम करने पर मुँह नहीं टूटेगा तो और क्या होगा?

[नीलू की आत्मा विद्रोह कर उठती है]

नीलू :—काम लेते २ मेरी माँ की हड्डियाँ तोड़ डाली। उसे ज्वरकी भेंट कर दिया। मेरा खून चूस लिया। और अब झेंप मिटाने के लिए कहते हो—अनाड़ीपन से चोट आई। इतना बड़ा पुआल का ढेर तूने ही तो मेरे सिर पर रखा था, अन्यायी कहीं का।

दुर्जय :—छोटा मुँह बड़ी बात। [जमींदार साहब से] देखो न सरकार! कैसा बढ़ २ के बोल रहा है। मृणालिनी का बेटा है न! माँ की अकड़ का इसमें भी असर है। अपनी गलतियों का दोष दूसरों पर मढ़ने में ये लोग कितने चतुर होते हैं। इसकी खाल उधेड़ लेनी चाहिए।

रंजन : जाने दो, गंवार है। पर इसकी माँ को क्या हुआ जो कल के लौंडे को यहाँ काम करने भेज दिया?

दुर्जय : आरामतलबी में आरही है, सरकार। जरा-सी ठंड क्या लग गई, तेवर ही कुछ और हो गये। कहने लगी—जबतक बिल्कुल ठीक नहीं हो जाऊंगी, काम पर न आ सकूंगी। महनत का खाती हूं, दया की भीख नहीं मांगती, नीलू काम करने चला जाया करेगा। सरकार! बड़ी अकड़वाली है। गरीबी ने इन लोगों की कमर तोड़ दी। पर अभी भी सर ऊंचा उठाकर चलने का ताव नहीं गया।

रंजन :—बस हो लिया आराम! उससे कहो कि कल से काम पर आ जाये। नहीं तो सूखी रोटियाँ भी मयस्सर न होंगी। सारी तनख्वाह काट ली जायगी और बेगार बढ़ा दी जायगी।

[जाते हैं।]

दुर्जय :—[नीलू को घुड़ककर] सुन लिया बे! अभी जाकर अपनी माँ को घोष बाबू का संदेश सुना दे। [जाता है]

[नीलू उठकर किसी तरह अपने घर की ओर चलना चाहता है किन्तु अस्वस्थ हो जाने के कारण वहीं गिर पड़ता है। मोहनराय आता है।]

मोहन : [बालकको देखकर] अरे, नीलू! यह क्या? खून। [शरीर छूकर] तुम्हारा तो शरीर भी जल रहा है। हाय, गरीब के बच्चे को किसने मार डाला। चलूं, इसे इसके घर ले चलूं।

[नीलू को हाथों में उठाकर ले जाता है। परदा गिरता है।]

द्वितीय दृश्य

खाट पर पड़ी नीलू की माँ ज्वर-ताप से कराह रही है। मोहनराय आवाज देता है।]

मोहन : भाभी ! भाभी !!

मृणालिनी : [कराहती हुई] क्या है भय्या ? अन्दर आ जाओ।

[मोहनराय बालक को लेकर आता है। उसे देखकर माँ चौंक उठती है।]

मृणालिनी :—[उठती हुई] क्या हुआ मेरे लाल को ?

मोहन :—जमींदार साहब के आहते में भय्या अचेत पड़ा था चोट लग गई है। खून निकल जाने से मूर्छित हो गया है। ज्वर भी चढ़ आया है। मैं तो चलता हूँ भाभी। जमींदार साहब का काम करना है। देर हो जायगी तो उनकी क्रोधाग्नि में घी पड़ जायगा। [नीलू को माँ के पास छोड़कर जाता है।]

मृणालिनी :—[सिसकती हुई] जालिमों ने बच्चे का सिर तोड़ दिया। हे भगवन् ! तू हमें किस पाप की सजा दे रहा है, मेरा जीवन ले ले पर मेरे लाल को न सता !

[मोहन राय की स्त्री आती है।]

मृदुला :—क्या हुआ बहिन ? [नीलू को देखकर] हैं ! इतना खून ! किस हत्यारे ने भय्या को मार डाला ?

मृणालिनी :—और कौन मार सकता है। ये इसी जमींदार कामिनी बाबू की करतूत है या उसके किसी कारिंदे की ! मैं काम पर न जा सकी तो बच्चे को जबरदस्ती बेगार पर ले गये। अधिक काम न कर सका होगा, मार दिया। क्या करूं बहिन ? मेरे पास तो पैसे भी नहीं हैं जो किसी डाक्टर को दिखा दूं। गरीबी ने हमारा सब कुछ छीन लिया।

मृदुला :—तुम चिन्ता न करो बहिन ! मैं भय्या को डाक्टर के पास ले जाती हूँ। तुम आराम करो।

[मृदुला नीलू को लेकर जाती है। परदा गिरता है।]

तृतीय दृश्य

[जमींदार साहब का घर। नौकर-चाकर इधर-उधर दौड़ रहे हैं। घोषाल बाबू का प्रवेश]

रंजन : [एक नौकर को रोककर] क्यों पंजू ? क्या आफत है ? घर में ये कोहराम कैसा मचा है ?

पंजू : हजूर, बड़ा ही अनर्थ हो गया। छोटे सरकार शिकार से लौट रहे थे, अचानक वह घोड़े से गिर पड़े। टांग में सख्त चोट आई है। इलाज किए जा रहे हैं।

रंजन :—[दुखित होकर] हे भगवान् ! यह क्या हुआ ?

पंजू : पर हजूर, आश्चर्य है ! छोटे सरकार आज तक घोड़े से नहीं गिरे। अचानक ये क्या हुआ ? जरूर किसी भूत-प्रेत की कारस्तानी है। किसी सियाने के पास चलकर झाड़-फूंक करा लेनी चाहिए। जो अला-बला होगी, उतर जायगी।

[घोष बाबू सिर पकड़कर बैठ जाते हैं।]

रंजन : क्या किया जाय ? पता नहीं, यहां कोई सियाना भी है या नहीं।

पंजू : हजूर, सुना है कि अपनी मृणालिनी कभी झाड़-फूंक किया करती थी। उसी को क्यों नहीं बुला लेते ? पर आजकल बेचारी बहुत बीमार है।

रंजन : मैं जानता हूँ, वह बीमार है। पर हमारे लड़के के भी तो जीवन-मरण का प्रश्न है। बीमारी तो चलती ही रहती है। पंजू, तू ही दौड़कर जा और उसे यहाँ बुला ला।

[पंजू जाता है। परदा गिरता है।]

(शेषांश पृष्ठ २२ पर)

जीवन का सार

[श्री भीष्मसिंह चौहान]

संघर्षों से युद्ध करो नित,
लिये विजय की आशा को॥
वह भी क्या उपवन जिसमें,
बहती हो मस्त बयार नहीं।
वह भी क्या जीवन जिसमें,
हो जीने का अधिकार नहीं॥

परवशता में पोषण पाना,
मानवता की हार है।
स्वाभिमान से जीवित रहना ही,
जीवन का सार है॥
सन्तापों में तप तप कर ही,
मानव भाग्य निखरता है।
अभिशापों को वरदानों में,
मानव स्वयं बदलता है॥

किन्तु बन गया मानव दानव,
सुख की क्षणिक पिपासा को।
संघर्षों से............ ?
उथल पुथल, उत्थान पतन को,
जीवन की सौगात कहो।
दर्दों के फंदों में बंदी रहकर भी,
हर घात सहो॥

राह कटीली जीवन पथ की,
किंचित नहीं विचार करो।
दुर्बल हीन भावनाओं पर,
व्यापकता की धार धरो।
अपनी ही दुर्बलतायें तो,
असफल हमें बना देतीं॥
किन्तु सबलतायें अन्तस की,
दुर्गम सुगम बना देतीं॥

परिणित कर दो नव आशा में,
छाई घोर निराशा को।
संघर्षों से युद्ध............

[आज की दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई अनैतिकता प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति के सम्मुख एक विकट समस्या के रूप में मुंह बाये खड़ी है। इसे विकसित करनेवाले कारण क्या हैं और इसके निराकरण का क्या उपाय हैं, यह प्रस्तुत लेख से प्राप्त करिये।

—सम्पादक]

नैतिक पतन

मूल स्रोत

[डा० हरिशंकरलाल 'दिवाकर']

इस बहुधन्धी जीवनमें भी मानव अपने आपको भुला देना चाहता है। चाहता है सुख-शान्ति और साथ ही साथ आनन्दमय जीवन भी। जिसके लिए वह भौतिक साधनों-सुरा-सुन्दरी प्रभृति को अपनाता है; जिन्होंने उसे भौतिकवादी बना दिया है। फलस्वरूप अहर्निश भौतिकवाद के प्रसारण में तन, मन, धन से लगा हुआ है। भौतिकवाद में एक महान् अवगुण है—आत्मवाद में आस्था का न होना। जब मानव में आस्था की न्यूनता हो जाती हैं तब ईश्वरत्व की भावना अविश्वास में परिणत होती है। वह अपने बाहुबल एवं प्रतिभा-शक्ति को ही सर्वेसर्वा समझने लग जाता है। उसमें वासनाएँ केन्द्रित हो जाती हैं और वह सदैव के लिए उनका दास बन जाता है। कामनाएँ जिनको दूसरे शब्दों में मनकी वृत्तियां भी कहते हैं, कभी पूर्ण नहीं हो सकती; वल्कि उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती हैं। मन की गति में चाञ्चल्य है—वह (मन) कभी सम्राट् बनना चाहता है तो कभी सर्वाङ्ग-सुन्दर। कहने का तात्पर्य यह है कि आज का मानव मन का अधिक दास बन गया है; और वासना पूर्ति के लिए दुराचार, पापाचार, अत्याचार भ्रष्टाचार और साथ ही साथ निरपराध जन-संहार भी कर रहा है।

भौतिकवादी लक्ष्मीदास होता है, वह नारायण को नहीं जानता। लक्ष्मी स्वयं चञ्चला है, "जैसा देव वैसा पुजारी" वाली कहावत का चरितार्थ होना भी तो अवश्यम्भावी है। यदि हम लक्ष्मी को पापिनी एवं अवगुणों की खान कह दें तो कोई अत्युक्ति न होगी। लक्ष्मीवान् देश सुरा-सुन्दरी के विशेष भक्त होते हैं; जैसा कि आज देखने में आ रहा है। सुरा को सारे व्यसनों की जन्मदात्री मानने में हमें सङ्कोच नहीं करना चाहिए। अन्य देशों ने भी इसे "शैतान की लड़की" कहकर पुकारा है।

सुरा के सम्बन्ध में प्रत्येक धर्म के आदि ग्रन्थों—वेद, कुरान, मनुस्मृति एवं धम्मपद प्रभृति में हमें निषेधात्मक वाक्य मिलते हैं। सभी इसकी तीव्रतम निन्दा करते हैं; फिर भी मानव इसके प्रेम-पाश में इतना जकड़ा हुआ है कि इस (सुरा) का परित्याग नहीं कर पाता। समाज-शास्त्र के विशेषज्ञों का कथन है कि अनेक जातियों को इसी राक्षसी (सुरा) ने सदैव के लिए मिटा दिया। न जाने कितने साम्राज्य इस पिशाचनी के शिकार हुए हैं। भारतीय इतिहास में यादव-साम्राज्य के विनाश का इतिहास जो रक्ताक्षरों में अङ्कित है, इसका ही कुपरिणाम है। लङ्काधिपति रावण जैसे महान् शक्तिशाली एवं प्रकाण्ड पण्डित की बुद्धि को विनष्ट करने और पतन की ओर ले जाने का दोष शूर्पनखा को नहीं वल्कि इसी दुष्टा (सुरा) की सङ्गति का फल कहना अनुचित न होगा। कमसे कम हमें तो उस प्रबल जातिकी पराजय का मूल कारण यही प्रतीत होता है।

जब हम राम-रावण युद्ध का प्रकरण पढ़ते हैं; तब हमें राक्षस मदान्ध शराबियों की तरह लड़खड़ाते हुए बुद्धि-शून्य होकर लड़ते दिखाई देते हैं। यहीं तक नहीं, वल्कि हिन्दू-साम्राज्यके वैभव-कालका अथवा यवन-साम्राज्य का विहँगावलोकन करते हैं तो दोनों साम्राज्यों की सुरा वृत्ति में ही उनके पतन का बीज दृष्टि-गोचर होता है। हमारी देवियाँ (काली, चामुण्डा एवं भैरवी प्रभृति) को भी इस (वारुणी) से अछूता नहीं रखा गया, किन्तु हमें बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि जन-गण-राज्य भारत में भी अभी तक इस विष-कन्या (सुरा) को प्रेयसी बनाया हुआ है; जो हमें शनैः शनैः अनैतिकता के घोर गर्त की ओर अनुदिन अग्रसर करती जा रही है।

नैतिक पतन का दूसरा स्रोत है "एकान्त-पाप"। प्रत्येक विद्यालय, महाविद्यालय एवं छात्रावास "एकान्त पाप" के केन्द्र बने हुए हैं। देश की प्रतिष्ठित तथा पवित्र से पवित्रतम संस्थाएँ भी इस दोष से अछूती न रह सकीं। ब्रह्मचर्य नाश तथा अप्राकृतिक कर्मों के तो ये अड्डे से हो रहे हैं। हमारी सन्तानें अपने जीवन-रस को गन्दी नालियों में बहा रही हैं और हम निश्चिन्त हैं। ये आनन्दोत्साह के लहलहाते हुए विरवेचन्द्र-वदन तथा हृष्ट-पुष्ट शरीर को लेकर इन सरस्वती के मन्दिरों में भगवती शारदा की आराधना के लिए जाते हैं, किन्तु लौटते हैं यौवन, तेज, स्वास्थ्य और साथ ही साथ पौरुष, चरित्र एवं स्वाभिमान को भी खोकर। साथ ही कायर-हृदय बनकर जीवन-संग्राम में उतरते हैं—साफल्य प्राप्त करने के लिए। क्या सफलता देवी इनको

स्वीकार करेंगी ? यही हैं ना हमारे वे युवक-युवतियां—हमारी आंखोंके तारे, हमारे जीवन प्रदीप, वृद्धावस्था के अवलम्बन तथा हमारे राष्ट्र के भावी निर्माता। इन हमारी आशा लताओं एवं कुल-दीपों की यह दशा देखकर ऐसे कौन से माता-पिता हैं जिनके हृदय टूक-टूक न होंगे।

तृतीय पतन-स्रोत है आजका आविष्ठ-नगत रचित हमारा साहित्य भी। आइये, अब हम अपने साहित्य पर एक दृष्टि डालें। संस्कृत-साहित्य जहां उच्चातिउच्च आध्यात्मिक भावों से परिपूर्ण है, वहां जन-साधारण के पठन काव्य में आज कदाचित ही एकाऽध काव्य ऐसा हो जिसमें श्रृङ्गार रस के कटोरे न भरे हों। वास्तव में महाकाव्य की व्याख्या में इन विलास-कथाओं को एक विशेष स्थान प्राप्त है। पीछे होनेवाले कवियों में से किसी को यह साहस नहीं हो सका कि उस व्याख्या की चिन्ता न करते हुए ऐसे काव्य की रचना करते जो निर्मल-हृदय युवक-युवतियों के हाथों में भी रखा जा सके। यही अवस्था मध्यकालीन प्राकृत अथवा हिन्दी-साहित्य की भी है। प्रतीत होता है, साहित्यकारों को रचना करते समय इन निर्दोष चित युवक-युवतियों का ध्यान ही नहीं रहता था। वे अपनी रचनाएँ प्रायः गृहस्थों के मनोविनोद एवं काल-यापन के लिए ही करते थे। अपने मानसिक विकारों को सत्य बनाने के लिए, समाज के सुरुचि-सम्पन्न अन्तःकरणों की भर्त्सना से बचने के लिए परमात्मा पर अपने विचारों का आरोप करते थे। श्रीकृष्ण और उनकी अनन्य भक्ता राधा के प्रति उन्होंने कितना घोर अन्याय किया है। आज उनकी मूक आत्माएं हमें इस घृणित पाप के लिए कितना अभिशाप देती होंगी ? वर्तमान विलासता, दुराचार, भ्रष्टाचार तथा नैतिक पतन के लिए क्या ये काव्य-ग्रन्थ कम उत्तरदायी हैं ? रहे सहे उनके अपूर्ण कार्य को हमारे आधुनिककाल के मासिक तथा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाएँ, उपन्यास एवं कहानी (काव्य-अङ्क) पूर्ण कर रहे हैं, लोक-शिक्षा के उच्च स्थान से उतरकर जनताके अधम विकारों को उत्तेजित करके लोक-कल्याण का दावा कर रहे हैं। इनके मुख्य पृष्ठोंपर तथा भीतर सुन्दर कामिनियों के मनोहर एवं लुभावने चित्र होते हैं। सन्तति-शास्त्र, दम्पति-रहस्य तथा गृहस्थ-धर्म्म आदि के नाम पर कोक-शास्त्र को भी लज्जित करने वाली भाषा में स्त्री-पुरुषों की विकार-उत्तेजक बातें लिखकर ऐसे साहित्य का प्रचार करते हैं, जो ब्रह्मचर्य का तो दूर रहा गृहस्थ-धर्म का भी अपमान करता है। क्या यही साहित्य हमें कल्याण पथपर अथवा "सत्यं शिवं सुन्दरम्" के मार्ग पर अग्रसर कर सकेगा ? निर्दोष युवक-युवतियों के हृदय में विकारों को उत्तेजित करनेवाला एक और भी कारण है—'रङ्गभूमि' नाटक और चित्र-पट। चलचित्रों और नाटकों में जो अनेक अश्लील दृश्य प्रदर्शित किए जाते हैं, उनके कुप्रभाव तथा कुपरिणामों से हम अपनी सन्तति को कैसे बचा सकते हैं ? वास्तव

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

साधना का चन्द्र

[श्री राजेन्द्र सेठ, एम० ए०]

कामना की कोख को करने उजागर।
साधना का चन्द्र नभ में जगमगाया॥

बुझ चुके हैं दीप सारे इस धरणि के,
जल उठे हैं दीप सारे उस गगन के।
चाँदनी की चादरों को साथ लेकर,
साधना का चन्द्र नभ में जगमगाया॥

रो रहा है व्योम, लेकिन यह सुधाकर,
हेरता हँसकर गगन के अश्रुओं को।
जाल माया का रुपहला साथ लेकर,
साधना का चन्द्र नभ में जगमगाया।

सो रहा जग चन्द्र का सद्जाम पीकर,
हो रहा मद्होश तारों में समाकर।
इस धरा की धीरता को साथ लेकर,
साधना का चन्द्र नभ में जगमगाया॥

ध्वँस के पथ की भयङ्कर कालिमा सब,
मिट चुकी है चन्द्र का आलोक पाकर।
जागरण की चेतना को साथ लेकर,
साधना का चन्द्र नभ में जगमगाया॥

समाजवाद की बात

श्री ज्ञानचन्द्र नाहर

देश की प्रथम पंचवर्षीय योजना का काल समाप्त हो गया। द्वितीय योजना गत पहली अप्रैल से शुरु होगई है। कांग्रेस के अवाडी अधिवेशन के मनोनीत समाजवादी समाज रचना के मंगल विचारने योजना आयोग को एक निश्चित दिशा में सोचने समझने एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजना के कार्यक्रम को निर्धारन हेतु एक दिशा प्रदान की है।

योजना आयोग के सदस्यों ने अपनी कोशिश में कोई कसर नहीं उठा रखी है। आयोग के सदस्यों ने देश का भ्रमण किया, लोगों के आचार विचार जाने, प्रथम योजना की सफलता को देखा, उसका मूल्यांकन किया। देश की अतुल व अनिर्वचनीय शक्तियों से वे प्रभावित हुए। भारत के लाखों करोड़ों निवासियों के जीवन की खुशहाली का सपना देख वे दूसरी पांच सालाना योजना के निर्माण में जुट गये। समय आया योजनाएं भी बन गईं। संसद व विधान सभाओं में पुलंदों के पुलंदे कागज योजना के प्रारूप में पेश किये गये।

समाजवादी समाज रचना के चित्र को लेकर देशवासियों को सब्ज बाग दिखाये गये, दिखाये जा रहे हैं। योजनाओं की पूर्ति हेतु जो धन चाहिए उसकी पूर्ति अतिरिक्त करों अथवा ऋणों द्वारा पूरी की जा रही है, निसंदेह भारतीय जनता अपने कर्तव्य पालन में कभी पीछे नहीं रही, न रहेगी, यह इसका विश्वास इसी से है कि जब भी सरकार ने मांगा, जिस रूप में भी मांगा, जनता ने सहर्ष दिया, दिये जा रही है। केवल भविष्य के सुनहले स्वप्नों को देखकर कांग्रेस के समाजवादी समाज रचना के निर्मल व स्वच्छ चित्र को सजीव देखने के लिये।

इन सभी शुभ संकल्पों को लेकर भारतीय जनता कड़ा परिश्रम कर रही है, मेहनत कर रही है, ऊंच-नीच का भेद भुलाकर, गरीबी अमीरी की भावना को दफनाकर कंधा से कंधा भिड़ा कर बाल वृद्ध, तरुण नर-नारी देश के नवनिर्माण में जुटे हैं। संयत व विवेकशील समाज रचना का लक्ष्य पूर्ण करने में लगे हैं। हम यह निसंकोच कह सकते हैं, भावी भारत के सुखद सपनों को देखकर भारतीय जनता का वर्तमान त्याग, उसकी अहिंसामयी लड़ाई, उसकी कर्मनिष्ठा, विश्व इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी।

लेकिन इन सबके बावजूद हमें अपने अन्दर की कमियों की ओर भी दृष्टिपात कर ही लेना चाहिए।

देश का पवित्र संविधान, देश के प्रत्येक नागरिक को इस बात का विश्वास दिलाता है कि अब देशमें ऊंच-नीच का भेद नहीं रहेगा, सबके साथ समान, पारस्परिक सहयोग का वर्ताव होगा। सबको न्याय मिलेगा। सबको जीने का हक प्राप्त होगा। परन्तु वास्तव में हो क्या रहा है? साधारण नागरिकों को छोड़ दीजियेगा, बडे २ नेता, संसद, विधान सभाओं, नगरपालिकाओं व ग्राम पंचायतों के सदस्य, सबके सब राष्ट्र सेवा में नहीं, आत्म सेवा में, स्वसेवा में लगे हैं। इसी का कारण है, निम्न वर्ग के कर्मचारी भी अपनी आत्म-सेवा में लीन हैं।

देश के न्यायालय में घूम जाइये, बड़े-२ दफ्तरों में चले जाइये प्रवेश द्वारों पर लिखा मिलेगा "आगन्तुक महोदय कृपया कर्मचारी से न मिलें। घूंस लेना व देना दोनों अपराध है।" परन्तु अभी जिस गति से काम हो रहा है उसे देखते तो लोगों की यह धारणा है कि बिना इसके काम भी नहीं चलता। जबतक विधायकों व नेताओं की मनोवृत्तियों में सुधार न हो जाय, तबतक निम्न वर्ग भला इस विषय में क्या सोच सकेगा? बड़े २ नेतागण, विधान-सभाईगण अपने भत्ते बनाने में रहते हैं वे जनता की सेवा भी करते हैं या नहीं यह दूसरी बात है, यहां इस विवाद में नहीं पड़ना है। यहां तो केवल यह कहना चाहता हूं कि संसद व विधानसभाओं का कार्य साल भर का नहीं होता, मुश्किल से चार पांच माह का होता है। कुल मिलाकर औसतन सदस्यों की उपस्थिति ७० से ८० प्रतिशत तक होती है। लेकिन वह घर बैठे खासा ऊंची २ पगार पाते हैं? सभी-सुविधाओं को पाते हैं। उनके लिये कोई बंधन नहीं होता, लेकिन जब सदन में गण पूरकों के हेतु घंटी बजती है तो सामान्य जनता का ध्यान अवश्य ही इस ओर केन्द्रित हो जाता है कि वह इस विषय में अपने चुनिन्दा प्रतिनिधियों से पूछे, जानकारी ले। कई बार तो १ ही दिन में लगातार गण पूरक घंटियां दो-दो तीन २ बार बजती हैं, कई बार कोरम के अभाव में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव बिना पास किये ही रह जाते हैं। पर कर्त्तव्य पालन की भावना उनमें जाग्रत नहीं होती। जब राष्ट्र की सेवा का चोगा पहनकर, जन प्रतिनिधि कहलाकर, जनता जनार्दन की सेवा का ढोंग रचकर राष्ट्र की सेवा न कर, अपने स्वार्थ साधन में लगे रहते हैं, तब क्या जनता व सरकार के बीच कोई सम्बन्ध बना रह सकता है?

देश में शुरू से ही शारीरिक क्षमता का योग्य व यथेष्ट सम्मान किया जाता रहा है। यह सत्य है, केवल शरीर से स्वस्थ्य व मोटे-तगड़े होने का अर्थ ही सम्पूर्ण विकास नहीं है परन्तु भारत की अधिकांश जनता खेतिहर है। स्वस्थ्य व तत्वयुक्त आहार के लिये ये किसान जितना परिश्रम करते हैं, मेहनत करते हैं, उतना उन्हें नहीं मिलता। सबको रोटी-रोजी और कपड़ा मकान देने की बात तो आज सभी पार्टियों के सभी नेता सगर्व कहा करते हैं, परन्तु हमें याद नहीं आता उस महान् कुर्सी पर बैठकर वे इस दिशा में प्रयत्न क्यों नहीं कर पाते? इसके विपरीत ३६ करोड़ जनता पर कोई १०-२० लाख विधायक, नेता, उच्चाधिकारी, शासन करते हैं। व्यवस्था चलाते हैं उन्हें मिलता है सैकड़ों हजारों रुपया माहवार और जो दिन भर उनकी जी-हजूरी में खड़े रहते हैं, गर्मी, सर्दी, बरसात में इधर-उधर दौड़ते रहते हैं। झुक-झुककर सलाम दिया करते हैं, उन्हें मिलता है ३०-३५ रुपये माहवार। अधिक हुआ तो ५०-६० रुपये तक।

जबतक यह असामाजिक असमानता मिटाने की दिशा में सक्रिय कदम नहीं बढ़ाया जायगा। आप क्या उम्मीद करते हैं कि हम समाजवादी समाज रचना का संकल्प पूर्ण कर सकेंगे?

भले ही खेती-बाड़ी में उन्नति होजाय, आवागमन के, पारस्परिक सहयोग के साधन आशा से अधिक उपलब्ध किये जांय, शिक्षा का प्रसार किया जाय। लेकिन आप किसी भी नगर अथवा गांव के चौराहे पर जाकर खड़े हो जाइये, वहांसे आपको गंध आयेगी मालिक और स्वामियों के झगड़ों की, मजदूर व मालिक के झगड़ों की, विद्यार्थियों व शिक्षकों के झगड़ों की, आपस के एक ही मां-बाप की सन्तानों के झगड़े की।

इन सब झगड़ों की जड़ क्या है, आपने कभी सोचा है? हम निसंकोच यह कह सकते हैं, स्वार्थ की भावना, नेतागिरी की भावना। जबतक हम समाज को समूह में सोचने को बाध्य नहीं करते, तबतकक्या आप यह कल्पना कर सकते हैं वह स्वहित से परे होकर परहित का पवित्र ध्यान भी मन में ला सकता है?

अस्तु इस विषय में सदा ही, सदैव ही, सर्वत्र ही चर्चाएँ होती रही हैं, रहेंगी भी। पर हमारा प्रयत्न ऐसा होना चाहिए कि हम यथार्थ में समाजवादी समाज रचना की ओर अग्रसर हो सकें।

(उक्त विचार-केवल आत्म निरीक्षण की भावना से प्रेरित हो व्यक्त किये गये हैं। इन विचारों का उद्देश्य किसी भी भाँति किसी के मान-सम्मान को ठेस पहुँचाना नहीं है। —सम्पादक व लेखक)

जीवन भर की पूँजी

— श्री स्वामी कृष्णानन्दजी —

दो हजार साल पहले की बात है। शत्रुओं ने यूनान के एक नगर पर आक्रमण किया। नागरिकों ने बड़ी वीरता से अपनी रक्षा की कोशिश की, यद्यपि अपनी कोशिश में वे असफल रहे, फिर भी आक्रमणकारियों ने उनकी वीरता से प्रसन्न होकर उन्हें यह सुविधा प्रदान की कि वे अपने साथ जो कुछ जितना ले जाया जा सके ले जायें। परिवार के प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बच्चे अपनी सर और पीठ पर सामान लादे चले जा रहे थे, प्यास से कंठ सूखे जा रहे थे। सबकी बड़ी दयनीय दशा थी लेकिन उनमें एक ऐसा पुरुष भी था, जिसके पास ले जाने को कोई सामान न था। खाली हाथ, सर ऊपर, छाती ताने शान्ति से चला जा रहा था, वह था दार्शनिक बायस।

"क्या तुम्हारे पास ले चलने को कोई सामान नहीं है? क्या तुम अपने साथ कुछ भी नहीं ले चल रहे हो?" बोझ से दबे जाते हुए उसके साथियों ने उससे साश्चर्य पूछा।

एक स्त्री ने करुणार्द्र स्वर में कहा—"आह! बेचारा कितना गरीब है? उसके पास ले जाने को कुछ है ही नहीं।"

दार्शनिक ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"अपने साथ मैं अपनी सारी पूँजी ले चल रहा हूँ।"

"कहाँ है?" उत्सुकता से सब एक साथ बोल उठे। "कुछ भी तो तुम्हारे पास नहीं दीखता, जीवन भर की पूँजी लेकर क्या कोई ऐसी बेफिक्री चाल से चलता है?"

दार्शनिक मुस्कराया। उसने कहा—"मेरी पूँजी आत्म-मंथन से निकले हुए मेरे विचार हैं, जिन्हें मैं अपने मस्तिष्क में अपने साथ लिये जा रहा हूँ। वह हमेशा मेरे साथ ही रहते हैं।"

नारी जागरण की सही दिशा

श्रीमती हुलासीबाई भुतेड़िया
उपाध्यक्षा, अ० भा० अणव्रत समिति

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम विदूषी पाठिकाओं की बहूमूल्य रचनायें व विचार सादर आमंत्रित करते हैं। सरस और संक्षिप्त रचनाओं को प्राथमिकता दी जायगी। —सम्पा०]

श्रम की कीमत आंकिये

श्रम जीवन का आवश्यक अङ्ग है। महिलाओंके लिये यह बहुत जरूरी और लाभदायक है कि वे अपने जीवन को श्रमशील बनायें। श्रम जीवन में हल्कापन देता है। अच्छा स्वास्थ्य देता है, काम करनेकी लगन देता है। आलस्य और प्रमाद को यह मिटाता है। आज यदि हम महिलाओं के जीवन की ओर नजर दौड़ायें तो यह साफ दीखेगा कि श्रम की दिन पर दिन उनके जीवन में कमी होती जा रही है। इतना ही नहीं श्रम को ओछी निगाह से देखा जाता है। हाथ से काम करना ऊँचा और इज्जत का काम नहीं—बहिनों की ऐसी धारणा बन रही है। नतीजा सामने है—उनका स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जा रहा है। तरह-तरह की बीमारियों से वे पीड़ित रहती हैं।

प्राचीन काल की नारी और श्रम

पुराने जमाने की नारियां हाथ से काम करने को बड़ा महत्त्व देती थी। हाथ से काम करने में उन्हें सन्तोष महसूस होता था। कितना सुखी और हल्का था उनका जीवन! सुबह चार बजे उठती, चक्की पीसती, गायें दुहती, दही बिलोती, घर की सफाई करती और दूसरे-दूसरे जरूरी काम भी करती। अपने हाथों से रसोई बनाती। भोजन व रसोई के बर्तन साफ करती। भोजन के दिन में जो खुला समय मिलता उसमें अनाज साफ करती। कई एक चर्खा कातती। फिर शाम को भोजन बनाती। भोजन व रसोई के बर्तन साफ करती, गायें दुहती, दूध गरम करके जमाती। इस तरह उनका सारा दिन काम में बीतता। अधिकतर काम श्रम के होते, इनमें खुद-ब-खुद व्यायाम हो जाता। जिससे उनका शरीर मजबूत रहता। बीमारियां बहुत कम आतीं। पुराने जमाने की बहिनें इन शरीर श्रम के कामों के साथ-साथ अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार धर्म-उपासना में अपना नियमित समय लगाती थीं।

श्रम का मधुर फल

मेरा बहिनों से यह अनुरोध है कि वे अपने जीवन में श्रम की उपेक्षा न करें, उन्हें जीवन में तृप्ति और सन्तोष मिलेगा। आज बहिनों का जीवन बहुत तरह की बीमारियों से बुरी तरह उलझा है। इलाज में हजारों रुपये खर्च होते हैं। इन बीमारियों का प्रमुख कारण शरीर-श्रम का अभाव ही है।

अनियमित खान-पान का दुष्प्रभाव

बीमारियों का दूसरा कारण बहिनों के खान-पान की अव्यवस्था है। शरीर का श्रम तो वे करती नहीं। तरह-तरह के गरिष्ठ और भारी पदार्थ वे खाती रहती हैं। वे कैसे हजम हों? साथ ही साथ खट्टी-मीठी, चरपरी आदि जीभ के स्वाद की अनेक चीजें वे खाती हैं। प्रायः दिनभर खाना चलता है; कभी कुछ कभी कुछ। इससे आमाशय खराब हो जाता है। आंतों की हजम करने की शक्ति कमजोर हो जाती है। फिर बीमारी न हो तो क्या हो। भूख से ज्यादा खाना, अनियमित खाना बड़ा नुकशानदेह है।

यथेष्ट भोजनका अभाव और बीमारियां

एक ओर अधिक खाने से बीमारियां बढ़ रही हैं तो दूसरी ओर यथेष्ठ और उपयुक्त खाने के न मिलने के कारण बीमारियां पैदा हो रही हैं। क्योंकि हमारे देश में आज भी गरीबी बहुत ज्यादा है। बड़ी-बड़ी हवेलियों और धन-दौलतवाले तो इने-गिने हैं।

खान-पान को सुधारिये

जिन्हें खाने-पीने की कमी नहीं है, काफी मिलता है, उन्हें अपना खान-पान नियमित बनाना चाहिये। जितनी भूख हो, उससे ज्यादा नहीं बल्कि कुछ कम ही खाना चाहिये। बहुत जल्दी इसका अच्छा फल वे देखेंगी।

संग्रह में न डूबें

रही बात अभाव की सो इसके लिये राष्ट्रीय सरकार तरह-तरह की योजनायें चला

ही रही है। पर बहिनों को भी इसमें कुछ करना होगा। उनमें संग्रह की भावना कम होनी चाहिये। वे क्यों नहीं सोचतीं कि खाने को अनाज और पहनने को कपड़े—यही तो आदमी की असली जरूरत है। चाहे करोड़पति हो, चाहे गरीब। सब अनाज ही तो खाते हैं, कपड़े ही तो पहनते हैं। फिर संग्रह की इतनी तीव्र भावना क्यों? यदि बहिनों में असंग्रह की भावना पैदा होगी तो इसका सीधा असर पुरुषों पर पड़ेगा। यदि मैं ऐसा कहूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि महिलायें यदि चाहें तो पुरुषों के जीवन को बदल सकती हैं। संग्रह और शोषण से उन्हें दूर कर सकती हैं। पर पहले उनको अपना खुद का जीवन हल्का बनाना होगा।

ब्रह्मचर्य-सुखी जीवन की कुञ्जी

ब्रह्मचर्य जीवन का सार है। तेज, बल, बुद्धि—सब इससे बढ़ते हैं। जीवन-शुद्धि का यह मुख्य साधन है। बहिनों को ब्रह्मचर्य का सबसे ज्यादा ध्यान रखना चाहिये। ब्रह्मचर्यसे से वे जितनी दूर होंगी, उनका जीवन उतना ही निस्तेज और निर्बल बनेगा। असमय में उन्हें बुढ़ापा आ घेरेगा। उनकी सन्तानें कम-जोर होंगी। जन्म से कमजोर होनेवाली संतानें आगे चलकर क्या उन्नति कर सकेंगी? यद्यपि सबके लिये यह सम्भव नहीं कि वे सम्पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन कर सकें। पर जहांतक बन सके अब्रह्मचर्य से परे रहने की कोशिश करें।

एक पुरानी कहानी है—एक व्यक्ति ने किसी शरीर शास्त्री से पूछा—मानव को जीवन में ब्रह्मचर्य का खण्डन कितनी बार करना चाहिये। शरीर शास्त्री ने कहा—केवल एक बार। उस व्यक्ति ने फिर पूछा—यदि इतना भी वह संयत न रह सके तो? शरीर शास्त्री बोला—वर्ष में एक बार व्यक्ति ने फिर पूछा—यदि इतना भी वह संयत न रह सके तो? शरीर शास्त्री ने कहा—महीने में एक बार यदि इतना भी वह संयत न रह सके तो? शरीर शास्त्री ने झल्लाकर कहा—तो वह अपना कफन सिरहाने रखे। इसका मतलब यह है कि ब्रह्मचर्य जीवन है, अब्रह्मचर्य मृत्यु। जो पुरुष या नारी अपने को जितना अधिक ब्रह्मचर्य में रख सकेंगे तो उनका जीवन उतना ही सुख तथा शान्ति की ओर आगे बढ़ेगा।

कायिक, वाचिक और मानसिक ब्रह्मचर्य की आवश्यकता

कायिक ब्रह्मचर्य तो आवश्यक है ही पर इसके साथ वाचिक और मानसिक ब्रह्मचर्य की भी बहुत बड़ी जरूरत है। मन में अब्रह्मचर्य के भावों का आना बड़ा नुकशान करता है। वह वृत्तियों में मैलापन भरता है। शरीर में भी तरह-तरह के रोग पैदा करता है। मन की तरह वचन में भी पवित्रता रहनी चाहिये।

परिवार में आपसी प्रेम और आत्मीयता बढ़ाइये

परिवार में सास-बहू के झगड़े, ननद-भौजाई के झगड़े जैसे अप्रिय काम हम आये दिन देखती हैं। यह बहुत बुरी बात है। इसका कारण है—एक दूसरे के प्रति अविश्वास और प्रेम भावना का न होना। सास जितना प्यार अपनी पुत्री से करती है, जितना विश्वास उसका करती है उतना अपने बेटे की बहू का नहीं। सास समझती है, बेटी मेरे घर की है, बहू पराई है। बेटी भी अपनी भौजाई को अविश्वास की निगाह से देखती है। कोई उससे जान-अनजान में भूल हो जाय तो झट अपनी मां से उसकी शिकायत करती है। मां बेटी की शिकायत फौरन मान लेती है। बहू को भला-बुरा कहती है। ऐसी हालत में बहू को अपनी सास और ननद के प्रति आदर और प्यार कैसे हो सकता है? अब जरा बहू की मनोवृत्ति को आप देखें। जिस तरह सास और ननद शुरू से उसके प्रति अविश्वास और अप्रेम की भावना बनाये रखती है, वह भी मन में यह सोचे रहती है, सास मेरा भला नहीं सोचती। वह मेरे दुःख-दर्द की चिन्ता नहीं करती, क्योंकि वह मेरी मां थोड़ी ही है। वह तो पराई है। ननद के प्रति भी उसके इसी तरह के भाव होते हैं। इसके सिवाय आपसी मनमुटाव का दूसरा कारण यह है—सास बहू से छिपाकर अपनी बेटी को कपड़े-लत्ते तथा दूसरी चीजें देती है। इससे बहू के मन में नाराजगी होती है कि सास हमारा घर लुटा रही है। यदि सास ऐसा न कर बहू और बेटी में समानता की भावना रखती हुई बेटी को लेना-देना अपनी बहू की जानकारी व राय से करे अथवा बहू के हाथ से करवाये तो बहू के मन में जरा भी क्षोभ पैदा नहीं होगा। वह खुद प्रेम से अपनी ननद को देगी। पर ऐसा होता नहीं। यह विचारों की विषमता सब झगड़ों का मूल है। नतीजा यह होता है—इससे पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। बहू सास से अलग होना चाहती है। अपने पति पर इसके लिये दबाव डालती है। परिवार में जहां आपस में स्नेह होना चाहिये, प्यार होना चाहिये, वहां ईर्ष्या और द्वेष पनपने लगता है। इसका सीधा उपाय यह है—सास अपनी बहू को पराई न समझे, अपने पुत्र के पीछे वह आई है, उसे अपनी पुत्री के समान समझे। बहू सास को, क्योंकि वह पति की माता है, अपनी माता के समान समझे। ननद भौजाई को तथा भौजाई ननद को आपस में बहिन के समान समझे, यदि ऐसा हुआ तो मन-मुटाव और झगड़े की जगह प्रेम और मेलजोल का वातावरण पैदा होगा।

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

विचार-दोहन

● बड़ा अच्छा किया !

जीवन के प्रत्येक क्षण में ऐसे अनेक अवसर हमारे सम्मुख आते हैं जबकि हमारे धैर्य का बांध टूट जाता है। किन्तु ऐसे मौकों पर भी अपने मन का सन्तुलन कैसे बनाये रखें इसका सजीव उत्तर 'गीता संदेश' में प्रकाशित इस लघु कथा से प्राप्त करिये—

"सन्त तुकारामजी अपने खेत से गन्ने ला रहे थे। रास्ते में लोगों ने गन्ने मांगे, उन्होंने दे दिये। एक गन्ना बच रहा, उसे लेकर वे घर पहुँचे।

घर में बड़ी गरीबी थी और भोजन का अभाव था। फिर, उनकी पत्नी जीजीबाई थी भी बड़े करारे स्वभाव की, उसने झुंझलाकर गन्ना उनके हाथ से छीनकर उसे जोर से उनकी पीठ पर दे मारा। गन्ने के दो टुकड़े हो गये।

तुकारामजी ने हंसकर कहा—"हम दोनों के खाने के लिये मुझे दो टुकड़े करने ही पड़ते। तुमने सहज ही कर दिये, बड़ा अच्छा किया।"

● सुन्दर कौन ?

वासना में डूबा हुआ आज का तथाकथित प्रगतिशील मनुष्य सौन्दर्य की कहाँ खोज कर रहा है, यह देखकर उसकी बुद्धि पर तरस आता है। 'आरोग्य' में प्रकाशित इस व्याख्या को पढ़कर क्या हमारी आँखें खुल सकेंगी ?

"सुन्दर चहरे वे कहे जाते हैं, जिनका रंग काला हो या गोरा मुखड़े पर आत्मा की पवित्रता और दिल में छिपी ईमानदारी की चमक स्पष्ट हो। एक नजर देखने से ही जिसमें ये गुण परिलक्षित हों।

सुन्दर नयन कजरारे, मादक और कटीले नहीं माने जायेंगे। जिनकी आँखें पर-दुख कातरता से डबडबायी रहती हों, आत्मा का स्निग्ध प्रकाश आँखों में झाँकता रहे और स्वच्छ विचार से पुतलियाँ चमकती रहें।

ओंठ पतले, लाली लिये हुए ही सुन्दर नहीं कहे जायेंगे जब तक कि चिड़ियों जैसा मृदुगान, निर्झर जैसा निर्मल स्वर और हृदय की विद्वता और अनुभूति प्रकट करते हुए वाक्यों का साधन नहीं हो।

हाथों की सुन्दरता, पतली उँगली और मुलायमियत से ही सुन्दर नहीं कही जायेगी जबतक कि उनके द्वारा दूसरों की भलाई के कार्य, असत्य में हिचकिचाहट नहीं हो। सारे दिन जिनके द्वारा सुन्दर कार्य हों, वे ही सुन्दर हाथ हैं।

पैर उनके सुन्दर हैं जिनकी चाल धीर, गम्भीर और अच्छे रास्ते पर चलनेवाले हों। अगर ईश्वरेच्छा विपरीत हो तो संकट समय में भी जो स्थिर रहते हों, वे पैर ही सुन्दर कहे जायेंगे।

जीवन उनका सुन्दर कहा जायेगा जो दूसरों की भलाई में बीते, जिनके कार्य आदर्श और जिनकी जिन्दगी रहनुमाई कर सके। जिनके हृदय में दूसरों के लिये सुख की भावना गहरी हो और ऊपर से पथरीला चट्टान-सा दिखनेवाला जीवन, सत्य के लिये वरदान साबित हो।"

● धर्म के ठेकेदारों से !

समयोपयोगी सुधार का नाम सुनकर धर्म के ठेकेदार किस प्रकार चौंकते हैं और शास्त्रों की दुहाई देकर कैसे युग की मांग की अवहेलना करते हैं यह आज सर्वविदित है! 'सागर' में प्रकाशित श्री एन० डी० प्रकाश की ये पंक्तियाँ ऐसे लोगों के लिये एक चुनौती हैं—

"आधुनिक युग में अगर किसी युवती पर उसकी कमजोरी से, परिस्थिति एवं विवशताओं से तथा अभिभावकों की गल्ती से कोई बलात्कार कर बैठता है, या कुछ ऐसे साम्प्रदायिक ढंगों से वह अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा की रक्षा करने में असमर्थ पाती है अथवा वह अबला गुण्डों की पशु-प्रवृत्ति की शिकार हो जाती है तो वह अगर समाज अथवा धर्म के द्वार पर आ जाय तो द्वार बन्द ही मिलेगा उसको दुत्कार दिया जायगा, सामाजिक एवं धार्मिक अत्याचार का दंड उसे भोगना ही पड़ेगा। और स्वयं माता-पिता भी समाज के भयंकर राक्षस से डरकर उसको निःसहाय के सहारे छोड़ देते हैं, और यही अबलायें जाकर कोठों पर बैठ, समाज के ठेकेदारों की पशुवृत्ति को शान्त करने का साधन बनती हैं तथा उन्हीं का मान-मर्दन करती हैं। समाज इनको जगह नहीं दे सकता क्योंकि वे पतित हैं, इनको समाज में रखने से धर्म की हानि होती है और धर्म नष्ट हो जाता है। नारी परिस्थितिवश एक बार भी पतित होनेपर फिर समाज में रखने लायक नहीं होती। कहते हैं काठ की हांडी और औरत बार-बार नहीं चढ़ती। मगर जो रात के अन्धेरे में इनके कोठों पर सौ बार ही नहीं, जिन्दगीभर नाक रगड़ते रहते हैं तब समाज या धर्म के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती, लेकिन ज्योंही कोई प्रगतिशील शक्ति इसके विरुद्ध में क्रान्तिकारी कदम उठाती है, धर्म के ठेकेदार—समाज के पंच दुहाई लगाने लगते हैं कि यह नारा बेबुनियादी हैं क्योंकि नारी को पतित करनेवालों ने क्या कभी इस पर भी गौर किया है—

न स्त्री दुष्यन्ती जारेण ब्राह्मणों वेद कर्मण।
नापोसूग पूरीपाभ्यां नाग्निर्दहन्ती कर्मण ॥
[अग्नि-स्मृति]

अर्थात् स्त्रियाँ जार से, ब्राह्मण यज्ञिक हिंसा से दूषित नहीं होता जैसे आग अपवित्र वस्तु को जलाने के बाद भी पवित्र ही रहती है।

● तेरे गौरव की बात

जीवन में छोटी २ वस्तुओं व उनके समर्पण का चाहे महत्व न आंका जाता हो किन्तु सुश्री विद्या का 'नया जीवन' में प्रकाशित यह भावचित्र उसी दिशा में एक सजीव प्रेरणा प्रदान कर रहा है—

"सीपी के हृदय में एक मोती पला।

एक दिन गोताखोर ने सीपी का हृदय भेद, उस पर अधिकार कर लिया और अब मोती चला जौहरी बाजार की किसी सजी-संवारी दूकान में गर्व से अपना स्थान लेने।

असहाय सीपी दो दलों में समुद्र तटपर अपेक्षित पड़ी थी। मोती का गर्व उसे चुभा और उसके मुँह से निकल गया—ऐ स्वाति की क्षुद्र बून्द! तुझे देवताओं ने निष्कासित किया, आकाश ने गिराया कि तू समुद्र के महागर्भ में विलीन हो, पर मैंने तुझे अपने कलेजे में छुपा लिया और उसी का फल है कि आज तू सम्मानित रत्न है और मैं एक निकृष्ट वस्तु!

फिर भी मैं सुखी हूँ। निर्माता ने कब दुःख माना है? हाँ संसार भले ही मेरा महत्व न माने, मुझे पैरों तले रौंद डाले, समुद्र की लहरें मुझे बहा ले जाएँ या फिर इस बालुका-राशि में ही मेरी समाधि बन जाए, तू याद रखना—क्षुद्र सीपी के समर्पण में ही तेरे गौरव का निर्माण हुआ है।"

● उसे तो मुक्तानन्द चाहिये!

शरीर के मोह व पूजा ने हमें इतना अन्धा बना दिया है कि आज हम अपने आत्मा की कराहती आवाज को भी सुनने में असमर्थ हैं। 'गीता प्रवचन' में प्रकाशित विनोबा जी के ये विचार आत्मा की उसी हूक को प्रकट कर रहे हैं—

"हमारी आत्मा व्यापक होने के लिए छटपटाती रहती है। वह चाहती है कि सारे जगत को गले लगालें। परन्तु हम उसे कोठरी में बन्द कर देते हैं। आत्मा को हमने कैदी बना डाला है। उसकी याद तक हमें नहीं होती। सवेरे से लेकर शाम तक हम देह की ही सेवा में लगे रहते हैं। दिन-रात यही विचार कि मेरा यह शरीर कितना मोटा-ताजा हुआ या कितना दुबला हो गया। मानो संसार में कोई दूसरा आनन्द ही नहीं। भोग और स्वाद का आनन्द तो पशु भी लेते हैं। अब त्याग और स्वाद-भंग का आनन्द भी देखेगा या नहीं? स्वयं भूख से पीड़ित होते हुए भी भरी थाली दूसरे भूखे मनुष्य को देने में क्या आनन्द है—इसका अनुभव कर! इसके स्वाद को चख!! माँ जब बच्चे के लिये कष्ट उठाती है तब उसे इस स्वाद का थोड़ा सा मजा मिलता है। मनुष्य 'अपना' कहकर जो संकुचित दायरा बनाता रहता है उसमें भी उसका उद्देश्य अनजाने यह रहता है कि वह आत्म-विकास का स्वाद चखे, क्योंकि उससे देहबद्ध आत्मा थोड़ा, और कुछ देर के लिये उससे बाहर निकलता है। परन्तु यह बाहर आना किस प्रकार का है? जिस प्रकार कि जेल की कोठरी के कैदी का जेल के अहाते में आना हो। परन्तु आत्मा का काम इतने से नहीं चलता। आत्मा को मुक्तानन्द चाहिये।"

आश्चर्य मुझे!

[श्री 'सृजन']

तृण तृण में, कण कण में मैंने जिसको खोजा,
आश्चर्य मुझे मैं ही हूं वह चेतन जीवन।
यह सिन्धु गगन, यह अवनि पवन, मेरी रचना,
मेरा स्वरूप सच्चिदानन्द मेरा अन्तर!
मैं ही अलि हूं मैं ही कलि हूं मैं ही पराग,
मैं ही माध्यम में रहनेवाला हूं अन्तर।
जिसके निर्माता को खोजा, आश्चर्य मुझे,
मेरे ही स्वर पर रचा गया है वह तन मन ॥१॥
कण कण को आलोकित करता मेरा प्रकाश,
मेरी छाया में दीप्ति नहीं पर अन्धकार!
इसलिये रात दिन में सन्ध्या हो जाती है,
क्यों? क्योंकि स्वप्न जागरण नहीं है एक तार
मैं आदि अन्त के चक्कर में घूमा अब तक,
आश्चर्य मुझे मैं आदि अन्त औ प्रलय 'सृजन' ॥२॥

वह सुबह

उसी का राशन तुल रहा था। कोई कुछ नहीं बोला। पहलवान का भय भी भले ही कुछ रहा हो पर मैं मानव की एक आदिम प्रवृत्ति की विजय देख रहा था। यह दया नहीं थी'......और न वासना ही थी........यह हर पसलियों के पिंजरे में रखे मांस पिण्ड की चिकनाई थी जिस पर सारे विरोध फिसल गये थे..........

[श्री विश्वदेव शर्मा एम० ए०, साहित्यरत्न, जे० डी०]

बात उन दिनों की है जो अब नहीं रहे मगर है कुछ ऐसी कि भुलाये नहीं भुलती। राशन के दिन थे। बेगार यद्यपि कानूनन बन्द हो चुकी है परंतु राशन लाने की बेगार मुझ पर ऐसी थुप गयी थी कि छुटकारा न था। एक दिन का राशन लेने जाने में कई दिन का राशन पच जाता। कई दिन से टाल रहा था पर उस दिन बच न सका, इतवार जो था।

आवश्यक रूप से नष्ट होनेवाले समय का कुछ उपयोग करने के लिये दो आने की मूंगफली जेब में भरकर जब मैं राशन की दूकान पर पहुंचा तो नौ बज चुके थे। भीड़ देखिये तो बस तौबा। एजेंसी के मुंशी के चारों तरफ लोग ऐसे गुंथे थे जैसे गुड़ के ऊपर मकौड़े। मुंशी नामका जीव कहीं नजर ही न आता था।

अपनी पर्ची को मेज़ पर लगे पर्चियों के ढेर के नीचे लगाने के लिये ही काफी मेहनत की दरकार थी। इधर उधर से उचककर कोशिश की पर समुद्र कहीं कूदने फांदने से पार हुआ है? आखिर गोता लगाना तय ठहरा। मैंने एक बाबू और एक गोल मटोल लालाजी के बीच में सिर घुसेड़कर जो जोर लगाया तो सिर खट्ट मुंशीजी की मेज़ से टकराया। खैर, पर्ची ढेर के नीचे लगादी। पर अपना बुरा हाल था। अधिक भीड़ में तो यों ही दम घुटने लगता है फिर मैं तो वामन अवतार का कलियुगी संस्करण ठहरा, दूसरा गोता लगाकर बाहर भागा।

पास की दूकान के पत्थर पर बैठा हुआ मैं अपने होश संभाल रहा था और अपनी मूंगफलियों को सद्‌गति देता हुआ उन लम्बे लम्बे महापुरुषों की दीर्घता से ईर्ष्या कर रहा था जो अपने अगल-बगल वर्ती लोगों पर हाथ धरकर मुन्शी के दर्शन करने में सफल हो जाते थे।

वहां पर गया भीड़ में सभी जातियों, तबकों, धर्मों, अवस्थायों के प्रतिनिधि मौजूद थे। मुहल्ले के उद्यान में उत्पन्न फुलों का गुलदस्ता ही समझिये।

"लल्लू! बेटा!...जरा हमें पहले राशन ले लेने दो ...देखो तो हमें काम पर जाना है...दिन भर की मजदूरी मारी जायगी...।" यह एक वृद्धा का स्वर है, जो राशन पहले लेने को खुशामद कर रही है। वे वृद्ध महाशय शायद कुछ पिछले हैं तभी तो जरा चश्मा ठीक करके...खखार कर...जरा शरमाते हुए से कह रहे हैं "साहबान! ज़रा ले लेने दीजिये न! गरीब है बेचारी।"

"अजी वाह! इसी को न्यारे दफ्तर उलटने हैं। हमें भी तो दफ्तर जाना..." क्लर्कनुमा बाबूसाहब ने बीड़ी का टोटा फेंककर अपने दफ्तर का हवाला देने की कोशिश करते करते शायद इतवार की याद आने से संभल कर कहा "जी नहीं बाजार जाने को देर हो रही है, हफ्ते में एक दिन तो छुट्टी का मिलता है...वह भी...।"

वृद्ध महोदय उस कछुए की तरह जो बाहर गर्दन निकालकर फिर भीतर सिकुड़ जाता है, हें हें करके अपनी जगह सिकुड़ गये।

चप्पलों की चटपटाहट सुनकर मैंने जो गर्दन घुमायी तो एक देवीजी को खड़े पाया रेशमी सूट पर पड़ी काश्मीरे की चद्दर में से अध धुले पाउडर और लिपस्टिक से पुते चेहरे ने आपको शरणार्थी करार दे रखा था।

"ऐ! भाईजी! हमने भी राशन ले लेंणे दो न।"

अबकी फिसलने की बारी बाबू नुमा कर्ल्क की थी। आपने कोट के कालर जो ठंड के कारण ऊपर उठा रखे थे जरा ठीक करते हुए शर्मीली सी दृष्टि देवीजी पर ऊपर से नीचे तक डालकर कुछ अन्दाज से फर्माया "जरा देखिये...लेडीज फर्स्ट...इन्हें राशन ले लेने दीजिये।

पर अबकी बार वृद्ध महोदय की पैंतरा बदलने की बारी थी। "ऐ जी! हमें दूकान को देर हो रही है। बच्चा अकेला बैठा होगा। सबको नम्बर से मिलेगा।" शायद बाबू साहब कुछ और हेकड़ी भरते कि एक पहलवान नुमा मुंहफट बोल पड़ा "कोई शलवार वाली ई लेडी होवै। वो बुढ़िया तो भी लेडी ई है।"

बाबू साहब पर जैसे घड़ों पानी पड़ गया सहसा कूदती हुई एक बालिका सामने के

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

(पृष्ठ १२ का शेषांश)

चतुर्थ दृश्य

[मृणालिनी खाटपर बैठी बड़बड़ा रही है ।]

मृणालिनी : जालिमों ने कोमल कली को मसल दिया। मेरे पुत्र को अच्छा कर दो भगवान्, चाहे मुझे उठा लो। मैं तेरी करुणा के द्वार पर पड़ी हूँ। तू दयावान् है। मुझ पर दया कर। तेरी शरण में आई हूँ। अभय का दान दे दे।

[पंजू आता है।]

पंजू : मृणालिनी! मृणालिनी!!

मृणालिनी : [ध्यान तोड़ते हुए] क्या है?

पंजू : बड़े सरकार ने अभी बुलाया है।

मृणालिनी : क्या और कुछ सजा देनी बाकी रह गई है? मेरे बेटे की जान लेने में तो कोई कसर न छोड़ी। गरीब हूँ, असहाय हूं, कुछ कह नहीं सकती। पर ईश्वर उन्हें माफ न करेगा।

[पंजू जाता है। परदा गिरता है।]

पंचम दृश्य

[रंजन बाबू उदास बैठे हैं। पंजू आता है।]

पंजू : हजूर, वह तो अपने बेटे के पीछे पागल हो उठी है।

रंजन : [क्रोध में उठकर] उस अभिमानिनी को, जैसी भी हालत में है, यहां उपस्थित किया जाय।

[पंजू और कुछ नौकर जाते हैं और दुःखित मृणालिनी को खींचे लिए आते हैं।]

रंजन : क्यों री, तुझे छोटे साहब की अपेक्षा अपने बेटे की जान अधिक प्यारी है। तुझे पता नहीं कि वह आज अचानक घोड़ेपर से गिर पड़े। उनकी टांग में सख्त चोट आई है। लोगों का ख्याल है कि किसी भूत-प्रेत का असर है। हमने सुना है कि तू झाड़-फूंक कर उस असर को दूर कर देती है। तुझे ये काम करना ही होगा।

[छोटे सरकार लंगड़ाते आते हैं। उनकी टांग सूज गई है। मृणालिनी देखती है।]

मृणालिनी : कुछ नहीं सरकार! भूत-प्रेत कुछ नहीं। नस के इधर-उधर हो जाने से सूजन आ गई है। गर्म तेल की मालिस करा दीजिए। सब ठीक हो जायगा।

[मृणालिनी को छोड़कर सब जाते हैं।]

मृणालिनी : सोने-चाँदी के ढेर में इन लोगों के हृदय पत्थर हो गये। दूसरों के दुःख दर्द को ये क्या जाने! इनका अपनापन बड़ा प्रबल है। जरा-सी बात के लिए इतनी हाय तोबा! मेरे नीलू को मारकर इनके हृदय में जरा भी दया न आई और छोटे साहब की टांग में जरा-सा वरम आ जाने पर इतने बेचैन हो उठे।...भगवान्, मेरे बेटे की रक्षा करना।

[एक ओर जाना चाहती है। मृदुला नीलू को गोद में लिए आती है। उसके हाथ नीचे लटके और खुले हैं। मृणालिनी प्रसन्न होकर नीलू की ओर दौड़ती है।]

मृणालिनी : ठीक हो गया मेरा लाल? क्या सो गया है?

मृदुला : [दुःखित स्वर में] हां बहिन! इस अन्यायी संसार के समस्त दुःखों को अपने नयनों में लेकर सदैव के लिए सो गया। मेरे डाक्टर के यहाँ पहुँचने से पहिले ही इसकी मौत वहाँ पहुँच गई थी।

[मृणालिनी मूक स्तब्ध खड़ी रह जाती है। अचानक नेपथ्य से करुण-गान फूट पड़ता है।]

गीत :—मुट्ठी बांध के आया था तू,
हाथ पसारे जाये
माया, ममता छोड़ी जग की,
प्रीत चला ठुकराये॥
माता रोई, भीगा आंचल,
छुटा लाल से नाता।
सूनी गोद किसी की सिसकी,
निश्चल रहा विधाता॥
डूब गया सिन्दूरी सूरज
नीर नयन से आये...
प्रीत चला......
काली नागिन-सी रजनी ने,
लूटा सुखद सवेरा
अंधकार की छाया हंसती,
लेकर शाप घनेरा॥
सिर धुनती दीपक की लौ भी,
पल पल बुझती जाये......

मृणालिनी : [अचानक फूटकर] आखिर ले ही लिया मेरे लाल का जीवन! [नीलू को गोद में लेकर] पर मैं इसे कभी नहीं दूंगी। [बालक की ओर देखती हुई] मेरा जीवन वापस कर दो।

[पगली-सी एक ओर दौड़ पड़ती है। रंजन बाबू आ जाते हैं।]

रंजन : मृणालिनी! क्या हुआ तुम्हें?

मृणालिनी : मुझ से मेरे प्राण छीन कर पूछते हो—क्या हुआ तुम्हें? [लाश को रंजन बाबू के चरणों में रखकर] तुम्हीं तो नीलू को काम पर ले गये थे। उसकी मजदूरी दी है—मौत! मेरा बच्चा मुझे वापस कर दो। इसका जीवन तुमने लिया है। मुझ अभागिन का सहारा तुमने ही छीना है।

[रंजन बाबू क्षण भर मौन रहते हैं। बरबस उनके नेत्रों से आँसू निकल पड़ते हैं। लाश को अपने हाथों में ले लेते हैं और मृणालिनी के चरणों में बैठ जाते हैं।]

रंजन : [रोते हुए] मैं तुम्हें समझा नहीं था मृणालिनी! मैं सचमुच हत्यारा हूं, मुझे क्षमा कर दो।

[परदा गिरता है।]

[१५ मई, १९५९

समाजवाद का मधुर स्वप्न साकार करने के लिये किसकी अपेक्षा है—

कानून या भावना

[श्री चिरंजीलाल पाराशर]

[विचार स्वातंत्र्य की दृष्टि से प्रस्तुत लेख पाठकों के विचारार्थ प्रकाशित किया जा रहा है। यह आवश्यक नहीं कि सम्पादक व लेखक का मतैक्य हो।]

सोवियत यूनियन का समाजवाद कैसा है—यह मैं जानता हूं। यूगोस्लाविया का समाजवाद कैसा है यह भी मैं जानता हूँ और चीन के नये समाजवाद को भी जानता हूँ। परन्तु भारत का समाजवाद कैसा होगा, इसके अभी नारे ही सुने हैं अथवा गोल-मटोल भाषा में नेताओं के भाषण सुने हैं, इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानता। मैं अपने लेख में यह बताने चला हूँ कि समाजवादी सिद्धान्त कोई नया सिद्धान्त नहीं है—बहुत पुराना है। लेकिन यह कभी सफल नहीं हो पाया।

४ हजार वर्ष पूर्व का समाजवाद

इतिहास इस बात का साक्षी है कि समाज सुधार के लिए ईमानदार शासक-शक्तियों ने कई बार नये-नये ढंग के समाजवादी दृष्टिकोण अपनाये परन्तु उनमें से सफलता किसी को इसलिए ही नहीं मिली कि वह जनताके सामने केवलमात्र शासन के कानून के रूपमें आये और यही रवैया अब भी जारी है। यदि समाज के अन्दर कानून के सहारे की बजाय ईमानदारी के बीज बोये जाते तो कदाचित् उन्हें सफलता मिलने में सन्देह न रहता।

जिस समय यूनान एथेन्स और स्पार्टा नामक दो राज्यों के रूप में विभाजित था, उन दिनों स्पार्टा में व्यभिचार, भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई थी। परिणाम यह होता था कि उन पर कभी ईरानी आक्रमण होता था और कभी मिस्री सेना का आक्रमण होता था। लूट-खसोट होती थी, स्त्रियोंका अपहरण होता था, जनता गुलाम बनाई जाती थी।

इन्हीं सब बुराइयों को रोकने के लिए स्पार्टा के तत्कालीन प्रधान मन्त्री लाइकर्गस ने समाजवादी शासन-पद्धतिका अवलम्बन लिया।

लोहे का सिक्का चला

लाइकर्गस का ध्यान सबसे पहले लोगोंकी धन की भूख को कम करने की ओर गया इसलिए उसने एक राजाज्ञा द्वारा सोने-चांदी का सारा सिक्का वापस ले लिया और बदले में जनता को लोहे के सिक्के पकड़ा दिये। इस कार्रवाई से लोगों के धन-संग्रह की भूख तो शान्त हो गयी परन्तु स्पार्टा का व्यापार समाप्त हो गया और पड़ोसी राज्यों से उसके व्यापारिक सम्बन्ध लगभग समाप्त होने लगे।

स्त्रियों का राष्ट्रीयकरण

अशक्त समाज को शक्तिशाली बनाने का इलाज लाइकर्गस ने यह निकाला कि स्त्रियों का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय।

स्त्रियों का राष्ट्रीयकरण इस तरह से किया गया कि विवाह करना सब पुरुषों के लिए अनिवार्य कर दिया गया और जबतक कोई व्यक्ति विवाह योग्य, होते हुए विवाह नहीं करता था उसके लिए यह आवश्यक था कि वह बाजार में जाकर सबसे पहले अपनी निन्दा का गीत गाये। अतः लोगों ने शादियां करनी आरम्भ कर दीं। परन्तु कोई भी विवाहित व्यक्ति अपने घर नहीं जा सकता था। प्रत्येक नगर में ऐसी सरकारी आरामगाहें होती थीं जहां पुरुषों को रात-दिन अपने कामकी समाप्ति के बाद रहना पड़ता था। राष्ट्र की ओर से ही भोजनशालायें थीं। स्त्रियां घरों पर ही रहती थीं। पुरुष केवल एकाध दिन की छुट्टी लेकर ही घर जा सकता था।

इस बात का परिणाम यह हुआ कि कड़े पहरे के होते भी लोग मौका देखकर रात को घर पहुंच जाते और फिर आ सोते।

इसके अतिरिक्त लोग एक दूसरे के घर भी पहुँचने लगे क्योंकि यह तो वह जानते ही थे कि दूसरा आदमी विश्रामगाह में मौजूद है। इसका परिणाम भी उल्टा हुआ। उद्देश्य था समाज के लोगों का चरित्र-सुधार लेकिन इस रोक-थाम से वह और उल्टा बिगड़ा।

यही हाल राष्ट्र की भोजनशालाओं का रहा। लोग काम कम करते, खाते अधिक थे। उनकी धन की भूख की समाप्ति के साथ-साथ ही उनके कार्य करने की रुचि भी समाप्त हो गई तथा सरकारी अधिकारी वहां भी मौज में रहे। व्यभिचार के लिए उन्हें सुन्दर क्षेत्र मिल गया। रोक-टोक का प्रश्न ही नहीं रहा। अन्त में स्पार्टा का वह समाजवाद दम तोड़ गया।

मेसोपोटामिया की असफलता

मिस्री आक्रमणों से जर्जरित होकर मेसोपोटामियां में भी समाजवादी पद्धति अपनाई गई। भूमि-वितरण हुआ, जमींदारी प्रथा की समाप्ति भी हुई और प्रत्येक तरह से वर्गभेद मिटाकर हर प्रकार की समानता लाने का प्रयास किया गया। कुछ दिन तक यह परिपाटी

चली परन्तु अन्त में उनका भी वही हाल हुआ जो स्पार्टावालों का हुआ था।

इस तरह की शासन पद्धतियों का वर्णन प्राचीन राज्य 'उर' और सूसा के इतिहासों में भी मिलता है और मिस्र के इतिहास में भी, परन्तु वह अपनी प्रगति से प्रथम उनकी समाप्ति हो गई।

कारण क्या है ?

यह ठीक है कि समाज के अन्दर घुसी हुई बुराइयों को दूर करने के लिए ही कोई नई परिपाटी अपनाई जाती है; परन्तु चूंकि उसे सरकारी ढंगसे अपनाया जाता है, इसलिये सफलता नहीं मिलती। उदाहरण के लिए भारत में समाजवाद होता है। पूंजीवादी प्रथा समाप्त हो जाती है तब इस बात की क्या गारण्टी है कि सरकारी कर्मचारियों के अन्दर से भी रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार निकल जायेगा बल्कि उन्हें तो भ्रष्टाचार रोकने की आड़ में और भी खुलकर खेलने का अवसर मिलेगा जैसा कि राशन-पद्धति के समय हुआ।

उस समय चोरबाजारी और भ्रष्टाचारी बढ़ाने का सारा दोष सरकारी अधिकारियों का था।

स्वस्थ समाज की आवश्यकता

हम जबतक समाज को स्वस्थ नहीं कर लेते तबतक आई भी 'वाद' यहां निर्विवाद नहीं चल सकता और जब समाज स्वस्थ हो जाता है तो सारे के सारे वाद स्वयं ही समाप्त हो जाते हैं।

आजकल समाज-सुधारके लिए दो आन्दोलन चल रहे हैं। एक है आचार्य विनोबा का भू-दान आन्दोलन और दूसरा है अणुव्रत आन्दोलन।

भू-दान-आन्दोलन से सरकारी सहायता भी पर्याप्त होती है और यदि यह सफल हो गया तो स्वयं इसकी शीतल क्रांति हो जाती है। भूमि-समस्या का हल हो जाता है। इसी तरह अणुव्रत-आन्दोलन है। यदि भारत का व्यवसायी और भारत के सरकारी कर्मचारी तथा देश के नेता ही अपना लेते हैं तो भारत को न तो किसी वाद की आवश्यकता है और न किसी क्रांति की।

अणुव्रती होने का अर्थ यह तो नहीं है कि आप माला या मृगछाला लेकर जंगलको निकल जायँ। बात केवल इतनी ही है कि दुर्व्यसनोंसे दूर रहकर ईमानदारी का पालन किया जाय।

एक आदमी की ईमानदारी से सैकड़ों बेईमानों का सुधार होता है। व्यक्ति ईमानदार है, वह अपने कार्य के लिए न तो किसीकी चापलूसी करेगा, न ही रिश्वतखोरी को बढ़ायेगा और नहीं मादक द्रव्यों की बिक्री को प्रोत्साहन मिलेगा और न दुराचार के अड्डों को—जो वास्तव में सब बुराइयों की जड़ है—प्रश्रय मिलेगा। इस तरह एक आदमी के अणुव्रती होने से सैकड़ों लोगों पर प्रभाव पड़ता है।

इसके विपरीत यदि समाज को सुधारनेके के लिए केवल कानूनों का ही आश्रय लिया गया तो भारत में कोई वाद इसलिए नहीं चल सकता कि पतन की सीमा पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी है। यदि समाज सुधर जाता तो किसी भी वाद की आवश्यकता नहीं।

मैं न कभी हूं रुकनेवाला

[मुनिश्री हर्षचन्द्रजी]

अभिशापों की अभितप्ति से सवम्ल लेकर बढ़नेवाला
मैं न कभी हूं रुकनेवाला

धक - धक करते अङ्गारों में सुप्त दशा न हुआ करती है,
जीवन को पाने हित उनमें नूतन शोध चला करती है
सूखे पीले पत्तों का उन अङ्गारों पर ढक्कन होना
दुगुना तेज बढ़ाने का वह कहलाता है साधन कोना
अङ्गारों को चुननेवाला
मैं न कभी हूं रुकनेवाला॥

बढ़नेवाली सरिताओं को मरु-कण शोषा ही करते हैं
प्रस्तर अपनी भीमकाय से पथ अवरोधा ही करते हैं
शूलों से छाती बिंध जाती पर प्रवाह न टूटा करता
प्रत्युत उसमें बहनेवाला प्रस्तर भी शंकर पद वरता
फूल शूल को करनेवाला।
मैं न कभी हूं रुकनेवाला॥

बढ़नेवाला पथिक कभी न पीछे मुड़कर देखा करता
चढ़नेवाला सो यानों से गिरने की न सोचा करता
उड़नेवाला विहग कभी क्या ऊँचे वृक्षों से डरता है?
तरनेवाला मत्स्य कभी क्या गहराई मन से हरता है?
आदर्शों पर चलनेवाला।
मैं न कभी हूं रुकनेवाला॥

खिलती कलियाँ....

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत क्रमशः नवोदित बन्धुओं की सुन्दर रचनाएं प्रकाशित हुआ करेगी। रचना भेजते समय 'स्तम्भ' का उल्लेख करना आवश्यक है। —सम्पा०]

अणुव्रत-आन्दोलन और विद्यार्थी समाज

[श्री विजयकुमार 'मधुप']

विद्यार्थी भावी भारत के निर्माता हैं। देश वाटिका की कलियां हैं। देश के कर्णधार होने के नाते उनपर अनेक नैतिक जिम्मेदारियां हैं। हरएक दावे के साथ कह सकता है कि जिस देश के विद्यार्थियों का जैसा चरित्र होगा वैसा ही उनका देश भविष्य में बन सकेगा। अतः अभिभावकों का प्रथम और आवश्यक कर्तव्य हो जाता है कि वे विद्यार्थियों की शिक्षा-दीक्षा पर समुचित ध्यान दें। विद्यार्थी जीवन आत्म-विकास और जीवन को उचित सांचे में ढालने का समय है। इस समय में जैसे विचार और वातावरण में विद्यार्थी पलेंगे वैसे ही संस्कार उनके हृदय-पटल पर आजीवन अंकित रहेंगे। विद्यार्थी-जीवन वृक्ष की जड़ के समान है—अगर वृक्ष की जड़ें मजबूत होंगी तो शाखा-प्रशाखाएँ भी मजबूत रहेंगी तथा आनेवाली शाखाएँ भी अच्छी होंगी। इसी प्रकार अगर विद्यार्थी अपने इस जीवन में सफल रहे तो उनका आगामी जीवन सफल हो सकेगा व राष्ट्र उन्नति की ओर अग्रसर होगा।

आज के इन भावी 'कर्णधारों' की ओर दृष्टिपात करने पर हमें मालूम होगा कि ये किस प्रकार विनाश के गर्त में जा रहे हैं। आज के विद्यार्थी भौतिकता की चकाचौंध में पड़कर अपने जीवन को बरबाद कर रहे हैं—अनैतिकता को पनपा रहे हैं—अपने पैरों पर खुद कुल्हाड़ी मार रहे हैं। नैतिकता को खोकर दिनोंदिन चारित्रिक ह्रास करते जा रहे हैं। आज के विद्यार्थियों का मुख्य कार्य तोड़-फोड़ व हिंसात्मक कार्य ही रह गया है। माता-पिता और गुरुजनों के प्रति अविनयी व्यवहार से भी वे नहीं चूकते। सक्रिय राजनीतिमें भाग लेना तो मानो आज के विद्यार्थी जगत का परम कर्तव्य हो गया है। पटना गोलीकांड विद्यार्थियों की अनुशासन हीनता, तोड़-फोड़ और हिंसात्मक व्यवहार का नग्न चित्र प्रस्तुत कर चुका है। थोड़ी सी प्रतिकूल स्थिति होने पर हिंसात्मक कार्य और तोड़-फोड़ करना तो साधारण कार्य हो गया है। परीक्षा में अनुचित रूप

ये चरण नहीं रुकनेवाले!

[श्री "प्रकाश" परमार]

पद कोमल हैं यह बात सही, पर शूलों पर चलनेवाले
ये चरण नहीं रुकनेवाले।
गगन गर्त के वक्षस्थल पर काले बादल मंडराते हों।
और विहड़ वन में गजदल कर्कश चिंघाड़ सुनाते हों॥
ले आंख मिचौनी खेल कभी बादल फिर-फिर छुप जाते हों।
और कहीं घन गर्जन कर बढ़ने से हमें डराते हों॥
चमक रही चपला चाहे बादल चाहे टकराते हों।
हो पथ बाधक वर्षात कहीं ऊपर से ओले आते हों॥
पर हिम्मत हार नहीं सकते हम हैं सैनानी मतवाले।
ये चरण नहीं रुकनेवाले॥

चल रही आंधियां हों ऐसी तूफानों को भी मात करें।
हर पद-पद पर तूफान खड़ा जीवन का प्रत्याघात करे॥
वन शैल खंड बाधक मेरे साहस का यों अपमान करें।
पद-पद पर चाहे कंटक हों, लहरें चाहे आह्वान करें॥
विपरीत पवन ले चलता हो लहरें झकझोरें देती हों।
सूर्य गगन से हँस-हँस कर पीछे मुड़ने को कहता हो॥
पर कभी नहीं पीछे मुड़ते जो हैं सैनानी दिलवाले।
ये चरण नहीं रुकनेवाले॥

चलने का नाम लिया हमने तूफानों से हम क्यों डरते।
मरने का काम हमारा है ले जान हथेली पर चलते॥
है डरने का क्या काम रहा, हम हैं सैनानी दिलवाले।
ये चरण नहीं रुकनेवाले।

से उत्तीर्ण करना भी तो आज के विद्यार्थीयों की एक विशेषता है। उत्तरप्रदेश बोर्ड की हाल की ही की परीक्षाओं में 'नकल' की वृत्ति कितनी दुःसाहसपूर्ण थी! छात्र छुरे रखकर शक्ति केवल पर नकल करने की कोशिश कर रहे थे। अश्लील चल-चित्रों का देखना भी तो प्रमुख कार्य है। भोग-विलास के साधनों का प्रयोग करते हुए विद्यार्थीगण अनैतिकता के गर्त में जा रहे हैं। कितना हीन चरित्र देख रहे हैं हम आज के विद्यार्थियों का! क्या ऐसी हरकतों को देखकर हम आशा कर सकते हैं कि ये कर्णधार देश के प्राचीन गौरव को पुनः स्थापित कर सकेंगे?

अन्धकार में प्रकाश की झलक मानव के लिए कितनी सहायक होती है। 'अणुव्रत-आन्दोलन' नैतिक जागरण के अग्रदूत के रूपमें प्रकाश के प्रखर पुंज के रूप में भूली-भटकी दुनिया को अन्धकार में पथ-प्रदर्शन कर रहा है। अणुव्रत-आन्दोलन नैतिकता और चरित्र-विकास का आन्दोलन है। जीवन-शुद्धि के महान् प्रेरक आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित 'अणुव्रत', अणु, उदजन और हाइड्रोजन बमों से त्रस्त दुनिया को शान्ति देनेवाला महान् सुधांशु है। यह आन्दोलन व्यक्ति २ में नैतिकता, प्रामाणिकता और सत्यनिष्ठा के प्रसार का पूरा प्रयत्न कर रहा है।

व्यक्ति सुधार ही समष्टि सुधार है। व्यक्ति २ में नैतिकता, प्रामाणिकता और सत्य-निष्ठा के प्रसार से स्वतः समाज व राष्ट्रका नैतिक स्तर ऊँचा उठेगा। अणुव्रत-आन्दोलन व्यक्ति २ में प्रामाणिकता व नैतिकताका प्रसार चाहता है अतः आचार्य श्री ने समाज के विभिन्न वर्गों को ध्यान में रखकर नियमों का निर्माण किया है! आचार्य श्री ने कहा है :—

'गृहणि हो गृहपति हो चाहे,
विद्यार्थी, अध्यापक हो।
वैद्य, वकील शील हो सबमें,
नैतिक निष्ठा व्यापक हो।

विद्यार्थियों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आचार्य श्री ने निम्न नियम बनाए हैं :—

(१) तोड़-फोड़ व हिंसात्मक कार्यों में भाग न लेना।
(२) अनुचित तरीके से परीक्षा में उत्तीर्ण होने की कोशिश न करना।
(३) माता-पिता व शिक्षक आदि बड़ों के प्रति अविनयपूर्वक व्यवहार न करना।
(४) बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू व शराब आदि दुर्व्यसनों से बचना।
(५) अश्लील शब्दों का प्रयोग न करना और अश्लील चित्र न बनाना।
(६) आत्म-हत्या न करना।
(७) अविवाहित अवस्था तक ब्रह्मचर्य का पालन करना।
(८) रेस, आंक-फर्क, जुआ नहीं खेलना।

विद्यार्थी जगत के लिए इन नियमों की कितनी आवश्यकता है—यह आज के वातावरण को देखकर कहा जा सकता है।

आचार्यश्री के सानिध्य में बम्बई व पूना आदि नगरों में 'विद्यार्थी-उद्‌बोधक अणुव्रत सप्ताह' मनाया गया। बम्बई में ५००० हजार विद्यार्थियों ने अपने जीवनको नैतिकमय बनाने के लिए इन नियमों की प्रतिज्ञा ली। जयपुरमें भी यह सप्ताह मनाया गया और ८००० हजार विद्यार्थियों व ३५० अध्यापकों ने हार्दिक सहयोग दिया और परिणामतः १२०० विद्यार्थियों ने इन प्रतिज्ञाओं के पालने की प्रतिज्ञा ली।

सचमुच आज के भौतिक युगमें 'अणुव्रत आन्दोलन' द्वारा नैतिक क्रान्ति हो रही है। हजारों विद्यार्थियों ने इन नियमों को ग्रहणकरके राष्ट्र के विद्यार्थियों के समक्ष एक महान् आदर्श उपस्थित किया है। विद्यार्थियों को चाहिये कि वे अपने जीवन को नैतिकमय बनाने के लिये इन नियमों पर अमल करें। क्या ही सुन्दर होगा जबकि विद्यार्थी अपने जीवन को 'अणुव्रत आन्दोलन' के द्वारा नैतिकमय बनाकर राष्ट्र के वास्तविक 'निर्माता' बनेंगे और देश के प्राचीन गौरव को पुनः स्थापित करेंगे।

—**—

व्यापारी बन्धुओं से!

आज समाज के किसी भी वर्ग को देखें, उसमें अनैतिकता, अनाचार और स्वार्थ वृत्ति इस कदर घर करती जा है कि इनके अतिरिक्त न्याय और सदाचरण का पथ उन्हें सूझता तक नहीं। व्यापारी समाज तो इन असद् वृत्तियों में और अधिक ग्रसित है, यह आम धारणा है, सिवाय पैसे बटोरने के उसे कुछ सूझता तक नहीं, स्थिति यह बन गई है। भारत की एक समय सारे विश्व में छाप थी कि यहां के व्यापारी प्रामाणिक और ईमानदार होते हैं। पर आज स्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। सचमुच यह बड़े दुःख का विषय है। व्यापारी बन्धुओं का यह कर्तव्य है कि अपने जीवन में आमूलचूल परिवर्तन लाते हुए वे यह साबित करदें कि भारत के उज्ज्वल अतीत के प्रतिकूल जाने वाले वे नहीं हैं। भारतीय संस्कृति की यह विरासत में प्राप्त प्रामाणिकता और सत्यनुशीलन के सक्रिय अनुगामी वे हैं। इसके लिये उन्हें भौतिक स्वार्थों और अर्थ से मुंह मोड़ना होगा।

—आचर्य तुलसी
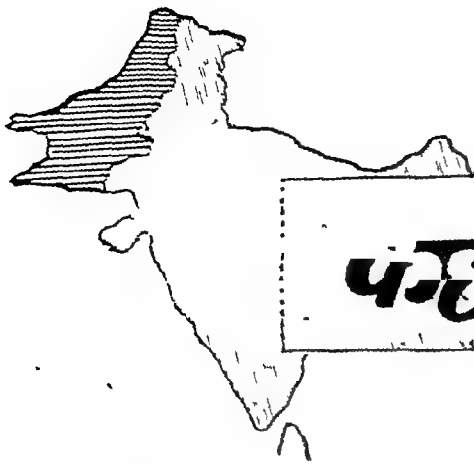
● महावीर जयन्ती का आयोजन—

सुजानगढ़ (डाक से) गत २३ अप्रैल को अणुव्रत-समिति की ओर से यहाँ भगवान महावीर का जन्म-दिवस मनाया गया। इस अवसर पर आचार्यश्री तुलसी ने भगवान महावीर की अध्यात्म साधना, अहिंसा व त्याग पर प्रकाश डालते हुए लोगों को जीवन-शुद्धि के मार्गपर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। उपरोक्त कार्यक्रम में सुजानगढ़ के सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी श्री गिरीशचन्द्र मिश्र व अणुव्रत समिति के प्रतिनिधि श्री छगनलाल शास्त्री ने भी अपने विचार प्रकट किये। श्री मालचन्द्र सेठिया व श्री जयचन्दलाल चोपड़ा की गीतिका ने कार्यक्रम को और भी सरस कर दिया।

● स्वागत समारोह—

राजलदेसर (डाक से) २७ अप्रैल को प्रातः धातरी से ७ मील का विहारकर आचार्यश्री यहां पधारे और महती कृपा करके शीघ्रातिशीघ्र वयोवृद्ध शान्तचेता मुनिश्री वच्छराजजी को दर्शन दिये। ४७ दिनों की तपस्या के उपरान्त शरीर में शक्ति न होने पर भी अन्तःशक्ति का संबल से मुनिश्री उठे और आचार्य प्रवर के चरणों में अपना मस्तक रख दिया।

श्री मेघराज नाहर की हवेली पर राजलदेसर के नागरिकों की ओर से आचार्यश्री के स्वागत के लिये एक समारोह का आयोजन किया गया जिसमें स्थानीय अनेक सम्भ्रान्त नागरिकों ने भाग लिया और आचार्यश्री से यहाँ अधिकाधिक विराजने की विनती की। सरदारशहर से पधारे हुए मुनिश्री सुखलालजी ने मंत्री मुनिश्री मगनलालजी की ओर से आचार्य प्रवर के चरणों में अपनी भक्ति कुसुमांजलि समर्पित की व मंत्री मुनि का लिखित पत्र प्रस्तुत किया।

दिनांक ४ मई को आचार्यश्री तुलसी ने राजलदेसर से बीदासर की ओर विहार किया।

संगठन के चौराहे से

श्रीवेद दौरेपर

'अणुव्रत' पाक्षिक के व्यवस्थापक श्री प्रतापसिंह वेद पत्र के प्रचार और संगठन के लिये १ मई को कूच-विहार, माथामांगा, किसनगंज, सिलीगुड़ी, कालीपोंग आदि स्थानों पर दौरे के लिये रवाना हुए हैं।

दक्षिण में प्रचार कार्य

अणुव्रत समिति के कार्यकर्त्ता श्री एम० बाफणा खानदेश व महाराष्ट्रमें प्रचार कार्य कर रहे हैं। आपके प्रयत्नों से 'अणुव्रत' के ग्राहक बढ़े हैं। साथ ही आप जनता में अणुव्रत-आन्दोलन की भावना भी प्रसारित करते हैं।

कलंबू में अणुव्रत समिति की स्थापना

कलंबू (दक्षिण) में श्री एम० बाफणा के प्रयत्न से श्री दत्तात्रय राव शंकर राव पाठक मुख्याध्यापक के सभापतित्व में एक सार्वजनिक सभा हुई। सभा में 'अणुव्रत-आन्दोलन' के महत्व पर भाषण व विचार विमर्श हुए। अंत में वहां अणुव्रत समिति की स्थापना की गई। समिति के निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गये।

अध्यक्ष :—श्री ओंकारराम नानापाटिल।
उपाध्यक्ष :—श्री वेडू तुलसीराम पाटिल।
मंत्री :—श्री दत्तात्रय राव, शंकर राव पाठक।
उपमंत्री :—श्री रामचन्द्र राव वेडू, सोनार।

आदिवासी अणुव्रत प्रचार केन्द्र

भीलों और आदिवासियों में अणुव्रत-आन्दोलन को संगठित करने के लिये उदयपुर के उत्साही युवक कार्यकर्त्ता श्री बहादुरसिंह सरपरिया ने "आदिवासी अणुव्रत प्रचार केन्द्र" की स्थापना की है और उनमें अणुव्रत नियमों के प्रसारार्थ भ्रमण पर भी निकल गये हैं। आपका उत्साह अनुकरणीय है।

अपने-अपने विचार—

भ्रष्टाचार कैसे मिटे ?

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत उपरोक्त विषय पर इसी तरह हमारे पाठकों, कार्यकर्ताओं और साथियों के विचार प्रकाशित होते रहेंगे। विचार संक्षिप्त और स्पष्ट लिखकर कार्यालय में भेजें, उनको क्रमानुसार प्रकाशित किया जायगा। प्रकाशित विचारों का उत्तरदायी स्वयं लेखक होगा। —सम्पादक]

एक दूसरे को समझें !

[श्री राकेशकुमार सुराना]

हमारे समाज रूपी वृक्ष को घुन लग चुका है, अतः आज हमें जरूरत इस बात की है कि हम उस वृक्ष को हटाकर एक नया पौधा लगाएँ जो हमें सत्य, शान्ति और विश्वास रूपी फल दे सके। आज चारों तरफ हमें अशान्ति, अविश्वास, और असत्यता का नग्न नृत्य देखने को मिलता है और उसका दोष हम दूसरों पर थोपकर स्वयं इससे अलग हो जाते हैं, परन्तु उन सारे दोषों के असली भागीदार तो हम हैं।

जिन्दगी की आज की समस्याएँ पुराने हलों से नहीं सुलझेंगी, पुराने और नए दो अलग मार्ग हैं जो कहीं नहीं मिलते। माला के दाने सूत से मिले हैं, पर वे आगे पीछे नहीं हो सकते है, हमें भी माला के दानों के स्वरूप बनना है, पर इस माने में नहीं कि हम आगे पीछे नहीं हो सकें, क्योंकि हमारा भी एक स्वतंत्र अस्तित्व है, हां हमें एक होकर कार्य अवश्य करना है। आज जीवन की मान्यताएँ बड़ी शीघ्रता से करवट ले रही हैं दोनों हाथों से अतीत को पकड़कर चिपटे रहने से काम नहीं चलने का। अतीत का ठीक-ठीक मूल्यांकन और नवयुग की उचित मान्यताओं का निर्धारण करते वक्त हमें हमेशा ये दो बातें याद रखनी पड़ेंगी कि पुरानी होने पर हर वस्तु शुभ ही नहीं होती है और न ही पुरानी होने पर वे सड़ी-गली कही जा सकती।

आज हमारा स्वभाव ही ऐसा होता जा रहा है कि हम ज्यादा से ज्यादा समय दूसरों की आलोचना एवं नुक्ताचीनी करने में लगाते हैं, परन्तु हम खुद क्या हैं ? इसका चिन्तन दो मिनट भी नहीं करते। आज हम दूसरों का उत्थान करने में लगे हुए हैं, पर अपना पहले नहीं करते। हां अगर बिना नींव के मकान बन सकता है तो उपरोक्त कार्य भी संभव हो सकता है और इसी वास्ते आज समाज दिनों-दिन पतित होता जा रहा है।

आज के युवक तो अपने बुजुर्गों (बूढ़ों) को अपनी उन्नति में बाधक समझते हैं और बूढ़े अशान्ति, फूट और अविश्वास आदि दोष युवकों के सिर पर मंढते हैं। अतः खुलकर झूठी आलोचना होती है। आज हमें इस समस्या को दोनों का सन्तुलन कायम करके सुलझाना होगा। आज युवक समझते हैं कि हम अगर इन बूढ़ों का खातमा करदें तो हमारा रास्ता साफ हो जाए, परन्तु यह उनकी गलत धारणा है, क्योंकि बूढ़े हमारे पथ-प्रदर्शक हैं। आज हमें जरूरत इस बात की है कि हम अपना एवं उनका हृदय परिवर्तन करें ताकि यह अविश्वास की खाई पट सके।

हमें एक दूसरे की आलोचना जरूर करनी चाहिए पर यह पहले परखकर कि वह, जिसकी हम आलोचना करने जारहे हैं वह सत्य भी है ? और इस सत्यता का पता लगाने एवं अविश्वास की जगह विश्वास की पैदा करना जरूरी है, विश्वास पैदा करना इस वास्ते भी जरूरी है कि हमें अविश्वास करके अपना और दूसरों का भविष्य कभी नहीं बिगाड़ना चाहिए। अतः इन दोनों को हम तभी सफलतापूर्वक हासिल कर सकते हैं, जबकि हम एक दूसरे के नजदीक आकर और हृदय को टटोल, तथा गहराई तक पहुँचकर समझने की कोशिश करें। मेरा अनुमान है कि अगर हम एक दूसरे को अधिक निकट से समझेंगे तो अवश्य शान्ति ला सकेंगे एवं एक दूसरे के विश्वासी बन सकेंगे।

कलम और तलवार

यत्र ब्रह्म क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।

जिस राष्ट्र में ब्रह्म-शक्ति और क्षात्र-शक्ति मिलकर कार्य करती हैं वहां ही रामराज्य स्थापित हो सकता है। कलम और तलवार के सदुपयोग से ही देश का कल्याण हो सकता है।

—डा० धीरेन्द्र वर्मा

(पृष्ठ १८ का शेषांश)

देरानी जेठानी के आपसी संघर्ष ईर्ष्या के कारण होते हैं। एक दूसरे को सुखी और सम्पन्न देख जलती है, कुढती है। जब एक ओर से ऐसा होता है तो दूसरी ओर से भी इसी तरह का वर्ताव होता है। आपस के सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं। देरानी जेठानी यदि गहराई से सोचें तो वे खुद जानेंगी कि कितनी बड़ी भूल वे करती हैं। एक दूसरे को सुखी और सम्पन्न देखकर उन्हें खुश होना चाहिए, नाखुश वे क्यों हो? यदि वे ऐसी मनोवृत्ति अपनायेंगी तो उनके आपसी झगड़े अपने आप दूर हो जायेंगे।

(भाषण के आधार पर)

(पृष्ठ २१ का शेषांश)

घर से निकल कर आ पहुँची। उम्र यही छ सात वरस। कंधे तक कटे हुए रेशमी बाल। हरी गरम फ्राक पर पीला सा स्वेटर, छोटे छोटे पैरों पर नन्हें नन्हें जूते। बिलकुल तितली सी लगती थी वह प्यारी बच्ची।

क्या लोगी मुन्नी?" वृद्ध महाशय ने पूछा

अपने हाथ की पर्ची को आगे बढ़ा कर वह तुतला कर बोली "राछन।"

"क्या नाम है तुम्हारा?" बाबू साहब घुलकर बोले।

"कुक्कु···राछन लेढँ ईं" उसी सरलता मिश्रित निर्भीकता से वह बोली।

सहसा पहलवान ने उसे गोदी में उठा लिया और मुंशीजी की ओर बढ़ गया।

"इसे राशन दो मुंशीजी···लो पर्ची"

उसी का राशन तुल रहा था। कोई कुछ नहीं बोला। पहलवान का भय भी भले ही कुछ रहा हो पर मैं मानव की एक आदिम प्रवृत्ति की विजय देख रहा था। यह दया नहीं थी···और न वासना ही थी···यह हर

पसलियों के पिंजरे में रखे मांसपिंड की चिकनाई थी जिसपर सारे विरोध फिसल गये थे।

(पृष्ठ १४ का शेषांश)

में देखा जाए तो श्रृङ्गार—पातकी रसराज ही हमारे समाज के मनोरंजन का एकमात्र साधन रह गया है।

आजके तथाकथित सभ्य समाज में सभ्य पत्नी व्यभिचार भी उग्ररूप धारण किए हुए है। पत्नी-व्यभिचार आजके सभ्य पुरुषों में तो एक विचित्र सी बात प्रतीत होगी। समझा जाता है—"विवाह जीवन का द्वार है, उसके द्वारा पुरुष अपने जीवनोद्यान में प्रवेश करके अभीष्ट विषय-विलास लूटे। पति-पत्नी के मध्य भला भोग की कोई सीमारूपी कैद क्यों हो! वहां तो सब कुछ न्याय है—नहीं, वहां तो एक दूसरे की तृप्ति के लिए अपना शरीर अर्पण कर देना ही प्रत्येक का परम धर्म है। पत्नी का पति पर और पति का पत्नी पर पूर्ण अधिकार है।" पर यह तो उदारमतवादी पुरुषों का विचार है। नारी को तो अपने अधिकारों का पता तक नहीं। अधिकार की भाषा तो पुरुषों के ही मुख में शोभा देती है, नारी के नहीं। वे कहते हैं—"हमारी इच्छा-पूर्ति करना ही नारी का धर्म है; जो ऐसा नहीं कर सकतीं वे दुष्टा हैं।" ऐसे नर-पशुओं को अपनी पत्नी के रोगों एवं गर्भावस्था का तनिक भी ध्यान नहीं रहता। वे तो विषय-विकार के कारण पागल और अन्धे हो जाते हैं। संसार में काम तृप्ति के अतिरिक्त उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं, किन्तु क्या कभी किसीने इस विकारान्धता से उत्पन्न होनेवाले भयङ्कर परिणामों की ओर ध्यान दिया—नहीं दिया, देने की आवश्यकता भी क्या थी? परिणाम होता है—दोनों का स्वास्थ्य-नाश, अधिक सन्तति और दारिद्रय।

वे खिले हुए कमल जो समाज की शोभा थे—दो-चार मास में ही निस्तेज एवं श्रीहीन हो जाते हैं; चलते-फिरते कङ्काल से प्रतीत होते हैं। जहां पाश्चात्य-शिक्षा, दरिद्रता एवं पतित गृहस्थ इन तीनों का त्रिवेणी-सङ्गम हो वहां की लाज तो भगवान् ही रखें। बाजीगर के वृक्ष की भांति देखते ही देखते (युवक-युवती) उत्पन्न होते हैं, लहलहाते हैं तथा फल लाकर वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि निर्बल, निस्सत्व एवं रक्त-हीन शरीर देखने को मिलते हैं। सारा राष्ट्र तेज-हीन नर-कङ्कालों की भूमि हो रहा है; साथ ही साथ व्यक्ति अपनी दरिद्रता (जो स्वयं उसने अधिक पत्नी-व्यभिचार द्वारा बहुत सन्तान उत्पन्न करने की है) को अनाचार, अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार के द्वारा भौतिक आनन्द प्राप्ति के लिए ऐश्वर्य में बदलना चाहता है।

यदि हमें इस नैतिक-पतन को रोकना है तो हमें परमात्मा में आस्था, दृढ़ निश्चय और विश्वास रखकर अध्यात्म-आत्मपथ पर अग्रसर होना पड़ेगा। जिस पथपर चलते ही हृदय-प्राङ्गण में कोमल-सरस भावनाओं का स्रोत बहने लगता है, व मन अन्तर्वेदना की तड़प से उमड़े हुए आगाध प्रेम-सिन्धु में गोते लगाने लगता है कितनी मधुर, कितनी सरस, कितनी मादक है यह आत्म-प्रेम-भावना, कितनी आतुरता भरी है, कैसा साहस है, कितना उन्माद है, कैसी बेहोसी है, कितनी सतर्कता है—इसमें? हृदय की यह साध, प्रेम की मधुर प्रभा में यह भोली भावना कितनी झिलमिली है? कितनी सुन्दर भव्य-भावना है यह?

प्रेम की यह दृष्टि विचित्र ही ढंग की है प्रेम का भिक्षुक एक महान् आशा के पाश में बन्धकर कमनीय भावनाओं की झोली में भरने

के लिए गिड़गिड़ाता है, हाथ जोड़कर शतशः प्रार्थना करता है और मांगता है—केवल एक प्रेम-पराग-कण का दान। किन्तु ओह! कितना दुष्प्राप्य है, कितना कठोर एवं तेजी पर चढ़ा हुआ है यह सौदे का बाजार? रो-रो कर आँखें सूज जाती हैं कण्ठ सूख जाता है, हृदय-पिण्ड शुष्क हो जाता है, शरीर जीर्ण-शीर्ण हो जाता है—फिर भी वह घबड़ाता नहीं, उसका साहस टूटता नहीं। आँखें भले ही पथरा जाएँ—परवाह नहीं। वह हट नहीं सकता अपने निर्धारित मार्ग से। उसपर आपत्तियों का पहाड़ आकर गिरे, सांसारिक-बन्धनों से जकड़ दिया जाए, नन्हा-सा उसका कोमल भावुक हृदय भले ही मसोस दिया जाए, किन्तु प्रेम-कलिका के उपहार के लिए उसकी अमर आशा जाग्रत है। ओह! कितना कठिन है यह प्रेमत्व। भावना की कली पर तुषार पात होता है किन्तु प्रेम-पीयूष उसे सजीव कर देता है। कैसा वैलक्षण्य है—विष अमृत हो जाता है। प्रेम साम्राज्य का यह नया कानून है—प्रेम-शक्ति के आगे दुनिया की सभी शक्तियां ठिठक जाती हैं, उसपर दूसरे का प्रभुत्व ही नहीं होता।

सारांश यह है कि जबतक भौतिकवाद में आध्यात्मिकवाद का सम्मिश्रण नहीं होगा तब-तक हमारा नैतिक पतन होता ही रहेगा अर्थात् देश में दुराचार, अत्याचार एवं भ्रष्टाचार का बाजार गरम रहेगा और हमारे उपदेश तथा प्रयत्न व्यर्थ ही साबित होंगे। दिन-प्रति-दिन पतन की ओर बढ़ते ही रहेंगे। यह भी सम्भव हो सकता है कि पतन होते-होते एक दिन इस भूमण्डल से सदैव के लिए मि…ट…जा…एँ।

(शेषांश पृष्ठ ३१ का)

विशेषांक उच्चकोटि का है फिर भी इसे हम त्रुटि रहित नहीं कह सकते। यह इसके शैशव का द्योतक है। रचनाओं के भाव यद्यपि बहुत उपयुक्त हैं किन्तु भाषा की दृष्टि से इसका परिष्कार होना चाहिये, क्योंकि आज हिन्दी भाषा प्रगति कर रही है। कतिपय लेखों की भाषा आज से ५० वर्ष पीछे की प्रतीत होने लगती है।

'गीता संदेश' में लघुकथाओं की योजना सामयिक होने के कारण महत्वपूर्ण है, इन कथाओं से किशोर अवस्था के बालकों का बड़ा उपकार होता है, और इन कथाओं के आधार पर उनका चरित्र निर्माण सहज ही संभव है। ऐसी सामग्री प्रस्तुत करनेवाले लेखक धन्यवाद के पात्र हैं; साथ ही 'गीता संदेश' भी इस इस योजना से सराहनीय है। महापुरुषों की उक्तियों का संग्रह अत्यन्त उपयुक्त है, पाठकों को इससे महान् लाभ होगा, 'गंगा विशेषांक' में गंगा की महिमा का दिग्दर्शन विशद रूप से हुआ है, पर गीता की पावनता के साथ उसका समन्वय बहुत कम हुआ है, जो कि 'गीता संदेश' के लिये आवश्यक था। गीता के श्लोक इस अंक में बहुत कम मिले हैं, यह बात संभवतः सभी को खटक सकती है। रामायण, महाभारत और पुराणों के वचनामृत सभी के लिये उपादेय हैं, 'गीता संदेश' देश को अवश्य ही समयोपयोगी संदेश देगा यही आशा है।

—*पीताम्बरदत्त शास्त्री*

त्रिवेणी

— श्री रमाकान्त 'विक्षिप्त' —

यह समझना भूल है कि—
वाणी का महत्त्व मनुष्य-जीवन में सबसे बढ़-चढ़ कर है।
यह भी समझना भूल है कि—
कला ही मनुष्य-जीवन की अनमोल निधि है।
और यह भी समझना भूल है कि—
आचार ही मनुष्य का सब कुछ है।
वाणी, कला और आचार
इन तीनों का ही
जीवन में समान अधिकार है
एक के बिना दूसरा अपूर्ण है,
और—
इनके बिना जीवन भी अपूर्ण!
क्योंकि—
वाणी, विचार की!
कला, जीवन की!!
और आचार—आत्मा की भाषा है!!!

[समालोचनार्थ पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियाँ कार्यालय में भेजनी चाहियें]

मेरा साहित्यिक जीवन—ले० भगवान दास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रंथ-माला, दारागंज, इलाहाबाद; मूल्य तीन रुपये।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय ग्रंथमाला का ३६ वां पुष्प है। इस पुस्तक में लेखक की, भारतीय ग्रंथमाला की और सर्वोदय ग्रंथमाला के अतिरिक्त उसके आसपास की, उसके विचारों और आदर्शों की बात है।

हिन्दी में जीवनचरित की 'शिकायत आमतौर पर की जाती है पर यह शिकायत कब तक की जावेगी? शिकायत को निर्मूल करने के लिये आवश्यक है कि ऐसे ग्रंथों का प्रकाशन और प्रचार हो, और केलाजी का यह प्रयास स्तुत्य है।

केलाजी पिछले अड़तालीस वर्षों से लेखन कार्य कर रहे हैं और अपने जीवनका तिरेसठवाँ वर्ष पूर्ण कर चुके हैं। अपने साहित्यिक जीवन में उन्होंने अनेक बहुमूल्य ग्रंथों की भेंट हिन्दी को दी है। हिन्दी में अर्थशास्त्र के रिक्त, अविकसित एवं लुप्तप्राय: क्षेत्र को विकसित, पूर्ण एवं यथासम्भव जनसाधारण तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है। पर लेखक के परिश्रम को सफल बनाने के लिये कितने हिन्दी पाठकों ने उनकी पुस्तकों का अध्ययन किया है? कितनों ने उनकी और उनके ध्येय की ओर तनिक भी ध्यान दिया है? चली आरही हिन्दी के ठोस लेखकों के प्रति उदासीनता की उसी परम्परा में ही हमारे केलाजी का भी स्थान है। पर उन्हें इसकी कोई चिंता नहीं उनका तो कहना है—

विके मुफ्त में हम यहाँ जमाने के हाथों।
देखा तो तब भी थी कीमत ज्यादा॥

किन्तु हिन्दी के उत्थान चाहनेवालों और राष्ट्रभाषा का गौरव आँकनेवालों को चाहिए कि लेखकों का सम्मान करना सीखें।

केलाजी के जीवन का अधिकांश समय अर्थशास्त्र के ही अध्ययन, मनन और उसी की पुस्तकों के प्रणयन में व्यतीत हुआ है। किन्तु सन् १९५२ से उनकी विचारधारा सर्वोदय की ओर झुकी है। अर्थशास्त्र जैसी विद्या में सर्वोदय का समन्वय केलाजी की प्रतिभा का परिचायक है। पुस्तक में निम्नलिखित स्थल अर्थशास्त्र और मानवीय कल्याण के दृष्टिकोण के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं—

'जो अर्थशास्त्र व्यक्ति की या राष्ट्र की नैतिक भलाई पर आघात करता है, वह पापमय है।'

'अर्थशास्त्र हो या कोई शास्त्र हो, वह उसी दशा में शास्त्र कहलाने का अधिकारी हो सकता है, जब उसके सिद्धांत और निष्कर्ष सर्वोदय की कसौटी पर खरें उतरते हों।'

अंत में इस पुस्तक की उपयोगिता उन नवांकुरित साहित्यकारों के लिये विशेष महत्व रखनी है, जो कि अपने साहित्यिक जीवन के क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं। यदि उनसे पूर्णत: लाभ उठाया जाये तो किसी लेखक के जीवन के अनुभव और संस्मरण उसके स्वयं के असफलता या सफलता के निबंध और अन्य सभी लेखकों के लिये मार्ग प्रदर्शक हो सकते हैं। हिन्दी के क्षेत्र में ऐसे ही साहित्य की आवश्यकता है। साथ ही केलाजी अपने इस सद्प्रयत्न के लिये बधाई के पात्र हैं।

—*प्रेमचन्द महेश*

'गीता संदेश' (गंगा विशेषांक) सम्पादक—श्री सत्यमित्र ब्रह्मचारी, प्रकाशक—गीता संदेश कार्यालय, ऋषिकेश (उत्तरप्रदेश) पृ० सं० १०२ मूल्य १)

आज के युग में पत्र-पत्रिकाओं का बाहुल्य है, उनमें अधिकांश पत्रिकायें केवल आर्थिक उद्देश्य को लेकर ही उत्पन्न हुई हैं, और उनमें जो अश्लील विज्ञापन छापे जाते हैं, वे इस बातके परिचायक हैं। सत्साहित्य के द्वारा जनता में ज्ञान का संचार करना ही पत्र पत्रिकाओं का मूल उद्देश्य होना चाहिये।

इधर 'गीता संदेश' का उद्देश्य सराहनीय है। ऐसी पत्रिकाओं का व्यापक प्रचार होना चाहिये जिससे देश का सांस्कृतिक उत्थान हो और पत्रिका भी अपने पैरों पर खड़ी रह सके। 'गीता संदेश' का गंगा

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

इस बढ़ती हुई

उन्नति

के पीछे

कोई

गुप्त रहस्य नहीं
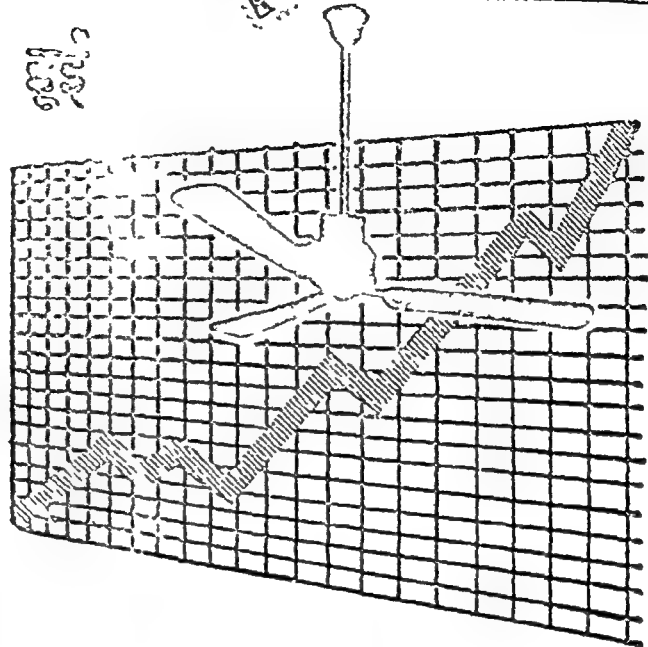
सिर्फ

६

मामूली कारण हैं

१ भारतीय और ब्रिटिश स्टैण्डर्ड स्पेसी-फिकेशन से आम तौर पर मेल खाता है।
२ मोटर ठीक से ढका हुआ है।
३ पंखे आवाज नहीं करते जिनके दोनों ओर बाल बियरिंग लगे हुए हैं।
४ पुर्जे बढ़िया माल से बने हुए हैं जो एक दूसरे से एकदम बदले जा सकते हैं।
५ बनाने के हर मौके पर माल की खूबी की परख होती है।
६ केन्द्रीय और राज्य सरकारें माल लेती हैं।

[illegible], आनन्द,

लकी और आजाद पंखे

मैंचवेल इलेक्ट्रिकल्स (इण्डिया) लिमि.३८, पोस्ट बाक्स १४३० देहली

KX-58 HIN

श्री प्रतापसिंह वैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्तुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं
रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित

वर्ष १ अङ्क १६

मद्यपान से एक राष्ट्र का स्वास्थ्य ही खराब नहीं होता, बल्कि
इससे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में झगड़े बढ़ने की प्रवृत्ति पैदा
होती है। भारत में नशाबन्दी की नीति के बारे में काफी प्रचार
किया गया है। संसार के अन्य भागों में भी मद्यपान से पैदा
होनेवाले खतरों की ओर अब यान अधिक दिया जा रहा है।

मोटे तौर पर ऐसे दो वर्ग हैं, जिनका झुकाव मद्यपान की
ओर होता है। ऊंचे तबके के कुछ आदमी तो इसे फैशन समझकर
अपनाते हैं और आदी हो जाते हैं। दूसरा बड़ा तबका उन मजदूरों
का है, जो अपने तंग, कठिन और मलिन जीवन में शराब से कुछ
राहत पाने की कोशिश करते हैं।

अतः इस समस्या को हल करने के लिये हमें इन दो भिन्न
दृष्टिकोण से सोचना होगा। हमें यह विचार दिमाग से निकाल
देना होगा कि शराब पीना कुछ अच्छी बात है। वास्तव में यह
गन्दी चीज है। ऊँचे तबके के लोग अगर यह समझ जांय और
उचित वातावरण पैदा किया जाय, तो बहुत कुछ मसला हल हो
सकता है। जहांतक दूसरे तबके का सवाल है, उनके रहन-सहन
का स्तर ऊँचा करना चाहिये, जिससे उन्हें कुछ आराम मिले और
वे राहत पाने के लिये नशे की ओर न झुकें।

इस समस्या को हल करने के लिये अनिवार्यतः कुछ कानून
बनाने पड़ेंगे। परन्तु वे ऐसे बनाने चाहिये कि कारगर साबित
हों। मुख्य काम यह है कि विशेष कर समाज के ऊँचे तबके में
मद्यपान के खिलाफ काफी प्रचार किया जाय, और इसके विरोध में
जनमत तैयार किया जाय।

—जवाहरलाल नेहरू

आपके अणुव्रत के विषय में—

कौन क्या कहता है ?

"नैतिक चरित्र को व्रतादि पालन के द्वारा समुन्नत करने के लिये पत्रमें अनेक उत्तम लेख रहते हैं। आचार्यश्री तुलसी के अणुव्रत-आन्दोलन को समाज में प्रचारित करनेवाला यह पत्र यद्यपि जैनधर्म से प्रभावित है तथापि मानव-जीवन को यम-नियमादि व्रतोंसे पवित्र, सुसंस्कृत एवं सदाचारी बनाने के लिये इसमें प्रकाशित सभी लेख उत्तम होते हैं। वस्तुतः समाज में ऐसे पत्रोंके प्रचार की विशेष आवश्यकता है।...यह पाक्षिक पत्र समाज की आन्तरिक शुद्धि के लिये अति उपादेय है। हम पत्रका स्वागत करते हुए उसकी सफलता चाहते हैं।"

—*श्री वेंकटेश्वर समाचार, बम्बई*

"...'अणुव्रत' अपने उद्देश्य के अनुरूप है। मैं हृदय से इसकी सफलता चाहता हूँ। ...इसकी लगभग सभी रचनाएं सुन्दर एवं सोद्देश्य है। 'अणुव्रत' के द्वारा समाज को आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं जीवनोपयोगी स्वस्थ सामग्री देनेके प्रयास के लिये आप सभी बधाई के पात्र हैं ...।"

—*लल्लनप्रसाद व्यास, बहराइच*

"...'अणुव्रत' देखकर प्रसन्नता हुई। इस प्रयत्न के लिये आपको बधाई...।"

—*सुरेन्द्र तिवारी, लखनऊ*

" 'अणुव्रत' के कतिपय अंक देखने को मिले। पढ़कर असीम आनन्द हुआ। इसकी सेवायें स्तुत्य हैं, जीवन जागरण की प्रभूत प्रेरणा मिली...।"

—*पीताम्बर शास्त्री, साहित्याचार्य, कल०*

"पत्रिका की उपादेयता एवं उच्चता उसकी विषय-वस्तु से स्पष्ट है। अतः कह सकती हूँ कि 'अणुव्रत' अपने ढंग का एक ही पाक्षिक है...।"

—*विमला बांठिया, कोटा*

"...आपलोगों ने यह जो श्रेष्ठ कार्य प्रारम्भ किया है, वह वास्तव में इस भौतिक-वाद के युगमें इस आत्म-विस्मृत समाज को आत्मोत्थान का मार्ग प्रदर्शित करने में अवश्य ही सफल होगा। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।......'अणुव्रत' के प्रत्येक लेख सद् प्रेरणा-दायक हैं।"

—*लक्ष्मणसिंह शेखावत, नवलगढ़*

"...पत्रिका का स्तर काफी अच्छा है...।"

—*महावीरसिंह गौतम, देहली*

"...अङ्क मिला। आदिसे अन्त तक पढ़ डाला। आज समाज को ऐसे ही साहित्य की आवश्यकता है। यद्यपि समाज की नैतिक भावना को जागृत करनेवाली पत्रिकाएं शीघ्र प्रचार नहीं पातीं, किन्तु मुझे आशा है, आप धैर्यके साथ अणुव्रत' का प्रकाशन करते रहेंगे।

'अणुव्रत' के सम्बन्ध में मेरे कुछ सुझाव भी हैं। लेखोंके शीर्षक छोटे टाइप में सादे बोर्डर रहित होने चाहिये। जब पत्रके विचार, सिद्धान्त तथा उद्देश्य दिखावे के नहीं हैं, तो सम्पादन में प्रदर्शन उचित नहीं प्रतीत होता। प्रत्येक लेखके साथ सम्पादकीय टिप्पणी भी नहीं होनी चाहिये। आशा है, आप भविष्य में 'अणुव्रत' को अधिक ठोस सामग्री दे सकेंगे...।

—*ब्रजभूषण पाण्डेय, प्रयाग*

"...आपका प्रेषित 'अणुव्रत' वाचनालय में देखा वास्तव में बहुत अच्छा लगा...।"

—*रामरतन ज्वेल पत्रकार, उज्जैन*

"अणुव्रत प्रसन्द आया...।"

—*प्रेमलता, हापुड़*

"अणुव्रत जिस ध्येयके प्राप्तिकी कामना लेकर आगे बढ़ रहा है उसके लिये मैं स्वयं संकल्पशील हूँ, आप वस्तुतः बड़ा अच्छा काम कर रहे हैं...।"

—*उपेन्द्र, कानपुर*

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१
卐
वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १ जून, १९५६ अंक १६

समूचे संसार को सुधारने की डींग भरनेवाले पहले अपने को सुधारें !

आत्म-शान्ति अन्तरात्मा से उद्भूत होती है। बाहरी शान्ति वास्तविक शान्ति नहीं है। बाहरी शान्ति को ही वास्तवकि शान्ति माननेवाला भौतिक पदार्थों की खोज में भटकता रहता है, उलझता है और उसी में निरन्तर रमा रहता है। फिर भी उसे शान्ति नहीं मिलती। कारण स्पष्ट है—ज्यों-ज्यों वह पदार्थों के माध्यम से तृप्ति की ओर बढ़ना चाहता है, अतृप्ति की परम्परा और लम्बी बनती चली है। अतृप्ति मिट नहीं रही है। फलस्वरूप शान्ति दूर बहुत दूर चली जारही है। अशान्ति की जलती चिनगारियां मानव को सुख की सांस नहीं लेने देती। वह शान्ति की खोज में है और नाना प्रकार की प्रक्रियाओं की ओर गति कर रहा है। ध्यान रहे, शान्ति का एक ही मार्ग है। वह है—आत्म-शुद्धि, आत्म-परिष्कार। यदि लोग इस ओर अग्रसर हुए तो इसमें शक नहीं—उनका जीवन शान्ति को अवश्य आत्मसात् करेगा।

हर व्यक्ति विकास करना चाहता है, अपने जीवन को उन्नत देखना चाहता है। सही भी है—विकास होना ही चाहिए। वह क्या जीवन जो जीवन की पुरानी स्थिति में ही चलता रहे, विकास की ओर प्रगति न करे। अतः यह सही है कि विकास जीवन के लिए इष्ट है और उसके लिए व्यक्ति को सदैव सजग और सचेष्ट रहना चाहिए। विकास के भी नाना रूप हैं। कोई परिग्रह की वृद्धि को, कोई साम्राज्य की वृद्धि को और कोई नाना सुखोपभोगों की वृद्धि को ही विकास मानता है, किन्तु यह वास्तवमें जीवन का विकास नहीं है। भारतीय-दर्शन आत्मवादी दर्शन है। उसके दृष्टिकोण से आत्मा का विकास ही सर्वोपरि श्रेष्ठ विकास है। दैहिक विकास की अपेक्षा यहां आत्मा के विकास की महत्ता रही है और आध्यात्मिक दर्शन-क्षेत्र के समग्र प्रयत्न आत्मा के विकास की ओर अग्रसर हुए हैं। आत्मा परम तत्व है। व्यक्ति आत्मा से परमात्मा बनने की ओर निरन्तर अग्रसर होता रहे—यही जीवन-विकास की सही दिशा है जिसकी ओर सबको प्रयाण करना है।

सहज प्रश्न होता है कि आत्म-विकास की साधना क्या है? मैं आपको संक्षेप में बताना चाहूँगा—अपनी दुष्प्रवृत्तियों का निरोधकर जीवन में सद्प्रवृत्तियों का समावेश करना ही जीवन विकास की सर्वोच्च साधना है। समूचे संसार को सुधारने की डींग भरनेवाले मनुष्य, समूचे संसार को देखनेवाले मनुष्य जबतक अपने को नहीं सुधारेंगे, अपने जीवन की ओर नहीं देखेंगे, जीवन में समाई दुष्प्रवृत्तियों का निरोध नहीं करेंगे तबतक विकास की सब कल्पनायें मानवीय मस्तिष्क की थोथी कल्पनायें होंगी। जीवन-विकास का तत्व वहां नहीं है। अतः आज की सबसे पहली आवश्यकता है कि व्यक्ति स्वदोष-दर्शन का अभ्यासी बन अपनी प्रवृत्तिय का शुद्धिकरण करे, बहिर्मुख प्रवृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाये।

जीवन की दृष्टि अन्तर्मुखी बनेगी तभी व्यक्ति अध्यात्मवाद का उपासक बन सकेगा। आज व्यक्ति सुबह उठकर अखबार पढ़ना चाहेगा, गीता, धम्मपद और जैन सूत्रों के पाठों के स्मरण में उसकी रुचि नहीं रही है। यह सब भौतिक दृष्टिकोण की प्रबलता का परिणाम है। अध्यात्म-दृष्टि का आज अभाव होता जा रहा है। यह खेद का विषय है। मैं चाहूँगा कि आप प्रवृत्ति-शोधन और अध्यात्म-दृष्टि के विकास की ओर अग्रसर हों और अपने जीवन को सफल और सार्थक बनायें।

—आचार्य तुलसी

मद्य-निषेध के लिए ६ सूत्री कार्यक्रम

द्वितीय पंचवर्षीय योजना प्रस्तुत करते हुए प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने मद्य-निषेध के लिये योजना आयोग के ६ सूत्री कार्यक्रम को प्रस्तुत किया है और योजना आयोग द्वारा नियुक्त मद्य-निषेध जांच-समिति के इस सुझाव को सर्वथा ठुकरा दिया है, जिसके अनुसार १९५८ के अप्रैल तक देशभर में मद्य-निषेध लागू कर दिया जाय। आयोग ने राज्य सरकारों से आग्रह किया है कि मद्य-निषेध के लिये पहले क्रमिक कार्यक्रमों को क्रियान्वित करें। क्रमिक कार्यक्रम के बाद ही मद्य-निषेध सम्भव हो सकेगा।

संसद में दिये हुए इस वक्तव्य को पढ़कर हमें आश्चर्य होता है कि जहाँ एक ओर मद्य-निषेध के लिये भारत की पृष्टभूमि और वातावरण अधिक अनुकूल है जैसा कि जवाहरलालजी ने स्वयं पिछले दिनों दक्षिण-पूर्व एशिया क्षेत्र के लिये शराबबन्दी अन्तर्राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष श्री वी० जी० खरे को एक संदेश में लिखा है कि "अन्य देशों के मुकाबले में भारत की स्थिति नशाबन्दी के लिये अधिक अनुकूल है, क्योंकि यहाँ जनता में नशाबन्दी के पक्ष में भावना फैली हुई है।"

प्रधानमंत्रीने अपने संदेशमें यह भी कहा है कि "मद्य-पान से एक राष्ट्रका स्वास्थ्य ही खराब नहीं होता, बल्कि इससे राष्ट्रीय क्षेत्रोंमें झगड़े बढ़ने की प्रवृत्ति पैदा होती है।"

मद्यपान की समाज-व्यापी निस्सारता समझने के बाद और यह जानते हुए भी कि हमारे देशका वातावरण मद्य-निषेध के लिये अधिक उपयुक्त है, क्यों नहीं साहसपूर्वक कदम उठाया जाता और समूचे देशमें एक साथ मद्य-निषेध लागू किया जाता? निःसन्देह इससे एक बार देशको मद्य-पानसे होनेवाली एक बड़ी आर्थिक आयसे वंचित रहना होगा। लेकिन उस आयसे क्या प्रयोजन, जो राष्ट्रके कोटि-कोटि लोगोंके स्वास्थ्य को जर्जर करे और उनमें सामाजिक तथा नैतिक दुर्बलता का सञ्चार करे। कौन नहीं जानता कि शराब से आज समाज की कितनी अधोगति हुई है और उसके परिणाम राष्ट्रके लिये कितने भयङ्कर हुए हैं!

हम मानते हैं, नशाबन्दी के लिये क्रमिक कार्यक्रमकी भी आवश्यकता है। लेकिन एक निश्चित अवधि घोषित किये जानेके साथ क्रमिक कार्यक्रमों से शनैः-शनैः नशाबन्दी को पूर्ण और अन्तिम रूप दिया जाता तो निसन्देह यह एक ठोस रचनात्मक और क्रान्तिकारी कार्यक्रम होता। अब अवधि की बात तो कुशलतापूर्वक टाल दी गई है और केवल क्रमिक कार्यक्रम को ही प्रधानता दी गई है।

सम्पादकीय

यह धीमी रफ्तार है और योजना-आयोग की दुर्बलता का स्पष्ट संकेत है। ऐसा लगता है कि मद्य-निषेध जांच-समिति की रिपोर्ट निकलने के बाद कतिपय राज्य-सरकारों द्वारा नशाबन्दी से हठात् आर्थिक आयपर पड़नेवाले असर से विरोध होता देख यह मध्यका मार्ग निकाला गया है। परिस्थितियों का यह एक हल अवश्य है लेकिन एक क्रान्तिकारी कार्यक्रम नहीं।

नशाबन्दी के लिये योजना आयोग ने क्रमिक कार्यक्रम का जो रूप निश्चित किया है वह इस प्रकार है उसे छः सूत्री कार्यक्रम का नाम दिया गया है—

१ मद्य-पान सम्बन्धी विज्ञापनों को बन्द किया जाय।

२ सार्वजनिक स्थानों (होटलों, रेस्टराँ, क्लबों) और सार्वजनिक समारोह में मद्य-पान बन्द किया जाय।

३ समितियां संगठित की जांय। (एक केन्द्रीय समिति भी बने)।

४ स्वस्थ और सस्ती हल्की पेयके निर्माण के लिये कदम उठाये जाय।

५ मनोरञ्जन केन्द्रोंको गठित करने के लिये सहायता दी जाय।

६ रचनात्मक कार्यमें मद्य-निषेध को भी शामिल कर लिया जाय।

क्रमिक कार्यक्रम पर एक दृष्टि डालने से जहाँ सहज ही उसकी अच्छाइयों का प्रदर्शन मिलता है, वहाँ गम्भीरता से विचार करने पर एक शंका भी उत्पन्न होती है। हम चाहते हैं कि हमारा यह सन्देह निर्मूल प्रमाणित हो! लेकिन जैसा कि कार्यक्रम के चौथे क्रममें स्वस्थ और सस्ती हलकी पेयके निर्माण के लिये कदम उठाने का आशय यदि दूध, नीबू आदि मोसमी पेय से है तो उसका स्वागत किया जाना चाहिए और स्वस्थ, सस्ती और हलकी पेयका अर्थ यह न होकर फिर किसी भी हल्की और सस्ती शराब से है तो क्रमिक कार्यक्रम की सारी अच्छाइयों पर पानी फिर जाता है और यहाँ "खोदा पहाड़ निकला चूहा" वाली कहावत सिद्ध हो जाती है। जानने वाले यह अच्छी तरह जानते हैं कि ताड़ीकी आड़में लोग शराब का मजा लेते हैं और ताड़ी पीकर शराब का खुमार भूल नहीं पाते हैं। ताड़ीका भी लोगोंने अत्यधिक दुरुपयोग किया है। फिर भला, योजना आयोग तो इससे भी आगे बढ़ गया है! नशाबन्दी के लिये, चाहे हलका ही नशा क्यों न हो? इस प्रकार के विकल्प का हम घोर विरोध करते हैं। शराबबन्दीके लिये जिस दृढ़ता और साहस का परिचय चाहिए, वह हमें आयोग की भूमिका में नहीं मिलता। लचीले और हलके पेयके नाम पर मद्यपान की किसी न किसी अवस्था में जारी रखने का ही यह एक दूसरा रूप है,

जिसका परिणाम विकृत भी हो सकता है।

इसी तरह मनोरञ्जन केन्द्रोंको स्थापित करने का उद्देश्य यदि इस प्रकार के हलके पेयको प्रोत्साहित करना है, तो निसन्देह यह शराब को बनाये रखने के स्थायी केन्द्र होंगे। इसके प्रतिकूल उत्तर प्रदेश के युवक-क्लबों की तरह मनोरञ्जन केन्द्र गठित हो सके तो निसन्देह मद्य छुड़ाने की दिशामें यह एक प्रभावशाली प्रयोग होगा। नेहरूजी के शब्दों में—"ऊंचे तबके के लोग मद्यको फैशन समझकर अपनाते हैं और आदि हो जाते हैं।" हमें भय है कि यह मनोरञ्जन केन्द्र और हलका पेय कहीं उनकी फैशन वृत्तिको पनपाने में सहायक न बने!

अब समय आ गया है कि राष्ट्रके कर्णधार इस दिशामें गम्भीरता से सोचें और केवल शब्दोंसे ही नहीं समाज की झिझकको मिटानें के लिये बिना किसी विकल्प और समझौते की भावना के समूल नशाबन्दी का क्रान्तिकारी कदम उठायें और उसे अमली रूप दें। अन्यथा नशाबन्दी का यह क्रमिक कार्यक्रम कहीं शिथिलाचार का पोषण न करने लगे! यदि यह हुआ तो यह सब प्रदर्शनमात्र होगा।

युवक किस ओर ?

अभी अभी उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित विज्ञप्ति से मालूम हुआ है कि आज की बढ़ती हुई चोरी, डकैती और ठगी में शिक्षित नवजवानों का भी हाथ बढ़ता जा रहा है। यह अत्यन्त शोचनीय विषय है। यह है हमारी आज की शिक्षा का दुष्परिणाम, जिसके सांचे में ढलकर व्यक्ति ने अब इस ओर भी अपनी करामात दिखानी प्रारम्भ कर दी है! अपने जीवन स्तर को कायम रखने के लिये अन्य काम की आशा छोड़ इस प्रकार के अनैतिक कार्यों से अपनी जीविका का हल खोज निकाला है!! समाज का यह घोर अवपतन नहीं तो किया है? पता नहीं इतने भयङ्कर अनुभवों के बाद भी हमारे शिक्षा-शास्त्री कुछ आज की शिक्षा के मौलिक दृष्टि-कोण को बदलेंगे और उसका एक नैतिक स्तर कायम करेंगे?

प्रगतिशीलता का नारा लगानेवाले नव जवान आज किस ओर बहे जा रहें हैं? 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि' की तरह मानों आज वह अपनी सुध-बुध भी खो बैठे हैं। यह युवक समाज के सर पर एक कलंक है और शिक्षा का उपहास!

यह जबरदस्ती क्यों ?

पूर्वी पाकिस्तान से प्राप्त समाचारों से ज्ञात हुआ कि सातक्षीरा के अन्तर्गत अलीपुर गाँवमें वहाँके मुसलमानों ने एक अमीन के पुत्रको जबरदस्ती इस्लाम-धर्म में परिवर्तित कर लिया। इतना ही नहीं, उसकी शादी भी एक मुसलमान लड़की के साथ करा दी।

मानव या विश्वधर्म का स्वप्न देखनेवालों को तो ऐसी हरकतों से क्षोभ व घृणा होगी ही, साथ ही प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति भी इस दुस्साहस की निन्दा करेगा। धर्म-प्रचार का आधार बल या शस्त्र नहीं अपितु सहयोग व प्रेमकी भावना है। भारतीय संस्कृति की यह मान्यता सदैव से रही है। बीसवी सदीके धर्मान्ध क्या इस भावना को आत्म-सात् करने का प्रयत्न करेंगे?

सर्वोदय और अणुव्रत

[आचार्यश्री तुलसी]

सबके उदय की भावना यानी सबके प्रति समता। सबके प्रति समता यानी अहिंसा, हिंसा में विषमता आती है और उससे सबका उदय नहीं हो सकता।

खेद के साथ कहना होगा कि हिंसा की ताकतें आज भी दुनियां पर छा रही हैं। अहिंसा की शक्ति विराट है, इसमें कोई संदेह नहीं, पर उसका विकास पृष्ठ ५ पर बहुत ही सीमित हुआ है। हिंसा के लिए जितनीमानवीय शक्ति खपी हैं उसका शतांश भी अहिंसा के लिए नहीं खपा है। अहिंसा में विश्वास रखनेवाले को अब अधिक खपने की आवश्यकता है।

हिंसा के अल्पीकरण द्वारा अहिंसा की ओर प्रगति करने की दिशा में जो अहिंसक आन्दोलन चल रहे हैं, उनमें पारस्परिक सहयोग की बहुत बड़ी अपेक्षा है।

अहिंसा के एकांगी आन्दोलन समन्वित होकर सर्वांगीण सामर्थ्य पैदाकर सकेगें।

अहिंसा के सर्वांगीण विकास में बाधा डालनेवाले मुख्य निमित्त हैं—निष्ठा की कमी, चरित्र की कमी, जीवन यापन के अहिंसक साधनों की अजानकारी या उनमें अविश्वास। जीवन यापन के साधनों में हिंसा का अल्पीकरण हो, अहिंसा का विकास हो, उसके लिए सर्वोदय का कार्यक्रम चल रहा हैं। अहिंसा में निष्ठा बढ़े, चरित्र का विकास हो, इस दिशा में अणुव्रत अन्दोलन चल रहा है। अहिंसा के किसी और अंग को छूने वाले आन्दोलन और भी निकल सकते हैं। वे सब समन्वित होकर, एक दूसरे के पूरक बनकर चलें तो मुझे इसमें बहुत बड़ी संभावनाएं दीखती हैं। सर्वोदय के सेवक और अणुव्रती इस मौके पर मिलेंगें। विचारों का आदान प्रदान करेंगें। यह जानकर मैं बहुत प्रसन्न हूं।

हिंसा का खतरा जिस तीव्रता से बढ़ रहा है, उसी वेग से अहिंसा के विकास का द्वार खुल रहा है। हमने इस अवसर का लाभ उठाया तो सबका भला होगा।

बुराइयों से डरने की क्या बात है ?

डा० श्री राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी पी० एच० डी०, एम० ए०, साहित्यरत्न

आजकल चारों ओर अनाचार, अत्याचार, पापाचार तथा व्यभिचार का बोलबाला है। सबको शिकायत है कि पाप बहुत बढ़ गए हैं। सब चाहते हैं कि किसी तरह हमारा उद्धार हो। दुनियां कहती है कि हमें आखिर हो क्या गया है? अब आप ही विचारिए कि यदि पाप एवं अधर्म की वृद्धि न हुई होती, तो आज दिन हम उद्धार की प्रार्थना क्यों करते, अपनी गतिविधियों एवं मनोवृत्तियों का निरीक्षण करने के लिए अपने मन-मानस को टटोलकर इस तरह की आवाज़ क्यों उठाते "कि हमें आखिर हो क्या गया है?"

बुराइयों की बढ़ती अच्छाइयों की याद दिलाती है, पापाचार की वृद्धि पुण्य-चर्चा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है, अनाचार नैतिकता का स्मरण कराता है। पारस्परिक संघर्ष मैत्री भावना को जन्म देता है, आदि-संसार यदि विश्वव्यापी महायुद्धों की विभीषिका न देख चुका होता, तो आज के दिन विश्व-बन्धुत्व, एक विश्व की एक सरकार, पारस्परिक सहयोग आदि सद्भावनापूर्ण चर्चाएं कदापि न छिड़ी होतीं, न रौटरी क्लब जैसी गैर सरकारी संस्थाएं ही स्थापित हुई होती और न संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी सरकारी संस्था का जन्म ही हुआ होता। आज हम लोग पापपूर्ण वातावरण से छुटकारा पाने के लिए छटपटा रहे हैं और उसके हेतु अपने समस्त साधनों को जुटाने के लिए निकल पड़े हैं, बस इस युग का सबसे बड़ा यही वरदान है। सारांश यह कि पाप पुण्य का जनक है, बुराइयां अच्छाइयों की जननी है। तब फिर उनसे डरना क्यों? वे तो हमारे सत्पथ के प्रदर्शक हैं।

सांप के काट लेने पर हम ऐसी दवा देते हैं जो उसके ज़हर को दूर करदे। जितना ही अधिक विष होगा, उतनी ही अधिक अथवा तेज दवा दी जाएगी। सांप के विष ने उसकी औषधि को खोज निकालने की प्रेरणा प्रदान की, साथ ही उसके महत्व एवं उसके उपयोगी पक्ष का उद्घाटन किया। विष की जगह पापाचार तथा औषधि की जगह पुण्याचरण को रखिए और देखिए कि आपके मन पर क्या प्रतिक्रिया होती है?

बीमारी के कीटाणु जब शरीर में प्रवेश करना चाहते हैं। तब हमारे खून में मौजूद सफेद टिकियाएँ उन्हें रोकनी हैं, उनके साथ संघर्ष करने लगती हैं। साधारणतया तो इन टिकियाओं की संख्या १० हजार प्रति घन मिलीमीटर होती है, परन्तु बीमारी के कीटाणुओं में लड़ने के लिए उनकी संख्या दुगुनी, तिगुनी, कभी कभी १० गुनी तक होजाती है। होता यह है कि सम्पूर्ण शरीर के रक्त में स्थित टिकियाएं उसी एक स्थान की ओर दौड़ने लगती हैं; जहां कमजोरी होती है अथवा जहां से बीमारी के कीटाणु प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे होते हैं। इन टिकियाओं की उपमा पल्टन के सिपाहियों से दी जा सकती है। जिस स्थान पर शत्रु का आक्रमण होता है अथवा होने को होता है, उसी की ओर सेना का ध्यान चला जाता है। शत्रु जितना बड़ा अथवा जितना भयंकर होगा, उसी के अनुरूप उसके विरोध की तैयारी होगी। किंवा उसे खदेड़ने, मार भगाने अथवा हराने के लिए उतनी प्रबल शक्ति की आवश्यकता होगी।

पापाचार जितने ही भीषण होंगे, उतने ही प्रबल पुण्याचरण की आवश्यकता होगी। हमारे अन्दर पापों एवं अनाचारों से युद्ध करने की अपार शक्ति है। रावण की लंका पर राम आए थे और कंस को ठिकाने लगाने के लिए कृष्ण प्रकट हुए थे। रावण और कंस से भयभीत होने का अर्थ है कि हमें राम और कृष्ण में विश्वास नहीं है। हम यदि बुराइयों से डरते हैं, तो इसका अर्थ यह होना है कि हम अच्छाइयों की खोज से घबराते हैं। बीमार होजाने पर घबड़ाने की बजाय हमें इलाज की व्यवस्था करनी चाहिए। सब बीमारियों का इलाज होसकता है, समस्त पापों का प्रतिकार सम्भव है।

सच्चा नागरिक ?

नगर में निवास करने मात्र से ही कोई सच्चा नागरिक नहीं हो पाता। यदि ऐसा होता तो नगर में तो अनेक कीट-पतंगे और पशु-पक्षी भी रहते हैं। वे भी नागरिक कहे जाते। पर बात ऐसी नहीं है। सही माने में नागरिक वह है जिसमें सत्य, शौच, श्रद्धा, शील और समता जैसे नागरिक जनोचित सद्गुण हों। ऐसा व्यक्ति अपनी सुविधा के लिये दूसरों को कष्ट देना नहीं चाहता, सबके लिये मित्र भाव से बरतता है। फलतः उसका जीवन शान्त और सुखी बनता है। —आचार्य तुलसी

शक्ति के केन्द्र-बिन्दु

[श्री सरस वियोगी]

[बिना भव-भ्रम के छूटे मुक्ति कहाँ ? और यह मुक्ति अपने अन्तर्गत छिपी अणुशक्ति के सतत शोधन, उत्पादन और विकास में है । जब ऐसे कई व्यक्ति किसी देश जाति या समाज में उत्पन्न हो जाते हैं तो वे व्यक्ति ही शक्ति के केन्द्र-बिन्दु हैं ।]

किसी संक्रान्तिकाल में जीवन-रक्षा का एक ही उपाय है—शक्ति के केन्द्रबिन्दुओं का निर्माण और उनकी ओर प्रयाण । क्या आज यह नहीं हो रहा है ? युद्ध की भीत से संत्रस्त राष्ट्र अणुशक्ति के उत्पादन में लगे हुये हैं । भौतिक-सभ्यता में होता भी ऐसा है । भारत आत्म-प्रधान देश है । हमारे ऋषियों-महर्षियों ने अनादिकाल से अनात्म तत्व पर आत्मा के जयघोष का पाठ पढ़ा और पढ़ाया है । प्रश्न है आज के विषमता के युग में भारत पाश्चात्य ढंग पर चलेगा या उसके नव-निर्माता प्राचीन संस्कृति और शक्ति के स्रोतों से शक्ति ग्रहण करके नये राष्ट्र का निर्माण करेंगे । इसका उत्तर उन्हें देना है जिनके हाथमें शासन-सत्ता की बागडोर है पर इससे सामान्य मानस के सोचने-विचारने की पद्धति पर कोई अन्तर नहीं पड़ता । राज्य हममें होकर भी हमसे पृथक सत्ता है । उसका आधार शक्ति और दंड का है । जबकि सामाजिक जीवनकी भित्ति प्रेम, दया, करुणा, क्षमा, अहिंसा आदि सूक्ष्म विचार हैं । एक पिता अपने पुत्र के साथ वात्सल्ययुक्त कैसा व्यवहार करे, इसके लिये राज्य से पूछने नहीं जाना पड़ता । भाई-भाई, मित्र-मित्र, पति-पत्नी, परिवार-पड़ोसी आदि के अनेक सम्बन्ध हमारी स्वतन्त्र इकाई से बने हैं, उसके लिये राज्य का मुंह नहीं देखना पड़ता । राज्य तो चलती-फिरती संज्ञा है । आज यह राज्य है, कल नहीं रहेगा । असली शक्ति तो व्यक्ति और उसकी स्वतन्त्र इकाई में है जो सामाजिक रूप से अन्य वैसी ही इकाइयों से सम्बन्धित है । शक्ति का मूल स्रोत इधर है । आज जो जन-जन की शक्ति खंडित हो रही है उसका कारण उसकी दृष्टि अपने पर न होकर अपनेसे बाहर राज्य या अपने पड़ोसी पर है । हम स्वयं शोषण करते हैं पर छत पर खड़े होकर चिल्लाते हैं—शोषण नहीं होना चाहिये । स्वयं शोषण करना बुरा नहीं है··· यह मानवीय दुर्बलता हो सकती है···पर उससे जघन्य अपराध है उस शोषण को छिपाना और उसे छिपाने के लिये नैतिकता, झूठ और पाखण्ड का झूठा आवरण रचना । आज यही हो रहा है । परिणामतः न हम ऊपर उठते हैं, न समाज ऊपर जाता है और हम निरन्तर उत्थान और प्रगति की लम्बी-चौड़ी चर्चायें करते रहते हैं ।

यदि इस स्थिति में सुधार करना है और करना ही चाहिये तो व्यक्ति के लिये अनिवार्य है कि वह अपने से बाहर दोषों और बुराइयों के चक्कर में न पड़कर अपने को ही देखें । हमारे अन्दर जो शक्ति है वह अणुशक्ति है वह किसी विभु शक्ति का लघु रूप है । महत्ता को देखा नहीं जा सकता उसे जाना जा सकता है । विराट् का उद्भव कभी-कभी वातावरण को नष्ट कर देता है । उसे देखने के लिये शक्ति चाहिये जो निरन्तर संग्रह से उत्पन्न होती है । जबतक वह शक्ति अपने में संचित न हो जाये व्यक्ति को 'अणु' में ही 'विभु' का दर्शन करना चाहिये । यही भारतीय दर्शन और परम्परा में कहा गया है । पत्थर के एक छोटे से ढेले में हमने सालिग्राम भगवान को देखा है और वह भगवान हमें फले-फूले हैं । आकाश में जो सूर्य ज्योतिवान है उसे हमने प्रकाशवान न होकर प्रकाशमान कहा है । उसमें उससे पृथक सत्ता की ज्योति जल रही है । यह ध्रुव वैज्ञानिक सत्य हैं जिन्हें हमारे ऋषियों ने अपने तरीके से देखे हैं । आज के युग में यदि हमें वर्तमान सभ्यता और समाज को अन्धकार के गर्त में गिरने से बचाना है तो हमें इन मूल्यों की ओर देखना होगा और उनका पुनर्गठन करना होगा ।

शक्ति का आदि स्रोत जैसा ऊपर कहा गया है—जीव स्वयं है । उसीमें अणुरूप में विभु की सत्ता समाई हुई है । यह उसका अज्ञान ही है—अपनी स्थिति का सही ज्ञान न होना ही है···जो वह आत्म-शक्ति को अनात्म रूपों में विघटित करके अपनी स्वतन्त्र संज्ञा भूल जाता है । इसे ही माया, मद, मोह, प्रमाद की स्थिति कहा गया है । शक्ति के इतिहास में इसीलिये पहले वातावरण से मुक्ति पाकर अपने को अपने में ही केन्द्रित करना मुख्य है । जब यह केन्द्रीकरण हो जाये तब प्रश्न यह है कि शक्ति का विकास कैसे हो ? हमारे ऋषियों ने इसीलिये ध्यान, धारणा और समाधि की चर्चा विस्तृत रूपसे की है । जब भोग करके भी जीव भोग नहीं पाता—तब भोगता क्यों है ? संसारी विषयों से विमुख होकर अपने में ही यह सोचकर कि यह सब वस्तुयें कल मुझे छोड़ देंगी इसलिये मैं आज ही इन्हें क्यों न छोड़ दूं जब व्यक्ति शनैः-

शनैः विधि और बुद्धपूर्वक न रमकर और न हटकर संसार की हाट से चलता है तब वह जीवात्मा सदेह होकर भी विदेह हो जाता है और उसकी अमरता के सम्बन्ध में किंचित भी संशय नहीं किया जा सकता। शक्तिका केन्द्र-विन्दु भी यही है। यही वह परिधि है जिसके अन्तर्गत पहुँचकर फिर जीव को कुछ पाने को नहीं रहता। वह सभी कुछ पा लेता है। भारतीय जीवन में इस वृत्ति को पाने को ही शक्ति का केन्द्रविन्दु कहा गया है। जब ऐसी स्थिति हो जाये, तभी जीव संसार में घूमने-फिरने और कार्य करने में स्वतन्त्र है।

प्रश्न यह है कि जब ऐसी स्थिति हो जाये तब कार्य का प्रश्न ही कहां उठता है? यह ठीक नहीं। जबतक आत्मा शरीर नहीं छोड़ती शरीर कुछ न कुछ करता रहेगा। योगी, वीत-रागी, साधु, सन्यासी, संसारी जीवात्मा सभी के लिये कर्म का विधान है। स्वामी विवेकानन्द ने अपने कर्मयोग में इसका अच्छा विवेचन किया है। हम कुछ न करें तो भी कुछ न कुछ करना पड़ता है फिर क्यों न सोच-समझकर कुछ न कुछ किया जाये। विना विचारे जो किया जाये, उसका परिणाम अपने में पूर्ण नहीं हो सकता इसलिये सोच समझकर कार्य की रचना करना यही बुद्धिमान व्यक्तियों का कर्त्तव्य है। जब हमारा मानस संतुलित होता है, हमारे कार्य की रूपरेखा भी व्यवस्थित होती है। प्रतिक्षण उद्वेलित स्थिति में भावों का उन्मेस तो सम्भव है पर किसी महान् कार्य की रचना नहीं की जा सकती। इसीलिये ऐसे कार्यों के करने के लिये शुद्ध सात्विक वृत्ति और महान् संकल्प शक्ति का होना अनिवार्य है। पहली वस्तु को आत्मा और दूसरी को उसका सूक्ष्म शरीर कहा जा सकता है। सात्विक वृत्ति संकल्प शक्ति के साथ ही साथ बढ़ती है। प्रलोभनों की गैल बहुत लम्बी-चौड़ी है। उसमें फँसकर फिर जीव का निकलना नहीं हो सकता। जो इस गैल को भी हँसता-हँसता पारकर सके वह महामानव है। दीपक के नीचे अँधेरा होता है पर एकवार जलने का व्रत लेकर वह अपने साथ सारे वातावरण को ही ज्योतिर्मय कर देता है। यही स्थिति निष्ठावान पुरुष की है जब वह अपनी समग्र शक्ति को लेकर खड़ा होता है तो उसकी दुर्बलतायें उसके आलोक में छिप जाती हैं और उसका तेजवान यश शरीर ही अन्य जलनेवालों को स्वयं जलने और ज्योतिर्मय बनने का संकेत देता है। विना 'स्वयं' की आहुति दिये यज्ञ की ज्वाला प्रकाशमय नहीं हो सकती। 'पदरज' के एक गीत में मैंने लिखा है :—

कर्म यज्ञ में होम चुका,
जो अपने तन-मन-धन को।
कंचन सा जिसका तन है,
आवे प्रिय - आलिंगन को॥

जिस समाज में शक्ति के ऐसे केन्द्रविन्दु होते हैं वह अणु से विभु की ओर और विभु से वैभव की ओर दौड़ती जाती है। ठीक इसके विपरीत जब हम आत्म-शक्ति पर अनात्म तत्व

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

सबको प्यार करो !

[*श्रीमती विद्यावती मिश्र*]

त्याग दया ममता से पावन यह संसार करो !!
सबको प्यार करो !
बंधन में उलझे अलियों से,
शूलों पर हंसती कलियों से,
गँध भरी स्वप्निल गलियों से,
प्रकृति-नटी के प्रति निज मन में मंजुल भाव भरो !
सबको प्यार करो !!
मानव के चिर पीड़ित मनको,
तनको, यौवनको, जीवन को,
जग की व्यापकता, जन-जनको,
अपने विविध स्वरूप समझकर अंगीकार करो !
सबको प्यार करो !!
उसको जो पग में गति देता,
वर देता शापों को लेता,
मूक भाग्य की नौका खेता,
उसके चरणों पर श्रद्धा के मनहर सुमन धरो !
सबको प्यार करो !!

किसी प्रकार की भी हिंसा नैतिक व वैध नहीं है

अणुव्रत

जीवन-दर्शन

[मुनिश्री नगराजजी]

३

सामान्यतः हरएक व्यक्ति का जीवन संघर्ष-सम्पन्न होता ही है। ऐसा कौन व्यक्ति होगा जिसके जीवन में ज्वार भाटे की सी उथल-पुथल कभी भी नहीं आती हो। इसीलिये महाकवि कालिदास ने कहा था—"जीवन की दशा रथ-चक्र की तरह ऊपर और नीचे होती ही रहती है। किसने जीवन में सुख ही सुख देखा और किसने केवल दुःख ही दुःख ?* इसलिये मनुष्य को धैर्य और संयम के साथ जीवन का कंटकिल मार्ग पार करना पड़ता है। उन संघर्षों को न सह सकने के कारण मनुष्य मरने की सोच लेता है और कभी-कभी अस्वाभाविक, प्रयत्न से अपने आप मर भी जाता है। उसे आत्म-हत्या कहते हैं। आत्म-हत्या के नाना प्रकार होते हैं विष खा लेना, फांसी ले लेना, कूएँ-तलाव व नदी में डूब मरना, अपने-आपको शूट कर लेना, ऊँची इमारत से गिर पड़ना व रेल की पटरी पर सो जाना आदि आदि। आत्म-हत्या के तरीकों की तरह आत्म-हत्या के कारण भी स्पष्ट हैं। सट्टे आदि में धन खो देना, गृह-कलह का उग्र रूप लेना, व किसी के प्रेम तथा मोह में आसक्त होना और इस युग में चला हुआ नया कारण परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाना आदि।

कुछ व्यक्ति कहा करते हैं "आत्म-हत्या नहीं करूँगा।" इस प्रकार के नियम की कोई महत्ता नहीं हैं। मरने की स्थिति पर पहुँचा हुआ व्यक्ति क्या कभी अपने नियम की बात याद करेगा? इसमें तो कोई दो मत नहीं होगा कि इस प्रकार का संकल्प करना व्यक्ति को आत्म-बल देता है। नियम करते समय अवश्य उसके हृदय में ऐसा संस्कार जमता कि वे किसी भी कठिन परिस्थिति में आत्म-हत्या तो नहीं करूँगा। वह संस्कार व्यक्तिको आत्म-हत्या करने की स्थिति तक पहुंचने से पहले ही अवश्य रोकेगा। अपघात की ठान लेने के पश्चात् भी केवल पिछली प्रतिज्ञा को याद कर यह अपघात करते-करते बचा; ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं। इसलिये नियम की उपगिता अक्षुण्ण है।

कुछ लोग इस विषय में यह भी कहा करते हैं, अपने आप कौन मरता है, जीवन सबको प्रिय है। आदमी सबसे अधिक चिन्ता अपने जीवन की रखता है। धन भी उसे प्रिय है पर जब डाकू पिस्तौल तानकर तिजोरी की कुंजी मांगता है तब कोई भी व्यक्ति प्राण रक्षा के हेतु डाकू के कथनानुसार कुंजी उसे सम्भलाता है और अपना सब धन खोकर भी प्राणों की रक्षा करता है। ऐसी स्थिति में मैं आत्म-हत्या नहीं करूँगा इस प्रकार के व्रत ग्रहण का क्या महत्व?

यह कहना ठीक है कि धन से भी प्राण अधिक प्रिय होते हैं पर यह ध्यान रखना चाहिये निराशा, अपमान आदि ऐसी स्थितियाँ हैं जो बहुत बार प्राणों के महत्व पर भी छा जाती हैं। जापान के लोग तो इस विषय में बहुत आगे हैं। निन्दा, तिरस्कार आदि कारणों से 'हाराकिरी' (आत्म-हत्या) कर लेना श्रेयस्कर समझा जाता है। वहां की राजकीय व्यवस्था में वह अपराध नहीं माना जाता और धर्म-शास्त्रों में पाप नहीं माना जाता। वहां आत्म-हत्यायें बहुत होती हैं। भारतवर्ष में भी यह दैन्य स्थिति बढ़ती ही पाई जाती है। बाम्बे यूनिवर्सिटी, मध्य में रहे उच्चतर घंटाघर पर किसी विद्यार्थी को चढ़ने नहीं दिया जाता क्योंकि परीक्षा का असफल परिणाम सुनते ही वहां से गिरकर कुछ विद्यार्थी आत्म-हत्या कर चुके हैं। बाम्बे सरकार को परीक्षा परिणाम प्रकाशित करने के दिन समुद्र के किनारे, रेल की पटरियों व तथा इस प्रकार के अन्य स्थानों पर पुलिस की विशेष व्यवस्था करनी पड़ती है। दिल्ली में कुतुबमिनार पर किसी अकेले आदमी को चढ़ने नहीं दिया जाता क्योंकि वहां से अब तक अनेक आत्म-हत्यायें हो चुकी हैं। आत्म-हत्याओं के सारे आँकड़े यदि मिलाये जायें तो एक वर्ष में सारे देश में दश, बीस हजार की संख्या होगी। केवल उत्तर प्रदेश में सन् १९५४ में १०८०८ आत्म-हत्यायें सरकार की जानकारी में आई हैं। अभी सौराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने बढ़ती हुई आत्म-हत्याओं से घबराकर इस सम्बन्ध में एक विशेष समिति नियुक्त की है। वहां विगत छ महिनों में २८२ महिलाओं ने आत्म-हत्यायें की ऐसा सूचित किया गया है।* अस्तु यह अत्यन्त आवश्यक है जन-जन में छायी हुई आत्म-भीरुता का दैत्य शीघ्रातिशीघ्र मिटे, आत्म-हत्या के कारणों की खोज लगाई जा रही है, गरीबी, प्रेम में असफलता, अपमान आदि कारण हैं; पर इन सबमें आत्म-बल व सहिष्णुता का अभाव प्रमुख है। मरना कौन चाहता है ऐसा कहनेवाले वस्तुस्थिति से परे हैं।

दूसरी बात आत्म-हत्या को सभी धर्मों में एक महापाप माना गया है और वह

* उच्चर्गच्छत्युपरिच दशाचक्रनेमि क्रमेण कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।

* नवभारत टाइम्स बम्बई ११-११-५५

राज्य नियम से भी भारी अपराध है। अणुव्रती के जीवन में कैसी ही प्रतिकूल स्थिति क्यों न आये उसे उसका सहिष्णुता व आत्म-बल के साथ सामना करना चाहिये। जीवन के कष्टों से घबराकर आत्म-हत्या की सोचना कायरता और क्लीपता है जबकि अणुव्रती का ध्येय आत्म-बल को बढ़ाना है।

अनशन

अज्ञानवश कुछ लोग आमरण अनशन को भी आत्म-हत्या समझ लेते हैं, यह भूल है। अनशन में और आत्म-हत्या में दिन-रात का अन्तर है।

आत्म-हत्या राग द्वेष के वश होती है और अनशन राग-द्वेष रहित होकर आत्म शुद्धि की भावना से किया जाता है। वह तो परम पुरुषार्थ का परिचय है और मृत्यु के सामने निर्भयता है जबकि आत्म-हत्या परम कायरता और मोह दशा का परिणाम है।

शील रक्षा

शील की रक्षा के लिये कभी-कभी सती स्त्रियों को प्राण उत्सर्ग कर देने पड़े हैं। वह भी आत्म-हत्या नहीं है। वहां उस वीर महिला की भावना जीवन मोह से ऊपर उठकर आत्मा की एक सनातन सत्ता पर केंद्रित होती है और वह अपने शील का महत्व प्राणों से बहुत ऊँचा आंकती है जैसे कि आंकना ही चाहिये।

गर्भ-हत्या

गर्भ-हत्या अवांछनीय कर्म है जो प्रायः पिछले पाप को ढांकने के लिये किया जाता है। एक पाप कर फिर दूसरे पापका आवरण उस पर डालना यह धोखा कुछ व्यक्तियों के साथ चल सकता है पर आत्मा के साथ नहीं। गर्भ हत्या की भावना में शिशु-हत्या की बात भी आ जाती है। शिशु-हत्या के कुछ कारण और भी हो सकते हैं। लड़कियों को जनमते ही मार देना यह भारतवर्ष की कुछ सभ्य कही जानेवाली जातियों में चला और कुछ अंशों में आज भी मौजूद हैं। वस्तुतः उस प्रकार की शिशु-हत्या व गर्भ-हत्या मानवता की भी हत्या है।

प्रसव के समय जबकि माता और शिशु दोनों का जीवन खतरे में हो उस समय के चिकित्सा-प्रयत्न गर्भ-हत्या के नियम में नहीं आते हैं।

हत्या व विध्वंसात्मक प्रवृत्ति

सभ्य समाज में किसी की हत्या करना एक पाशविक वृत्ति है तो भी विचार और प्रवृत्तियों की असहिष्णुता किसी की हत्या कर डालना समाज में एक बिमारी के रूप में मौजूद है ही। निकट भूत और सुदूर भूत के इतिहास पृष्ठ ऐसी घटनाओं से रक्त-रंजित हैं और वर्तमान में उठती हुई संघर्षमूलक व हिंसानिष्ट भावनायें तथाप्रकार की दुर्घटनाओं के लिये सभ्य बनायें और आसार लिये प्रस्तुत है। अणुव्रती को तथा प्रकार के वातावरण से ही कोसों दूर रहना अभिष्ट है।

हत्या के नानाप्रकार हैं। कुछ हिंसायें व्यक्तिगत होती हैं जिनका हेतु वैयक्तिक द्वेष या स्वार्थ पोषण होता है। कुछ हत्यायें सामूहिक प्रयत्न का परिणाम होती हैं। वैयक्तिक हत्यायें सर्व सम्मति से निंद्य हैं ही; सामूहिक हत्याओं के विषय लोग देश की भलाई, अन्याय का प्रतिकार आदि सिद्धांतों की भी आड़ लेते हैं। विचारों की गहराई में पहुंचने से किसी प्रकार भी तथा प्रकार की हिंसा व तोड़ फोड़ मूलक प्रवृतियों को नैतिक व वैध नहीं बताया जा सकता।

[क्रमशः]

यह हार क्या है?

[श्री रामकुमार शर्मा]

पूछते हो तुम कि यह संसार क्या है?
और इस जीवन-जलधि का सार क्या है?
है जटिल यह प्रश्न, उत्तर भी सहज है,
पर न नाविक सोचता, उस पार क्या है?

खेल जीवन से किया, उसको मिटाया
और अब हो पूछते, आधार क्या है?
नाव जब मझधार में, तब डांड पकड़ा
और अब हो पूछते, यह हार क्या है?

हार की जब प्राप्ति हो, तुम जीत समझो
क्योंकि निकली हार से ही जीत है रे!
हो सदा संघर्ष विघ्नों से तुम्हारा
क्योंकि मन्मन से मिला नवनीत है रे!

वाणी दो ! हृदय दो !! प्यार भरो !!!

[श्री पुरुषोत्तम खरे]

शिल्पकार, पत्थर को
प्रतिभा का रूप नया
जब देने लग गया
गूँजी आवाजें तब
ठहरो ! पहले मेरे
प्रश्नों का उत्तर दो……

× × ×

क्या जड़ को—
देह दे सकोगे तुम ?
नयन गढ़ोगे लेकिन
भर पाओगे उनमें
दृष्टि की उजाली ?
वक्ष मढ़ोगे लेकिन
हृदय - प्राण - साँसों-
के स्पन्दन से खाली !
स्थिर मुस्कानों वाले
ओठों को वाणी-
शब्दों का धन
ज्ञान विचारों से
अनुप्राणित मन ;
नेह दे सकोगे तुम ?
नहीं………नहीं ………
तो फिर क्या अर्थ ?
कला - सृजन — व्यर्थ
अच्छा हो अपना श्रम
प्रतिभा का संवेदन
समय — लगन
'जड़' जैसे ही हैं जो-'चेतन'
उनको सचमुच चेतन
करने में ही—रत करो !
पत्थर में प्रतिभा का
प्रतिस्थान — मत करो
दे सकते हो—
वन्दी ओठों को वाणी दो !
भर सकते हो
'जड़'-से 'हृदयों' में—
नेह - भरो - प्यार भरो !
कांति म्लान मुखड़ों को
क्षुब्ध - त्रस्त दुखड़ों को
मुस्कानें — गान दो
हलचल को क्रन्दन को
अभिशापित जीवन को
ज्योति—नेह दान दो
स्पन्दन दो—हृदय दो
सृष्टि की पुकारों को
शान्ति की भुजाओं को
आश्रय दो — अभय दो

—o—

गद्यगीत— **स्वतन्त्र आत्मा**

— श्री जीवनप्रकाश जोशी —

सैयाद के सुनहरे पिंजरे में वन्दी पन्छी ! जिसकी आँखों में आंसुओं की मोटी पर्त जमी है। कल ही तो नीले आकाश की स्वच्छन्द उड़ान, हरी हरी शाखों का मन-मोहक केलि-कलरव और अपनी प्रिय-विहगी के साथ बसेरे का निश्चिन्त विहार…यह सभी कुछ उससे क्रूर जगत के मानव ने छीना है। कल की स्वतंत्रता की याद, आज उसके विद्रोह में धधक रही है…और सैयाद उसका सौदा करने के लिये उत्सुकता से बैठा अट्टहास कर रहा है। कल वह महलों में अपने वन्दी समाज के साथ वन्दी बनकर रहेगा। आह ! गुलामों का कठोर सौदा, मानव समाज के स्वार्थ की निष्ठुर खिलवाड़—अजीब विडम्बना है भूत, वर्त्तमान और भविष्य के चक्र की। मगर नहीं—वह अपनी स्वतंत्रता के जन्म-सिद्ध अधिकार को नहीं खो सकता—नहीं खोयेगा। पींजरे की सुनहली तीलियों से वह अपने शरीर का बलिदान देकर अपनी तड़पड़ाती हुई आत्मा को मुक्त करेगा। इस शरीर का बलिदान……जो मिट्टी की सुन्दर कला भर का प्रतीक है।

× × ×

काले भविष्य का सवेरा…पंछी का सौदागर—सैयाद का पींजरे की ओर जहरीला दृष्टिपात ! ओह, भीषण वज्रपात—पींजरे की तीलियों से खून चू-चूकर चारों ओर फैला पड़ा है। अपनी चोंच में पींजरे की एक तिरछी तीली दावे पंछी का शरीर मौत की छाती पर अचेत पड़ा है। फैले हुए खून से ध्वनि उठ रही है—"स्वतंत्रता प्राणी का जन्म-सिद्ध अधिकार है। उसे क्रूर सैयाद, स्वार्थी समाज और मानवीय आघात नहीं मिटा सकते—नहीं खरीद सकते— कभी नहीं…स्वतंत्र आत्मा अजेय है ! अमर है !! अनन्त है !!!

एक कहानी—

सरलता का सौन्दर्य

[मुनिश्री सुखलालजी]

[एक ओर जबकि द्वेष, घृणा और ईर्ष्या आदि ने उन्हें कुरूप बना दिया था, उनके हृदय में पत्थर सी कठोरता भर दी थी वहीं दूसरी ओर सरलता के सौंदर्य ने उस कुरूपता को नष्ट कर दिया, चट्टान की कठोरता को क्षणभरमें पिघलाकर पानी-पानी कर दिया और...... सम्पादक]

भला सरला को कौन नहीं जानता ? छोटे-छोटे हाथ, छोटे-छोटे पर, प्याले सी गोल-गोल आंखें, धोले-धोले दूध से दांत और भौंरे से काले स्याह बालवाली सरला किससे छिपी रह सकती है पर इससे भी बढ़कर उसका परिचय है—उसकी निश्छल चंचलता। वह जिधर से निकल जाती है उधर मानो उदासी आई ही न हो। सेठ रामलाल के घर में तो मानो वह बिजली ही है। वह जबतक जगती है तबतक घर में प्रकाश रहता है और सो जाती है तो जाने सारे घर में अंधेरा ही हो। उसके भोलेपन में इतना खिंचाव है कि बड़े-बड़े मननशील व्यक्ति भी उसमें चक्कर खा जाते हैं। कुर्सी की आड़ में छिपकर अपनी आंखों पर हाथ रखकर जब वह कहती है मुझे खोज लो तो बड़े-बड़े समझदार व्यक्ति भी अपनी आंखों को मुस्कुराते उसे खोजने से अपने को नहीं रोक सकते। उसके सफेद छोटे-छोटे दांतों में अपनी अंगुली देकर और उसके कट जाने पर 'ओह' कहने के आनन्द को भला कौन छोड़ सकता है ! पैसे को अपने हाथ में छिपाकर हाथ को उछालकर जब वह कहती है पैसे को वह कौआ ले गया तो सयाने-सयाने उसके चकमे में आजाना पसन्द करते हैं। उसके दादा की लकड़ी के घोड़े पर सवार होकर कौन बच्चा गर्वित नहीं होता होगा ? यहाँ तक कि सेठ रामलाल भी; सरला जब उसकी गोद में बैठकर दाढी खींचने लगती है; तो फूले नहीं समाते। उसके शरीर की लचक, आंखों की मटकावन, हाथ पैरों की भाव-भंगिमा बड़ों-बड़ों को ढहा देती है। आती है तो नाचती थिरकती, जाती है तो एकदम बिजली-सी। पहले क्षण रोती है और दूसरे ही क्षण जबकि आंसू गिरते रहते हैं वह खिल-खिलाकर हंस पड़ती है। धूल मानो उसके आभूषण हो जाते हैं। उसकी तुतली बोली में एक अनघड़ मिठास है। जो छूटते नहीं बनता। भाई की टोपी, दादा की ऐनक, चाची की चूड़ी, काका के जूते और बहिन की ओढनी ओढकर जब वह खिलखिलाने लगती है तो बड़ी-बड़ी अभिनेत्रियां उसके सामने मात खाती हैं। बड़ों पर उसका जादू चलता है और छोटों पर उसका अनुशासन। छोटे-छोटे बच्चों को उसकी रेलगाड़ी में डिब्बा बनना ही पड़ता है। कभी-कभी वह स्वयं भी डिब्बा बन जाती है पर दूसरों के इंजिन के काम को चलाने की असफलता पर उसे तिलमिलाहट आजाती है और आखिर इंजिन का रूप धारण कर सूं-सू करती हुई उसकी गाड़ी उधर से इधर और इधर से उधर दौड़ लगाती ही रहती है। मन होता है तो सौ बातें करेगी, मन न हो तो टसकेगी तक नहीं। किसी को प्यार करेगी तो उसकी हद नहीं रहेगी। बिगड़ जायेगी तो मुंह को बिगाड़कर रुद्र का स्वरूप धारण कर लेगी। हाथ में डंडा आया तो सबको पीट डालेगी।

इसी प्रकार एक दिन उसके चचेरे भाई ने उसकी बात नहीं मानी। उसे तेजी आई और डंडे से उसको पीट डाला। वह भी काच का बर्तन था, रो पड़ा। कुछ तो जोर से लगी ही थी, कुछ गुस्सा आ गया, फुफकियां भरने लगा। उसकी मां दौड़ी आई और सरला के दो चपत जमा दी। अपना बेटा बड़ा जो होता है। आगे पीछे देखे बिना ही यह काम हो गया। वैसे इनके हंसने और रोने पर शायद कोई ध्यान नहीं देता पर आज अचानक सरला-की मां भी उधरसे आ निकली। देवरानी द्वारा सरला को पीटा देख उसका भी खून खौल उठा। बच्चे आंसू पूंछ-पूंछकर साथ खेलने लगे पर इधर एक विष वृक्ष का वपन हो गया। देवरानी जिठानी में आपस में ठन गई। जिठानी ने कहा—तुम्हें दया नहीं आती बच्चे को इतनी निर्ममता से पीटती हो। थोड़ी डांट दिखाने से भी तो काम चल सकता था। देवरानी काम करते-करते झुंझलाई हुई तो थी ही; बस अग्नि में घी पड़ गया। तड़ककर बोली देखा तुम्हें ! आई हो बेटी का पक्ष लेने ! यदि घाव इतना जलता है तो पहले इसे ढंककर क्यों नहीं रखा ? बेटी का मोह आता है तो पहले इसे वश में रखती। मार कौन खा सकता है ? पहले इसने ही तो सुरेश के मारी थी। देखो, बिचारे के अब तक डंडे का चिह्न पड़ा है तिस पर भी उल्टी मुझे ही

घुड़कनी हो। पहले अपनी लाडली को समझाओ रोज-रोज मार तुम खा सकती हो, दूसरा कोई नहीं।

बस इधर भी होम में आहूति पड़ गई। बोली—बच्चों की लड़ाई में बड़े पड़ते होंगे। दिन में दस बार रोते हैं और दस बार हंसते हैं। हम कहां-कहां निगाह रखेंगे? सुरेश भी तो न जाने इसे कितनी बार पीटता है। आपस में लड़ लिये होंगे। तुम्हें बीच में बोलने का क्या अधिकार था?

देवरानी—ओह! मुझे तो कोई अधिकार नहीं था और खुद सिंहनी बनकर आई हो। पर जानती हो मैं तुम्हारी बन्दर घुड़कियों से डरनेवाली नहीं हूं। ये लाल आंखें कहीं और दिखाना। मुझपर तुम्हारा रोब नहीं जमेगा।

जिठानी—हां मैं तो अपने घर में सिंहनी हूं। तू होगी·········!!

देवरानी—अच्छा; सिंहनी हो तो जाओ खाओ घर में······!!! हम तो सिंहनी के साथ नहीं रह सकते। दिनभर काम करती हूं, सबकी जूठन उठाती हूँ, बैल ज्यों दौड़ती हूं तिस पर भी यह रोब? सेठानी की तरह दिन भर बैठी रहती हो काम करो तब पता चले। जाओ अपना घर अलग बसाओ। चार आंखें हो जायेंगी दो दिन में। मैं तो धाप गई तुमसे।

जिठानी—चलो; देखा तुम्हें! कुत्ता कहता है गाड़ी का बोझ मैं उठाता हूँ। तुम्हारे बिना घर नहीं चलेगा? गांठ में पैसा है तबतक तुम्हारे जैसी बीसों आती रहेंगी।

बस! फिर क्या था? दोनों ओर मुट्ठियाँ बंध गई। शाम को सेठ रामलाल दुकान से आये। ज्ञानचन्द और मोतीलाल भी साथ थे। देखा, घर में हड़ताल है। न रसोई बनी और न लालटेन जली। दोनों बहुएँ कोप घर में सोई हुई हैं। नौकर और रसोइया भी परेशान है। दोनों भाइयों ने अपनी-अपनी पत्नी को समझाया। छोटी ने अपने पति से कहा—देखोजी! इस घर में तुम्हारा स्थान क्या है? गधे की तरह दिन भर खटते हो और नाम होता है तुम्हारे भाई का। खैर, नाम भी हो पर छोटे के प्रति स्नेह तो होना चाहिये। तुम्हें वे समझते क्या हैं? एक नौकर के सिवाय और कुछ नहीं। ऊपर के ऊपर रुपये उड़ाते हैं। देखते हो; जिठानी की नई साड़ियां कहां से आई हैं। क्या पीहर से? नहीं; पीहर से तो मुझे मंगानी पड़ती हैं। तुम्हारे जैसे मिले कि मुझे कपड़ों के लिये तरसना पड़ता है। यह तो मेरा पीहर ठहरा जो तुम्हारी और मेरी दोनों की आवश्यकतायें पूरी कर रहा है। नहीं तो आंखें चार हो जातीं। अब भी कहती हूं अलग हो जाओ। अभी तक कुछ नहीं बिगड़ा। मेरे पीहर का धन भी काफी है। थोड़ी सहायता वे फिर कर सकते हैं। अलग होकर आरामसे दुकान करना। अपना धन अपना है।

ज्ञानचन्द ने भी जैसे तैसे कर श्रीमतीजी के मौन को तुड़ाया। बोली तो गरजकर बोली—देखाजी तुम्हारा बड़प्पन! बड़ाई के गर्व में फूलते हो प धरा क्या है इस बड़प्पन में? पीछे से कैंचियां चलती हैं। सामने हाथ जोड़ते हैं। बच्चे हैं बच्चे हैं—कहकर सिर पर चढ़ा लिया। अब बराबर की टक्कर लेते हैं। देखा नहीं अपने छोटे भाई को। रोज सिनेमा देखने को चाहिये। दिनमें तीन ड्रेसें चाहिये। चाय-पान का खर्चा अलग। पाकेट खर्चा अलग। और न जाने क्या-क्या करता होगा? लोग अँगुलियाँ उठाते हैं। कुछ कुल परम्परायें भी तो होती होंगी। यदि उसका ऐसा ही चाल चलन रहा तो मुझे तो डर है कहीं लोग तुम्हें कुछ नहीं कह बैठे। ऐसों के साथ रहकर पैसे और इज्जत की हानि के सिवाय और क्या हाथ लगेगा? मैं भी अपनी देवरानी से तंग आ गई। बार-बार मोसे मारती है। मैं तो नहीं सह सकती। अलग झोंपड़ी करवा दो इनको। मैं तो अब इनके साथ किसी भी तरह नहीं रह सकती।

ज्ञानचन्द बोल नहीं सका। पत्नी की तर्क के आगे अचकचाता हुआ उसे समझाने लगा—अरे! बड़ों को बड़ा सहन करना पड़ता है। समय पर छोटों की गालियां और यहां तक कि मार भी सहन करनी पड़ती है। वे इन छोटी-छोटी बातों में अपना बड़ापन खो दें तो संसार उजड़ न जाये। तुम कहती हो मोती पैसे उड़ाता है सो तो उसे अधिकार भी है। पैसा आखिर उसकी ससुराल की बदौलत ही तो मिला है। उसमें तुम्हें और मुझे कहने का अधिकार ही क्या है?

"अच्छा जी! बड़े बनो तुम!! हम तो छोटे ही रह जायेंगे। मुझे बड़प्पन की भूख नहीं। सिर पर लाठियां भी पड़ती रहें और कहा जाये टसको मत। मार खाये जाओ। हम तो नहीं खा सकते। तुम्हारे करम में मार खानी रखी है सो खाये जाओ। अलग नहीं हुये तो मैं तो अपने पीहर जा रहूंगी। बैठे मौज करना और भाई को समझाते रहना। पैसे का मोह आया है। धरा क्या है इन पैसों में? एहसान के बदले मुसीबत का भार अच्छा यों ढुकेल होकर आखिर कबतक जीवन निकालोगे? स्वतन्त्रता की अपनी टूटी झोंपड़ी ही अच्छी। उसमें आदमी किसी का दबेल तो नहीं होता। और फिर हमारे भी तो दो हाथ हैं। मजदूरी करेंगे और खायेंगे। साथ तो अब किसी भी हालत में निर्वाह होना सम्भव नहीं!"

ज्ञानचन्द दंग रह गया। पत्नी की तर्क-

तीक्ष्णता के आगे उसकी गम्भीरता हिल उठी। साथ में डर भी था। सचमुच ही श्रीमतीजी कहीं चली न जाये। बोले नहीं; चुपचाप सो रहे।

सुबह दोनों भाई पिता के पास आये। स्थिति न जाने कुछ और ही हो गई। बच्चों की लड़ाई न जाने कहां नीचे दब गई। वर्षों का उत्तप्त असंतोष आज अंकुरित हो गया। दोनों ओर के अन्तिम निर्णय सुन सेठजी भी चकरा गये। भाईयों में दोनों में एक दूसरे को कहने का साहस नहीं हो रहा था पर अन्तर में उनके भी द्वैष पैदा हो गया। सेठजी की आंखे गीली हो गई। कहा—अच्छा भाई जो तुम्हारी इच्छा हो। बुढ़ापे में इन दुर्दिनों को देखने के लिये ही शेष रहा था जो था लिये। थोड़ा और जीना है निभा देते तो अच्छा रहता पर अब तुम्हें अन्तिम आदेश मिल चुका है। मेरी कहां से मानोगे। खैर .... ।

इधर दोनों बहुएं अपने कमरों से नहीं निकली पर बच्चों के कौनसी गांठ थी? सारे इकट्ठे हुये और वही सदा की भांति गाड़ी दौड़ने लगी। सरला अपने साथ बिस्कुट लाई थी। सारों को बांट-बांटकर खाने लगी। खेल से निवृत हो वह चाची के कमरे में चली गई। चुपके से छिपकर चाची की आंखोंपर हाथ रखकर उससे पूछा—बताओ कौन है? क्रोध कोई सारे दिन थोड़ा ही बैठा रहता है। मीठी-मीठी बोली और कोमल-कोमल हाथों ने चाची को पिघला दिया। उसने सरला को खींचकर अपनी गोदी में बिठा लिया। सरला ने अपनी जेब में से बिस्कुट निकालकर चाची के मुंह में दबाना चाहा। चाची ने मुंह खोला तो उसने वापिस हाथ खींच लिया। चाची अपने को भूल गई और सरला के साथ खिलखिलाने लगी। चाची ने उसे पकड़ना चाहा वह छोड़कर एकदम बिजली-सी भाग चली।

चाची ने देखा—सारे बच्चे साथ खेल रहे हैं। सरला सुरेश को प्रेम के साथ बिस्कुट खिला रही है। उसका हृदय पिघल गया। उसकी आंखों के सामने कल और आज, सरला और सुरेश, स्वयं और जिठानी तैरने लगे। उसे अपने पर ग्लानि आई। कहां वह और कहां सरला! वह द्रवित हो गई और बढ़कर जिठानी के पैरों में गिर पड़ी। विनय ने क्रोध को जीत लिया। जिठानी को शर्म आने लगी। वह उसकी नम्रता के प्रवाह में डूबने लगी। दोनों एक दूसरी से गले लग कर मिलीं। मानो आज उन्हें नया जीवन मिला हो। दिन भर की हड़ताल टूट घर की उदासी दूर हो गई।

शाम को सेठजी घर पर आये। आज घर का रूप कुछ और ही था। अपने जीवन में घर में इतनी स्फूर्ति उन्होंने कभी नहीं देखी थी। उन्होंने स्थिति को जाना और कहने लगे—"सरलता जीवन में दीपक है। उसके बिना जीवन सूना और रूखा है।"

—:x:—

"मैं"

[श्री देवदत्त गुप्त 'देव']

जड़ चेतन में मेरी छाया
मैं सूर्य, चन्द्र की द्युति बनकर, ज्योतित करता जग को आया।
मैं पुरुषों में पुरुषत्व बना
पावस में भूतल की सुगन्ध
सब पुष्पों के कोमल तन में
बसने वाली मैं अमर गन्ध।
योगी करता है तप कठोर
पाकर मेरी जीवन-तरङ्ग
मैं तेजस्वी का तेज नया-
जो उर में दे साहस-उमङ्ग।
बलवानों में हूं शक्तिरूप
निष्काम कर्म की सतत लगन
मैं शास्त्रों का अनुकूल कर्म
ज्ञानी मेरे में रहे मगन।
जिसने मुझको पहिचान लिया, वह कहीं नहीं भ्रम में धाया।
जड़ चेतन में मेरी छाया।

आत्मानुशासन

[श्री आचार्य सवें]

अभी तक दूसरों को उपदेश देने का मार्ग हमने अपनाया है। परिणामस्वरूप, पतन का क्रम घटने के वजाय लगातार बढ़ता ही जा रहा है। 'कहने' में सरलता होने से मानव स्वभावतः इसे अपनाता है 'करना' दूसरों के लिये छोड़ता है। यही कारण है कि आजकल पत्र-पत्रिकाओं का चलन अधिक होता जा रहा है जिससे हमारी दीमागी ऐयाशी अवश्य बढ़ी है लेकिन मैं ऐसा सोचता हूँ कि काम अधिक नहीं हुआ। ऐसा लगता है कि इसी तरह के अन्य अनेक बाहरी उपचारों की बदौलत हमारे आत्मानुशासन का विघटन हुआ और दिन-दिन होता ही जा रहा है। इस विघटन-क्रम पर रोक लगाने की जितनी चेष्टा की जा रही है उतनी ही असफलता भी अपना सुरसा-सा मुख फैलाए जा रही है—यह अटल सत्य मैंने देखा है।

आओ काम करें

हम प्रायः अपने से अधिकार, वय, धन, ज्ञान आदि में छोटे वा आधीन व्यक्तियों को अनुशासन सिखाया करते हैं। तुमने यह नहीं किया; वह खराव कर दिया; तुम कामचोर हो; तुम वेशर्म हो; तुम्हें काम करना आता ही नहीं; तुम सदा 'लेट' आते हो और जल्दी भाग जाते हो; तुम महामूर्ख हो आदि अनेक वाक्य-वाणों से हम अपने मातहतों में दिमागी गुलामी, दैन्य, मानसिक अस्वस्थता का कुप्रसार करते रहते हैं। फिर भी हम उनसे यह आशा करते हैं कि काम सही और ठीक समय में हो—यह कितने आश्चर्य की बात है। हमें चाहिए कि हम आज और अब से 'तुम ऐसा करो, तुम वैसा करो' कहने के वजाय 'आओ हम यह करें : वह करें' वा आत्मानुशासन-मूलक शाश्वत-मार्ग अपनावें। मैं अनुभव करता जा रहा हूं कि काम को स्वस्थ मस्तिक और खुले हृदय से पूरा करने का इससे अच्छा दूसरा उपाय नहीं है कि हृदय-परिवर्त्तन प्रणाली-द्वारा प्रेमपूर्वक पूरे धीरज सहित अपने आश्रितों से काम लिया जावे—फिर वे चाहे आपके क्लर्क, कम्पोजीटर, गृह-सेवक, पत्नी, सन्तान, शिष्य आदि क्यों न हों—आतङ्कवाद वा उपदेशवाद का आश्रय लेना जहाँ आपकी मानसिक दुर्बलता का सूचक है वहाँ हिंसा का प्रवर्त्तक भी है। उससे मातहतों के आत्म-विश्वास का विघटन होने से कार्य की सुचारु प्रगति में भयावह अर्गला लगती है—इसमें कोई संशय नहीं है।

दोष-प्रदर्शन ही अनैतिकता का मूल है

अपना दोष तो देखें नहीं—अपने आश्रितों का दोष देखते रहें, इससे आश्रितों का आत्म-सम्मान विनष्ट होता है। आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास सदैव साथ-साथ जाते हैं और आते भी साथ ही हैं। इन दोनों के विनष्ट होते ही 'शालीनता' निकल जाती है। यह हम जानते ही हैं कि शालीनता ही चरित्र की जननी है। जिस शिक्षणालय, परिवार, कार्यालय वा व्यवसाय-गृह आदि में जितना ही बाहरी अनुशासन का दवाव अधिक देखा गया है उतनी ही अधिक वहाँ अनैतिकता-भ्रष्टाचार, व्यभिचार, विश्वासघात, अव्यवस्था, काला-बाजार और कलह आदि विविध रूपों में नृत्य कर रही होती है। इसके विपरीत, जहाँ व्यक्ति की योग्यता, कार्यक्षमता, पवित्रता को सन्देह की दृष्टि से दूषित नहीं किया जाता वहाँ सब कुछ सहज गतिशील रूप में क्रियमाण रहता है—यह एक दूसरा अखण्ड सत्य मैंने निवेदन किया। मैं यदि किसी व्यक्ति पर रौब गालिब करता हूं, तानाकशी करता हूं, गाली-गलौच, जुर्माना, रेस्टीकेशन, गोलन्दाजी, लाठी-प्रहार आदि करता हूं तो इससे निम्न बातों पर प्रकाश पड़ता है—

१—मैं अपनेको उस व्यक्तिसे श्रेष्ठ (सुपीरियर) समझता हूं।

२—मुझे इस बात की उतनी चिन्ता नहीं कि मेरे द्वारा प्रदत्त हीन प्रेरणाओं द्वारा उस व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक व बौद्धिक स्वास्थ्य के साथ ही कार्य की आत्मा भी विनष्ट हो रही है।

३—मैं उसे मूर्ख, नीच, दुराग्रही, कामचोर, दुश्मन आदि कुछ समझता हूं न कि अपना सहयोगी।

ऐसी हीन प्रेरणाओं से उसका आत्म-विश्वास—जिसे कि अनुभवी व्यक्तियों ने 'प्रगति का मूल' कहा है पूर्णतया विनाश की ओर अग्रसर होता है। जिससे एक ओर आपके उस आश्रित की सार्वभौम प्रगति रुकती है वहां आपके शिक्षणालय, कार्यालय, दूकान, परिवार आदि की कार्यक्षमता पर भी निश्चित रूपसे कुठाराघात होता है। जैसे कहीं भोली जनता, कुछ गुमराह लोगों के बहकावे में आकर आमजनी; तोड़-फोड़ आदि में जुट जावे तो

वह उचित मार्ग पर नहीं क्योंकि, उसने आत्मानुशासन का मार्ग अपनाने के वजाय ऊपर से विचार, व्याख्यान आदि द्वारा लादे गए अनुशासनको अपनाया अपनी 'आत्मा की आवाज' उसका आदेश नहीं सुना लेकिन वे पत्रकार, विचारक आदि उस निरीह जनता से भी अधिक कसूरवार हैं जो उसे उसकी इस भूल के लिये दुत्कारते हैं, दोष-प्रदर्शन करते हैं और उसे हीन भावना के और भी अधिक गहरे गर्त में डालने की परोक्ष तैयारी करते हैं। क्योंकि दोष मूल-रूप में जनता का नहीं और यदि हो भी तो वह दोष-प्रदर्शन, तानाकशी, लाठी-प्रहार, गोलाबारी आदि से जानेवाला नहीं। उससे तो हीनतामूलक—क्रोध, दैन्य, गुलामी, कायरता और उद्दण्डता ये पांच दुःशील और भी ज्यादह रफ्तार से जनता के हृदयमें विकास ग्रहण करेंगे—यह एक तीसरा विचित्र सत्य मैं आपकी सेवा में निवेदन करता हूँ।

सन्तुलित आश्वासन ही सही इलाज

आप अनैतिकता को निर्मूल करना चाहें तो मैं आपको मिथ्या आश्वासन कभी न दे पाऊँगा क्योंकि अनैतिकता को निर्मूल करना कदाचित् सम्भव ही नहीं। आप जो कर सकते हैं वह सिर्फ इतना ही कि खुदाई ठेकेदारी से बचकर सिर्फ अपने ही को सुधार लेवें। आपकी मन, वाणी, विचार आदि के संग से फिर दूसरे स्वतः सुधर जायेंगे किन्तु तभी जबकि आप अपने विचार उनपर थोपें नहीं अपितु; उन्हें आत्मानुशासन के स्वतन्त्र व स्वस्थ मार्ग से स्वतः अनुभव करने देवें कि आप क्या करना चाहते हैं। यह उदाहरण शिक्षा द्वारा ही सही तौर पर निष्पन्न हो पावेगा। इसे ही मैं संतुलित आश्वासन कहता हूँ। जिसमें शब्द कम किन्तु सक्रिय सहानुभूति अधिक, शिष्टाचार कम तथा सदाचार अधिक, बाहरी उपचार न्यून तथैव आध्यात्मिक उपचार अधिक यानि अहम्मन्यता न्यून तथा आत्मीयता अधिक हो वही आत्मानुशासन है। उसी के द्वारा मानव का मानव के प्रति सन्तुलित आश्वासन विषयक स्वस्थ नैतिक-कर्त्तव्य पूर्ण होने से शान्ति व कल्याण का प्रसार हो सकेगा—ऐसा मेरा विनम्र मत है।

सुखों की राहें

[श्री अनन्त भूषण]

●

कहाँ तक ले जायेंगी ये सुखों की, साधों की राहें
गुलाबी अधरों की माया चांद सी देहों की छाहें!

नयन में जल भर भर आया
हृदय में राग उभर आया
कहाँ तक जगमग जगमग सी
चाँदनी में डूबे मग सी
दूध की धुली धुली बाहें!
कहाँ तक ले जायेंगी ये!

फिसलता चलता जाता मन
रसों से भीगी एक छुवन
तृषाओं को सहला जाती
कसीली पीर जला जाती
सुखों के सूरज को छूकर
चटखतीं, खिल जातीं चाहें!

बड़ी छलना से आकुल मन
प्रणय को मथ दे एक जलन
फागुनी घन सा भारिल तन
घेरती जाती एक थकन
जाने कब तक छेदेंगी
विभव की ये जलती आहें!

कहाँ तक ले जायेंगी ये सुखों की साधों की राहें!

● *दो संस्मरण*

आज के लूट-खसोट व आपा-धापी के युग में सचाई व निःस्वार्थ सेवा तो मानों कल्पना की वस्तु बन गई है। 'नया जीवन' में प्रकाशित आचार्य श्री नरेन्द्रदेव व श्री लक्ष्मण बस्तदके इन संस्मरणों से क्या हम कुछ प्रेरणा ले सकेंगे ?

"आचार्य नरेन्द्रदेव उन दिनों काशी विश्व विद्यालय के उपकुलपति थे और नियमानुसार उन्हें कोठी और कार मिली हुई थी।

एक दिन वे किसी मामूली रिक्शे में बैठे कहीं जा रहे थे कि उनके एक मित्र मार्ग में मिल गये और आचार्य जी से बोले—'क्यों, आपकी मोटर क्या हुई ?'

सरलता से आचार्यजी बोले—'मोटर तो विश्वविद्यालय के कार्य के लिये है और इस समय मैं निजी कार्य से शहर जा रहा हूँ" हंसकर बोले—'यानी इस समय मैं वायस चांसलर नहीं सिर्फ नरेन्द्रदेव हूं।'

आश्चर्य से मित्र ने पूछा—'तो आप निजी कामों के लिये कभी मोटर का उपयोग नहीं करते !'

वे बोले—'कभी मजबूरी से घरेलू कामोंके लिये करना ही पड़ता है तो पेट्रोल अपने पैसे से डलवा लेता हूं।'

× × ×

श्री लक्ष्मण बस्तद की उम्र ५० वर्ष की है और वह नागपुर के निवासी हैं।

वे सुबह जल्दी उठकर नागपुर से ७ मिल बहादुरा गांव में जाते हैं और अपने हाथों कुए से पानी खींचकर ५९ घड़े पानी भरते हैं।

बात यह है कि उस गांव के सवर्ण हिन्दू हरिजनों को कुए से पानी नहीं भरने देते और श्री लक्ष्मण प्रतिदिन ५९ घड़े भरकर उनमें बांट देते हैं जिससे दूसरे दिन तक उन्हें पानी का कोई कष्ट न हो।

पानी भरते-भरते वे पसीनेसे तर हो जाते हैं, थक जाते हैं पर अपना कार्य करके जब वे फिर बहादुरा से नागपुर के लिये अपने ७ मिल के सफर पर चलते हैं तो उनका चेहरा प्रसन्नता से भरा होता है।

सामाजिक सेवा का यह निष्काम कार्य वे एक साल से भी अधिक से कर रहे हैं।"

● *काम-तो करो पर ....*

हम चाहे व्यक्तिगत कार्य करें अथवा सामाजिक किन्तु उनके पीछे एक ही भावना छिपी रहती है—हमारी स्वार्थ-सिद्धि कैसे हो ? तो फिर ऐसी पतित अवस्था में गीता प्रवचन में प्रकाशित विनोबाजी के इन विचारों का कितना महत्व है यह पाठक स्वयं आंके—

"जो कार्य करते हैं उनकी दुहरी भावना होती है। एक तो यह कि अपने काम का फल हम अवश्य पावेंगे यह हमारा अधिकार है और इसके विपरीत दूसरी यह कि यदि फल चखने को नहीं मिलना हो तो हम कार्य ही नहीं करेंगे। गीता इन दो के अतिरिक्त एक तीसरी ही भावना या वृत्ति बताती है। वह कहती है—"कर्म तो अवश्य करो' पर 'फल में अपना अधिकार मत मानो।' जो कर्म करते हैं उन्हें फल का अधिकार अवश्य है परन्तु तुम उस अधिकार को स्वयं छोड़ दो। रजोगुण कहता है—"लूंगा तो फल के सहित ही।" और तमोगुण कहता है "छोड़ूँगा तो कर्म समेत ही।" ये दोनों एक दूसरे के भाई ही हैं। अतः तुम इन दोनों से आगे बढ़कर सत्वगुणी बनो अर्थात् कर्म तो करो पर फल को छोड़ दो और फल को छोड़कर कर्म करो। पहले और पीछे कहीं भी फल की आशा मत करो।"

● *वास्तविक सौंदर्य ?*

बाह्य के अतिरिक्त आन्तरिक सौंदर्य नाम की भी कोई वस्तु है यह शायद आजका भौतिकवादी व्यक्ति न जानता हो किन्तु जीवनकी वास्तविकता व सत्यता से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता और जिसे 'दीदी' में प्रकाशित इन पंक्तियों में पढ़िये—

"शारीरिक सौंदर्य में बड़ी शक्ति है अवश्य ! किन्तु यह उसकी पूर्णता नहीं है। किसी नारी का शरीर कितना भी मोहक हो जब तक उसमें सदाचार या सद्-बुद्धि नहीं होती। तब तक उसे वास्तविक सुन्दरी नहीं कह सकते। इसके विपरीत चतुर एवं विदुषी स्त्री को चाहे वह कुरूप ही क्यों न हो ; कुरूपा नहीं कहा जा सकता। स्त्रीके सौन्दर्यकी वास्तविक कसौटी सदाचार, मृदुता, लज्जा, ममता और मिलनसारिता है। चाहे नारी में शारीरिक सौंदर्य न हो पर यदि उसमें प्यार और मिलनसारी है। तो वह अपनी शिष्टता और भद्रता से सबको मुग्ध कर लेती है। स्वच्छता, शान्तिप्रियता और प्रसन्नता आदि गुण नारी की विशेष शोभा माने जाते हैं। घर को 'शान्तिकुंज' इसलिये कहते हैं कि घर में सुख शान्ति बनाये रखना स्त्री की प्रमुख शोभा है। शंका, व्याधि, मतभेद ईर्ष्या कलह का निराकारण करना नारी का प्रधान कर्त्तव्य है। प्रसन्न मुख रहना भी एक प्रकार की सुन्दरता है।"

● *जानता हूं, दाम दे दो !*

अपनी सज्जनता व सहृदयता से हम किस प्रकार हृदय-परिवर्तन कर जीवन-शुद्धि का कार्य कर सकते हैं, इसका जीता-जागता आदर्श 'गीता-संदेश' की इस लघु कथा में स्पष्ट है—

"एक भक्त थे। कोई उनका कपड़ा चुरा

ले गया। कुछ दिनों के वाद उन्होंने उसको बाजार में वेचते देखा। दुकानदार कह रहा था कि, कपड़ा तुम्हारा है या चोरी का, इसका क्या पता? हाँ, कोई सज्जन पहचान कर वता दे कि तुम्हारा ही है तो मैं खरीद लूंगा।

भक्त पास ही खड़े थे और उनसे दुकानदार का परिचय भी था। भक्त ने कहा—मैं जानता हूँ, तुम दाम दे दो।

दुकानदार ने कपड़ा खरीदकर दाम चुका दिये। इस पर भक्त के एक साथी ने पूछा—आपने ऐसा क्यों किया? इस पर भक्त वोले—वह वेचारा वहुत गरीव है गरीवी से तंग आकर उसे ऐसा करना पड़ा है। गरीव की तो हर तरह से सहायता ही करनी चाहिये। इस अवस्था में उसको चोर वतलाकर फँसाना और भी पाप है!

इस वात का चोर पर वड़ा प्रभाव पड़ा और वह भक्त की कुटिया पर जाकर रोने लगा। उस दिन से वह भी भक्त वन गया।"

आत्मा और अणु

विश्व के कार्यकलापों व गतिविधियों का निमित्त वाहर से चाहे शरीर ही प्रतीत होता हो परन्तु वास्तविक शक्ति का केन्द्रविन्दु आत्मा है। 'मनोविज्ञान' में प्रकाशित श्री लालजीराम शुक्ल का यह अवतरण उसी शक्ति की व्याख्या कर रहा है—

"आत्मा की शक्ति वैसी ही विचित्र है, जैसी अणु की। इस तरह के निश्चय में तो कोई सन्देह होना ही न चाहिये। हमारा शरीर भी अनेक अणुओं का वना है। इन अणुओं में कितनी शक्ति केन्द्रित है, इसकी कल्पना कौन कर सकता है? दुवले-से दुवला मनुष्य अपने अणु की शक्ति से संसारभर की शक्ति को नष्ट कर सकता है। पर मनुष्य शरीर-मात्र ही नहीं है। वह चेतन प्राणी है और उसमें अपनेको नियन्त्रित रखनेकी शक्ति है। इतना ही नहीं वह अपने को जान भी सकता है। ये शक्तियां जड़ अणु में नहीं है। जड़ अणु न तो स्वयं गतिवान हो सकता है और न उसमें आत्म-ज्ञान की शक्ति है। जीवित अणु में यह शक्ति है, पर उसमें अपने को जानने की शक्ति नहीं है, अतएव उसमें आत्म-नियंत्रण की भी योग्यता नहीं है। चेतन अणु, जो कि मनुष्य के रूप में रहता है, न केवल शक्ति का केन्द्र है, वल्कि वह स्वयं क्रियमाण और ज्ञानवान है। अपने विषय में चिन्तन न करने के कारण ही वह दयनीय वन जाता है। आत्म-ज्ञान के अभाव में वाहरी विचार मनुष्य के मस्तिष्क में स्थान पा लेते हैं और इन विचारों के कारण ही मनुष्य अपने को संसार का तुच्छ प्राणी समझने लगता है।"

सबसे पहले प्रारम्भ करू?

वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही जीवन निर्माण में अप्रत्यक्ष रूपसे भाषा का वहुत वड़ा भाग रहता है। 'सुप्रभात' में प्रकाशित श्री रतनलाल जोशी के लेख का यह संस्मरण उसी दिशा में एक संकेत है—

"चीन का सम्राट एकवार राज्य तन्त्र-सुधार की शिक्षा प्राप्त करने के लिये ऋषि कन्फ्यूशस के पास गया। कन्फ्यूशस ने सुराज्य का मूलमन्त्र समझाते हुए कहा—राजन्! सुराज्य राजा और प्रजा की सुसंस्कृत रुचि की उपज है। सुसंस्कृत रुचि स्वाध्यायसे पैदा होती है, स्वाध्याय के लिये उत्तमोत्तम पुस्तकें चाहिये और उत्तम पुस्तकें उत्तम भाषा द्वारा वनती हैं। अतः तुम राज्य की भाषा को यथेच्छ परिष्कृत, समर्थ और प्राणमयी वनाओ। यदि मेरा वश चले तो मैं भाषा के विकासको ही सबसे पहले प्रारम्भ करूं।"

विचार कण

[सु श्री विद्या एम० ए०, साहित्यरत्न]

समय सव कुछ सिखा देता है; समय सब कुछ भुला देता है। तुम शायद समय की सीख पर चलने का प्रयत्न कर रहे हो किन्तु याद रखना हर एक सीख, हर एक समय का साथ नहीं दे पाती है।

समय का पकड़ाई देना असम्भव है। समयको पकड़ने का प्रयत्न करना पुरुषार्थ ह। उसे न पकड़ पाने की असमर्थता जीवन की हार नहीं है। उसे पकड़ पाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहना ही प्रगति और जीवन का चिन्ह है।

समय से पूर्व जव सब कुछ समाप्त हो जाता है और समय फिर भी शेष रह जाता है तव मनुष्य की एक मात्र साथिन होती है—उसकी अकर्मण्यता, उसका एक मात्र कोष होता है—उसकी असहायता और उसके एक मात्र स्थान होते हैं—उसके आँसू।

अमर साधक की साधना का अन्तिम दृश्य—

दीपक राग

[श्री परीक्षित]

काली रात वैसे ही भयानक थी पर रह-रहकर बिजली की चमक और बादलों की गड़गड़ाहट उसे और भयानक बना देती थी। इसी कोलाहल के बीच भारत का संगीत-सम्राट तानसेन विचारों में उलझा सोने का असफल प्रयास कर रहा था। पर रह-रहकर "अब क्या होगा" प्रश्न उसे रोमांचित कर रहा था कि एकाएक खटखट की आवाज़ सुनाई दी। आश्चर्य से वह उठ बैठा, एक ही क्षण में तरह-तरह के विचार उसकी आखोंके सम्मुख आकर पुनः विलीन हो गए और छोड़ गए सिर्फ एक प्रश्न कि आखिर कौन हो सकता है? दीपक के सहारे आगे बढ़कर ज्योंही दरवाजा खोला······'आप!' वह कांप उठा, कांपते हुए हाथ दीप को भी न संभाल सके। हाथ से वह छूट गया और प्रकाश की किरणें अन्धकार के वक्षस्थल पर बिखर पड़ीं। "—हाँ! मैं भारत का सम्राट। लेकिन इस समय मैं एक भिखारी हूँ। बोलो तानसेन! क्या संगीत सम्राट के दरवाजे से एक भिखारी को निराश होकर वापिस लौट जाना पड़ेगा?

"जहाँ पनाह!" प्रश्न था उसकी वाणी में।

"मैं जानता हूं, लेकिन तुम्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध भी शहजादी की इच्छा पूरी करनी पड़ेगी। तानसेन तुम्हें प्रतिदिन राजमहल में शहजादी को संगीत सिखाने जाना पड़ेगा।" कहते कहते अकबर बाहर चला गया।

× × ×

सूर्य की पहली किरणों ने तानसेन का स्वागत किया। आज वह जिन्दगी के अनोखे रास्ते पर जा रहा था और इस प्रकार वह नित्यप्रति राजमहल जाने लगा। लेकिन उसकी उंगलियों की चंचलता शिथिल पड़ने लगी। प्रतिदिन उसे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे कोई उसके बहुत ही समीप आ रहा है।

तानसेन के आगमन पर शहजादी आशाभरे नेत्रों से उसके स्वागत के लिए तत्पर रहती और वही तत्परता तानसेन की विह्वलता का कारण थी। तानी का विछोह यद्यपि उसे अबतक खटक रहा था पर शहजादी का पागलपन उसे और अधिक भयानक लगा।

समय बीतता गया और एक दिन जबकि तानसेन की उंगलियाँ बड़ी चंचलता के साथ वीणा के चंद तारों पर थिरक रही थीं, शहजादी उसके इतनी समीप आकर बैठ गयी जितनी कि वह स्वयं भी कल्पना नहीं कर सकती थी। राग समाप्त हुआ, तानसेन की आँखें खुली वह घबरा उठा और शहजादी शर्म के मारे भाग गयी। तानसेन अपनी कमजोरी पर विचार करता-करता घर लौट गया।

दूसरे दिन सुबह जब वह राजपथ पर जा तो उसका हृदय रह रहकर कांप रहा था, जैसे आज कोई भयानक घटना होने वाली हो।

"आप आ गए··········"

"हाँ शहजादी साहिबा! आखिर मैं आपका गुलाम हूँ न।"

"लेकिन मैं तो··········"

"शहजादी! यह तुम्हारी भूल है। वह चीज तो मैं तानी को दे चुका हूँ जो कि वर्षों पूर्व मुझसे जुदा कर दी गयी है।"

"लेकिन शायद तुम यह भी जानते हो कि मैं······कौन हूं?"

इसका उत्तर मैं कल दूंगा।

× × ×

प्रतीक्षा करते-करते शहजादी थक गयी किन्तु तानसेन नहीं आया।

लगभग आधी रात को शहजादी के द्वार पर खटखट की आवाज हुई। दरवाजा खुला और तानसेन आसन पर जा बैठा। प्रतिदिन की अपेक्षा आज वह अधिक प्रसन्न था। मौन तोड़ते हुए तानसेन ने कहा—शहजादी! आज मैं तुम्हें दीपक राग सुनाऊंगा।

"दीपक राग······!" वह घबड़ा गई क्योंकि वह उसका परिणाम भी जानती थी।

सारे दीप बुझा दीए गए। वीणा के तार झंकृत हो उठे। एक, दो, तीन और इस प्रकार बुझे दीप जलते गए और जलता गया तानसेन का शरीर।

अमृत-कण

❂ कष्टों और आपत्तियों से ही मनुष्य के चरित्र की उज्ज्वलता दिखाई पड़ती है और जब सब असफल होते हैं तो वह अपने साहस और सत्ता के कारण ही दृढ़ रहता है।

—सेम्युल स्माइल्स

❂ चरित्र एक शक्ति है, प्रभाव है। वह मित्र उत्पन्न करता है, सहायक और संरक्षक प्राप्त करता है और धन-मान तथा सुख का निश्चित मार्ग खोल देता है।

—जे॰ हावेज

लड़खड़ाती मानवता को युग-युग तक सहारा देनेवाली

✡ संत वाणी ✡

जीने का अर्थ

[मुनिश्री श्रीचन्दजी]

मानव जीना चाहता है, इसलिए नहीं कि वह जीना जानता है, पर इसलिए कि वह जीना चाहता है। जीने का अर्थ होता है, अन्दर की आग को बुझने न देना, मानस की चेतना को कुंठित न होने देना, पर आज का भूला मानव जीने की यह पूरी परिभाषा करता हो और उसे निभाता हो इसमें मुझे सन्देह है जीवन इतना ढीला और ठंडा होगया कि उसकी ढीली शांति, अब बिना उत्क्रांति के मिट जाये यह संभव नहीं, वह नैतिक-आदर्शों की गरिष्ठता को पचालेगा, इन्कलाब की भारी खुराक को हजम कर लेगा यह उसके लिए मन माने सत्य के सिवाय और कुछ नहीं रहा। जीवन में एक नई चेतना आये, यह वह चाहता है और दिल से चाहता है और इसी-लिए तो वह सदा से आदर्शों के पीछे दौड़ा है पर वह आदर्शों के अमृत तक नहीं पहुँच सका और न उसे समझ ही सका। फल यह- हुआ कि वह आदर्शों की रमणीयता में उलझकर आदर्शों को जीवन से दूर एक (वाद) बना डाला। आदर्श और यथार्थ की इस भारी खाई को वह अभी तक न पाट सका क्योंकि—दिल और दिमाग का संतुलन जो खो बैठा।

किन्तु अब जीवन के उत्कर्षों को नापने का समय नहीं, समय है निष्प्राण जीवन में एक जिन्दादिली भरने का, नई चेतना फूंकने का, ठंडे जीवन में क्रांति की आग जलाने का और ढीले जीवन को नैतिक शृंखला में कसकर सशक्त करने की जरूरत है हाथ में मसाल लेकर भविष्य का पथ दिखाने की।

अणुव्रत यह सब कुछ कर सकता है। मानव को अणुव्रतों पर श्रद्धा है इसलिए नहीं कि वह वह एक नया प्रयोग है, पर इसलिए कि अणुव्रतों में उसके जीवन की सुकुमार कल्पनायें छिपी है। उसे भविष्य की सुन्दर आशायें, और संभावनायें दीख पड़ती हैं, केवल इसीलिए कि विज्ञान के युग में अणुव्रत अणुबम की टक्कर का है। सच तो यह है कि उसके विनाश पर वह सृष्टि करता है वह बिगाड़ता है और यह बनाता है, बिगाड़ना सरल होता है, पर बनाना भारी पड़ता है।

मर्यादित जीवन

[मुनिश्री सोहनलालजी]

सभी महाव्रती नहीं बन सकते अतः अणुव्रतों की अवश्यकता हुई। अणुव्रत नये नहीं। बारह व्रतों के ही पहले ५ व्रत हैं। जीवन मर्यादित होना आवश्यक है। मर्यादा विहीन जीवन किस काम का? मानव विभिन्न उपासना व सेवा की क्रिया करता है। उपवास, पूजा, सामायक आदि अच्छे हैं किन्तु साथ ही साथ व्यवहारिक जीवन में सचाई व ईमानदारी आवश्यक है। अणुव्रत आन्दोलन और कुछ नहीं वह व्यवहारिक जीवन को उन्नत बनाना चाहता है। वह जन जन में व्याप्त बुराइयों को खत्म करके अच्छाईयों को ग्रहण करना सिखाता है। मैं सबसे कहूंगा कि स्वयं अणुव्रती बने व इन नियमों का प्रत्येक घर, समाज व राष्ट्र में प्रचार करें।

भगवान महावीर और जातिवाद

[मुनिश्री सागरमलजी]

यद्यपि इतिहास भगवान् महावीर को जातिवाद का कट्टर विरोधी मानता है और भगवान् महावीर ने भी "सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो न दीसइ जाइ विसेस कोइ" कहकर सहस्राब्दियों पूर्व जातिवाद की घृणित पाशविकता पर स्पष्टतः प्रहार किया था किन्तु आश्चर्य है कि उन्हीं के आदर्शों का अनुकरण करने वाला तथा उसे संसार में मूर्तरूप देने की महत्त्वाकांक्षाएँ रखनेवाला धार्मिक वर्ग अपने आप को भी जातिवाद के जहरीले कीटाणु से नहीं बचा सका। यद्यपि सहस्राब्दियों से आजतक स्पष्ट शब्दों में यही सुनने को मिलता है कि धर्म का जातिपांति से कोई सम्बन्ध नहीं है। सबके लिये धर्म का द्वार खुला है। सब जातियों को धर्म के क्षेत्र में पूर्ण स्वातन्त्र्य है। उपरोक्त शब्दों में युगानुकूल प्रगतिशीलता का व दूरदर्शिता का अवश्य परिचय मिलता है। किन्तु शब्दों को मूर्तरूप देने की आधारभूत समस्या आज भी ज्यूं की त्यूं बनी हुई है। आज जबकि युगपरिवर्तन को पहिचानने वाले सभ्य राष्ट्रों का संविधान

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

जीवन की अनुभूतियां

श्रीमती हुलासीबाई भुतोड़िया
उपाध्यक्षा, अ० भा० अणुव्रत समिति

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम विदुषी पाठिकाओं की बहुमूल्य रचनायें व विचार सादर आमंत्रित करते हैं। सरस और संक्षिप्त रचनाओं को प्राथमिकता दी जायगी। —सम्पा०]

लगभग १० वर्ष पहले की ये बातें हैं। मेरा जीवन बाहरी दिखावे और आडम्बर से घिरा था। हाथ से काम करने में मुझे शर्म महसूस होती थी। साधुसेवा व सत्संग के लिये यात्रा पर जाना होता तो साथ में नौकर नौकरानी को लेना जरूरी होता। गाड़ी में चढ़ते-उतरते वक्त सामान के किसी एक अदद को हाथ लगाना भी मैं सम्मान के बाहर मानती और जब दूसरी औरतों को मैं गाड़ी से सामान उतारते चढ़ाते देखती तो मन में उनके प्रति कुछ नफरत जैसी होती कि कितना छोटा काम ये करती हैं?

इसका असर मेरे स्वास्थ्य पर पड़ा। शरीर में कई तरह की बीमारियों ने घर कर लिया। डाक्टरों और वैद्यों से इलाज करवाया। हजारों रुपये इलाज में खर्च किये। कुछ भी लाभ नहीं हुआ। सुजानगढ में एक प्राकृतिक चिकित्सक थे। उन्होंने कुछ मिट्टी आदि के प्रयोग बताये। सहसा मनमें विश्वास नहीं हुआ, इससे बीमारी मिट जायेगी पर प्रयोग किया और आशा से अधिक लाभ हुआ। प्राकृतिक चिकित्सा और दिनचर्या के प्रति मेरे मन में यकीन आया।

मैंने सोचा-क्लेश, अस्वस्थता, बीमारी यह सब कृत्रिम जीवन का फल है। जीवन में जितनी कृत्रिमता होगी, बनावटीपन होगा, क्या खानपान में, क्या रहनसहन में जीवन उतना ही दुःखमय बनेगा। मुझे स्वावलम्बन और प्राकृतिक जीवन की ओर बढ़ना है। मैंने अपना खानपान ठीक किया, मिर्च मसाले-दार पदार्थ खाने छोड़े। हाथ से पिसे आटे की रोटी खानी शुरू की। खुद हाथ से पीसना शुरू किया। रसोई प्रायः स्वयं बनाने लगी। बर्तन-भांडे कपड़े-लत्ते आदि सब में सादगी बरतने लगी। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार आसन, प्राणायाम आदि भी आरम्भ किये। मेरी सब बीमारियाँ दूर होगई। अपना जीवन मुझे हलका और सुखी लगने लगा। हाथ से काम करने में अब मुझे सन्तोष मिलता है।

मैं तो एक ऐसे परिवार में पत्नी-पुत्री और आई थी, जिसमें पीढ़ियों से पर्देकी प्रथा है। पर्दा हटाने का नाम लेना वहां गुनाह है। प्राकृतिक चिकित्सा, व्यायाम, आसन, प्राणायाम व स्वावलम्बी जीवन में जुटने पर मुझे सबसे बड़ी बाधा पर्दा लगा। पर्दे के अनुकूल वेषभूषा में रहते हुए व्यायाम, आसन आदि करने में कठिनाइ होती। यात्रामें जाना होता तो गाड़ीमें चढ़ना-उतरना, सामान रखना आदि मुश्किल लगता। टिकट खरीदने में भी हिचकिचाहट सी होती थी। मैंने सोचा—मुझे पर्दा हटाना है, क्योंकि यह मेरे दैनिक जीवन में बाधक है। मैंने गहराई से कुछ दिन विचार किया। विचार ने दृढ निश्चय का रूप ले लिया।

पर्दा हटाना है पर अपने परिवार के बड़ों की स्वीकृति के साथ। मैंने यह विचार अपनी सास के सम्मुख रखा, औरों के सामने भी रखा। सबका कड़ा विरोध मैंने देखा, केवल मेरे भाइयों व पीहर के लोगों ने मुझे इसमें सहयोग दिया। मेरा पक्का निश्चय था कि मैं अपनी सास की आज्ञा अवश्य लूंगी, अपने विनय और नम्रभाव के बल पर। भला सास कब मानने वाली थीं? उन्होंने बड़ी कड़ाई से कहा—"क्या ये सब नये-नये काम तुम्ही शुरू करोगी? नहीं हो सकता ऐसा" मैंने अपनी कोशिश जारी रखी। मैं दिखावे के लिए ऐसा नहीं कर रही हूं, अपने जीवन को ठीक रूप में चलाने के लिए ऐसा कर रही हूँ—उन्हें यह समझाने की चेष्टायें करती रही। आखिर उन्होंने भी स्वीकृति देदी।

मैंने पर्दा हटा दिया। इससे मुझे अपनी जीवन-चर्या में बड़ी अनुकूलता हुई। मैं मानती हूँ, पर्दा नारी जाति की उन्नति में सबसे अधिक बाधक है।

मेरी सास के अन्तिम दिन थे। वे बीमार

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

भगवान महावीर का सन्देश

[डा० श्री विधानचन्द्र राय, मुख्यमंत्री—प० बंगाल]

सदैव से यह परम्परा रही है कि संसार को जब-जब आवश्यकता हुई है तब-तब किसी न किसी महापुरुष के द्वारा संसार को कल्याण और शांति का संदेश भेजा है। भगवान् बुद्ध और भगवान महावीर भी उसी परम्परा के अनुसार संसार को शांति और कल्याण का मार्ग बताने इस भूतल पर आये। भगवान् महावीर ने ऊँच-नीच, जाति-भेद, वर्गवाद, स्त्री-पुरुष की विषमता सभी के विरुद्ध जोरदार शब्दों में आवाज उठाई। उन्होंने संसार को बताया कि मानव-मानव में कोई भी भेद-भाव नहीं है। सभी साधना से उच्च से उच्च पद को प्राप्त करने के अधिकारी बन सकते हैं।

पर आज क्या हो रहा है? हम भाषा भेद को लेकर संघर्ष कर रहे हैं—प्रान्त-प्रान्त को लेकर राग द्वेष फैला रहे हैं। इन सब बातों का अर्थ न समझते हुए 'इंकलाब जिन्दाबाद' का घोष कर रहे हैं।' यह सब बच्चों का खिलवाड़ हो रहा है। हमें तो भारत के सर्वतोमुखी विकास की दृष्टि से सोचना और कार्य करना चाहिये। हम सबसे पहले भारतीय हैं, यही हमारी विचारधारा होनी चाहिये। बंगला भाषा-भाषी और हिन्दी भाषी इन भाव-धाराओं में विचरकर हम अपनी कोई उन्नति नहीं कर सकते। जब आज सारे देश का सामूहिक विकास होने जा रहा है; हमें समस्त छोटे-छोटे झगड़ों को भुला देना चाहिये और समस्त राग-द्वेष, भेद भाव त्याग कर अपने राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

आज से २५०० वर्ष पहले राग-द्वेष, भेद-भाव, वर्गभेद आदि अगणित पापों से मुक्ति प्रदान करने के लिए ही भगवान महावीर ने इस पुण्य भूमि में जन्म लिया। भगवान् महावीर ने संसार को अपना दिव्य संदेश दिया। जिस समय सारा भारत जातिवाद, सम्प्रदायवाद आदि कितने ही वितण्डावादों में अपनी सारी शक्ति का नाश कर रहा था, उस समय भगवान महावीर ने लोगों को समानता, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह और संगठन का सत्पथ बताया। उन्होंने हमें बताया कि, मानव-मानव में भेदभावों की शृंखला से मुक्ति प्राप्त करके हमें शान्ति और कल्याण पथ को अपनाना चाहिए।

आज का मानव अणु और हाइड्रोजन बमों जैसे विनाशकारी अस्त्रों का निर्माण कर अपने ध्वंश की खाई खोद रहा है। ईर्ष्या, घृणा और एक दूसरे पर प्रभुत्व स्थापित करने की लालसा ने मानवता को संत्रस्त कर दिया। इससे हम भगवान् महावीर की अहिंसा का अनुसरण करके ही परित्राण पा सकते हैं।

सत्य का अनुसरण और अहिंसा का पालन पूर्ण रूप से तभी सम्भव हो सकता है, जब हम तृष्णा और लोभ का परित्याग कर दें। भगवान् महावीर के अपरिग्रहवाद का तभी प्रचार करने में सफल हो सकते हैं जब हम अपनी सम्पत्ति का एक अनुपात स्थापित कर लें और इससे अधिक सम्पत्ति का सर्वसाधारण के कल्याण के लिए समर्पित कर दें। इसी से हम भगवान् महावीर के अपरिग्रहवाद का प्रचार करने के अधिकारी बन सकते हैं और इसी से मानव की आर्थिक विषमता को दूर कर हम अपने राष्ट्र के ध्येय पर पहुँच सकते हैं। छोटे-छोटे झगड़ों और भेदभावों ने भारत की उन्नति के मार्ग को अवरुद्ध कर रक्खा है। हमें पारस्परिक छोटे-छोटे झगड़ों में कभी नहीं पड़ना चाहिये और भगवान् महावीर के सत्य और अहिंसा के आदर्शों का यथावत् पालन करना चहिये।

[महावीर जयन्ती समारोह पर दिये गये भाषण से]

पूजा का बोझ उठा न सका

—रानी लक्ष्मीकुमारी चूड़ावत—

मैंने दीप संजोये;

कब वह आये और आरती उतारूं, वह आया और फूंक मार मेरे दीप बुझा डाले,

मेरा भावुक हृदय उसी में जलकर भस्म हो गया।

उसी भस्मी में एक दिन अमर वल्लरी लहलहाने लगी,

छोटी सी कलिका के रूप में, मैं फिर जाग उठी।

कलिका से विकसित पुष्प हुई,

नई-नई उमंगों से हरी-हरी पत्तियों में मुंह छिपाये झूमने लगी।

उसे समीप आया देख, अभ्यर्थना के लिये चरणों में झुक गई,

उसने देखा और पैरों से मसल डाला,

मैं अपनी आकांक्षाओं के साथ धूल में मिल गई।

फिर भी मेरा पराग पवन में बह निकला।

वह सिहर उठा,

नील गगन के काले-काले मेघ फिरकर बरसने लगे,

मैं मलार के स्वर में गूंज उठी।

वह था देव और मैं पुजारिन;

पूजा का बोझ वह उठा नहीं सका।

एक हृदय स्पर्शी चित्र—

भीगता आँचल

— श्री रमाकान्त 'विक्षिप्त' —

"माँ! माँ!! माँ!!!" अनारो का का कण्ठ आर्द्र होता गया। उसने धड़कते हृदय से अपनी माँ के वदन पर हाथ धर कर देखा; वदन तवे जैसा जल रहा था, बुखार चढ़ता जा रहा था, सांस तेज़ी से चल रही थी। आज तीन दिन हो गये थे तेज़ बुखार चढ़ते।

अनारो की माँ तीन दिन से काम पर न जा सकी थी। जब तक बुखार ने तेज़ी न पकड़ी थी, वह बराबर काम पर जाती रही। लेकिन इन तीन दिनों में वह पूरी तरह खाट से लग गई थी। गरीबी के कारण दवाई आदि का कोई प्रबन्ध न हो सका था। यही कारण था जो कि आज अनारो के पुकारने पर भी उसकी माँ न बोल सकी। अनारो बार-बार, "माँ, माँ" पुकारती रही, पर वह बेहोश थी। उसका पीला झुर्रियोंदार चेहरा, गड्ढों में धँसी हुई आँखे, रूखे बाल, होठों की उदासी और फटे चीथड़े में लिपटा क्षीण अस्थि पंजर—सब कुछ उसकी गरीबी का गवाह बना हुआ था।

एक बार अनारो की आँखों में आँसुओं के साथ-साथ झोपड़ी की टूटी छत से लेकर आँगन में रखे मिट्टी के दो चार बर्तन तक घूम गये। वह सर्द आह भरकर रह गई। उसने माँ की ओर देखा; उसके हाथ-पैर ऐंठ कर लकड़ी बनते जा रहे थे, दाँतों की भिची लगती जा रही थी।

आँगन में रखा मिट्टी का प्याला अनारो ने उठाकर पानी से भर लिया और वह मन ही मन कुछ कहकर माँ के मुँह पर पानी के छींटे देती रही। आध घन्टे बाद उसकी माँ होश में आई।

"माँ!"—अनारो ने पुकारा।

"हाँ, बेटी!"—माँ का स्वर काँपा।

लू चलती है

[मुनिश्री बुद्धमलजी]

लू चलती है
मरु के नीरस जीवन की
यह करुण कहानी
धूर्त प्रकृति के पक्षपात की
मूर्त निशानी
चिर अभाव की-
अन्तर्ज्वाला सी जलती है
लू चलती है
युग-युग से अभिशप्त मनुज की
दावानल सी-
सदा धधकती आहों की
धारा अविकल सी
मुक्त व्यथा की विस्मृति में
स्मृति सी घुलती है
लू चलती है

"कैसा जी है अब?"—व्यथा भरी थी अनारो के स्वर में।

"ठीक है बेटी, ठीक है!"—मां के विवशता भरे बोल थे वे।

माँ की एवज में गत दो दिनों से सेठ जी के यहाँ बर्तन माँजने तथा चौका, बुहारी का काम करने अनारो जाया करती थी। आज माँ की खराब हालत देखकर वह कुछ देर के लिये रुक गई थी। अब माँ के कहने पर वह काम पर जाने को जैसे ही तैयार हुई थी कि बाहर से आई किसी की कड़कती आवाज़ सुनकर वह सहम गई। सेठजी का मुंह चढा नौकर गन्दी गालियाँ बकता हुआ आँगन में आ पहुंचा। जवान अनारो की तरफ़ शरारत भरी निगाहों से देखकर वह बोला—"महरानीजी, क्या काम पर नहीं जाना?"

माँ यह देख सुनकर खून का सा घूंट पीकर रह गई। बोली—'जा अभी भेजती हूं अनारो को।

माँ ने अनारो को सभी तरह से ऊँच-नीच समझाकर सेठजी के यहाँ काम पर भेजा और उसके बाद अपनी टूटी खाट में करवट लेकर पड़ रही।

आज अनारो को डर लग रहा था। वह रास्ते में चलती-चलती सोचती रही, कहीं सेठजी गरम न हों, कहीं सेठानी न भड़क उठें, कहीं बड़े बाबू व छोटे बाबू नाराज न हों। सेठजी के भवन का द्वार आ पहुंचा। वह अन्दर घुसी। अपने ड्राइंग रूम में मसनद के सहारे सेठजी बैठे थे। अनारो को देखते ही हुक्के की नँगाली से धूंआ छोड़ते हुए बोले—"बड़ी देर की आज तू ने, जा," और सेठजी बिना मतलब न जाने क्यों उसकी आँखों में आँखें डालकर मुस्करा दिये। वह आकर काम में जुट गई। सेठानी आराम से पलंग पर लेटी थी, बर्तनों की खड़क सुनकर बरस पड़ी—" अब आई है चुड़ैल, साँझ होने को आई और तू है कि कुछ परवाह नहीं!' अनारो चुप रही। अगर कुछ कहती तो भी कौन सुनता उसकी? सेठानी भी बड़बड़ाकर चुप हो गई।

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

संगठन के चौराहे से

—: श्री प्रतापसिंह वैद :—

कलकत्ते के बाहर आसाम, बिहार व बंगाल के देहातों में हमारे व्यापारी भाई बहुतायत से बसते हैं। व्यापार के साथ उनमें समाज और धर्म के प्रति जागरूक भावना है। उन स्थानों पर जाने और सम्पर्क करने के विचार मेरे दिल और दिमाग में काफी दिन से बसे हुए थे फिर भी बाहर जाने का अवसर नहीं मिला। इस बार 'अणुव्रत' मिशन को लेकर वहां जाने का मुझे सौभाग्य मिला। १ अप्रैल को बिहार बंगाल व आसाम के कुछ भागों में प्रवास हेतु निकला। उसकी संक्षिप्त झांकी यहां प्रस्तुत कर रहा हूँ।

किशनगंज

यह बिहार तथा बंगाल की सीमा पर बसा हुआ एक अच्छा कस्बा है। पाट की मंडी होने से अनेक मारवाड़ी बन्धु यहाँ बसे हुए हैं। सरदारशहर के श्री हनुनराम चन्दनमल वैद के यहां अतिथि बना। मेरे मन में 'अणुव्रत' समिति के मुख्य कार्यकर्ता श्री सूरजमल वैद की याद बराबर आ रही थी। लेकिन वे इस समय वहाँ नहीं थे। वहाँ के युवक साथी श्री चंपालाल बोथरा, श्री मदनचंद पींचा के सहयोग से अणुव्रत के करीब ३० ग्राहक बने।

वहाँ के उत्साही सार्वजनिक कार्यकर्त्ता श्री बाबूलाल सोमाणी से भेंट व वार्त्तालाप हुई। आप 'अणुव्रत' आन्दोलन में निष्ठा रखते हैं तथा उनकी यह भावना है कि 'अणुव्रत' आन्दोलन का स्थायी कार्यक्रम किशनगंज में होना चाहिये।

श्री भीमराज बोथरा का वहाँ कपड़े का बड़ा व्यापार है। उनकी दूकान में बिना सेल्सटेक्स का कोई भी कपड़ा नहीं है। ग्राहक लोग दूकान पर बड़ी प्रसन्नता से सेल्टेक्स देकर कपड़ा खरीदकर ले जाते हैं। आपने कहा—सेल्टेक्स के आफीसर मेरे बही खातों पर पूर्ण विश्वास करते हैं। उनके जीवन में अणुव्रत आदर्शों का गहरा प्रभाव है।

अलीपुरद्वार

ता० ४ मई को १ बजे अलीपुरद्वार पहुँचा। वहाँ के उत्साही कार्यकर्त्ता श्री उमीचंद वैद तथा नथमलजी दूगड़ की सहायता से करीब २ घंटे में अणुव्रत के १६ ग्राहक बनाकर सायंकाल को ४ बजे की गाड़ी से कूचविहार के लिए रवाना होगया।

कूचविहार

कूचविहार एक समय में कूचविहार स्टेट की राजधानी था। यहाँ राजस्थान के राजप्रमुख की सुसराल भी है। अब यह बंगाल में विलीन कर दिया गया है। कूचविहार शहर बड़ा ही सुन्दर बसा हुआ है, यहाँ की सड़कें चौड़ी तथा सीधी हैं। यहाँ कपड़े तथा पाट का व्यापार बहुत होता है।

यहाँ के सुप्रसिद्ध व्यवसायी श्री बालचन्द जयचन्दलाल के यहाँ ठहरा। लाडनूं के श्री लाभचन्द वैद एवं डूंगरगढ़ के श्री पृथ्वीराज पुगलिया के सहयोग से अणुव्रत के ३० ग्राहक बने। श्री बालचन्द जयचन्द लाल बोथरा (२) श्री लालचन्द पृथ्वीराज पुगलिया व (३) श्री जालमसिंह हुकमसिंह आजीवन ग्राहक बनें।

दीनहट्टा

ता० ६ रविवार को प्रातःकाल दीनहट्टा पहुँचा। साथ में कूचविहार के उत्साही साथी श्री पृथ्वीराज पुगलिया भी थे। वहाँ पहुंचकर श्री सुल्तानमल मूलचंद के मुनीम श्री थानमल दूधोड़िया से मिले। उनका उत्साह देखकर मुझे भी बड़ी प्रेरणा मिली। उस रोज दीनहट्टा में हाट का दिन था। हाट का दिन आसाम व बंगाल में वह दिन गिना जाता है, जिस रोज आसपास के गावों के लोग आकर अपनी परिश्रम की चीजें बेचकर अपने उपयोग की अन्य वस्तुएँ खरीदकर ले जाते हैं। हाट का दिन होते हुए व जोरदार पानी बरसने के बावजूद भी वे हमारे साथ आये। स्वयं आजीवन ग्राहक बनें व श्री भँवरलाल जैन और श्री मनसुखदास डालमचंद आदि को भी आजीवन ग्राहक बनाय।

युवक साथी श्री डालमचंद छाजेड़, श्री चंपालाल वैद व श्री भँवरलाल पुगलिया के सहयोग से अणुव्रत के ३० ग्राहक बने। यहाँ के युवक कार्यकर्त्ता श्री मंगतमल सेठिया से अणुव्रत सम्बन्धी वार्तालाप हुआ। विवाद होते हुऐ भी मुझे एक मानसिक खुराक मिली। इस तरह का आहार भी विचारों में कुछ शान्ति का काम देता है। रात्रि को १ बजे वापस कूचविहार पहुंचे।

गौरीपुर

ता० ७ सोमवार को प्रातःकाल कूचविहार से रवाना होकर धुवड़ी पहुँचा। यहाँ पर भोजनादि से निवृत होकर १ बजे गौरीपुर पहुंचा। गौरीपुर धुवड़ी से ४ माइल की दूरी पर है व पाट की एक अच्छी मंडी है। यहाँ पर पहुँचकर उत्साही साथी श्री भँवरलाल चोरड़िया, श्री जयचंदलाल दूगड़, श्री कन्हैया-

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

विद्या का वास्तविक अधिकारी कौन ?

[सुश्री सुरेन्द्रा वर्मा]

हमारे धर्म शास्त्रों में विद्या, धन और बल की प्राप्ति के लिए क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी एवं दुर्गा की उपासना करने के लिये कहा गया है। इन देवियों के लिये तीन प्रकार के वाहनों का भी उल्लेख है। कहा गया है कि सरस्वती का वाहन हंस, लक्ष्मी का उल्लू तथा दुर्गा का सिंह है। ये तीनों वाहन हमें उन व्यक्तियों के लिए प्रतीक से प्रतीत होते हैं जो क्रमशः विद्या, धन और बल प्राप्त करना चाहते हैं लक्ष्मी और दुर्गा के वाहनों के सम्बन्ध में कुछ अधिक न कहकर इन पंक्तियों में मैं सरस्वती के वाहन हंस के ऊपर ही प्रकाश डालना चाहती हूँ।

हंस के लिये कहा गया है कि उसमें नीर-क्षीर को पृथक कर दूध को ग्रहण करने की शक्ति होती है। हंस का सदैव जल को अलग कर दूध ग्रहण करना स्वाभाविक है। उसका स्वरुप दूध की तरह उज्ज्वल बताया गया है उसी प्रकार का स्वरुप सरस्वती का कहा गया है। इस प्रकार सरस्वती और उसके वाहन का उज्ज्वल स्वरूप होने से हमें यह प्रतीत होता है कि सरस्वती का वाहन-हंस उन व्यक्तियों के लिये प्रतीक सा है जो विद्या और बुद्धि को प्राप्त करना चाहते हैं। संसार में अच्छाई और बुराई दोनों हैं दोनों को मिला कर सृष्टि की रचना हुई है, जैसा कि तुलसी दास जी ने कहा है—

जड़ चेतन गुन दोषमय विश्व किन्ह करतार,
संत हंस गुण गहहि पै परहरि वारि विकार।

अर्थात् संसार की जड़ चेतन व गुण-दोष दोनों मिलाकर रचना हुई है। हंस के सदृश सन्त अवगुण रूपी जल का त्यागकर गुणरूपी दूध को ही ग्रहण करते हैं। तुलसीदासजी ने संत की महिमा हंस से दी है। अतः संत उसे कहा जा सकता है जिसका हृदय हंस के समान उज्ज्वल हो। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मत्सर (ईर्षा) का त्यागकर परमात्मा के दिव्य सत्यरूपी गुणों को ग्रहण करने की शक्ति हो। तुलसीदासजी ने ऐसे ही संतरूपी भरतजी की उपमा हंस से की है उन्होंने कहा है—

भरत हंस रवि वंश तड़ागा।
जनमि कीन्ह गुण दोष विभागा॥
गहि गुण पै तजि अवगुण वारि।
निज जस जगत कीन्हि उजियारी॥

अर्थात् भरतजी ने सूर्यवंश रूपी तालाब में हंस के समान जन्म लेकर गुण और दोष को अलग कर दिया। गुण रूपी दूध को ग्रहणकर और अवगुण रूपी जल को त्यागकर भरत ने अपने यश को प्रकाशित कर दिया।

अतः जो विद्या अथवा बुद्धि को प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि संत भरतजी के समान हिंसा, राग, द्वेष, छल-कपट आदि अवगुणों को त्यागकर सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह ब्रह्मचर्य जैसे गुणों को धारण करें व विद्या के सच्चे अधिकारी बनें। कबीरजी ने कहा है :—

जो हंसा मोती चुगे
काँकर क्यों पतियाय
काँकर माथा न नवै
मोती मिले तो खाय।

अर्थात् हंस रूपी संत काम, क्रोध, मद, लोभ एवं मत्सर जैसे कंकड़ों को अपने हृदय में स्थान नहीं दे सकते, उन्हें मनन, चिन्तन एवं आचरण के लिये मोती के समान उदात्त विचार चाहिये।

ऐसे ही उदात्त एवं उच्च विचारों को धारण कर कोई भी व्यक्ति सरस्वती का कृपापात्र बन विद्या का सच्चा अधिकारी हो सकता है और उच्च विचार और सादा एवं सात्विक जीवन हम भारतीयों का सदैव से आदर्श रहा है।

चलपत्रान्तलग्नाम्बुविन्दुवत् क्षणभंगुरम्
आयुस्त्यजत्यवेलायां कस्तत्र प्रत्ययस्तव॥
—अ० रा०

"हिलते हुए पत्ते के अग्रभाग में संलग्न जल-बिन्दु की तरह क्षण में ही विनाश होनेवाली यह आयु असमय में ही छोड़ बैठती है ऐसे जीवन में तुम्हारा क्या विश्वास है?"

खिलती कलियाँ....

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत क्रमशः नवोदित बन्धुओं की सुन्दर रचनाएं प्रकाशित हुआ करेगी। रचना भेजते समय 'स्तम्भ' का उल्लेख करना आवश्यक है। —सम्पादक]

मानव की प्रतिष्ठा

[श्री कृष्णचन्द्र उपाध्याय]

सदियों से सम्मान और प्रतिष्ठा प्रायः उन्हीं लोगों को मिलती आ रही थी जिनके पास धन अथवा अधिकार होता था। समाज का नीच-से-नीच व्यक्ति किसी भी भले या बुरे प्रकार से यदि संपत्ति का अधिकारी बन जाता तो समाज उसे बिना किसी संकोच के प्रतिष्ठा का स्थान दे देता था ऐसे लोगों को पदवियाँ और फीते दिए जाते और सब कोई उन्हें झुक-झुककर 'सलाम' करने लग जाते।

ऐसी स्थिति में परतन्त्रता-प्रणाली का और अधिक प्रादुर्भाव हुआ। काम हमेशा हलका माना जाने लगा, और भोग-विलास को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। कीमत आँकने की इस पद्धति से मनुष्य की योग्यता के आधार पर समाज में उसकी श्रेणी निश्चित नहीं की जाती थी। अपितु उसके बाहरी तड़क-भड़क और आडम्बर से उसकी श्रेणी निश्चित की जाती थी। इन्हीं आदर्शों में सब प्रकार के साम्राज्य-वादों की जड़ें जमी रहती हैं। हमारे देश में भी आज ऐसे लोग हैं जो सोचते हैं कि बाहरी तड़क-भड़क मनुष्य की प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए आवश्यक है। जहाँ इन मान-दन्डों का बोलबाला रहता है वहां पर कार्य को निम्न माना जाता है और बलहीन व्यक्ति शक्तिवान मनुष्यों की प्रसन्नता के लिए कार्य करते रहते हैं।

यंत्रयुग होने के साथ ही मनुष्य अपनी कार्य करने की प्रतिष्ठा भी खो बैठा। यंत्रों की देखभाल ही उसके जीवन का एक कार्य भाग हो गया। इसलिये जिन देशों में मजदूर पहले से ही कम थे वहां ऐसे काम को प्रतिष्ठा प्राप्त करा देने के लिये कुछ तो भी करना जरूरी था। इसलिये अमरीका में मजदूरों की प्रतिष्ठा बढ़ाने का आन्दोलन खड़ा किया गया; पर यहां भी मनुष्य की प्रतिष्ठा इस पर अवलंबित रखी गई कि वह कितना उत्पादन दिखा सकता है, जो अधिक उत्पादन कर सके उसे अधिक प्रतिष्ठा मिला करती।

हमारे देश में गांधीजी ने पहले पहल यह दिखाया कि कार्य करने के दो पहलू होते हैं। उसकी मनुष्य का विकास करने की शक्ति और मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रकट करने का साधन बनने की क्षमता। केवल कार्य के कारण ही मनुष्य श्रेष्ठता प्राप्त कर सकता है, उसे प्राप्त करने के लिये सम्पत्ति की कोई आवश्यकता नहीं, ऐसा उन्होंने प्रतिपादन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मनुष्य के मूल्य को आंकने का एक नया दृष्टिकोण सामने आया। उसके अनुसार कार्य करनेवाले चारित्र्य और व्यक्तित्व के आधार पर कार्य का मूल्य आंका जाने लगा। इसलिये इस प्रकार के दृष्टिकोण से जन्म, सामाजिक श्रेणी, और आर्थिक स्थिति से स्वतंत्र केवल मनुष्य के नाते ही मनुष्य को प्रतिष्ठा मिलने लगी। इसके द्वारा जात-पांत की श्रेष्ठता, वर्ग की श्रेष्ठता और वर्ण की श्रेष्टता माननेवाली दुनियां में, निर्धन से निर्धन आदमी भी अपने व्यक्तित्व व चारित्र्य से समाज के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति की बराबरी कर सकता है।

यही सच्चा प्रजातन्त्र है। क्योंकि इसी के कारण प्रत्येक मनुष्य को वह स्वतन्त्रता मिलती है जिसे राजकीय स्वतन्त्रता भी प्राप्त नहीं करा सकती और वह प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। हममे से हर कोई मनुष्य मात्र से, जीवमात्र से प्रेम करके, सेवा करके ऐसी ही प्रतिष्ठा प्राप्त करे तो सर्वोदय निश्चित है।

ओ रे मानस-हंसा चुगले !

[श्री गुलाबचन्द्र वैद]

ओ रे मानस-हंसा चुगले, यथाशक्ति अणुव्रत मोती;
मोती ये चमकाएं तेरे, जीवन की अनुपम ज्योती।
भ्रमणशील मोती सागर पुनि, शाखाएं फिरती चलती;
चुगने से चूका, होगी इस जीवन की भारी गलती।
हंसा श्वेत रंग का है अरु, श्वेत रंग का बगुला भी;
किन्तु गुणों में अन्तर कितना होता जानत इसे सभी।
जो मुक्ता चुगता है क्षीर से, नीर अलग वह करता है;
वह बगुला न कहलाएगा, चाहे हो अच्छा भक्ता।
एक लड़ी में पांच बड़े मोती हैं, चित उन पर दे ले;
या अनगिनती छोटे मोती, शक्ति भर थोड़े ले ले।
जो मोती चाहे सो ले ले, ज्योतिर्मय ये यहां पड़े;
तुलसी गुरुवर झोलीभर, सन्मुख तेरे हैं लिये खड़े।

धार्मिक [illegible]

आत्मा की पुकार

श्री पीताम्बरदत्त शास्त्री, साहित्याचार्य

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोक स्तदनुवर्तते॥

श्रीमद् भगवद्गीता के इस वचन के अनुसार लोक के गंतव्य का आभास मिलता है, महापुरुषों का आचरण विश्व के लिये आदर्श है। प्रत्येक व्यक्ति का विचार भिन्न होता है, आवश्यकताओं की पूर्तिके लिये उनकी उपलब्धि और उनके यथास्थान प्रयोग के लिये मनुष्य अपनी स्वतन्त्र रुचि से काम लेता है, यहां तक कि अपरिवर्तनीय तथ्यों में भी उसे रुचि भेद के कारण विरोधाभास प्रतीत होता है, यदि सूक्ष्म दृष्टि से गौर किया जाय तो जागतिक इच्छाओं के वैविध्य से यह विरोधाभास असम्भव नहीं प्रतीत होता। महापुरुषों का विचार इन दूर विकीर्ण विभेदों में सम्बन्ध सूत्र स्थापित कर एकत्व की ओर प्रेरित करता है।

रुचि विभेद से स्पर्धा, स्पर्धा से वैमनस्य और वैमनस्यसे कलह पैदा होता ह जो अशांति का मूल कारण है। शान्त और सुव्यवस्थित जीवन की आकांक्षा किसे न होगी? शान्ति प्राप्त करने का उपाय नैतिकता का पालन करना है, व्यक्ति की मानस कुंठाओं का मार्जन होकर परस्पर विरोधी विकारों का उत्स अवरुद्ध हो जाय तो आत्म-विश्वास के द्वारा नैतिक वृत्तियों की सृष्टि होने में देर न लगेगी। एकता भारतीय संस्कृति का अमोघ तथा जीवन्त पहलू है। विनाशकारक शक्तियों का जहां पर्यवसान हो जाता है वहां विशुद्ध मानस वृत्तियों का प्रथम चरण प्रारम्भ होता है इस तरह विश्व-शान्ति का मापदण्ड संहार नहीं अपितु अभेद और एकता है। आत्म-संयम और त्याग विलासजन्य अपूरणीय ईर्षणा के अन्ध प्रवाह का अवरोध करते हैं। अहिंसा उन्नत समाज का मौलिक दृष्टिविन्दु है। भौतिक शक्तियों से सम्पन्न राष्ट्र भी आज इन गुणों की उपादेयता स्वीकार करते हैं। क्योंकि भोगवाद आर्थिक वैषम्य का मूल कारण है। यह वैषम्य मानव समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अनीतिका बीज वपन करता है। जब उसके अंकुर उत्पन्न होने लगते हैं तो बलिष्ट साम्राज्य भी धाराशायी हो जाते हैं।

विगत विश्व महायुद्ध इस तथ्य के ज्वलंत उदाहरण हैं। आवेश में आरूढ़ होकर शक्तिशाली राष्ट्रों ने अपनी विनाश-लीला प्रारम्भ की उसका जो दुष्परिणाम निकला आज प्रत्यक्ष है। बड़े-बड़े नगर खण्डहर के रूप में परिणत हो गये, लाखों व्यक्ति असमयमें काल कवलित हो गये, कितने ही मनुष्य आजीवन कठोर यंत्रणायें सहने को बाध्य हो गये और कोटि-कोटि बच्चों की दिव्य क्रीड़ायें धूलिसात् हो गयीं। जो जहां था, नृशंसतापूर्वक वहीं नष्ट कर दिया गया। क्या खुशी से कोई मृत्यु का वरण करना चाहता है? केवल प्रभुत्व के भयंकर भूत ने विश्व में हाहाकार मचा दिया। थोड़े दिनों के लिये मुट्ठी भर लोगों का स्वार्थ सिद्ध हुआ किन्तु मानवता की रीढ़ सदियों के लिये टूट गयी।

और कुछ नहीं जिसके कारण आज एक व्यक्ति अमराइयों में दिखाई पड़ता है तो लाखों व्यक्ति नारकीय गहराइयों में रेंग रहे हैं, इस परिस्थिति को बुद्धिवाद ने विकास नाम दे रखा है। वास्तव में यह विकार है जिससे सांसारिक सौख्य खण्डित एवं गलित हो गया है। आत्म-निग्रह की जगह विग्रह ने जीवनकी सचाइयों का बलिदान कर दिया है। सर्वोत्कृष्ट बल तो आत्मबल है यदि उसका संग्रह न हो तो भौतिक शक्तियां भय से आश्वस्त कदापि नहीं कर सकतीं। बुद्धिवाद का व्यामोह अन्ततोगत्वा विश्वका अनिष्ट करना है।

न बुद्धि भेदं जनमेदज्ञानां कर्म संङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तःसमाचरन्॥

यह उद्‌घोष मानवीय दिव्यता की ओर इंगित करता है। तत्वतः सुख-दुःखात्मक अनुभूतियां तृप्ति और अतृप्ति से उत्पन्न होती हैं। भोगों से तो तृप्ति नितरां असम्भव है। अतृप्ति से असंतोष की वृद्धि होती है यहीं से कुमार्ग की अर्गला खुलती है। वासनाओं का नियमन व्यक्ति को मर्यादित बनाता है। मर्यादा व्यक्ति विशेष के लिये ही नहीं अपितु समस्त विश्व के लिये अनिवार्यरूपेण अपेक्षित है। विश्वशान्ति की आशा को मूर्त करने के लिये आज दम्भ और गृद्धताका सर्वप्रथम विसर्जन करना होगा। क्रूरतापूर्वक उत्पीड़ित जन-आत्मा की आज यही पुकार है कि मानव जाति यंत्रणामुक्त होकर विश्वबन्धुत्व एवं पारस्परिक आत्मीय स्नेह का आजीवन उपभोग करे।

> "तुम भले बने तो दुनियां तुम्हारे मुंह पर भी थूकती रहे, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ने का।
>
> —स्वामी शिवानन्द सरस्वती
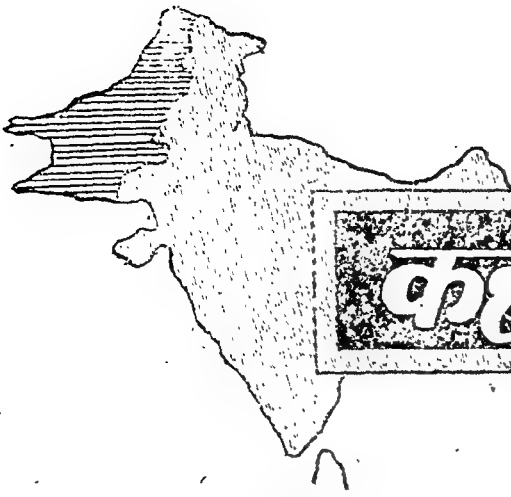
अक्षय तृतीया का समारोह

● बीदासर (डाक से) १३ मई को आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में अक्षय तृतीया का उत्सव मनाया गया। स्थानीय नागरिकों के बीच आचार्यश्री ने आज के दिन का महत्व स्पष्ट करते हुए त्याग-तपस्या का व्रत लेकर जीवन को अध्यात्म-पथ की ओर अग्रसर करने का आह्वान किया

आचार्यश्री का यहाँ का १० दिवसीय प्रवास अत्यन्त आनन्दप्रद एवं उत्साहवर्द्धक रहा। इसके पश्चात् यहाँ से विहारकर १५ मई को प्रातः चाड़वास पधारे।

अणुव्रत सम्बन्धी विचार-वार्ता

● पेटलावाद (डाक से) २३ अप्रैल को जिस समय मुनिश्री सागरमलजी यहां पधारे तब स्थानीय कार्यकर्ताओं की ओर से अणुव्रत सम्बन्धी एक विचार-वार्ता का आयोजन रखा गया। मुनिश्री के प्रवचन व उत्तरों से इस अवसर पर उपस्थित तहसीलदार, डाक्टर, निरीक्षक व शिक्षक महोदय और शिक्षार्थी आदि काफी प्रभावित हुए और अणुव्रत आन्दोलन के योग का महत्व समझा।

अवधान के चमत्कार

● सरदारशहर (डाक से) मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी ने १३ मई को प्रातः ८ बजे महामना मन्त्री मुनिश्री मगनलालजी के सान्निध्य में इक्कीस अवधान-स्मरण-शक्ति के अद्भुत प्रयोग प्रस्तुत किये, स्थानीय कालेज के प्रिन्सिपल, गांधी विद्या मंदिर के रजिस्टार प्रभृति अन्य कार्यकर्ता, नगर के प्रमुख साहित्यिक, संस्कृत-विद्वान् तथा विद्यानुरागी सज्जन बड़ी संख्या में उपस्थित थे।

२७ अंकों की लम्बी संख्या को तीन व्यवधानों के साथ खण्डशः सुनकर सम्पूर्ण रूपेण अक्षरशः बता देना प्राकृत की अति कठिन गाथा को एकबार सुनकर लम्बे समय के बाद ज्यों का त्यों बोल देना, गुणा, भाग आदि का गुणांक बताना, १०१ संख्याओं को ऐक व्यवधान के बाद दो बार में सुनकर उनका तत्क्षण योग निकालना, इसी तरह अन्यान्य गणित सम्बन्धी जटिल प्रश्नों को तत्क्षण हल करना, लैटिन व फारसी के सर्वथा अपरिचित वाक्यों को एकबार सुनकर यथावत् बता देना आदि अनेक चमत्कारिक प्रयोग अवधानकार मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी ने प्रस्तुत किये, अद्भुत स्मरण शक्ति, एकाग्रता और धारणा के इन चमत्कारिक प्रयोगों को देखकर समागत विद्वान् आश्चर्यान्वित थे।

अणुव्रत पुस्तकालय का निरीक्षण

● उदयपुर (डाक से) ६ मई को सायंकाल ८ बजे अणुव्रत पुस्तकालय में निरीक्षण करने के लिये स्टेटमैन के संवाददाता श्री यशवंत-सिंह पुजावत पधारे। आपने अणुव्रत साहित्य को बड़े ध्यान से देखा और सद् साहित्य की आवश्यकता पर जोर दिया। पुस्तकालय में यद्यपि अभी पुस्तकें कम हैं किन्तु स्थानीय कार्यकर्ता इस दिशा में प्रयत्नशील हैं।

आवश्यक सूचना

अणुव्रत समिति की शाखाओं के पदाधिकारियों, पाठकों व संवाददाताओं से सूचनार्थ निवेदन है कि वे अपने यहाँ के कार्य की प्रगति की सूचना व समाचार कार्यालयमें अवश्य भेजें। समाचार संक्षिप्त और पृष्ठ के एक ओर स्याही से स्पष्ट लिखे होने चाहियें।

साथ ही भाषण व समाचार अलग-अलग लिखकर भेजना आवश्यक है अन्यथा हम इच्छा रहते हुए भी उनको प्रकाशित करने में असमर्थ रहेंगे।

—सम्पादक

(पृष्ठ ८ का शेषांश)

का आवरण डाल देते हैं तब हमारे जीवन में बाहरी तड़क-भड़क तो आ जाती है पर वह साज-सज्जा एक लिपीपुती कब्र के समान है जिसके नीचे शव लेटा हुआ है। आज हो यही रहा है। भौतिकता के बाह्य स्वरूप में पड़कर मनुष्य ने अपना आत्मतत्व खो दिया है और उसकी स्थिति उस अधान्त मृग सी है जो वन-वन कस्तूरी को ढूंढ़ता फिरता है जबकि कस्तूरी उसके हृदय में बसी हुई है। बिना भव-भ्रम के छूटे मुक्ति कहां? और यह मुक्ति अपने अन्तर्गत छिपी अणु-शक्ति के सतत, शोधन, उत्पादन और विकास में है। जब ऐसे कई व्यक्ति किसी देश जाति या समाज में उत्पन्न हो जाते हैं तो वे व्यक्ति ही शक्ति के केन्द्रबिन्दु हैं जिनपर आपद्‌काल में संकटग्रस्त मानवता विश्वास कर सकती है और अपने आपको प्रत्येक मनवन्तर में जीवित रह सकती है। जबतक ऐसे महामानव के चरण न दीखें, हमें यथासाध्य अपने अन्तर्गत की अच्छाई को पनपाना चाहिये और उसे मूर्तरूप देना चाहिये ताकि हम सबके सम्मिलित प्रयत्न से लोक-जीवन में सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् की स्थापना हो सके जो भारतीय ऋषियों की कर्म और जीवन के क्षेत्र में सदैव मंगल साधना रही है।

(पृष्ठ २० का शेषांश)

जातिवाद की संकीर्णता के विरुद्ध निर्णय दे चुका है और किसी भी जाति विशेष को किसी भी सार्वजनिक लाभ से वंचित करना अवैधानिक तथा मानवता के प्रति भीषण अपराध घोषित कर चुका है तब किस आधार परम्परा को लेकर परिवर्तित युग में जातिविशेष को धर्म की विशिष्ट क्रियाओं के लिये अनर्ह माना जा सकता है। क्या इस प्रकार व्यवहारिकता के नाम पर आदर्श-घातक जातिवाद को परोक्ष रूप से समर्थन नहीं मिलता है? क्या आनेवाला युग मौलिक मानवीय अधिकारों की उपेक्षा का आरोप नहीं लगाएगा।

—अप्रकाशित 'चिनगारियाँ' से

(पृष्ठ २१ का शेषांश)

थीं। मुझे कहती—तुमने पर्दा हटाया, यह पहले तो मुझे बुरा लगा पर अब बड़ा सन्तोष है। इससे बड़ा लाभ हुआ है। घर में मेहमान आते हैं, सम्बन्धी आते हैं, सब की अच्छी आवभगत और आतिथ्य तुम करती हो। यदि पर्दा होता तो यह कैसे सम्भव था। उनसे बोल तक भी नहीं सकती। मैं तुम्हें आशीष देती हूं— तुम्हारी नीरोगता और प्रसन्नता की सत्कामना करती हूँ।

[एक भाषण के आधार पर]

(पृष्ठ २३ का शेषांश)

जब वह काम से छुटकारा पा चुकी तो सेठ जी से अपनी माँ का दर्दनाक हाल कह कर विनती भरे स्वर में उसने अपनी तनखाह माँगी। वह गिड़गिड़ाई।

तनखाह का नाम सुनते ही सेठजी की त्यौरियाँ चढ़ गई, और शायद उनकी मुस्कान का उत्तर न मिलना भी इसका कारण था। वे गरजते—"क्या मैं महीना पूरा होने से पाँच दिन पहले रुपये दे दूं। मैं नहीं दे सकता, सेठानी दे दे तो दे दे।"

अनारो सहमी-सहमी सेठानी के पास आई, आँखों में बूंदे झलक रहीं थीं। "सेठानी जी!" कण्ठ अवरुद्ध हो गया अनारो का। बड़ी मुश्किल से कह पाई वह अपनी गीली गाथा सेठानी ने कहा—"चिलत्तर झाड़ना पीछे, पहले पाँच दिन पूरे कर तब कहीं तनखा माँगना, पहले एक पैसा नहीं मिलेगा, समझी, और वह भी सेठजी से।" अनारो पैरों में पड़ी, बिलख-बिलख कर रोई, बहुत कुछ कहा, माँ की दशा का ज्यों-का-त्यों चित्रण किया मगर सेठानी न पिघल सकी।

निराश और हताश अनारो अपनी झोंपड़ी में आई, अचानक उसपर कहर टूट पड़ा। मां के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। अनारो माँ पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी। आँचल आँसुओं से भीगता रहा।

उस समय सेठजी परियों के बीच कोठे पर बैठे रकम लुटाकर गाना सुन रहे थे।

(पृष्ठ २४ का शेषांश)

लाल सोठिया के सहयोग से अणुव्रत के १६ ग्राहक बनाये।

धुवड़ी

शामको लौटकर डूंगरगढ़ निवासी श्री रेखचंदजी छाजेड़ तथा श्री केशरीचंदजी सुराना व श्रीचंदजी के सहयोग से अणुव्रत के आजीवन श्री थानसिंह नथमल दूगड़ तथा २५ साधारण ग्राहक बनाये।

मंगलवार को प्रातःकाल ही वर्षा बहुत ही जोरों से आने लगी। मेरा प्रोग्राम धुवड़ी के एक भाग बालूचर में जाकर ग्राहक बनाने का था। बालूचर ब्रह्मपुत्री नदी के किनारे बसा हुआ है। जोरदार वृष्टि होने के बावजूद भी भा० रेखचंदजी छाजेड़ व श्री चंदजी वैद व श्री आसकरणजी वैद ने प्रयास कर बालूचर में १० ग्राहक बना लिये।

इस प्रकार आठ दिन का यह प्रवास काल व्यतीत कर मैं हवाई जहाज द्वारा मंगलवार को सांयकाल को कलकत्ता पहुँचा। इस प्रवास काल ने मुझे बहुत कुछ दिया और कई ऐसे मित्र भी दिये जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता। मैं उन मित्रों का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिनके मार्ग दर्शन और परिश्रम के कारण मेरी यह यात्रा सफल हो पाई। उन्होंने अणुव्रत पत्र को सहायता हीं नहीं दी पर मेरी इस श्रद्धा को अधिक दृढ़ बनाया कि यदि समाज में काम करना है तो बाहर घूम-घूमकर करें। अणुव्रत-आन्दोलन का व्यापक काम तभी होगा, जब हम सबका साथ और शान्ति का उपयोग कर पायेंगे।

'अणुव्रत' के—

व्यवस्थापकीय नियम

(१) अणुव्रत हर महीने की पहली और पन्द्रहवीं तारीख को निकलता है।

(२) क्रमशः ५ और २० तारीख तक यदि किसी ग्राहक को अणुव्रत न मिले तो अपने पोस्ट आफिस से पूछताछ करने के उपरान्त उनके उत्तर के साथ अणुव्रत कार्यालय को लिखना चाहिये।

(३) वार्षिक मूल्य ६) रु० तथा एक प्रति का।) आना है। वी० पी० प्राय नहीं भेजी जाती। समय और धन दोनों की ही बचत देखते हुए पाठक मनिआर्डर से ही रुपया भेजें।

(४) आप 'अणुव्रत' के ग्राहक किसी भी महीने से बन सकते हैं।

(५) किसी तरह के पत्र-व्यवहार में अपनी ग्राहक संख्या, नाम व पूरा पता साफ़ अक्षरों में लिखने और जवाबी कार्ड भेजने की कृपा करें।

(६) पता बदलने की सूचना एक महीने पहले मिलने पर ही नये पते से 'अणुव्रत' भेजा जा सकेगा।

(७) नमूने के लिए यथासम्भव चार आने के टिकट अवश्य भेजें।

—व्यवस्थापक

अणुव्रत के पाठकों से!

'अणुव्रत' को और अधिक लोकोपयोगी व जन-रुचिकर बनाने की दृष्टि से 'अणुव्रत' में प्रकाशित रचनाओं के सम्बन्ध में अपने सहृदय पाठकों का मत जानना आवश्यक है।

अतः हमारा साग्रह निवेदन है कि भविष्य में सहयोगी पाठक 'अणुव्रत' के प्रत्येक अङ्क पर अपनी सम्मत्ति, विचार व सुझाव आदि निःसंकोच लिखकर भेजें।

जो पाठक हमारी त्रुटियों व अभावों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे उनके हम विशेष आभारी होंगे।

रचनात्मक विचारों एवं सुझाओं को यथाशीघ्र क्रियान्वित करने का भी प्रयत्न हो सकेगा।

—सम्पादक

आवश्यक सूचना

अणुव्रत समिति के कार्यालय में तथा दौरे के समय समिति के कार्यकर्त्ताओं से प्रायः विविध काम करनेवाले नैतिक और निष्ठावान व्यक्तियों की मांग प्रस्तुत की जाती है।

अतः ईमानदारी व सच्चाई के साथ अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने के इच्छुक शिक्षा, साहित्य व अन्य व्यापारिक प्रतिष्ठानों में कार्य करने के लिये अपनी योग्यता व रुचि के अनुसार पूर्ण विवरण सहित इस पते पर आवेदन करें—

मंत्री, अणुव्रत समिति
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता १

बाल पाठकों के लिये

अणुव्रत में शीघ्र ही एक बालोपयोगी स्तम्भ प्रारम्भ करने का विचार है। अतः लेखकों व पाठकों की इस स्तम्भ के लिये छोटी-छोटी शिक्षाप्रद कहानियाँ, लेख, चुटकले व अन्य रचनाएँ और साथ ही बहुमूल्य सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

—सम्पादक

[समालोचनार्थ पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियां कार्यालय में भेजनी चाहिये]

हिन्दी काव्य में यमुना वर्णन-लेखिका—सुश्री अर्चना एम० ए०, प्रकाशक—साहित्यालय प्रकाशन, अजमेर, पृष्ठ सं० ६४, मूल्य १।।)

प्रस्तुत निवन्ध उच्चकोटि का सिद्ध हुआ है। लेखिका ने बहुत परिश्रमकर शताब्दियों से कवियों ने और भावुक भक्तों ने यमुना के प्रति अपने जो शुभ्र उद्‌गार प्रकट किये हैं, उनका चयन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है। इस निबन्ध के प्रस्तुत करने में लेखिका ने जिन अनेक ग्रन्थों का अवलोकन करने का श्रम उठाया है, वह वास्तव में स्तुत्य है। हिन्दी साहित्य में यह कृति नूतन तो है ही, अद्वितीय भी है। हिन्दी काव्य में यमुना के प्रति भावुकों का जो आकर्षण रहा है, लेखिका ने इस निवन्ध में हमें एकत्र प्रदान किया है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये लेखिका बधाई के योग्य है।

भारत की लौकिक तथा पारलौकिक साधना में यमुना का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। गंगा, यमुना और सरस्वती की संगम भूमि प्रयाग का माहात्म्य श्रुति-स्मृतियों में भरा पड़ा है। भारतीय संस्कृति में गंगा यदि सत्य की प्रतीक है तो यमुना सौन्दर्य की और सरस्वती शिव की। इस प्रकार सत्यं शिवं सुन्दरं की अभिव्यक्ति यमुना के विना पूर्ण नहीं हो सकती।

यमुना वर्णन का विषय निवन्ध के लिये बहुत ही मौलिक है। इस युग में अनेक प्रकार के निवन्ध लिखे गये पर इस निबन्ध की चारुता अत्यन्त रमणीय है। हिन्दी साहित्य को लेखिका की यह अपूर्व देन है। भाव और भाषा की दृष्टि से भी इस निवन्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस पुस्तक से निवन्धकारों का ध्यान व्यापक रूप से इधर मुड़ेगा ऐसी आशा है। साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं भक्ति के क्षेत्र में भी यमुना का स्थान परम आदरणीय रहा है।

संस्कृत साहित्य में भी यमुना का वर्णन विस्तृत रूप में हुआ है। भारत की सांस्कृतिक समृद्धि में यमुना का सराहनीय योग रहा है। 'हिन्दी काव्य में यमुना वर्णन' निवन्ध लिखकर लेखिका ने साहित्य के बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है इसमें संदेह नहीं।

—पीताम्बरदत्त शास्त्री

परिवर्तन (कहानी संग्रह) लेखकः— श्री ज्ञानचन्द्र नाहर, प्रकाशकः—ज्ञान प्रकाशन मन्दिर ५ सांठा बाजार इन्दोर नगर। पृष्ठ संख्या ६२, मूल्य १।)

प्रस्तुत संग्रह की कहानियों के कथानक, वर्णन शैली व भाषा अत्यन्त रोचक व पाठक-पाठिकाओं के अन्तःकरण पर स्थायी प्रभाव डालने में पूर्णतया सफल हैं, जो लेखक की प्रतिभा व उज्जवल भविष्य का परिचायक है। पुस्तक का आवरण व मुद्रण सुन्दर हुआ है और सभी कहानियों में नैतिक, सामाजिक, व आर्थिक समस्याओं पर समुचित प्रकाश डाला गया है जिनको पढ़कर पाठकगण वर्तमान युग की कहानियों की तुलना में अधिक रोचकता, मौलिकता व नवीनता का अनुभव करते हैं। नाहरजी की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि उन्होंने कहानियाँ प्रस्तुत करते समय केवल कल्पना का ही सहारा न लेकर मानव जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियों का वास्तविक चित्रण अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है और पाठक उन्हें पढ़ते समय ऐसा अनुभव करता है कि मानो वे घटनायें उसके नेत्रों के समक्ष ही घटित हो रही हैं। "मुन्नी का रक्त" तथा "जी हाँ न मैं मरना चाहता हूं न जीना" कहानियाँ हृदय में करुणा का संचार कर देती हैं। इस संग्रह को देखकर यह आशा होनी स्वाभाविक है कि भविष्य में नाहरजी और भी अधिक प्रौढ़ व मर्म-स्पर्शी रचनायें हिन्दी संसार के समक्ष प्रस्तुत कर सकेंगे।

—सुरेन्द्र

भारतवर्ष (पाक्षिक) प्रधान सम्पादक— प्रो० श्री देवेन्द्र 'दीपक' एम० ए०, हापुड़ (मेरठ) उ० प्र०

राष्ट्रनिर्माण का प्रगतिशील संदेश देने के उद्देश्य से अभी हाल में ही इस पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है। आकार-प्रकार व रूप से यद्यपि यह पाक्षिक पत्र सा नहीं जंचता तथापि सामग्री का चयन सुन्दर है। 'सम्पादकीय' के अभाव में पाठक की पत्र सम्बन्धी दिशा और लक्ष्य की जिज्ञासा ज्यों की त्यों बनी रहती है। विश्वास है भविष्य में इसका रूप और निखरेगा। हम नये सहयोगी की सफलता की कामना लिये इसका हार्दिक स्वागत करते हैं।

—प्रभाकर
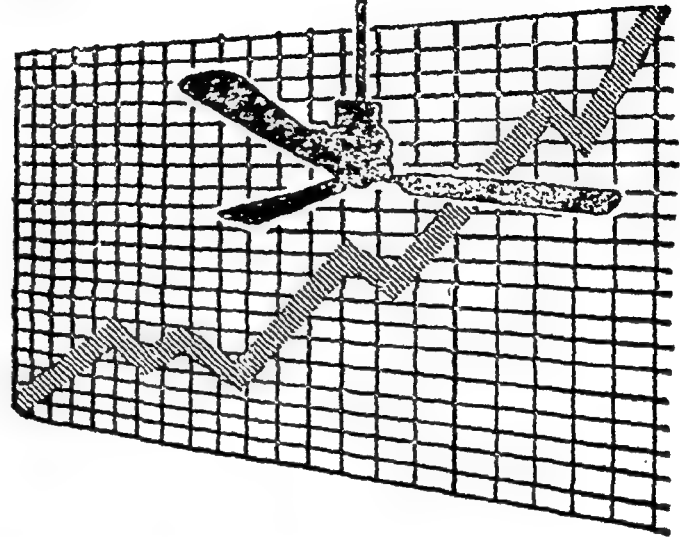
'अणुव्रत' पाक्षिक　१ जून १९५　जि० नं० C-3828

श्री प्रतापसिंह बैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं
रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित
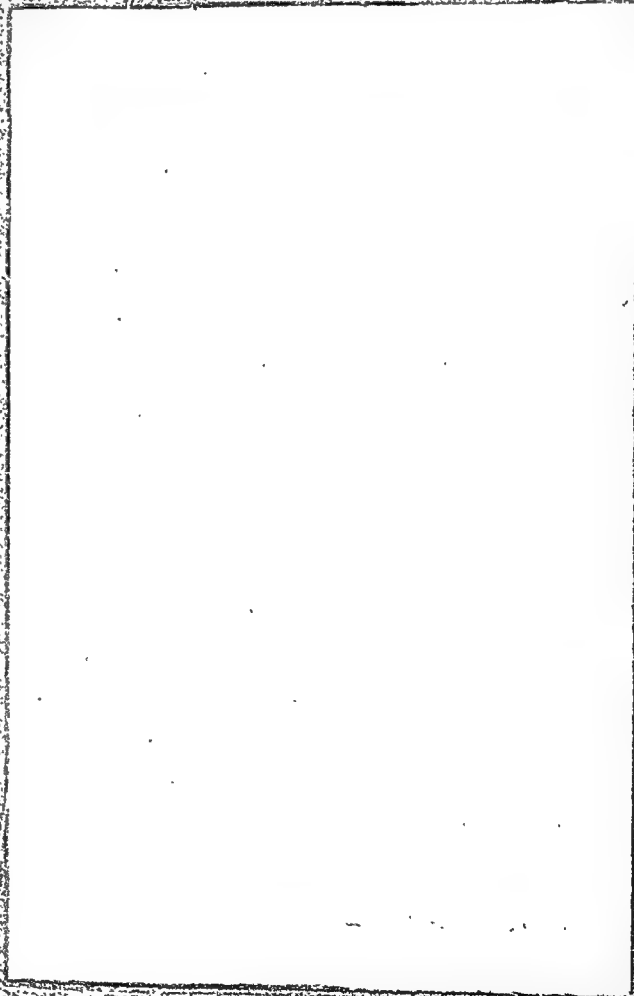
आपके अणुव्रत के विषय में—

कौन क्या कहता है ?

"...पिछले विश्वयुद्ध जनित परिस्थितियों के फल-स्वरूप अनैतिकता जितने व्यापक रूपसे फैल गई हैं, मेरी धारणा है कि पिछले दो हजार वर्षोंमें इस देशमें कभी नहीं फैली थी। आज चारों ओर भौतिक उन्नति के लिये होड़ लगी हुई है। यदि नैतिक पुनरुत्थान के लिये सशक्त प्रयत्न न किया गया तो भौतिक उन्नति में सफलता प्राप्त करके भी हम बाजी हार जायेंगे, क्योंकि नैतिकता के अभाव में इस देशकी संस्कृति जीवित नहीं रह सकती। इस समस्या की ओर विनोवा भावे और आचार्यश्री तुलसी का ध्यान गया है, यह देशके लिये अत्यन्त शुभ है। मेरी कामना है कि 'अणुव्रत' पाक्षिक नैतिक पुनरुत्थान का सशक्त साधन बनकर देशकी सेवा करे...।"

—डा० ब्रजमोहन गुप्ता डी० फिल, प्रयाग

"...अणुव्रत तन और मन दोनोंमें उन्नति कर रहा है, यह देखकर प्रसन्नता हुई।"

—विश्वदेव शर्मा पत्रकार, देहली

"...प्रयत्न सराहनीय है और कार्य परिश्रम के साथ किया जा रहा है यह भी स्पष्ट है। प्रयास की सफलता और पत्रकी उन्नति की कामना करती हूँ।"

—विद्या एम० ए०, कानपुर

"पत्र प्रत्येक प्रकार से प्रांजल और प्रौढ़ है। इस युगको ऐसे ही पत्रकी आवश्यकता है। बहुमुखी सफलता के लिये मेरी हार्दिक बधाई लें।"

—ब्रजकिशोर 'नारायण', पटना

"...भारत स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र राष्ट्रमें नैतिक जागरण न होनेसे राष्ट्रका कल्याण असम्भव है। इस ओर आपका ध्यान गया है। अतः आप अभिनन्दनीय हैं।"

—बाल शौरि रेड्डी, मद्रास

"...सामग्री को देखते हुए यह आशा होती है कि आपका प्रयास अवश्यमेव सफल होगा।"

—सम्पादक-अहिंसा प्रचार, राँची

"...अणुव्रत निश्चय ही महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। पत्रकी सफलता के लिये हृदय से कामना करता हूं।"

—शम्भूनाथ तिवारी, न० दि

"अङ्क बहुत ही सुन्दर है। नैतिक स्तर ऊँचा उठाने में यह पत्रिका पतवार का कार्य करेगी।"

—प्रकाश जैन, लाडनूं

"...अणुव्रत दिन प्रति-दिन सुरुचिपूर्ण होता जा रहा है। स्तम्भों का चुनाव ठीक है। एक स्तम्भ बच्चोंके लिये भी होना चाहिये।"

—विजय मधुप, विष्णुगढ़

"...'अणुव्रत' प्राप्त हुआ, सामग्री व नियमितता देखकर प्रसन्नता हुई। नैतिक जागरण का इसके द्वारा जो कार्य हो रहा है, स्तुत्य है।"

—रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, जयपुर

"..'अणुव्रत द्वारा आप संसार-सुधार की दिशामें सक्रिय योग दे रहे हैं। बधाई स्वीकार कीजिये।"

—यतीन्द्र केशव, भोपाल

"...अणुव्रत के प्रकाशन के सदुद्देश्य की प्रशंसा जितनी की जाय, थोड़ी है। मैं इसके दिनों-दिन उत्थान में हार्दिक शुभ-कामना का सन्देश भेजता हूं। और जहाँ तक भी सम्भव होगा, मैं इसमें सहयोग देने के लिये सदैव तत्पर हूं...।"

—सौद्धिलाल माणिक, गया

"...मैंने अणुव्रत पत्रिका का हार्दिक स्वागत किया है और उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखती हूँ। मेरी भी शुभ-कामनाएँ हैं कि दिनों-दिन इसकी उन्नति हो...।"

—प्रभा भटनागर, बरेली

"...नैतिक जागरण के अग्रदूत 'अणुव्रत' का स्वागत करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष है।

अणुयुग में जब मानव ने यंत्रवत् हो, मानवता को खो-सा दिया है, तब नैतिकता एवं अध्यात्म की आवश्यकता सर्वोपरि हो जाती है। 'अणुव्रत' ऐसी विषम परिस्थिति में सर्वश्रेष्ठ सफल सन्देश है। अणुव्रत-आन्दोलन युग की मांग है। 'अणुव्रत' को यदि युगधर्म कहा जाय तो भी कोई अत्युक्ति नहीं है। तब निश्चय ही इसके आदर्श विचारों को प्रतिपादित करनेवाला प्रत्येक प्रयत्न प्रशंसनीय है।

सामग्री-संकलन सारगर्भित, भावपूर्ण तथा विचार-प्रधान है। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ, मंगल-कामनाएँ एवं सौम्य सहयोग सदैव आपके साथ है...।"

—अमरसिंह महता पत्रकार, देहली

"...१६ वां अंक मिला। आरम्भ से अन्त तक पढ़ा। आज के युग में ऐसी पत्रिकाओं की बहुत जरूरत है। मैं इसके उद्देश्य समाज के लिये बहुत उपयोगी मानता हूं और हृदय से इसकी सफलता चाहता हूं।... धन्यवाद।"

—मानकचन्द, गंगाशहर

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१

卐

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १५ जून, १९५६ [अंक १७

छोटे-बड़े की भावना आने पर आत्मा का अस्तित्व भुला दिया जाता है !

धर्म आत्म-पवित्रता का साधन है। आत्मा पर आई मलीनता को दूर करने के लिये, आत्मा की पवित्रता के लिये या आत्मा को अपनी वास्तविक स्थिति में लाने के लिये धर्म की आवश्यकता और उपयोगिता हिंसा से आत्मा अपवित्र बनती है इसलिये हिंसा का निषेध किया गया है। जो बड़े हैं उन्हें सुख की अधिक जरुरत है, छोटों को सुख की जरुरत नहीं या उन्हें जीने का अधिकार नहीं, जहां यह भावना बन जाती है वहां आत्मा का अस्तित्व भुला दिया जाता है। आत्मा आत्मा में समानता है—यह भावना बने बिना जीवन में अहिंसा नहीं टिक सकती। जैन-धर्म या आत्म-धर्म सब प्राणियों के प्रति समानता की भावना देता है जहां जीवन के आदि छोर में व्यक्ति जीने की वांछा करता है वहां जीवन के आखिरी क्षण में भी वह जीने की वांछा रखता है। सब जीने की वांछा रखते हैं तब किसी को मारने का किसे अधिकार हो सकता है ? सबके प्रति समभाव, शत्रुओं के प्रति भी प्रेम का व्यवहार; यही वास्तविक अहिंसा है जिसकी ओर सबको आगे बढ़ाना है।

क्रान्ति का स्वर

शास्त्रों में धर्म के दो मार्ग बतलाये गये हैं—महाव्रत और अणुव्रत। महाव्रत का अर्थ है जीवन भर के लिये अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को स्वीकार करना, इनकी साधना में प्राण-प्रण से लगे रहना। यह जीवन-विकास का उत्कृष्ट मार्ग है। महाव्रतों की आंशिक साधना करना अणुव्रत है। यदि व्यक्ति जीवन में सम्पूर्ण रूप से अहिंसा, सत्य आदि का पालन करने में अपने को असमर्थ पाता है तो वह जहांतक बन सके हिंसा से, असत्य से बचने का प्रयास करे। अनावश्यक हिंसा तो वह न करे, क्रूर हिंसा तो वह न करे, ऐसा असत्य तो न बोले जो अनर्थ पैदा करनेवाला हो। दूसरे के तिनके को भी पूछे बिना लेना चोरी है इससे बचना अचौर्य का उच्चतम आदर्श है। इस तक यदि व्यक्ति नहीं पहुँच सकता तो वह कम-से-कम राज दण्डनीय और लोक निन्दनीय चोरी तो न करे। अणुव्रतों का मूल स्वरूप यह है। वे जीवन को विरति अर्थात् बुराइयों के परित्याग की ओर ले जाते हैं ताकि वह इस पवित्र मार्ग पर आगे बढ़ता-बढ़ता और अधिक विकास और उन्नति कर सके। अणुव्रत कोई नये नहीं। कोई पूछे सत्य और अहिंसा कब से चले तो क्या बताया जावे ? यह तो अनादिकालीन तत्व है। यही बात अणुव्रतों के लिये है। वे आज के लोक जीवन में शुद्धि ला सकें, उसमें समायी हुई बुराइयों पर चोट कर सकें इसलिये उनके अन्तर्गत जीवन-शुद्धि मूलक जैसे समयानुकूल नियमों का निर्माणकर एक आन्दोलन का रूप दिया गया है, जो अणुव्रत-आन्दोलन के नाम से सुविदित है। यदि संक्षेप में कहें तो यह अणुव्रतों का सार्वजनिक रूप से आज के युग के अनुरूप चारित्र्य-शुद्धि मूलक संस्करण है।
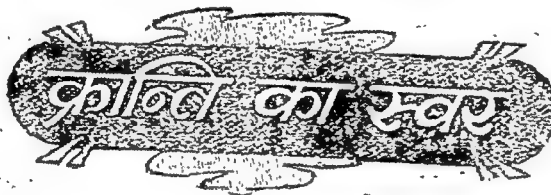
अणुव्रत-आन्दोलन किसी कौम, जाति या सम्प्रदाय का आन्दोलन नहीं है। यह मानवता का आन्दोलन है, जीवन-शुद्धि का आन्दोलन है। व्यक्ति चाहे किसी भी जाति का हो, किसी भी सम्प्रदाय का हो, उसके जीवन में सचाई की मांग है, ईमानदारी की मांग है, समता की मांग है क्योंकि ये वे गुण हैं जो मानव को सहीमाने में मानवता देते हैं। अणुव्रत-आन्दोलन ऐसा ही करना चाहता है। वह कहता है—कूट तौल माप न करो, धोखा मत दो, असत्य आचरण से बचो, रिश्वत मत लो, शोषण मत करो। जरा सोचें, क्या यह विचार किसी सम्प्रदाय विशेष के हैं। ये तो सभी के हैं, सभी के हित के हैं। जिन्दगी में आदमी जितना इनको पालेगा, कठिनाइयों से बचेगा।

—आचार्य तुलसी

सर्वोदय सम्मेलन के निश्चय

मद्रास के कांचीवरम् में सर्वोदय समाज का आठवाँ अखिल भारतीय सम्मेलन २७-२८ और २९ मई को अनेक महत्वपूर्ण निश्चयों को सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में देशके कोने-कोने से जहाँ रचनात्मक कार्यकर्ता और नेतागण सम्मिलित हुए वहाँ राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद और हमारे वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ श्री राजगोपालाचार्य की उपस्थिति अत्यन्त प्रभावपूर्ण व प्रेरणा सूचक थी। सम्मेलन ने अनेक निश्चय लिये। इन सबपर एक दृष्टि डालते हुए यह निसंकोच कहा जा सकता है कि गया के पश्चात् सम्मेलन ने एक और दूसरा क्रान्तिकारी मोड़ लिया है और यह मोड़ अपने अब तक के कार्यक्रम के लिये एक निर्णायक अवस्था की भी सूचना देता है। सन् १९५७ उसकी परिधि है और उसके भविष्य पर सबकी टकटकी है। निःसन्देह परिधि से अधिक यह एक कसौटी है, जिसमें सर्वोदय कार्यकर्त्ताओं को गुजरना है। सर्वोदय का यह परीक्षण यदि सफल होगा, तो सचमुच ही विश्वकी यह महान् नैतिक क्रान्ति होगी और उस दिन अहिंसा की एक अपूर्व विजय होगी। जिस ओर सम्मेलन का सर्वाधिक ध्यान गया है, वह है भूदान सन् १९५७ के अन्त तक समाप्त कर दिया जाय और देश में ग्रामराज (पंचायत राज्य की स्थापना हो। इस पर विनोबाजी ने प्रवचन करते हुए कहा है कि कार्यकर्त्ता यदि निष्काम भावसे काम करते रहे तो मुझे विश्वास है कि भूदान-यज्ञ सन् १९५७ में सफल परिणति को प्राप्त हो जायगा। उस दिन हमारे ग्राम-राज्य का स्वप्न साकार होगा। निसन्देह यह एक अद्वितीय कार्य है और इस बातका प्रमाण है कि जो कार्य-कानून और व्यवस्था से सहजतया नहीं हो पाता वही अहिंसा भावके द्वारा स्थायी, ठोस और आसान हो जाता है। यह एक कठिन परीक्षण है और इसकी सफलता जैसाकि हम ऊपर कह चुके हैं, अहिंसा की एक अपूर्व विजय है। भूदान के द्वारा जमीन का उचित वितरण करके गांवोंमें आर्थिक क्रान्ति और सर्वोदय लाना देशकी आजादी के बाद अहिंसा के सामूहिक व सामाजिक प्रयोगों में यह एक नवीन अध्याय का सूत्रपात होगा। उस दिन गांवों में गांधीजी के राम-राज्य का स्वप्न सार्थक होगा।

सम्मेलन का एक और महत्वपूर्ण प्रस्ताव है जिसने समस्त संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। वह है सम्मेलन ने सर्वदेशों की सरकारों से अनुरोध करते हुए कहा है कि वे अहिंसा के द्वारा विश्वशान्ति की स्थापना करें। प्रस्ताव में कहा गया है कि संसार की बड़ी-बड़ी शक्तियां युद्ध की तैयारियों में लगी हैं। इसका कारण यह है कि उनका अहिंसा में विश्वास नहीं है। भारत को शान्तिपूर्ण नीतिका अनुगमन करते हुए संसार के इन दूसरे देशोंके सामने एक उदाहरण रखना चाहिए। किन्तु इसके साथ ही सरकार को यह स्मरण रखना चाहिए कि वह आन्तरिक समस्याओं के हलमें हिंसाका प्रयोग करती हुई दूसरे देशोंसे अहिंसा पर चलने की आशा नहीं कर सकती।

सम्पादकीय

आज जहाँ अणु और परमाणु बमोंकी प्रतियोगिता चल रही है और संसार की बड़ी-बड़ी शक्तियां इसके नित्य नये परीक्षणों से अपनी साम्राज्यवादी शक्तिके विस्तार के साथ भयानक हिंसावादी सृजनों में जुटी हुई हैं, वहाँ सम्मेलन का यह प्रस्ताव बड़ी-बड़ी ताकतों के समक्ष हास्यास्पद भले प्रतीत हो, लेकिन अणुबम से त्रस्त दुनियां की कोटि-कोटि जनता के लिये यह महान् कल्याणकारी कार्य होगा। निसन्देह नेहरुजी ने अहिंसा की इस वाणीको भारतीय संस्कृति के दूतकी तरह संसार में फैलाया है और युद्धसे पीड़ित व भयभीत जनता को शान्तिका सन्देश दिया है। किन्तु यह काफी नहीं है। हमारी आन्तरिक व्यवस्था में भी अहिंसा प्रबल बने और वह एक उदाहरण बनकर समस्त विश्वको अपनी ओर आकर्षित करे। यही नहीं, हमारी सामाजिक व्यवस्थामें भी अहिंसा का प्रादुर्भाव हो और हमारा प्रशासन हिंसा, शोषण व भ्रष्टाचारपूर्ण तत्वोंको समाप्त कर, नैतिक दृष्टिसे ऊपर उठें, तब ही हम संसार के समक्ष सीना तानकर खड़े रह सकते हैं। इस दृष्टि से सम्मेलन ने आवाज उठाकर अपने सम्पूर्ण नैतिक साहस का परिचय दिया है। लेकिन आवश्यकता है कि विश्वका सर्व अहिंसक शक्तियां अहिंसा के द्वारा विश्व-शान्ति की स्थापना में अग्रसर बनें और यह प्रस्ताव सक्रिय रूप ले। जिस प्रकार हिंसावादी तत्वोंका संगठन अणुबम की क्रियाओं को लेकर गतिशील बनता जा रहा है और उसके नामपर शांति व प्रगति का अनर्गल प्रचार किया जा रहा है। उसी तरह आवश्यकता है अहिंसावादी तत्त्व एक हों और वे अहिंसा को माध्यम बनाकर विश्वकी सच्ची शान्ति को संगठित करनेमें जुट पड़ें और धीरे-धीरे यह आन्दोलन का रूप ले। अन्यथा भय है कि अहिंसा की यह आवाज नक्कारखाने में तूती की तरह सिद्ध न हो जाय।

सम्मेलन के युवक-प्राण श्री जयप्रकाशनारायण ने १५ सूत्री जीवन-दान कार्यक्रम प्रस्तुतकर कार्यकर्त्ताओं के चारित्रिक मापदण्ड को प्रधानता दी है। १५ सूत्री योजना के अध्ययन से अणुव्रत क्रान्ति का आभास उसमें स्पष्ट दिखाई देता है। योजना में नकारात्म

कार्यक्रम के साथ सकारात्मक निश्चयों का निर्धारण यह एक नया परिवर्तन है। हमें सन्तोष है कि आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रज्वलित नैतिक चिनगारी किसी न किसी रूपमें फैल रही है। राष्ट्रके निर्माण में लम्बे अनुभवों के बाद व्यक्ति निर्माण को आज प्राथमिकता दी जाने लगी है और अब चारों ओरसे नैतिकता, सदाचार व ईमानदारी की आवाज बुलन्द होने लगी है। अच्छा हो सब ओर से प्रयत्न होकर यह नैतिक गंगा हमारे राष्ट्रको निर्मल, स्वच्छ और सबल बनाने में विस्तृत हो उठे। श्री जयप्रकाश बाबू की यह योजना हमारा विश्वास है, नैतिक क्रान्ति के मार्ग को अधिक प्रशस्त करेगी और अणुव्रत आन्दोलन की दिशाको विकसित करने में सहायक होगी।

सब कुछ मिलाकर मद्रास का यह सम्मेलन भूक्रान्ति के नये चरण छोड़ने के साथ अहिंसा व नैतिकता की एक मशाल जागृत करता है। इसी अवसर पर अखिल भारतीय बुनियादी शिक्षा-सम्मेलन का आयोजन सर्वोदय के आदर्श को प्राप्त करने के लिये एक महत्त्वपूर्ण कदम है। आचार्य विनोबा ने शिक्षा पर बोलते हुए कहा कि बुनियादी शिक्षासे ऐसे क्रान्तिकारी पैदा होंगे जो अन्याय और असमानता पर आधारित दासता को सहन न कर सकेंगे। आदर्श शिक्षा प्रणाली में अभद्रता और अन्ध-विश्वासों से लड़ने की प्रेरणा निहित होती है। सचमुच शिक्षामें जबतक नैतिक दृष्टिकोण नहीं आयगा, तबतक समाज के नव-निर्माण की आशा व्यर्थ सिद्ध होगी। कांचीवरम् सम्मेलन ने शिक्षा, समाज व राजनीतिको एक स्वस्थ दिशा दी है और अपने महत्वपूर्ण निश्चयों तथा क्रान्तिकारी निर्णय से समस्त विश्वमें विचार की एक चिनगारी जागृत की है। विश्वशान्ति और नई समाज-रचना के लिये यह एक प्रकाशमान देन है।

दोनों पहिये एक साथ

रथको खींचने के लिये दोनों पहियों का एक साथ चलना आवश्यक है अन्यथा आगे-पीछे रहने पर रथ एक पग भी आगे न बढ़ सकेगा। यही बात राष्ट्र-निर्माण में पुरुष और नारीके साथ लागू होती है। यह माना कि प्रत्यक्ष रूपसे निर्माण कार्य का आधार और निमित्त प्रायः पुरुष रहता है किन्तु परोक्ष रूपमें ही सही, इस यज्ञमें माताओं और बहनों का भी जो महत्त्वपूर्ण योग रहता है वह किसीसे छिपा नहीं है। अतः इस आवश्यकता की पूर्तिके लिये दोनों के सहयोग की समान रूपसे अपेक्षा है।

किसी एक पक्षके असहयोग से ही राष्ट्र व समाज के विकास-पथपर अवरोध उत्पन्न हो सकता है। इस दिशामें पुरुषों का उत्तर-दायित्व तो है ही महिलाओं को भी श्रीमती इन्दिरा गाँधीके इन शब्दोंको ध्यानमें रखकर अपनी गति तीव्र करनी है :—

"महिलाओं के सहयोग बिना सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि महिलाओं ने देशके स्वतन्त्रता आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया था। किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त होनेके बादसे वे देशके निर्माण कार्योंमें अधिक रुचि नहीं ले रही हैं। उन्हें देश-निर्माण के कार्योंको करना चाहिये।"

हमारी ये असावधानियाँ !

समाचार पत्रोंमें हमें नित्यप्रति ही कुछ ऐसे समाचार पढ़ने को मिलते रहते हैं—दो व्यक्तियों की मोटर की टक्कर से मृत्यु, तांगेसे टकरा जाने पर एक व्यक्ति घायल, कार व साइकिल की टक्कर आदि-आदि। यद्यपि ऐसी घटनाएँ घट जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं, भीड़-भाड़ या कुछ अनजाने में ऐसा सम्भव भी है तथापि जान-बूझकर लापरवाही में जब ऐसा होता है तब निश्चय ही यह विचारणीय विषय बन जाता है और जिस समय हम यह पढ़ते हैं कि ऐसी घटनाओं में अधिकांश का कारण मद्यपान या नशा है तो हमारा मस्तक और भी लज्जासे झुक जाता है। आखिर यह नागरिक भावना का उपहास नहीं तो और क्या है?

जितना जीनेका अधिकार व स्वतन्त्रता हमें है उतनी ही हमारे साथवालों को भी है, यह बात हमें सदैव ध्यान में रखनी है। स्वतन्त्रता का राग अलापकर, शराब पीकर व असावधानी दिखाकर जन-जीवन को दूभर करनेकी कुचेष्टा को कभी भी सहन नहीं किया जा सकता। अतः हमें स्वयं में नागरिक भावना उत्पन्न कर और अपने अन्य साथियों को इस दृष्टिसे समझाकर इस प्रकार की असावधानी व लापरवाहियों को रोकने का प्रयत्न करना चाहिये।

सम्पादकों से !

सात्विक विचारों के प्रचार की दृष्टिसे 'अणुव्रत' में प्रकाशित कोई भी रचना उद्धृत की जा सकती है किन्तु उसमें 'अणुव्रत' का उल्लेख होना अनिवार्य है।

यह मानव समाज !

श्री हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि'

मनुष्येतर जीवोंके मांस खानेवाले मानवोंको मानव समाज कोई अच्छी निगाह से नहीं देखता। मानवों द्वारा मानव-भक्षण से तो वह घोर घृणा करता है। केवल घृणा ही नहीं; अपितु उसे जघन्य अपराध मानता है और उसका ऐसा करना ठीक ही है क्योंकि जीवात्मा सबमें है; जीनेका स्वत्व सबका है और वह सबका बना ही रहना चाहिये। पर हँसी तो तब छूटती है; आश्चर्य तो तब होता है; रोना तो तब आता है, जब वही मानव समाज मानवता भक्षक मानव-कलंकों को छातीसे लगाता है; उन्हें अपने सिर आँखों पर रखता है; उनके तलवे चाटता है। हँसी छूटती है सभ्य, सुसंस्कृत समाज की महामहिम मूर्खता पर; आश्चर्य होता है उक्त चमत्कारिक बुद्धि-दारिद्रय पर और रोना है उसकी अपार शोचनीय अवस्था पर।

एक पल को भी तो यह समाज-भोला कहूँ कि भोंदू ? नहीं सोचता कि आज जो समाज का बहुत बड़ा अंश पीड़ित है, व्यथित है, नाना प्रकार की आधि-व्याधियों से ग्रसित है, शंकित है, चिंतत है, जीते ही मृतप्रायः है, वह क्यों और किसकी बदौलत ? काश वह जानता कि भक्षक तो भक्षक ही रहता है; रक्षक बनाने मात्रसे रक्षक नहीं बन जाता। साँपको दूध पिलाने से वह विष छोड़ अमृत नहीं उगलता। आगको छातीसे लगाने पर छाती जलती ही है, ठण्डक नहीं पड़ती, ऐसा वह जानता तो आज इस दशाको नहीं पहुँचता।

और भी उसे मालूम होना चाहिये था कि मानव अथवा मानवेतर भक्षक तो एक बारगी ही मानव तथा मानवेतरों को खा-पी पाप काटते हैं और वह भी पेटकी आगसे मजबूर होकर; भूले-भटके कोई-कोई ही स्वाद वश। पर यह मानव कलंक तो पेटकी आगसे नहीं, केवल रस लोलुपतावश अपनी मौजकी खातिर घुनकी तरह लगकर भीतर ही भीतर समाज को खोखला करते हैं; जोंककी तरह चुपचुपाते ही उसका समूचा रक्त चूसकर स्वयं दिन प्रति दिन भाँति-भाँति से धन-सम्पत्ति एवं सत्ता आदिसे सम्पन्न होकर फूल-फूल कर कुप्पे हुए जाते हैं, उसे निरा कंकाल अस्थिपिंजर मात्र बनाकर स्वयं उसपर सवारी गाँठते रहते हैं;—हाँ उस भूले-भोलेको तरह-तरह की बात बनाकर अपनी स्थितिमें सन्तुष्ट रहने का पाठ पढ़ा-पढ़ा कर। न-मालूम होनेका ही यह नतीजा है कि वह पिस रहा है; रो रहा है; चिल्ला रहा है और फिर भी अपनी ऐसी दुर्गति करनेवालों का वाहन बना हुआ है। ऐसे में कोई क्या करे ? कोई अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मारे, तो लड़खड़ाकर गिरे ही बनेगी; और क्या होगा ?

पर ऐसा चलेगा भी कब तक ? कभी-न कभी तो चेतना को आना ही है। जितना शीघ्र आये, सर्व भूतहित में उतना ही उत्तम। अच्छा है, समाज स्वयं तुरन्त चेत जाय। उसे चाहिये कि अविलम्ब बिना एक पलकी भी देर किये, व्यर्थ वाहन न बना रहकर जबर्दस्ती के सवार को उसकी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें न आकर न ही उसकी धौंस मानकर, उससे भय खाकर, एक झंझोटी ले पीठ परसे परे डालदे, बेबसी की बेगार का जुआ गर्दन से उतार फेंके। जहाँ जिसकी जगह है, उसे वहीं स्थान देकर मुक्तता को पूर्णतया अपना कर हलका हो खुली हवामें सांस ले, स्वास्थ्यलाभ करे और फिर इस तरह नव-जीवन से ओत-प्रोत हो पूरा-पूरा पन प्राप्त करे जो सदा सबको मिलाभिष्ट है।

काम यह कठिन लगता है—बहुत-बहुत ; पर है नहीं। कम-से-कम उतना नहीं। आवश्यकता है केवल यथार्थ विवेक और दृढ़ निश्चय की। क्योंकि अस्वस्थता, अपूर्णता, अस्वाभाविक है ; स्वस्थता, पूर्णता, स्वाभाविक। अस्वाभाविकता सदा-सदाके लिये नहीं रह सकती। स्वभाव के जागते ही उन्हें भागना पड़ता है। भागे ही बनती है और कोई चारा नहीं उसके लिये। वास्तव में उसका अस्तित्व ही कहाँ है ? अतः समाज को स्वस्थ होना है और वह होकर रहेगा। स्वार्थ के पुतले कितने ही रोड़े अटकायें, उसकी प्रगति रुक नहीं सकती। पर प्रश्न है देर-सवेर का। यह भी समाज के अपने ही हाथ में है। जब भी वह जागेगा, सवेरा हो जायेगा। स्वस्थता की उषा उसका स्वागत करेगी; पूर्णत्वका सूर्य उसे आशीर्वाद प्रदान करेगा और कृत-कृत्यता उसके चरण चूमेगी। पर जागे तो यह मानव समाज !

जगत और प्रेम

'जगत क्या है ?'
प्रेम का पिंगूरा।
'और प्रेम ?'
जगत का जीवन।

—श्री 'हरि'

जीवन-शुद्धि और धारणा शक्ति

मूललेखक :—श्री केदारनाथ अनुवादक :—श्री रिषभदास रांका

मानव जीवनका महत्त्व और उसकी विशेषता बुद्धिको मान्य हो जाय तो भी जीवन सार्थक बनानेके लिए आवश्यक पात्रता प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करनी पड़ती है। कोई भी बात मान्य हो जाय तो भी उसे आचरणमें लानेके लिए कुछ विशेष गुणोंकी आवश्यकता रहती है। वे गुण प्राप्त करने और बढ़ानेके लिए प्रयत्नशील रहना पड़ता है। हमारे बुद्धिमान लोगोंका बौद्धिक स्तर यहाँतक पहुँच गया है कि सामान्यतया कोई भी बुद्धिगम्य कठिन विषय भी हम समझ सकते हैं; लेकिन उस विषयके मुख्य तत्वानुसार बरतनेके लिए आवश्यक शक्ति हममें नहीं पाई जाती। किसी भी विषयको समझना और उसके तत्त्वानुसार आचरण, इसमें बड़ा अन्तर है। समझनेके लिए बौद्धिक शक्तिकी और आचरणके लिए मानसिक और कई वार शारीरिक शक्तिकी भी जरुरत रहती है।

जीवनका महत्व समझने पर भी मानवता या जीवन शुद्धिके लिए प्रयत्नशील रहनेके लिए सहनशीलता, धीरज, दृढ़ता आदि सद्गुणोंकी जरुरत रहती है। उसके लिए क्षणिक और हलके सुख और सुविधाओंका त्याग करना पड़ता है। सादगी तथा व्यवस्थितपनको महत्व देना पड़ता है। जीवनका रुख भोग-प्रधान हो तो जीवन-शुद्धि साधनेके लिए मनको त्यागकी ओर मोड़ना होगा। त्यागके लिए सहिष्णुताकी जरुरत है। सहिष्णुता निग्रह और दृढ़तासे आती है। इन सब गुणोंका आधार धारणा-शक्ति पर होता है। इसी कारण जीवन शुद्धिके मार्ग में धारणा-शक्ति का-सद्गुणोंको धारण करने की शक्ति का बहुत महत्व है। किसी भी वस्तु को हाथ में जोरसे पकड़कर रखने के लिए जिस तरह हाथ की अंगुलियों में शक्ति की जरुरत होती है, उसी तरह त्याग, सहिष्णुता, संयम, निग्रह, निश्चय, धैर्य आदि किसी भी सद्गुण को ग्रहण करनेके लिए धारणा शक्तिकी जरुरत होती है। कठिन प्रसंगमें कईबार धीरज और शांति रखनी पड़ती है। उस अवसर पर इसी शक्तिकी जरुरत लगती है। आज हममें यह शक्ति बहुत कम होनेके कारण समझने की शक्ति होने के बावजूद भी अपनी और समाजकी अवनति जड़ बनकर देख रहे हैं। अन्याय, दुष्टता, जुल्म, अज्ञान, दारिद्र आदि सब सहन कर रहे हैं। इन सबके दुष्परिणामों को हम जानते न हों सो बात नहीं, वे तो प्रत्यक्ष भुगतने पड़ते हैं। लेकिन उन्हें टालनेकी शक्ति न होनेके कारण हम वे चुपचाप सहन करते हैं। हमारी यह सहिष्णुता हमें अवनति की ओर ले जारही है। क्योंकि वह भय और लाचारीमें से पैदा हुई है। वह हमारे दौर्बल्य, दीनता और कायरताकी निशानी है। सहिष्णुता जब उन्नति में सहायक होती है, तब वह सद्गुण समझा जाता है। अपनी उन्नतिके लिए जब समझ-बूझकर सहन करते हैं, उस समयकी हमारी सहिष्णुतासे हमारे सद्गुणोंका दर्शन हो, उसका विकास होता है। इस सहिष्णुताको 'तितिक्षा' कहा जाता है। इस प्रकारकी तितिक्षाके बिना हम सन्तोषपूर्वक त्याग नहीं कर सकते। जहाँ संतोषपूर्वक त्याग और त्यागके साथ शांति दिखाई देती है वहाँ वैराग्य समझना चाहिए। भोगके विषय में प्रीति या रस न होना वैराग्य है।

जिस वस्तुके लिए हमारे मनमें प्रीति नहीं होती उसका त्याग करनेमें दुःख या विकलता नहीं होती। कठिनाई महसूस न होकर बन्धन से छूटनेका आनन्द मालूम देता है। जब गरमी लगती हो शरीर परसे ज्यों-ज्यों एक-एक कपड़ा निकालते हैं, त्यों-त्यों अच्छा मालूम होता है। उसी तरह इन्द्रियजन्य सुखका लोभ छोड़नेसे जिसके चित्तको शांति मालूम देती है उसमें सच्चा वैराग्य है—ऐसा समझना चाहिए।

लेकिन यह तो बहुत उच्च मानसिक अवस्थाकी बात है। हमारी बुद्धि ने स्वीकृत किया—जीवन ध्येय साध्य करने के लिए हमें पहले धारणा शक्ति प्राप्त करनी चाहिए, उसका विकास करना चाहिए। उसके बिना हममें दृढ़ता नहीं आयेगी। दृढ़ता और निश्चयके बिना त्याग नहीं बन पड़ेगा और टिक नहीं सकेगा। धीरज और अन्तःकरणकी शक्तिके बिना त्यागमें सहजता नहीं आयेगी। सहिष्णुता, दृढ़ता, त्याग, धीरज, निग्रह, आदिमें से कोई भी गुण धारणा-शक्ति के बिना हम प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

जीवन शुद्धिका प्रयत्न करनेवालोंको आरम्भ में कुछ अन्तर्बाह्य कष्ट सहन करने होते हैं, मनको पड़ी हुई बुरी आदतें, चित्त के बुरे संस्कार और जीवन में चले आये दोषोंको नष्ट करने के लिए अपने मनके साथ झगड़ना पड़ता है। इसमें सहन किए बिना काम नहीं चलता। अन्तर्बाह्य झगड़े में सफलता मिलने के लिए धीरज रखना पड़ता है। यों भी जीवन शुद्धिका प्रयत्न न करनेवालों को कुछ कम सहन नहीं करना पड़ता। दुराशाएँ, भिन्न-भिन्न प्रकारकी तृष्णाएँ, कामनाएँ, इन्द्रियजन्य लालसायें, काम-क्रोध के आवेग, असत्याचरण, राग-द्वेष, सामा

जिके रीति रिवाज, धार्मिक अन्धश्रद्धा, अज्ञान, भोलापन, अन्यान्य, जुल्म, छल-कपट, विश्वास-घात, कृतघ्नता, प्रेमभंगके आघात आदि अन्तर्बाह्य कारणोंसे हर रोज बहुत कुछ सहन करना पड़ता है। लेकिन इस सहनशीलताके कारण दिन-प्रतिदिन हम अधिकाधिक पामर और जड़ बनते हैं। हम तथा हमारा समाज इसी अवस्था में चली हुई रूढ़ी के अनुसार चलता रहता है। इसी कारणसे अपनी अवनतिका भान तक नहीं होता। यह स्थिति इतनी रूढ़ बन गई है कि इसमेंसे निकलनेका विचारतक चित्तमें नहीं आता। इस प्रवाह-पतित अवस्थाके कारण हममें तथा समाजमें अनेक दूषित मनोवृत्तियाँ बढ़ती रहती हैं। उससे परस्पर संघर्ष तथा क्लेश के प्रसंग पैदा होते रहते हैं। हमारा अन्तर्बाह्य वातावरण अत्यन्त मलिन-बना हुआ है। जीवन शुद्धिकी दृष्टिसे यह अत्यन्त अवनत अवस्था है। क्या इस अवस्थामें सहन नहीं करना पड़ता? और सहन करनेके सिवा दूसरा क्या फल मिलता है?

सजग चलो तो राह बहुत है!

[मुनिश्री मोहनलालजी 'शार्दूल']

- १ -

कहां न्यूनता इस वसुधा में गड़े हुये पग-पग पर कोश
सह्य नहीं है कथा भूख की भरा हुआ अणु-अणु में पोष
अगर सींचना चाहो तरु तो चलते सतत प्रवाह बहुत हैं
सजग चलो तो राह बहुत है

- २ -

विष मधु होता नजर-नजर में हृत्कम्पन कम्पन में स्वर्ग
चेतन के स्पन्दन-स्पन्दन में आविष्कृत होता अपवर्ग
आंख खोलकर देख सको तो आत्म-शक्ति की थाह बहुत है
सजग चलो तो राह बहुत है

- ३ -

नई चेतना फूंक सकोगे बहा सकोगे अभिनव धार
पूर्ण ज्योति फैला पाओगे यदि मानो न कहीं पर हार
सावधान उद्दीप्त करो तो चिनगारी में दाह बहुत है
सजग चलो तो राह बहुत है

जीवनका विचारकर यदि कोई यह समझे कि जीवन चाहे जैसा बितावें तो भी कष्ट सहन करना ही पड़ता है और उन्नति करनी हो तो भी सहन करना पड़ता है लेकिन एक मार्गमें अवनति है तो दूसरेमें उन्नतिकी आशा है। तब विवेकी पुरुष उन्नतिका मार्ग ग्रहण करके वहाँ कष्ट सहन करने पड़े तो भी धैर्यसे और सहनशीलतापूर्वक सहना ही पसन्द करेगा। जब हम उदात्त हेतु सम्मुख रख समझा-बुझाकर कष्ट सहन करनेको तैयार होते हैं, तब उस मार्गमें आनेवाले सब संकट और अड़चनोंका मुकाबला करनेकी अपनी तैयारी होती है। आत्मविश्वास और सफलताके सम्बन्धमें विश्वासके कारण संकटों और कष्टोंके विषयमें निर्भय और बेफिकर वृत्ति हममें निर्माण होती है जिससे कष्टोंकी कठिनाई, संकटोंकी भयानकता और अड़चनोंकी तीव्रताका भाव नहीं होता। इस प्रकारके तथा उन्नतिका हेतु रहित जीवन, दोनोंमें सहिष्णुता दिखाई पड़ती हो तो भी उन्नतिके लिए प्रयत्नशील जीवनमें दिखाई देनेवाली सहिष्णुताके साथ धीरज, आत्मविश्वास, उत्साह, धन्यता आदि होंगे तो दूसरी तरहके जीवनमें दीनता, अड़ना, दुर्बलता, भीरुता आदि दोष दिखाई देंगे। एक ही सहिष्णुता सद्गुणोंके साथ होकर उन्नतिका और दोषोंके सम्बन्धसे अवनतिका कारण बनती है। इससे हम यह जान सकते हैं कि एक ही तरहकी शक्ति जब उदात्त हेतुसे उचित प्रकारसे काममें आती है तब मनुष्यका उद्धार करती है और वही शक्ति क्षुद्रतापूर्वक और अयोग्य रीतिसे उपयोगमें आती है तब उस व्यक्तिके नाश या अवनतिका कारण बनती है। तैरनेवाला व जिसे तैरना नहीं आता दोनों अकस्मात पानीमें पड़ जांय तो दोनों ही जोर से हाथ पैर हिलानेकी क्रिया करेंगे लेकिन जिसे तैरना नहीं आता उसके द्वारा वह क्रिया अधिक तेजी से होगी पर तैरनेवाला बच निकलेगा और जो तैरना नहीं जानता वह हाथ-पैर हिलाते हुए भी डूब मरेगा। शक्ति तो दोनोंकी खर्च होगी लेकिन परिणाम विपरीत आवेगा। लड़ाई में शूर अपने बाहु-बलसे प्रतिपक्षीका सामना कर विजयी होता है और उसी प्रसंगपर भीरु अपनी सारी शक्तिको पैरोंमें केन्द्रित कर दौड़ जाता है। पैरोंकी शक्ति हाथमें केन्द्रित कर सके तो वही शक्ति वीर

बना सकती है लेकिन उसके लिए आवश्यक धीरज—धारणाशक्ति उसमें हो तभी हो सकता है, उसके बिना सम्भव नहीं।

इसके प्रतिपादन करनेका उद्देश्य यह है कि उन्नतिके लिए मनुष्यमें एकाग्र शक्ति इतनी ही पर्याप्त नहीं है। उस शक्तिके साथ सद्‌गुणोंका मेल होना आवश्यक है। बुद्धि को एकाध बात स्वीकृत हो उसे मान लेने मात्र से हम अपना जीवन-ध्येय प्राप्त नहीं कर सकते। जीवन-शुद्धि या मानवता का ध्येय हमें जंच जाय या मान्य हो जाय तो भी सिद्धिके लिए बौद्धिक शक्तिके साथ धारणा शक्तिकी खास आवश्यकता रहती है। अच्छी बात समझने से जितना हमारा बौद्धिक विकास हुआ है, मानवताके कुछ लक्षण भी हममें आये हैं जिससे मानवताका उच्च ध्येय हमें मान्य होता है, वह रुचिकर और प्रिय भी लगता है। आज हमारा मानसिक स्तर यहाँतक पहुंचा यह हमारा भाग्य है। इससे हममें आगेकी दृष्टि और साथमें शक्ति भी आनी चाहिए और हमको इस मार्गमें प्रयत्नशील भी रहना चाहिए। उसके लिए हमें धारणा-शक्तिकी जरूरत है। तत्त्वज्ञानकी चर्चामें सूक्ष्म उतरनेवाली हमारी बुद्धि कुशाग्र और समर्थ भी बन जाय तो भी दृढ़ता, निग्रह, निश्चय, संयम, धैर्य आदि गुणोंकी धारणाके बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते। तलवार को धार लगाकर चाहे जितनी तीक्ष्ण बनाले, बन्दूक या पिस्तौल को साफ कर कारतूस भरके सज्ज करले तो भी हृदयमें धीरज और दृढ़ता न हो तो शेर सामने आनेपर भी उन शस्त्रों का कोई उपयोग नहीं। विचार करने पर ऐसा मालूम देता है कि लगभग ऐसा ही सम्बन्ध बौद्धिक समझ और धारणा-शक्ति के बीच में है। अपनी अशुद्धि दूर कर शुद्ध बननेके लिए इसी शक्तिकी आवश्यकता है। उसके बिना सद्‌गुण नहीं लिये जा सकेंगे। बिना धीरजके केवल तितिक्षा से सहिष्णुता बढ़े तो भी वह अन्याय, जुल्म, त्रास, सहन करवाके गुलामी और जड़ता निर्माण करे यह सम्भव है। लेकिन तितिक्षाके साथ में धैर्य व दृढ़ता हो तो हमें तेजस्विता और आत्म-विश्वास प्रकट होगा। सद्‌भावना मनमें पैदा हो तभी उसका सद्‌गुणमें पर्यवसान होनेके लिए इस शक्तिकी जरूरत रहती है। जीवन शुद्ध करना चाहिए अपना व्यवहार शुद्ध हो ऐसा लगे तो भी वैसा आचरण करनेके लिए आवश्यक और अपने मनको उस ओर गति देनेवाली शक्ति हममें होनी चाहिए। यदि हम वह साध्य कर सके तो जीवन में परिवर्तन हो सकेगा। दोष और दुर्गुण से वह शक्ति हमें सद्‌गुणों की तरफ मोड़ेगी। दीनता और लाचारी निकलकर हममें नम्रता और विनय आवेंगे। आशा और तृष्णासे छुड़ाकर वह हमें सन्तोष देगी। हमारी पंगुता और जड़ता दूरकर हमें स्फूर्तिमान और चैतन्यमय बनावेगी। दुर्बलतासे सामर्थ्यकी ओर ले जावेगी। जीवनके हर क्षेत्रमें मददगार बनकर हमारे जीवन को पवित्र, उज्ज्वल, प्रभावी और यशस्वी करेगी। उसके साध्य होने पर ही हमारी उन्नति शुद्धि और मानवताका आधार है। हर श्रेयार्थी को इस शक्ति की साधना करनी पड़ती है। इसकी सहायता के बिना अबतक कोई भी विकास नहीं कर सका। जिससे जीवनकी विशेषता और महत्व समझने पर इस शक्तिको प्राप्त करनेके लिए हर व्यक्ति को प्रयत्नशील रहना चाहिए।

बेकारी का सवाल

[श्री धीरेन्द्र मजूमदार]

देश के किसी भी कालेज के छात्रों से पूछा जाय कि पढ़नेके बाद आप क्या करेंगे, तो उनसे एक ही उत्तर मिलेगा कि जो तकदीर में होगा वही करूंगा। इसका मतलब यह हुआ कि आज किसी भी छात्र के भविष्य का संरक्षण नहीं है। शिक्षित युवकों की बेकारी इतनी बढ़ी हुई है कि आज के छात्रों के जीवन में कोई दिलचस्पी नहीं है। अनिश्चित भविष्य के लिए वे बेचैन हैं। बेचैनी में किसका विचार ठीक रहता है? बेचैन लड़का पिता का भी अनुशासन नहीं मानता है, तो बेचैन युवक नेताओंका अनुशासन कैसे मानें? अतएव हमें सदुपदेश देना छोड़कर, शिक्षित युवक बेकार न रहें, इसका उपाय ढूंढ़ना होगा। वैसे तो सरकार तथा अन्य विचारक शिक्षित व्यक्तियों की बेकारी से काफी चिन्तित हैं और उसके निवारणके लिए कमीशन वगैरह की नियुक्ति होती है। लेकिन वे बुनियादी सवाल पर विचार न कर समस्या का तात्कालिक हल ढूंढ़ने की कोशिश करते हैं। पिछले दिनों में कुछ नये विद्यालय खोले गये। लेकिन अगर एक लाख शिक्षित बेकारों को काम देने के लिए २० हजार नये स्कूल खोले जायं, तो फिर इन स्कूलों से लाखों नये शिक्षित युवक पैदा होंगे। यह सरल गणित अर्थशास्त्रियों की समझ में आना चाहिए।

इस प्रकार के सुझाव से एक पुरानी कहानी याद आती है। रक्तबीज नामक कोई राक्षस था, जिसे यह वरदान मिला था कि अगर उसे कोई कत्ल करेगा, तो उसका जितनी बूंद खून जमीन पर गिरेगा, उतने नये राक्षस पैदा होंगे। विद्यालय खोलकर बेकारी की समस्या को हल करने की चेष्टा वरप्राप्त रक्तबीज को कत्ल कर उससे छुटकारा पाने जैसी ही है। अतएव इस प्रकार की तात्कालिक, हल्की कोशिश को छोड़कर देश को आज जड़ की तरफ बढ़ना चाहिए।

समस्यामूलक लेख—

तोड़फोड़ और अस्पृश्यता

तोड़फोड़ अर्थात् विध्वंसात्मक प्रवृत्ति की बात तो आजकल बहुत ही व्यापक हो गई है। आये दिन देशमें विद्यार्थियों के उपद्रव होते रहते हैं। गोलियाँ तक चल जाती हैं। बहुतों के प्राण न्यौछावर हो जाते हैं। देश की यह एक गम्भीर समस्या हो गई है। ऐसा क्यों होता है यह एक लम्बा प्रश्न है। अधिकांशतया विद्यार्थी समाज का अध्यापकवर्ग से व राज-व्यवस्था से किसी असामञ्जस्य का होजाना उसका हेतु बनता है। हो सकता है कहीं-कहीं पर विद्यार्थी-वर्ग के साथ न्याय नहीं वरता जा सका हो तथापि विद्यार्थी-वर्ग का इस स्थिति तक पहुँच जाना किसी प्रकार उचित नहीं माना जा सकता। विद्यार्थियों का कोई भी स्वार्थ उतना बड़ा नहीं होता कि जिसके लिये उन्हें अपने प्राण हथेली पर रखकर प्राण-उत्सर्ग के लिये तैयार हो जाना पड़े। मान लिया जाय समस्या के सुलझने में व्यर्थ का विलम्ब हो रहा है, विद्यार्थी वर्ग की उपेक्षा हो रही है या समस्या सुलझने का कोई आसार ही नहीं दीख रहे हैं; तथापि वह समस्या उनके जीवन के साथ लम्बा सम्बन्ध नहीं रखती। दो-चार या पांच वर्षों के वाद तो उन्हें विद्यार्थी-जीवन से सदा के लिये विदा ले ही लेनी है। ऐसी स्थिति में इतने उत्सर्ग की बात के लिये कटिवद्ध हो जाना केवल अदूरदर्शिता व भावावेश का परिणाम है।

आज की जनतान्त्रिक व्यवस्था में अधिकार व न्याय प्राप्ति के लिये सत्याग्रह व असहयोगात्मक प्रयत्न होते रहते हैं। वह आज की समाज-व्यवस्था में कार्य-सिद्धि की एक मर्यादा है किन्तु उससे आगे बढ़कर तोड़फोड़ और विध्वंस के रास्ते पर चले जाना यह तो सचमुच विद्यार्थी समाज के लिये कलङ्क है। अणुव्रती विद्यार्थी हमेशा ऐसी प्रवृत्तियों में असहयोग रखेगा।

आज विद्यार्थी समाज को अपना दायित्व समझने की अपेक्षा है ? सुन्दर समाज-व्यवस्था के नैतिक निर्माण के लिये आज की पीढ़ी विद्यार्थियों पर आँख लगाये बैठी है। आज वे अनुशासनहीनता का परिचय देकर अपना ही भविष्य संकटमय बना रहे हैं। उन्हें भूलना नहीं चाहिये कि आज हम जिन अध्यापकों से व अधिकारियों से झगड़ रहे हैं कल उनकी

अणुव्रत

जीवन-दर्शन

[मुनिश्री नगराजजी]

४

कुर्सी पर हमें ही बैठना है। देश की सारी जिम्मेदारियां हमारे पर आनेवाली हैं। अनुशासनहीनता, उद्दण्डता, व ध्वंस के बीज आज जो हम बो रहे हैं; उनके फल दो कदम आगे चलकर हमें ही भोगने पड़ेंगे। यह माना कि आज का विद्यार्थी सुसंगठित है, एक स्कूल के विद्यार्थी परस्पर ही संगठित नहीं वे एक प्रान्त, देश व समस्त संसार के अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से सम्बद्ध हैं। वे चाहें तो किसी भी प्रान्त व देश में शासन-व्यवस्था को हिला देनेवाली हलचल पैदा कर सकते हैं किन्तु उन्हें मानकर चलना चाहिये कि हमारा संगठन हमारे सामुदायिक जीवन-विकास के लिये है न कि देश में विक्षोभ पैदा करने के लिये।

विद्यार्थियों की हलचलों का एक कारण यह भी है कि वे किसी दलगत राजनीति में पड़कर अवसर आने से उत्पात मचाने पर उतारू हो जाते हैं। प्रथम तो विद्यार्थी जीवन सक्रिय राजनीति में रस लेने का हेय ही नहीं। राजनीति में ध्यान बंट जाने से वे विद्यार्जन में आगे नहीं बढ़ सकते जो कि उनके जीवन का ध्येय है। राजनीति में भाग लेकर भी तोड़फोड़ की सीमा तक पहुंच जाना यह तो वैधानिक अपराध भी है जिसमें फँसकर बहुधा विद्यार्थी सदा के लिये अपनी मंजिल को छोड़ कर इधर-उधर भटक जाते हैं।

तोड़फोड़ व मजदूर

तोड़फोड़ की बात विद्यार्थियों की तरह मजदूरों से भी आरम्भ होती है। पूँजीपतियों के साथ उनके जीवन का घनीभूत स्वार्थ जुड़ा रहता है। उनका संघर्ष विद्यार्थियों की तरह केवल भावावेश नहीं होता। वहां उनके जीवन की मूलभूत कड़ियों पर पूँजीपतियों के कठोर प्रहार होते रहते हैं। वे शोषण की निरन्तर वेदना से व्याकुल होकर छटपटाते हैं। उनके शोषित कलेवरों की अवशेष शक्ति जब केन्द्रित होकर फूट पड़ती है तब हत्या व तोड़फोड़ के लिये वे उठ खड़े होते हैं पर अणुव्रत जीवन दर्शन के अनुसार हिंसा व तोड़फोड़ का मार्ग उनके लिये भी उतना ही अप्रशस्त है जितना विद्यार्थियों के लिये। हिंसा किसी समस्या का अन्त नहीं कर देती प्रत्युत प्रतिहिंसा को और पैदा कर देती है। इससे तो समस्या और जटिल होती है। उद्योगपतियों द्वारा होनेवाले शोषण में पहले केवल अर्थसंग्रह ही हेतु था अब उसमें प्रतिहिंसा व विद्वेष और मिल जाते हैं। हिंसा के उत्तेजन के साथ-साथ ये भी उसी मात्रा में बढ़ते ही

जायेंगे। समस्या सुलझने के बदले और जटिल होती जायेगी। उसमें किसी भी पक्ष का हित सधेगा—यह सोचा ही नहीं जा सकता। प्रश्न रहता है—विचारे मजदूर करें क्या? पहली बात तो यह है कि अणुव्रत-आन्दोलन जैसे अहिंसा की बात मजदूरों से कहता है, वैसे ही अशोषणकी बात उद्योगपतियों से। उसका पक्ष न्याय का है, अशोषण व अहिंसा का है न कि मजदूरों व पूँजीपतियों का। उसकी रूपरेखा में जितने नियम मजदूरों द्वारा होनेवाली अनैतिकताओं के लिये हैं उतने ही पूँजी-पतियों द्वारा होनेवाली अनैतिकताओं के लिये इस समस्या पर अणुव्रत-दृष्टि यही है अहिंसा व प्रेम के आधार पर दोनों पक्षों के असामंजस्य दूर होते रहें और समन्वय तथा मैत्री की भावना बढ़ती रहे। उक्त कथन का यह तात्पर्य नहीं कि मजदूर अपने उचित अधिकारों की मांग व उसकी पूर्ति के हेतु नैतिक प्रयत्न भी न करें उसकी मर्यादा तो यहीं तक है कि मजदूर वर्ग असहिष्णु व भावा-वेशी बनकर तोड़फोड़ व रक्तिम क्रान्ति के लिये प्रस्तुत न हों। इस युग में अहिंसा ने ही जब बड़ी-बड़ी समस्यायें सबके सामने हल कर दी हैं तो रक्त-क्रान्ति का अमानवीय मार्ग वे न अपनायें।

तोड़-फोड़ की और भी अनेक प्रसंगों पर सामूहिक घटनायें देशमें होती रहती हैं। मनोभावना के प्रतिकूल किसी कानून का बनना, प्रान्त, भाषा, जाति, धर्म आदि हेतुओं से किसी मतभेद का खड़ा होना आदि उनके अनेक कारण हैं। जहांतक पुलिस व जनता के झगड़े का प्रश्न है, अणुव्रती सहज ही अपने-आपको ऐसे झगड़ों में भाग लेने से बचा सकता है। परन्तु जो झगड़े जाति, धर्म आदि को लेकर जनता-जनता के बीच खड़े हो जाते हैं। जैसे कि हिन्दू व मुसलमानों के बीच होते रहे हैं। वैसी स्थिति में अणुव्रती क्या करें यह एक प्रश्न है। क्योंकि एक ओर उसे तोड़-फोड़ व हत्यामूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लेनेका नियम है। दूसरी ओर आक्रमण प्रत्या-क्रमण के चक्र चल रहे हैं। अपनी जाति, धर्म व मुहल्ले के लोग उसे साथ होनेको बाध्य करते हैं। उस समाज में रहते हुए वह अपने आपको यदि किसी प्रकार से भी सहयोगी नहीं बनाता तो उस वर्गके लोग उसे गद्दर मानते हैं। इसका समाधान यही है कि जहाँ तक अपनी व अपने वर्गकी रक्षाका सम्बन्ध है और उसे उस हेतुसे अपने दलके साथ खड़ा होना पड़ता है वह तो इस नियम की भावना के अन्तर्गत आता ही नहीं। जहाँ अपना वर्ग ही आक्रान्ता होता है वहां अणुव्रती को उसमें योगभूत नहीं होना चाहिये। बात रह जाती है प्रतिशोध की कि अमुक स्थान पर हमारे वर्गके लोगोंको प्रतिपक्षियों ने मारा है उसके बदले हम वहाँके निरुपद्रवी लोगोंको भी मारें क्योंकि वे उसी जाति व वर्गके हैं। यह घृणित मनोवृत्ति है। इससे हिंसाकी ज्वाला बढ़ती ही जाती है और एक विप्लव फैल जाता है। ऐसे अवसरों पर जनता में धैर्य एवं विवेक को जगाने की आवश्यकता रहती है इस विश्वास पर अणुव्रती अपने जीवन व्यवहार को समुन्नत बनाने का प्रयत्न करें।

अस्पृश्यता

अस्पृश्यता का आधार जाति है। जातिवाद स्वयं निर्मूल तथा अतात्त्विक है। जाति का अर्थ है समानता—उस समानता के आधारपर पशु-जाति से मानव-जाति पृथक हुई। यद्यपि प्राणी वर्ग में मनुष्य तथा पशु दोनों जातियों का समावेश है और प्राणियों में मनुष्य-मनुष्य प्राकृतिक संस्थान से समान है। इसलिये मनुष्य जाति एक है। आगे चलकर कर्म के आधारपर जब मानव जाति के विभिन्न वर्गों की विभिन्न रूपों में पहचान होने लगी तो अवान्तर जातियों का निर्माण हुआ और समृद्ध जातियाँ अपने अहंपोषण के लिये अपनी दृष्टि से निम्न कर्म करनेवाली जातियों को अस्पृश्य मानने लगीं। यह जातिवाद की तथा अस्पृश्यता की बुद्धिगम्य व्याख्या है।

पौराणिक युग में लोगों ने यह भी माना—'ब्रह्मा के मुंह से जन्मनेवाले ब्राह्मण, बाहु से जन्मनेवाले क्षत्रिय, उर से जन्मनेवाले वैश्य, पैरोंसे जन्मनेवाले शूद्र और अन्त्यमें पैदा होनेवाले अन्त्यज।'* पर यह आजके युगमें चल सके ऐसी बात नहीं है। उस प्रकार की उक्तियों का निराकरण तो आजसे सहस्रों वर्ष पूर्व ही हो चुका है। चिन्तनके क्षेत्रमें उस समय भी यह निर्विवाद मान लिया गया था 'कर्मसे ब्राह्मण होते हैं कर्मसे क्षत्रिय कर्मसे ही वैश्य और कर्मसे शूद्र।'१ 'जन्मसे न कोई ब्राह्मण है और न कोई शूद्र।' कुछ लोग आजकल भी कहते देखे जाते हैं—वर्तमान जाति-व्यवस्था तथा स्पृश्यता-अस्पृश्यता शाश्वत या ईश्वरकृत है। यह भ्रम है यदि ऐसा होता तो केवल भारतवर्ष में ही यह व्यवस्था क्यों? क्या केवल भारतवर्ष की देख-रेख ईश्वर करता है? यदि ईश्वर ने ही ऐसा किया है तो आजका तर्कशील मनुष्य उसके साथ भी झगड़ेगा और उसे भी अपनी भूल सुधारने का सुझाव देगा।

*—ब्रह्मणो मुखान्निर्गताः ब्राह्मणाः बाहुभ्यां क्षत्रियाः, उरुभ्यां वैश्याः, पद्भ्यां शूद्राः, अन्त्येभवा अन्त्यजाः।

१—कम्मुणा बम्मणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ, वयसो कम्मुणा होइ सुद्दोहवइ कम्मुणो।

वर्तमान जातियाँ शाश्वत हैं इस बातके लिये कोई आधार ही नहीं मिलता। लाखों नहीं, यदि सहस्रों वर्षोंका इतिहास ही हम ध्यान लगाकर देखते हैं तो पता चलता है इस बीचमें कितनी नई जातियाँ बनी हैं और कितनी नाम शेष हो गई हैं। जैन मान्यता के अनुसार पहले यौगलिक व्यवस्था थी। सब मनुष्य समान थे। फिर असि (तलवार) मसि (स्याही) और कृषि आदि कर्म आये। वे ही मनुष्य अलग-अलग कर्म करने लगे। क्षत्रिय, वैश्य आदि जातियाँ बनी। यह इतिहास हमें स्वयं बताता है कर्म पहिचान के अतिरिक्त जातिकी कोई तात्त्विकता नहीं है। पर आगे चलकर इस जातिवाद को इतना बढ़ावा मिला कि अमुक जातिवाला ही मोक्ष जा सकता है, अमुक जातिस्थ को धर्मस्थान में जानेका, धर्म करने का शास्त्र वाचन या श्रवण करने का अधिकार नहीं है। "शूद्र यदि वेदोंका श्रवण करता है तो उसके कर्णोंमें शीशा भर देना चाहिये, वेद मन्त्रोंका उच्चारण यदि वह करता है उसकी जिह्वा निकाल लेनी चाहिये और यदि वह वेद मन्त्रोंका धारण करता है तो उसका शरीर नाश ही कर देना चाहिये"* अस्तु, ऐसे अमानवीय संस्कारों से अपने ही भाइयों को नीच मानते हुए व उनसे घृणा करते हुए भारतवासियों ने सामाजिक अलाभ भी कम नहीं उठाया है। ऐसा करके उन्होंने लाखों करोड़ों भाइयों को स्वजाति तथा स्वधर्म से च्युत होनेको विवश किया है। आध्यात्मिक दृष्टिसे तो उन्होंने अपना ही आत्मपतन किया है। 'आत्मवत्सर्व भूतेषु' को आदर्श माननेवाले यदि अपने ही भाइयों के साथ घृणा व अस्पृश्यता की भावना रखने के आग्रही हो जाते हैं तो इससे अधिक उनका और क्या नैतिक स्खलन हो सकता है। धर्म-शास्त्रों के अनुसार घृणा कर्म बन्धन का हेतु है। कुछ भी हो 'बीत गई सो बात गई' इन प्रश्नोंका कोई महत्व नहीं कि अस्पृश्यता कबसे है, किस धर्मने इसको बढ़ावा दिया, समाज-व्यवहार की सुदृढ़ मान्यता कैसे बनी इससे क्या भला हुआ या इससे क्या बुरा हुआ, आज महत्व है इस प्रश्न का कि उसका अन्त कैसे हो? स्वतन्त्र भारत-वर्षके विधान में अस्पृश्यता को अवैध घोषित कर दिया गया है तथापि लोगोंके संस्कारों में वह अब भी बद्धमूल हो रही है। अणुव्रती अपने रूढ़ संस्कारों से ऊँचा उठकर अस्पृश्यता की मनोवृत्ति को तिलांजलि दे।

मन्दिरों में हरिजन-प्रवेश का आज जागरूक प्रश्न है। मूर्तिपूजक धर्मों में सर्वत्र दो दल दिखाई देते हैं। एक पक्ष हरिजन प्रवेश के समर्थन में; एक विपक्ष में। अणुव्रती अपने नियम व उसकी भावना को समझते हुए अस्पृश्यता के आधार पर किसी व्यक्ति व जातिको धर्माराधन का अनाधिकारी नहीं बता सकता। वह दूसरी बात है मन्दिर प्रवेश को लेकर चलनेवाली सत्याग्रह—मण्डलियों में वह भाग ले या नहीं ले, उन्हें समर्थन दे या नहीं दे। क्योंकि बहुत बार ऐसा होता है आदर्श सुन्दर होने पर भी व्यवहार में न्याय का रक्षण नहीं रह पाता उदाहरणार्थ यह सर्व

मानव का जीवन

[श्री महेश सन्तोषी]

नित प्रभात में शबनम के कण
पुष्पों को देते नव यौवन,
हरित तृणों को नूतन जीवन,
संसृति को सुन्दर आभूषण!

किन्तु नियति का निष्ठुर नर्तन,
पग पग पर लाता परिवर्तन,
विधि निर्मित विधान है अनुपम,
सृजन नाश का लगा हुआ क्रम!

रवि से शोषित होती शबनम,
पुष्पों का पल भर का यौवन,
विरह मिलन में मानव उन्मत्त,
झंझा त्रसित सदा दीपक मन!

प्रखर ज्योति फिर महा निविड़ तम,
सुख-दुःख का शाश्वत है अनुक्रम,
सत स्वप्नों का मधुर समागम,
अद्भुत रे मानव का जीवन!

*—वेद मुप श्रृण्वतः जतुत्रपुभ्यां श्रोत्रयोः प्रतिपूर्णम्। उदाहरणे जिह्वाच्छेदः, धारणे शरीर भेदः।

विदित तथ्य है कि भारतवर्ष में सनातन (हिन्दू वैष्णव) धर्म व जैन धर्म के पृथक् पृथक् मन्दिर हैं। अपने-अपने मन्दिरों में उपासना के लिये लोग जाते हैं। यह भी निर्विवाद है कि हरिजन जैन धर्मी नहीं हैं सनातन मन्दिरों से ही उनका सम्बन्ध है। तो भी प्रवाह चल पड़ा है जैन मन्दिरों में हरिजनों को प्रवेश कराओ। यह माना जा सकता है इससे स्पृश्याऽस्पृश्य के विषय को उत्तेजना मिलती है पर यह जैनियों के साथ न्याय हो यह नहीं कहा जा सकता। यह तो उतना ही न्याय संगत है जितना कि मुसलमान आदि कहें हमें हिन्दू मन्दिरों में प्रवेश क्यों नहीं करने दिया जाता। हां यदि हरिजन जैन हैं तो उनका कहना न्यायसंगत होता है कि हमें जैन मन्दिरों में प्रवेश क्यों नहीं करने दिया जाता। तथापि जैनियों को यह सोच लेना आवश्यक है कि अस्पृश्यता आज इस स्थिति तक पहुंच गई है कि आज किसी न्याय का तर्क के आधार पर भी उसका समर्थन उपहासास्पद होता है। ऐसे आग्रहों में जैन लोग अपने आप को सदा के लिये प्रतिक्रियावादी तत्त्व सिद्ध कर देते हैं जब कि सारा देश तीव्र गति से प्रगति की ओर बढ़ना चाह रहा है।

स्थिति यह है यदि जैन लोग यह घोषणा कर देते हैं हमारे मन्दिरों में किसी के लिये प्रतिबन्ध नहीं है तो उसका प्रभाव दोनों पक्षों पर हितकर पड़ेगा। हरिजन प्रवेश के समर्थक तो इससे संतुष्ट होंगे ही इसमें कोई विवाद नहीं पर जो हरिजन प्रवेश के विरोधी हैं उनको यह देखकर संतोष होगा कि हमारे घोषणा कर देने के बाद कोई हरिजन टोली मन्दिर को अपावन करने आई भी तो नहीं। यह कल्पना की ही उड़ान नहीं वस्तुस्थिति बन गई है। जिन मन्दिरों में प्रतिबन्ध नहीं है वहां भगवद् दर्शन के लिये किसी नेता को व हरिजनों को न अवकाश है न उमंग। जहां यह लगता है यहां हरिजनों को रोकेंगे वहीं धावा बोला जाता है। लक्ष्यपूर्ति दर्शन का नहीं किन्तु प्रतिकार का प्रतिकार करने का है। अणुव्रती ऐसे प्रसंगों में आवेश, आग्रह से परे रह धैर्य तथा न्याय का अनुशरण करें।

[अणुव्रत]

आचरण या व्यवहार-शुद्धि के बिना धर्म की दुहाई एक ढोंग है !

[संत श्री तुकड़ोजी]

धर्मका सम्बन्ध मानवता की चतुर्मुखी प्रगति से है, वरना धर्म बेकार है। जब पृथ्वी पर आदमी के अलावा, अन्य जीव-जन्तु थे, उस समय धर्म का कोई स्थान न था। धीरे-धीरे आदमियों का समाज बना। परस्पर सम्पर्क स्थापित हुआ और सामाजिक ढांचा बनाना आवश्यक समझा गया। लोगोंको उनकी सामर्थ्य के अनुसार काम दिये गये। कुछ व्यक्तियों को ऊंचे दर्जेके काम दिये गये, और कुछ को नीचे स्तर के। इस प्रकार उपयोगिता के सिद्धान्त पर छोटे बड़ेका विचार होने लगा। वह मानव विकास की शुरुआत थी।

धर्मका अर्थ है कर्त्तव्य—कुछ व्यक्तियों के प्रति अथवा समाज के प्रति। मनुष्य के इन्द्रिय सुखोंके तृप्त करनेवाले दिखावटी, ठाट-बाट बढ़ानेवाले सभी कर्म तुच्छ समझे गये और जिन कार्यों से समाज की उन्नति और प्रगति होती है, उन्हें धर्ममें शामिल किया गया, बल्कि उन्हें धर्मकी संज्ञा दी गयी। लोभ, लालच, वासनाएं तुच्छ समझी गयीं और ज्ञान प्राप्तिका महत्व धीरे-धीरे अधिक समझा जाने लगा। विवेक और संयम से काम न चलने पर, हिंसाका सहारा लिया जाने लगा। शांति और व्यवस्था कायम करने के लिए ही हिंसाका उपयोग किया जा सकता था। हिंसाको यद्यपि महत्व दिया गया, परन्तु साथ ही उसके उपयोग पर कुछ प्रतिबन्ध और सीमाएं लगायी गयीं।

बाद में ज्यों-ज्यों भावनाओं का विकास हुआ, विवेक, न्याय का महत्व स्वीकार किया गया। हिंसाके द्वारा प्राप्त सफलता को हेय समझा जाने लगा। सत्य और अहिंसा को ऊंचा स्थान दिया गया।

सार्वभौमिकता को धर्मका विशेष अङ्ग माना गया। सन्तों और विचारकों ने मानवता का उद्देश्य यह निश्चित किया कि सत्य और अहिंसा के मार्गसे मानव प्रगति करे, इन सन्तोंके मतको सभी लोगोंने माना और उनके उपदेशों के अनुसार चले। जाति, देश व आदमियों के बीच भेदभाव बढ़ानेवाली बाधाओं को दूर किया गया। उस समय आदर्श था संसार में शान्ति और व्यवस्था और उसे प्राप्त करने के साधन थे सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, शारीरिक श्रम, त्याग, संयम आदि गुण। जिस व्यक्ति में ये गुण होते थे उसे पूर्ण पुरुष मानकर उसकी श्रद्धा की जाती थी। इन उच्च सिद्धान्तों और आदर्श का मेल ही धर्म कहा जाता था।

[जापान में दिये गये एक भाषण से]

—०—

हम अपने आदर्श स्वयं बनें

[प्रो० श्री रामप्रकाश अग्रवाल]

[जीवन रूपी समुद्र-मन्थन के उपरान्त समय-समय पर अनुभव की जो रत्न-लड़ियाँ हाथ लगी हैं उन्हीं को चुन-चुनकर विद्वान् लेखक ने भाषा के माध्यम से हमारे सम्मुख रक्खा है। ऐसे सरल नैतिकता व आचार प्रधान छोटे-छोटे निबन्ध सचमुच ही हमें जीवन-निर्माण की दिशा में एक नवीन प्रेरणा प्रदान करेंगे। —सम्पादक]

ऊँचा उठने की कामना सभी में होती है। इस 'ऊँचा उठने' का अर्थ है आध्यात्मिक विकास। 'आत्मा' में वेदान्ती अर्थ में किसी का विश्वास न भी हो तो भी सभी चाहते हैं कि उनका अन्तःकरण स्वच्छ हो, उसमें स्फूर्ति हो, प्रकाश हो। वे अपने भीतर निरन्तर एक उत्तरोत्तर विकासमयी शक्ति का अनुभव करें। वे अपना प्रभाव दूसरों पर छोड़ने योग्य बनें। उनके चरित्र के प्रति लोग स्पृहा रक्खें।

आत्मिक विकास ही सच्चा विकास है। यही सब विकासों की कुञ्जी है। अन्य सारे विकास इसके आधीन हैं। जब तक आत्मिक विकास का बोध नहीं होता मनुष्य तृप्त रहता है। साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और एकतन्त्रवाद इत्यादि भी, जिनमें कि एक व्यक्ति अपनी ही सत्ता को सबमें प्रसारित होता हुआ देखना चाहता है, आत्मिक विकास के ही विकृत रूप हैं। विकृत इसलिये कि उनका मार्ग, प्राप्ति के उपकरण विकृत होते हैं। उनमें हिंसा और शोषण आदि का सहारा लेना पड़ता है जो कि असत्य हैं। असत्य इसलिये कि उनके द्वारा बड़े-से-बड़ा भौतिक लक्ष्य प्राप्त करके भी आत्म-तृप्ति लाभ करते हुए किसी को देखा नहीं गया। ऐसे व्यक्ति के मन-ही-मन एक कचोटन होती है। उसे लगता है कि कहीं आरम्भ में भयानक भूल हो गई है और मार्ग फिर से आरम्भ करना पड़ेगा।

निसर्ग ने मनुष्य को प्रकाश और अन्धकार, ताप और शीतलता, फूल और काँटों के समान गुण और अवगुण दोनों ही प्रदान किये हैं। वस्तुतः गुण और अवगुण पृथक नहीं होते। परिस्थिति के भेद से ही उनमें अन्तर पड़ जाता है। कदाचित् ही कोई मनुष्य ऐसा मिले जिसके हृदय में सद्भावनाओं की रश्मियाँ प्रस्फुटित न होती हों। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने एक जगह लिखा है—

"अपना अन्तःकरण आप है आचारों का सुविचारी।" भले और बुरे का विवेक कम या अधिक मात्रा में सभी को मिला है। आवश्यकता है भले का बोध होने पर उसे दृढ़ता से पकड़ने और उस पर आचरण करने की।

अपने नित्य के सामाजिक जीवन में हम सायं प्रभात के एकान्तिक क्षणों में सदैव ही यह विश्लेषण स्वाभाविक रूप से किया करते हैं कि हमने आज क्या बुराई की और क्या भलाई। एकान्त में बैठकर हम अपने अन्तःकरण के दर्पण में अपने चरित्र का मुखड़ा निहारा करते हैं और सोचते हैं कि किस असावधानी ने हमारे चरित्र के मुखड़े पर काजल लगा दिया है और किस सावधानी ने सिन्दूर। यह काजल और सिन्दूर की पहिचान हमें अच्छी तरह होती है। काजल को देखकर हमें ग्लानि होती है, सिन्दूर को देखकर पुलक। काश हम काजल को मिटाकर सिन्दूर को अपनाना सीख जाते!

सीखने के लिये दूर जाने से पहले अपने ग्राम की प्राइमरी पाठशाला का पाठ्यक्रम पूरा कर लेने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार महानता के महान पथपर अग्रसर होने से पहले अपने ही नन्हे से अन्तःकरण के आदेशों और अनुमतियों, विधियों और निषेधों को समझने और परखने का अभ्यास करना आवश्यक होता है। महानता बाहर से नहीं आती भीतर से आती है। अपने अन्तःकरण में सहज रूप से प्रस्फुटित होती रहनेवाली सद्भावनाओं की रश्मियों के मध्य जो अपना मार्ग खोजते हैं वे ही अनायास एक दिन महापुरुष बन जाते हैं।

मैं एक अध्यापक हूँ। विश्वविद्यालय के तरुण छात्रों को शिक्षा प्रदान करता हूँ। स्नातकोत्तर पदवी प्राप्त करने के तुरन्त बाद ही शिक्षक बन बैठा। दो महीने पूर्व एक साधारण छात्र था, दो महीने बाद एक प्रणम्य प्राध्यापक बन गया। कहीं शिक्षण के नियम नहीं सीखे। शिक्षा-विज्ञान का अध्ययन नहीं किया। पर आज दस वर्ष के बाद मेरी कमी बहुत कुछ पूरी हो गई है और होती जा रही है। अब मैं शिक्षा के सम्बन्ध में, शिक्षाशास्त्री की उपाधि पाये बिना भी, बहुत कुछ बोल सकता हूँ और लिख सकता हूँ। यह ज्ञान मैंने कहाँ से पाया? सर्वथा अपने में से ही पाया। अपने और शिष्यों के नित्य के संघह और सम्पर्क से मैंने पारसपरिक आदान-प्रदान

अहिंसात्मक सत्याग्रह एक शस्त्र है !

[श्री वाचस्पति]

आदमी का पाला जब जंगली जानवरों से पड़ा तो उसे हथियार बनाने की सूझी।

लाठी-छुरे-बल्लम-तलवार उसी के उदाहरण हैं।

जंगली जानवरों से जब छुटकारा पाया तो आदमी-आदमी ही को मारने लगा।

आदमी भी तो पशु ही है।

आदमी ने आदमी को मारने के लिये जितने अच्छे हथियार बनाये वैसे उसने पहिले कभी नहीं बनाये थे।

परमाणुबम किसी जानवर को मारने के लिये नहीं बनाया गया है।

इन सब हथियारों के पीछे एक ही भावना छुपी है।

"अपनों को बचाओ, दूसरे को मारो"

पशु जगत् की यही फिलासफी है।

परन्तु इन सब हथियारों को चलाने से पहिले इनका चलाना सीखना होता है।

लाठी-तलवार-बल्लम सीखने के अखाड़े किसने नही देखे ?

बन्दूक-तोप चलाने का अभ्यास भी करना ही होता है।

कुछ हथियार-चलाना सीखने से पहिले यह भी देखना होता है कि चलानेवाला गणित-विज्ञान का शास्त्री भी है या नहीं। चलते हुए सामरिक युद्ध-पोत या उड़ते हुए हवाई जहाज से गोला निशाने पर फेंकना, बेपढ़े-लिखे व्यक्ति तो सीख ही नहीं सकते।

यदि सीखे बगैर ही इन हथियारों को चलाया जाय तो ये अपनी ही मृत्यु का कारण बन सकते हैं।

इन हथियारों को चलाने के लिये आपके हृदय में क्रोध, घृणा, और डर होना ही चाहिये अन्यथा जीते-जागते आदमी को मारेंगे कैसे ? और अपने को उससे बचायेंगे कैसे ?

क्रोध, घृणा और डर इन हथियारों के वाहक हैं। यही तो पशु-वृत्ति है और ये सब हथियार पाशविक हैं और आदमी भी पशु है इसी बात के द्योतक हैं।

आदमी भी पशु ही है।

× × ×

परन्तु धीरे २ आदमी अपनी पशुता से उकताया। दूर क्षितिज पर उसे मनुष्यता दिखाई पड़ी। उसने उधर को पैर बढ़ा दिये।

क्रोध-घृणा-डर का परित्याग किया तो अहिंसा के शस्त्र का आविष्कार हुआ।

अब से २५०० वर्ष पूर्व संसार ने पहिलीबार भगवान बुद्ध को अहिंसाका प्रचार करते देखा।

आज से १९५६ वर्ष पूर्व संसार ने भगवान ईसा मसीह को कहते सुना कि यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर चपत मारे तो दूसरा भी उसके सामने करदो।

और अब थोड़े दिन पहिले ही तो—महात्मा गाँधी इसी पृथ्वी पर कहते हुए घूम रहे थे—"स्वयं मरो दूसरों को बचाओ" मनुष्यता के मार्ग की चढ़ाई की यह एक ऊँची मंजिल थी जब उन्होंने "अहिंसात्मक सत्याग्रह" को हथियार बता दिया।

परन्तु इस हथियार को भी हाथ में लेने से पहिले चलाना तो सीखना ही होगा।

"सत्याग्रह" के अर्थ हैं सत्य के लिये आग्रह करना अर्थात सत्य को दूसरे से मनवाना। "सत्याग्रह" (active) सक्रिय है (passive) अक्रिय नहीं है। दूसरा व्यक्ति सत्य को माने इसके लिये आपको प्रयत्नशील होना पड़ेगा।

बहुत बार तो सत्य निर्विवाद होता है परन्तु बहुत बार नहीं भी होता।

'गोआ भारत में मिलना चाहिये' भारत के इस दावे को पुर्तगालवाले नहीं मानते।

'काश्मीर भारत का अंग है' इस बात को पाकिस्तान नहीं मानता।

अपनी बात को पुष्ट करने के लिये आपको अपना बुद्धि-चातुर्य दिखाना होगा, सारे संसार को और अपने प्रतिद्वन्दी को यह बात साबित करके दिखानी होगी कि आपकी बात सत्य है।

बेवकूफ आदमी अच्छा सत्याग्रही नहीं हो सकता। हमने जब अंग्रेजी सरकार से सत्याग्रह का युद्ध छेड़ा था तो सबसे पहिले संसार को यह बात घंटा बजा २ कर साबित करदी थी कि 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' यूरुप और अमरीका के गोरे ही नहीं स्वयं, अंग्रेज भी इस सत्य को मानने के लिये मजबूर हुए थे। कितने ही अंग्रेज थे जो हमारी बात की सत्यता का खुला ऐलान करते थे। गांधीजी

(पृष्ठ १४ का शेषांश)

को समझा, एक दूसरे की आवश्यकताओं का अनुभव किया और मुझे सन्तोष है कि अपनी क्षमता और सामर्थ्यके अनुरूप मैं अपने वांछित पथ की ओर बढ़ रहा हूं।

मुझ में मेरा भावी आदर्श अध्यापक छिपा बैठा है, उसे मैं जगा रहा हूँ। प्रत्येक नर में उसका आदर्श नरत्व निहित है, उसे चेताने की आवश्यकता है।

में इस सत्य का जितना प्रचार किया उतना किसी और ने नहीं किया।

"अहिंसात्मक सत्याग्रह" के हथियार का प्रयोग करनेवाले को पशु से मनुष्य बनना होगा, उसे अहिंसा का व्रती बनना होगा।

क्रोध, घृणा, डर एकदम अपने हृदय से दूर करने होंगे मन, वचन और कर्म से।

प्रेम, सहानुभूति और निर्भीकता का वातावरण अपने चहुँ ओर उत्पन्न करना होगा मन, वचन और कर्म से।

अपने प्रेममय व्यवहार से उसको अपने प्रतिद्वन्दी के हृदय में भी अपने प्रति श्रद्धा उत्पन्न करनी होगी।

अहिंसात्मक सत्याग्रही के प्रेम, सेवा और तपस्या को देखकर प्रतिद्वन्दी की भी आँखों में आँसू छलछला आये तब जानो कि यह शस्त्र योग्य व्यक्ति के हाथों है।

सन् १९४७ के बंटवारे के पश्चात् भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक हिन्दू-मुस्लिम दंगे प्रारम्भ हो गये थे।

आत्म-शक्ति

(श्री 'कुसुमाकर')

हमारे अमर आत्म-आयुध के सम्मुख, न कोई बनेगा कभी शस्त्रजेता

प्रकृति रुद्र ने जो त्रिलोचन तरेरे
पलक में प्रलय के बवंडर उठेंगे॥
चलेगी नहीं शक्ति 'एटम' की कुछ भी
जो 'बम बम' महोच्चार 'हर-हर' उठेंगे।
सुविज्ञान की बोलती बन्द होगी,
न भू पर मिलेगा कोई धैर्य देता॥ १॥

गये भूल क्यों 'टाटनिक' की कहानी,
चुनौती जो आकाश को दे रहा था।
उदधि के अगम अङ्क में सो गया वह,
विधाता के जीवन को जो खे रहा था॥
दला दर्प कन्दर्प सा एक पल में,
नियामक का मिथ्या नहीं नाम लेता॥२॥

मगध का नराधिप विकल वेदना से,
तड़पड़ता हुआ करवटें ले रहा था।
विराजित प्रजा शिशु सी आँखें बहाती,
शरासन नहीं साथ जब दे रहा था॥
तथागत इसी आत्म बलके सहारे,
बना दस्यु दल का अलौकिक विजेता॥३॥

अनेकों यहाँ सन्त शंकर कुमारिल,
'दयानन्द' 'जिन' 'बुद्ध' अवतार आए।
विजयवाहिनी दाहिनी हो सदा ही,
विनत शीश हो साथ संसार लाए॥
हुई नष्ट कौटिल्य की नीति कुटिला,
बना वृद्ध बापू सबल शक्ति नेता॥ ४॥

यही शक्ति है जिसके सम्मुख अनल भी,
कभी आँख रक्तिम दिखाने न पाई।
सुखाने न पाई अनिल वेगवाली,
सलिल शीत भी भीत करने न पाई॥
यहाँ मृत्यु की गोट ने मात खाई,
धरा पर न जन्मा कहीं भी सृजेता॥ ५॥

इसी शक्ति ने विश्व की वेदना पर,
विजित प्राण हो प्रेय पर श्रेय पाया।
फटा मेदिनी का विशद वक्ष व्याकुल,
उमड़कर सलिल स्रोत प्रालेय पाया॥
विजन वल्लरी पर गये फूट अंकुर,
गया राम पाषाण की नाव खेता॥ ६॥

यही शक्ति है जो अवनि और अम्बर,
पराजित हुआ है हृदय खोल बैठा।
कलाधर कला भूलकर अंशुमाली,
सुविज्ञान के ज्ञान को तौल बैठा॥
महा क्रान्ति का सत्य उपचार क्या है,
बतादो हमें ओ प्रणय के प्रणेता॥ ७॥

'यतो अभ्युदय' की मधुर कल्पना का,
खिलेगा कमल आत्म उल्लास होगा
मनुष्यत्व का तत्व जग को मिलेगा,
बने आत्म निर्भर "स्व" आभास होगा
सकल विश्व नैतिक निशा की विभा में,
जियेगा सदा सत्य की स्वांस लेता॥ ८॥

(पृष्ठ १६ का शेषांश)

गांधीजी ने दिल्ली में अनशन किया हिन्दुओं ने उनकी बात मानी।परन्तु ऐसा बहुत लोग कहते थे कि गांधीजी पाकिस्तान जाकर मुसलमानों को समझाने के लिये अनशन क्यों नहीं करते ?

उन दिनों मुसलमान गांधीजी के प्रति श्रद्धा-भक्ति नहीं रखते थे।

गांधीजी उन्हें समझाने के लिये बंटवारे से पहिले या बाद में भी अनशन नहीं किया।

परन्तु बंटवारे के बाद गांधीजी ने मुसलमानों की इतनी सेवा की कि उनके मरने पर स्वयं पाकिस्तान के मुसलमानों ने इतना शोक मनाया था जितना उन्होंने श्री जिन्ना के मरने पर भी नहीं मनाया।

यदि गांधीजी अब जीवित होते और आवश्यक होती तो वे मुसलमानों को—(हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के) समझाने के लिये भी अनशन अवश्य कर डालते और कामयाब होते।

"अहिंसात्मक सत्याग्रही को दूसरे को जीवित रखना है, स्वयं को मरना है।

उसको शूली पर चढ़ते समय भी यह भाव रखने होंगे कि "ईश्वर इन्हें क्षमा करना ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।"

"अहिंसात्मक सत्याग्रह" मनुष्यता का हथियार है। यह हारे का हथियार नहीं है। यह पशुता के हथियार से भिन्न है। इसको चलानेवाला दूसरे को पशु से मनुष्य बनाता है और ऐसा करने में अपने प्राणों की आहुति भी कर देता है।

तो फिर
इसको ऐसे चलाओ !
यूं चलाओ !!

कहानी—

जब शैतान भी इन्सान बना

[श्री ज्योतिप्रकाश सक्सैना एम० ए०]

[जीवन जब विकल हो उठता है, जब उसपर वेदना और उदासी छाने लगती है, तो दिल का दर्द आँखों में उतर आता है और फिर वीरान साँसों की सितार पर जिन्दगी एक ऐसा गीत गाने लगती है जो पत्थर को पिघला दे, निर्जीव तन में प्राण फूंक दे, शैतान को भी इन्सान बना दे, इसी विकलता ने डाक्टर विजय को भी इन्सान बना दिया, उनको दुनिया के दुःख-दर्द पहचानने के काबिल कर दिया, उनकी जिन्दगी में एक ऐसा तूफान ला दिया जिसकी वजह से वे सारे-के-सारे जजबात जिनकी बुलन्दियों पर उनके अरमानों के महल खड़े थे पलभर में असलियत की गहराइयोंमें खो गये]

वैसे डाक्टर विजय शहर के होशियार और भले आदमियों में गिने जाते। बड़े सधे हुये नुस्खे रहते उनके और बात मरीजों से इस कदर मीठेपन से करते कि वे खुश हो जाते। मगर अफसोस तो केवल इस बातका कि उनकी हर-एक बात पर पैसे का आवरण चढ़ा रहता; चाँदी के चन्द टुकड़ों की पुट बनी रहती और इसीलिये उनके दवाखाने में केवल पैसेवालों की पूछ होती ; गरीबों का वहाँ कोई गुजारा नहीं हो पाता। पैसेवालों को देखकर डाक्टर विजय का दिल बल्लियों उछल पड़ता, पर बगैर पैसेवालों का आना उन्हें बेहद खटकता। मरीजों की मजबूरी उनपर कोई असर नहीं डाल पाती, उल्टे उनको डाक्टर साहब की डाँट सहनी पड़ती—

"यह डाक्टरका दवाखाना है, कोई अनाथालय नहीं, यहाँ दवाइयाँ बिकती हैं, नकद। मरीज देखे जाते हैं, पैसे लेकर। पैसा नहीं है तो कोई दूसरा दवाखाना देखो।"—डाक्टर विजय बिना किसी हिचक के कह देते।

और जब कोई गरीब रो-रो कर उनसे दया की भीख माँगने लगता तो उनका कलेजा पिघलने के बजाय और भी कठोर हो जाता। वे उसको दवाखाने के बाहर निकलवा देते और फिर चैन की सांस लेकर बड़े आराम के साथ पैसेवाले मरीजों की तरफ मुड़ जाते।

कभी-कभी ऐसा हो जाता कि कोई गरीब मरीज शहर के किसी भले आदमी को साथ लेकर उनके दवाखाने पहुंच जाता, पर क्या मजाल कि डाक्टर विजय में जरा भी फर्क आ जाय ; उनके व्यवहार में किंचितमात्र भी परिवर्तन हो जाय। इसके बिलकुल विपरीत उनका पारा और भी गरम हो जाता और वे मरीज के जख्मी दिल पर सीधी चोट करने लगते—

"हूँ, तो नवाबसाहब सिफारिश लेकर आये हैं। अच्छा, कहिये क्या हुक्म है। दवा चाहिये, बगैर पैसों के ?"

और फिर वे फौरन साथ आनेवाले व्यक्ति की ओर मुड़कर कहने लगते "ठीक है, इलाज हो जायगा। पर देखिये 'पेमेन्ट' आपको करना होगा" यदि उन्होंने 'हाँ' कह दिया तो इलाज शुरू, नहीं तो नहीं।

दिन गुजरते गये और उनके साथ डाक्टर

विजय का शैतान भी निखरता गया। गरीबों की आहें, मरीजों की मजबूरियाँ, दोस्तों की नेक सलाह और जमाने की पुकार—कोई भी उन्हें न बदल सका। चाँदी की चमक ने उनकी आँखों के सामने एक ऐसा पर्दा डाल दिया जिसको चीरकर उनकी नजरें गरीबों पर न पड़ सकीं। बड़े आदमियों के अट्टहास ने गरीबों की सिसकियों और करुण पुकार को उनके पास पहुँचने से रोक दिया। और वे बढ़ते गये—अपने रास्ते पर।

× × ×

भादों की काली रात। गरजते बादल; थिरकती बिजलियाँ। मूसलाधार पानी और हाड़ कँपा देनेवाली हवा। पानी जोर पकड़ रहा था; हवा तूफान बनती जा रही थी। शहर की गलियाँ सुनसान पड़ी थीं, केवल कुत्ते भौंक रहे थे।

खट! खट! खट!—कोई डाक्टर विजय के दरवाजे की साँकल खटखटा रहा था, पर बादलों की गर्जन और पानी के जोर के कारण आवाज ऊपर तक नहीं पहुंच पा रही थी।

खट! खट! खट! फिर खामोशी की छाती चीरती हुई आवाज आई। अबकी बार डाक्टरसाहब की नींद खुल गई थी। कोई अच्छा खासा शिकार जानकर वे फौरन् नीचे उतर आये। दरवाजा खोलकर देखा तो घबराई हुई एक लड़की अपलक नेत्रों से उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी खुली हुई काली-काली अलकें उदास थीं। उसके चाँद जैसे मुखड़े पर ग्रहण की छाया थी। उसकी सिसकियों में जिन्दगी आखिरी साँस लेती हुई दिख रही थी और उसके दर्दभरे स्वर रात की नीरवता भंग कर हवा में बस रहे थे: "उसे बचा लीजिये···वह बहुत बीमार है···माँ बहुत बीमार है, डाक्टर साहब" डाक्टर विजय को देखकर वह तेजी से बोल रही थी।

"कौन हो तुम?"—डाक्टर ने रूखे स्वर में पूछा।

"मैं···लाजो हूँ डाक्टर साहब।" उसके स्वर काँप रहे थे।

"कहाँ चलना है?"

"माटीखेरा।" बोल में अभी भी कंपन था।

"हूं···फीस के पैसे लाई हो?"

लाजो पर जैसे वज्र सा गिर पड़ा हो। उसकी आशाओं पर जैसे तुषारापात हो गया हो। वह आँखें फाड़-फाड़ कर डाक्टर विजय की तरफ देख रही थी मानो उसे उनके शब्दों पर विश्वास न हो पा रहा हो; जैसे उसे इन्सान को इतना गिरा हुआ समझने में संदेह हो रहा हो। वह चुप थी।

"जल्दी बोलो, फीस के पैसे लाई हो?" डाक्टर का स्वर कठोर हो गया था।

"फीस···फीस तो नहीं है, डाक्टर साहब।" उसके स्वर में कातरता थी। आँखें दया की भीख माँग रही थीं। हृदय रो रहा था।

"तो फिर जाओ, कोई और डाक्टर तलाशो।" रात के अन्धेरे में डाक्टर का शैतान बोल रहा था।

डाक्टर विजय ने किवाड़ बन्द कर लिये और लाजो को लगा जैसे डाक्टर के साथ तकदीर ने भी उससे मुँह फेर लिया हो। निराश होकर वह लौट पड़ी।

पानी का वेग कम हो गया था। बादल भी कहीं-कहीं से फटने लगे थे जिनमें से तारे झांक रहे थे। रात ढलती जा रही थी। डाक्टर विजय सोने की कोशिश कर रहे थे पर नींद नहीं आ रही थी। कुछ देर बाद फिर वही खट, खट की आवाज। वे फिर नीचे उतर आये। किवाड़ खोलकर देखा तो लाजो खड़ी थी—शान्त और गम्भीर।

"चलिये डाक्टर साहब, मैं फीस के पैसे ले आई हूं।" उस समय वह दृढ़ता की प्रतिमूर्ति बनी खड़ी थी।

"अच्छा कहकर डाक्टर विजय भीतर चले गये। कपड़े बदले, 'रेनकोट' लिया, दवाइयों का 'बैग' उठाया और लाजो के साथ हो लिये।

रात सुनसान थी और अन्धेरा काफी। शहर की गलियाँ सोई पड़ी थीं, केवल वे दोनों टेढ़े-मेढ़े रास्तोंमें होकर आगे बढ़ते चले जा रहे थे—उस ओर, जहाँकी बस्तीमें अमीरों के महल नहीं; गरीबों की झोपड़ियाँ थीं, जहाँ उल्लास का आलोक नहीं; बेबसी का अन्धेरा था, जहाँ गरीबी आह लेती थी; तड़पती जिन्दगी की दौड़में हारे हुए इन्सानों के जीर्ण मुखों पर विश्वकी सारी व्यवस्थाओं के अमिट-से चिह्न अंकित हो गये थे और जहाँके रहनेवाले गरीब दुनिया भर को खुशी देकर भी उससे दूर थे।

लाजो आगे-आगे चलकर डाक्टर विजय को रास्ता दिखला रही थी। वे पीछे-पीछे चल रहे थे। पर दोनों खामोश थे।

माटीखेरा आ गया था। एक झोंपड़ी के दरवाजे पर आकर लाजो रुक गई। यह उसीकी झोंपड़ी थी। किवाड़ खोलकर वह अन्दर चली गई। "आइये डाक्टर साहब, ये रही मेरी माँ।" उसकी साँस फूल रही थी।

डाक्टर विजय भीतर चले गये। झोंपड़ी के कोनेमें एक खूंटी पर टँगी हुई लालटैन जल रही थी। पीला तेल होनेकी वजह से उसका टूटा शीशा काला पड़ रहा था। उसीके नीचे एक चरपाई पर लाजोंकी माँ पड़ी हुई थी। इधर-उधर कुछ चीजें फैली थीं—टूटे हुए बरतन, फटे हुए कपड़े, पर रोशनी मन्दी

(शेषांश पृष्ठ २८ पर)

संयमः खलु जीवनम्

विद्याभूषण श्रीओंकार मिश्र 'प्रणव' शास्त्री

"अयमेकत्र संयम." ।। योगदर्शन ।।

महर्षि पतञ्जलि ने योग के आठ अङ्गों में अन्तिम तीन को एक स्थिति में वर्तमान होने को संयम कहा है अर्थात् धारणा, ध्यान, और समाधि की एक कालमें एक स्थिति का नाम संयम है। यह योगियों के लिए योग का एक सर्वमान्य सिद्धान्त है। योगियों के अतिरिक्त साधारण लोक-समुदाय को संयम की अत्यन्त आवश्यकता है। जीवन यदि कल्पतरु है, तो संयम जीवन का मूल है। जीवन यदि दीपक है तो संयम स्नेह की वर्तिका है। जीवन यदि धन है तो संयम 'सेफ' सुरक्षा का साधन है। जीवन की महत्ता के लिए जीवन के प्रत्येक पल और प्रत्येक पद में संयम की आवश्यकता है। संयमहीनता का ही नाम अनुशासनहीनता, उद्दण्डता, आचार-हीनता और पतनशीलता है।

प्रकृति के जितने भी कार्य सञ्चालित होते हैं, उनमें किसी-न-किसी प्रकार संयम को विशेष स्थान प्राप्त है। सावन की काली-काली घनघोर घटाएँ बरसते हुए भी संयम का बन्धन जानती हैं, सूर्य की प्रखर किरणें भी संयम में रहना जानती हैं। मतवाला मारुत भी संयम की माला जपता है। प्रकृति के जो भी कार्य संयम के साँचे में ढले हुए होते हैं, वे पृथ्वी को उर्वरा बनानेवाले तथा लोक-कल्याण का सृजन करनेवाले होते हैं। जहां प्रकृति के कार्यों में संयमशीलता का अभाव होता है वहीं कार्य में विकृति पैदा होती है; यही विकृति जब सीमा को पार कर जाती है तो प्रलय का भी स्वरूप धारण कर लेती है। जीवन में संयम का मेरुदण्ड ही जीवनको स्थिर रखने में सहायक होता है।

कठोपनिषत्कार ने जीवन को रथ के रूप में माना है। उन्होंने इस दिव्य रथ की इस प्रकार कल्पना की है कि आत्मा रथी है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है, मन लगाम है, इन्द्रियाँ अश्व हैं, सांसारिक विषय-वासनाएं इन्द्रिय-अश्वों के दौड़ने के मार्ग हैं। कल्पना कीजिए जीवन-रथ में बैठा हुआ आत्मा यात्रा में तत्पर है, किन्तु आत्मा के अतिरिक्त, यदि सारथी, लगाम या घोड़े संयम से बाहर हो जावें तो क्या आत्मा अपने निर्दिष्ट पद पर पहुंच सकता है? इसका उत्तर नकार में ही होगा। और की बात जाने दीजिए स्वयं आत्मा ही अपने संयम से बाहर हो जावे तो वही पतनोन्मुखी होकर विनाश के गर्त में गोते लगाने लगेगा। ऐसी अवस्था में आत्मा की उन्नति के 'राजप्रसाद' के द्वार की कुञ्जी संयम ही है। ऐसा विवेकशील महात्माओं का अपना मन्तव्य सदा से रहा है।

वर्तमान काल में प्राकृतिक जड़ पदार्थों में भले ही संयमशीलता हो किन्तु मानव-समुदाय में इस आवश्यक तत्त्व का आये दिन लोप होता चला जा रहा है। मनुष्य मानसिक वासनाओं पर संयमहीन होने के कारण ही विजय प्राप्त नहीं कर पाता। जो व्यक्ति अपने-आप अपने विषय में उद्बुद्ध या प्रयत्नशील न हो उसको औरों की सहायता भी आपेक्षिक लाभ नहीं पहुँचा सकती। सम्भवतः यही विचार अत्यन्त प्राचीन काल से वेद की इस पवित्र ऋचा में मिलते हैं—"स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व। महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥ यजुः ॥ २३॥१५॥ अर्थात्—हे आत्मन्, अपने विषय में स्वयं सोचो, स्वयं यत्न करो, स्वयं कर्म करो तथा स्वयं फल भोगो। क्योंकि तुम्हारी बड़ाई दूसरे के द्वारा नहीं हो सकती। इसी भाव को श्री मद्भगवद्गीता में महात्मा योगिराज श्रीकृष्णचंद्र ने "उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्" यह कहकर दर्शाया है।

मनुष्य के क्रियाकलाप का विधान इस प्रकार है कि कार्य करने से पूर्व मन में साङ्कल्पिक क्रिया उत्पन्न होती है वह क्रिया ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा विस्तृत रूप में कर्मेन्द्रियों को कार्य करने की प्रेरणा करती है। इसी सिद्धान्त के आधार पर मनुष्य के छोटे-बड़े सभी कार्य सम्पादित होते हैं। ऐसी स्थिति में मन में संयम की भावना का पुट दिया जाय तो 'मनीराम' कभी भी अशुभ या असंयत कार्य की कल्पना नहीं करेगा। इसी आधार पर अशुभ या असंयत कार्य कर्मेन्द्रियों के द्वारा क्रियात्मक रूप में देखने को नहीं मिलेगा। इसलिए सर्वप्रथम मन को संयम के साँचे में ढालने का प्रयत्न करना चाहिए। आज सामाजिक एवं आध्यात्मिक-जगत् के अतिरिक्त राजनीतिक जगत् में भी जो संयमहीनता दृष्टिगोचर हो रही है वह भी मनकी अशुद्धता के ही कारण है। विशेष-विशेष देश के राजनीतिज्ञ स्वार्थावलिप्त मनों से दूसरे राष्ट्रों पर 'एकच्छत्र' राज्य की भावना के स्वप्न देखते हैं। उन्हीं स्वप्नों का साक्षात्कार करने के लिए यदाकदा युद्ध की विभीषिकाएं संसार को त्रस्त किए रहती हैं। इन सभी से छुटकारा पानेके लिए सबसे प्रमुख कर्तव्य यही है कि सृष्टि में रहनेवाला मानवमात्र संयम को परि-

लड़खड़ाती मानवता को युग-युग तक सहारा देनेवाली

संत वाणी

ज्ञान-विज्ञान का लक्ष्य

[मुनिश्री नगराजजी]

शास्त्रों में मतिज्ञान का ईहा, अवग्रह, अवाय, धारणा आदि के रूपमें विस्तृत विश्लेषण किया गया है। अवधान धारणा का एक रूप है। अनेक विषयों को एक साथ मस्तिष्क में स्थिर रखना—अद्भुत स्मरण-शक्ति और एकाग्रता का परिचय है। यह ज्ञान की एक विशेष साधना है, जो बताती है कि भारतीय ज्ञानके विविध क्षेत्रोंका कितना गहरा विकास कर चुके थे। भारतीय ज्ञानका लक्ष्य अध्यात्म विकास था। भौतिक अभिसिद्धियां उनके जीवन का चरम लक्ष्य नहीं थीं। आजका वैज्ञानिक-जगत् अणुबम और उद्जन बम जैसे संहारक अस्त्र का आविष्कार कर अपनी सफलता मानता है, पर वह भूल क्यों जाता है कि हिंसा परायणता के कारण उनकी ये वैज्ञानिक देनें जगत् के लिये वरदान नहीं अभिशाप सिद्ध हुई हैं। भारतीय ज्ञान-विज्ञान का अभिप्रेत भौतिक विकास नहीं था। आत्मामें अनन्त शक्तियां हैं, जिन्हें उद्बुद्ध करना मानव का पहला कर्तव्य है। भारतीयों का मूल दृष्टि वेध यह रहा। अतएव अवधान आदि ज्ञानकी विविधतामूलक साधनाएं अध्यात्म पराङ्मुख नहीं रहीं।

स्वराज्य का सच्चा अर्थ

[मुनिश्री गणेशमलजी]

विदेशी सत्ताके चले जानेका अर्थ ही स्वराज्य नहीं। आज स्वतन्त्र भारत के प्रत्येक नागरिक को अपने मन पर अनुशासन करने और व्यक्ति-व्यक्ति को अपने नियमों से बनने की आवश्यकता है। बालक-बालिकाओं का जीवन शिक्षकों के हाथोंमें है अगर उनका जीवन शुद्ध एवं चरित्रमय होगा तो उसका असर बालकों पर अवश्य पड़ेगा। अतः वे अपने आपको टटोलें और जीवन में ज्यादा से ज्यादा नैतिकता को स्थान दें। अणुव्रत-आन्दोलन नैतिकता का आन्दोलन है इससे जीवन में सुख व शान्ति का स्रोत बह सकता है। अणुव्रत का अर्थ है—छोटे-छोटे नियम। अगर आप लोग इन नियमों को जीवन में उतारेंगे तो मैं दृढ़-निष्ठा से कह सकता हूं कि देशका व राष्ट्रका कल्याण अवश्यम्भावी है।

वास्तविक आनन्द क्या है ?

[मुनिश्री हनुमानमलजी]

मनुष्य मात्र आनन्द प्राप्ति का इच्छुक है और इसके लिये वह नाना प्रकार के यत्न करता है। सच्चे आनन्द की प्राप्ति के लिये आनन्द के साधनों को जीवन में उतारना होगा। आज का सामाजिक जीवन जटिल बनता जारहा है। जीवन की जटिलता के साथ ही आनन्द भी दुर्लभ बनता जारहा है। मन की स्थिति और आनन्द का सीधा वास्ता है। आज हम भौतिक सुख को ही आनन्द समझ बैठे हैं, जिसका आनन्द से कोई संबंध नहीं। भौतिक प्रलोभन उल्टे हमारे असंतोष की वृद्धि करते हैं, जिनसे हमारा जीवन अशान्त बनता है। जीवन का वास्तविक आनन्द तो आत्मिक ही है। अतः इसकी प्राप्ति के लिये हमें अपनी मनःस्थिति को बदलना होगा, हमारे अन्तर के अन्दर सन्तोष की भावना का प्रादुर्भाव करना होगा और हमें अपनी आवश्यकताओं को कम करना होगा।

निरपेक्ष आनन्द ही सच्चा आनन्द है

[मुनिश्री मिट्ठालालजी]

संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो अपने जीवन में आनन्द का आकांक्षी न हो। आनन्द को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं ; सापेक्ष और निरपेक्ष। प्रथम प्रकार का आनन्द वस्तु या भौतिकता से संबंध रखता है और सदा अधूरा, कृत्रिम और क्षणिक होता है, जबकि दूसरे प्रकार के आनन्द का संबंध आत्मानुभूति से है। ज्यों २ हम आत्म-चिंतन में लीन होते जावेंगे, त्यों-त्यों हम आनन्द के मार्ग पर अधिकाधिक अग्रसर होते चले जावेंगे।

साधु वह है जो आत्म-साधना में लीन रहे। अतः सच्चा साधु सबसे सुखी है। लेकिन गृहस्थ रहकर भी कुछ निश्चित नियमों का पालन कर आनन्द के सन्निकट पहुंच सकते हैं। जिस कार्य में आशक्ति नहीं होती या जिसे मनुष्य अपने कर्तव्य वृत्ति से प्रेरित होकर करता है, वहां दुख नहीं।

[१५ जून, १९५९

(शेषांश पृष्ठ १९ का)

भाषा को क्रियात्मक रूप में समझें। व्यक्ति की नियम-पालना ही समाज को सुख-शान्ति के वातावरण में पहुंचानेवाली होती है। अतएव साक्षात्कार-लिप्सु योगिजन गिरि-गह्वरों में यदि संयम करें तो व्यक्ति अपने घर में संयम करें, समाज सामाजिक कार्यों में संयम का पाठ पढ़े और राजनीतिज्ञ राजनीति को भी आवश्यक संयम का चोगा पहिनावें।

दो चित्र—

सहानुभूति

[श्री चार्ल्स मैके]

शोकाकुल, पीड़ित था उस दिन
मेरा मन
सुन मेरी आह भरी आवाज
एक पुरुष ने—
जो था अभिमानी,
दृष्टि में जिसकी प्रेम नहीं था,
दिया मुझे कुछ धन
पर निकल न पाया—
सहानुभूति का एक शब्द भी
उसके मुंह से।
मेरा दुख जब हुआ दूर
उसका सब धन मैंने लौटाया ;
अभिमान से खड़ा हो
दिया धन्यवाद
प्रशंसा की—
उसकी उदारता की
उसकी सहायता की।

● ● ●

दर्द था
पीड़ित था उस दिन मैं निर्धन
निर्धन एक पुरुष
गुजरा मेरे समीप से।
वह रुका
मेरे सिर पर पट्टी बांधी
दिया भोजन मुझको लाकर
की मेरी सेवा दिन-रात लग्न से।
मेरे लिये जो कुछ उसने किया
कष्ट सहा
क्या उसका बदला चुका सकूंगा ?
धन एक बड़ी वस्तु है
है उससे भी बढ़कर
वह है दिव्य—
सहानुभूति ! सहानुभूति !!

—अनु० प्रो० श्री देवेन्द्र दीपक

नैतिक पुनरुत्थान और हमारा कर्त्तव्य

[आचार्य पं० वेदव्रत शर्मा शास्त्री, काव्यतीर्थ, विद्यासागर]

किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की समृद्धि एवं सुख का मापदण्ड वहाँ की गगन चुम्बी उच्च अट्टालिकाओं से नहीं होता और न अनन्त स्वर्ण राशियाँ या धन धान्य से परिपूर्ण प्रासाद ही किसी राष्ट्र की वास्तविक स्थिति के द्योतक होते हैं। राष्ट्र का मानव जो प्रकृति के द्वारा क्षिति, जल, पावक, गगन व समीरादि तत्वों से निर्मित होकर इस धरा देवी की अङ्कस्थली में अपना पालन पाकर राष्ट्र के प्राङ्गण में खिल-खिला उठता है वही राष्ट्र की वास्तविक स्थिति का दिग्दर्शन कराता है। इसी मानव का व्यवहार, आचार, विचार या सूझ-बूझ, राष्ट्र के वास्तविक स्वरूप के प्रतीक होते हैं। बालकपन, युवापन और वृद्धावस्था—यह तीनों रूप इस मानव के देखे जाते हैं। क्या कोई राष्ट्र अपने शिक्षालयों में शिक्षा प्राप्त करनेवाले बालकों को अपनी वास्तविक पूंजी कहने में रंचमात्र भी संकोच का सहारा ले सकता है ? नहीं—बालक राष्ट्र की सबसे बड़ी संपत्ति तथा धरोहर होते हैं।

इन्हींको माँ सरस्वती अपने विशाल ज्ञान से ओतप्रोत कर राष्ट्र के भाग्य-विधाता बनाने का स्वप्न सयोग संजोती रहती है। इन्हीं वाणी के वरद पुत्रों के द्वारा राष्ट्र की उन्नति के कार्य हुआ करते हैं और किसी भी राष्ट्र का नया इतिहास इन्हीं के द्वारा लिखा जाया करता है। सरस्वती की समाराधना में तत्पर हमारा यह समुदाय हमारे राष्ट्र का आशा-केन्द्र है। इनका महत्व किसी भी समय कम नहीं किया जा सकता।

आज जबकि हमारा राष्ट्र नव-निर्माण में संलग्न है, शताब्दियों से धूलि-धूसरित ज्ञान-दर्पण को स्वच्छ एवं प्रकाश से युक्त करना है। जबकि परतंत्रता के अवशेष कीटाणु राष्ट्र के रोम-रोम में अभी पीड़ाकर बने हुए हैं, पारस्परिक स्वार्थों के संघर्षों में नागरिक एवं नेता आपादलीन हैं, अनुशासनहीनता और नैतिक पतन से नागरिकों ने भी राष्ट्रीय जीवन को कालकूट विषमूलक बना दिया है। राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना विलुप्त होती जा रही है ऐसे समय में राष्ट्र की मूल को खोखला बना देने वाली प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने के कार्य का दायित्व इन्हीं बालकों पर है। बालकों को अपने वर्तमान जीवन की भावभूमि को उज्ज्वल बनाकर राष्ट्रीय स्वास्थ्य को गतिशील बनाना है और राष्ट्र की आशाओं को पूर्ण करना है।

बालकों को सर्वप्रथम शिक्षित करना है और उनके दृष्टिकोण को विशाल बनाना है। आज के शिक्षालयों में नैतिकता की शिक्षा की उपेक्षा की जा रही है और यही एक कारण है कि सभ्यता एवं संस्कृति अपना सह अस्तित्व खो रही है। किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र के लिये अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का ह्रास घातक होता है। नैतिकता की शिक्षा भी प्रत्येक बालक के लिये आवश्यक है और राष्ट्र के जीवन-उत्थान के लिये महत्वपूर्ण है। आज नैतिकता के अभाव से ही अनुशासनहीनता एवं स्वेच्छाचारिता की भावनायें उमड़ उठी हैं और उन्होंने आये दिन अनेक संघर्ष एवं विरोधी भावनाओं को उभाड़ दिया है। पतन के गर्त में गिरानेवाले वासनामय अवगुणों से मुक्ति दिलाने के लिये बालकों को नैतिकता की

शिक्षा आवश्यक है। शारीरिक एवं बौद्धिक विकास के लिये तथा एक स्वतंत्र राष्ट्र के स्वस्थ नागरिक के लिये सद्गुणों से विभूषित होना है तो नैतिकता की ओर उसे ध्यान देना होगा। आजकी शिक्षा ने नैतिक धरातल को इतना कुण्ठित कर दिया है कि येनकेन प्रकारेण उपाधियों का वण्डल बगल में दबाये नीरस प्राणी अपने को भूलकर अनन्त पापमय आत्म-हत्या तक के मार्ग का पथिक बन बैठता है। उसकी वास्तविक प्रतिमा जो पारस पत्थर सम वीणावादिनि के स्पर्श से सुख स्वर्णमय बन जानी चाहिये थी वह लौह किट्ट सम दुख दावानल की जनक बन बैठती है।

आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रदर्शित मार्ग इस देश के भविष्य को सुखमय बनाने के लिये एक कठोर एवं सत्य मार्ग है। नैतिकता का जागरण होते ही पार्टीबन्दी और स्वार्थ-संघर्षों का सर्वथा "अदर्शनं लोपः" हो जायगा ऐसा मेरा विश्वास है। अतएव आज प्रत्येक समझदार व्यक्ति का यह कर्तव्य हो जाता है कि नैतिकता के पुनरुत्थान के लिये किये जानेवाले प्रत्येक प्रयत्न में सक्रिय भाग लेकर अपने देश के वास्तविक स्व-रूप को प्रगट करने में सहायता करे और आज की शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन कराने के लिये अपनी सीमित शक्तियों का सदुपयोग कर राष्ट्र की आत्मा को जो नैतिकता में निहित है उसे विश्व में विकसित करने के लिये आवश्यक सहयोग प्रदान करें।

शिक्षा का उद्देश्य

असली शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य यह है कि लोग न केवल ठीक-ठीक काम करना सीखें, वरन् उसमें आनन्द भी लें, न केवल परिश्रमी और उद्योगी बनें, वरन् उद्योग से प्रेम करना भी सीखें।

—स्वामीराम

एक लघुकथा

सूरज का पर्दा

श्री रावी

लघुका काम गुरुसे और अन्धकार का काम प्रकाश से यदि होने लगे तो प्रकृति की व्यवस्था में लघु और अन्धकार का स्थान ही कहाँ रह जाय?

धरती जब सूर्यके सामने अपनी धुरी पर घूमते-घूमते सात नील दिन और उतनी ही रातोंकी यात्रा पूरी कर चुकी तब उसके कुछ पुर्जे ढीले हो गये और उसमें कुछ मरम्मत की आवश्यकता हुई।

धरती के शिल्पी देवताओं ने हिसाब लगाकर बताया—इस मरम्मतके लिए पृथ्वी को तीन दिन और तीन रातोंके बराबर समय तक के लिए अपनी यात्रा रोकनी पड़ेगी और इसका अर्थ यह होगा कि पृथ्वीके एक गोलार्द्ध पर नियमित से छः गुना दिन और दूसरे गोलार्द्ध पर छः गुनी रात होगी।

सौर-मण्डल के अधिष्ठाता विवस्वान् देवने अन्तरिक्ष के एक केन्द्रीय नक्षत्र में देवताओं की सभा की। समस्या यह थी कि आवश्यक मरम्मत के लिए धरती तीन दिन तक ठहरा दी जाय, इसमें तो कोई हानि नहीं, लेकिन, इससे उसके एक गोलार्द्धपर जो छः गुना दिन और दूसरे पर छः गुनी रात हो जायगी उससे धरती के प्राणियों—विशेषकर मानव-जनों—पर जो आतंक छा जायगा और प्रकृति की नियमितता पर उन्हें जो अविश्वास हो जायगा उसका परिणाम बहुत ही घातक होगा, आवश्यकता इस बात की थी कि धरती के जीवोंको धरती के इस स्तम्भन का पता न लग पाये और काम भी पूरा हो जाय।

बड़े-बड़े प्रकाश-पुंज नक्षत्रों के अधिष्ठाता देवताओं ने अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करते हुए अपना सम्पूर्ण बुद्धि-बल लगाकर देखा, पर वे इस समस्या का हल नहीं निकाल सके। उनमें से अनेक यह तो कर सकते थे कि अपने नक्षत्र का एक बड़ा प्रतिबिम्ब धरती के समीप लाकर उसके निम्नार्द्ध-सूर्यसे विमुखभाग के सामने एक कृत्रिम सूर्यके रूपमें सूर्यकी-सी गतिसे चालित करें और उस गोलार्द्ध के निवासियों को उस दीर्घ रात्रि का पता न लगने दें, पर सूर्यके सामनेवाले गोलार्द्ध के वासियों के लिए कुछ करने का साधन उनके हाथ में कोई नहीं था।

अन्तमें जब सभी अगली पंक्तियों के बड़े देवता अपनी असमर्थता प्रगट कर चुके तब सबसे अन्तिम पंक्ति में बैठा हुआ एक बहुत ही छोटा, ज्योति-हीन वरुण नामका मेघोंका देवता उठा और उसने इस परिस्थिति को साध लेनेके लिए अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कीं।

बड़े देवताओं को वरुण के इस साहस पर आश्चर्य हुआ और उन्होंने उसके प्रस्ताव को एक धृष्टतापूर्ण दुस्साहस समझा। किन्तु वरुण ने विवस्वान् देवसे विश्वासपूर्ण शब्दों में निवेदन किया कि वह धरती के शिल्पी देवताओं को अपना कार्य प्रारम्भ करने की

(शेषांश पृष्ठ २७ पर)

समाज व्यवस्था के जहरीले धूँए में घुटती हुई जीवन सांसों के लिए—

आदर्श......के......नीचे

—श्री जीवनप्रकाश जोशी

आप हैं मेरे दोस्त श्रीमन्! दोस्त भी किसी सिनेमाके या रेस्त्रांके नहीं, मेरे साहित्यके हैं—समाजके हैं और आज तो वह मेरी कलमके राजा, कहानीके नायक और प्रेरणाके 'प्लॉट' भी हैं। मेरी तंग कोठरीमें उनके घुसते ही न जाने क्यों अनायास ही आदर्शकी धूपका धूँआँ घुमड़कर मेरे अन्तर्मन तक पहुँचकर मुझे झुमा-झुमा देता है। उनकी बातोंमें समाज और व्यक्तिका कुछ ऐसा मेल मुझे छू-सा लेता है कि न मैं उनकी सुननेसे ऊबता हूं और न अपनी सुनानेसे चूकता ही हूँ। आज वह जाते जाते कह गए हैं—"जोशीजी, भई कुछ भी हो, नारीके आकर्षणमें वासना ढूंढना पाप है—महापाप! उसके आदर्श-रूपकी पूजा ही पुरुषके व्यक्तित्वका सबसे बड़ा धर्म है।" उनके इस सैद्धान्तिक आदर्श-विचारकी धूपका धूँआँ अब तक भी मेरी तंग कोठरीसे नहीं निकला। मानों वह मेरी नाक से होकर, काजल बनकर मेरे अन्तर्मन पर छा गया है। आज मुझे इस पवित्र धूँए का अन्तर्मन पर छाया हुआ पर्तदार रूप एक घुटनसी अनुभव करा रहा है। मेरा मन कल्मष धोनेवाली आदर्श पवित्र गंगाजीमें स्नान करने के लिये बेतहाशा भाग रहा है। मेरे पावों की दौड़ पीछेकी ओर जा रही है—धर्म परम्परा के अतीतकी ओर? आज मैं सात वर्ष पीछे का पथ पार करके अनूप शहरके पवित्र गंगातट पर पहुँच गया हूं। वहाँ देख रहा हूं अनेक नर-नारी, आबाल-वृद्ध सभी स्नानके लिये तैयार खड़े हैं···ध्यानमें मग्न बैठे हैं। लगता है पाप कर्मों का कल्मष धोनेके लिये ही आदर्श गंगाके जलका बहाव है। श्रद्धासे बहुतसे लोग चून के जलते दीवोंको जलमें छोड़ रहे हैं। लहरोंके हिचकोरे खाते-खाते वे दीवे गम्भीर जलके भँवरमें 'डुप' से डूब जाते हैं। बहानेवालों का आदर्श सफल हो जाता है। पाप धुल गए···जै गंगा मैयाकी! और तभी मेरी आँखें श्रद्धा और आदर्श से झँप-झँप जाती हैं। सहसा एक बड़े भँवर से जोरका छपाका होता है। दूर कोई चीज भँवर से उछलकर पार पर गिरी है। मैं पास जाकर देख रहा हूँ। मेरे पवित्र घाटकी दीवार से परे दीवोंकी भाँति ही झिलमिलाती हुई मोटी-मोटी मछलियों का तड़फड़ाता ढेर पड़ा है। मछुआ फिर जाल डाल रहा है। अबकी बार लोहूसे लुहान १० सेरसे भी भरकम गोस्तवाली एक मछली उसके जालमें तड़फड़ाती हुई निकली है। रोहू मछली है। हाँ हाँ, इसके दाम बता रे! चन्दन लगे कुछ कपाल मछली का सौदा कर रहे हैं। मुझसे देखा न गया। पापः पुण्यः आदर्शः यथार्थः चन्दनः लोहू—यह कैसी गुत्थी है धर्म-अधर्म की...व्यक्ति और समाज की? उफ!...

हाँ, तो अब मैं सात साल पीछेका पथ फिर पारकर अपनी तंग कोठरी में आ गया हूं। मेरे दोस्त 'श्रीमन्' मेरी तंग कोठरी के द्वार पर कान्ताके दर्शनों की एकान्त साधना में दबदबे से लीन भावमें खड़े हैं। दरवाजे के दाहिनी ओर दीवार से कोई सटकर आ खड़ा हुआ है। श्रीमन् भी आह से फुसफुसा रहे हैं—"प्रिय, सिर्फ एकबार···एकबार!" चूड़ी झनकती है। भरी-भरी कलाई पर चुपसे चुम्बन का स्वर चंचल समीर की तरह सिहरन सी जगा गया···सिर्फ एकबार!

चौंककर मैं अनुभव कर रहा हूं कि मेरे दरवाजे पर बाजीगर का तमाशा हो रहा है। सातफन का शेषनाग है, उसके ऊपर कमल का आसन बिछा है, उसपर भगवान विष्णु आनन्द से लेटे हैं। पूज्य लक्ष्मीजी उनके चरण-कमल दबा रही हैं। सहसा बीन बजते ही भीतर का भयानक अजगर फुंकार उठा। विष्णु, कमलासन और लक्ष्मीका स्वरूप लोप हो गया। काला-काला नीला-पीला जहर मेरे इधर-उधर बिखरा पड़ा है। अब मेरे दोस्त 'श्रीमन्' मेरे पास आ बैठे हैं। चर्चा चल रही है मेरे पड़ौसवाली लड़की कान्ता की। शायद यह वही कान्ता है जो अभी मेरे दरवाजे के बाजीगरवाले तमाशे को समाप्त करके गई है। यह कान्ता मेरी कोठरी से एक दीवार बीचमें पड़ी दूसरी हवेली में रहती है। मेरे दोस्त श्रीमन् की यही आकर्षण से पूर्ण आदर्श नारी है जिसके लिये वासना ढूंढना वह पुरुषके व्यक्तित्व का महापाप समझते हैं......उसकी पूजामें महान् धर्म! अनेक बार वह मेरे "नारीके स्थूलाकर्षण" वाले विचार को अपने आदर्श के दाँव पर छिका चुके हैं। पर आज वह सात साल पहिलेवाली आदर्श कल्मषहारिणी गंगाजी, झिलमिलाकर 'डुप' से डूबनेवाली भँवरीले दीवे, तड़फड़ाती हुई मछली निकलने से 'छपाक' करनेवाला जल, वह चमकीली मछलियोंका बड़ा ढेर, लहू-लोहान रोहू मछली, उसका सौदा करनेवाले वे चन्दन मण्डित कपाल, वह एकान्त-शान्त मौन मछुआ, आज सभी मेरी यादमें सजीव हो उठे हैं। मेरा अन्तर्मन अपने दोस्त 'श्रीमन्' के आदर्श धूपके धूँएसे घुटा जा रहा है। मुझे याद है,

यह वही कान्ता है जो एक दिन चुपचाप दबे-दबे पाँव मेरी तंग कोठरी में कुछ गणित के सवाल पूछने के लिये आई थी। उसके पहिले ही दिन उसने मेरे हाथमें पेन्सिल देते हुए अपना हाथ कुछ खींचा था। तब मैंने स्वभावतः चमकती आँखोंसे देखा था और तभी वह अपनी श्यामल मनुहार की विजली-सी हँसी चमकाकर यह कहती हुई भाग गई थी—"आप रोज इसी समय पढ़ाया करें न मास्टरजी !" तबसे लगातार वह कई दिनों तक समय असमय तक मेरे यहाँ आई। एक दिन पड़ौस की तूफानी चर्चाने मेरे और उसके बीच मुझे दूरीकी दृढ़ दीवार चिनने को मजबूर कर दिया। लेकिन कान्ता की श्यामल मनुहार की विजली तबसे बराबर कौंधती रही है और अब मेरे दोस्त श्रीमन् के ऊपर वह गिर रही है—गिर पड़ी है।

श्रीमन् बराबर कान्ताकी ओर आकर्षित हो रहे हैं। मेरा बाहरी दरवाजा कान्ताकी मनुहारसे विजली की तरह चमकनेवाली मुस्कान के कारण अक्सर बन्द रहता है। लेकिन मेरे दोस्त उसी तरफ से आना पसन्द करते हैं। उनके आदर्शों की धूपका धूँआँ मेरी तरह घुटन ही नहीं उन्हें दमां भी पैदा कर रहा है। वह खाँसते हैं···बहाने से एकबार सामने की दीवार पर दृष्टि डालकर कभी मायूस और कभी खुश अन्दर आ जाते हैं। कभी मैं पूछता हूं—भैया कान्तामें ऐसा क्या है जो तुम रीझे हो? वह तो रंगमें भी काली है यार! तब वह बर्फ-सी उफनी साँससे कह देते हैं—"कुछ नहीं मेरे मनकी पूजा और अधर पल्लवोंकी दिव्य दर्शिता है उसमें!" मुझे उनके इस कथनमें अब पवित्र आदर्शों की गंगाका वही तट विचारों में भँवराता-सा नजर आता है जिस पर रोहू मछली को फँसानेवाला मछुआ बैठा हो। मैं देखता हूं कि श्रीमन् का आदर्शी दमां अब बढ़ चला है। उन्हें बार-बार दरवाजे पर खखारने आना-जाना पड़ता है। उनके मर्ज पर मेरे पड़ौस को भी शक हो गया है। लेकिन मर्जका मरीज यथार्थ की दवाका आदि नहीं होता और मेरे दोस्त श्रीमन् भी इस सिद्धान्त के अपवाद बनना नहीं चाहते।

घटनाचक्र का समय बहुत बीत चुका है। गलीके परली ओर कान्ताके मकान का दूसरा दरवाजा है। श्रीमन् की राह भी वही बन चुकी है। आज मैं दूरसे देख रहा हूँ कि श्रीमन् गलीसे गुजर रहे हैं। कान्ता अपने झरोंखे से खड़ी आँख मटकाकर उनके ऊपर मुस्कान की विजली गिरा रही है। श्रीमन् ठिठक कर बाहुपाश खोले उसे विवशता का प्रणाम कर रहे हैं। मुड़कर उसकी दृष्टि दूरसे मुझे देख रही है। वे विवश विकल से मुझे बुलाने के लिये ठहरे हैं। हम दोनों गली के नुक्कड़ तक बात करते जा रहे हैं। गलीके नुक्कड़ पर श्रीमन् का अन्तिम वाक्य सुनकर मैं लौट रहा हूं—"जोशीजी, कान्ताका आकर्षण मुझे पाँच मीलके फासले से यहाँ खींचकर लाता है···वह कुछ नहीं, मेरे मनकी पूजा और अधर पल्लवों की दिव्य-दर्शिता है।"

लौटती बार मैं गलीसे देख रहा हूं कि मेरे इन्सानी कदसे बहुत ऊपर कान्ताके पड़ौसी छज्जों-छज्जों परसे कई नवयुवकों के अठखेलों के रंग-विरंगे कन-कौए कान्ताके ऊपर झुक रहे हैं। कान्ता तितली की तरह एक-एक कर उन्हें पकड़ने को मचल रही है...झपट रही है।"

और अब मैं अपनी तंग कोठरी में आ गया हूं। अनूपशहर की गंगाजी के तटका आदर्श नजारा मेरी आँखोंमें मचल रहा है। भँवर में वह झलमलाते हुए 'डुप' कर डूबनेवाले यात्रियों के दीपक, घाटकी दीवारों के परली ओर 'छपाक' से बाहर निकली मछलियों का ढेर, वह तड़फड़ाती लहू-लोहान रोहू मछली, वह एकान्त शान्त मौन मछुआ, वह चन्दन तिलकधारी रोहू मछली के खरीददार...सब मिटती धुँधली तस्वीर की तरह मुझे दीख रहे हैं और आज मैं सातवर्ष बाद फिर खूनी आदर्शों के नीचे यथार्थ का लहू-लोहान नजारा अपने पड़ौस की कान्ता और अपने समाज साहित्य के गहरे दोस्त श्रीमन् के व्यक्तित्व में ऊब-ऊब कर भी साफ, फटे ज्वालामुखी की तरह देख रहा हूं और मेरे अन्तर्मन् से कोई जोर-जोर से चीख-चीख कर कह रहा है—

"आज व्यक्ति को खूनी आदर्शों से अपनी रक्षाके लिये यथार्थ का 'स्पाती' कवच ओढ़ना होगा।"

जीवन क्या है ?

[सुश्री शारदा तिवारी]

● जीवन की यात्रा में मनुष्य जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, धीरे-धीरे अपनी चीजें खोता जाता है, परन्तु इन खोनेवाली चीजों का क्रम बड़ा विचित्र है। सबसे पहले वह अपने स्वर्णिम स्वप्नों को खोता है, फिर दाँतों को खोता है और अन्त में अपनी मूर्खता भरी आदतों को भी खो देता है, लेकिन उन्हें खोने के साथ ही वह जीवन की अन्तिम सीढ़ी पर पैर रख देता है।

चरित्र का महत्त्व

[सुश्री प्रभा भटनागर]

आधुनिक समयमें जबकि सर्वत्र उत्थान ही दृष्टिगोचर होता है, यदि मानव की ओर दृष्टि उठाकर देखिये तो वास्तविकता का भान होजायगा। समाज की उन्नतिके लिये नारे सब लगाते हैं परन्तु कार्य सिद्ध होते दृष्टिगोचर नहीं होता। एक ओर समाज को ऊँचा उठाने की चेष्टा की जा रही है, दूसरी ओर मनुष्य पतन की ओर मुंह किये हैं और पतन का वास्तविक कारण है 'चरित्रहीनता'। आधुनिक समय में हमारे नवयुवकों तथा नवयुवतियों का चरित्र दुर्बल हो गया है। जबकि चरित्र के आधार पर ही मनुष्य संसार में कुछ कर सकता है। किसी ने कहा भी है, 'धन गया कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया, कुछ गया यदि चरित्र गया तो सब कुछ चला गया।" इसलिये समाज की उन्नति के लिये चरित्र का विकास परमावश्यक है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। प्रत्येक नागरिक की अन्तरम इच्छा होती है उसका समाज उन्नत, शिक्षित तथा शक्तिशाली हो। जबकि मनुष्य समाजिक है और समाज के बिना उसका कोई अस्तित्व ही नहीं, तब प्रश्न यह उठता है कि समाज का निर्माता कौन? समाज बना किस प्रकार? जोकि इतना शक्तिशाली है कि जिसके बिना समाज का अस्तित्व ही नहीं। यह सत्य है कि समाज के बिना मनुष्य का अस्तित्व नहीं परन्तु दूसरी ओर मनुष्य के बिना समाज का भी अस्तित्व नहीं है। बिना मनुष्य के समाज का निर्माण ही नहीं हो सकता। मनुष्य ही समाज का निर्माता है, मनुष्य ही समाज का एक अंग है। भारत का प्रत्येक प्राणी समाज रूपी शरीर का अंग है, जिस प्रकार शरीर के हाथ-पैर, नाक-आंख, मुंह-अंगुलियां इत्यादि पृथक्-पृथक् अंग हैं परन्तु फिर भी सम्पूर्ण शरीर के सम्मिलन को ही शरीर कहते हैं पृथक् अंग को नहीं। उसी प्रकार समाज में रहनेवाला प्रत्येक प्राणी उसका पृथक् अंग हैं और उन सबके सम्मिश्रण से ही समाज की उन्नति हुई। समाज की उन्नति होना, समाज के प्रत्येक अंग की उन्नति करना है। यदि समाज का प्रत्येक अंग शक्तिशाली, सुसंगठित होगा तो समाज भी वैसा ही होगा। जब समाजके अंग ही शिथिल होंगे तो समाज किस प्रकार उन्नतिशील हो सकेगा। अतः नागरिक रूपी अंगको दृढ़ करनेके लिये सर्वप्रथम चरित्रकी आवश्यकता होती है। चरित्र ही वह कसौटी है जिसपर कसने के पश्चात् संसार की कोई भी शक्ति ऐसी न होगी जो उसका आदर न कर सकेगी।

जिस देश या जाति में एक-एक मनुष्य अलग-अलग अपने चरित्र के सुधार में लगे रहते हैं बस समग्र देश का देश उन्नति की अन्तिम सीमा पर पहुंच जाता है सभ्यता का एक अच्छा नमूना बन जाता है। यदि मनुष्य नीच से नीच कुल में पैदा हुआ हो, बहुत पढ़ा-लिखा न हो, किसी तरह की उसमें कोई असाधारण बात न हो परन्तु चरित्र की कसौटी में अच्छी तरह कस लिया गया हो तो उस चरित्रवान् मनुष्य का संभ्रम और आदर समाज में विरला ही ऐसा होगा जो आदर न करेगा और ईर्ष्यावश, उसके महत्व को मुक्त कंठ हो स्वीकार न करेगा। नीचे दर्जे से ऊँचे पहुँचने के लिये चरित्र की कसौटी से बढ़कर और कोई दूसरा साधन नहीं है। चरित्रवान यद्यपि धीरे-धीरे बहुत देर में ऊपर उठता है, पर यह निश्चित है चरित्र पालन में जो सावधान है, वह एक न एक दिन अवश्य समाज का अगुआ मान लिया जायगा। हमारे यहां के गोत्र प्रवर्तक, ऋषि, भिन्न-भिन्न मत, या सम्प्रदायों के चलानेवाले आचार्य, नबी, अम्बिया, औलिया आदि सब इसी क्रमपर आरूढ़ रहे। लाखों-करोड़ों मनुष्यों के 'गुरों-गुरु' देववत् माननीय-पूजनीय हुए और कितने ही उनमें से ईश्वरीय अंश और अवतार माने गये—चरित्र के कारण ही।

सत्य पर अटल विश्वास, शान्ति, कपट और कुटिलाई का अभाव आदि चरित्रके अनेक अंग हैं। परन्तु वह नींव जिसपर मनुष्य के चारु चरित्र का पवित्र विशाल मंदिर खड़ा हो सकता है, अपने सिद्धान्तों का दृढ़ और पक्का होना है। जो अपने सिद्धान्तों का दृढ़ और पक्का है, वह उतना ही चरित्र की दृढ़ता

जागृत

में श्रेष्ठ होगा चरित्र की सम्पत्ति के लिये सिधाई तथा चित्त का अकुटिलभाव भी एक ऐसा बड़ा स्रोत है जहां से विश्वास, अनुराग, दया, मृदुता, सहानुभूति से सरस प्रवाह की अनेक धारायें बहती हैं। आत्म-गौरव भी चरित्र का प्रधान अंग है। किसी भी आत्म-गौरव सम्पन्न व्यक्ति से उत्कोच या किसी तरह का लालच दिखाकर उसके दृढ़ सिद्धान्तों से उसको अलग करना वैसा ही है, जैसा कि प्रकृति के नियमों को बदल देना।

उपरोक्त लिखे चरित्र के अंगों के उपयोग करने से प्रत्येक नवयुवक तथा नवयुवती एक महान् चरित्रवान बन सकती है। हमारे देश की भावी उन्नति भी इन्हीं नवयुवकों तथा नवयुवतियों पर निर्भर है। समाज के नवयुवकों तथा नवयुवतियों को चरित्र पालन में विशेष प्रसन्नचित्त होना चाहिये। चरित्र सम्पन्न साधारण शिक्षा रखकर भी जितना उपकार देश, जाति या समाज का कर सकता है, उतना सुशिक्षित परन्तु चरित्र का छुछा नहीं कर सकता। विज्ञान के चमत्कारों ने दृष्टि की रचना को उखाड़ फेंका है। उसी प्रकार चरित्र का चमत्कार भी समाज, देश तथा जाति की कुरीतियों को उखाड़कर गंगा के समान पवित्र तथा उज्ज्वल बना सकता है।

तेरा मूल्य

जिन्दगी तुझे इसलिए नहीं दी गई कि तू आलस्य के साथ कुछ सोचता रहे या पढ़ता रहे या फिर धर्म की किसी भावना को बैठा सेता रहे। वह तुझे दी गई है इसलिए कि तू कर्म कर—करता रहे। याद रख तेरे कर्मों से ही तेरा मूल्य आंका जा सकेगा।

—फिचटे

जीवन में गतिशीलता

—श्री विजयकुमार—

झरने का प्रवाहयुक्त जल स्वच्छ एवं निर्मल होता है। उसकी तह में पड़ी सभी वस्तुयें स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। वह अपने साथ एक गतिमय वातावरण लेकर चलता है—कभी शान्त कलकल तो कभी कोलाहलपूर्ण गर्जन। जब भूमि समतल होती है तो प्रवाह में शान्त संगीत का स्वर होता है। जब भूमि ऊँची-नीची होती है तो प्रवाह में एकरूपता नहीं, शान्ति नहीं, बल्कि कोलाहल होता है।

दूसरी ओर तालाब का जल स्थिर एवं प्रवाहशून्य होता है—जिसमें गति नहीं, इसलिये संगीत का स्वर या कोलाहल भी नहीं होता। उसके गर्भ में क्या भरा पड़ा है यह भी दृष्टिगोचर नहीं होता। जल की सतह पर दुर्गन्धयुक्त काई सड़ती रहती है।

जीवन के भी यही दो रूप हैं—पहला गतिशील जीवन, दूसरा गतिशून्य जीवन।

जीवन में एक गति हो, प्रवाह हो—यह आज का हर विचारशील एवं जागरूक प्राणी सोचता एवं चाहता है। गति ही जीवन है। गति ही जीवन को निश्चित रूप प्रदान करती है, चाहे वह रूप विकृत ही क्यों न हो। प्रवाह ही झरने के गन्दे जल को स्वच्छ एवं निर्मल रूप प्रदान करता है। गति ही जीवन के विकृत रूप को सुघड़ता एवं सौन्दर्य प्रदान करती है। गतिशून्यता जीवन में मृत्यु है। तालाब के प्रवाहशून्य जल में एक सड़ान्ध पैदा होती है जो उसी में घुल-मिलकर उसे विषाक्त बना देती है। गतिशून्य जीवन में भी ऐसी ही विकृति पैदा होती है जो विषाक्त बनकर सारे जीवन को मृत्यु-स्वरूप बना देती है।

कर्म की ओर प्रवृत्त होना ही गतिशीलता को प्राप्त करना है। क्या कर्मणीय है?—यह एक बड़ा प्रश्न है। सच्चे कर्म का निर्धारण और उसकी ओर प्रवृत्त होना, दोनों ही कठिन कार्य हैं। मनुष्य की अपनी परिस्थितियां, उसकी रुचि एवं वृत्ति उसे किसी निश्चित दशा की ओर ले जाती हैं। उचित-अनुचित का ध्यान भी आवश्यक है। साथ ही सामाजिक एवं व्यक्तिगत तथा व्यक्ति और व्यक्ति के स्वार्थों में भी विरोध पड़ता है जिनके फलस्वरूप संघर्ष का उदय होता है। इन संघर्षों एवं विरोधों के बीच रहकर उनके समाधान का प्रयत्न करते हुये मनुष्य सदैव ही सद्कर्म ओर गतिमान हो, जीवन के लिये यही अपेक्षित एवं श्रेयस्कर तथा सुखकर भी है।

गतिशीलता एवं विचार में गहरा सम्बन्ध होता है। यदि कहा जाय कि विचार गति या कर्म के जनक होते हैं, तो अनुचित न होगा। विचारशीलता से ही जीवन को गतिशीलता प्राप्त होती है। हर नये विचार से एक नयी क्रान्ति का जन्म होता है और हर नयी क्रांति जीवन को एक नवीन गति प्रदान करती है। एक युग का जीवन अपने समय के महान् विचारों से प्रभावित होता है। स्वयं एक नये युग का निर्माण इसलिये हुआ कि वह नये विचारों से अनुप्राणित हुआ। महात्मा बुद्ध, महात्मा गांधी, मार्क्स आदि के विचारोंके साथ नये युगों का प्रादुर्भाव हुआ। इन विचारों ने अपने समय के जीवन-प्रवाह में एक नयी

हलचल पैदा कर उसे नवीन मोड़ दिया।

विज्ञान को गतिशील जीवन की सबसे बड़ी देन के रूप में देखा जा सकता है। गतिशील जीवन की पहुँच कहां तक हो सकती है, इस बात का प्रमाण विज्ञान की प्रगति है। कहा जा सकता है कि सृष्टि के आरम्भ से अब तक मनुष्य ने जो कुछ पाया है, उसमें विज्ञान के अद्‌भुत आविष्कारों का स्थान सर्वोपरि है। आज भी विज्ञान निरन्तर आगे ही बढ़ता जा रहा है। लेकिन प्रश्न उठता है—विज्ञान की प्रगति के रूप में जीवन की यह गति हमें किस ओर ले जा रही है? क्या हम सही रास्ते पर हैं? यदि गतिशील होने का अर्थ विनाश की ओर बढ़ना है, तो हम सही रास्ते पर हैं, अन्यथा नहीं। विज्ञान ने जीवन में संघर्ष के उस रूप को जन्म दिया है जो संहारकारी है। संघर्ष में गति भी द्रुततर हो गयी है और हम तेजी से विनाश की ओर उन्मुख हो रहे हैं। लेकिन जीवन का अर्थ निर्माण है। स्वयं विज्ञान का प्रयोग निर्माण और संहार दोनों ही के लिये किया जा सकता है। मनुष्य में कल्याणकारी एवं विनाशकारी दोनों ही प्रवृत्तियाँ कियाशील होती हैं। युग विशेष में जो प्रवृत्ति अधिक प्रवल होती है, जीवन उसी ओर गतिमान होता है। आज के युग में विनाशकारी प्रवृत्तियाँ ही अधिक प्रवल हैं और हम विनाश की ओर गतिशील हैं।

लेकिन कालान्तर में गति में परिवर्तन निश्चित है, क्योंकि गति का यही क्रम है। इसके भी कारण हैं। किसी युग विशेष में गति की कई धारायें साथ ही प्रवाहित होती हैं जो स्वभाव से प्रतिक्रियात्मक होती हैं। आज भी संहार एवं विनाश की प्रतिक्रिया शान्तिपूर्ण एवं मंगलकारी प्रयत्नों द्वारा हो रही है। अमर्यादित भौतिकता के विरोध में नैतिक एवं धार्मिक आन्दोलनों ने जोर पकड़ा है। समय की यही मांग भी है। यदि जीवन को विनाश से बचाना है तो आज की गति को पीछे की ओर मोड़ना होगा। विज्ञान की प्रगति के रूप में मनुष्य ने भौतिकता की सीमा का उल्लंघन किया। नैतिक पुनरुत्थान एवं विचार परिवर्तन द्वारा ही विनाशकारी भौतिकता को मर्यादित किया जा सकता है। इसी ओर गतिशील होना कल्याणकारी एवं मंगलमय होगा। यही सत्यपथ है और इसकी विजय निश्चित है।

(पृष्ठ २२ का शेषांश)

आज्ञा दें और उन्हें आश्वासन दिया कि शेष अव्यवस्था को वह सहज ही सम्हाल लेगा।

ववस्वान् देवकी आज्ञा लेकर वरुण ने पृथ्वीके दोनों गोलार्द्धों के आकाश को घने बादलों से पाट दिया और तब तक उन्हें वहीं रोके रक्खा जब तक शिल्पी देवों ने धरती की मरम्मत का अपना काम पूरा न कर लिया। इतने दीर्घकाल तक मेघाच्छन्न आकाश पृथ्वी के निवासियों के लिए एक अदृश्य-पूर्ण घटना थी, पर इसमें उनके लिए कोई अकल्पितपूर्ण या आतंकित करनेवाली बात नहीं थी। वरुण के इस कौशलसे उन्हें दिन और रातके स्तम्भन का कोई पता नहीं लग पाया और वे अपने कृत्रिम दीप-प्रकाश में स्वाभाविक दिन-रात की भाँति काम करते रहे।

लघुका काम गुरुसे और अन्धकार का काम प्रकाश से यदि होने लगे तो प्रकृति की व्यवस्था में लघु और अन्धकार का स्थान ही कहाँ रह जाय?

शीघ्र ही प्रारम्भ होनेवाले अणुव्रत के दो स्तम्भ

पाठकों के विशेष आग्रह पर शीघ्र ही हम एक बालोपयोगी स्तम्भ शुरू करनेवाले हैं—यह सूचना पिछले अङ्क में छपी थी। इसके साथ ही एक 'प्रश्नोत्तर' का स्तम्भ भी प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया है।

अतः लेखकों व पाठकों की पहले स्तम्भ के लिये छोटी-छोटी शिक्षा-प्रद कहानियाँ, लेख, चुटकुले व अन्य रचनाएं और दूसरे स्तम्भ के लिये अपनी-अपनी जिज्ञासा—प्रश्न सादर आमंत्रित हैं।

—सम्पादक

शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला

अणुव्रत का विशेषांक

पूरी रूप रेखा और सूचनाएं
आगामी अंक में देखिये

—सम्पादक

(पृष्ठ १८ का शेषांश)

होनेके कारण कुछ साफ नजर नहीं आ रहा था। जमीन पर पानी फैल रहा था। डाक्टर विजय वृद्धाकी चारपाई पर बैठ गये। नब्ज देखी, फिर 'आले' से जाँच करने लगे। वृद्धा कराह रही थी और उसकी एक-एक कराह लाजोके मासूम दिलको डरा रही थी।

"घबराने की कोई बात नहीं। मैं दवा दिये देता हूँ—दो-दो घण्टे बाद देती रहना। सुबह दवाखाने आकर हाल बतलाना।"

जाँच खत्म हो चुकी थी। डाक्टर विजय ने लाजोको दवा दी, एक दृष्टि झोंपड़ी के चारों ओर डाली, फिर 'बैग' उठाकर बाहर निकल आये—पर उदास मन लेकर। आज न जानें उन्हें क्या हो गया था। झोंपड़ी की दशा उनके मनमें बार-बार प्रचण्ड झंझावात उत्पन्न कर रही थी, लाजो और उसकी गरीबी-दुनिया की गरीबी-से उनका हृदय दुखी हो रहा था और बगैर पैसेवालों का निरन्तर उपहास करते रहने पर उन्हें अपने ऊपर ग्लानि उत्पन्न हो रही थी। शायद जिन्दगी में पहली बार।

"डाक्टर साहब, ये फीसके पैसे।" यह लाजो बोल रही थी।

"ऐं!" डाक्टर विजय चौंक पड़े।

लाजो डाक्टर साहब के सामने आगई थी। उसकी हथेली पर रखे हुए रुपये उनके सामने थे। पर वे फिर भी अपने में खोये हुए थे। झोंपड़ी की हालत देखकर उन्हें यह विश्वास नहीं हो पा रहा था कि उनकी फीस देनेके लिये लाजोके पास सचमुच रुपये हों। उनका अन्तर बोल रहा था कि उन रुपयों के पीछे अवश्य ही कोई करुण इतिहास छिपा हुआ है। उनका दिल रुपये लेनेसे इन्कारकर रहा था

"तुम रुपये कहाँसे लाई?" डाक्टर के स्वरमें पीड़ा थी।

"मैं रुपये कहाँसे लाई? मैंने अपने को बेचा है, डाक्टर साहब, अपना फर्ज अदा करनेके लिये जिससे कोई यह न कहले कि गरीबों के दिल नहीं होता; उनमें अपनों के लिये प्यार नहीं होता, उनके लिए सब कुछ न्यौछावर करने की चाहत नहीं होती।" लाजोकी सिसकियाँ तेज हो रहीं थीं। आँसुओं की बाढ़ आ रही थी। फिर भी वह कहती चली जा रही थी।

"हम गरीब जरूर हैं डाक्टर साहब, लेकिन गिरे हुये नहीं। इन्सानियत के नाते हम अपनों के क्या, दूसरों के दुःख-दर्द में भी भी काम आना फर्ज समझते हैं। आप अमीर हैं, आपका हर सौदा धनसे होता है। मगर हम गरीब फर्ज और इन्सानियत को ही अपनी सबसे बड़ी दौलत समझते हैं। पर इससे आपको क्या? आपको पैसे चाहिये, वह ये रहे।" लाजोंका रुपयोंवाला हाथ आगे बढ़ गया था।

वह चुप हो गई थी किन्तु उसके शब्द डाक्टर विजय के दिमाग में गूंज रहे थे। लाजोकी करुणापूर्ण दशा और मलिन मुख उनका कलेजा पिघला रहे थे। उनका इन्सान जाग रहा था।

"ठहरो लाजो, तूने आज दरिया का रुख बदल दिया है। मुझे जिन्दगी का राज बता दिया है। एक गुमराह को रास्ता दिखला दिया है। एक शैतान को इन्सानियत बख्श दी है।...ये पैसे...तुम अपने ही पास रखो, आज मुझे इनकी चमक में भी अन्धेरा नजर आ रहा है।"

लाजो हैरान-सी खड़ी थी। डाक्टर के आँसू उसको परेशान कर रहे थे। "लेकिन सिर्फ एक घरके चिराग जलने से दुनिया का अन्धेरा थोड़े ही दूर हो जायगा डाक्टर साहब। यहाँ तो हजारों आदमी ऐसी जिन्दगी बसर करते हैं जहाँ मुस्कानें थक जातीं हैं, आँसू सूख जाते है। जहाँ इन्सानों के पास खानेको अन्न नहीं, पहनने को कपड़े नहीं, रहने के लिये मकान नहीं, दवाके लिये पैसे नहीं।"

डाक्टर विजय चुपचाप खड़े थे जैसे कि उनके पास लाजोंके सवाल का कोई जवाब ही न हो। थोड़ी देरके पश्चात् वे चल पड़े—शहर की ओर। वे जा रहे थे, परन्तु केवल उनका शरीर। दिल तो उनका झोंपड़ी में रह गया था।

× × ×

दूसरे दिन लोगोंने देखा कि डाक्टर विजय के दवाखाने की दीवार पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था। 'यहाँ गरीबों का मुफ्त इलाज होता है'।

आन्तरिक सौन्दर्य व महिलाएं

[आचार्यश्री तुलसी]

महिलाएं बाह्य सौन्दर्य, सुसज्जा और प्रसाधन को जीवन का मुख्य ध्येय मान आन्तरिक सौन्दर्य-अर्जन को न भूलें। उनके जीवन-व्यवहार में सुन्दरता आनी चाहिए, अन्तर-वृत्तियों में सुन्दरता आनी चाहिए। उनका कोई कार्य ऐसा न हो, जो असुन्दर हो अर्थात उसमें हिंसक भाव, दम्भचर्या, प्रताड़ना और कलुषितपन न हो। उनकी वृत्तियाँ निर्मल और निरपाप हों। वे किसी के प्रति असद्व्यवहार न करें, किसीका जी न दुखाएं। व्यवहार व भाषा में कटुता न बरतें। दूसरों को हीन व तुच्छ न समझें। घरके बड़ों-बूढ़ों के प्रति अविनय भाव न रखें। उनका जीवन सादा और विचार ऊँचे हों, इसी का नाम आन्तिरिक सौन्दर्य है, जो आत्म-शुद्धि का हेतु है।

युवक व महिला सम्मेलनों का आयोजन

पड़िहारा (डाकसे) २६ मई को दोपहर में दो बजे आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में एक युवक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें युवक हार्दिक उत्साह और उत्कण्ठा लिये बड़ी संख्या में उपस्थित रहे।

२९ मईको दोपहर में यहाँ महिला सम्मेलन का भी कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। आचार्यश्री का प्रेरक सन्देश सुनने के लिये महिलाएँ बड़ी संख्या में यहाँ पहुंची और धैर्य व उत्साहपूर्वक बैठकर जीवन व व्यवहार-शुद्धिके विचारों को सुना और लाभ उठाया। ३१ मईको आचार्यश्री रतनगढ़ पधारे।

महिला विचार-परिषद्

श्रीडूंगरगढ़ (डाकसे) २७ मई रविवार को यहाँ साध्वीश्री गुलाबांजी के सान्निध्य में अणुव्रत सम्बन्धी 'महिला विचार-परिषद्' का आयोजन हुआ। इसमें निर्धारित विषय 'ज्ञानके साथ विनय की आवश्यकता' पर साध्वीवृन्द के सुन्दर प्रवचन हुए। अनेक बहनों व छात्राओं ने भी अपने-अपने विचार प्रकट किये। इसके पश्चात् कार्यक्रम सफलतापूर्वक समाप्त हुआ।

ग्रामोंमें अणुव्रत-प्रचार कार्य

जलगाँव (डाकसे) जन-सम्पर्क व अणुव्रत-प्रचार की दृष्टिसे यहाँ के उत्साही कार्यकर्ता श्री एम० ए० बाफणा ने गत २७ मईसे तीन दिनतक पद-यात्रा की। मार्गके अनेक ग्रामोंमें होते हुए वेलवाल में एक हरिजन सभाका आयोजन किया जिसमें कई बन्धुओं ने दुर्व्यसन छोड़ने की प्रतिज्ञाएँ लीं। इस यात्राके अवसर पर अणुव्रत के १४ ग्राहक बने और चारों ओर अणुव्रत भावना का स्वागत हुआ।

अध्यक्ष व अन्य कार्यकर्ताओं का दौरा

कांचीपुरम् (डाकसे) यहाँ सर्वोदय-सम्मेलन में भाग लेनेके लिये दुलारम से अध्यक्ष श्री पारस जैन, केन्द्रीय कार्यालयसे श्री देवेन्द्र हिरण संगठन मन्त्री श्री उत्तमचन्द जैन, व श्री महेन्द्रकुमार आदि ८-१० कार्यकर्ता यहाँ पहुंचे। २८ मई को रात्रिमें एक सभाका आयोजन हुआ जिसमें अध्यक्ष महोदय ने अणुव्रत-आन्दोलन की आवश्यकता व इसके रचनात्मक पहलू पर प्रकाश डाला और आगेका कार्यक्रम निर्धारित किया।

२७ मई से कांचीवरम्, चंगलपेट, ताम्बरम्, पलावरम्, सेन्ट थामस माउन्ट, सयदापेट आदिका दौरा करने के उपरान्त कार्यकर्ता १ जूनको मद्रास पहुँचे। इस बीचमें सभी स्थानीय कार्यकर्ताओं का उत्साहप्रद सक्रिय सहयोग रहा। चारों ओर आन्दोलन व 'अणुव्रत' पत्रका स्वागत किया गया। सैकड़ों व्यक्ति 'अणुव्रत के ग्राहक बने।

पहली जून को मध्याह्न में मद्रास निवासियों की ओर से श्री हंसराज कौंसिलर की अध्यक्षता में एक विशेष समारोह का आयोजन हुआ। इसमें नगरके प्रतिष्ठित सज्जनों के अतिरिक्त अतिथिगण भी उपस्थित थे। चारों ओर फैले हिंसा व शोषण-प्रधान वातावरण में अणुव्रत आन्दोलन की आवश्यकता व महत्ता पर श्री यशपाल जैन, श्री उत्तमचन्द, प्रो० कृष्णमूर्ति, श्री पारस जैन व श्री विष्णु प्रभाकर के भाई श्री ब्रह्मानन्द आदिने अपने सारगर्भित विचार प्रकट किये।

कार्यकर्ताओं का चार जून की शामको अर्काट, वेलूर आदि होकर ८ को बंगलौर व वहाँसे मैसूर के दौरे पर जानेका कार्यक्रम है।

शुभ सूचना

पाठकों व साथियों को यह जानकर अत्यन्त हर्ष होगा कि गत पक्ष में 'अणुव्रत' के लगभग ५०० वार्षिक ग्राहक और बनें हैं। हम उन सभी सहयोगियों के अत्यन्त आभारी हैं जिनकी लग्न व कार्यनिष्ठा का यह परिणाम है।

लेखकों से !

१ 'अणुव्रत' में केवल नैतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व अन्य जीवनोपयोगी प्रेरक लेख, कविता, कहानी आदि ही प्रकाशित होती हैं। रचना भेजते समय इसका विशेष ध्यान रखें।

२ रचनाओं के घटाने-बढ़ाने, प्रकाशित करने या न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है। प्रकाशित विचारों का उत्तरदायी स्वयं लेखक होगा, सम्पादक नहीं।

३ लेखादि संक्षिप्त व सार-गर्भित होने के साथ पृष्ठ के एक ओर सुस्पष्ट लिखे होने चाहिये।

४ प्रत्येक रचना की स्वीकृति अधिक से अधिक १५ दिन में भेज दी जाती है। स्वीकृति के अभाव में रचना अस्वीकृत समझें।

५ रचनाओं में यदि हिन्दी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा का उदाहरण या अंश प्रस्तुत करें तो वह सानुवाद हो और मूल पुस्तकादि का पूरा विवरण भी अवश्य दें।

६ सात्विक विचारोंके प्रचार की दृष्टिसे 'अणुव्रत' में प्रकाशित कोई भी रचना उद्धृत की जा सकती है किन्तु उसमें 'अणुव्रत' का उल्लेख होना अनिवार्य है।

७ रचना के साथ लेखक या लेखिका का पूरा नाम, पता अवश्य होना चाहिए।

८ परिवर्तनार्थ पत्र-पत्रिका भेजने व सम्पादन-सम्बन्धी हर प्रकार के पत्र-व्यवहार का पता :—

सम्पादक—'अणुव्रत' पाक्षिक, ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता—१

'अणुव्रत' पसन्द न आवे तो ?

ग्राहक हो जाने के बाद भी बारह महीने तक 'अणुव्रत' पढ़ते रहिये और फिर सालभर की पूरी फाइल हमें लौटाकर मूल्य वापस मंगालें। पत्र भेजने में जो डाक-खर्च वगैरह लगता है, वह काटकर बाकी मूल्य ५॥) हम वापस भेज देंगे। आशा है इस सूचनाके बाद किसी भी सज्जन को 'अणुव्रत' का ग्राहक बनने में झिझक न रह जायगी।

ग्राहकों से !

पूरी सावधानी से अङ्क भेजने के उपरान्त भी कार्यालय में ८-१० अङ्क बिना रैपर के वापस आ जाते हैं जिनसे यह अनुमान नहीं लग पाता कि किन ग्राहकों को 'अणुव्रत' नहीं मिला।

अतः आपसे निवेदन है कि हर माह की ५ और २० तारीख तक यदि आपके पास 'अणुव्रत' न पहुँचे तो कृपया कार्ड लिखकर हमें सूचित करदें ताकि दुबारा अङ्क भेजा जा सके। —व्यवस्थापक

श्रद्धाञ्जलि

पाठकों को यह जानकर अत्यन्त दुःख होगा कि गत २७ मई को रतनगढ में अणुव्रत-आन्दोलन के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री हनूतमल सुराणा के पूज्य पिता श्री सेठ तिलोकचन्दजी सुराणा का अचानक ही स्वर्गवास हो गया।

आपके वियोग से मारवाड़ी समाज के अग्रणी नेता, शिक्षा-प्रेमी और सुप्रसिद्ध समाज-सेवी के रूप में जो महान क्षति हुई है, वह अकथनीय है। आपके विचारों की गहराई, मितव्ययता, सादगी, संयम और समाज-कल्याण की शुभ-दृष्टि सदैव ही आदर्श-स्तम्भ की भाँति हमें प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान करती रहेगी !

'अणुव्रत परिवार' दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए आपके शोक-सन्तप्त परिवार के साथ सहानुभूति प्रकट करता है।

[समालोचनार्थ पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियां कार्यालय में भेजनी चाहिये]

राज व्यवस्था—सर्वोदय दृष्टि से—लेखक – श्रीभगवानदास केला, प्रकाशक भारतीय ग्रंथमाला दारागंज, इलाहाबाद पृष्ठ सं० १६०, मूल्य १॥)

पश्चिम में नाजीवाद और फासिस्टवाद ने द्वितीय महायुद्ध को जन्म दिया और साम्राज्यवाद ने जिसकी जड़ें १६ वीं शताब्दी में प्रायः मजबूत हो गयी थी, पूर्वीय दुनियाँ में फैलना प्रारंभ किया, कुछ ही वर्षों में अपना पूर्ण प्रभाव भी जमा लिया। यद्यपि द्वितीय महायुद्ध के अन्त में विश्व के भौतिकवादी राष्ट्रों की परस्पर प्रतिस्पर्धा से साम्राज्यवाद की जड़ें उखड़ गयीं किन्तु महायुद्ध के पूर्व से उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जिन तत्वों का उदय हुआ था उनका विकास साम्यवाद के रूप में हुआ। दूसरी ओर अवसरवादी शक्ति ने अपना सिर विना किसी अंकुश के उठाना शुरू किया। वह शक्ति पूंजीवाद के रूप में प्रकट हुई। अब धराशायी साम्राज्यों की अशक्त इच्छायें विश्व के कोने कोने में उत्कट उत्पात का कारण बनी हुई हैं, उनके दौर्बल्य से लाभ उठाकर दीनता प्राप्त पूंजीवाद स्वयं वैसे ही ग्रस्त है जैसे सूखे पत्तों में छिपनेवाला खरगोश अपने पैरों की आहट से ही भयभीत होता है। पूंजीवाद की इस भय-भावना को साम्यवाद ने आज नहीं अपितु पूंजीवाद के विकास के साथ ही ताड़ लिया था और वह आज पूंजीवाद का प्रतिस्पर्धी बनकर विश्व रंग-मंच पर अपना रोब जमाने में तत्पर दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार आज का समाज मुख्यतया इन दोनों विवादों के कुचक्र में कुचला जा रहा है। आज का मानव समाज आपाततः बुद्धिजीवी और श्रमजीवी इन दो वर्गों में विभक्त होकर आपस में टकरा रहा है। इस संघर्ष से विश्व में फैली हुई अशान्ति कभी दूर नहीं हो सकती।

संघर्षों को मिटाने का अमोघ उपाय सर्वोदय है। सर्वोदय की भावना से ही विश्व का कल्याण संभव है। आधुनिक युग ने जहाँ विध्वंसक शक्तियों का आविष्कार और संग्रह कर दिया है विश्व में शान्ति बनी रहेगी यह आशा निर्मूल सिद्ध होगी। सर्वोदय विध्वंसक प्रणाली का सर्वदा विरोध करता है और रचनात्मक तथ्यों का समर्थन करता है। इस लक्ष्य को विद्वान् लेखक श्री भगवानदास केला ने "राज-व्यवस्था सर्वोदय दृष्टि से" पुस्तक लिखकर बड़ी सहृदयता का परिचय दिया है। इस पुस्तक से बड़ा लाभ होगा। इसमें आधुनिक राजनीति का, जो केवल षडयंत्रों के आधार पर अवलंबित है-उचित रीति से खण्डन किया है। विश्व की राजनीति में आज सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक तथा धार्मिक पहलुओं का विन्यास और उनका परिपालन किस आधार पर अपेक्षित है इस सिद्धान्त का मण्डन एवं पूर्ण विवेचन उक्त ग्रंथ में बड़ी सरलता से दर्शाया गया है।

आज के शिक्षित युवकों के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। सर्वोदय के सिद्धान्तों के अनुसार व्यष्टि और समष्टि का वास्तविक संबंध क्या है और विश्वजनित हित के लिये कौन-कौन से साधन श्रेयस्कर हैं इस पर प्रकाश डालकर केलाजी ने बड़ा उपकार किया है, हमें पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थ से नागरिक कर्तव्यों का पूर्ण विकास होगा। लेखक का अनुभव ठोस एवं अकाट्य है। इस पुस्तक में ग्रामराज, प्रादेशिक तथा केन्द्रीय प्रशासन व्यवस्था, देश रक्षा, आदि की जो रूप-रेखा प्रस्तुत की गयी है वास्तव में प्रशंसनीय है।

अनीति के बलपर आज एक ओर अनावश्यक पूँजी एकत्र है दूसरी ओर अर्थ विहीन समाज अशान्ति मचाये हुये है, सर्वोदय की दृष्टि से सर्वप्रथम शोषण का अन्त अनिवार्य है। लोकतन्त्र का सही ढंग से विकास सर्वोदय के सिद्धान्तों पर अमल करने से ही संभव है। यद्यपि लोकतंत्र भी शासन करने की ही प्रणाली है और सर्वोदय शब्द शासनात्मक नहीं है फिर भी शासन मुक्त समाज का मूल आधार क्या होगा और अनुशासन को बनाये रखने के लिये किन आदर्शों की अपेक्षा है इसका विवेचन उक्त ग्रंथ में बड़े रोचक ढंग से किया गया है। वर्तमान राजनीति ने अराजकता को ही प्रश्रय दिया है। उसका मार्जन कर विश्व हित को अक्षुण्ण रखना सर्वोदय का मूल उद्देश्य है। सर्वोदय के सिद्धान्तों पर अभूतपूर्व प्रकाश डालते हुये श्री केलाजी ने इस ग्रंथ की रचना में जो प्रयास किया है, स्मरणीय है।

—प्रभाकर
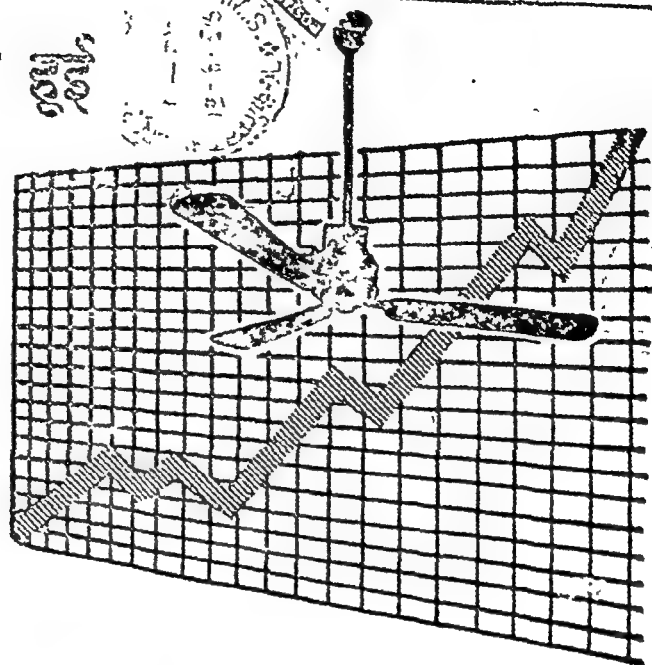
श्री प्रतापसिंह वेद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित

वर्ष १ अङ्क १८

एक भारी उत्तरदायित्व

भारतीय संस्कृति में अध्यात्म का सदा से महत्व रहा है। जहां संसार के अन्यान्य देशों के लोग भौतिक विकास को ही जीवन का चरम लक्ष्य समझ गले तक उसमें डूब गये, जिसका दुष्परिणाम आपसी संघर्षों और युद्धों के रूप में सबके समक्ष है, वहां भारतीय संस्कृति में आत्म-विकास-अन्तरतम के परिमार्जन एवं अन्तरवृत्तियों के परिशोधन पर जोर दिया जाता रहा। ऐसा करने की उसमें अभिरुचि हुई तो आये दिन के लड़ाई झगड़े तोड़-फोड़, रक्तपात, जीवन-यापन में विषमता, ये सब स्वतः दूर हो जायेंगे। पर आज लोग इसे भूलते जा रहे हैं। विद्यार्थी व अध्यापक अपने समाज और राष्ट्र की बुनियाद है। यदि वे सही अर्थों में उन्नत हुए तो देश और समाज स्वतः उन्नत होगा। इसके लिये अध्यापकों व अभिभावकों पर भी एक भारी उत्तरदायित्व है। बालकों के जीवन में आत्म-विश्वास, सत्य आचरण, समता एवं निःस्वार्थ वृत्ति पैदा हो, इसके लिये वे निरन्तर प्रयत्नशील रहें।

—आचार्य तुलसी

१ जुलाई १९५६

आपके अणुव्रत के विषय में—

कौन क्या कहता है ?

"...'अणुव्रत' के लिये आभारी हूं। हिन्दी में एक ऐसे पत्र की बड़ी आवश्यकता थी जो रूढ़ियों की संकीर्णता में फंसे बगैर नैतिकता का नारा उठा सके। मुझे आशा है कि 'अणुव्रत' द्वारा यह कार्य हो सकेगा। सफलता के लिये इसे अपना हृदय विशाल और दृष्टिकोण व्यापक बनाना पड़ेगा। मैं अणुव्रत की सफलता चाहता हूं।"

—बच्चन, न० दि०

"...यह कहना पिष्ट-पेषण मात्र है कि वर्तमान युग में ऐसे पत्रों की अत्यधिक आवश्यकता है जो जन-जीवन में नैतिक और सांस्कृतिक चेतना विकसित कर सकें। आपके इस प्रयास का न केवल अंतरंग अभिराम है, वरन् वहिरंग भी आकर्षक एवं सुरुचिपूर्ण है। आशा है यह पत्र अनति दूर भविष्य में अपनी संभावनाओं को साकार कर सकेगा।"

—प्रो० आनन्दनारायण शर्मा, बेगुसराय

"...'अणुव्रत' के उद्देश्यों में कुछ अपनी मौलिकता है। 'अणुव्रत' जिस उद्देश्य को लेकर समाज तथा देश की सेवा करना चाहता है, वास्तव में समाज को सुप्तावस्था से जगाने के लिये आज उसी उद्देश्य की आवश्यकता है।"

—आचार्य रामचन्द्रसिंह सगर, न० दि०

"...'अणुव्रत' प्राप्त हुआ। पत्र के लेखादि उच्च कोटि के हैं।"

—सुशीला मरवाह, लश्कर

"...'अणुव्रत' ने मेरे हृदय को जो शान्ति पहुँचाई है उसका मैं आपको धन्यवाद भी देता हूं और आभार भी मानता हूं। संतप्त मानव को शान्ति देनेवाला 'अणुव्रत' देश-विदेश के अणु-अणु में फूटकर सारे विश्व में पर छा जाये, ऐसी हार्दिक इच्छा है।"

—सागरमल वैद्य, भोपाल

'आज जबकि भौतिक विज्ञान की विजय में मदान्ध मानव, मानव के संहार की कुचेष्टाएं करते हुए अट्टहास कर रहा है और भौतिक विज्ञान से सुसज्जित और लौकिक अहंकार पर निर्भर राष्ट्रों के विरुद्ध आध्यात्मिक विभूतियों द्वारा क्रान्ति के चरण बढ़ाने का कार्य आगामी विप्लव का सही स्वरूप है ही।

तब इस दिशा में सन्त तुलसी से प्रेरित जो प्रयास आपका 'अणुव्रत' कर रहा है वह प्रान्जल एवं प्रौढ़ है। इस युग को ऐसे प्रयासों की आवश्यकता है। आपका प्रयास अवश्यमेव सफल होगा।"

—रमेश चतुर्वेदी सम्पा०—नयासन्देश,

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१
卐
वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १ जुलाई, १९५६ [अंक १८

सत्य को व्यवहार में संजोये बिना ऊँचे ऊँचे सिद्धान्तों से क्या बनेगा ?

क्रान्ति का स्वर

कहने को कहा जाता है कि आज मानव ने बड़ा विकास किया है, वह बहुत आगे बढ़ा है पर जरा बारीकी से टटोलिये, क्या वास्तव में ऐसा हुआ है, क्या उसने अपने जीवन में सुख और शान्ति पाई है ? स्पष्ट झलकेगा—ऐसा नहीं हुआ है। उसका जीवन आज बुरी तरह से प्रताड़ित और पीड़ित जैसा है। बहुत कुछ पाने पर भी वह खोया सा है। यही कारण है कि वह आज स्वयं महसूस करने लगा है कि उसे इस तथाकथित उन्नति से मुंह मोड़ना चाहिये। बाहरी जीवन को सजाने में, बढ़ाने में जहां उसने दिन-रात एक कर दिया, वहां आज उसे अपने अन्तर-जीवन को सजाना होगा। इसके लिये उसे करना क्या है, यह मैं बताना चाहूँगा। आप यह मत सोचिये कि मैं आपसे कोई अभूतपूर्व नई बात कहूँगा। मैं तो शाश्वत काल से भारत के ऋषि-महर्षियों द्वारा कहे जा रहे सत्य की बात कहूँगा, जीवन में अभिनव शक्तियों का संचार करने के कारण जो प्राचीन होते हुए भी नवीन हैं। भगवान् महावीर ने बताया—सत्य की खोज करो, उसका विश्लेषण करो, जीवन को तदनुकूल ढांचे में ढालो। दूसरों को कष्ट मत दो, शोषण मत करो। कितना अच्छा हो, इन आदर्शों पर आज का मानव चलने लगे। यदि ऐसा हुआ तो जीवन को जर्जरित बनाने वाली समस्यायें स्वतः निर्मूल हो जायेंगी।

भारत के दार्शनिकों और विचारकों ने अपने मनन अनुशीलन और चिन्तन के फलस्वरूप ज्ञान, भक्ति और कर्म जैसे तत्वों पर अनूठी सूझ दी। भगवान महावीर ने बताया—ज्ञान और कर्म का समन्वय करो, सत्य को जानो, उसे कर्म में अनुप्राणित करो—यह तत्त्व है जिसे अपनाकर व्यक्ति जीवन का सच्चा विकास कर सकता है। कर्म में आने से ही सत्य की सार्थकता है, नहीं तो उन ऊँचे सिद्धान्तों से क्या बनेगा, यदि वे लम्बी-लम्बी बातों तक ही परिसीमित रह जायेंगे। अणुव्रत—आन्दोलन की इसलिये प्रतिष्ठापना की गई कि व्यक्ति सत्य को व्यवहार में संजोये, अहिंसा और संयम के आदर्श जीवन-वृत्तियों पर छायें। अणुव्रत—नियम इन आदर्शों का जीवनोपयोगी संस्करण है।

धर्म साम्प्रदायिक संकीर्णता में नहीं है। वह जातिवाद, वर्गवाद, और वर्णवाद जैसे सकड़े बन्धनों में नहीं बंधा है। पर खेद है कि तथाकथित धार्मिकों ने उसे इन बन्धनों में बांध पंगु बना दिया है। धर्म तो शाश्वत, व्यापक, विशाल और अत्यन्त असंकीर्ण तथ्य है। उसे इन मिथ्या बन्धनों में मत जकड़िये। अहिंसा, अपरिग्रह, सदाचार और संयम जो धर्म का सच्चा अभिप्रेत है, इनसे अपने जीवन को मांजिये। यही सच्ची धर्माराधना है।

शान्ति लाने के नाम पर हिंसा को खुलकर प्रश्रय दिया गया, अनेक विषैले विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्रों की सृष्टि हुई, लोमहर्षक नर संहार हुआ, पर शान्ति नहीं आई, उल्टी अशान्ति बढ़ी, पारस्परिक विद्वेष पनपा, एक दूसरे को निगल जाने की भावना जागी। खेद है, यह सब हुआ शान्ति के नाम पर। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ—जितना सहारा हिंसा को मिला, यदि अहिंसा को मिल जाता तो क्या से क्या हो जाता। आज भी मेरा कहना है कि अहिंसा को जितना अधिक प्रश्रय मिलेगा संसार उतना ही अधिक उलझनों से छुटकारा पायेगा। अणुव्रत—आन्दोलन का यह घोष है कि व्यक्ति-व्यक्तिके जीवन में अधिकाधिक अहिंसा की प्रतिष्ठा हो, आपसी मैत्री और बन्धु-भाव जागे, द्रोह और वैमनस्य दूर हो।

—आचार्य तुलसी

हम किधर जा रहे हैं ?

मैत्री, त्याग, संयम व आध्यात्मिक संदेश के लिये सदैव से विश्वकी आँखें भारत की ओर लगी रहीं हैं और समय-समय पर भारत व यहाँकी सुसंस्कृत जनता ने इस दृष्टिसे अपना कर्त्तव्य निभाया भी है। किन्तु काजीपेठ, खड़गपुर, कालका, बम्बई, पंजाब व अन्य स्थानों पर हमने जिस उदण्डता, अनुशासनहीनता, हिंसा-प्रियता, हुल्लड़बाजी और गैरजिम्मेदारी का परिचय दिया है या देते रहते हैं उनको देखते हुए भारत का वह गौरव केवल इतिहास का विषय ही नहीं वल्कि एक स्वप्न-सा दीख पड़ता है।

यात्री-बसों को फूंक देना, सड़कों पर ईंट-पत्थर के ढेर लगाकर रास्ता बन्द करना, आवेश और उत्तेजना में माँ-बहनों का सरे-आम अपमान करना, ड्राइवर को इंजन से खींचकर हजारों व्यक्तियों के जीवन व गाड़ीसे खिलवाड़ करना व अनेकानेक ऐसे ही दुस्साहस-पूर्ण कार्य जहाँ हमारी कुत्सित मनोवृत्तियों का परिचय देते हैं वहाँ प्रत्येक विचारवान् व्यक्तिको यह सोचने के लिये भी विवश कर देते हैं कि आखिर हम किधर जा रहे हैं, हमारी दिशा किधर है, हमने अपना लक्ष्य क्या बना लिया है ?

यद्यपि अधिकार या माँगका नारा स्वतः स्वार्थ व व्यक्तिगत लालसा का परिचायक है। तोभी किसी समय हमारी मांग और अधिकार उचित व वाजिब भी हो सकते हैं। उनके लिये संघर्ष करना पड़ता है, जनमत भी तैयार करना होता है। परन्तु इसके लिये हिंसात्मक साधनों का सहारा लेकर जन-जीवन को दूभर बना देनेसे क्या कभी हमारी उचित माँग व अधिकार को भी जनता-जनार्दन का हार्दिक सहयोग व सहानुभूति का बल प्राप्त हो सकता है ? कभी नहीं।

अपनी बातको मनवाने के लिये उसके पीछेकी नैतिक पृष्ठभूमि मजबूत होनी आवश्यक है। सत्य और न्याय का नारा लगाकर अपना क्रूर और हिंसक रूप प्रस्तुत करने मात्रसे हमारी उद्देश्य-सिद्धि नहीं होनेवाली। क्योंकि यह बात तो बिल्कुल वैसी ही हो जाती है जैसे हम किसीकी गाली देनेकी आदत छुड़वाने के लिये स्वयं ही उसे डांटते हुए गालियाँ सुनाने लगे। अतः दूसरे को सत्य और न्यायके रास्ते पर लाने के लिये सबसे पहले यह जरूरी है कि हम खुद उस रास्ते पर चलें, हम स्वयं उन सिद्धान्तों व आदर्शों का

पालन करें। पर यह सब कुछ होते हुए भी, सब कुछ जानते हुए भी हमारे कदम विपरीत दिशाकी ओर बढ़ रहे हैं। हमारा हृदय और मस्तिष्क शायद तोड़-फोड़ व ऐसे ही अन्य कार्योंके पक्षमें न हो पर हाथ ऐसा करते हैं, करते रहते हैं यह कटु सत्य है। तो फिर इसका कारण क्या है, यह जानना भी आवश्यक है।

एक ओर हम जनहित की दुहाई देते हैं और दूसरी ओर जनता के ही जीवन से खिलवाड़ करते हैं, उसकी सम्पत्ति को नष्ट-भ्रष्ट करते हैं। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि आन्दोलन आदि करने के पीछे हमारा लक्ष्य जन-हित नहीं अपितु स्वार्थ सिद्धि है। और इस स्वार्थ सिद्धिके पीछे काम करती है पार्टीबन्दी की घातक दुर्भावना। दलगत स्वार्थ के लिये आज हम क्या नहीं कर गुजरते ? यह एक कारण है जो आये दिन विध्वंसकारी कारनामों को प्रेरित करता रहता है।

राष्ट्रीय चेतना का अभाव एक दूसरा कारण है। पार्टी-पार्टी की लड़ाई, भाषा-भाषा का विवाद, विभिन्न प्रान्तोंकी सीमाओं के लिये आपाधापी और पद लोलुपता—झूठी प्रतिष्ठा आदि इसी भावना के अभाव में उत्पन्न कुछ गम्भीर विषय हैं जिनसे राष्ट्रकी आत्मा आज दुःखी हो रही है! चीत्कार कर कर-रही है!! कराह रही है!!! पार्टियाँ और दल, भाषा और प्रान्त राष्ट्रसे अधिक महत्त्व पा रहे हैं। आज देशके लिये प्रान्त, भाषा व दल नहीं अपितु दल, प्रान्त और भाषाके लिये देश हो गया है। कैसी विचित्र अवस्था है ? वस्तुतः ये ओछी मनोवृत्तियाँ व तुच्छ स्वार्थ ही आज व्यर्थ के संघर्ष को जन्म दे रहे हैं।

साथ ही साथ हमें अपने संगठनों पर बेकार का गरूर भी हो गया है। यह बात ठीक है कि संगठन में शक्ति है। परन्तु यदि इस संगठित शक्तिकी दिशा विपरीत हो, रास्ता गलत हो तो अर्थ का अनर्थ भी कर सकती हैं। आज हमें यही दीखता है। जहाँ इन शक्तियों का उपयोग राष्ट्रकी निर्माणकारी और सृजनात्मक गतिविधियों में होना चाहिये था वहाँ आज ये विध्वंस और स्वार्थ-सिद्धिमें लगकर अपनी मौतकी घड़ियाँ गिन रही हैं।

हुल्लड़बाजी और हिंसाकी जो अनापेक्षित अप्रिय घटनाएँ कभी-कभी घटती हैं उनमें सरकारी अधिकारियों की अदूरदर्शिता का भी कोई कम महत्त्व नहीं है। उन्हें जनमत व परिस्थिति का रुख समझना चाहिये। दमन की नीति आजके बदलते हुए युगमें कहाँतक उपयुक्त होगी यह सोचने का विषय है। पहले एक आवाज को रोकना और फिर उसीका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें समर्थन करना अदूरदर्शिता का ही चिह्न है। अच्छा हो स्थिति बिगड़ने से पहले ही हम उसका कोई जनोपयोगी हल ढूंढ़ निकालें।

अतः हमें उपरोक्त कारणों को ध्यानमें रखकर अपना आत्म निरीक्षण करते हुए यह देखना है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न करने में हमारा किस रूपमें कितना हाथ रहता है और फिर इसके निराकरण के लिये हमारा क्या कर्तव्य हो जाता है। तभी हम एक सफल नागरिक, आत्म-शुद्धि के पथिक और देशभक्त का अपना महान उत्तरदायित्व पूरा कर सकेंगे।

टिप्पणियाँ

● एक प्रश्न !

चुनाव की हाट का जैसे-जैसे समय निकट आ रहा है, प्रत्याशी अपनी सेवा और त्याग का बिल्ला लगाकर ग्राहकों (मतदाताओं) को पटाने की तैयारी में निकल पड़े हैं। चारों ओर ही इस प्रकार के प्रयत्न शुरू हो गये हैं। पिछले दिनों का एक समाचार है कि उत्तरप्रदेश के एक उपमंत्री ने अपने चुनाव क्षेत्र में जन-संपर्क के लिये पद-यात्रा शुरू कर दी। जनता-जनार्दन के कष्टों और कठिनाइयों को सुनने और उससे सम्पर्क स्थापित करने का यह शुभ प्रयास है। और ऐसे सद्कार्यों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है, हमें करनी ही चाहिये।

किन्तु एक प्रश्न स्वाभाविक रूपसे मस्तिष्क में आता है कि हमारे इन मंत्रियों ने चुनाव जीतने व मंत्री बनने के उपरान्त अपने-अपने क्षेत्रों में कितनी बार पदयात्रा की, कितनी बार जाकर जनता के दुःख-दर्दों को सुना? तो उत्तर शायद ना में ही मिलेगा। पद की लालसा को त्यागकर यदि ऐसे जन-सम्पर्क के कार्य किये जाँय तो निश्चय ही हितकर हैं, अन्यथा चुनाव के कुछ दिन पहले सम्पर्क व सेवा का स्वांग रचकर जनता को मूर्ख बनाना मात्र है। हमें इस प्रकार की मनोवृत्तियों से सावधान व सतर्क रहना आवश्यक है।

● हमारा कर्तव्य ?

वासना के वशीभूत होकर हम कई काम कर तो गुजरते हैं परन्तु आगे चलकर उन्हींका क्या दुष्परिणाम होता है, यह यद्यपि लगभग सभी लोग जानते हैं तथापि जबलपुर के एक व्यक्ति की घटना उसी को पुनः ताजा कर देती है।

बताया जाता है कि यहाँ के एक व्यक्ति के दो पत्नियाँ थीं, जिनमें कि सौतिया डाह के कारण कभी न बनती थी। इस गृह-कलह के लिये पुत्र ने पिता को ही दोषी पाया और एक दिन उसने पिता की नाक काट डाली।

बहुविवाह व दो पत्नियाँ रखकर गृह-कलह का भयंकर दृश्य उत्पन्न करने से अच्छा है हम अपना जीवन संयममय करें और घर में स्वस्थ वातावरण उत्पन्न कर अपने बालकों को सुसंस्कारी और चरित्रवान् बनायें।

● आत्म-हत्या और हम

आत्म-हत्या वैधानिक रूप से तो अपराध है ही व्यक्तिगत् रूप से आत्म-हत्या करनेवाले की आत्मिक कमजोरी और कायरता भी है। परन्तु आये-दिन इस प्रकार की घटनाओं के समाचार मिलते रहते हैं। हाल ही का समाचार था कि मध्यभारत खाद्य एवं रसद विभाग के एक छटनी-ग्रस्त चपरासी ने काम न मिलने पर आत्म-हत्या कर ली।

उपरोक्त उदाहरण जहाँ उस व्यक्ति की अपनी कमजोरी व कायरता का परिचय देता है वहाँ इससे हमारी हृदय-हीनता का भी कम परिचय नहीं मिलता। जीवित रहने के लिये कोई न कोई जीविकोपार्जन का साधन आवश्यक है, हम सभी का यह परम कर्तव्य है कि ऐसी व्यवस्था के निर्माण में सहयोग प्रदान करें जिसमें ऐसा अपराध करने की नौबत ही न आये। और जब तक ऐसी परिस्थिति पैदा नहीं होती तब तक कम से कम हम स्वयं तो किसी की रोजी छीनने का दुष्कर्म न करें और यदि किसी दूसरे के द्वारा ऐसा होता है तो ऐसे परेशान बन्धु की यथासंभव सहायता करें।

जीओ और जी लेने दो !

[*सुश्री भगवतीदेवी शर्मा 'विह्वल'*]

जग है अनन्त ऋतुराज, सुमन को हँस लेने दो।
क्यों उजड़े जाते स्वयं, बसो औ बस लेने दो॥
शोषण की उठती लहर, कँपाया अखिल विश्व को,
नित नूतन आविष्कार भयावह करें विश्व को,
तुम भी लो सुख का श्वाँस दूसरों को लेने दो॥१॥
जो है अशान्ति का बीज मिटा दो अखिल धरा से,
और शान्ति का पाठ सीख लो वसुन्धरा से,
सीओ शुभ कर्मोंका वितान औ सी लेने दो॥२॥
खाली हैं सुख के मेघ नहीं वे बरस रहे हैं,
युग युग के तृषित प्राण, बिन्दु को तरस रहे हैं,
अब अमृत-रस की धार, पिओ औ पी लेने दो॥३॥
है व्यक्ति व्यक्ति का शत्रु, लगे दानवता प्यारी,
सब पढ़ो 'अहिंसा' पाठ और मानवता सारी,
अब करो विश्व से प्यार जीओ औ जी लेने दो॥४॥

अशान्ति और असन्तोष का जनक-अमर्यादित भौतिकवाद

[श्री विल्फ्रेड वेलॉक]

पश्चिमी समाजवाद का इतिहास पूर्व को यह चेतावनी देता है कि जब तक आध्यात्मिक मूल्य पूरे तौर से मस्तिष्क में नहीं रखे जाते, तब तक उत्तम आध्यात्मिक विचार भी बिगड़ कर भौतिक विचार और आन्दोलन में परिवर्तित हो सकते हैं।

भारत, जो कि औद्योगिक क्रांति के द्वार पर है, अच्छा हो, यदि वह औद्योगिक क्रांति की प्रवृत्तियाँ और उसके परिणाम पर विचार कर ले। यह औद्योगिक क्रांति पश्चिम में लगभग दो शताब्दी से अपना कार्य कर रही है। पश्चिम में जो औद्योगिक क्रांति हुई, उसका प्रारम्भिक उद्देश्य यह था कि उत्पादन में वृद्धि की जाय और उसे सस्ता बनाया जाय, ताकि उपभोग में और मुनाफे में भी वृद्धि हो सके। शुरू से ही जैसे औद्योगिक विशेषीकरण में प्रगति हुई, वैसे ही मजदूरों ने जिम्मेदारी और सृजनात्मक दृष्टि से काम करने के अधिकार के तथा बेगार के खिलाफ विद्रोह किया। उस विद्रोह में से मजदूर-संघवाद, सहकारी आन्दोलन, समाजवाद और अन्त में साम्यवाद का जन्म हुआ। ब्रिटेन में समाजवादी नेता वर्गशासित समाज के, जिसका कि सामाजिक मतभेदों का ढाँचा नैतिक स्तर पर नहीं; बल्कि व्यक्ति-विशेष की संपत्ति के आधार पर था, विरोध में 'स्वतंत्र और समान' समाज के विचार की भावना से प्रेरित हुए थे।

मजदूरी करनेवाले, कारीगरों और मजदूरों का सामाजिक स्तर मालिकों और संपत्तिवानों की अपेक्षा नीचे दर्जे का माना जाता था और इस स्थिति के विरोध में 'समाजवाद' आ खड़ा हुआ! कवि-कलाकार समाजवादी नेता विलियम मॉरिस ने इस सामाजिक स्थिति के खिलाफ बगावत का झंडा खड़ा किया और जोरदार शब्दों में यह माँग कि हरएक मजदूर को जिम्मेदार और सृजनशील नागरिक का पद मिलना चाहिए और जिस उद्योग में वह काम करता है, उसके उद्देश्यों में और उसके नियंत्रण में उसकी अपनी आवाज होनी चाहिए।

किन्तु पैसा पैदा करने की नयी लहर इतने जोर से चली कि उसने क्रमानुसार ऐसे भौतिकवाद को जन्म दिया कि उसने सभी शक्तियाँ और आन्दोलनों को अपने में लपेट लिया। उसने समाजवादी आन्दोलन को भी, जिसका कि जन्म ही भौतिक अन्यायों और नैतिक अन्यायों के खिलाफ हुआ था, अपने में लपेट लिया।

फलतः पश्चिम में आज प्रायः एक सिरे से दूसरे सिरे तक मुख्यतः भौतिकवादी जीवनधारा प्रचलित है। हालत यहाँ तक पहुँच गयी है कि गिरजाघरों में अधिकतर नया भौतिकवाद 'उच्च उपभोगमय जीवन' के रूप में स्वीकार कर लिया गया है, जो कि अतिशयोक्तिपूर्ण रूप छोड़कर ईसाइयत से असंगत नहीं है। एक अमेरिकन ने हाल ही में कहा है कि अमेरिकनों का 'जीवन-क्रम' ईसाइयत के अनुरूप ही है, ऐसा बहुत से अमेरिकन मानते हैं।

इस प्रकार ब्रिटेन में और साधारणतः पश्चिम में आज अधिक व्यय-शक्ति के लिए जोरदार आन्दोलन चल रहा है और धनी से लेकर गरीब तक सारा समाज उसे अपनाये हुए है। समाज के किसी भी अंग की आय चाहे जितनी ज्यादा हो, उससे उसका 'पूरा नहीं पड़ता' और आय बढ़ाने के लिए वह लगातार मांग करता रहता है; यहाँ तक कि जो लोग सबसे धनी हैं, उन्हें भी आय बढ़ाने की माँग करते हुए कोई लज्जा नहीं आती। आज हर पेशेवाला खुले तौर पर अधिक से अधिक तनख्वाह की माँग करता है। ऐसी मांग कुछ वर्ष पहले बहुत ही असभ्यतापूर्ण मानी जाती थी। पैसा खर्च करना आज एक उन्माद-सा हो गया है, जबकि आवश्यकताएँ आय की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्रता से बढ़ती जा रही हैं। इसलिए समाज में उसके सिर से लेकर पैर तक स्थायी अशांति है। पृथ्वी-तल पर सभ्यता के उषःकाल से लेकर आज तक कभी भी ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं हुई थी। यह स्थिति हमें कहां ले जा रही है, यह कोई नहीं जानता। खर्च करने का उन्माद आज यहां तक बढ़ गया है कि पहले की अपेक्षा ब्रिटेन में और अमेरिका में भी बहुत वस्तुएँ उधार खरीदी जा रही हैं और उसे 'भाड़े पर खरीद' का व्यापार कहा जाता है। इसका क्षेत्र इतना व्यापक हो गया कि अमेरिका में पांच में से एक परिवार बुरी तरह ऋणग्रस्त है और यह हालत उस देश की है, जो कि संसार का सबसे धनी और सबसे अधिक आयवाला माना जाता है। इधर ब्रिटेन में उत्पादन की अपेक्षा उपभोग बढ़ गया है, जिसके कारण सरकार को खर्च करने पर और उपभोग पर रोक लगानी पड़ी।

इस प्रकार भौतिकवाद अमर्यादित रूप में आगे बढ़ रहा है। क्या इसके कारण लोग पहले से अधिक प्रसन्न हैं? नहीं, कतई नहीं। वे अशांत हैं और संपन्नता के बीच ऋण के कारण परेशान हैं, जबकि सृजनात्मक, सामाजिक और प्रेमपूर्ण सौहार्दपूर्ण जीवन जिसमें शांति और संतोष है, उनके पास नहीं फटकता है।

—भूदान यज्ञ से साभार

एक मनोवैज्ञानिक लेख—

मानसिक आरोग्य में शम का स्थान

[प्रो० श्री लालजीराम शुक्ल एम० ए०]

[एक म्यान में कभी दो तलवारें नहीं रह सकतीं। इसी प्रकार यदि हम मन रूपी म्यान में सद्‌विचारों का विकास करना चाहते हैं तो कुविचारों को त्यागना होगा, भोगेच्छाओं को दूर करना होगा। परन्तु किन उपायों से? शम या दम? इसकी सरल व मनोवैज्ञानिक व्याख्या शुक्लजी की अपनी भाषामें पढ़िये। —सम्पादक]

मानसिक स्वास्थ्य आत्म-नियंत्रण से प्राप्त होता है। वह एक प्रकार की स्वराज्यावस्था है। मन की अस्वस्थ अवस्था में मनुष्य अपने आप में ही बँटा रहता है अर्थात् उसके मन की सभी वासनायें एकमुखी नहीं रहतीं। विवेक के जागृत होने पर ही वासनाओं में एकमुखता आती है। विवेक उच्छृङ्खल इच्छाओं का नियंत्रण करता है। जबतक मनुष्य में क्षणिक सुख की इच्छाओं को नियंत्रण करने की शक्ति नहीं होती, तबतक उसमें विचारों की परिपक्वता नहीं आती। क्षणिक सुख की इच्छाओं का नियंत्रण 'शम' कहलाता है। इसी प्रकार, किसी भी तरह के प्रवल संवेग का नियंत्रण शम के द्वारा होता है। जब मनुष्य के मन में कोई आवेशपूर्ण विचार आता है और जब वह उस विचार को प्रकाशित होने देता है तो उसकी मानसिक शक्ति का ह्रास हो जाता है। प्रत्येक आवेशपूर्ण विचार का प्रकाशन मानसिक शक्ति का ह्रास है। मानसिक शक्ति के ह्रास होने पर मनुष्य किसी भी कार्य को कुशलतापूर्वक नहीं कर पाता। उसकी चिन्तन-शक्ति जाती रहती है। आवेशपूर्ण विचारों को रोकने से अपने आप ही सुन्दर विचार मनमें आने लगते हैं। एकबार इस तरह के विचारों को रोकने पर फिर दूसरी बार उसी तरह के विचारों को रोकना सरल हो जाता है। वैसे विचार फिर मन में नहीं आते।

शम के अभ्यास के दो लाभ हैं। एक तो जिन इच्छाओं को हम बार-बार रोकते हैं वे फिर मन में उठती ही नहीं, दूसरे उनकी शक्ति शुभचिन्तन में लग जाती है। इस तरह मनमें अच्छे विचारों की सबलता हो जाती है शम एक ओर मनुष्य को पाशविकता से रोकता है और दूसरी ओर दैविक गुणों को बढ़ाता है। आध्यात्मिक चिन्तन के लिये भारी शक्ति की आवश्यकता होती है। "नऽयात्मा बलहीनेन लभ्य"—यह आत्मा बलहीन मनुष्य को नहीं प्राप्त हो सकती। यह बल विचार-बल है। विचार-बल की प्राप्ति के लिये मनुष्य को चारों ओर बिखरनेवाली शक्तियों को संचित करना होगा, हमारे आवेशपूर्ण विचार मानसिक शक्ति को बिखेर देते हैं। अतएव इन विचारों को रोकना भले विचारों को आने देने के लिये आवश्यक है। मानसिक स्वास्थ्य आत्म-ज्ञान से प्राप्त होता है। जबतक मनुष्य के मन में आध्यात्मिक विचार चलते हैं तबतक मन में शाँति रहती है। जब मनुष्य विषय-चिन्तन में इतना अधिक लग जाता है कि अपने आपकी सुध ही नहीं रहती तो मानसिक-अस्वस्थता की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

इच्छाओं का विवेक के द्वारा रोका जाना और उनका बरबस रोका जाना—दोनों भिन्न परिणाम उत्पन्न करते हैं। बरबस रोकी गई इच्छायें मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास होनेमें बाधक होती हैं। विवेक से रोकी गई इच्छायें उसके व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती हैं। इच्छाओं का दमन विचार-शक्ति को नहीं बढ़ाता; वह विचार-शक्तिके विकास में बाधक होता है। शम विचार-शक्ति को बढ़ाता है और परम-पुरुषार्थ का साधक सिद्ध होता है। समझ के साथ इच्छाओं को रोकना शम है, समझ के बिना इच्छाओं को रोकना दम है। एकका परिणाम भला है और दूसरे का परिणाम बुरा। एकसे मनुष्य की प्रतिभा बढ़ती है और दूसरे से उसका विकास मरता है, प्रतिभा नष्ट होती है। जिस प्रकार शमसे शाँति मिलती है उसी प्रकार दमसे क्लान्ति प्राप्त होती है।

इच्छाओं का दमन दूसरे लोगों द्वारा अथवा अपने आप किया जा सकता है। बालकों की इच्छाओं का दमन प्रौढ़ लोग करते हैं। समाज के शक्तिशाली धनी लोग गरीबों की इच्छाओं का बरबस दमन करते हैं। इस तरह के दमन की न्याय-युक्तता को सिद्ध करने के लिये यह कहा जाता है कि बालकों को इस प्रकार शिष्ट बनाया जाता है तथा गरीबों को धर्म-पथ पर अग्रसर किया जाता है। वास्तव में बरबस शिष्ट बनाया हुआ बालक शिष्ट नहीं होता। या तो वह उत्पाती होता है अथवा निर्जीव। इस तरह जिन गरीब लोगों की इच्छाओं का बरबस दमन किया

जाता है उनमें नैतिकता का उदय न होकर अपराध करनेकी बुद्धि बढ़ती है। आधुनिक मनोविज्ञान प्रमाणित कर रहा है कि मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक सभी प्रकारकी अशांति का कारण इसी प्रकार का दमन है। बालकों का उपकार वही दंड करता है जिसकी न्याय-युक्तता बालक समझता हो। जिस दंडकी न्याय-युक्तता बालक नहीं समझता उससे उसके मनमें क्रोध अथवा भय उत्पन्न होता है। ये दोनों ही बातें चरित्र के विकास में बाधक होती हैं। इसी तरह जो प्रौढ़ व्यक्ति भयवश चोरी नहीं करता उसे धार्मिक अथवा चरित्रवान् नहीं कहा जा सकता। जिस राष्ट्रमें ऐसे ही लोगोंकी अधिकता होती है, वह निर्बल रहता है। इस प्रकार बरबस भोग-वासनाओं से रोके गये लोग समाज का नियन्त्रण तोड़ने के लिये अवसर ढूंढ़ा करते हैं। अवसर के मिलने पर वे समाज के सभी नैतिक प्रतिबन्धों को तोड़कर मनमानी अपनी इच्छाओं को तृप्त करने में लग जाते हैं। ये प्रतिबन्ध पहले-पहल चोरीसे तोड़े जाते हैं, पीछे प्रत्यक्ष रूपसे तोड़े जाते हैं।

जिस प्रकार दूसरे लोग हमारी भोगेच्छाओं का दमन करते हैं, उसी तरह हम भी अपनी भोगेच्छाओं को बिना समझे-बूझे दमन करते हैं। सामाजिक रूढ़ियाँ हमारे मनके अङ्ग बन जाती हैं। जब हम इन रूढ़ियों के कारण भोगेच्छाओं का दमन करते हैं और इस प्रकार के दमन की उपयोगिता नहीं जानते तो यह दमन हमारे मनमें अस्वस्थता उत्पन्न कर देता है। दमन की गई इच्छाएँ अनेक प्रकार की मानसिक ग्रन्थियों के रूपमें परिणत हो जाती हैं। कई प्रकार की विक्षिप्तता इन्हीं मानसिक ग्रन्थियों का परिणाम होती है। जिस तरह से किसी अनुचित कामको करने से बालक को बरबस रोकने से उसकी काम करने की प्रवृत्ति नष्ट नहीं होती वरन् और प्रबल हो जाती है इसी तरह मनको भोगोंसे बरबस अलग करने से उसकी भोगेच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं वरन् वे नये प्रकार के विकार उत्पन्न कर देती हैं। समझ के साथ इच्छाओं का नियंत्रण आत्मज्ञान को बढ़ाता है और मनुष्य के व्यक्तित्व को विकसित करता है। यही शम है।

आधुनिक मनोविज्ञान ने दमन के कुपरिणाम को बताया है। इस शिक्षा के फलस्वरूप स्वेच्छापूर्वक सभी भोगेच्छाओं को तृप्त करना ही जीवन का लक्ष्य मान लिया गया है। जब तक हमारी भोगेच्छा दूसरे की भोगेच्छामें बाधक नहीं होती उसे तृप्त करना उचित ही नहीं प्रत्युत परम कर्त्तव्य हो जाता है। सभी व्यक्तियों को इस प्रकार अपनी भोगेच्छाओं को तृप्त करने का समानाधिकार है। नवीन प्रगतिशील कवि, दार्शनिक, तथा समाज के नेता इसी आदर्श का प्रचार कर रहे हैं। भोगेच्छाओं

अनुसरण नियन्त्रण विस्मरण

[श्री जयकुमार 'जलज']

सरल बहुत अधिकार समर्पण ही मुश्किल है
राह दिखाने में बुझते दीपक साहस के
जब चलते तूफान मेघ घिरते पावस के
यह सच है, पर, इच्छाओं का दमन कठिनतर
सरल बहुत नेतृत्व
अनुसरण ही मुश्किल है।
सरल बहुत अधिकार
समर्पण ही मुश्किल है॥

धन्य विहग वह जिसके नभ में बने घोंसले
मन चाहा जो पाए उसके धन्य हौंसले
यह सब सच है लेकिन फिर भी अपने मन का
सरल बहुत स्वातन्त्र्य
नियन्त्रण ही मुश्किल है।
सरल बहुत अधिकार
समर्पण ही मुश्किल है॥

याद न तुमको करूँ थमे आँखों का पानी
पुनः लौट आए मुझ तक रसभरी जवानी
सच है, पर निज शक्ति कहूं या दुर्बलता लो
सरल तुम्हारी याद
विस्मरण ही मुश्किल है।
सरल बहुत अधिकार
समर्पण ही मुश्किल है॥

से मनुष्य को विरत करना अस्वाभाविक है। इस प्रकार के विचारों का प्रचार होना भी बुरा समझा जाता है। जिस मनुष्य में भोगोंके प्रति उदासीनता है वह समाज की सेवाके प्रति भी उदासीन हो जावेगा, ऐसे व्यक्ति का जीवन समाज के लिए घातक है। आधुनिक समाजवाद इन्हीं विचारों का प्रचार कर रहा है।

इस प्रकार के विचार दमन की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न होते हैं। भोगेच्छाओं के अत्यधिक दमन का यही परिणाम है। मजहबों के द्वारा इस प्रकार का दमन किया जाता था। अतएव अब मजहब मटियामेट हो रहे हैं। यदि इच्छाओं का दमन कर उन्हें उचित रूपसे तृप्त किया जाता, अशुभेच्छाओंकी जगह शुभेच्छाओं को दृढ़ किया जाता तो संसार की वर्त्तमान परिस्थिति उत्पन्न ही नहीं होती। इच्छाओं के रोके जानेसे जो अच्छे परिणाम होने चाहिए थे वे मनुष्य को इसलिए प्राप्त नहीं हुए कि उसने विवेकपूर्वक अपनी इच्छाओं को नहीं रोका। विवेकपूर्वक इच्छाओं का रोका जाना ही शम है। सामाजिक और वैयक्तिक व्यवस्था इसीका परिणाम है।

आधुनिक प्रगतिशील विचारधारा में जीवन का लक्ष्य क्या होना चाहिए इसका कुछ पता नहीं चलता। प्रगतिशील विचारक मनुष्य के अधिकारों के लिए लड़ना चाहते हैं। ये अधिकार इन्द्रिय सुखके अधिकार हैं। पर क्या इसीकी प्राप्ति जीवन का एकमात्र लक्ष्य है? यदि इन्द्रिय सुख ही मनुष्य जीवन का एकमात्र लक्ष्य है तो फिर पशु-जीवन में अन्तर ही क्या? क्या स्थायी शान्ति इन्द्रिय सुखसे ही प्राप्त होती है? इसपर कोई विचार नहीं किया जाता। प्रत्येक क्रिया कि प्रतिक्रिया होती है, दमन की प्रतिक्रिया है—क्रान्ति। क्रान्तिके बाद ही मनुष्य में शान्तिके विचार अर्थात् विवेक आ सकता है। परन्तु जो व्यक्ति अभी भी सजग है उसे अपने विचार का प्रचार करते ही जाना चाहिए। संसार में किसी समय एक ही प्रकार की विचार-धारा नहीं रहती; अनेक प्रकार की पारस्परिक विचारधारायें चला करती हैं। एक विचारधारा प्रबल होती है तो दूसरी दबी रहती है, प समय आनेपर वह भी प्रबल हो जाती है।

न पाशविक जीवन में और न विचार हीन इच्छाओं के दमन में ही मानसिक-स्वस्थता निहित है। विवेकपूर्वक इच्छाओं का दमन अर्थात् शम ही मानसिक स्वास्थ्य है।

एक गद्यगीत—

एक से दूसरे तट तक

[श्री स्वराज्यकुमार रस्तोगी]

वह देखो!

तटकी लहरें कभी तुम्हारी तरह इतरातीं थी, विहँसती हुई अपने आपमें मस्त थीं। तटका अलौकिक आनन्द लेनेके लिए वे सदा बेचैन रहती थीं। उस पार कल्पना के नेत्रोंसे अपने स्वर्णिम भविष्य के दृश्य देखा करती थीं। वे भूल गयी थी कि सब कुछ मिथ्या है, मृगतृष्णा है। इसमें कोई उनका दोष नहीं था क्योंकि दूरके ढोल सबको सुहावने लगते हैं।

याद करो!

जैसे-जैसे वे किनारे की तरफ बढ़ रही थीं, वैसे-वैसे आशा निराशा के थपेड़े उन्हें जर्जर करनेमें सशक्त होते जाते थे। दूरसे उन्हें ऐसा लग रहा था कि वह उन्हें प्रेमपाश में आवद्ध करने के लिए अपनी बाँह फैलाये उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है। वे समझ रही थीं कि तटकी शरण में उन्हें अमरता मिलेगी। किन्तु हाय! स्वप्न-स्वप्न ही रह गये। उनके शब्द विधाता ने पहले ही छीन लिए जिससे कोई मुंह न खोल सके और पापका भण्डा फूट न सके।

सुनो, समझो और कोशिश करो!!!

नहीं समझे। यह लोमहर्षक चीत्कार कैसी? यह स्वर बलि पर चढ़ने से पहले का क्रन्दन है और हृदय में क्रीड़ा करनेवाली लहरों के लिए प्रकाश स्तम्भ। वे तुम सबको बता रही हैं कि जो यहाँ आता है, सबकी यही दशा होती है। यहाँ त्याग, बलिदान, प्रेमके सिवा कुछ नहीं। यहाँ तुम्हारी जैसी मौज नहीं, स्वतन्त्रता नहीं सुनहले सपने नहीं। यहाँ वास्तविकता है सत्य है।

आगे देखो और लौट आओ,

उन लहरोंका भीषण रौरव यही कह रहा है। अच्छा अब भी अभिमान। रस्सी जल गयी पर ऐंठन न गयी। अभी चाँदकी चाँदनी से खेल रहे हो। एक पवन का झोंका आया, तुम्हारा अस्तित्व मिटा। क्या तुम समझते हो कि इसी तरह खेलते-कूदते तट तक पहुँच जाओगे। हो सकता है तुम्हारा भाग्य अच्छा हो। लेकिन हँसो मत, तुम तो हँसे ही चले जा रहे हो। खूब हँसो। इतना हँसो कि तुम्हारे अट्टहास से तुम्हारे प्रतिद्वन्दी मिट जाये, रास्ता साफ हो जाय। तुम आगे बढ़ सको।

ओह, यह क्या?

इतरानेवाली लहरों का अन्त इतना भयानक! कितना प्रेम था उनमें सब कहाँ चला गया? त्याग-बलिदान वहाँ किस रूपमें आया? मूक क्यों हो? कुछ तो उत्तर दो। क्या सिर्फ इतना ही जानते हो कि तट बाँह फैलाये खड़ा था माँ अपने गोदमें लेनेको उतावली थी। लोल लहर आयी मिल गयी पंचतत्त्वों में मानो पिता ने उसे अपने में मिला दिया हो। एक तटसे आई थी और दूसरेमें समा गयी।

हमारी क्रूरता के ये नग्न रूप !

[अनुशासनहीनता, उदंडता तोड़-फोड़ व अन्य हिंसात्मक प्रवृत्तियों की जननी एक प्रकार से क्रूरता ही है। गरीब-अमीर, मालिक-नौकर व पूंजीपति-मजदूर के बीच होनेवाले संघर्षों की जड़में भी यही काम करती है। फिर इस पिशाचिनी से पिंड छुड़ाने के लिये आत्म-विकास के इच्छुकों व अणुव्रतियों की दृष्टि से मुनिश्री के प्रस्तुत विचार निश्चय ही पठनीय, मननीय व गुणनीय हैं।

—सम्पादक]

क्रूरता हिंसा देवी का एक सुदृढ़ स्तम्भ है। हिंसा की व्यापकता इसीपर टिकी हुई है। क्रूरता का उपादान स्वार्थपरता है जो मनुष्य की नस-नस में भरी है और वह उसका दास है।

स्वामी की क्रूरता नौकर पर रहती है और वह अधिक श्रम लेकर और कम से कम द्रव्य उसे देने की नीति बनाकर ही चलता है। बहुत थोड़े स्वामी ही यह सोचते होंगे कि नौकर के प्रति मेरा न्याय क्या है ? बहुतों के द्वारा तो नौकर की अतिशय गरीबी, उसके भोलेपन व श्रमशीलता से अनुपयुक्त (नाजायज) लाभ उठाया जाता है। मालिकों की क्रूर व स्वार्थपूर्ण वृत्तियों का नौकरों पर यह असर पड़ा कि वे भी अपने मालिक के साथ सौदागरी से पेश आते हैं, अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहकर नहीं। वे भी यही सोचकर चलने लगे कि मुझे जबतक इस नौकरी की आवश्यकता है तबतक मालिक के काम का बराबर ध्यान रखना है और वह भी इतना कि जिससे नौकरी छूटने की नौबत न आये। नौकर सोचता है अधिक श्रम करके मैं क्यों अपना शरीर गालूं ? यही पृष्ठभूमि है जो नौकर और मालिक के बीच अपनत्व का अंकुर नहीं फूटने देती। स्थिति यह हो गई है कि मालिक नौकरों को कोसते हैं कि पुराने-जमाने में नौकर कितने स्वामीभक्त हुआ करते थे, आजकल के नौकर तो अधिकांशतः मक्कार, धोखेबाज, काम से जी चुरानेवाले होते हैं। इधर नौकर कहते हैं—कैसा जमाना आया है ! पुराने-जमाने में मालिक नौकर को अपना पुत्र मानता था। उसके सुख में सुखी व उसके दुःख में दुःखी होता था। आजकल के मालिक मुफ्तखोर व मतलबी हो गये हैं। उनके दिल में नौकर के प्रति न्याय व दया रही ही नहीं। दोष किसका है नौकरों का या मालिकों का ?

एकान्तरूपसे कुछ भी कह देना असंगत होगा। कुछ भी हो समस्या का अन्त इसमें है कि व्यक्ति दूसरे पर दोषारोपण न कर 'आत्मद्रष्टा' बने। साधक व अणुव्रती यह न सोचे कि मेरा नौकर या मेरा मालिक अपना कर्तव्य नहीं निभाता तो मैं भी उसके साथ अनैतिकता बरतता जाऊँ। यह अणुव्रती का मार्ग नहीं है। वह तो कोई भी सुधार अपने से आरम्भ करेगा और स्वयं का परिमार्जन पहले करेगा। इससे अपनी भी शुद्धि होगी और बद्धमूल समस्या के भी पैर उखड़ेंगे।

मजदूर और पूंजीपति

अतिश्रम लेने की मनोवृत्ति से ही आज मजदूर वर्ग में क्रान्ति के आह्वान उठ रहे हैं। "तोड़-फोड़ व मजदूर" शीर्षक में यह विवेचन किया गया है कि वे तोड़फोड़ व रक्तिम क्रांति के रास्ते पर न जायें, पर यह सफल तभी हो सकता है जब पूंजीपति अपनी बद्धमूल शोषण-परक वृत्तियों को छोड़ें और अपने कर्तव्य व न्याय का लंघन न करें। पूंजीपतियों की शिकायत है हमारे औचित्य की मर्यादा क्या ? मजदूर तो आजकल हमें मजदूर बनाकर मालिक होना चाहते हैं। उनकी मांगों का कभी अन्त होना ही नहीं। आये दिन हड़ताल व थोड़ा काम का झंझट उठाकर हमें नुकसान पहुँचाते ही रहते हैं। मजदूरों का कहना है शरीर का खून सुखाकर व पसीना बहाकर माल पैदा हम करते हैं और हमें मिलता कुछ नहीं, जीवनभर काम करते रहकर भी हम अपने जीवनस्तर (standerd of Living) को जरा भी ऊँचा नहीं उठा सकते। हम बच्चों को पढ़ा नहीं सकते, बीमार होने पर किसी पारिवारिक जन की पर्याप्त चिकित्सा नहीं करा सकते जब कि हमारे ही श्रम पर पूंजीपति लाखों-करोड़ों का धन इकट्ठाकर सीमातीत ऐश्वर्य बढ़ाते रहते हैं और धन का उचित-अनुचित भोग करते हैं। यह कैसा वैषम्य है, जो सहा नहीं जा सकता। पूंजीपतियों तथा मजदूरों के संघर्ष में कोई पक्ष पूर्ण न्याय पर है यह नहीं कहा जा सकता। पर इतना तो अबतक स्पष्ट हो चुका है जिस पारिश्रमिक पर मजदूर सैकड़ों, सहस्रों वर्षों से जीवन होम रहे हैं उनके जीवन की इस युगमें कीमत बढ़ गई है। धीरे-धीरे उनके श्रम के मूल्य का एक मानदण्ड दुनिया के एक किनारे से आरम्भ होकर दूसरे किनारे की ओर बढ़ता चला जा रहा है। पूंजीपति अपना वही राग अलापते रहें, यह किसी मूल्य पर भी आज की समाज-व्यवस्था सहन नहीं करती। यह कैसे सम्भव हो सकता है, सारे समाज में आमूल परिवर्तन आनेके समय पूंजीपति वर्ग उस

परिवर्तन से अछूता ही रह जाये जबकि परिवर्तन का मध्य-बिन्दु ही अर्थ-संग्रह है। पूंजीपति उस बातको न भूलें कि आज स्वतन्त्र देश के स्वतन्त्र मजदूरों ने समाज-शास्त्रियों द्वारा अपने आपको मजदूर नहीं अपितु एक हिस्सेदार के रूप में प्रमाणित करा लिया है। उसके साथ सामंजस्य बिठाने के लिये आज उद्योगपतियों को युग के आलोक में आत्म-निरीक्षण करने व बद्धमूल संस्कारों को बुद्धि व न्यायपूर्वक बदलने की आवश्यकता है।

मजदूरों को इस दिशामें यह मानकर नहीं चलना है कि आज हमारा युग है, विश्व हमारे पक्ष की मोड़ पर है, इसलिये हम पूंजीपतियों से प्रतिशोध लें। प्रतिशोध लेने का तात्पर्य प्रतिशोध भोगना है। इस परम्परा का कभी अन्त नहीं होता। प्रतिशोध की भावना में पड़कर मजदूर कुछ पायेंगे नहीं, खोयेंगे ही। समस्या का अन्त वैषम्य व विरोध दोनों के अंत से होगा। वैषम्य मिटाने की धुन में यदि विरोध को जीवित रख दिया तो समझना चाहिये वैषम्य मिटा नहीं, स्थानान्तरित हुआ है। जो पक्ष निर्बल था वह सबल हुआ और जो सबल था वह निर्बल। एक तटस्थ द्रष्टा की दृष्टि में समाज-व्यवस्था का संघर्ष मिटा नहीं उसके मोर्चे (पाले) बदल गये। समय चाहे कुछ अधिक ही लगे पर दोनों वर्गों का संघर्ष अहिंसा, मैत्री व सामंजस्य के धरातल पर समाप्त हो ताकि वह हमेशा के लिये समाप्त हो जाय, यह अणुव्रत जीवन-दर्शन है।

समय की चोरी

मालिक अतिश्रम न ले इसके साथ यह बात भी जुड़ी हुई है कि मजदूर भी श्रम से जी न चुराये। वस्तु की चोरी होती है इस प्रकार समय की भी चोरी होती है। जो समय जितने मूल्य पर बेच दिया उसे फिर पूरा न चुकाना चोरी नहीं तो क्या है? पर यह चोरी मजदूरों में बहुतायत से है। इससे मालिक के मन में खीज उत्पन्न होती है और परिणामस्वरूप गुत्थी उलझती ही जाती है।

अतिश्रम की परिभाषा

जो श्रम लोक-व्यवहार में दयनीय माना जाये व नौकरी छोड़ देने की धमकी देकर व कर्मचारी की इच्छा के प्रतिकूल राजकीय प्रतिबन्ध से अधिक श्रम लिया जाये वह अतिश्रम की मर्यादा में आता है। नौकर व कर्मचारी रुग्ण होने पर भी राजकीय नियम का ध्यान दिलाकर उससे श्रम लेते रहना भी अतिश्रम के अन्तर्गत आ जाता है।

गीत

[श्री महेन्द्र भटनागर]

संघर्षों की ज्वाला में जलो, जलो!
बलिदान त्यागमय जीवन हो,
कारागृह भी शांति-सदन हो,
जन-हित, बीहड़ पथ पर भी
चलो, चलो!
तम से ग्रस्त अवनि ज्योतित हो,
मुरझाया उपवन कुसुमित हो,
मधु-ऋतु के हित युग-हिम में
गलो, गलो!

खाद्यपेय व आजीविका विच्छेद

क्रूरता के नाना भेदों में खाद्यपेय का विच्छेद भी एक है। उसके नाना प्रकार हैं बहुत सारे लोग गाय आदि रखते हैं। जबतक वह दूध देती है, उसकी सार-सम्भाल रखते हैं। दूध नहीं देने की स्थिति में उसे उसके भाग्य के भरोसे छोड़ देते हैं। वह खेतों में, बाजारों में भटकती रहती है। जब पुनः दूध देने की स्थिति में होती है उसे घर ला बांधते हैं। समझने के लिये खाद्य-पेय विच्छेद का सुस्पष्ट उदाहरण है। इससे अणुव्रती उस प्रकार के अन्य प्रसंगों को भी भलीभांति समझ सकता है।

खाद्य पेयके विच्छेद मुख्यतः क्रोध भावना व लोभ भावना से है। गरीबी व अन्य प्रकार की विवशता से यदि अणुव्रती अपने आश्रित प्राणियों के प्रति चाहते हुए भी खाद्य-पेय सम्बन्धी दायित्व नहीं निभा सकता तो वह उक्त नियम की भावना में नहीं आता।

आश्रित अर्थात् अपने ऊपर निर्भर रहनेवाले स्त्री, पुत्र, नौकर, गाय, भैंस, घोड़े आदि जो आश्रित खाद्य-पेय सम्बन्धी सामग्री पाने का अधिकारी है उसे लोभ या क्रोधाधिवश वंचित रखना खाद्य-पेय विच्छेद है। आश्रित प्राणी की अधिकार मर्यादा क्या है उसका मानदण्ड लोक-व्यवहार है या अणुव्रती की स्वयं आत्मा।

आश्रित प्राणियों को खाद्य-पेय आदि देने का दायित्व व्यक्ति का रहता है। अतः यहां आश्रित शब्द का प्रयोग किया गया है। अनाश्रित प्राणी के खाद्य-पेय का विच्छेद करना अर्थात् जो वस्तु जिसके द्वारा जिसको मिल रही है उसे हड़प लेना या उसे नहीं पाने देना तो अणुव्रती के लिये स्वयं वंजित हो ही जाता है।

प्रश्न आता है यदि कोई अन्य पशु अणुव्रती के घास आदि को खाने लगता है और अणुव्रती उसे बलात् परे करता है तो क्या उसका नियम भंग है? नहीं, क्योंकि वह उस पशु के अधिकार की वस्तु नहीं है।

गाय आदि को प्रसवकाल पर जो विशेष धान्य द्रव्य देते हैं और सामान्य अवस्था में वह नहीं देते वह भी नियम निषिद्ध नहीं है क्योंकि यह तो सर्वजन मान्य व्यवहार है।

बछड़े को व्यवहार्य अवधिसे यदि गो-स्तन से दूर किया जाता है तो वह खाद्यपेय विच्छेद नहीं है। इसके विपरीत यदि उसे पूर्णतया वंचित ही रखा जाय या नाममात्र का स्तन पान कराया जाये तो अवश्य व्रत भंग है।

खाद्य-पेय की तरह आजीविका का विच्छेद भी निंद्य व वर्जित है। जितना वेतन जिस नौकर आदि को देना निश्चित किया, उसमें अनुचित ननुनच करके रोकने का प्रयत्न करना व न देना नितांत अनैतिक है। इसके साथ-साथ स्व या पर किसी व्यक्ति की आजीविका पर प्रहार करना अर्थात् उसे लगी नौकरी से हटवा देना या नौकरी न लगने देना तो अणुव्रती के लिये त्याज्य है ही।

पशुओं पर अतिभार

पहले भी बताया गया है मनुष्य पशुओं के प्रति न्याय नहीं वर्तता। वह अपने स्वार्थ के सामने पशुओं के प्राणों का जरा भी मूल्य नहीं मानता। पशुओं के साथ वह अनगिन क्रूर व्यवहार करता रहता है। इस विषय में बहुत सारी संस्थायें भी जनता का इस ओर ध्यान खींच रही हैं। पशु क्रूरता-निषेधक प्रस्ताव भी संसद व विधानसभाओं में आने लगे हैं। अणुव्रत-आन्दोलन विभिन्न नियमों से क्रूरता निषेधक भावनाओं को आगे बढ़ाता है। क्रूरताओं के कुछ व्यवहार क्रूर कहलानेवाले आदमियों द्वारा ही हुआ करते हैं पर अतिभार सम्बन्धी क्रूरता तो क्रूर व अक्रूर, सभ्य व असभ्य सभी लोगों में दिखलाई देती है। व्यापारी लोग सोचते हैं बैलगाड़ी में भार लादना है दो गाड़ी के पैसे कौन काटेगा, थोड़े पैसे गाड़ीवान् को अधिक देकर एक गाड़ी में ही काम निकाल लें।

किसान सोचता है अनाज, घास आदि खेत से घर ले जाना है। बारबार आने-जाने की खटपट अच्छी नहीं। दो बार का काम एकबार में ही होता रहे तो अच्छा। इस प्रकार अनेक प्रसंग होते हैं जहाँ अतिभार रूप क्रूरता का पाप मनुष्य सीधे-सीधे कर लेता है। अणुव्रती को उस विषय में अपनी मर्यादायें स्थापित करनी होंगी। पहली मर्यादा उसकी आत्मा है। वह ऐसे प्रसंगों पर उसीसे उत्तर ले कि यह अतिभार तो नहीं है?

अन्य मर्यादाओं का मानदंड, लोक व्यवहार व राजकीय नियम हैं। वह उनका उलंघन न करे। जहाँ जितनी सवारी तांगे आदिमें बैठने का नियम हो और जहाँ बैलगाड़ी आदि पर जितने मन भार डालने का नियम हो उससे अधिक सवारी न बैठे, बिठाये और न भार डाले।

जहाँ जितने मन भार डालने का कानून है वहां दो चार सेर वजन यदि अधिक हो जाता है जो कि कानून दृष्टिसे भी नगण्य है तो वह त्यागमें बाधक नहीं माना गया है। तांगे आदिमें जहां तीन या चार व्यक्तियों के एक साथ बैठने का नियम हो अणुव्रती यथाक्रम चौथा या पांचवा होकर नहीं बैठे। न वह चार या पांच आदमियों के साथ ही बैठ सकता है। यदि अणुव्रती नियमानुसार बैठ चुका है और तांगेवाला अपने स्वार्थसे फिर तीसरे या चौथे को बिठाता है तो वहां अणुव्रती दोषी नहीं है।

जो भार अणुव्रती ने ठेके पर दे दिया है गाड़ीवान अणुव्रती के निषेध करते हुए अपने स्वार्थ के लिये उसे जैसे-तैसे ले जाता है उसमें भी अणुव्रती दोषी नहीं है। जहां ऐसी स्थिति हो अन्य साधन नहीं है और किसी कारण से सवारी पर चढ़ना अनिवार्य है वहां नियम लागू नहीं है।

ऊपर बताई गई क्रूरताओं के अतिरिक्त जीवन व्यवहारमें और भी विविध स्फुट क्रूरतायें रहती हैं। बहुत सारे व्यक्ति गाय, भैंस आदि पशुओं को इतनी निर्दयता से पीटते हैं कि दर्शक के रोम खड़े हो जाते हैं। बहुत से मां-बाप छोटे बालक-बालिकाओं को ऐसा पीटते हैं, मानों उन्होंने उनके घरमें जन्म लेकर भारी अपराध कर लिया है। ऊँट, बैल आदि पशुओं पर लोग सुन्दरता के लिये त्रिशूल चक्र आदि भी अत्यन्त कष्टदायक तरीकों से बनाते हैं। अणुव्रती को उक्त प्रकार की व तथा प्रकार की अन्य क्रूरताओं से बचना है।

—क्रमशः

राष्ट्र के नेता गहराई से सोचें!

[आचार्यश्री तुलसी]

अनाक्रमण की भावना भारतीय मानस में किसी हद तक अधिक विकसित है। दूसरे राष्ट्रों की अपेक्षा वह अधिक शान्त, तटस्थ और सहिष्णु है। इसीलिये दूसरे राष्ट्र उसे शान्तिदूत की दृष्टि से निहारते हैं। भारतीय अध्यात्मवाद के प्रति भी दूसरे राष्ट्रों में बड़ी निष्ठा है। किन्तु खेद है कि भारतवासी अपने आदर्शों से दूर चले जा रहे हैं। चरित्र-बल क्षीण हो रहा है। सत्य और प्रामाणिकता हवा हो रही है। इनके बिना अहिंसा टिके कैसे? भारत की परम्परा से प्रभावित होनेवाले दूसरे राष्ट्रों के व्यक्ति यहाँ की जनता के सम्पर्क में आ अप्रभावित हो जाते हैं। विश्वासघात, अप्रामाणिकता और स्वार्थ-परता उनकी धारणाओं पर प्रहार कर डालती है। प्रत्येक भारतीय इस बिन्दु पर रुके और आत्मालोचन करे।

हीन संस्कारों को बदलने के लिये नई पीढ़ी को जगाया जाये, उन्हें आरम्भ से ही उच्च संस्कारों में ढाला जाये। आज के युवक और विद्यार्थी वर्ग की स्थिति अदयनीय नहीं है तो अहिंसा निष्ठ भी नहीं है। मैं चाहूँगा कि राष्ट्र की नीति का निर्धारण करनेवाले इसे गहराई से सोचें।

अ न न्त की ओ र

(श्रीमती यशोदा कुशवाहा)

卐 卐 卐

[रूप और यौवन के गर्व में इठलानेवाली जिस मागधी ने एक दिन सौम्यता व तेजस्विता का तिरस्कार किया था वही समय आनेपर सत्यस्वरूप के चरणों में नत हो गई और फिर शेष जीवन को विताने निकल पड़ी दूर, वहुत दूर अनन्तकी ओर
—सम्पादक]

"एक घूंट और दो मागन्धी। मन की तृष्णा का तो जैसे अन्त ही नहीं हो रहा है।" सौन्दर्यमयी राजनर्तकी मागन्धी के आंचल को पकड़ते हुये, नेत्रों में पिपासा की मदिरा छलकाये राजा विमलदेव बोला। रुपसी मागन्धी ने सुरा का पात्र विमल के अधरों से लगा, कटि पर नागिन सम वल डाल पैजनियों के छुमछनन, छुमछनन की भनकार से राज्याङ्गन को गुंजायमान कर दिया। तभी प्रहरी ने निवेदन किया —

"महाराज, द्वारपर एक देवतुल्य मानव खड़ा राज्याङ्गन में प्रविष्ट होने की अनुमति मांग रहा है।"

"हूँ, होगा कोई याचक। अंजुलीभर रजतमुद्रा उसकी झोलीमें डाल दो। उसके आगमन का अन्य प्रयोजन ही क्या?"

प्रहरी उल्टे पांव वापस हुआ और पुनः प्रार्थना की "अधिनाथ मेरी धृष्टता क्षमा हो। उसने मुद्राओं का स्पर्श तक न किया। उसके चरणों पर सब विखरे पड़े हैं।"

'हा हा' विकट अट्टहास किया विकल ने और कहा "ज्ञात होता है, मैं उसका ऋणी हूँ जो मान कराने आया है। याचक को अंजुलीभर रजतमुद्राओं से तृप्ति न हुई। अच्छा, यह स्वर्ण से पूरित स्वर्ण थाल उसे दे दो, और कह दो, अव वह एक पल भी यहाँ न टिके।"

"किन्तु, उसको द्वार से हटाना आसान नहीं स्वामी। उसके मुख पर ऐसा तेजपुंज है जिससे आपभी भयभीत हो उठेंगे।"

"प्रहरी सावधान! तुझमें इतना साहस कि एक याचक का पक्ष लेकर मेरा प्रतिवाद कर रहा है? तुझे प्राणदंड का भागी होना पड़ेगा।"

"स्वामिन्! स्वामिन्!!" प्रहरीने आर्तनाद किया और विमलदेव के चरणों में नत हो गया।

"उठ। जा। बुला अपने तेजमय देवता को। मेरे इस अक्षय भण्डार में, रूपसी मागन्धी के समक्ष उसका समस्त प्रकाश वैसे ही धूमिल पड़ जायेगा जैसे राकेशकी ज्योत्सना में जुगुनु की क्षणिक चमक।" कहकर विमलदेव ने प्रहरी को ठोकर मारी।

सामने पीत वस्त्रधारी पुरुष पर दृष्टि पड़ते ही राजनर्तकी के गतिमय चरण शिथिल पड़ गये। कोमल नृत्य भावभंगिमा को जैसे वज्र का आघात लगा हो।

× × ×

कांचन नगरी की श्रेष्ठ कन्या श्वेत वर्णा सुन्दरी मागन्धी एवं श्याम वर्ण कुमारदेव का विवाह-संस्कार वाल्यावस्था में ही सम्पादित हो चुका था। मागन्धी के प्रत्यागमन संस्कार शेष थे।

सान्ध्य आगमन के साथ-साथ राजपथ जनरव से कोलाहलपूर्ण हो उठा। षोड़सी मागन्धी ने प्रकोष्ठ के झरोखे से एक गौर वर्ण अश्वारोही को राजपथ पर विचरते देखा। वह मोहित हो गई। उसने पास खड़ी सखी सरिता से कहा "सरिता, उस रूपवान युवक अश्वारोही को देख, कितना मोहक है! जी करता है, सदैव ही वह मेरी आंखों में तिरता रहे।"

"अलि, तुम विवाहित हो। अगली पूर्णिमा, तुम्हारे प्रत्यागमन की तिथि भी निश्चित हो चुकी है।"

"तुम्हारा तात्पर्य।" बीच में ही मागन्धी ने प्रश्न किया।

"तुम्हारे मन में पर-पुरुष का ध्यान आ जाये, यह असंगलकारी है।"

"हुँ, कैसा पर पुरुष का! मैंने कुमार देव का वरण ही कव किया?"

"अलि, हिन्दू संस्कृति के अनुसार गुरुजनों की सम्मति से नर-रत्न कुमारदेव को तुम्हारा पति वरण कर तुम्हारे पिता ने उच्चादर्श उपस्थित किया है।"

"काले कुमारदेव को मेरा पति वरण कर पिताने भारी भूल की है।"

"ऐसा न कहो सखी। कुमारदेव केवल तन से काला है। उसका मन स्वच्छ दर्पण सा झलकता रहता है।"

"चल। हट। मुझे वावरी न समझ। छिः कुमारदेव को भला कौन सौन्दर्य-गरिमा वरण कर सकती है! कांचन एवं कीच का भी कोई साथ है?" दर्प से फूल उठी मागन्धी।

"रूपसी सखी! यह न भूलो कि पुष्पों के

सिरमौर पंकज का जन्मदाता कीच ही है। ठीक ऐसे ही सत्य एवं विवेक का प्रतीक कुमारदेव है। तुम्हारे मुख से, उसके प्रति ऐसे अनर्गल शब्द निकलेंगे—यह आशा न थी। तुम कुमारदेव का तिरष्कार कर निन्दनीय कर्म की भागी हो रही हो।" सम्मति देने का साहस किया सरिता ने।

"तू अपने उपदेश स्वयं सुन। मेरे मन में तो वह सुन्दर युवक अंकित हो चुका है।" मागन्धी ने निश्चित मन्शा प्रकट की। "वह युवक कुसुमपुर के श्रेष्ठी का श्रष्टपुत्र है। विलासिता के मध्य रहकर नारी विक्रय उसका मुख्य व्यवसाय है। उसके भ्रष्टाचरण से ऊब कर पिताने उसे देश निकाला दे दिया है। वह जितना ही सुन्दर है, उसका अन्तर उतना ही काला एवं भयावह है।"

"सरिता, तू पारखी कबसे बनगई है? मेरा निश्चय टल नहीं सकता।" मागन्धी ने कहा—

"हठ छोड़ दो अलि। ऐसा न हो, तुम्हारी हठ का परिणाम कष्टदायक हो।"

"सरिता तुझे मैंने सखी माना है किन्तु है तो तू दासी पुत्री। मस्तक पर न चढ़।" आवेश से भर गई मागन्धी।

मागन्धी के पति-त्याग की इच्छा की सूचना सर्वत्र विद्युत गति सी फैलगई। कन्या के अनुचित प्रण से पिता पराजित हो गया। मां की कोख में कालिमा लग गई। कुमारदेव ने भी सुना। उसका मन विराग से भर गया। उसने आजीवन अविवाहित रहकर सेवा का व्रत लिया।

वर्षों बीत गये। उज्जयनीके राजा विमलदेव की क्रय दासी मागन्धी अपने रूप एवं नृत्यकला के बलपर राजनर्तकी घोषित हो चुकी थी। द्रव्य उसके पांवों का आलिंगन करते। भूपति एवं श्रेष्ठीगण उसके स्वागत में पलक पांवड़े बिछाये रहते। किन्तु नित्य-प्रति रूपसी मागन्धी की प्रसन्नताओं का जैसे ह्रास होने लगा। बहुधा उसके चन्द्रमुख पर विषाद की परत छाई रहती। लगता, किसी अज्ञात प्रेरणा ने उसे विकल कर दिया हो और तब उसकी आंखे अश्रुओं से प्लावित हो जातीं।

विरागी कुमारदेव मागन्धी के निकृष्ट जीवन पर दैयाद्र था उसने सोचा मागन्धी के कारण ही तो मुझे सत्य का वरदान मिला। उसके प्रति भी तो मेरा कुछ कर्त्तव्य होना ही चाहिये। सत्यव्रती का कर्त्तव्य है, मानव मात्र को सत्यपथ दिखलाना। मागन्धी अबसे भी यदि सत्य का व्रत लेले तो पाप से मुक्ति पाजायेगी। सुबह का भूला शाम को घर आ जाये तो वह भ्रमित नहीं कहा जा सकता। उसने एकबार मागन्धी से साक्षात् करने का निश्चय किया। वह चल पड़ा उज्जयनी के राज्यप्रसाद की ओर —

× × ×

"तुम कौन हो।" विमल ने पीतवस्त्रधारी पुरुष को लक्ष्यकर प्रश्न किया।

"मैं हूं याचक, 'कुमारदेव।"

"तो भिक्षा लेने से इन्कार क्यों किया?"

"इच्छित वस्तु नहीं मिली।"

"याचक की इच्छा ही क्या? दो मुट्ठी अन्न के दाने। बोलो कितना चाहिये?"

"अन्न नहीं।"

"अन्न नहीं। मुद्रा नहीं। स्वर्ण नहीं। तो चाहिये क्या?" क्रोधित हो उठा विमल।

"मैं मागन्धी को लेने आया हूं।"

"क्या कहा! मागन्धी को लेने आये हो। छोटा मुंह, बड़ी बात! भिक्षा की ओट में नारी तन की इच्छा। भिक्षा वृत्ति की नवीन प्रणाली!!"

"महाराज, आप सन्देह न करें। मागन्धी को केवल इस नारकीय जीवन से मुक्ति दिलाने आया हूं।"

"पाखंडी भिखारी! सावधान! चलाजा यहाँ से। मागन्धी पर तेरा क्या अधिकार? तू मेरे क्रोध को प्रोत्साहित कर मेरी कृपाण का आहार न बन।" झल्लाकर विमल ने कृपाण खींचली।

तभी मागन्धी ने कुमारदेव के चरणों पर गिरते हुए कहा "नाथ! क्षमा दान दो। मेरी आंखों से अज्ञानका पर्दा उठ चुका है। तुम्हारे सत्यस्वरूप का तिरष्कार कर मैं अधोगति को प्राप्त हो गई हूं। मुझे सत्य मार्ग दिखाओ।"

"मागन्धी उठो। तुम्हारा कल्याण हो। तू सत्यपथ की राही बन गई इससे बढ़कर तेरे पापों का अन्य प्रायश्चित ही क्या!......"

कुमारदेव की वाक्यधारा टूटने भी न पाई थी कि विमलदेव की कृपाण उसकी ग्रीवा पर पड़ी। रक्त की फुहारें फूट पड़ीं। मृतप्रायः तन लुढ़क पड़ा मागन्धी की अंक में।

मागन्धी बिलख पड़ी "हा, दुर्दैव यह तूने क्या किया? मेरे पापों का इतना कठोर दंड। मैं कैसे सहन कर सकूंगी?"

कुमारदेव का जीवन-दीप बुझने के पूर्व भभक पड़ा। "मागन्धी रोओ मत! जीवनपथ बड़ा दुर्गम है। पग-पग पर कंटकों एवं पुष्पों का मिश्रण रहता है। कांचन नगरी से दूर उत्तर दिशाकी ओर मैंने एक सेवाश्रमकी स्थापनाकी है। जिसमें भाग्य के मारे एवं संसार के ठुकराये निरीह प्राणी निवास करते हैं। यदि तुम अपने शेष जीवन को उनकी सेवा में व्यतीत कर दोगी तो मुझे वह आत्मशान्ति मिलेगी जो आजीवन तुम्हारे साथ रहने पर भी कदाचित् न मिलती।......" आहत कुमारदेव कुछ क्षण को स्पन्दन रहित हो गया। मागन्धी सिसकती रही। तनिक रुककर कुमारदेव के अधरों में पुनः कम्पन हुआ "जाओ मागन्धी जाओ। अधूरे व्रत को पूर्ण करो।......" बोलते ही बोलते कुमारदेव

[१ जुलाई, १९५६

एक बातचीत—

अरविन्द-दर्शन पर कवि आरसी के विचार

श्री भागवतप्रसाद सिंह

१९५४ ई० के अठाइस अक्तूबर की सन्ध्या का प्रथम। प्रहर आरसीजी, 'मुकुरजी' और मैं बैठे थे पटना स्थित 'तारामण्डल' के कार्यालय में। बातचीत का समा बँध चुका था; किन्तु कोई ठोस विषय सामने नहीं आ रहा था। आरसीजी की चौकी पर एक पत्रिका रखी थी, जिसके आवरण पृष्ठ पर मोटे अक्षरों में लिखा था 'अदिति'। मैंने पत्रिका अपने हाथोंमें लेते हुए प्रश्न किया—"अदिति का अर्थ क्या होता है?" आरसीजी मेरी तरफ मन्द-मन्द मुस्काते हुए देखने लगे। मैं मौन था उत्तर की प्रतिक्षा में। वे स्वाभाविक ढंगसे तनकर बैठ गये और बोले—"अदिति देवताओं की माँ की संज्ञा है।" इतना कहकर वे कुछ देर रुके और पुनः पूर्ववत कहने लगे—"महर्षि अरविन्द ने जो मार्ग बतलाया उसे आज श्री माँ जन साधारण के लिए प्रशस्त कर रही हैं। पांडिचेरी एक आध्यात्मिक केन्द्र हो रही है, जहाँ जाकर बहुत दूर-दूर के ज्ञान-पिपासित तृप्त होते हैं। श्री अरविन्द आश्रम की ओरसे तथा श्री माँ के संरक्षण में 'अदिति' का प्रकाशन हो रहा है। इस प्रकार 'अदिति' नामकी सार्थकता स्वतः सिद्ध होती है।"

उत्तर का प्रवाह ज्यों रुका, मैंने साधारण ढंगसे संकेत किया—"क्रान्तिकारी जीवन के बाद एकाएक एकान्तवासी हो जाना और तत्त्व-चिन्तन में लीन हो जाना एक आश्चर्यजनक घटना है। किसी और के जीवन में ऐसा परिवर्तन कदाचित देखने को नहीं मिलता।" आरसीजी को यह प्रश्न जैसे छू गया। कहने लगे—"क्यों? परिवर्तन तो सभीके जीवन में हुआ करता है। हाँ, किसीके जीवन में परिवर्तन धीरे-धीरे होता है और किसीके जीवन में एकाएक। श्री अरविन्द के
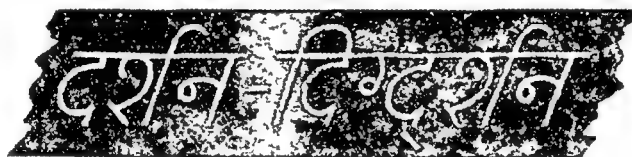
जीवन में तो यह महान् परिवर्तन था नहीं। वह आरम्भ से ही मानवता-प्रेमी थे। उन्होंने कभी अस्त्र-ग्रहण किया, तो कभी एकान्तवास किया; किन्तु दोनों ही अवस्थाओं में उनका एक ही लक्ष्य था—जन-कल्याण के लिए सत्यकी खोज। युवावस्था से मृत्युकाल तक उनके उद्देश्य में कोई परिवर्तन नहीं आया, भले ही ढंग बदल गया।"

उत्तर की पूर्णता के बावजूद मुझे एक शंका सूझी और मैंने पूछ लिया—"जन-कल्याण चाहनेवालों को जन साधारण से दूर एकान्त में नहीं रहना चाहिये। उन्हें अपनी आँखोंसे देखना, अपने कानोंसे सुनना, अपने मस्तिष्क से विचारना तथा अपने हाथोंसे कर्म करना चाहिये। श्री अरविन्द का जीवन, मेरे विचारानुसार, कर्मवादी की अपेक्षा पलायनवादी अधिक अंशमें प्रतीत होता है।" मेरे प्रश्न-काल में आरसीजी में एक मानसिक उभार आ रहा था। उनकी आस्याकृति क्षण-प्रति-क्षण गम्भीर और ओजपूर्ण होती जा रही थी। कुछ ऊँचे स्वर में कहने लगे—"यह आक्षेप वस्तुस्थिति के बिल्कुल विपरीत है। श्री अरविन्द को पलायनवादी तो नहीं ही कहा जा सकता और मैं उन्हें एकान्तवासी के साथ-साथ संसार से दूर भी नहीं मान सकता हूँ। उनके एकान्तवास का अभिप्राय संसार की समस्याओं से विमुख होना नहीं, बल्कि उनसे अवगत होकर उनका वास्तविक निदान ढूंढ़ना था। योगिराज स्वयं एकान्त में रहकर भी सांसारिक समस्याओं से पूर्ण परिचित थे। साधना और गम्भीर चिन्तन के लिए कोलाहल से दूर रहना उत्तम होता है—यही मूल कारण उनके एकान्तवास का था। एकान्तवास-काल में भी उनके साथ कई मित्र रहा करते थे और श्री माताजी भी रहा करती थीं, अतः आप उन्हें पूर्ण एकान्तवासी भी नहीं कह सकते। हमारे पूर्वकाल के ऋषियों में भी जिन्हें बोलकर उपदेश करना होता था, वे अपने विचारों का प्रसार घूम-घूम कर किया करते थे; किन्तु जिनकी अभिव्यक्ति का माध्यम साहित्य था, वे विचारक, एकान्तवासी और लेखक ही थे। आपके इस आक्षेप को बहुतों के मुखसे कहते सुना जाता है और यह स्वाभाविक भी इसलिए कहा जा सकता है कि बहुतों को श्री अरविन्द के विषय में अभीतक बहुत कम ज्ञान प्राप्त हो

(पृष्ठ १४ का शेषांश)

की आंखे फैलगई। पुतलियाँ जड़ सम स्थिर हो गई और तन बर्फ सा शीतल हो चुका था। मागन्धी के आंसू थम गये। रक्त में दैवी शक्ति का संचार हुआ। उसने अलंकारों को उतार विमल के समक्ष फेंक दिया और मृत कुमारदेव को कन्धों पर लाद चल पड़ी नीरव राजपथ पर। तब दिवस का अवसान हो चुका था। चन्द्रकी अश्रुओं से धरती की छाती द्रवीभूत होने लगी थी।

पाया है। श्री अरविन्द ने जिस सत्यको खोज-कर अपने जीवन में उतारा, उसकी अभिव्यक्ति अँग्रेजी साहित्य के माध्यम से हुई है और यह हमारा दुर्भाग्य है कि अभी तक इस सम्पूर्ण साहित्य का अनुवाद अपनी राष्ट्रभाषा (हिन्दी) में नहीं हो पाया है। हमारे घरके प्रकाश से आज सारा भूलोक आलोकित हो रहा है; किन्तु हम अन्धेरे में टटोलते फिर रहे हैं।"

अबतक वातावरण पूरा दार्शनिक बन चुका था। आरसीजी भी अच्छी तरह 'मूड' में आ गये थे। मैंने ऐसे स्वर्ण अवसर को हाथोंसे जाने देना अच्छा नहीं समझा और आहिस्ते से कहा—"भारतीय-दर्शन में शंकर-दर्शन को बहुत से दार्शनिक श्रेष्ठ मानते हैं और जहाँतक मैं समझता हूँ कि भगवान शंकर ने ज्ञानको ब्रह्मकी संज्ञा देकर ब्रह्मको शरीर में भली-भाँति प्रतिष्ठित कर दिया, जिससे आत्मा-परमात्मा के बीचकी खाई पट गई तथा अद्वैतवाद को दर्शन के गौरी-शंकर का परमपद मिला। क्या श्री अरविन्द अपने दार्शनिक अन्वेषण में शंकर से ऊँचा उठ सके हैं?" "केवल ऊँचा उठ जाना या आगे बढ़ जाना ही प्रगति का लक्षण नहीं है।" उन्होंने इतना कहा और एक क्षण मौन रहकर विहँसते हुए पुनः कहने लगे—"मैं मानता हूँ कि श्री अरविन्द ने शंकर के अद्वैत का खण्डन नहीं किया, लेकिन इतना अवश्य कहा जायगा कि शंकर ने ज्ञानके साथ विराग का सम्बन्ध स्थापित किया और श्री अरविन्द ने ज्ञानके साथ कर्मको जोड़ा। शंकर ने सृष्टिको क्षणभंगुर और हेय बतलाया, जिसके प्रतिक्रिया-स्वरूप ज्ञानके साथ-साथ उपेक्षा जगी। 'एको अहं' की प्रज्ञोपलब्धि के बाद साधकों का कर्त्तव्य होता था कन्दराओं में शेष जीवन निर्लेप रहकर बिताना या हिमालय में अपने शरीर को विसर्जित कर देना, जैसा कि स्वयं भगवान शंकर ने भी किया। किन्तु श्री अरविन्द को कर्ममें विश्वास था। वह स्वयं आजीवन कर्मरत रहे। शंकर ने अद्वैत के शिखर पर आरोहण किया और लक्ष्य-प्राप्ति के बाद वहीं उन्होंने अपनी समाधि भी ले ली। श्री अरविन्द शिखर पर पहुँचकर पुनः लौट आये और समष्टि-कल्याण के लिए कर्म करते रहे। भगवान शंकर और योगिराज श्री अरविन्द के विचारों में यह प्रमुख विभेद है।"

उत्तर देने के पश्चात् वे मेरी ओर देखने लगे। मैंने समझा कि किसी अन्य प्रश्न की प्रतीक्षा इन्हें है, अतः मैंने पूछ दिया—"श्री अरविन्द का कर्मवाद गीता से प्रभावित है या पूर्ण मौलिक?" इस प्रश्न का प्रभाव कुछ ऐसा पड़ा कि वे जैसे टूट पड़े—"मौलिकता का प्रश्न लाकर तो आपने एक दूसरा ही वितंडा खड़ा कर दिया। किसको मौलिक कहा जाय और किसको अमौलिक, इस पर विचारों का वैभिन्य रहता है और रहना संभव भी है। सूरदास व्यास और विद्यापति से प्रभावित थे तथा तुलसीदास ने वाल्मीकि के बाद एक ही कथावस्तु पर रामायण की रचना की; किन्तु कौन इनके साहित्य को अमौलिक कह सकता है? इसी प्रकार यह कहा जा सकता है कि विश्व के सभी विचार अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के विचारों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य प्रभावित रहते हैं। गीता तो गो-मुखी है, जहाँ से विचारों की गंगा फूटी है। योगिराज श्रीकृष्ण की अमरवाणी गीता जिस प्रकार पार्थ को कुरुक्षेत्र में प्रभावित कर सकी थी, उसी प्रकार आजकी सन्तानों को भी प्रभावित कर रही है और मेरा विश्वास है कि अनन्त भविष्य में भी इसका प्रभाव इसी प्रकार अक्षुण्ण रहेगा। भारत ही क्यों, विश्व की प्रायः सभी प्राणवन्त भाषाओं में इसका अनु-वाद हो चुका है और गीता की ज्ञान-गंगा में आज सारा भूलोक अवगाहन कर रहा है। गीता का प्रभाव श्री अरविन्द पर ही नहीं, बल्कि शंकर, रामानुज आदि सभी आचार्यों पर पड़ा है। श्री अरविन्द के सिद्धान्त पर गीता का प्रभाव अवश्य है; किन्तु फिर भी इसे उसी प्रकार मौलिक कहा जायगा जिस प्रकार अन्यान्य दार्शनिक सिद्धान्तों को कहा जाता है। श्री अरविन्द के दर्शन का प्रसार गीता या वेदान्त तक ही सीमित नहीं है। दार्शनिक जगत् में इसकी एक विशेष मौलिक देन है, जिसे रूपान्तरवाद कहा जा सकता है। रूपान्तरवाद प्राच्य और पाश्चात्य दोनों दार्श-निक क्षेत्रों में सर्वथा मौलिक है। आज के समस्त दार्शनिक विचारों को जड़वाद तथा चैतन्यवाद में विभक्त किया जा सकता है। कोई जड़तत्त्व को चरम सत्य (ultimate truth) मानते हैं, तो कोई चैतन्य को; किन्तु श्री अरविन्द जड़ में भी चेतना के मधुर स्पन्दन का अनुभव करते हैं। इस प्रकार यदि चैतन्य सत्य है, तो जड़ भी सत्य है। यहाँ हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि जड़वाद और चैतन्यवाद में जो एकांगिता का दोष था, उसका अन्त हो जाता है और दोनों विचार मिलकर एक तीसरे मत का प्रतिपादन करते हैं, जो श्री अरविन्द के विचारों में मुखर है। जिस प्रकार गंगा, यमुना आदि नदियाँ समुद्र में गिरती हैं और मिलकर एकाकार हो जाने के बाद उनकी अपनी संज्ञाएँ लुप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार श्री अरविन्द ने अपने दार्शनिक विचार में सभी मतवादों को अपने अन्दर पचा कर उन्हें पूर्णरूपेण अपना बना लिया है। गीता का कर्मवाद, शंकर का अद्वैतवाद, रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, मार्क्स का द्वन्द्वा-त्मक भौतिकवाद, बर्कलेहेगेल का प्रलयवाद आदि सभी दार्शनिक धाराएँ श्री अरविन्द-दर्शन में आकर मिल जाती हैं और यहाँ पहुंच

(शेषांश पृष्ठ २७ पर)

• *आखिर क्यों सुनें ?*

सिद्धान्त और उपदेशों को अपने जीवन में उतारे बिना जो लोग इनका नारा लगाते फिरते हैं उनकी बात आखिर कब तक सुनी जाय ! 'आर्थिक समीक्षा' में प्रकाशित श्रीमती सावित्री निगम ने अपनी ओजस्वी भाषा में ऐसे लोगों को एक चुनौती दी है—

"युग-परिवर्तन का बिगुल बजानेवालों से यदि कोई कह बैठे कि 'तुम परिवर्तन और क्रान्ति का घोष कर रहे हो। पर जरा गौर से देखो, तुमने पहले अपने में परिवर्तन प्रारम्भ किया या नहीं'—तो क्या रह जायेगा। अच्छा हो कि हम जिह्वा खोलने के पहले अपने नित्य-प्रति के जीवन से लोगों के लिये एक प्रेरणा-स्रोत बनें। विनोबाजी ने अपने एक प्रवचन में ठीक ही कहा है कि सामाजिक क्रान्ति और व्यक्ति की चित्त-शुद्धि व व्यवहार-शुद्धि दो अभिन्न वस्तुएं हैं। अर्थात् सामाजिक क्रान्ति की प्रक्रिया में यह आवश्यक प्रवेग तब तक न आ सकेगा जब तक हम सभी क्रान्ति के प्रवर्तक और प्रणेता आत्म-शुद्धि न करें। हम आर्थिक विषमता दूर करने की बात चिल्लाते हैं। लोग हमारी बात क्यों सुनें, जब हम स्वयं ऊँची अट्टालिकाओं में रहकर सामूहिक जीवन के कष्टों से बचकर आनन्द से सुखद नीड़-निर्माण करके बैठे हैं।"

• *हमारी चीज हमारे घर में*

आचार व व्यवहार-शुद्धि की दिशा में 'गीता सन्देश' की यह लघु-कथा कितनी मार्मिक व प्रेरक है—

"एक ब्राह्मण का कोई सम्बन्धी भगवान् बुद्ध का शिष्य हो गया था। इससे उस ब्राह्मण को बड़ा दुःख था। एक दिन वह बुद्धदेव के पास जाकर उन्हें मनमानी गालियाँ बकने लगा।

बुद्धदेव शान्तभाव से चुपचाप सुनते रहे। ब्राह्मण भी गाली बकते-बकते आखिर थककर चुप हो गया। ब्राह्मण को शान्त देखकर बुद्ध ने उससे पूछा—'क्यों भाई ! तुम्हारे घर भी कभी कोई मेहमान आया करते हैं क्या ?'

ब्राह्मण ने कहा—'हाँ कभी-कभी हमारे सगी-सम्बन्धी आया करते हैं।' 'तो तुम उन लोगों को खिलाने-पिलाने की चीजें तो देते ही होगे' बुद्धदेव ने पूछा। ब्राह्मण ने 'हाँ' कहा। बुद्धदेव ने फिर पूछा—'अच्छा, तुम्हारे वे अतिथि तुम्हारी दी हुई वस्तुएं न लें तो फिर उनका क्या होता है ?'

ब्राह्मण ने कहा—'इसमें भी कोई पूछने की बात है ? अरे ! मेहमान ने नहीं ली तो हमारी चीज हमारे घर में रह गयी।' तब भगवान् बुद्ध ने कहा—'भाई ! बस, इसी तरह तुमने जो गालियाँ मुझको दी, उनको मैंने लिया नहीं। मैं यदि तुम पर क्रोध करता तो तुम्हें बदले में गालियाँ देता। इसका सीधा मतलब यह होता कि मैंने तुम्हारी गालियाँ ले लीं। परन्तु मैं चुपचाप बैठा रहा, इसलिये तुम्हारी गालियों को मैंने स्वीकार नहीं किया। फलतः तुम्हारा यह उपहार तुम्हारे ही पास रह गया।'

ब्राह्मण लज्जित होकर भगवान् बुद्ध का शिष्य बन गया।'

• *न्याय भी बिकता है !*

आज की समाज व्यवस्था में अर्थ को प्रधानता देने के कारण आये दिन क्या-क्या अनाचार, उत्पात और अनैतिक कर्म होते हैं यह सर्वविदित है। 'चिनगारी' में प्रकाशित बाबा राघवदासजी के इन शब्दों में वैसा ही एक चित्र सजीव हो गया है:—

"बिजनौर जिले के आखरी पड़ाव पर लोगों से चर्चा सुनी कि सरपंचों का जो चुनाव होनेवाला है उसमें पंच बनने की शर्त यह भी एक है कि वह कम से कम २५० रु० बचत योजना में जमा करदें। जो पंच ऐसा कर सकेंगे वही अदालती पंचायतों के सदस्य बन सकेंगे।

यह समाचार सुनकर धनी उम्मीदवार खुश हो हुए, प्रसन्न थे, व्यवहार कुशल भी। एक ने अपने साथी से कहा कि कुछ खराब सौदा नहीं है, २५० रुपये दे देंगे तो उसकी फसल साल में कम से कम २५०० रुपये तो होगी ही, कुछ घाटे का सौदा नहीं है। पर जो उम्मीदवार गरीब थे, उनके चेहरे फीके पड़ गये। उनके मन में आया कि तुरन्त २५० रुपये कहाँ से जमा करेंगे ? फसल खराब है, गन्ना खेत में खड़ा है, गन्ना बेचा है पर मिलवाले ने आठ मई से पैसा देना बन्द कर दिया है। ऐसे समय में ढ़ाई सौ रुपये की तो कौन कहे २५० आने भी मिलना कठिन है। ऐसी पंची और सरपंची हम क्या कर सकेंगे, जहाँ न्याय बिकता हो ?

दूसरे भाई बोले कि यह अच्छा तरीका है, आखिर यह है तो कांग्रेसी सरकार ! कांग्रेस वालों ने कर्मठ सदस्यता की फीस ११ रु० रखकर उत्साही पर गरीब कर्मठ कार्यकर्त्ताओं को निरुत्साहित किया है तो यही बात इस राज्य में उनके बड़े कर्मचारी पंची व सरपंची के लिये कर रहे हैं !

आखिर श्री महात्मागांधी के चेलों के राज्य में न्याय तथा न्यायाधीश इस प्रकार बिकने लगे हैं ! भगवान् हमें सद्बुद्धि दे।"

• *सात्विक आनन्द*

फल की इच्छा को छोड़कर निरन्तर कार्य

करने में भी जिस दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है उसी का उल्लेख करते हुए आचार्य विनोबा ने अपने 'गीता प्रवचन' में कहा है—

"यदि निष्काम कर्म की बात छोड़ दें तो भी खुद कर्म में जो आनन्द है वह उसके फल में नहीं है। अपना कर्म करते हुए जो एक प्रकार की तन्मयता होती है वह आनन्द का स्रोत ही है। चित्रकार से कहिये, चित्र मत बनाओ। इसके लिये तुम जितने चाहो पैसे ले लो' तो वह नहीं मानेगा। किसान से कहिये—'खेत पर मत जाओ, गायें मत चराओ, मोट मत चलाओ, तुम जितना कहोगे, उतना अनाज तुम्हें दे देंगे।' यदि वह सच्चा किसान होगा, तो वह यह सौदा पसन्द न करेगा। किसान प्रातःकाल खेत पर जाता है, सूर्यनारायण उसका स्वागत करते हैं, पक्षी उसके लिये गाना गाते हैं। गाय-बैल उसके आस-पास घेरे रहते हैं। वह प्रेम से उन्हें सहलाता है। जो झाड़-पेड़ लगाये हैं, उनको भर नजर देखता है। इन सब कामों में एक सात्विक आनन्द है। यह आनन्द ही उस कर्म का मुख्य और सच्चा फल है। इसकी तुलना में उसका वाह्य फल बिल्कुल ही गौण है।"

अणुव्रत के पाठकों से!

'अणुव्रत' को और अधिक लोकोपयोगी व जन-रुचिकर बनाने की दृष्टि से 'अणुव्रत' में प्रकाशित रचनाओं के सम्बन्ध में अपने सहृदय पाठकों का मत जानना आवश्यक है।

अतः हमारा साग्रह निवेदन है कि भविष्य में सहयोगी पाठक 'अणुव्रत' के प्रत्येक अङ्क पर अपनी सम्मत्ति, विचार व सुझाव आदि निःसंकोच लिखकर भेजें।

जो पाठक हमारी त्रुटियों व अभावों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे उनके हम विशेष आभारी होंगे।

रचनात्मक विचारों एवं सुझाओं को यथाशीघ्र क्रियान्वित करने का भी प्रयत्न हो सकेगा।

—सम्पादक

यह सब क्या है ?

[श्री 'अमरेश']

कल पेपर में पढ़ा "मर गया है कोई इन्सान-
तीन दिनों के बाद कुये में उतराई है लाश!"
और आज यह पढ़ा कि कोई नवयुवती गंगामें-
डूब गयी है जीवन से होकर सब तरह हताश!

कल फिर देखूँगा अखबारों के पृष्ठों पर
लिखा रहेगा "आज रात के अँधियाले में-
फेंक गया नवजात बालिका को लपेट कर
कोई म्युनिसिपिलटी के गंदे नाले में।"

और दूसरे दिन देखूँगा "जो आवारा—
सड़कों पर घूमा करता था, पीकर सदा शराब!
मरा पड़ा है चौराहे पर, और पार्क में-
किसी प्रेमिका पर प्रेमी ने छोड़ दिया तेजाब!"

छपा वहीं पर होगा यह सम्वाद 'किसी' को—
चढ़ा हुआ है ताप और आती है खांसी,
'छपते-छपते' के कालम में लिखा मिलेगा-
पढ़े-लिखे बेकार युवक ने ले ली फांसी!"

यह सब क्या है? समझ नहीं कुछ भी पाता हूं-
झांक रहा जब अंतरिक्ष से अभ्युत्थान-विकास!
तब फिर क्यों समाज लिखता है गला घोंटकर-
अपनी स्याही से अपना ही दर्दीला इतिहास!

आज जागरण की बेला है युग जागेगा-
डाल-डाल में नये फूल औ पाती होगी!
नया - नया आलोक धरातल में फैलेगा-
नये - नये दीपक की नूतन बाती होगी!

अँधकार की छाती में शहनाई के स्वर-
भरने को विहंगों का मीठा गान जगेगा!
एक लहर आयेगी बिखरेंगे मुक्ताकण-
अंगड़ाई लेकर सोया इन्सान जगेगा।

धरा पसीने से भीगेगी और गगन भी-
खेतों में प्रतिबिम्ब निहारेगा जीवन का!
मानव की दुर्बलता पत्थर हो जायेगी-
बरस पड़ेगा मरुथल में भी घन सावन का!

समाज सेवा की रूपरेखा

(श्री राजेश सक्सेना एम० ए० साहित्य भूषण)

समाज कार्य क्या है ?

यह प्रश्न स्वाभाविक है कि समाज कार्य क्या है। एक ही बातको व्यक्त करने के लिए हम इसको भिन्न-भिन्न नामोंमें पुकारते हैं। समाजिक कार्य, समाज सेवा, समाज कल्याण, इन सबसे एक भाव पैदा होता है और वह है किसी भी समाजकी सुव्यवस्था, संगठन, उसके सदस्यों का कल्याण और दुखित व पीड़ितों की सेवा।

समाज सेवाका वैज्ञानिक रूप, पुराने ढाँचे से सर्वथा भिन्न है। पहले समाज सेवा केवल एक दान और दयाभाव से उत्पन्न कार्य था। यह एक निजी वस्तु थी जिसको धार्मिक दृष्टि-कोण लेकर अधिकतर अमीर और बड़े लोग समाजमें दुखी और पिछड़े लोगोंके लिए करते थे। अनाथ आश्रम, विधवा आश्रम, स्कूल, इस्पताल, धर्मशालाऐं आदि सब इन्हीं के परिणाम थे। यह किसीपर अनिवार्य न था परन्तु केवल कुछ लोगों के मनोभावों और उद्‌गारों का परिणाम होता था। परन्तु जबसे सोशल वेलफेयर स्टेट—सर्वाङ्गीण कल्याणकारी राज्यकी स्थापना का विचार संसार के देशोंमें व्याप्त हुआ तो समाज सेवाकी पुरानी रूपरेखा बिल्कुल बदल गई। वह अब केवल इक्के दुक्के आदमी का काम न होकर पूरे समाज और सरकार का उत्तरदायित्व हो गया। इसके अतिरिक्त न केवल दो समस्याओं को सुलझाना इसका कार्य है, वरन् समाज के सर्वाङ्गीण विकास का भार इसके अन्तर्गत आता है। अब यह धार्मिक या किसी व्यक्ति विशेष के मनोभावों या उद्‌गारों का परिणाम न होकर हर व्यक्ति का फर्ज बन गया और केवल दुखी या पीड़ित लोगोंके लिए दयाका कार्य न होकर एक अनिवार्य कार्य हो गया जिसके अन्तर्गत समाज कल्याण—समाज के विभिन्न अङ्गोंमें आवश्यक हुआ। कल्याण सम्बन्धी सेवाएं और उनका उपभोग समाज के हर सदस्य का हक और उन सेवाओं का समाज के लिए करना हर व्यक्ति का कर्तव्य बना। अब यह दान, दया और भिक्षा तथा धर्म न होकर एक वैज्ञानिक रीतिसे सेवा, और 'पेशा' हो गया जिसकी शिक्षा, दीक्षा और परिशिक्षण का पूरा इन्तजाम है और जिसका ध्येय 'स्वयं' तथा समाज के व्यक्तियों और संस्थाओं की सेवा है।

समाज सेवाका नया व पुराना रूप-परिभाषा :—

इस प्रकार हम देखते हैं कि साधारणतया समाज सेवाके अन्तर्गत दुखित, पीड़ित, पिछड़े और गिरे लोगोंकी सेवा और उनके दुखोंका निवारण तथा उनकी अवस्था का सुधार ही आता है जिससे कि मानवता का उत्थान और मानव का कल्याण हो सके। इसका अर्थ यह हुआ कि समाज कार्यका यह तात्पर्य, उन स्थानों और सामाजिक अंगोंमें सेवाएं करने का है, जो अशक्त और पतित हैं।

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है कि 'समाज सेवा' एक व्यापक अर्थका सूचक है और इसीलिए समाज कल्याण, सामाजिक मदद (social assistence) सामाजिक कार्य, आदि एक ही अर्थको व्यक्त करने के लिए इस्तेमाल होते हैं। इसीलिए बादमें इनने व्यापक शब्द का क्षेत्र भी बढ़ गया और फिर यह न केवल समाज के बीमार अंगकी सहायता, परन्तु स्वस्थ अंगकी भी प्रगति के लिए किए गए कार्यों के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा और अब 'समाज सेवा' का ध्येय खराब समुदायों और समाज को अच्छा और अच्छे समाज को अत्युत्तम बनाने का हुआ है।

इसीलिए इसकी पुरानी परिभाषा बदलकर इस प्रकार हुई—"समाजसेवा एक ऐसे प्रगतिशील कार्यक्रम को कहते हैं जो कि किसी सामाजिक नीतिकी पूर्तिके लिए किया जाता है और जिसके अन्तर्गत पूरे समाजके भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास का कार्यक्रम होता है।" इस प्रकार से स्वाभाविक रूपसे समाज सेवाका ध्येय मनुष्य का आर्थिक, राजनैतिक, मानसिक, भौतिक और सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास है।

अन्य परिभाषाएँ :—

समाज-शास्त्रियों तथा अन्य विद्वानों ने समाज सेवाकी परिभाषा इस प्रकार दी है :—

'मेस' (Mess) के अनुसार "समाज सेवा एक समाजिक कार्यक्रम है जोकि व्यक्तिगत सम्बन्धों द्वारा, बिना किसी लाभकी आकांक्षा के, उन व्यक्तियों की सहायता करता है जो, या तो स्वयं, या सामूहिक रूपसे, बगैर मदद के एक निश्चित सामाजिक स्तर तक नहीं पहुंच सकते और स्वयं अपना उत्थान करने में असमर्थ हैं।"

'चैने' (Cheyney) समाज सेवा की

परिभाषा इस प्रकार देता है—"समाज सेवा कुछ ऐसे कार्यों के समूह का नाम है जो एक से हैं, और एकसे ही नामों से पुकारे जाते हैं। वह एक ही कार्यक्रम के विभिन्न रूप हैं, क्योंकि उन सब ही कार्यों द्वारा उन व्यक्तियों या समूहों की सहायता की जाती है जिनको कि इनकी आवश्यकता है और वास्तव में यह सब कार्य अपने लाभान्वित व्यक्तियों के सामाजिक सम्बन्धों और अवस्था सुधारने में अत्यधिक व्यस्त रहते हैं और इसकी पूर्ति के लिए वैज्ञानिक ढंगों और ज्ञान का प्रयोग करते हैं।"

'यंगढाल' (Young-Dhal) के दृष्टि-कोण में "समाज सेवा मनुष्यों के लिए दो बातों की चेष्टा करती है (१) आर्थिक सुधार और (२) मनुष्य को आन्तरिक व वास्तविक सुख-अर्थात् उसको स्वयं की अभिव्यक्ति से परिचित कराना। इस कार्य का मुख्य ध्येयक्षेत्र मानवीय व्यवहार और सम्बन्ध है और वास्तव में यह कार्य मनुष्यों के व्यक्तिगत सुधार और उसकी वास्तविक सत्यता से अनु-भूति कराने में केन्द्रित रहता है।"

श्री सुशीलचन्द्र के अनुसार "समाज सेवा एक प्रगतिशील कार्य-क्रम है जो कि व्यक्तियों या सरकार द्वारा किसी सामाजिक नीति की पूर्ति के लिए होता है। इसके द्वारा व्यक्तियों, परिवारों या समूहों के आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, भौतिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक स्तर को उठाने की चेष्टा की जाती है। परन्तु इसमें इस बात का कोई ध्यान नहीं होता कि उक्त व्यक्ति, समूह या परिवार सामाजिक उन्नति के किस शिखर तक पहुंच गया है।" अर्थात् इसके अनुसार विकसित, अविकसित, शिक्षित, अशिक्षित, सभ्य, असभ्य, सभी प्रकार के समाजों में सेवा कार्यक्रम परिणित होता है। इसका ध्येय बुरे समूहों को अच्छा, अच्छे समुदायों को उत्तम और उत्तम समाज को सर्व श्रेष्ठ बनाना होता है।

UNESCO अन्तर्राष्ट्रीय, शिक्षा, विज्ञान तथा सांस्कृतिक संस्था (यूनेसको) के 'सामाजिक कमीशन' (समिति) ने समाज कल्याण को न केवल किसी विशेष बुराई के सुधार, अन्यथा समाज के पूर्ण भौतिक, मानसिक, तथा सामाजिक सुगठन तथा सुव्यवस्थता को बताया है।

सर्वोच्च सामाजिक स्तर की प्राप्ति मनुष्य का मूल अधिकार है और यह अधिकार बिना किसी प्रजाति, धर्म, राजनैतिक विचार-धारा, आर्थिक तथा सामाजिक अवस्था के भेद-भाव के उसको मिला है।

मानवमात्र के कल्याण से ही विश्व को शान्ति, सुरक्षा तथा प्रगति मिल सकती है और यह व्यक्तियों तथा राज्य सरकारों के सह-योग से ही सम्भव है। किसी भी देश की समाज कल्याण की ओर प्रगति, विश्वभर के लिए मूल्यवान है। विभिन्न देशों की समाज कल्याण की ओर असन्तुलित प्रगति और विशेष रूप से दरिद्रता विनाश की ओर उदा-सीनता सब ही देशों के लिए खतरनाक है।

इसके अतिरिक्त बच्चे का सम्यक् विकास भी प्राथमिक और आवश्यक है। संसार के हर मनुष्य को सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएँ तथा ज्ञान का विकास करना आवश्यक है जिससे कि पूर्णतया समाज कल्याण की ओर अग्रसर हुआ जा सके।

मनुष्यों के कल्याण के लिए यह भी आव-श्यक है कि हर व्यक्ति इस कार्यक्रम में सक्रीय रूप से भाग ले, सहायता करे और अपना मत दे। सरकार का उत्तरदायित्व तो अवश्य ही यह होता है कि वह अपनी जनता का कल्याण करे और उसके लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक नीति को कार्यान्वित करने के लिए स्वस्थ सामाजिक व आर्थिक साधन भी हों। इसलिए इन साधनों की प्राप्ति अनिवार्य है।

जिस प्रकार कि जीवन प्रगतिशील है, समाज भी स्थिर नहीं और उसका रूप भी परिवर्तनशील है इसी प्रकार समाजसेवा कार्य-क्रम को भी परिवर्तनशील और प्रगतिशील होना चाहिए जो कि बदलती अवस्था के साथ-साथ बदल सके।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि समाज सेवा परिवर्तन व प्रगतिशील कार्यक्रम है जो कि सर्वाङ्गीण सामाजिक विकास के लिए एक विशेष सामाजिक नीति को कार्यान्वित करने के लिए किया जाता है और जिसका केन्द्र मनुष्य और उसका आर्थिक, सामाजिक, मानसिक, भौतिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक विकास होता है। —क्रमशः

लेखकों से !

प्रत्येक रचना की स्वीकृति अधिक से अधिक १५ दिनमें भेजदी जाती है। स्वीकृति के अभाव में रचना अस्वीकृत समझें। पर्याप्त डाक-व्ययके अभाव में अस्वीकृत रचनाएँ वापस न भेजी जा सकेंगी और न ही अस्वीकृत रचनाओं के सम्बन्ध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार किया जायगा। —सम्पादक

मधुर स्वप्न

श्री राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

[जीवन के प्रथम चरण में राज ने भी सबकी तरह एशो-आराम व रंगीन दुनिया का एक स्वप्न संजोया था परन्तु जीवन-व्यवहार की कटु अनुभूतियों, समाज-व्यवस्था के खोखलेपन और समय के आह्वान ने उसे एक नयी दिशा, नयी प्रेरणा व नयी दृष्टि दी और वह अब वह एक दूसरा ही मधुर स्वप्न देखने लगा। —सम्पादक]

जिन्दगी की जिस धारा में राज ने अपने आप को छोड़ दिया था वह धारा वेग मयी थी और उसके तेज प्रवाह में वहा जा रहा था—राज। कहां वहा जा रहा था, क्यों वहा जा रहा था, किसलिये वहा जा रहा था, यह उसे कुछ मालूम नहीं था। केवल अन्तरनाद के बलपर बढ़ता जा रहा था—समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति बनने के लिये। एक उमंग थी, उत्साह था, मानो प्रवाह इतना तेज था कि विश्व की समस्त बाधाओं की चट्टानों को भी तोड़ देगा। उस घर की अन्धेरी दुनिया रोशन हो उठेगी—राज के उपार्जित धन, मान के बल पर। उसकी सुन्दर, सुशील एवम् बड़े घराने की पढ़ी-लिखी पत्नी होगी। कार, कोठी होगी और उसमें किलोल करता हुआ उसका प्रतिरूप······।

परन्तु यह कल्पना सत्य हो सकेगी, यौवन के अन्धड़ से वह बच सकेगा, पैसे-पैसे का मोहताज राज अपनी कल्पना को साकार रूप दे सकेगा, इसमें सन्देह था, लेकिन फिर भी हंसमुख मौजी राज वहा जा रहा था अपनी आस के बल पर। वह अभी एफ० ए० में था किन्तु अपनी कक्षा में सभी विद्यार्थियों में अग्रणीय। उसके सहपाठी उसे प्रगतिशील, कवि और न जाने किन-किन नामों से सम्बोधित किया करते थे। अपने विद्यार्थियों में उसका अच्छा प्रभाव था, शरीर शक्ति के बल पर नहीं बल्कि वाकपटुता एवम् शान्त गम्भीर होने के कारण, सभी उसका सम्मान करते थे।

एफ० ए० तक आने में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, दुर्भाग्य छाया की भांति साथ-साथ चल रहा था। उसका चरित्र पड़ोसियों के लिये आलोचनाओं का केन्द्र था। वह सब कुछ सुनता और देखता लेकिन मानो कुछ हुआ ही नहीं इस भाँति वहा चला जा रहा था अपनी जीवन किश्ती को खेता हुआ. साधना एवम् प्रेरणा उसके लक्ष्य में मिश्रित थी।

एफ० ए० की परीक्षा में पास होने पर घर की परिस्थितियों ने उसे विवश कर दिया। बाप ने भी साफ कह दिया कि "राज हम मजबूर हैं, आगे नहीं पढ़ा सकते, तेरे ही लिये कहां तक करें आखिर और भी तो हैं कोई नौकरी ढूढ़कर धन्धे से लगो। राज शान्त था उसकी काल्पनिक दुनिया उजड़ चुकी थी। अरमान, एक एक करके शीशों में चटक रहे थे और वह हंसमुख राज मलीनता की ओट में झुलसने लगा, किन्तु फिरभी घरवालों की आस पूरी करने के लिये सरकारी कार्यालयों की खाक छानता फिरने लगा। अनेक विपदायें झेलने पर सरकारी दफ्तर में साठ रुपये की क्लर्की मिल गई।

इस प्रकार जीवन का एक चरण समाप्त हुआ और दूसरा चरण भरकम के साथ बढ़ चला। जीवन-लीला का पहला अध्याय हर्ष उन्माद से शुरु हुआ था और अधूरा ही था कि नष्ट हो गया। दूसरे अध्याय में अरमानों की न्यूनता थी, केवल निर्जीव, निराश राज की कुण्ठित अभिलाषा तड़फड़ाती वही जा रही थी उसी तेज धारा में।

इस प्रकार कालिज जीवन का मधुर स्वप्न, कल्पना का सुनहरा घरौन्दा, समाज का विशिष्ट व्यक्ति बनने एवम् उसकी सुशिक्षित पत्नी पाने के अरमान पीछे छूट गये और स्पन्दन-हीन राज कागजों की नाव पर वहा जा रहा था। डगमगाती कागज की नाव अथाह सागर के मझधार में पहुँच चुकी थी। किनारा दूर था। लहर टकरा रही थी, कभी कभी तो राज लहर की टकराहट से इतनी नीचे चला जाता मानो फिर ऊपर नहीं आयगा और उसकी आँखों से फूट पड़ता नमकीन और खारे पानी का स्रोत।

सरकार के उस कार्यालय में बहुत से क्लर्क, चपरासी तथा अधिकारीगण कार्य करते थे लेकिन सबके अपने विभाग अपने कमरे बटे हुए थे। राज एकाउन्ट विभाग का एक साधारण क्लर्क था, उसके पासवाली कुर्सी पर एक टाइपिस्ट युवती सन्तोष थी। सामने वाली मेज पर दो अन्य क्लर्क थे। उनके बीच में बैठा हुआ पके बालों वाला एकाउन्टेंट। उन क्लर्कों में राज एवम् सन्तोष को छोड़कर शेष सभी चालीसा पार कर चुके थे। राज ने देखा, सभी साथी एक दिशा की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं, उनकी धारा में कभी ज्वार नहीं आता, उनके दिल और दिमाग किसी व्यथा से व्यथित नहीं होते केवल नववधु के समान स्वामी के बताये हुए मार्ग पर चले जा

रहे हैं। उनके अपने, अरमान मालिक के अरमानों में घुसकर एक हो गये हैं उनका चंचल जीवन परिस्थितियों के शिकन्जों में कसकर निश्चल हो गया है निर्जीव हो गया है, केवल अभिनेता की भाँति उनका जीवन है, उनका अपना कोई मार्ग नहीं है अपनी कोई जिन्दगी नहीं है। परिस्थिति के सामने आसानी से झुककर हार मान ली है।

राज ने यह सब कुछ देखा, अपने से मिलान किया, और सांस छोड़कर सन्तोष की ओर देखता हुआ बोला, "जानती हो सन्तोष, आज मानव का मूल्य क्या है? उसका दम्भ निस्सार होकर बिलबिला रहा है। उसकी प्रतिष्ठा एवम् अर्चना योग्यता नहीं है केवल अर्थ है। अर्थ के इर्द-गिर्द घूम रही है— सिफारिश, सिफारिश के बलपर कमाया जा सकता है पैसा और पैसे से खरीदी जा सकती है झूठी शान एवम् प्रतिष्ठा। अगर यह सब कुछ करने की सामर्थ्य नहीं तो भाग्य भी बुजदिल कहकर साथ छोड़ देता है। यह है— आज का मानव जीवन!......।"

"ठीक कहते हो राज बाबू! हमारे पास तो इतना अवकाश ही नहीं कि हम मानव जीवन के अन्तस्तल में जाकर ज्ञान पा सकें। एक समय खाकर दूसरे समय की चिन्ता सवार हो जाती है और हो भी क्यों न? पिचासी रुपये परिवार के सात सदस्यों की क्षुधा शान्त करें तो कैसे करें? पिता ने पढ़ाया, बी० ए० की डिगरी दिलवाई, विवाह के लिये दर-दर घूमे लेकिन मुझे बेचने के लिये दस हजार रुपये न पा सके। मैंने स्थिति को समझा, उन्हें कोने में रोते देखा मां-बहनों को बिलखते देखा। मेरे से यह सब कुछ न देखा गया और उस दिनसे आजतक इस तरह परिवार की सेवा करती आ रही हूं" कहते-कहते वर्षों की छिपी वेदना आँखों से बह निकली।

राज के मस्तिष्क में तूफ़ान उठ रहा था। शान्ति को मानो उससे घृणा थी। विचारों के तूफ़ान ने उसकी शान्ति छीनली थी और वह उसके झोंके में उड़ा जा रहा था। मेज पर फैले हुए कागज भी कह रहे थे—"राज हमें चीतने से काम नहीं बनता कुछ. बनना चाहते हो तो खुशामद करो, अधिकारी वर्ग खुशामदी टट्टू है। पैसा उसकी मुट्ठी में बन्द है। किन्तु खुशामद करना भी एक कला है। अगर उस कला को अपनाकर धनवान बनना चाहते हो तो अपनाओ अन्यथा इसे भी खो बैठोगे, हां राज खो बैठोगे। पर कर सकोगे?" इस तरह विचारों की उथल-पुथल से उसके माथे पर पसीना आगया। और वह बोल उठा—"नहीं, नहीं, वह ऐसा नहीं कर सकता; अपने सिद्धान्त को नहीं छोड़ सकता। भूखा मर सकता है लेकिन बढ़ते हुए अनाचार में सहयोग नहीं दे सकता। मनुष्य वर्ग गिरता जा रहा है। दूसरे की रोजी को देखकर गुर्राता है, खून करता है, वीभत्स कुकर्म करता है और अपनी जीतपर विलासिता! सम्भोग!! एक वर्ग भूख की आहों में झुलस रहा है किन्तु दूसरे वर्ग के कुत्ते भी दूध मलाई खाते हैं। कारों पर सैर करते हैं और दीन मानव ललचाई दृष्टि से देखता चला जाता है उनकी ओर। यह है आज के शिक्षित एवम् सफेदपोश मानव की मानवता, जहाँ धनहीन उपहासमात्र बन कर रह गया है!"

राज फुसफुसाकर फिर कहने लगा— "आज 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धान्त अपनाया जा रहा है। बड़ी मछली छोटी मछली को निगल रही है। आगे भी निगलती रहेगी? नहीं नहीं यह संभव नहीं हो सकता, विषमता के खिलाफ उठना होगा और इस पशुता के बदले में माँगनी होगी मानवता, अहिंसा के आधार पर ...।"

उसी समय बीच में टोकते हुए सन्तोष ने कहा—"राज बाबू यह आफिस है, व्याख्यान का प्लैटफार्म नहीं। क्रान्ति करनी है तो ऐसी करो जिसका शोला पूरे विश्व में विषमता की जड़ को हिला दे।" "किन्तु सन्तोष, हम अपनी क्रान्ति हिंसा के नहीं अहिंसा के बल पर सफल देखना चाहते हैं।" राज बोला।

"हिंसा-अहिंसा का प्रश्न नहीं है, आज तो प्रश्न है—जीविका का। जीविका पाना मानवता का पहला धर्म है। यही आज की मानवता का तकाजा है। बुभुक्षितम किं न करोति पापम्।..."

सन्तोष और राज वार्ता कर ही रहे थे कि चपरासी ने आकर कहा—"राज बाबू! साहब बुलाते हैं" और राज चपरासी के पीछे पीछे चला गया। साहब भौं चढ़ाता हुआ बोला—"मिस्टर राज हमें तुम्हारे काम से सन्तोष नहीं है आगे के लिये सावधान रहना; जाओ।"

राज इस अपमान से क्षुब्ध हो उठा। विष की घूंट पीने पर उसके कटाक्ष और भी असहनीय हो रहे थे। सबके सामने राज को अपमानित होना पड़ा था। फलस्वरूप राज का हृदय चीख उठा! वह अपमान सहन नहीं कर सकता, स्तीफा दे देगा किन्तु अपना स्वाभिमान नहीं बेच सकता और वह सचमुच ही स्तीफा देकर आफिस के बाहर आ गया। सन्तोष ने बहुत कुछ समझाया लेकिन उसके हृदय में विचार-क्रान्ति का शोला भड़क रहा था, और अब वह समाज के नव-निर्माण का एक दूसरा ही मधुर स्वप्न देख रहा था।

उन्नति का उपाय

"उन्नति का सर्वश्रेष्ठ उपाय यही है कि गुण सबसे ले ले।"

स्वामी रामतीर्थ

बच्चे और बड़े

—श्री मुरारिलाल शर्मा—

आजकल जहाँ भी चार आदमियों में बच्चों की चर्चा होती है वहीं लोग प्रायः यही कहते हैं—"आजकल के बच्चे बड़े ही उद्धत, मूर्ख और गँवार हैं। ये शिष्टाचार का पालन करना तो दूर की बात रही उसका नाम तक नहीं जानते।" लोगों के इस कथन में बहुत-कुछ तथ्य भी है। किन्तु इतना कह देने से ही तो बच्चों का सुधार न होगा। हमें ध्यानपूर्वक इस बात का ठीक-ठीक पता लगाना होगा कि इसमें दोष बच्चों का है या बड़ों का?

यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि बच्चा अनुकरणशील होता है। वह जैसा बड़ों को करते देखता है वैसा स्वयं भी करने लगता है। बच्चों को हम अपने दैनिक कामों में प्रायः बड़ों का अनुकरण करते देखते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम बच्चों के सामने कोई भी ऐसा काम न करें, जिसे हम बच्चों के लिए उचित नहीं समझते।

इस विषय में मैं अपने कई बहुमूल्य अनुभव 'अणुव्रत' के पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता हूं। एकबार मैं एक पुस्तक लिख रहा था। मेरा छोटा-सा पोता 'विनोद' मेरे पास आया और मेज पर हाथ रख झुककर खड़ा हो गया। उसके हाथ के लगने से मेज पर रक्खी हुई स्याही की शीशी लुढ़क गयी। मेजपोश और मेरे कपड़े स्याही से लथपथ हो गए। मैंने क्रोध में लाल-पीली आँखे करके कहा—"अबे विनोद के बच्चे।"

मेरे मुँहसे ये बातें सुनते ही बच्चा लगभग आध मिनट ठिठका किन्तु फिर उसने भी लाल-पीली आँखें करके कहा—"अबे बाबाके बच्चे!" मैं अपनी भूलको तुरन्त ताड़ गया और मैंने बच्चेको गोदमें उठाकर कहा—"बेटा विनोद! देखो तुमने स्याही बखेर दी। स्याही से मेज पोश और तुम्हारे बाबाजी, के कपड़े खराब हो गए।

बच्चे ने बड़े प्रेमसे उत्तर दिया—"बाबाजी, मैंने जान-बूझकर स्याही नहीं गिराई। अनजान में मेरा हाथ लग जाने से स्याही गिर गई, मैं मुआफी चाहता हूँ।" मैंने कहा—"कोई बात नहीं बेटा, आइन्दा इसका ध्यान रखना।" तबसे विनोद बड़ा सतर्क है।

६० वर्षकी आयु समाप्त होने पर मुझे आज से लगभग तीन वर्ष पूर्व अध्यापकी से अवकाश

आत्म-निर्माण

प्राप्त करना पड़ा। एकबार हम शिक्षक लोग छुट्टीके घण्टेमें अध्यापक भवन में बैठे बातें कर रहे थे। विद्यार्थियों की चर्चा छिड़ी तो एक शिक्षक बोले—"आजकल के लड़के बड़े ही पाजी और उल्लू के पट्ठे हैं। टीचरों का मुकाबला करते हैं। ऐसे लड़कों को जूते मार कर स्कूलसे एकदम बाहर निकाल देना चाहिए।"

मैंने कहा—"बच्चोंके लिए ऐसे भद्दे शब्दोंको प्रयोगमें लाना आपको शोभा नहीं देता। यदि बच्चोंमें कुछ त्रुटियाँ हैं तो उसमें हमारा भी दोष है। इसका स्पष्ट मतलब यह है कि हम बच्चोंके सामने अपने अपने चरित्र का ठीक नमूना पेश नहीं करते।"

अगला घंटा मेरा उसी क्लासमें था जिसकी चर्चा छुट्टीके घण्टेमें हुई थी। मैंने उस क्लासके बच्चोंसे पूछा—भाई, क्या बात है जो कुछ शिक्षक आपलोगों की शिकायत करते हैं?"

एक दूसरे के बाद कई लड़कों ने कहा—शर्माजी, बात कुछ भी नहीं। कुछ शिक्षक क्लासमें बैठे समाचार-पत्र पढ़ते रहते हैं और यदि कोई लड़का कोई बात पूछता है तो—'नालायक, पाजी, बेहूदा' कहकर फटकार देते हैं। यह तो सरासर अन्याय है। पढ़ानेवाले सौम्य शिक्षकों के सम्मुख तो कोई भी विद्यार्थी चूँ तक नहीं करता।

हमारे घरके बच्चोंको यह बात अच्छी तरह मालूम है कि व्याह-शादी में जिसका निमन्त्रण हो उसे ही सम्मिलत होना चाहिए, एकबार हमारे एक घनिष्ठ मित्रकी पुत्रीका विवाह था। निमन्त्रण देकर उन्होंने हमें विवाह में सम्मिलित होने के लिए सपरिवार बुलाया।

मेरी पौत्री मनोरमा बोली—"बाबाजी, पीताम्बर ताऊजी की लड़की की शादी है। हम भी चलते किन्तु उन्होंने हमें तो निमन्त्रण दिया ही नहीं।"

मैंने कहा—"मनोरमा तुम भी चलोगी, तुम्हारी माताजी भी चलेंगी और चाचा-चाची भी। कारण, उन्होंने मुझे सपरिवार बुलाया है। तुम सब मेरे परिवार के सदस्य हो। हाँ, यदि वे मुझे सपरिवार न बुलाते तो मैं अकेला ही जाता।"

हम प्रायः देखते हैं कि बहुत-से लोग व्याह-शादीमें बाल-गोपाल सहित निमन्त्रण न होने पर भी बच्चोंको मुफ्तकी मिठाई खिलाने ले जाते हैं। ऐसा करना शिष्टाचार के विरुद्ध ही नहीं वरन् बच्चोंको निर्लज्ज और अशिष्टाचारी बनाना है।

अतः बच्चोंके चरित्र-निर्माण के पूर्व बड़ोंको अपना-निर्माण करना चाहिए।

देश-विदेश में नैतिक-क्रान्ति

श्री महावीरसिंह गौतम

आधुनिक युगको विज्ञान का युग कहते हैं। कारण कि समस्त संसार आज विज्ञान के परिधान से घिरा है। विज्ञान से आच्छादित आज संसार को हम किस दृष्टिकोण से निहार रहे हैं यह भी देश-काल के प्रभाव से बच नहीं रहा है। विज्ञान की क्रमशः वृद्धि से पुरुष अधिक लौकिक और भौतिकवादी होता जाता है और इसके विपरीत प्रकृति और उसके शाश्वत नियमों से उतने ही परे।

विज्ञान की उन्नति मनुष्य की आध्यात्मिक सामाजिक, धार्मिक एवं मानसिक अवनति है। एक ओर विज्ञान है तो एक ओर अज्ञान भी है। एक ओरउन्नति है तो दूसरी ओर अवनति भी। एक ओर विज्ञान द्वारा एक अन्डेसे बहुत से मुर्गीके बच्चे बन सकते हैं, एक प्रकार की मटर से सैंकड़ों प्रकार के रंगोंके फूलके पौधे उगाये जा सकते हैं। इन्जेकशन द्वारा ही अनेक गायें गर्भित हो सकती हैं। ऐसा डर्विन के सिद्धान्त ने सिद्ध कर दिया है। नर, नारी और नारी, नर बनाया जा सकता है—यह अमरीका ने भी कर दिखाया है। जेम जीन्सने भी अद्भुत भूगौलिक और चाँद सितारों के प्रयोग से विश्वको एक नवीन विचारधारा दी है। अणु प्रयोग से भी जो असम्भव था सम्भव हो गया है। किन्तु मानव की आध्यात्मिक एवं नैतिक उन्नति का क्या हुआ? इसके ह्रासमें इतना ही कहना ठीक है कि मानव ने पूर्ण-रूपेण वह सब कार्य अपने जिम्मे ले लिया है जो दानव का है।

आजके युगमें विज्ञान से प्रभावित होना आश्चर्यजनक नहीं है और फलस्वरूप आदमियत से दूर होना भी आश्चर्यजनक नहीं है। नैतिकता विज्ञान से परे रहेगी और ज्ञान के समीप। ज्ञानके और ज्ञानियों के सम्पर्क से भावना की उन्नति होती है और भावना से प्रत्येक से स्नेह सहानुभूति, सद्भावना और आत्मीयता एवं सम्बन्ध। तब प्रत्येक प्रत्येक में दर्शन करता है और तब मनुष्य उदार होता है और उदारता भद्र पुरुषों में अच्छे चरित्र और नैतिकता का अभिर्भाव करती है। तब वसुधा एक परिवार बन जाती है। कहा भी है:

'उदार चरितानाम वसुधैव कुटुम्बकम्'

प्रोफेसर रोबर्ट लिन्डने भी भावनाओं से प्रेरित पुरुष को ही एक सभ्य पुरुष कहा है; अपनी 'कविता' शीर्षक लेखमें उन्होंने कहा है कि भावनाहीन मनुष्य पशु है और इसी कारण अबतक युद्ध होते चले आते हैं। उनका कहना है कि भावना से ही तो हम माँ-बाप, भाई बहन, पत्नी, मित्र आदि अनेकानेक सम्बन्ध जोड़ते हैं और मां को माँ जैसी, बापको बाप जैसी पत्नीको पत्नी जैसी भिन्न-भिन्न भावनाओं से आचरण करते हैं। भावना की अनुपस्थिति में हम किसीको भी कुछ समझ सकते हैं और युद्ध—इसी भावना की कमीका कारण है नहीं तो हम विरोधियों को भाई या मित्र समझते।

नैतिकता का इसी भावना से सम्बन्ध है और इस भावना का ह्रास कदाचित् सब देशोंमें हैं। नैतिक उत्थान-व्यक्तिगत समस्या अधिक है। इसकी उन्नति और अवनति बहुत कुछ आजके प्रजातन्त्र राज्योंके ऊपर भी आ पड़ी है। व्यक्ति, राज्य तथा सरकार एक दूसरे पर निर्भर होते हैं और आजके युगमें देश-विदेश की नैतिक क्रान्ति अपना एक नया स्थान रखती है। कुछमें क्रान्ति और कुछमें शनः शनैः जागृति हो रही है।

भारत का भाल हिमालय की भाँति सदैव विश्वमें गर्वोन्नत रहा है। मुसलमानों और अंग्रेजों के आधिपत्य से हम दब गये और कई सौ वर्ष हम निद्रा और तन्द्रामें रहे और इस बीचमें हम अवश्य अपने चरित्र और नैतिकता से च्युत हो गये। लेकिन यह सब क्षम्य भी है क्योंकि हम कुछ समय तक अपाहिज की भाँति असमर्थ रहे। कहा भी है।

'विपरो मर्यादा न अस्ति।'

हमारी नैतिकता धर्ममें निहित रही है और हमारा जीवन और आचरण धर्मके अनुकूल रहा है। भारत ने सदैव विश्वशान्ति की उपासना की है और अपना सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन त्याग एवं प्रेमकी कसौटी पर कसा है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, निष्कपटता, शौच, सन्तोष, तितिक्षा, सत्संग, सेवा, यज्ञ, दान, तप, स्वाध्याय, शम, दम, विनय, आर्जव, दया, श्रद्धा, विवेक, वैराग्य, अपरिग्रह, समाधान, उपरामता, क्षमा, धैर्य, अद्रोह, निरहंकारता, शान्ति आदि आदि हमारे विशेष नैतिक आचरण हैं जिनसे भारत को अपनी नैतिकता पर गर्व रहा है।

पूज्य बापू और विनोवा वर्तमान युगके नैतिक और सामाजिक क्रान्ति के भारत के ही नहीं, वरन् समस्त विश्वके पिता हैं। इसका गौरव सम्पूर्ण जगत को है।

रूसमें नैतिक क्रान्ति साम्यवाद के द्वारा श्रम विभाजन की कसौटी पर है। भारत की कसौटी जब चरित्र निर्माण और आध्यात्मिक उन्नति पर है तो रूसकी श्रम और हिंसाके

सिद्धान्त पर। राज्यकी भक्ति उनकी नैतिकता की परख है। यदि कोई भी नागरिक राज्यकी आलोचना करेगा तो यह आलोचना अनैतिक होगी। यद्यपि विज्ञान द्वारा रूस अधिक विकसित है किन्तु नैतिकता जैसी व्यक्तिगत कोई वस्तु नहीं।

ब्रिटेन और अमरीका की नैतिक क्रान्ति उनके विज्ञान और धनमें है। उनकी परम्परा दूसरे राज्योंसे अनाधिकार चेष्टाएं हैं। युद्ध कौशल और अणुशक्ति उनकी आध्यात्मिक उन्नति है। नैतिकता है छोटे-छोटे राज्योंको छेड़ना और नैतिक क्रान्ति है विज्ञान और अणुशक्ति का यदाकदा दूसरों पर प्रयोग और इसका विश्वको भय दिखाना।

स्विटजरलैन्ड की नैतिकता उनकी शान्ति गम्भीरता और बुरी बातें न सुनें, न देखें, न कहें—इसमें है। वहांके मनुष्य ज्ञानी और भावुक हैं। प्रजातन्त्र का उपयुक्त लाभ उठाना वे जानते हैं। वहां की नैतिकता केवल इस बातसे जानी जा सकती है कि उन्होंने कभी भी युद्धमें भाग नहीं लिया। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध में स्विटजरलैन्ड किसी भी तरफसे नहीं आया और सबसे पृथक रहा। अब भी इतने उदार और खुले हृदयों के पुरुष हैं कि संसद के अनुरोध करने पर भी वे संसद में नहीं जाना चाहते और जो अनुरोधसे चला जाता है वह निष्काम सेवा करना है। यह बात मान्य है। इस प्रकार प्रजातन्त्र के रूपमें उनकी नैतिक क्रान्ति चल रही है।

पाकिस्तान की अपनी ही विचित्र नैतिकता है। धर्म और केवल मुस्लिम धर्म वहां मान्य है। इस धर्म की मान्यता ही नैतिकता है। हिंसा भी कदाचित् अनैतिक न हो।

इस प्रकार हमने देश-विदेश के नैतिक दृष्टिसे प्रबल गति-विधियां और प्रयोग देखे। हमें अब नैतिक विकास देखना है कि कौन-कौन उपायों से सम्भव हो सकता है। यह भली-भाँति निरीक्षण हो चुका है कि वर्तमान युग विज्ञान और भौतिकवाद से परिपूर्ण है और इस दिशामें भविष्य में भी प्रयत्नशील रहेगा। नैतिकता की नींव सद्विचार, सद्भावना और आध्यात्मिक उन्नति पर निर्भर है। अतः हमारे लिए ऐसे सिद्धान्त और जीवन ही एक उदाहरण है जिसके ऊपर चलने से हम न केवल नैतिक दिशामें वरन् विभिन्न दिशाओं में उन्नत, सफल और गतिमान हो सकें।

—:o:—

नवयुग को धरती पर लायें

[मुनिश्री सुखलालजी]

आओ हम नवयुग के हामी, नवयुग को धरती पर लायें

- १ -

अब समय नहीं है सोने का, अब समय नहीं है खोने का
हम क्या कर सकते हैं—के नारों से कायर बन रोने का
अब जागो और जगाओ का आह्वान सभी हम अपनायें
आओ हम नवयुग के हामी, नवयुग को धरती पर लायें

- २ -

अब नहीं काम चल सकता है, धन से धरती को भरने से
अब नहीं काम चल सकता है, औरों की निंदा करने से
अपने जीवन से स्वयं आज, हम जग को सत्पथ दिखलायें
आओ हम नवयुग के हामी, नवयुग को धरती पर लायें

- ३ -

कुछ चाह नहीं अब हो, हमको आनेवाले अनुरोधों की
परवाह नहीं अब हो हमको, जग के अनगिनत विरोधों की
अपने से ही नित नई प्रेरणा, ले आगे बढ़ते जायें
आओ हम नवयुग के हामी, नवयुग को धरती पर लयें

- ४ -

यह नहीं अपेक्षा हो हमको, जनताकि हमारे गुण गाये
यह भी न उपेक्षा हो हमको, जग चलता ज्यों चलता जाये
इस पतली सी पगडंडी पर, आगे-आगे बढ़ते जायें
आओ हम नवयुग के हामी, नवयुग को धरती पर लायें

- ५ -

केवल उपदेश कहीं पर क्या, नवयुग का सर्जन करते हैं
केवल कानून कहीं पर क्या, नैतिक बल अर्जन करते हैं
हम जीवन से उपदेश और कानून, प्रगट कर दिखलायें
आओ हम नवयुग के हामी, नवयुग को धरती पर लायें

समस्याओं का हल

[एक विचारक]

वर्तमान युग, विज्ञान युग व अणुयुग के नाम से पुकारा जाता है। आज मानव को यह अभीष्ट नहीं कि वह जिस दूरी तक बढ़ पाया है, वहीं अपने प्रगति-द्वार को अवरुद्ध कर दे। वह चाहता है कि तब तक अबाध-गति से वह बढ़ता चले, जबतक प्रगति की अंतिम मंजिल का साक्षात् दर्शन न हो पाये। यह उसके अधिकार से परे नहीं, किन्तु प्रगति-लक्ष्य की निश्चितता अवश्य अपेक्षित है। केवल नये-नये भौतिक साधनों के आविष्कारों से जनता को चमत्कृत करने का उद्देश्य तो कोई खास महत्व नहीं रखता। समाज में सुविधा के साधन विकसित होने से सुविधा बढ़े, इसे कोई समाज-शास्त्री अनुचित नहीं बतायेगा। किन्तु वे साधन आगे जाकर कितनी भयंकर विषमताओं और संघर्षों का रूप धारण कर लेते हैं इससे कौन अनभिज्ञ है। कौन नहीं जानता कि आज का मानव समस्याओं की विकरालमुखी ज्वालाओं में बेहद झुलसा जा रहा है। आज मानवता पर पूंजी हावी हो रही हैं, सर्वत्र पूंजी की हीं प्रतिष्ठा नजर आती है। पूंजी के इच्छुक, परिवार की सम्पन्नता के इच्छुक और भोग विलास के इच्छुक व्यक्तियों को वे मिलजाय तो सफलता की इतिश्री समझ लेते हैं। कहने को तो धनपति है, सत्ताधीश है लेकिन अन्दर में गोले जल रहे हैं। अर्न्तमुखी बनकर देखें कि वे अपनी आत्मशक्ति का कितना दिवाला निकाल चुके हैं। यह पतन की पराकाष्ठा नहीं तो क्या है? भारतीय जीवन एवं भारतीय संस्कृति में जीवन की सफलता और सम्पन्नता का आधार भौतिक पदार्थों का विकास नहीं रहा। भौतिक अभिसिद्धियाँ यहाँ के जीवन का चर्म लक्ष्य कभी नहीं बन सकी। यहाँ पूंजी का महत्व कभी नहीं रहा। यदि पूंजी का महत्व होता तो बड़े-बड़े सम्राट राजपाट, धन दौलत सब कुछ छोड़ त्याग का रास्ता क्यों लेते? यहाँ महत्व त्याग और संयम का रहा है, किन्तु आज के भौतिकवादी युग ने तो जीवन के दृष्टिकोण को ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है।

अशांति, असहयोग, अनाचार, अन्याय, अत्याचार आदि असद्कार्यों से ऊबकर आज प्रत्येक मानव सुख की टोह में हैं। क्या राजनैतिक संस्थायें, क्या आध्यात्मिक व नैतिक आन्दोलन सभी का एक ही लक्ष्य है कि मानव दुःखों से मुक्त होकर सच्चे सुख का अनुभव करे। किन्तु जब तक दृष्टिकोण शुद्ध नहीं बनता तब तक शुद्ध मार्ग की प्रगति नहीं होती और उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती। सच्चे सुख के लिये संयम व नैतिकता की परम आवश्यकता है। नैतिकता के लिये

पथिक मत रुकना कहीं पर

[मुनिश्री इन्द्रमलजी]

पथिक मत रुकना कहीं पर !

उषा की है स्वर्ण वेला, गगनमणि आया मही पर
भयंकर भूचाल तेरे, मार्ग में आते रहेंगे,
परीक्षक बनकर तुम्हारा, परीक्षण करते रहेंगे,
हो-सबल-उत्तीर्ण होना, धैर्य को मत छोड़ देना,
का पुरुष की क्लीवता से, स्वयं को मत जोड़ देना,
धैर्य को साथी बनाना, ध्यान में रखना यहीं पर॥

महासागर बीच में है—वीरता से पार करना
ज्ञान के आलोक से पथ का निरन्तर तिमिर हरना,
विरोधी वातावरण को, देखकर मत क्षुब्ध होना,
विषैली अनुकूलता में मत कही अस्तित्व खोना,
दूर है मंजिल तुम्हारी, देखलेना तुम वहीं पर॥

वज्र चट्टानें तुम्हारी प्रगति में बाधक बनेगी
स्निग्ध शीतल-हवाएँ-शैथिल्य की साधक बनेगीं
सघन भीषण आपदाएँ, मृत्यु को देगी निमन्त्रण,
प्रकृति भी प्रतिकूल होकर, करेगी तुम पर नियन्त्रण,
शक्ति का केन्द्रीकरण कर, बढ़ चलो साथी महिपर
पथिक मत रुकना कहीं पर !

सबल स्थिति व सबल आत्मा की अधिकाधिक आवश्यकता है। सबल स्थिति के लिये अधिकाधिक उत्पादन आवश्यक होता है। उत्पादन के दो मार्ग हैं। केन्द्रीयकरण पद्धति के अनुसार शोषण-संग्रह रूपी जल से अधिकार रूपी वृक्ष पुष्पित व पल्लवित होकर संदेह, अविश्वास व भय इत्यादि फलों को जन्म देता है। विकेन्द्रीयकरण पद्धति के अनुसार ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति के द्वारा शासनमुक्त व शोषणमुक्त समाज रचना होगी। जहाँ व्यक्तिगत मिलकियत व मालकियत के निराकरण के साथ व्यक्तिगत संग्रह लोलुपता व आर्थिक प्रभुत्वाकांक्षा का निराकरण होगा। इस दिशा में सर्वोदय आंदोलन की प्रवृत्तियाँ उत्तरोत्तर बढ़ रही हैं, यह अत्यन्त खुशी की बात है।

(शेषांश पृष्ठ १६ का)

कर दर्शन का नया स्रोत नयी दिशा की ओर मुड़ता है।

"रूपान्तरवाद की क्या विशेषता है? दार्शनिक जगत् में इसने कौन-सी क्रान्ति ला दी?" मैंने प्रश्न किया, तो वे कहने लगे—रूपान्तर का सीधा अर्थ परिवर्तन है। भगवान् शंकर ने ब्रह्म को एकमात्र सत्य बतलाया और जगत् को पूर्ण मिथ्या करार दिया, तो मार्क्स् ने जड़ जगत् को सत्य माना और ब्रह्म की कल्पना निराधार बतलायी; किन्तु श्री अरविन्द ने दोनों को सत्य माना। यह एक सामान्य धारणा बन गई है कि जड़ शरीर का अन्त हो जाना अनिवार्य रूप से सत्य है। लेकिन श्री अरविन्द का विचार है कि व्यक्ति अपने अन्दर साधना-बल से रूपान्तर लाकर अपने को मृत्यु से ऊपर उठा सकता है। जब शरीर चेतना को रख सकने में समर्थ नहीं होता, तब इसकी मृत्यु हो जाती है; किन्तु यदि शरीर में इतनी क्षमता कायम रहे कि वह पूर्ण चेतना को अपने अन्दर रख सके, तो उस शरीर का नाश अनन्तकाल तक सम्भव नहीं हो सकता है। हम अपने धर्म-ग्रन्थों में इसका उल्लेख पाते हैं कि पूर्वकाल के ऋषियों की आयु बहुत लम्बी होती थी और वे अपनी इच्छा से जबतक चाहते जीवित रहते थे। इसका कारण यह था कि उन ऋषियों ने अपनी साधना से अपने शरीर को पूर्ण क्षम बना लिया था, जिससे चेतना उनके इच्छित काल तक रह सकती थी। यही है रूपान्तर का प्रभाव। पांडिचेरी-आश्रम में आज योग के द्वारा यह रूपान्तर की क्रिया सिद्ध की जा रही है। इस क्रिया के द्वारा एक वृद्ध भी यौवनावस्था प्राप्त कर सकता है। श्री माँ को देखिये। इनकी अवस्था लगभग सत्तर साल की है, लेकिन वे इतना कार्य करती रहती हैं कि कोई देखकर दंग रह जायगा। बच्चों को पढ़ाना, बड़ों को उपदेश देना, प्रतिदिन एक बड़ी संख्या में पत्रों का उत्तर देना, आश्रम का संचालन करना, चिन्तन-मनन और अध्ययन करना और नियमित रूप से खेल के मैदान में उपस्थित रहना, इतने कामों को करते हुए भी श्री माँ कभी उदास नहीं मालूम होतीं, इनका प्रसन्न और उत्साह-पूर्ण चेहरा युवक-सा कान्ति-स्फूर्तिमय प्रतीत होता है। आश्रम में लगभग आठ सौ व्यक्ति रहते हैं और सभी अपने में रूपान्तर लाने का प्रयोग कर रहे हैं। योगिराज इसी प्रक्रिया के द्वारा सारे जगत् को बदलने की बात करते थे।"

इस उत्तर के बाद मैंने आपत्ति की—"यदि रूपान्तर की क्रिया से शरीर अमर हो सकता है, तो योगिराज की ही मृत्यु क्यों हुई?" इसके उत्तर में आरसीजी ने बतलाया—"योगिराज की मृत्यु को मृत्यु नहीं, वरन् बलिदान कहा जाता है। यह मृत्यु स्वेच्छा से हुई है। श्री अरविन्द के विचारानुसार सृष्टि में विकास-प्रक्रिया आदि काल से चल रही है। इस विकास-क्रम में उन्होंने मानस (Mind) बृहत् मानस (Over-mind) और अति मानस (Super-mind) को माना है। उनकी मान्यता है जब अतिमानस (Super mind) आवेगा तब सृष्टि के विकास का अन्तिम रूप प्रकट होगा। उस समय मृत्यु नाम की कोई चीज नहीं होगी और जो स्वेच्छा से शरीर-त्याग करेगा वह बलिदानी कहलायेगा।"

"श्री अरविन्द का विकासवाद डारविन के विकासवाद से भिन्न है?" मेरे इस प्रश्न को स्पष्ट करते हुए उन्होंने बतलाया—"डारविन ने विकास के मूल में संघर्ष को माना है; किन्तु इसके विपरीत श्री अरविन्द विकास के मूल में सहयोग को मानते थे। यह जड़ और चेतन का पारस्परिक सहयोग है। उनके विचारानुसार पहले प्राण होता है तब मन (Mind)। इसी मन या मानस से विकसित होकर व्यक्ति बृहत् मानस (over mind) और अन्त में अतिमानस (super mind) की उपलब्धि करेगा। हमारे यहाँ के अवतारवाद में भी विकासवाद किया है। ब्रह्म का प्रथम अवतार मत्स्य के रूप में, दूसरा कच्छप के रूप में माना गया है और इसी प्रकार वराह, नरसिंह, वामन आदि अवतार होते गये हैं। इस विकास-क्रम से यह स्पष्ट भासित होता है कि ज्यों-ज्यों चेतना का प्राबल्य होता गया है, त्यों-त्यों शरीर और रूप भी बदलते गये हैं। मत्स्य, कच्छप, वराह तथा नरसिंह-रूप में शारीरिक बल की प्रधानता है, किन्तु आगे चलकर बुद्धि प्रबल हो जाती है, जिसका विकसित रूप हमें कृष्णावतार तथा रामावतार में मिलता है।"

विकासवाद को और स्पष्ट करने के विचार से मैंने पूछा—'विकास प्राकृतिक नियम के अनुसार स्वतः होता रहेगा या व्यक्ति को इसके लिए कर्म करना पड़ेगा?' इसके उत्तर में उन्होंने बतलाया—'कर्म करना व्यक्ति का स्वाभाविक गुण है। यह तो कर्म करेगा ही। स्वभावानुसार जो कर्म होगा वह अधिक और विशेष प्रभावप्रद होगा; किन्तु कर्त्तव्य मानकर विवशता से जो कर्म किया जायगा वह अल्पांश में और अपेक्षाकृत अल्प प्रभावप्रद होगा। आश्रम के निवासी स्वेच्छा से अपने स्वभावानुकूल कर्म करते हैं। जो व्यक्ति जो काम पसन्द करते हैं वे वही करते हैं और उसी कर्म के द्वारा वे अपने अन्दर रूपान्तर लाते हैं। यही है श्री अरविन्द का विकासवादी रूपान्तर-वाद, जिसके द्वारा उन्होंने अपने को बदला और संसार के लिए द्वार खोल दिया।'

यह चुप हुए, तो बगल में टेबुल पर रखी घड़ी को देखने लगे। रात के नौ बजे थे। भोजन का समय हो चुका था, अतः गोष्ठी स्वतः बन्द हो गई।

आन्दोलन के क्रियात्मक पक्ष की एक रूपरेखा

[श्री पारस जैन, अध्यक्ष]

अणुव्रत-आन्दोलन का मूल उद्देश्य शोषण विहीन समाज की रचना करना है। अणुव्रती साधु नहीं, गृहस्थी हैं, यद्यपि अपनी दैनिक प्रार्थना सुखी देखलो संत अकिंचन संयम ही जिनका धन है' के अनुसार उसका प्रयास उसी ओर कदम बढ़ाने का रहता है। गृहस्थी के सामने अपनी स्वयं की आजिविका और परिवार पालन की समस्या रहती है। अणुव्रती चाहता है कि उसकी आयका जरिया कुछ इस ढंग का हो जिससे किसी का शोषण न हो और स्वयं वह भी शोषित न हो, तभी तो शोषण-हीन समाज की स्थापना हो सकेगी।

अणुव्रती ऐसा कोई धन्धा नहीं कर सकता जो कुत्सित हो, घृणित हो, यथा शराब, मांस, बीड़ी, सिगरेट, जुआ और सट्टा-आदि। उसे तो सात्विक धन्धा-सद्व्यवसाय चाहिए। व्यवसाय में भी उसको प्रमाणिकता बरतनी पड़ती है। कूट माप-तोल, मिलावट, दगा वह कभी नहीं कर सकता है। आधुनिक व्यवसाय में हम देखते ही हैं कि ये चीजें कितना घर कर गई हैं। बहुत से व्यवसाय ऐसे मनुष्यों के हाथ में हैं जो अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से ऐसा करवाते हैं, उनको वाध्य किया जाता है।

अणुव्रत-अधिवेशन पर जब हम अणुव्रतियों के अनुभवों को सुनते हैं तो सारा कच्चा चिट्ठा हमारे सामने आता ही है। अतः अणुव्रती के लिये नौकरी करना भी एक समस्या सी हो गई है। अधिकांश स्थानों पर उसे ऐसा करनेके लिये कहा जाता है जिसको करनेके लिये उसकी आत्मा गवाही नहीं देती, परिणाम होता है नौकरी से हाथ धो लेना। वही आजीविका की समस्या उसके सामने फिर आ जाती है।

अतः अणुव्रती को किसी के आश्रित न रहकर स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना होगा। इसके लिये अणुव्रतियों को चाहिये कि वे आपस में सहकारी समितियाँ खोलकर या अन्य तरीकों से सदुद्योगों में जुटें या भिन्न २ स्थानों पर आश्रम खोलकर अपने श्रम द्वारा सात्विक उद्योग करें, जिनसे उनकी आजीविका तो चलेगी ही, साथ ही वे मानव की सच्ची सेवा भी कर सकेंगे। मानवता के पुजारी बन सकेंगे।

उदाहरणार्थ समझ लीजिये स्थान 'अ' में एक निष्ठावान् अणुव्रती ने पांच साथियों को लेकर या अकेले ही एक आश्रम खोला और वहां एक प्राथमिक विद्यालय चलाया। बच्चों को सद्-शिक्षा दी। चूंकि अणुव्रत-आन्दोलन में चरित्र पर विशेष बल दिया जाता है अतः अभिभावकगण स्वयं अपने बच्चों को वहां भेजेंगे, जहां न केवल अध्यापक स्वयं अणुव्रती होंगे अपितु बालकों को भी उस ओर मोड़ने का प्रयास करेंगे। थोड़े दिनों में स्कूल फलता है, छात्रों के रहने के लिये वहाँ एक छात्रावास की स्थापना हो जाती है। काम के विस्तार के साथ कई अणुव्रती कार्यकर्त्ता खादी के काम में जुट पड़ते हैं। रुई साफ करने का धंधा, पूनी बनाने का धन्धा, कातने और बुनने का काम भी वहीं होने लगता है अर्थात् वस्त्र भी वहीं बनने लग जाते हैं। कितने ही अणुव्रती कार्यकर्त्ता ऐसे कामों में खप सकते हैं।

उधर कार्यकर्त्ताओं का एक दूसरा जत्था कृषिकी ओर कदम बढ़ाता है। आवश्यकता की वस्तुएं साग, सब्जी और यहाँ तक की चावल भी वहीं पैदा करने लगते हैं। प्राथमिक स्कूल भी बढ़कर हाई स्कूल हो जाता है।

कुछ अर्से बाद वहीं उसी आश्रम में ग्रामोद्योगको प्रोत्साहन दिया जाता है, तेलघानी का काम, हाथ से आटा पीसने का काम (Ball Beaing की चकियों से), साबुन उद्योग, दियासलाई उद्योग, और यदि पासमें समुद्र आदि हो और परिस्थितियाँ अनुकूल हो तो नमक उद्योग आदि को पनपाया जा सकता है। इस तरह सैकड़ों अणुव्रती कार्यकर्त्ता एक आश्रम में खप जाते हैं।

इन कार्यकर्त्ताओं में कुछ चिकित्सक, विशेषतः प्राकृतिक चिकित्सक भी हो सकते हैं। उनके द्वारा वहां चिकित्सालय चलाया जाता है जहाँ साथी रोगियों की सेवा हृदय से की जाती है—पैसा और प्रलोभन के लिये नहीं, प्रेम के लिये और मानवता के प्रसार-के लिये।

ये सब काम यदि निष्ठा से व निष्ठावान, सच्चे और संयमी अणुव्रती कार्यकर्त्ता के संरक्षण में किये जांय, तो सफलता न मिले, ऐसी कोई बात नहीं है। परन्तु संरक्षक कार्यकर्त्ता का सोलह आने टंच सोना होना जरुरी है, अगर वही बारह आने हुआ, तो फिर काम बननेवाला नहीं और आज तो भारत सरकार भी हमारे सामने आई है, खादी प्रचार और ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिये वह सब प्रकारकी सहायता प्रामाणिक व्यक्तियों को देने को तैयार है। कर्ज देती है, अनुभवी और शिक्षित काम करनेवालों को सेवायें देती है जो अन्य लोगों को शिक्षित (Trained) करते हैं। उपभोक्ताओं (consumers) को क्रय में रियायत (Subside)

(शेषांश पृष्ठ ३० पर)

युवक सम्मेलन का आयोजन

सरदारशहर (डाक से) ११ जून को आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में एक युवक सम्मेलन का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। युवकों व बालकों की अच्छी उपस्थिति उनकी उमंग, उत्साह व हृदय की अध्यात्म निष्ठा और धर्मानुराग की परिचायक थी। इस आयोजन में मुनिश्री रूपचन्दजी, श्री गौरीशंकर आचार्य, श्री मूलचन्द सेठिया, श्री दीपचन्द नाहटा तथा श्री मोहनलाल जैन आदि ने भी अपने विचार प्रकट किये।

अणुव्रत विचार-गोष्ठी

भुसावल (डाक से) ७ जून को यहाँ मुनिश्री पुष्पराजजी के सान्निध्य में एक गोष्ठी का आयोजन रखा गया। ज्ञानेश्वरी के ज्ञाता श्री देवराव वहाड़े गुरुजी ने प्रमुख वक्ताके रूपमें भाग लिया। लगभग ४०० की उपस्थितिमें स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्तियों के अतिरिक्त अनेक भाई-बहनों ने भाग लिया।

अणुव्रत विचार-परिषद्

देहली (डाक से) यहाँ २४ जून को नया बाजार में आयोजित 'अणुव्रत विचार-परिषद्' में मुनिश्री नगराजजी व राष्ट्रसंत श्री तुकड़ोजी के प्रभावशाली प्रवचन हुए। इनके अतिरिक्त प्रो० श्री आई० सी० शर्माने अपनी कविता प्रस्तुत की। श्री यशपाल जैन ने सर्वोदय सम्मेलन के रोचक संस्मरण सुनाये।

अणुव्रत प्रार्थना का संशोधित रूप

बड़े भाग्य हैं भगिनी बंधुओं! जीवन सफल बनायें हम।
आत्म साधनाके सत्पथमें, अणुव्रती बन पायें हम ॥आंकड़ी॥

अपरिग्रह, अस्तेय, अहिंसा, सच्चे सुख के साधन हैं।
सुखी देखलो सन्त अकिंचन, संयम ही जिनका धन है॥
उसी दिशा में, दृढ़ निष्ठा से, क्यों नहीं कदम बढ़ायें हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पायें हम ॥१॥

रहें यदि व्यापारी तो, प्रामाणिकता रख पायेंगे।
राज्य कर्मचारी जो होंगे, रिश्वत कभी न खायेंगे॥
दृढ़ आस्था, आदर्श नागरिकता के नियम निभायें हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पायें हम ॥२॥

गृहणी हों, गृहपति हों, चाहे विद्यार्थी अध्यापक हों।
वैद्य, वकील शील हो सबमें, नैतिक निष्ठा व्यापक हो॥
धर्म शास्त्र के धार्मिकपन को, आचरणों में लायें हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पायें हम ॥३॥

अच्छा,हो अपने नियमों से, हम अपना कन्ट्रोल करें।
मत ना दूजे वध बन्धन से, मानवता की शान हरें॥
यह विवेक मानव का निज गुण, इसका गौरव गायें हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पायें हम ॥४॥

आत्म-शुद्धि के आन्दोलनों में, तन-मन अर्पण कर देंगे।
कड़ी जांच हो लिये व्रतों में, आंच नहीं आने देंगे॥
भौतिकवादी प्रलोभनों में, कभी न हृदय लुभायें हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पायें हम ॥५॥

सुधरे व्यक्ति समाज व्यक्ति से उसका असर राष्ट्र पर हो।
जाग उठे जन-जन का मानस, ऐसी जागृति घर घर हो॥
तुलसी सत्य अहिंसा की, जय विजय ध्वजा फहरायें हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पायें हम ॥६॥

[नोट—'अणुव्रत-प्रार्थना' आवश्यकतानुसार केन्द्रीय कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।]

(शेषांश पृष्ठ २८ का)

देनी है। निष्ठावान अणुव्रतियों या प्रामाणिक कार्यकर्त्ताओं को भारत सरकार से सहायता प्राप्त कर सकना दुर्लभ नहीं।

उत्पन्न की हुई वस्तुओंके विक्रय की समस्या जटिल नहीं होती। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारें अपना 'स्टाक' ऐसे स्थानों से ही खरीदती हैं, इसके अलावा जब प्रामाणिक और शुद्ध चीजें भारत सरकारकी रियायत(Subside) के साथ ऐसे स्थान से जहाँ उपभोक्ताओं का मन भरता है, मिलती हैं तो उनका झुकाव उसी अमुक स्थान से वस्तु खरीदने का हो जाता है।

अब आप ही कल्पना कीजिये कि किस तरह पांच कार्यकर्त्ताओं द्वारा स्थापित आश्रम एक प्राथमिक स्कूल से बढ़कर एक सह-नगर (colony) के रूपमें परिणत हो गया, जिसमें कितने कार्यकर्त्तागण खप गये, सब सपरिवार उसी आश्रम में रहने लगे, आश्रम का एक विशाल रूप हो गया। वह एक 'अणुव्रत नगर' बन गया जहाँ सुबह सब मिलकर अणुव्रत की प्रार्थना करते हैं, अणुव्रत और भाई-चारे का प्रचार करते हैं। जीवन बनाये रखने की आवश्यकता की सभी वस्तुयें, खाना, साग, सब्जी, नमक, कपड़ा चिकित्सा, आदि सब वे स्वयं कर लेते हैं, और मजे की बात यह कि न तो वे किसी का शोषण करते हैं और न स्वयं किसी अन्य के द्वारा शोषित किये जाते हैं। सब श्रम, आचार और प्रामाणिकता को प्रश्रय देते हैं। अणुव्रत-आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य 'शोषण-विहीन समाज' की रचना हो जाती है।

अणुव्रत-आन्दोलन को प्रचारात्मक बल खूब मिला है, उसे और भी बल मिलना चाहिये, परन्तु क्रियात्मक सद्प्रवृत्तियों को भी बल दिया जाना चाहिए जिसका एक नक्शा ऊपर खींचा गया है; तभी स्वर्णमय अणुव्रत-आन्दोलन में सुगन्ध का प्रसार होगा।

—मद्रास में होनेवाली 'विचार-परिषद्' में व्यक्त विचारों के आधार

[विशेष सूचना—इस योजना व कार्यक्रम के सम्बन्ध में जो बन्धु विशेष जानकारी प्राप्त करना चाहें वे अणुव्रत-समिति के केन्द्रीय कार्यालय से पत्र-व्यवहार कर सकते हैं।]

[समालोचनार्थ पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियां कार्यालय में भेजनी चाहिये]

देश का सन्देश (कविता संग्रह) लेखक—श्री भीष्मसिंह चौहान 'भीष्म', प्रकाशक—नारायण प्रकाशन, लश्कर (म० भा०) पृष्ठ ६०, मूल्य एक रुपया।

स्वतन्त्रता के पश्चात् पदलोलुपता व अवसरवादिता ने साहित्य की स्वाभाविक गति को अवरुद्ध-सा कर दिया है। कर्तव्यपूर्ति की भूख जगानेवाले प्रेरक, स्फूर्तिदायक व प्राणवान् साहित्य का चारों ओर अभाव खटकता है। भीष्मजी ने इस ओर कुछ प्रयास तो किया है किन्तु इन कविताओं में विषयों की पुनरावृत्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि वे स्वयं भी चापलूसीके चक्कर से नहीं बच पाये हैं। फिर भी प्रस्तुत संग्रह में 'कहो सभीसे पढ़ने को,' 'मुक्त देशके युवकों जागो,' 'अब आराम हराम है' व 'श्रम जीवन का शृंगार है।' आदि कविताएँ वस्तुतः राष्ट्रीय जागरण का सन्देश देनेवाली हैं। जैसे—

आज राष्ट्र - निर्माण काल में
अपना स्वेद बहाना है।
मूर्त रूप देने 'सुराज' का,
सोते से जग जाना है॥
कभी न सोचो राष्ट्र-कार्य में,
सुबह और क्या शाम है।

× × ×

मुक्त देश की धरती प्यासी,
प्यासे सब इन्सान।
इनकी प्यास बुझाने सबको,
करना है बलिदान॥
नये देशको अपने श्रम से,
जीवन करो प्रदान।

भाषा व शैली सरल और सुबोध है। आवरण व छपाई साधारण। कलेवर को देखते हुए मूल्य कुछ अधिक मालूम होता है। विश्वास है भविष्य में कवि अपनी सरल स्वाभाविक अभिव्यक्ति द्वारा और अधिक प्रौढ़ रचनाएं प्रस्तुत कर राष्ट्र-जागरण में अपना महत्त्वपूर्ण योग प्रदान करेगा। —प्रभाकर

मानव (मासिक) संपा०—श्री रवि-शंकर "रवि", मानव कार्यालय तुमसर, मध्यप्रदेश, पृ० सं० ८५ मूल्य ६ आ०

'मानव' का मई अंक दृष्टिगत हुआ। इसमें विविध प्रकारकी रचनाओं को स्थान दिया गया है, यह बड़े हर्ष की बात है। भविष्य में इसका रूप और भी अधिक परिमार्जित होगा ऐसी आशा है।

रचनायें सुन्दर हैं किन्तु उनमें नवीनता का अभाव खटकता है। युगानुरूप भाषा का गठन शिथिल दिखाई पड़ता है। कहानियों में प्रायः २५ वर्ष पूर्व की प्रवृत्तियाँ पायी गयी हैं, नायक-नायिका के विरह-मिलन से ही किसी समस्या का समाधान, आवश्यक नहीं है। कहानी के उद्देश्यों की पूर्ति अन्य साधनों से भी की जा सकती है। समय की पुकार पर ध्यान देना आवश्यक है, यह समय प्रेमाख्यानक लिखने का नहीं है। देश को नव-निर्माण की आवश्यकता है। रूढ़ियों में जकड़े हुये समाज को स्वच्छ विचारों की जरूरत है। कविताओं की धारा फिल्मी राग से प्रभावित है। केवल पृष्ठ रंगने से कोई लाभ नहीं। विकासोन्मुख युग में स्वस्थ साहित्य की नितान्त आवश्यकता है।

जहाँतक छपाई का प्रश्न है वह दोषपूर्ण है, प्रूफ की त्रुटियाँ भी अधिक हैं। पत्रिका की सजावट अनिवार्य थी, वह काम अभी बहुत पीछे छोड़ दिया गया है। अगले अङ्कों में इन दोषों का परिष्कार होना आवश्यक है।

—पीताम्बर शास्त्री

सोमूदादा (मासिक) (वर्ष १-६), सम्पादक—श्री वेदप्रकाश शर्मा—सोमूदादा कार्यालय २६ ई/२४ ईस्ट पटेल नगर, नई देहली-१२, पृष्ठ संख्या ३०, मूल्य वार्षिक ३) एक प्रति ।) चार आना।

"सोमूदादा" का यह अंक बालोपयोगी कविताओं, कहानियों, चुटकले आदि से युक्त है जिन्हें पढकर बालकों के हृदय पर अमिट छाप पड़ना अवश्यम्भावी है। आवरण पृष्ठ आकर्षक और छपाई सुन्दर है। पत्रिका में "बच्चों के माता-पिता से", "अनोखी दुनियाँ" "लो अपने उत्तर" "हाँ भाई बच्चों बताओ तो जाने ?", "हमने भी अखबार पढ़ा" "क्लास रूम से" व "नानी की कहानी" आदि अनेक स्थायी स्तम्भ हैं जो रोचक होने के साथ ही शिक्षाप्रद व ज्ञानवर्धक भी हैं। पत्रिका की सामग्री पढ़कर ऐसा अनुभव होता है कि यह बच्चों को अपनी पत्रिका बनने के सर्वथा योग्य है।

—हृदयेश

भूल सुधार

गत अङ्कमें प्रकाशित श्री भगवानदास केला की पुस्तकके समालोचना—लेखक श्री पीताम्बर शास्त्री हैं श्री प्रभाकर का नाम भूलसे छप गया था। पाठकगण कृपया सुधार करलें।

श्री प्रतापसिंह वैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं
रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित

अङ्क १९

क्या यह समाज है, जो हमें नीचे गिराता है ? क्या यह दुनिया है, जो हमें नीचे दवाये रखनी है ? नहीं, आप तो इस दुनिया में रहते ही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति तो अपनी ही रचित क्षुद्र दुनिया में रहता है। कितने थोड़े ऐसे पुरुष हैं, जो इस संसार में रहते हैं ? इस विशाल संसार में बहुत ही थोड़े मनुष्य रहते हैं; आप तो अपनी रचित छोटी सी दुनिया में रहते हैं। आप लोगों ने अपने-अपने क्षुद्र व्यक्तित्व के चारों ओर अपनी २ दुनिया बना ली है। कितने लोग हैं, जो छोटे से घरेलू वृत से परे कुछ नहीं जानते। कितने ऐसे लोग हैं, जो अपनी जाति की सृष्टि के बाहर कुछ नहीं जानते। कितने ऐसे लोग हैं, जिनको अपने पति-पत्नि या बाल-बच्चों की रचित छोटी सृष्टि के बाहर कुछ मालूम नहीं। कम से कम आप इस विशाल संसार में तो रहिये। इन छोटी सी तुच्छ दुनियाओं से तो ऊपर उठिये। यह विशाल सृष्टि तो आपको नीचे नहीं दवाये रखती, ये आपकी-अपनी ही रचित छोटी-छोटी सृष्टियाँ हैं, जो आपको नीचे दवाये रखनी हैं, यदि आप इस (छोटी सृष्टि) से ऊपर उठ सके, तो सारी दुनिया आपके अधीन हो जायगी। आपके आगे हार मान लेगी।

—स्वामी रामतीर्थ

१५ ७ ७२ १९५६

आपके अणुव्रत के विषय में—

"...आज के युग में वस्तुतः ऐसी ही पत्रिका की आवश्यकता है। यह मेरा अटल विश्वास है कि नैतिक-जागरण और आत्मिक विकास के बिना संसार का कल्याण ही नहीं हो सकता। खेद है कि हमारे नेता और साहित्य निर्माता इस ओर ध्यान नहीं देते हैं। 'अणुव्रत' इस काम को कर सके तो सम्पूर्ण देश चमक उठे।"

—केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', पटना

"...'अणुव्रत' मुझे पसन्द आया। आपका प्रयास सफल हो और चिरायु हो। इसकी शुभ-कामना स्वीकार करें।"

—जगदीशचन्द्र अरोड़ा पत्रकार, काशी

"...समाज में नैतिकता का प्रसार करने में 'अणुव्रत' से बड़ी मदद मिलेगी, इसमें कोई शंका नहीं है। ऐसे पत्र की सचमुच बड़ी आवश्यकता थी। इस प्रयासके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं और उसमें सफलता चाहता हूं।"

—श्रीपाद जोशी, पूना

"...जबतक किसी समाज के व्यक्तियों का व्यक्तिगत व्यक्तित्व ऊँचा नहीं होता तब तक वह समाज महान् नहीं कहला सकता। साहित्य हमारे चरित्र की उन्नति अथवा अवनति में रामबाण साधन है। अच्छा साहित्य उत्थान तथा अश्लील साहित्य मानव जीवन को अधोगति में पहुंचा देता है। इस कसौटी पर 'अणुव्रत' जो स्थान पाता है, निःसन्देह वह सद्साहित्य का समर्थक होकर हमारे जीवन को सफलता के पथ पर अग्रसर करता है। इसमें बौद्धिक, शैक्षणिक, मनोवैज्ञानिक सभी प्रकार की सरस तथा सुपाठ्य सामग्री प्रस्तुत रहती है। पत्र की अभिवृद्धि तथा सम्पादक-मंडल की सफलता के लिये हृदय से मंगल-कामना करता हूं।"

—मित्रेशकुमार गुप्त, सं० सफल जीवन

"...आपका 'अणुव्रत' आध्यात्मिकता की दृष्टि से राष्ट्र की बड़ी ही महत्त्वपूर्ण सेवा कर रहा है। इस सेवा के द्वारा राष्ट्र में सदाचार की वृद्धि की पूर्ण आशा है, जिसका देश में पूरा अभाव सा हो रहा है।"

—भगीरथप्रसाद दीक्षित, लखनऊ

"...'अणुव्रत' का अंक देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ। इसकी सामग्री पठनीय है तथा रचनाओं का चयन एवं सम्पादन बड़ी कुशलता से किया गया है। व्यवसाय नहीं, बल्कि यह नैतिक साधना की पत्रिका है। मानवोचित शक्ति व चरित्र-निर्माण की स्पष्ट झलक इसमें मिलती है। इसमें मैंने जीवन का आदर्श नैतिक प्रवाह देखा। आपकी साधना उत्तरोत्तर बढ़े यही हमारी हार्दिक शुभ-कामना है।"

—मंत्री, श्री सरस्वती साहित्य-सदन

—इस अंक में—

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१
卐
वार्षिक मूल्य- ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १५ जुलाई, १९५६ क १९

जीवन के मूल्य बदलकर आत्म-शुद्धिकी ओर बढ़ना ही विवेककी उपयोगिता है !

जीवन-शक्ति प्रकृति की देन होती है। वह मानव में भी होती है और अन्य प्राणियों में भी। जीवन शक्ति दोनों में होते हुये भी मानव और पशु में विवेक शक्ति का जो अन्तर होता है उसी कारण मानव को विवेकशील या विकासशील प्राणी माना गया है। मानव विवेकी प्राणी ठहरा, वह उस विवेक का क्या उपयोग करे ? शास्त्रकारों ने बताया—वह विवेक के सहारे अपने जीवन को जगाये। जीवन-शुद्धि की ओर प्रतिपल अग्रसर होता रहे—यही विवेक की उपयोगिता और सफलता है।

जीवन में नीतिमत्ता, प्रामाणिकता और सत्य-निष्ठा की सर्वाधिक आवश्यकता है। इनसे जीवन सही माने में ओज, शक्ति और विकास पाता है। यह तथ्य सब स्वीकार करते हैं पर खेद इस बात का है कि आज इसके प्रति सच्ची निष्ठा मानव में रह नहीं गई है। उसके मस्तिष्क में यह जच नहीं पाता कि आजके युग में सचाई और ईमानदारी से भी काम चलाया जा सकता है। उसका सोचना यह है कि आज का वातावरण ही कुछ ऐसा बन गया है कि उसके अणु-अणु में असदाचार, बेईमानी और अनैतिकता के भाव बुरी तरह भरे पड़े हैं। तब भला कैसे सम्भव माना जाये कि एक व्यक्ति भलाई और सचाई बरतता हुआ अपना जीवन यापन कर सकता है। पर यदि गहराई से सोचा जाये तो बात ऐसी नहीं है। सचाई और ईमानदारी का प्रयोग जीवन में सचमुच शान्ति का संचार कर सकता है। हो सकता है पहले पहल कुछ कठिनाई प्रतीत हो पर दृढ़ता के साथ इन पर डटे रहने से जीवन व्यवहार में समाई अनेक उलझनें सुलझ जाती हैं। जीवन हलका और सात्विक बनता है। खेद का विषय है कि आज मानव का जीवन मूल्य एक ऐसे हीन प्रवाह में से गुजर रहा है कि यदि गम्भीर और सूक्ष्म-दृष्टि से पर्यवेक्षण करते हुए कहा जाये तो कहना होगा—इस अवमूल्यन ने उसे मानव नहीं रहने दिया है। वह केवल हाड़ मांस का पुतला जैसा रह गया है। आकार में कहने भरको वह मानव है पर उसके मानवीय गुण उत्तरोत्तर मिटते जा रहे हैं। जहाँ पैसेके लिये वह अपना ईमान बेचता नहीं सकुचाता, प्रामाणिकता को तिलांजलि देते जरा भी नहीं हिचकता, समझ नहीं पड़ता वहाँ उसमें मानवता रह कहां गई है ? आज मानव को अपने जीवन के मूल्य बदलने हैं। पैसा, परिग्रह व स्वार्थ के बदले उसे त्याग, संयम और सदाचार को महत्त्व देना है। जीवन को अधिकाधिक सरल, सादा और सात्त्विक बनाना है। अणुव्रत आन्दोलन इसी भावना को लेकर चलता है। उसका स्वर है—जन-जीवन में नैतिकता व्यापे, सदाचरण प्रसार पाये, जीवन-व्यवहार संयम से सना हो।
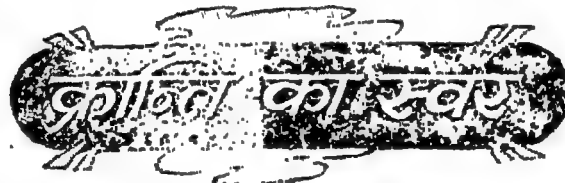
यही वह मार्ग है, जो आजके अलसाये लोक जीवन में एक प्रेरणा फूंक सकता है। यह जीवन मूल्योंके अहिंसा व अपरिग्रह—परक परिवर्तन का एक नया मोड़ है। सत्य, सदाचार और शील किसी की बपौती नहीं। वह तो उसीका है, जो उसका परिपालन करे।

धर्म धनी और गरीब, मालिक और मजदूर, साम्राज्यवादी और साम्यवादी इन सबके लिए कल्याण का प्रशस्त पथ है। सब धार्मिक बनें, पौद्गलिक सुखोंमें अति आसक्त न बनें, यह जीवन का सबसे बड़ा गूढ़ रहस्य है। यही सत्य और सनातन तत्त्व है। यही कारण है कि यह आन्दोलन जाति, वर्ग, सम्प्रदाय व वर्ण भेद की खाइयों से सर्वथा दूर जीवन-विकास का एक सार्वजनीन विशुद्ध पथ है। मैं चाहूंगा—इसके हार्दको समझते हुये सब लोग इस ओर अग्रसर होंगे।

—आचार्य तुलसी

अणु आयुधों के परीक्षण बन्द हों !

अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों के सुधार और शांति के प्रसार में भारत अपनी सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार सदैव प्रयत्नशील रहा है। अणु-आयुधों का खतरा अभी मिटा नहीं है। शक्तिशाली राष्ट्र अणु और परमाणु बमों के विभिन्न परीक्षणों द्वारा न सिर्फ जनता को विकंपित कर रहे हैं; वरन् समस्त संसार में अपने आतंक का साम्राज्य फैलाये हुए हैं। पिछले दिनों प्रशान्त महासागर में अमेरिका द्वारा जो आणविक विस्फोट हुए हैं, उनके विचित्र प्रयोगों को सुनकर किसका हृदय सिहर न उठेगा। करोड़ों जीवों की प्राण-हानि के साथ उसका असर सैकड़ों मील तक पड़ा है और अनेक व्यक्ति अंधे, लूले और बेकाम हो गये हैं। यहाँ तक कि आसपास की हवा और पानी ने भी विनाश का संदेश भेजा है। परीक्षण की इन स्थितियों में आप युद्ध की कल्पना अमरीकी सैन्य गवेषणा और विकास के मुखिया लेफ्टिनेन्ट जेम्स गोविन्स के शब्दों में कीजिये, जिन्होंने अभी-अभी अमरीकी सीनेट की उपसमिति में भाषण देते हुए कहा—सोवियत संघ पर अमरीका की ओर से यदि पूरे जोर से आणविक आक्रमण किया जाय तो इससे कई करोड़ लोगोंकी मृत्यु हो सकती है। इन मरनेवालोंमें कुछ मित्र देशों के लोग भी हो सकते हैं। उन्होंने यहाँ तक कहा कि 'अमरीका को सीमित युद्ध या बड़े युद्ध के लिये तैयार रहना चाहिए, चाहे उद्जन बम का प्रयोग भी क्यों न करना पड़े? स्थितियाँ यहाँ तक हो चली हैं। परीक्षणों की इस चकाचौंध में उद्जन बम उछल-कूद कर रहा है और "विनाशकाले विपरीत बुद्धि" की युक्ति चरितार्थ करता हुआ महा राष्ट्रों में विनाश का शक्ति-पुञ्ज हो, विश्व-शांति के लिये अभिशाप बन गया है।

अणु-आयुधों के भयङ्कर परीक्षणों को देख संसार की करोड़ों जनता ने एकमत हो अणुबम के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द की है। जगत् प्रसिद्ध कलाकारों, साहित्यकारों जन-प्रतिनिधियों और उच्चस्तर के वैज्ञानिकों ने भी मानवता के नाम पर इन विनाशकारी विस्फोटों को बन्द करने की सामयिक चेतावनी दी है। चारों ओर से एक ही स्वर और एक ही राग है। भारत ने इसी स्वर में कोटि-कोटि जनता का प्रतिनिधित्व करते हुए संयुक्त राष्ट्र-संघ के निःशस्त्रीकरण आयोग में आणविक आयुधों के सभी परीक्षणात्मक विस्फोटों को बन्द करने के अपने महत्वपूर्ण प्रस्ताव को पुनः दोहराया है। यह प्रसन्नता का विषय है कि सोवियत रूस ने भारत के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए इस बात

सम्पादकीय

पर बल दिया है कि सभी देश अपने-अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शक्ति के प्रयोग का परित्याग करने एवं समस्त अणु और उद्जन आयुधों पर प्रतिबंध लगाने की घोषणा करें। ब्रिटेन, फ्रांस व कनाडा ने निःशस्त्रीकरण के सिद्धान्त का समर्थन किया है। अमरीका के प्रतिनिधि ने भी यही बात दोहराई है।

फिर यह हो क्यों नहीं रहा है? एक ओर सभी-साथी राष्ट्र निःशस्त्रीकरण का राग अलापते हैं और दूसरी ओर अपने खूंखार अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण व परीक्षण भी तेजी से करते जा रहे हैं। यह क्या रहस्य है? इससे संशय होता है कि शक्तिशाली व्यक्तियों की कथनी और करनी में अन्तर है! इसीलिये 'संयुक्त राष्ट्र संघ' अपने कोरे प्रस्तावों से जनता का विश्वास कुछ खोता जा रहा है और दुनिया बड़ी सशंक दृष्टि से देख रही है।

आवश्यकता इस बात की है कि प्रस्ताव के साथ हम क्रियात्मक और व्यावहारिक आदर्श को लेकर चलें। यदि अपने-अपने क्षेत्र में आणविक परीक्षणों को बन्दकर, निःशस्त्रीकरण की ओर बढ़ते चले तो दुनियां का नक्शा बदलते क्या देर लगेगी? विश्व-शांति भाषणों व प्रस्तावों से नहीं, वरन शांति के अमल पर होगी। भारत ने अपनी इसी सांस्कृतिक शृङ्खला व विश्व-मैत्री का व्यावहारिक संदेश देते हुए एक बार फिर समस्त संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। चारों ओर से असंख्य जनता का एक ही स्वर सुनाई दे रहा है कि मानवता के नाम पर अणु-आयुधों के समस्त परीक्षण बन्द हों। अणु-युग के वैज्ञानिक और आज के निर्माता भी इस विनाश-लीला की भयङ्करता से विचलित हो उठे हैं और उनकी आत्मा भी यही संदेश दे रही है। क्या संयुक्त राष्ट्र-संघ इस बार कोई सक्रिय कदम उठायेगा?

● राजनीति और व्यक्ति पूजा

समाज में व्यक्ति का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है और आज भी है। लेकिन उसका मूल्य तभी है, जबकि व्यक्ति सत्ता, धन और स्वार्थपूर्ण आकांक्षाओं से दूर रहकर समाज की सेवामें सतत् सक्रिय रहे। इसीलिये हमारे यहाँ त्याग का महत्त्व है, ऋषि-महर्षियों का सम्मानपूर्ण स्थान है और वे भारतीय संस्कृति के प्रतीक रहे हैं व समाज का नेतृत्व करते आये हैं; उनके निर्लिप्त आदर्शों पर समाज चलता रहा है। किन्तु दुर्भाग्य से उनमें भी आत्मिक दुर्बलताएं प्रवेश कर गई हैं और वे जन-श्रद्धा से दूर होते जा रहे हैं। आज उनका व्यक्तित्व भी व्यक्ति पूजाका प्रतीक नहीं रहा है।

समाज में ऋषि परम्परा के स्थान पर आज राजनीति की प्रबलता दिखाई दे रही है और उसमें भी 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की तरह व्यक्तिवाद प्रखर होता जा रहा है। यह समाज के लिये और भी दुर्भाग्य की बात है कि जहाँ एक ओर अपनी ही दुर्बलताओं से 'सन्त पूजा' का युग मन्द पड़ रहा है वहाँ राजनीति के पहलवानों की पूजा प्रारम्भ हो रही है। निःसन्देह इससे राजनीति दूषित हो चली है और इसके परिणाम अत्यन्त भयङ्कर हुए हैं। सोवियत रूसमें आज जो कुछ हो रहा है, इस पर गम्भीरता से सोचें तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि राजनीति में व्यक्तिवाद प्रजातन्त्रवाद की हत्या है। कुछ समय पूर्व साम्यवाद के समर्थक मार्शल स्टालिन की हर बातको मसीहा समझ कर 'तहत' किया करते थे, उनका हर वाक्य वेद वाक्य की तरह था। इसपर बड़े-बड़े पुराण लिखे जाते थे। स्टालिन के द्वारा निरपराध व्यक्तियों की मौत भी राष्ट्रके गौरव और मुक्तिकी कहानी बन जाती थी और संसार के एक छोरसे दूसरे छोर तक उनके भक्तों द्वारा यशोगाथाएँ गायी जाती थीं। आज उसी देशके दलकी केन्द्रीय समिति स्टालिन के इन कृत्योंपर अश्रु प्रलाप करती हुई दिखाई दे रही है। जगह-जगह से उनकी मूर्तियाँ हटाई जा रही हैं और उनकी भर्त्सना की जा रही है। अभी हालमें 'प्रवदा' में जो विज्ञप्ति छपी है, उसमें बताया गया है कि "युद्धके दौरान में स्टालिन की तानाशाही बहुत सीमित रही किन्तु विजय के पश्चात् व्यक्ति पूजाके अभावात्मक परिणाम और अधिक तेजीसे एकबार फिर जोर दिखाने लगे और तत्कालीन परिस्थितियों में स्टालिन को सत्तासे हटाना असम्भव हो गया था।" इसका परिणाम समस्त राष्ट्र ही नहीं वरन् एक समाज के लिये भी अत्यन्त घातक हुआ।

सोवियत रूस की इन घटनाओं से हम सबक लें और राजनीति में केवल अन्धानुकरण न करें। दुनियां में बहुत सी बातें होती हैं लेकिन क्रान्ति को हम घटनाओं के रूप में न देखकर निर्माण की दृष्टि से देखें और किसी के पिच्छलग्गु न बनें।

राजनीति को स्वस्थ रखने की दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि यह व्यक्ति-पूजा का प्रतीक न बने अन्यथा कोई आश्चर्य नहीं कि जो परिणाम आज साम्यवादी देशों को भुगतने पड़ रहे हैं, वह किसी न किसी अंश में हमें भी उठाने पड़ें। सच तो यह है कि व्यक्ति-पूजा का आदर्श त्याग है, भोग नहीं। फिर राजनीति तो सत्ता और लिप्साओं का पिंड है। इसमें भाग लेनेवाले भी स्वार्थों और आकांक्षाओं से ऊपर उठे हुए हों, यह मानना लगभग असम्भव है। ऐसी अवस्था में राजनीति में व्यक्ति-पूजा का प्रादुर्भाव निःसंदेह किसी भी स्वस्थ समाज या प्रजातंत्र के लिये एक कलंक है।

राजनीति और व्यक्तिवाद दो विभिन्न दृष्टिकोण हैं और दोनों अपने में स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं। राजनीति में व्यक्तिवाद समाज के लिये एक अंकुश है। दूसरे शब्दों में हम इसे हिंसा भी कह सकते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि राजनीति व्यक्तिवाद की इस पद्धति से दूर रहे। इसी में राजनीति का वास्तविक अभ्युदय है।

—०—

पगली बुद्धि

[श्री हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि']

उच्च—अत्युच्च कंगूरे पर चढ़कर, तार-सा समुद्र में छोड़, छूँ उसे, बुद्धि नाच-नाच उठी।

"पा लिया, पा लिया !—मैंने पा लिया !!"

यह प्रश्न है—

'न-पाया क्या था जो पा लिया ?'

पगली का पागलपन !

पानी पर धरती, धरती पर पैर, पैर पर खोपड़ी और खोपड़ी में कैद बुद्धि !.........सब छायेवाज के पंजे में लवा-ग्रीवा-सी। न कुछ हस्ती और फूल-फूल कर, फैल-फैल कर जाने क्या हुई जा रही है ?

और तिसपर भी पाने के नाते—

अभी भी क्या पा लिया ?

उच्च—अत्युच्च कंगूरे पर चढ़कर—माना !—लेकिन तार ही सा तो छोड़, छू रही है समुद्र को !—बस।

—०—

मानव-निर्माण के लिए एक अनुकूल विचार

[श्री यशपाल जैन]

अणुव्रत आन्दोलन के प्रति मेरी काफी समय से रुचि है और आचार्यश्री तुलसी के सम्पर्क में भी कई बार आ चुका हूँ। मुझे उनके अमूल्योपदेश भी सुनने को मिले हैं।

पिछले इतिहासों के पृष्ठ खोलकर देखा जाय तो ज्ञात होगा कि इस प्रकार के नैतिक आन्दोलन समय-समय पर होते रहे हैं। सर्व प्रथम भगवान् महावीर ने नैतिक क्रान्ति का सूत्रपात किया। इसके पश्चात् भगवान् बुद्ध और महात्मा गांधी ने इसको बढ़ाया। आचार्य विनोबा व आचार्य तुलसी आज वैसे ही महापुरुष हैं जिन्होंने संसार की विषमताओं को लेकर उनके हल के लिये अपना कदम बढ़ाया है। समय-समय पर ऐसे महापुरुषों का जन्म होता ही रहता है जो मानव का पथ-प्रदर्शन करते हैं।

मनुष्य ने जो मानव जीवन पाया है वह सच्चे सुख व शान्तिकी प्राप्तिके लिये है, वास्तविक मार्ग ढूंढ़ निकालने के लिये है। ग्रन्थों व महापुरुषों ने सत्य-अहिंसा का सही दिग्दर्शन कराया है उनमें एक ही विचारधारा प्रस्फुटित होती है—जीवनमें सच्चे सुख व शान्ति लाने का सही मार्ग क्या है? स्वार्थ व प्रलोभन का समर्थन सही रास्ता नहीं, त्याग, संयम व साधना ही जीवनोत्थान का सही रास्ता है।

एक मजदूर सारी जीवन व परिवार संबंधी चिन्ताओं से मुक्त होकर आराम की नींद लेता है। उसके विपरीत एक लखपति सेठ जो वैभवशाली व पूंजीपति है, आराम से गद्दों पर लेटे रहने पर भी चिन्ताओं में उलझे रहता है और नींद नहीं ले पाता। वह लालसाओं के पुल स्वपन में भी बाँधता रहता है। अर्थोपार्जन की चिन्ता उसके घुन की तरह लगी हुई है। यह आज की स्थिति है। अगर महावीर और बुद्ध पैसे से दुनिया की—जन मानस की सेवा करना चाहते तो क्या नहीं कर सकते थे? क्या उनके पास पैसे की कमी थी? नहीं, मगर मानव में मानवता का संचार करने का कार्य पैसे के बल पर नहीं होता। उसके लिये त्याग चाहिये, तप व साधना चाहिये। उन्होंने राजपाट वैभव व परिवार सब कुछ छोड़ा, वन में निवास किया। कारण यही कि उनका यह आत्मोत्थान का सही मार्ग था। सत्य व अहिंसा के वास्तविक दृष्टिकोण से उन्होंने संसार को एक नई चेतना दी, नई जागृति दी कि पैसे से भौतिक सुख की प्राप्ति होती है; आत्मिक सुख की नहीं।

स्वराज्य के बाद यहाँ विषमताओं का प्रचार हुआ। अनैतिकता, बेईमानी, दुराचार, झूठ व कपट आदि असद्व्यवहारों का प्रकोप हुआ। मानवता ने मानव से कोसों दूर किनारा कर लिया। सत्य व अहिंसा गांधीजी के साथ ही विलीन हो गये ऐसा महसूस किया। आचार्य श्री तुलसी को इस स्थिति का अनुभव हुआ। उनके हृदय को बड़ी ठेस पहुँची। महान् पुरुषों का जन्म नैतिक क्रान्ति के लिये ही हुआ करता है। उन्होंने सोचा वर्तमान युग की विषमताओं के वातावरण में, नैतिक जागरण के लिये कोई सरल मार्ग खोजना चाहिये जिसको प्रत्येक व्यक्ति सरलता से अपनाकर अपने जीवन के निर्माण में सहयोगी बने। इसी दृष्टिकोण से आज से लगभग ७ वर्ष पूर्व यह नैतिक क्रान्ति का आन्दोलन—'अणुव्रत-आन्दोलन' प्रारम्भ किया। इसमें छोटे २ व्रतों का उल्लेख किया गया है। मानव यदि महाव्रतों का पालन नहीं कर सकता तो अणुव्रतों का पालन तो अवश्य करे। एकदम यदि महल की ऊँची मंजिल पर नहीं पहुंच सके तो २-४ सीढ़ी ही चढ़ने का प्रयास करे। प्रयास की कसौटी पर कसे जाने पर ही प्रगति का मार्ग सम्भव है।

इस प्रकार आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। धीरे-धीरे इसका विकास-क्रम बढ़ा और इतना बढ़ा कि आज सारे देश की जनता में इस प्रकार की भावनाओं का प्राबल्य हुआ। देश के सभी भागों में इस नैतिक आन्दोलनका स्वागत हुआ। देश के नेता, विचारक, साहित्यिक, पत्रकार आदि विशिष्ट व्यक्तियों को ऐसे विचार पढ़कर बड़ी ही प्रसन्नता हुई। मानव के निर्माण के लिये यह अनुकूल विचार है और अगर प्रत्येक व्यक्ति इसे अपनाले तो सुख व शान्ति का सही मार्ग सरलता से प्राप्त हो जाय।

इसका प्रथम अधिवेशन दिल्ली में हुआ। सैकड़ों की तादाद में व्यक्ति खड़े हुए और इस नैतिक आन्दोलन में कूद पड़ने में अपनी स्वीकृति दी। बाद में जोधपुर व राणावास भी मुझे जाने का सौभाग्य मिला। वहां बीस-बाइस सौ के करीब अणुव्रती बनने के आंकड़े आये। इस आन्दोलनमें आंकड़ोंका कोई महत्त्व नहीं है। देखना यह है कि कितने व्यक्तियों ने इस आन्दोलन से प्रभावित होकर अपने जीवन को बदला है। मुझे तो इस आन्दोलन के नियमों से बड़ी प्रेरणा मिली है। वास्तव में यह आन्दोलन जीवन को सही दिशा देकर मानव को आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।

(शेषांश पृष्ठ २७ पर)

एक मनोवैज्ञानिक लेख—

नैतिकता और आत्म-विश्वास

[श्री निरंकारदेव सेवक एम० ए०]

[नैतिक-विकास का प्रश्न जबकि व्यक्ति-व्यक्ति की स्वतःप्रेरणा और प्रयत्न पर निर्भर करता है, वहाँ आज हम उसकी संभावनाएं पुलिस, सेना, न्यायालय और अनेकानेक सामाजिक बन्धनों में खोजने का प्रयत्न कर रहे हैं ! आत्म-विश्वास शून्यता का कैसा दयनीय दृश्य है ! मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखा प्रस्तुत प्रेरक और विचार-पूर्ण लेख निश्चय ही पठनीय है ।

—सम्पादक]

नैतिकता के अभाव का सबसे बड़ा कारण मनुष्य में आत्म-विश्वास और स्वावलम्ब की कमी है। मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परमुखापेक्षी है। वह जिस मकान में रहता है वह स्वयं उसका बनाया हुआ नहीं उसे किन्हीं दूसरे राज मजदूरों ने बनाया था और उस मकान में यदि कहीं कुछ भी टूट-फूट हो तो वह उन्हीं राज-मजदूरों का मुहताज है। उसका तो केवल पैसा चलता है और मकान बनकर तैयार हो जाता है। पेट भरने के लिए उसे चक्की चलानेवालों पर निर्भर रहना पड़ता है जो उसे आटा पीसकर देते हैं। फल, सब्जी वह स्वयं पैदा नहीं करता। जो लोग बाग लगाते, नाज, फल और वे सब्जी पैदा करते हैं, यदि पैसे के विनिमय में उसे वह सब चीजें न दें तो उसके भूखों मरने की नौबत आजाये। वह जिन कपड़ों को पहनकर सभ्य समाज में घूमने-फिरने उठने बैठने योग्य बनता है उनके लिए उसे कल-कारखानों के संचालकों, विक्रेताओं और उन्हें काट-छांटकर पोशाक बनानेवालों पर निर्भर रहना पड़ता है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि दर्जी मनुष्य को बनाता है।

तब प्रश्न यह उठता है कि जब मानव समाज का ढांचा ही ऐसा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने मकान, खान-पान और कपड़ों तक के लिए दूसरों पर निर्भर है तो उसमें स्वावलम्ब, आत्म-निर्भरता, आत्म-विश्वास आदि गुणों की कमी क्यों न हो ? पर यदि हम मनुष्य समाज के निर्माण और विकास-क्रम पर गंभीरतापूर्वक विचार करें तो ज्ञात होगा कि समाज का संगठन मनुष्य ने दूसरों का दास या गुलाम बनने के लिए नहीं वरन् अपनी उन्नति और विकास के लिए अधिकाधिक सुविधायें प्राप्त करने के लिए किया था। प्रत्येक मनुष्य यह चाहता है कि उसे अपनी किसी भी आवश्यकता के समय किसी दूसरे का मुंह न ताकना पड़े। इसीलिए संचय की प्रवृत्ति उसमें बढ़ती है उसके पास इतना नाज, इतने कपड़े और इतना धन हो कि वह अपनी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति तुरन्त कर सके। संचय की यह प्रवृत्ति बढ़कर मनुष्यों में कलह, वैमनस्य और घृणा का कारण बनती है। संचित को सुरक्षित रखकर उसपर अधिकार जमाये रखने और निरन्तर अधिकाधिक संचय करते जाने की उद्विग्नता में मनुष्य दूसरों के प्रति अपने मानवीय कर्त्तव्यों का भी ध्यान नहीं रखता और नैतिक-अनैतिक सब प्रकार के उपाय और साधन अपनाता जाता है। वह समझता है कि जितना ही उसका स्वार्थ-सिद्ध होता जा रहा है उतना आत्म-विश्वास और आत्म निर्भरता उसमें बढ़ती जा रही है। पर वास्तव में वह भीतर ही भीतर इतना खोखला और अपंग होता जाता है कि झूठ बोलते हुए उसे ऐसा नहीं लगता कि स्वयं अपने को धोखा दे रहा है। चोरी और बेईमानी करते हुए उसे कोई लज्जा या ग्लानि मन में नहीं होती। छल-कपटपूर्ण व्यवहार उसे अपना स्वाभाविक व्यवहार ऐसा लगता है। यहाँ तक कि बड़े-बड़े दंडनीय अपराधों को करके समाज की दृष्टि से छिपा ले जाने में वह सफलता के मिथ्याभिमान का अनुभव करने लगता है।

समाज में रहते हुए मनुष्य भौतिक प्रलोभनोंसे सर्वथा विमुख होकर रहे यह तो असंभव है किन्तु वह अपना ऐसा दृष्टिकोण उनके प्रति अवश्य बना सकता है जिससे उनका आकर्षण उसके आत्मबल के विकास में बाधक न हो। इस दृष्टिकोण को बनाने के लिए उसे अपने चिन्तन को अपने वश में करना पड़ेगा। अधिकतर लोग अनैतिकता के पथ पर अग्रसर इसलिए हो जाते हैं कि वह अपने विषय में स्वयं सोचकर अपना पथ निर्दिष्ट करने की ओर ध्यान नहीं देते। राजनीति के क्षेत्र में अपने विषय में विचार करने का भार वह राजनीतिक नेताओं पर, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में अपने हित-अनहित के विषय में सोचने समझने का उत्तरदायित्व दूसरे विचारकों और धर्म-गुरुओं पर डालकर वह निश्चिन्त हो जाते हैं और दूषित सामाजिक वातावरण के कारण वह प्रलोभनों की ओर खिंचकर इस पथपर चलने लगते हैं। स्वयं अपने विषय में सोच विचार करके अपना मार्ग स्वयं निश्चित करने की प्रवृत्ति न होने

का ही यह परिणाम है कि मनुष्य को ठीक राह पर चलानेके लिए पुलिस, फौज, न्यायालय और दंड विधान की आवश्यकता पड़ती है। कोड़े मारकर, आतंक और भय दिखाकर जब तक कोई उसे सजग और सचेत न करता रहे उसकी समझ में ही नहीं आता कि सही रास्ता कौन सा है।

पर हमेशा किसी ऐसे चौकीदार को साथ लिए रहने से जो उसे कदम कदम पर सचेत करता रहे, मनुष्य की नैतिकता का प्रश्न हल नहीं होता है। चौकीदार के रहते हुए तो वह इस ओर से और भी बेपरवाह हो जायेगा और जब तक वह झकझोरकर जगाया न जायेगा वह सोता पड़ा ही रहेगा। उसकी अपनी बुद्धि से अधिक सजग चौकीदार कोई दूसरा नहीं हो सकता। इसलिए यदि स्वयं अपने विषय में विचार करके अपना पथ स्वयं बनाने की आदत डाले तो नैतिकता की समस्या आपसे-आप हल हो सकती है। राजनीतिक नेताओं, धार्मिक गुरुओं, पुलिस और सेनाओं को अपनी नैतिकता की निगरानी करते रहने के लिए अपने चारों ओर खड़ा करके वह निश्चिन्त पड़ा नहीं रह सकता। नैतिकता तो प्रत्येक व्यक्तिकी बुद्धि और विवेकमें निहित है जो अपनी विवेक बुद्धि का प्रयोग न करें वह तो अनायास अनैतिकता की ओर खिंच ही जायेंगे। उनके आदर्श, नेता, गुरु, ग्रंथ, पुलिस, सेना, न्यायालय उनकी कुछ भी रक्षा नहीं कर सकेंगे।

इसलिए नैतिकता की समस्या को यदि हल करना है तो मनुष्य को आस्था, विश्वासों, परम्पराओं, आदर्शों और आशंका-भयों से मुक्त करके उसे विवेकशील और बुद्धि पर निर्भर रहना पड़ेगा। तभी उसके मन में ऐसा आत्म-विश्वास जागृत होगा जिसके बिना कोई मनुष्य नैतिकता के पथ का अनुयायी हो ही नहीं सकता।

जब अणुव्रत ही एकमात्र उपाय है !

[श्री वेदप्रकाश शर्मा]

दहेज-प्रथा के कारण समाज की दीवारें हिल चुकी हैं, इसकी जड़ें भी खोखली होती जा रही हैं। हम प्रतिदिन दहेज जैसी घृणित प्रथा द्वारा ढोये जानेवाले जुल्मों को देख रहे हैं, पर आश्चर्य है कि फिरभी हम सब अब भी इस कुप्रथा को प्रोत्साहन देकर अपनी मुसीबतों को अपने आप बढ़ाये चले जा रहे हैं। हमारे कई नवयुवक मित्र कहते हैं कि 'दहेज ने सुरसा राक्षसी की तरह विशाल रूप धारण कर लिया है। हम कितना ही प्रयास करें पर दहेज की प्रथा रोके न रुकेगी।' मेरे विचार में उनका यह कथन सर्वांशतः असत्य है, सर्वथा निर्मूल है। इस कुप्रथा को हम नवयुवकों के अतिरिक्त कोई रोक भी नहीं सकता है। यदि हम ही किसी कार्य से भय खाकर पीछे हट जायेंगे तो फिर जगती का ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो उस कार्य को कर सकेगा। आप धैर्यपूर्वक विचार करें कि शादियां बूढ़ों की तो होती नहीं है। फिर यदि हम दहेज-हीन विवाह कराने का अणुव्रत धारण कर लें तो हमारे इस अणुव्रत के साथ हमारे माता-पिता को भी सहमत होने के लिए बाध्य होना पड़ेगा क्योंकि जब हम दहेज-हीन विवाह के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ रहेंगे तो यह सम्भव नहीं कि हमारे विवाह के स्थान पर किसी अन्य का या अपना विवाह रचा लें। हम उनकी अर्थ-लिप्सा के समक्ष झुकेंगे हीं नहीं तो उनका हमारी सदिच्छा के सामने झुकना अनिवार्य है।

अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि यदि हम सब एक स्वर से दहेज का विरोध करें तो कोई आश्चर्य नहीं कि इस भारत से इस कुप्रथा का सर्वदा के लिए नाश हो जाए। अपने स्वर को शक्तिशाली बनाने के लिए—देश के सपूतों की नीलामी नहीं होने देंगे—इस अणुव्रत को अपनाना पड़ेगा। इससे अपने में अलौकिक शक्ति का आभास होगा और हम इस अलौकिक शक्ति के द्वारा अपनी लक्ष्य-पूर्ति की ओर प्रेरित होंगे।

आप यह न सोचिये कि इस क्षेत्र में केवल 'एक' ही आप हैं। कुछ कदम आगे बढ़िये। आप अपने को उन असंख्य भाइयों के मध्य पायेंगे जो आपकी विचारधारा को लेकर इस क्षेत्र में पदार्पण करने को इच्छुक हैं।

प्रतिकूल वेदना का नाम ही दुःख है। दुःख मनुष्य का कोई स्वाभाविक गुण नहीं है। दुःख का मूल कारण अविवेक है। दुःख का नाश सिवाय विवेक के अन्य किसी साधन से नहीं हो सकता।

—सांख्य-सुधा

जन-जीवन सत्य से दूर भाग रहा है !

[६]

[जीवन के किसी भी पहलू को देखें, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक चाहे राजनैतिक सभी में असत्य का बोलबाला है। कूटनीति और तिकड़मबाजी का घुन दिन प्रतिदिन मानव को खोखला और जर्जरित किये जा रहा है। तो फिर इन सबका कारण और विभिन्न रूप जानने के लिए मुनिश्री के ओजस्वी विचार पढ़िए। सम्पादक]

'सच्चमेव भगवं' सत्य ही भगवान है यह आप्त वाक्य है। इस छोटे से वाक्य रूप बीजमें सत्यका विराट वट अस्तित्व पा रहा है। सत्यको पा लेना ही जीवन का ध्येय होता है, क्योंकि "सत्य ही संसार में सारभूत है[1]।" सत्य जीवन का साध्य है। अहिंसा आदि उसके साधन हैं इसलिये कहा गया है 'अप्पणा सच्च मेसिज्जा' आत्मा से सत्यका अन्वेषण करो। सत्यकी विशेषता यह है कि जहाँ वह जीवन का साध्य बनता है वहाँ वह जीवन-व्यवहार में साधन भी बन जाता है। यहाँ साध्य सत्य की दार्शनिक विवेचना में न उतरकर साधन सत्य को ही समझ लेना है। अणुव्रत-आन्दोलन जीवन-व्यवहार का दर्शन है। सत्य की व्यवहार्य स्थिति को समझकर ही अणुव्रती साधना के मार्ग पर बढ़ सकता है।

सत्यवादी निर्भय होता है। असत्य एक प्रकार की चोरी है। असत्यभाषी चोर की तरह भयभीत रहता है कि 'मेरा असत्य खुल न जाये'। उसकी वाणीमें कभी तेजस्व नहीं आ पाता। उसकी लड़खड़ाती जबान हरएक व्यक्ति के हृदय में अविश्वास पैदा करती है। सत्यभाषी की वाणी में ही नहीं उसके चेहरे पर निर्भयता व तेजस्व टपक पड़ते हैं, वे उसमें एक आकर्षण पैदा करते हैं जो कि उसे सफलता की दिशामें आगे बढ़ाते हैं। उसका आत्मा प्रसन्न तथा बलवान रहता है, मानसिक दैन्य उसे कभी छूता तक नहीं।

[1]—सच्चं लोगम्मि सारभूयं

असत्य का अभ्यास

कुछ लोग ऐसे देखे जाते हैं जो असत्य बोलने का भी अभ्यास करते हैं। साधारण व बिना किसी स्वार्थ के झूठ बोलते हैं, वह इसलिये कि बड़ी से बड़ी झूठको आदि से अन्त तक निभाने में हम कुशल हो जायेंगे। गुप्तचर विभाग में रहनेवाले एक व्यक्ति से कुछ वर्ष पूर्व वास्ता पड़ा उसने बहुत सारी बातें अपने जीवन के विषय में हमें बताई और हमारी सुनी भी। वह प्रतिदिन हमारे पास आने लगा। बात करने का उसका ढंग बड़ा रोचक व आकर्षक था। उसके चले जाने पर हमारे दिलमें आता

कि इतनी बातें यह जो कहता है ये कदापि सत्य नहीं हो सकतीं। पर साथ-साथ उसके असत्य बोलने का कोई तात्पर्य भी नहीं लगता था। धीरे-धीरे हमें तो यह पता चलगया कि वह पौने सोलह आने असत्य बोलता है, पर हम साधुजनों के पास वह क्यों आता है, क्यों इतनी निरर्थक असत्य बातें करता है, यह एक कौतुहल का विषय था। बहुत दिनोंके सम्पर्क के पश्चात् हम लोगोंने उससे कहा—भैया ! तुम्हारी बातें तो सारी की सारी असत्य निकलती जा रही हैं, तुम्हारा इस असत्य-वादन का तात्पर्य क्या है ? उसने अत्यन्त स्वाभाविक रूप से कहा—मैं गुप्तचर (सी. आई. डी.) विभाग में काम करता हूं। मेरी तो निपुणता ही झूठ सीखने में है। तब हम लोगों ने समझा यह सज्जन तो हम साधुजनों का समय लेकर झूठ बोलने का अभ्यास कर रहा है। कुछ भी हो झूठ छिपा नहीं रहता। एक बार उसका प्रयोग कर आदमी अपना साधारण-सा काम बना लेता है और खुश होता है। पर वास्तव में वह अपनी प्रतिष्ठा का बहुत बड़ा हिस्सा उस एकबार के प्रयोग में ही खो देता है। बार-बार के प्रयोग से तो वह झूठे आदमी का खिताब ही अपने समाज में पा जाता है।

बालकों में असत्य

असत्य का रोग बालकों एवं विद्यार्थियों में बहुत कुछ फैल चुका है। जैसे-तैसे ही झूठ बोलकर अपने-आपको पकड़ में आने से बचा लेना चतुरता समझा जाने लगा है। प्रश्न होता है बालकों में असत्य आया कहां से ? यह कोई पूर्व जन्म की विरासत के साथ नहीं लाये हैं। इसी जन्म के चारों ओर के वातावरण से उन्हें यह उपहार मिलता है। पहला उपहार माता-पिता से मिलता है। घर पर कोई ऐसा व्यक्ति आया जिससे पिता मिलना नहीं चाहता, लड़के को बुलाकर सिखलायेगा—जाओ आगन्तुक से कहदो, पिताजी घर नहीं हैं। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि आगन्तुक पूछ बैठता है तुम्हें यह किसने कहा पिताजी घर नहीं हैं ? भोला बचा झट कह देता है, 'पिताजी' ने। वस्तुतः माता-पिता व अन्य घरवालों का जैसा आचरण बालक देखता है वैसा वह सीखता है। अपने बचाव के लिये भी बालक असत्य बोलना सीखता है। पाठ याद नहीं कर सका वह साथियों के साथ कहीं सैर करने चला गया इसलिये स्कूल देरी से पहुंचा। अध्यापक के द्वारा पूछे जाने पर चट कह देगा—पेट में दर्द होगया था सिर में दर्द होगया इसलिये पाठ याद

नहीं कर सका व समय पर स्कूल नहीं पहुंच सका। पेट दर्द व सर दर्द का एक ऐसा बहाना है जिसकी असलियत ऐक्सरे से भी नहीं जानी जा सकती। इस प्रकार के झूठ से उसका एकबार बचाव हो जाता है और बालक के हृदय में असत्य का एक संस्कार जम जाता है। असत्य के संस्कारों का धंसना राजयक्ष्मा के कीटाणुओं के उद्गम जैसा है। असत्य के कीटाणु उसके जीवन के क्रमिक विकास के साथ बढ़ते ही जाते हैं और आगे चलकर उसके जीवन के निखरने से पहले ही प्राणहीन सा बना देते हैं। बालक यदि बुद्धिमान है तो धीरे धीरे असत्य को छोड़ भी देता है जो नहीं छोड़ सकता उसका भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। क्योंकि यह स्वाभाविक है कि यदि वह विद्यार्थी-जीवन में असत्य आचरण करता है तो आगे चलकर किसी आफिस में या दुकान पर बैठने की उम्र में भी वह उसी मार्ग पर चलेगा। यह निश्चित है कि जहां वह जायेगा वहां वह अपना विश्वास खो देगा और निराश लौटेगा। जीवन के किन्हीं क्षणों में असत्य पर चलनेवाला व्यक्ति कुछ भी प्रगति कर सकेगा—यह असम्भव है।

व्यवहार-कुशलता के नाम पर मानसिक असत्य

बड़ों के जीवन-व्यवहार में भी असत्य नाना रूपों में आ धंसा है। लोग कहते हैं मनुष्य को व्यवहार-कुशल होना जरूरी है। आदर्श पर चलने से काम नहीं चलता। उस व्यवहार-कुशलता के अर्थ में अपना सिद्धान्त व विचार कुछ नहीं, केवल तिकड़मबाजीसे अपने चारों ओर के वातावरण को प्रसन्न बनाये रखना ही जीवन-ध्येय हो जाता है। ऐसी स्थिति में सत्य का गला घुटता है। असत्य भी व्यक्ति अपने ही साथ बोलता है क्योंकि सत्य वहां मन में होता है और असत्य वाणी में।

जीवन की लहरें

[डा० श्री ब्रजमोहन गुप्त एम० ए०, डी० फिल०

(१)

मेरे मन में इच्छाओं के क्यों इतने ये स्वप्न जगाये,
मेरे पथ पर रूप गंधमय क्यों इतने ये फूल खिलाये,
विह्वल चलते रहने का मानस में यह उन्माद भरा क्यों,
क्यों मेरी स्मृति में पीड़ा के तुमने इतने दीप जलाये!

(२)

मिट्टी का लघु पात्र भला क्यों प्यास भरी इसमें सागर की,
धार अगर लघु भी मिल जाये किसमत की खूबी गागर की,
पर यह बात बताओ तुम ही कैसे गागर को समझाऊँ
प्यार भरा दिल क्या समझे आंधी बिजली सुनसान डगर की!

(३)

राह अगर लम्बी रखनी थी चलने का सम्बल भी देते,
बीहड़ वन पथ में रहने थे तो पथ में मिल सुधि भी लेते,
जीवन के इन तूफानों में मैं विह्वल सोचा करता हूं
छोड़ी नाव भँवर में मेरी, तो नाविक बन खुद ही खेते।

(४)

मेरा भाग्य बनाया तुमने मुझको निज दीपक की बाती,
मेरा भाग्य, तुम्हारे पथ पर निशि में यह किरणें फैलाती,
भूल न जाना बिना स्नेह के क्षण भर में यह राख बनेगी
इसके मुख पर ज्वाल तभी तक जब तक स्नेह तुम्हारा पाती।

व्यवहार-कुशलता कोई बुरी वस्तु नहीं यदि उसकी यथार्थता को पकड़ा जाय। व्यवहार-कुशलता का अर्थ है—व्यक्ति अपने सत्य एवं अन्य आदर्शों को सुरक्षित रख सबके साथ भद्र एवं नम्र व्यवहार करे। अवसर आने पर वह बोले और चुप भी रहे पर वह चापलूसी करने के लिये कुछ भी न करे।

कूटनीति के नामपर मानसिक असत्य

असत्य-आचरण का एक सभ्य नाम 'कूटनीति' भी है। आज की राजनीति में यह बड़े गौरव से चलती है। राजनैतिक अपने आप को कूटनीतिक (Diplomatic) कहलाकर हर्षान्वित होते हैं। यहां यह देखना है उस कूटनीति का सत्य से कितना सरोकार है। लगता है कूटनीति का जन्म युद्धों और महायुद्धों से हुआ है। महाभारत के रणक्षेत्र में श्रीकृष्ण की कूटनीति ने भीष्म-पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, जयद्रथ, दुर्योधन को परास्त कराकर पांडवों को विजयी बना दिया। महाभारत से जब हम मौर्यकाल में आते हैं तो सम्राट चन्द्रगुप्त के महामंत्री पिंडीभूत कूटनीति के रूप में प्रस्तुत मिलते हैं। उन्होंने तो व्यवस्थित शास्त्र भी बनाकर विश्व के सामने रख दिया है। राजपूतों तथा यवनों के संघर्षकाल में धार्मिक भावनाओं से संस्कारित क्षत्रियों ने बहुधा कूटनीति को हेय

ही माना, यवन इस बात में बहुत आगे रहे। अँग्रेजों की कूटनीति ने उनको भी परास्त कर दिया। आज तो सामान्य राजनीति भी कूटनीति कही जाने लगी है। इसमें कोई दो मत नहीं होंगे कि कूटनीति में असत्य के ही नाना रूप निखरते हैं। आज के अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में जितना ध्यान अहिंसा ने अपनी ओर खींचा है उतना सत्य ने नहीं। पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों में स्वस्थता लाने के लिये जितनी अहिंसा आवश्यक है उतना ही आवश्यक सत्य है। आज अपेक्षा है—विभिन्न शब्दों के पारस्परिक व्यवहार में कूटनीति (Diplomacy) का स्थान सत्यता (Truthfullness) ले।

कूटनीति राजनैतिक क्षेत्र तक ही सीमित रहती, यह एक बात थी। उसका दुष्परिणाम जन-जन को आक्रान्त नहीं करता, क्योंकि वह कुछ अवसरों व कुछ लोगों तक ही सीमित होती। दुःख की बात तो यह है आज वह अपने नाना रूपों में जन-जन का विषय बन गई है। अनैतिकता, भ्रष्टाचार, चालाकी, विश्वासघात आज कहाँ नहीं मिलते? जो कूट व्यवहार दो राष्ट्रों के बीच चलता था वह आज दो पड़ोसियों और दो सगे भाइयों के बीच चलता है। आज भद्रता, मूर्खता में परिणत हो गई है और धूर्तता चतुरता में। आज किसी भी व्यक्ति को पहचान लेना कि वास्तव में यह क्या है किसी दार्शनिक गूढ़ता को समझ लेने से सहज नहीं है। मनुष्य की कायिक व वाचिक प्रवृत्तियाँ उसके हार्द स्वरूप का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं हैं।

सफल नेतृत्व का मार्ग निष्कपट आचरण

मनुष्य की स्वाभाविक रुचि सत्य व ऋजुता में ही होती है। असत्य एवं कुटिलता को वह किसी स्वार्थ से ही अपनाता है। वह स्वार्थ होता है—उद्देश्य की सफलता। एक कार्यकर्ता व नेता स्वभावतः चाहता है, मेरा दायित्व व नेतृत्व बढ़े, सब लोग मुझे विश्वास व प्रेम की दृष्टि से देखें। समष्टि के वातावरण में बहुत सारे लोग उसके सहयोगी एवं बहुत सारे विरोधी होते हैं। वहाँ वह दूसरों के प्रभाव से अपना प्रभाव अधिक देखना—चाहता है। इसी महत्वाकांक्षा का जब अतिरेक हो जाता है तब व्यक्ति असत्य एवं वञ्चना का आश्रय लेता है। अपने कार्य को अतिशय करके बताना दूसरों के विशेषकार्य को भी न्यून या असद् करके बताना, दूसरों के श्रेय पर अपनी छाप लगाना आदि उसके लिये सहज हो जाता है। यह मार्ग श्रेयस्कर नहीं है। तुच्छ प्रलोभनों में अपने आत्म-धर्म को गंवाना है, घाटे का सौदा है। ऐहिक लाभ भी इस गर्हास्पद मार्ग से नहीं मिल सकते। वहाँ भी जो वह चाहता है उससे उल्टा होता है। प्रत्येक समाज में कुछ न कुछ ऐसे नेता मिलते हैं जो अपनी कूट चालों से सबको प्रभावित करना चाहते हैं। ऐसे लोग अपने कानों से अपने विषय में वाहवाही सुनते हैं किन्तु उनके परोक्ष की स्थिति समाज में सदा दयनीय रहती है, वहाँ उनके प्रति सामूहिक प्रेम व श्रद्धा नहीं देखी जाती न कोई सुदृढ़ विश्वास भी। जनता के अन्तःकरण में उनका आदर्श व्यक्तित्व नहीं बनता। समाज के हर कार्य में उनका हस्तक्षेप रहते हुए भी वे बड़े आदमी नहीं माने जाते। अन्तर में सभी लोग उनसे सशंक रहते हैं। मुंह पर उनकी तारीफ करते हैं पर पीछे-पीछे—यह बड़ा चालाक है, धूर्त है, जान लेने योग्य है आदि कहते रहते हैं। ऐसे अवसरों से विचारकजन समझ लेते हैं वञ्चना व असत्य के आधार पर नेतृत्व की कामना करनेवाले क्या खोते व क्या पाते हैं?

दूसरे पक्ष में समाज में उन व्यक्तियों को हम देखते हैं जिनका हृदय कपट से खाली और प्रेम से पूरित रहता है व हर स्थिति को अपने साथियों में सरल एवं सुस्पष्ट रखते हैं। उनकी वाणी और कर्म में कोई विरोध नहीं होता, वे कार्य स्वयं करते हैं; श्रेय साथियों को देते हैं। ऐसे व्यक्तियों का प्रत्यक्ष और परोक्ष में समाज के व्यक्ति-व्यक्ति पर अमिट प्रभाव रहता है। समाज उन्हें श्रद्धा, सम्मान और भक्ति के फूल चढ़ता है।

प्रश्न रहता है चतुर लोग भी ऐसी कूटनीतियों के आचरण में फंस क्यों जाते हैं? उसका भी हेतु है, वह यह समझता है कि कूटनीति बुरी है पर मैं इसे खुलने न दूंगा। इससे मैं जनता में आदर्शवादी होने का यश भी पाता रहूँगा और इस अन्तरंग छद्म से मेरा काम भी सफल हो जायगा। पर ऐसा होता नहीं। होता यह है काम भी नहीं बनता और आदर्श का ढोंग भी नहीं ठहरता। आज की जनता में तो किसी भी वंचना का सफल होना नितान्त असम्भव है। वंचना भी एक बार सफल होती है जहाँ कि अन्य सब लोग ऐसी वञ्चनाओं से अपरिचित होते हैं। पर आज तो ऐसी बातों में एक से एक आगे नम्बर लेनेवाले देखे जाते हैं। व्यापारी ग्राहक को कैसे ठग लेगा जब ग्राहक स्वयं उसे ही ठगने के लिये आता है।

वञ्चना प्रकट होकर ही रहती है, कोई भी कुशलता उसे रोक नहीं सकती। बहुधा तो व्यक्ति अपने वंचक होने का परिचय अपने आप दे देता है। एक के साथ वञ्चना करके अपने कुशलता का वर्णन अपने मित्रों में करता है वह समझता है कि मेरे मित्र मेरी चतुरता से बहुत प्रभावित हो जायेंगे पर होता यह है वे मित्र स्वयं उसके आदर्श की तह पा जाते हैं।

—क्रमशः

—०—

विकास के पथपर—

जीवन का महत्व और उसका सद्व्यय

[श्री रिषभदास रांका]

[जीवन-जलधि में असंख्य हीरे-जवाहरात भरे पड़े हैं। बस चाहिये उन्हें चुननेवाला ! और इन सद्गुणों के मोतियों को बीनने के लिए आवश्यकता है क्षण-क्षण पल-पल सदुपयोग करने की तड़प। विद्वान् लेखक ने अपने इस निबन्ध में इसी तड़प को जागृत करनेके कुछ उपाय बताये हैं। —सम्पादक]

यों जीवन से बढ़कर संसार में प्रिय, महत्वपूर्ण और अमूल्य वस्तु दूसरी नहीं है। यदि किसी दुःखी व दरिद्री व्यक्ति से कहा जाय कि तुझे एक लाख रुपये देते हैं, तू अपना जीवन उसके बदले में दे तो वह कहेगा मैं लाख रुपये लेकर क्या करूंगा जबकि मेरा जीवन ही नहीं रहेगा। यदि कोई करोड़पति है उसकी मृत्यु आगई है और वह चाहता है कि लाख रुपये नहीं करोड़ रुपये कोई ले ले पर उसकी आयु एक दिन के लिए बढ़ा दी जाय तो यह संभव नहीं। मृत्यु टल नहीं सकती। इससे जीवन के अमूल्यत्व की हमको कुछ कल्पना होती है।

बिना जीवन के संसार की प्रत्येक वस्तु निरुपयोगी है। इसलिए उसका मूल्य संसार की सब चीजों से अधिक है। वह अमूल्य है।

हर व्यक्ति को अपना जीवन प्रिय होता है, पर प्रिय और अमूल्य जीवन का महत्व बहुत कम लोग जानते हैं। तभी तो उसका बहुत बड़ा हिस्सा सोने, खेलकूद, आमोद-प्रमोद या उसे सुखी बनाने की आशा में साधन-सामग्री जुटाने में खर्च हो जाता है। बहुत कम हिस्सा ऐसा बचता है जिसे सद्व्यय कहा जा सके।

जो जीवन सुखी बनाने की कल्पना से साधन-सामग्री जुटाने में उसे खर्च करते हैं उनमें से अधिकांश अन्त तक कड़ा परिश्रम करके भी सुखी नहीं बना पाते और यदि वे अपने-आप से यह प्रश्न पूछें कि उन्होंने अपने जीवन का ठीक उपयोग किया या नहीं तो उसका उन्हें यही उत्तर मिलेगा कि वे बहुत कम अच्छा उपयोग कर पाये हैं और उसने जो कुछ सुख की आशा से किया था उसे भी वह नहीं पा सका।

फिर सवाल पैदा होता है कि उसने अपने अमूल्य जीवन को खर्च कर क्या पाया? जैसे जीवन प्रिय और अमूल्य है वैसे ही वह कब पूरा होगा और संसार छोड़कर उसे कब जाना होगा इसका भी उसे पता नहीं है। उसका निश्चित समय मालूम न होने से होना तो यह चाहिए था कि उसका जरा भी दुरुपयोग न हो और एक क्षण भी व्यर्थ न गवांया जाय पर अचरज की बात तो यह है कि संसार में अधिकांश लोग यह बात भूले हुए हैं कि उन्हें जाना है और वह भी बिना नोटिश के अचानक जाना है तभी वे अपने आपको अमर मानकर ऐसी योजनाएं बनाते रहते हैं जो कभी पूरी न होनेवाली हों। जब हमें जाना ही है तो ऐसे काम कर जायं जिससे हमारा जीवन सफल बने। हम अपने 'जीवन का अच्छे से अच्छा उपयोग करलें। पर हमारा जीवन बिना पते के लिफाफे की तरह बीत रहा है। कहां जाना है, क्या करना है? उसका कोई ठिकाना नहीं। सचमुच ऐसी महत्वपूर्ण चीज का इस प्रकार दुरुपयोग खेद और अचरज की चीज है। जीवन का उपयोग विवेक और सावधानी से होना चाहिए था पर अधिक से अधिक बेदरकारी उसीके विषय में पाई जाती है। हम उसके सच्चे महत्व को नहीं जान पाये कि वह कब पूरा होगा व हमें यह सब छोड़कर जाना होगा इसका हमें ठीक से भान नहीं है। यदि वह होता तो हम उसे इस प्रकार बेदरकारी से नहीं बिताते।

मनुष्य का चित्त किसी न किसी विषय में लगा ही रहता है वह खाली नहीं रहता। यह उसका स्वभाव है। यदि अच्छी संगति मिल गई उसे अच्छे विषयों में लगाया और अपनी जीवन-शक्ति द्वारा अच्छे काम किए तो उसका सद्-उपयोग होता है पर यदि बुरी संगति लगी और चित्त को लगाने के लिए बुरे व्यसनों में लगे तो उसका बड़ा दुरुपयोग होता है। हम अपने और दूसरों के दुःखों की वृद्धि करते हैं। अपने अमूल्य जीवन को दूसरों की निंदा करने में तथा ऐसे कामों में खर्च करते हैं जिससे दूसरों के दुःखों की वृद्धि हो।

जो समय बीत गया उस पर तो हमारा कोई वश नहीं, कल क्या होगा इसका भी हमें कोई ठीक पता नहीं है। ऐसी स्थिति में जो समय हमारे हाथ में है उसका योग्य और अच्छा उपयोग किया जाय तो हम वैसा कर सकते हैं। क्योंकि प्रकृति ने इस संसार में ऐसी व्यवस्था की है कि जो जैसा बनना चाहे बन सकता है। यदि हम जीवन शुद्ध, पवित्र और उन्नत बनाना चाहें तो वैसा बना सकते हैं और हल्का, अपवित्र और नीचा गिराना चाहें तो पशुओं से बदत्तर भी बन सकते हैं। भला बनना चाहें तो आप देवताओं से श्रेष्ठ ऐसे महान् बन सकते हैं और बुरे बनना चाहो तो ऐसे दानव बन सकते हैं कि अपना जीवन भी दुःखी बनावें और संसार में भी दुःखों की

शुद्ध बना दें। इस संसार में सब कुछ व्यवस्था है।

आपको जो जीवन-शक्ति मिली हुई है उसका उपयोग कर आप महान से महान संत, उपकारी और जनहित करनेवाले बन सकते हैं। इस संसार को स्वर्ग बना सकते हैं। हमने देखा कि इस संसार में अनंत शक्ति भरी हुई है और उसका उपयोग करने की हमको अक्ल भी दी गई है। पर हमें मिली अक्ल का, जीवन-शक्ति का योग्य उपयोग करना चाहिए।

यदि हमने जीवन का महत्व पहचान लिया। उसके स्थिरत्व का हमें भान हो गया तो हम उसके महत्व को समझकर सदुपयोग करने का विचार करेंगे और जैसा हमारा विचार होगा वैसा जीवन बिताने का प्रयत्न करेंगे। उस जीवन के अनुकूल हमारी जीवन पद्धति और आदतें बनेंगी, जो अबतक बिना किसी ध्येय के प्रवाह पतित की तरह जैसे दूसरों का जीवन बीत रहा है वैसा ही बीतता आया और हमारी वैसी आदतें रहीं तो उन्हें बदलनी होंगी। यह सब हो सकेगा, सिर्फ हमें अपनी आदतों को बदलना होगा। फिर हमारा बीता हुआ जीवन हमारे जीवन-विकास में मददगार बनेगा। सिर्फ जरूरत है जीवन को मोड़ देने की—उसकी दिशा बदलने की। यदि आपने अपने जीवन का मोड़ बदला तो आपको आगे बढ़ानेवाला मार्ग दर्शक तथा उसके मार्ग के अनुसार जीवन-शक्ति का विकास और सद्उपयोग करने की शक्ति आपके पास मौजूद है।

आप अपनी शक्ति का उपयोग नहीं करते यदि आपने यह निश्चय किया तो आपको अवश्य सफलता मिलेगी। प्रथम आपको प्रातःकाल जल्दी उठकर एकान्त में बैठकर यह सोचना है कि आपको क्या करना श्रेयस्कर है। दिन भर उसके अनुसार चलने का प्रयत्न कर संध्या को सोते समय लेखा लीजिए कि आपने जो संकल्प किया था उसके अनुसार चल पाये या नहीं। आपके संकल्प में जितनी दृढ़ता होगी उतनी ही आपको सफलता मिलेगी और आप आगे बढ़ेंगे।

आप बहुतसी बातें एक साथ करने का संकल्प या निश्चय न कर एक-एक बात को लेकर अपनी आदत को बदलिए। जैसे आप को गुस्सा आता है तो गुस्से से होनेवाली हानियों का विचार कर वह न आवे इसका प्रयत्न करें। कुछ दिनों के अभ्यास से आप अपने क्रोधपर विजय पालेंगे। ऐसे एक-एक दोष को लेकर अपने सद्गुणों का विकास करते जायं परिणाम यह होगा कुछ दिनों में आपकी आदतें एकदम बदल जावेंगी और अपने जीवन का और जीवन शक्ति का दुरुपयोग हो रहा है उसका सद्उपयोग कर अपनी जीवन शक्ति को बढ़ा लेंगे।

वैसे सबसे प्रेम का और आत्मवत व्यवहार करना, सत्य का उपयोग यह बातें स्वाभाविक, सहज और आसान हैं पर हम पर ऐसे संस्कार जम गए हैं—हमारी रहन-सहन और आदतें ऐसी बन गई हैं कि इन बातों को करना कठिन मालूम देता है और विचारकों—संतों और सज्जनों को कहना पड़ता है कि कमसे कम इतना तो करो कि दूसरे को तकलीफ न दो, सच बोलो, किसी को कष्ट न दो, शोषण मत करो, परिग्रह के पीछे पागल न बनो, संयम से रहो, अमर्यादित-असंयमी जीवन मत बिताओ।

वास्तव में ये बातें हमारे तथा सबके जीवन को सुखी बनाना हो तो आवश्यक हैं और सभी सुखी बनना ही चाहते हैं इसीलिए उनका व्यवहार आवश्यक है। पर आज इन आवश्यक बातों के पालन के लिए व्रत लेना पड़ता है—निश्चय करना पड़ता है; क्योंकि हमने जीवन और उसके महत्व को भूलने के कारण उसकी उन्नति या सद्उपयोग के लिए आवश्यक बातों को भुला दिया है और उन व्रतों का पालन मानों बहुत कठिन काम हो बैठा है। तभी अणुव्रत आन्दोलन शुरू करना पड़ा।

वास्तव में यह व्रत जीवन के सद्व्यय के लिए आवश्यक है और जीवन को सुखी और उच्च बनाने के लिए इनके सिवा दूसरा कोई अच्छा रास्ता ही नहीं है ऐसी निष्ठा हम प्रदर्शित कर अणु यानी अल्प से अल्प प्रमाण में शुरुआत करते हैं हमें इतना तो करना ही है पर यहीं पर नहीं ठहरना आगे बढ़ना है।

जीवन की शुद्धि और विकास के लिए हमें संयम और सद्गुण-विकास दोनों प्रक्रिया का आश्रय लेना पड़ता है। जीवन को शुद्ध, पवित्र व निर्मल बनाने के लिए हमारे में जो अशुद्धियां हैं, कमियां हैं दोष हैं उन्हें निकालने में संयम उपयोगी होता है। संयम से अपने मन, इन्द्रियां और आदतों पर काबू पाना होता है तथा सद्गुणों के विकास के लिए शुभ प्रवृत्तियों में अपने आपको लगाकर अपनी जीवन-शक्ति का सद्गुणों द्वारा विकास करना होता है।

यदि हम इस प्रकार दृढ़ संकल्प बन अपने जीवन का सद्उपयोग और विकास करने का निश्चय करें और आदतें बदलने के लिए व्रतों का सहारा लेंलेंतो निसंदेह हम आगे बढ़ सकते हैं पर आज सबसे आवश्यक बात यह है कि हम अपने जीवन के महत्व को समझें।

दोष को धिक्कारो, दोषी को नहीं।

—शेक्सपीयर

आलस्य वह राज रोग है जिसका रोगी कभी नहीं संभलता —प्रेमचन्द

पूर्ण जीवन साधना का व्रत वरो।

[श्री 'भ्रांत']

भग्न भू की रण विखण्डित खाइयाँ
और मानव की विकल परछाइयाँ,
कह रही हैं युग-चरणकी चाप बनकर
अब मनुजको त्राण दे शोभित करो।
क्योंकि भौतिक दम्भ की मलिनाइयाँ
रच रही हैं स्वार्थमय कठिनाइयाँ,
इसलिये संघर्षका अभिशाप तजकर
राष्ट्र को नव प्राण दे जीवित करो !

हैं मनुजता की युगीन कहानियाँ
चिर अमरता की नवीन निशानियाँ,
जल रही है ज्योति शाश्वत-सत्य-चिन्मय
अन्धकाराच्छन्न उर का तम हरो।
रज कणोंमें नाश की चिनगारियाँ—
भर, भुवनकी मत जलाओ क्यारियाँ,
प्यालियोंमें किन्तु प्राणोंकी; हिरण्मय
दिव्य जीवनका सुधामय रस भरो !

विश्व में फैली हुई हैं ईतियाँ
दुःख दावानल प्रचण्डित भीतियाँ,
आँधियों में फूल के सुकुमार कुड्मल-
सूखते जो स्नेह-जल सिञ्चित करो।
मुस्करायें श्यामला की वीथियाँ
जी उठें जीवन-जगत की रीतियाँ,
भव्य हों भूतल, नभस्तल, सकल दिशि-
पल, पूर्ण जीवन साधनाका व्रत वरो !

चाह रह जाये····

[मुनिश्री बुद्धमलजी]

तृप्तियां चाहे मिटें, पर चाह रह जाये
आंसुओं में झांकती है विवशता मन की
स्पन्दनों में उभरती आती व्यथा तन की
ठिठक में पग की अनेकों जाल उलझन के
चिन्तनों में रुद्ध हैं घनघोर सावन के
किन्तु इनकी क्यों हमें परवाह रह जाये ?
तृप्तियां चाहे मिटें, पर चाह रह जाये

चेतना आहत अनेकों बार होती है
बुद्धि अपनी विकलता पर स्वयं रोती है
जिन्दगी वरदान की भूखी सदा रहती
किन्तु बहुधा वह यहां अभिशाप ही सहती
क्रम यही; तो फिर कहीं क्यों आह रह जाये ?
तृप्तियां चाहे मिटें, पर चाह रह जाये

मृत्यु का आह्वान हम हर श्वांस में पढ़ते
हृदय में सिहरन लिये फिर भी चरण बढ़ते
चरण-चिन्हों को चरण भी अमर कर जाते
यदि न ये अनुगामियों से ही ढंके जाते
किन्तु इसका दुःख क्या ? जब राह रह जाये
तृप्तियां चाहे मिटें, पर चाह रह जाये

ओ मानव के प्यार

श्री रामअवतार चौरासिया 'अनन्त'

ओ मानव के प्यार आज आलोक-पुंज बन आओ !
दुःख - दैन्य का तिमिर तिरोहित होवे एक निमिष में,
और घृणा - विद्वेष - भावना, अन्तर्हित हो क्षण में।
प्रेम दया औ स्नेह सरलता उद्भापित हो सब में,
समता के मृदुभाव हृदय में पुष्प समान खिलाओ !
ओ मानव के प्यार आज आलोक-पुंज बन आओ !!
नवल चेतना, नव अरुणाभा, दिशि - दिशि में फैलाओ,
जन - जन के मानस - मन्दिर में मधु - रस हर्ष लुटाओ।
मलयानिल की सुखद बायु में, नव परिमल बिखराओ,
प्राची की स्वर्णिम रेखा पर नवल विहान जगाओ !
ओ मानव के प्यार आज आलोक - पुंज बन आओ !!
रिक्त हृदय - घट पूरित कर दो भर दो चिर - मादकता,
तृषित जगत की प्यास बुझा दो, सरसित हो मानवता।
नील गगन से बरसाओ तुम अमृतमय सुमधुरता,
आँखों के आँसू में प्रमुदित गीत बने मुसकाओ !
ओ मानव के प्यार आज आलोक - पुंज बन आओ !!

चार घोड़ों की गाड़ी

[आचार्य श्री जगदीशचन्द्र मिश्र]

[यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि दो पक्षों में परस्पर का वड़प्पन, कठोरता और जिद ही व्यर्थ के संघर्ष को जन्म देती है। यदि 'लालाजी' की तरह उदारता का आश्रय लिया जाय तो न जाने कितनी समस्यायें विल्कुल आसानी से ही सुलझ जांय और प्रेम की सरिता परस्पर द्वेष की खाइयों को लाँघती हुई हमारे हृदयों में प्रवाहित होने लगे —संपादक]

मिठ्ठन की लड़की का व्याह था। बारात अभी द्वार पर नहीं आई थी। अभी उसे न्योतने के लिए विरादरी के लोग इकट्ठा होकर गये थे। वह सब वापिस आ गये थे। वहुत देर से प्रतीक्षा हो रही थी। फिरभी वारात नहीं आ रही थी। न्योतिनी पर जो लोग गये थे, वह अलग, दो-चार की टोली बनाकर खडे कानाफूसी कर रहे थे। किन्तु साफ-साफ कोई कुछ नहीं वता रहा था कि न्योतिनी होजाने पर भी वारात अभीतक द्वार पर क्यों नहीं आई?

मिठ्ठन की धर्मपत्नी वरका स्वागत करने को थाल सजाये, आज मानके साथ द्वार पर खड़ी थी। उसके दाँये-वाँये विरादरी की बहुत सी औरतें खड़ी मंगल गान कर रही थीं।

मिठ्ठन ने इस शादी में जान लड़ादी थी। आखिर अपनी विरादरी में आजतक उसने किसीसे गर्दन नीची न की थी। लालाका भंगी होने के कारण अपनी विरादरी में उसकी इज्जत भी कम न थी। पंचायतों में, व्याह-शादियों में उसकी पूछ सबसे ज्यादा होती थी। फिर जब आज उसकी ही इकलौती वेटीकी शादी होने जा रही थी, तो उसके हाथ सबसे लम्बे होने चाहिये थे।

लाला का उसे सहारा था। दो-सौ रुपया लालाने अपने भंगी की लड़की की शादी में अपनी इच्छा से दिया था। दो-सौ रुपये उसने ललाइन के आगे हाथ-पैर जोड़कर कर्ज ले लिये थे। कुछ रुपया उसने धीरे-धीरे लड़की की शादी के लिए जमा किया था। सब मिला-कर दो हजार रुपया वह अपनी इकलौती लड़की की शादी पर खुशी-खुशी खर्च कर रहा था।

विरादरी के लोग जब मिठ्ठन की लड़की की शादी के खर्च की सुनते तो ईर्ष्या से आह करके रह जाते।

× × ×

सूर्य अस्त होने का समय आगया और वारात द्वार पर तब भी न आई तो मिठ्ठन के पैरों तले की मिट्टी खिसकने लगी। अधीरता से, विरादरी के वड़े-बूढ़े जहाँ वैठे थे, वहाँ जाकर चतरू दादा से बोला—'दादा! न्योतिनी तो हो गई। फिर वे लोग अभीतक द्वार पर क्यों नहीं आये?'

चतरू, जो विरादरी में सबका अगुआ रहता था, वोला—'भाई, कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है। न मालूम सही वात क्या है।.........तुम्हें पहिले ही कहा था, भाई! लड़की के लिए कामकाज का आदमी ही देखना—पढ़ा-लिखा नहीं। आजकल पढ़े-लिखों का दिमाग आसमान में रहता है। पर भाई तुम माने ही नहीं। अव खुद ही उनके नाज-नखरों को सम्भालो!.........'

'क्या कहते हैं, चाचा, वे?'—मिठ्ठन ने भरी जवान से पूछा।

'भाई अहकी-वहकी वात करते हैं, जिनके सिर न पैर।'

'कुछ सुनूँ तो, चाचा?'—मिठ्ठन के गले में जैसे कोई पत्थर अटक गया था।

'क्या सुनाऊ?'—चतरू चाचा ने अफ-सोस जाहिर करते हुए कहा—'अभी तक मैं इसीलिए चुपचाप एक तरफ वैठा था कि सुनकर तुम माथा पीट लोगे।........'

मिठ्ठन का दम सूखने लगा। डरते-डरते उसने कहा—'फिर भी चाचा, विना सुने तो काम न चलेगा। सुनना तो पड़ेगा ही?'

'तो सुनो!' चाचा ने एक लम्वी साँस खींचकर प्रभावशाली ढंग से कहा 'तुम्हारा पढ़ा-लिखा लड़का कहता है—मेरा ससुर लालाके घर कमाता है, आज तो मैं लाला की चार घोड़ोंवाली गाड़ी पर वैठकर ही द्वारपर जाऊँगा!'

'वाल हठ है, दादा! तुमने समझाया होता?'—मिठ्ठन ने कहा।

'वहुत समझाया, भाई! मैंने ही नहीं, विरादरी के सभी लोगोंने वहुत समझाया, पर वह नहीं माना।'—चतरू ने हल्की जवान से उत्तर दिया।

'तव, दादा!'—मिठ्ठन ने घवराकर पूछा।

'तुम एक वार जाकर समझाओ। शायद ससुर को देखकर हठ छोड़ दे। पढ़ा-लिखा लड़का है न?'—चतरू दादा की वाणी से साफ व्यंग्य झलक रहा था, किन्तु मिठ्ठन का ध्यान कहीं और था। वह लड़के की इस

असम्भव माँग की बात सुनकर, मन-ही-मन इतना घबरा गया था कि चाचाके व्यंग्य की कसक, सुनने पर भी उसे पीड़ित न कर सकी।

× × ×

मिट्ठन दो-चार रिश्तेदारों को साथ लेकर, लड़के के बापके पास आकर बोला—'चौधरी! बड़ी देर हो रही है। सारी बिरादरी तुम्हारी राह देख रही है। अब द्वारपर अगवानी को चलना चाहिये ?'

लड़के के बापने अत्यन्त मधुर शब्दों में उत्तर दिया—'चौधरी मुझे क्या इन्कार है; पर जरा अपने दामाद की बात तो सुनो—आज उसने कैसी हठ पकड़ी है। मानता ही नहीं, सभी लोग बारी-बारी से समझाकर हार मान बैठे हैं।'

मिट्ठन का दम सूखने लगा। चतरू चाचा की बात झूठी न थी। साहसकर उसने पूछा—'आखिर बात क्या है ?'

'तुम्हारा दामाद कहता है'—लड़के के बाप ने सहज भाव से उत्तर दिया—'मेरा ससुर लाला की कमाई खाता है। मैं तो आज लाला की चार घोड़ोंवाली गाड़ी पर बैठकर ही जाऊँगा।......'

'......पर......'—मिट्ठन ने सकपकाकर कुछ कहना चाहा, पर बीच में ही उसे रोक कर लड़के के बाप ने कहा—'मैं जानता हूं—हम लोगों को 'कौन अपनी चार घोड़ोंवाली गाड़ी देगा। पर वह मानता ही नहीं।'

'तब !'

'लाचारी है।'

मिट्ठन का दिल बैठ गया। कोई और मांग होती, तो वह कोशिश करता। रुपये-पैसे के लिए घर-द्वार बेच देता, कर्ज ले लेता, परन्तु चार घोड़ोंवाली गाड़ी उसके वश की बात न थी। उसके ही क्यों, किसी के भी वश की बात न थी। वह लाला से इस बात के लिए कैसे कहे ? उसकी समझ में ही नहीं आया—भला लाला की गाड़ी, एक भंगी के दामाद के लिए कैसे आ सकती है ? उनकी अपनी भी तो बिरादरी है !

निराश हो वह लौट गया और सोचने लगा कि अब क्या होगा ? शादी नहीं होगी ? बारात लौट जायेगी ? उसका आज तक का सब सम्मान मिट जायेगा ! चार लोग क्या कहेंगे ? बिरादरी उसके जनम-करम में थूकेगी ? और चेतन ! उसकी इकलौती बिटिया ; उसके जिगर का टुकड़ा !—सोचते-सोचते उसकी आँखों में पानी भर गया।

बिरादरी के लोग मिट्ठन को उदास-मुँह वापिस आता देख काना-फूसी करने लगे—'अच्छा हुआ लाला की पगड़ी के पेंच आज ढीले होंगे।' मिट्ठन की भीगी आँखें, लौटते वक्त बिरादरी के लोगों के सामने न उठ सकीं। वह जल्दी-जल्दी डगमगाते पैरों से भीतर घर में घुस गया। मिट्ठन की धर्म-पत्नि मंगला बड़ी समझदार थी। इस शुभ अवसर पर पति को भीगी आँखें देखकर मंगला डर गई और उसके हाथ का स्वागत थाल, गिरते-गिरते बचा। पास खड़ी औरतों के हाथ में थाल थमाकर, वह तेजीसे घर के भीतर आई। मिट्ठन औंधे मुँह चारपाई पर पड़ा सुबक रहा था।

अपने को सँभालकर मंगला ने कहा—'छिः : छिः; अपनी लड़की के विवाह पर भी कोई दुःखी होता है ?'

सहानुभूति पाकर करुणा का वेग अक्सर बढ़ जाता है। मिट्ठन अब सचमुच रो पड़ा। मंगला का डर बढ़ने लगा। उसने पूछा—'क्या किसी से लड़ बैठे ?'

आँसू पोंछते हुए मिट्ठनने कहा—'नहीं !'

'कुछ नुकसान हुआ ?'

'नहीं।'

'तब क्यों रोते हो ?'—मंगला की आवाज में तेजी आ गई थी।

'अब बारात द्वार पर नहीं आयेगी।'—घिघियाकर मिट्ठन ने कहा।

'क्या कहते हो ?'—मंगला की वाणी में अविश्वास और भय था।

'सच कहता हूं।'

'क्यों ?'

'तुम्हारा दामाद कहता है—'मैं लाला की चार घोड़ोंवाली गाड़ी पर बैठकर ही आज अगवानी कराने आऊँगा।'

मंगला को विश्वास नहीं आया। क्या पढ़ा-लिखा लड़का भी ऐसी अनहोनी बात कह सकता है ? उसने कहा—'किसी ने बहका दिया होगा, बालक ही तो है।......'

'सब समझाकर हार गये।'—मिट्ठनने मंगला की बात काटी।

'तुम जाते ?'—मंगला ने फिर कहा।

'मैं भी गया था'

'फिर भी नहीं माना ?'

'नहीं।'

'तब ?'

'सिवाय रोने के क्या हो सकता है !—' मिट्ठन ने एक शब्द आह खींचकर कहा।

मंगला कुछ देर तक दोनों हाथों से सर पटककर जमीन पर बैठी रही और उसके बाद यकायक उठकर बोली—'चलो मेरी साथ।'

'कहाँ ?'—मिट्ठन ने चौंककर पूछा।

'लाला के यहाँ।'

'पागल हुई हो ?'

'क्यों ?'

'वह गाड़ी देंगे ?'

'क्यों नहीं देंगे ?'—मंगला ने दृढ़-विश्वास के साथ कहा—'जरूर देंगे। यह कोई मामूली बात नहीं। क्या बारात लौट जाने देंगे ?'

'उनकी लड़की की बारात थोड़े ही है ?'—

(शेषांश पृष्ठ २७ पर)

● *लेकिन सबसे ज्यादा प्रेम*……

ध्येय-पथपर बढ़नेवाले पथिक के सम्मुख न जाने कितनी बाधायें उपस्थित होती हैं, लोभ और मोह की आँधियाँ चलती हैं। परन्तु इन सबसे टक्कर लेने के लिये चाहिये—आत्म-विश्वास, हृदय की विशालता व उन्मुक्त प्रेम। आचार्य श्री विनोबा का यह दृष्टान्त उसी दिशा में एक प्रेरणा-स्त्रोत है—

"हमारे साथ कितने साथी हैं, यह विचार ही हम न करें। बल्कि समझें कि हमारा यह 'आरोहण' है। पांडव केवल पांच ही थे और वे बहुत प्रेम से साथ रहते थे। लेकिन जब 'आरोहण' शुरू हुआ, तो क्या हाल हुआ ? द्रौपदी, भीम, अर्जुन आदि सब एक के बाद एक गिर पड़े, तो भी धर्मराज (युधिष्ठिर) निराश नहीं हुए। होते-होते सब गिर पड़े सिर्फ एक कुत्ता आखिर तक साथ रहा। लेकिन जहाँ स्वर्ग का दरवाजा खुल गया, वहाँ भव्य नाटक हुआ। स्वर्ग के द्वारपाल ने धर्मराज के लिये स्वर्ग के द्वार खोल दिये, लेकिन कुत्ते को अन्दर आने से रोक दिया। तब धर्मराज ने भी अन्दर जाने से इन्कार करते हुए कहा—'मैं अपने भाइयों को छोड़कर आगे बढ़ सकता था, क्योंकि वे जीवन साथी थे। पर यह कुत्ता आरोहण का भी साथी है, इसलिये इसको छोड़ना नहीं चाहता। अगर कुत्ते का स्वर्ग में प्रवेश नहीं हो सकता है, तो मेरे लिये स्वर्ग किसी काम का नहीं है।' युधिष्ठिर की जो यह भावना थी इसको सामने रखकर ही हमें काम करना है। अर्थात् जिन्दगी के साथी हमें छोड़ भी दें तो हमें उसपर शोक नहीं करना है और अगर हमारा साथ एक कुत्ता भी देता है, तो उसको छोड़ना नहीं है। प्रेम सबके लिये है लेकिन सबसे ज्यादा प्रेम आरोहण के लिये है।"

● *इसका कसूरवान कौन ?*

'संयम ही जीवन है' इसे यदि उल्टाकर दिया जाय तो एक प्रकार से असंयम का ही दूसरा नाम मृत्यु हो जाता है और इस असंयम को उत्पन्न करनेमें विचारों और मनका कितना हाथ है—इसे जानने के लिये 'आरोग्य' में प्रकाशित ये पंक्तियाँ निश्चय ही पठनीय हैं—

"हम सारे रोग मन से ही मोल लेते हैं। जैसे 'मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।' कहा है वैसे ही योग वाशिष्ठकार ने रोगों का कारण बहुत कुछ मनको बतलाया है। 'कैसे ? कौन चाहता है, मैं रोगी होजाऊँ ?' नहीं यह तो कोई नहीं चाहता, सभी चाहते हैं हम निरोग रहें, सुखी रहें, मौज में रहें। पर इसके साथ ही वे यह जो चाहते हैं कि गलत रास्ते पर चलकर भी मंजिले-मकसूद पर पहुंच जाँय। यह कैसे सम्भव होगा ? आप इन्द्रियों का गलत इस्तेमाल करके भी निरोग कैसे रह सकते हैं ? उनका उचित उपयोग समझ लें और तदनुसार चलें तो अवश्य निरोग रहेंगे। सब आपके मनसे समझने की बात है और मनसे चलने की। आप न समझें और न चलें और फिर बीमार पड़ें तो इसमें कसूर किसका है ? 'मानों अपनी बीमारी के कारण हम ही ठहर गये। दुःख भी हम भोगें और कसूरवार भी हम ही। यह तो खूब रही।' है ही, यह जो कसूर आपने किया तो दुःख कौन भोगेगा ? इसी से एक ने कहा है, Sick man is a rascal बीमार दुष्ट है। हम कुछ बीमारियों में तो यह भावना रखते भी हैं, जैसे गर्मी, सुजाक वगैरह में कहते हैं—गये तो मजा लूटने, लो अब भोगो तुम्हीं। पर और बीमारियों में हमारी यह दृष्टि नहीं होती। लोग समझते हैं, बीमारियाँ अपने आप हो जाती हैं या भाग्य से होती हैं। पर सही मानिये कि यह सब आपके कर्मों का भोग है। कर्म माने भाग नहीं "करतब।"

○ *दोपहर का खुला चौराहा*

कहा गया है कि किसी भी राष्ट्र के साहित्य में उसकी आत्मा बोलती है। फिर गद्य-साहित्य की क्या आवश्यकताएं और विशेषताएं हैं इसका संक्षिप्त सा परिचय 'सुप्रभात' में प्रकाशित श्री मटरलिंक के इस सुन्दर संस्मरण से स्पष्ट है—

"अपने अनुभव के बल पर मैं तो इतना कह सकता हूं कि मुझे किसी भी अपरिचित राष्ट्र अथवा जाति का गद्य-साहित्य दे दो, मैं उस राष्ट्र अथवा जाति की सारी विशेषतायें-समस्त क्षमताएं और दुर्बलताएं आपको बता दूंगा। गद्य-साहित्य तो किसी भी नस्ल या देश का दर्पण है। काव्य में आप अपने को छिपा सकते हैं, मगर गद्य तो दोपहर का खुला चौराहा है, रंगमंच नहीं। उदाहरण के लिये जर्मन और अंग्रेजी भाषा के गद्यों की तुलना कीजिये। जर्मन भाषा का गद्य एक प्रखर शैल-वाहिनी की भाँति एकरस-निर्द्वन्द और एकदम मुक्त व्यंजकता का प्रतीक है। इसके विपरीत अंग्रेजी-गद्य को विराम-चिन्हों में विपुलता ही बता देती है कि उसमें जगह-जगह वक्रताएं और समझौते हैं, फूंक-फूंककर चलने की आदत है। क्या ये ही दोनों जातियों की अलग विशेषताएं नहीं हैं ?"

● *अन्त तक आदमी !*

आज जबकि चारों ओर जातिवाद और प्रान्तवाद के नामपर अनेकानेक मन-मुटाव और झगड़े फैले हुए हैं, क्या श्री सत्यदेव विद्यालंकार द्वारा लिखित 'समाज' का यह संस्मरण हमारी आँखें खोल सकेगा—

"घटना १९२२ की है। स्वर्गीय राधा-मोहन गोकुलजी पर नागपुर में राजद्रोह का मुकद्दमा चल रहा था। उनसे जब उनकी जाति पूछी गई, तब उन्होंने अँगरेजी के प्रश्न का उत्तर अँगरेजी में ही देते हुए अपनी जाति 'मैन' (मनुष्य) बताई। मजिस्ट्रेट ने जब दुबारा पूछा तब उन्होंने एम-ए-एन कहकर अपने उत्तर को स्पष्ट किया। मजिस्ट्रेट बोले—"मैं आपकी मूल जाति जानना चाहता हूँ।" इस पर उन्होंने कुछ गम्भीर होकर कहा—"मैं जब पैदा हुआ तब आदमी था, अब भी आदमी हूं और मरने के दिन तक आदमी ही रहूंगा।" मजिस्ट्रेट ने जाति पूछने का अधिक आग्रह नहीं किया।"

● *पाप नहीं अज्ञान !*

गल्ती करना मानव का स्वभाव है। फल-स्वरूप आये-दिन न जाने कितने अपराध या पाप हमारे द्वारा होते रहते हैं परन्तु वस्तुतः इनके पीछे कौन-सा तत्त्व काम करता है इसकी व्याख्या 'पांचजन्य' में प्रकाशित श्री पुरानन ने कितनी सुन्दर शैलीमें की है—

"आगन्तुक ने एक झोंपड़ीमें शरण ली।"

झोंपड़ी के स्वामी ने आगन्तुक की आव-भगत की, सब प्रकार से उसके सुख-सुविधा की व्यवस्था की।

रात्रि का समय होने पर सुन्दर-सा बिस्तर आगन्तुक के लिये बिछा दिया गया। आगन्तुक उस पर विश्राम करने लगा, किन्तु उसकी दृष्टि झोंपड़ी में रखे स्वर्ण-दीप पर ही अटकी रही। वह सो न सका।

जब गृह-स्वामी सो गया, आगन्तुक ने स्वर्ण-दीप को उठाया और नगरकी राह पकड़ी।

नगर में जाकर उसने दीप को बेचने का प्रयास किया, किन्तु सन्देह में बन्दी बना लिया गया।

अन्ततोगत्वा उसे कुटिया के स्वामी के पास लाया गया।

बन्दी अवस्था में पूर्व आगन्तुक को देख-कर कुटिया का स्वामी सिपाहियों से बोल उठा—"ओह! आपने व्यर्थ में भद्र पुरुष को बन्दी बनाकर कष्ट दिया। मैंने स्वयं इसे यह दीप दिया था।"

बन्दी मुक्त कर दिया गया।

सिपाहियों के चले जाने पर आगन्तुक कुटिया के स्वामी के चरणों में गिरकर बोला—"दयालु! इतनी करुणा! मेरे अपराध का यह दण्ड! मैं क्या आभार प्रदर्शित करूँ?"

"भद्र! जगत् में न कुछ पाप है, न अपराध है। सब अज्ञान का परिणाम है। बन्धु! ज्ञान-दीप के प्रकाश में अज्ञान-तिमिर को धो डालो। इसीमें कल्याण है। यह स्वर्ण-दीप तुम्हारे लिये ज्ञान-दीप सिद्ध हो। भगवान से यही प्रार्थना है।"

● *सच्चा हो जाऊँ तो..........*

विवेक जाग्रत होने पर मनुष्य किस प्रकार अपने विचारों, कुसंस्कारों और कुकृत्यों से छुट-कारा पा लेता है, इसका जीता-जागता उदाहरण 'गीता सन्देश' में प्रकाशित इस लघु कथा से से प्राप्त करिये—

"एक माली का लड़का बागमें जब पेड़ लगा रहा था तो अचानक उसकी दृष्टि रानी पर पड़ी। रानी की सुन्दरता को देखकर वह मुग्ध हो गया। वह उसी रानी के चिन्तन में बड़ा कमजोर हुआ जा रहा था कि एक दिन उसकी माँ ने पुत्रसे कमजोर होने का कारण पूछा। पुत्रने सभी हाल स्पष्ट कह सुनाया।

माँ ने कहा—"बेटा कोई चिन्ता नहीं, तुम्हें रानी से मिला दूँगी। पर एक काम करो, तुम छः महीने के लिये, कहीं बाहर चले जाओ और दाढ़ी आदि बढ़ाकर महात्माओं जैसा स्वरूप बनाकर आ जाओ।" ठीक छै महीने बाद वह लड़का महात्माओं जैसा स्वरूप बनाकर आया उसी बगीचे में ठहर गया।

उसकी माँ ने तत्काल यह प्रसिद्ध कर दिया कि बड़े पहुंचे हुए महात्मा बागमें आये हैं। अब तो शहर के सभी लोग वहाँ आकर इकट्ठे होने लगे। जब यह समाचार महलों में गया, तो वह रानी भी दर्शन करने के लिये पहुंची।

मालीके बेटेने विचार किया कि जब मैं झूठा बनावटी महात्मा हूँ तब तो रानी तक दर्शन को आती है, यदि सच्चा महात्मा हो जाऊँ तो न जाने संसार में मैं कितनी महानता प्राप्त करूँगा और तब जाने कौन-कौन मेरे दर्शन को आवेंगे?

यह सोचकर बुरे विचार त्याग, वह सदाके लिये अच्छा महात्मा बन गया और देश भर में प्रसिद्ध हो गया।

● *एक साथ दोनों नहीं*

क्या यह सम्भव है कि हम एक साथ देव-दैत्य, सत्य-असत्य, नीति-अनीति और भले-बुरे दोनोंकी उपासना करें? इसीका उत्तर गांधीजी के 'नयाभारत' में प्रकाशित इन विचारों में पढ़िये :—

"यह बड़े मूल्य का आर्थिक सत्य है कि आप एक साथ ही ईश्वर और कुबेर की पूजा नहीं कर सकते। हमको दोनों में से किसी एक को ही चुनना है। आज पाश्चात्य राष्ट्र भौतिकवाद के राक्षसदेव की एड़ी के नीचे दबे हुए कराह रहे हैं। उनका नैतिक उत्थान रुक गया है। वह अपनी उन्नति पौंड, शिलिंग, पैंस में गिना करते हैं। अमरीका की आर्थिक समृद्धि उनके लिये आदर्श हो गई और अम-रीका की तरफ लोग ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं। हमने बहुत से देशवासियों को यह कहते सुना है कि हम अमरीका जैसी ही सम्पदा प्राप्त करेंगे। मैं यह कहने की हिम्मत करूँगा कि यदि ऐसा प्रयास किया गया तो वह निश्चित रूपसे असफल होगा। हम एक ही अवसर पर बुद्धिमान, शान्त और क्रुद्ध नहीं हो सकते। मैं तो चाहूँगा कि हमारे नेतागण इनको यह शिक्षा देते कि हम नैतिक दृष्टि से संसार में सबके ऊपर रहें।"

समाज सेवा का

स्वरूप और विशेषताएं

[श्री राजेश्वर सक्सेना एम० ए०, साहित्यभूषण]

[प्रत्येक कार्यक्रम पर देशगत वातावरण और परिस्थितियों का पूरा-पूरा प्रभाव रहता है। भारत में समाज सेवा करने के लिए अन्य देशों की देखादेखी व अनुकरणमात्र से काम न चलेगा, इसके लिए यहां की परम्परा और संस्कृति का सहारा लेना आवश्यक है तभी समाज सेवा का सच्चा स्वरूप सामने आ सकेगा। प्रस्तुत लेख में इसी का विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है —सम्पादक]

समाज सेवा के बारे में हमने देखा कि वह एक वैज्ञानिक स्वरूप को लिए है और अब, न केवल समाज के एकाङ्गी वरन् सर्वाङ्गीण कल्याण को दृष्टिगोचर रखते हुए प्रगतिशील है। आज हमारे देश में इस वैज्ञानिक समाज-सेवा सम्बन्धी दो विचार-धाराएं प्रवाहित हैं। कोई भी दो समाज शास्त्री, विद्वान या समाज-सेवा संस्थाएं इस विषय में एक मत नहीं रखतीं।

समाज कल्याणको वैज्ञानिक ढंग से समझने, सीखने और पढ़ने के लिए हमें भारतीय तथा पूर्वीय एशीयाई दशा को समझना और परखना है। पूर्णरूपसे अमरीकी समाज सेवा की 'पेशेवर विचारधारा' या रूस की पूर्ण रूपसे सरकारी हस्ताक्षेप या (Totalitarian) भारतीय वातावरण में उपयुक्त नहीं है। यहाँ तो नैतिकता, धर्म और विदेशी तरीकों के समनवय से ही कल्याण कार्य सुचारु रूपसे चल सकता है। क्योंकि यहाँ स्वयं व्यक्ति और समाज में अन्तर नहीं माना जाता और नहीं स्वयं के व्यक्तित्व को मिटा ही दिया जाता है। यहां 'समाज सेवी' का ध्येय अपना उत्थान तथा समाज कल्याण दोनों ही हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' यहां का बहुत पुराना आदर्श रहा है और यदि भारतीय समाजसेवी को भारतीय आदर्श और संस्कृति में लिपटा 'समाज सेवा का ढ़ंग' न दिया गया और केवल विदेशी वैज्ञानिक ढंगों और पेशावर दृष्टिकोण, जिसमें नैतिक और धार्मिक पुट न होगा, दे दिया गया, तो वह भटक जायगा। यहां तो ऐसी समाज सेवा की आवश्यकता है जिसको महात्मा बुद्ध ने जीवन दिया और हजारों साधुओं, सन्तों और ऋषियों ने पाला, जिसको स्वामी विवेकान्द ने उज्जवल और निखरा हुआ स्वरूप दिया और महात्मा गांधी व विनोबा ने जिसपर अपने जीवन में अमल किया। इसके यह अर्थ कदापि नहीं कि यह एक व्यवसाय नहीं बन सकता। परन्तु केवल इतना है कि हम इसको एक व्यवसाय के रूप में ले सकते हैं, विदेशी वैज्ञानिक ढंगों को अपना सकते हैं, परन्तु पहले भारतीय अवस्था और आदर्शों, नैतिक तथा धार्मिक मान्यताओं को हमें दृष्टिगत में रखना आवश्यक है। इन सबको देखते हुए यह आवश्यक है कि हम समाज सेवा के भारतीय दर्शन का अध्ययन करें और उसकी विशेषताओं का विश्लेषण करें।

सामाजिक क्रान्ति

समाज कार्य की मुख्य विशेषताएं :—

(१) यह एक "सहायक कार्यक्रम" है, जो ऐसे व्यक्तियों, परिवारों व समुदायों को सहायता देता है, जो आपसी समस्याओं के कारण, एक निश्चित सामाजिक व आर्थिक स्तर तक नहीं पहुंच पाते।

(२) यह एक "सामाजिक कार्यक्रम" है जो कि कोई व्यक्ति विशेष अपने फायदे के लिए नहीं करता, परन्तु जो स्वयं जनता या सरकारी व नगरपालिका आदि की अध्यक्षता में बनी संस्थाओं द्वारा कार्यान्वित होता है और जिनका ध्येय समुदाय के सदस्यों की सहायता व उत्थान का होता है।

(३) यह एक ऐसा "संयोजित व समन्वित कार्यक्रम" है जिसके द्वारा समाज के दुःखी व पीड़ित तथा पिछड़े हुए लोग, परिवार या समूह, अपने उत्थान तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन सब साधनों को प्रयोग में लाते हैं, जो कि समाज में प्राप्त होते हैं और जिनके द्वारा उनका कल्याण हो सकता है।

(४) समाज-सेवा का प्रमुख ध्येय व्यक्तियों, परिवारों और समूहों की सहायता करना है। इसके लिए उन आर्थिक व सामाजिक तत्वों को भी ध्यान में रखना पड़ता है जिनसे कि वह प्रभावित होते हैं। इसके यह अर्थ हुए कि एक समाज सेवी जो कि समाज के विभिन्न अंगों में कार्य करता है उसको इन तत्वों तथा अन्य बातों से सावधान रहना आवश्यक है। उसको समाज का आर्थिक,

मनोवैज्ञानिक व सामाजिक विश्लेषण वैज्ञानिक रूप से करना अनिवार्य है। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि समाज में व्यक्तियों तथा विभिन्न अंगों के आपसी सम्बन्ध का भी गहन अध्ययन किया जाए जिसके अनुसार वह आपस में बन्धे व अनुशासित रहते हैं।

(५) इसके अतिरिक्त समाज सेवा के द्वारा इस बात की भी चेष्टा होती है कि समाज में उपस्थित विभिन्न समाज-सेवा संस्थाओं को आपस में सहयोग व मिलाव हो जिससे कि किसी प्रकार का भी मतभेद न हो सके और जो व्यक्ति, परिवार व समूह उनसे फायदा उठाना चाहते हैं वे भी पूर्ण रूप से उसका फायदा उठा सकें।

अतः यह आवश्यक है कि जो कुछ भी समाज में साधन मौजूद हैं उनको समाजसेवी पूर्णरूप से समाजके कल्याण के लिए उपयोग में लाए। इससे ही समाजका कल्याण हो सकेगा।

उन देशों में जहाँ कि समाज सेवा केवल दया या दान नहीं वरन् एक वैज्ञानिक ढंग से व्यवसाय है, निम्नलिखित बातें सर्व प्रथम समाज सेवा कार्यक्रम के अन्तर्गत आती हैं—

(अ) सामाजिक विघटन और बुराइयों का वैज्ञानिक विश्लेषण तथा निरोध की ओर अन्वेषण।

(ब) उन समस्याओं का पूर्णरूप से अध्ययन तथा उनका बराबर व समय समय पर विश्लेषण जिनको कि समाज-सेवा कार्य द्वारा किया जाना है।

(स) बदलती परिस्थितियों या खोज की बिना पर समाज सेवा कार्यों का बदलना तथा उन सेवाओं में तबदीली, जो कि समाज-कल्याण-कार्य द्वारा समाज में प्रस्तुत की जाती हैं।

इसके अनुसार समाज सेवा कार्य परिवर्तन-शील तथा प्रगतिशील रहता है और साथ-साथ समाजसेवी तथा समाज-शास्त्री सदैव समाज तथा उससे सम्बन्धित समस्याओं के प्रति जागरूक रहते हैं।

चलना दूर बहुत है तुझ को !

[श्री ज्ञानरंजन बी० ए०]

मंजिल दूर बहुत है तेरी राह बड़ी सुनसान है,
बढ़ने वाले राही का चलना ही तो विश्राम है,
जीवन की यह सुखद कंटीली राह बड़ी उबड़ है भाई,
पर आशा, आँसू की बूंदें बढ़ने की मुसकान है।

एक तरफ हरियाली हंसती, एक तरफ पतझड़ रोता,
एक कोर में रूखी आहें, एक कोर में मधु सोता,
एक सफर में चंदा चमके, एक राह में अन्धियारी,
एक आंख में पानी तरसे, एक आंख में मधु प्याली।
कहाँ तलक तुम देख सकोगे, जीवन के अनुपान को,
एक दृष्टि में जीना देखो एक झलक श्मशान को,
इन दोनों कटु मृदु रूपों में ही तेरी पहचान है।
इस दुनिया में सहनशील का ही आदर, जयगान है।

देखो तुम दोनों को पर निर्लिप्त सदा बढ़ना होगा,
हर आतप की सघन चोट को हंस करके सहना होगा।
ऐसे राही को पहले पागल होना आवश्यक है,
हर संघर्षों में बढ़ने की मौज उसे आवश्यक है।
इसी मौज की आशा में तुझको चलना बढ़ना होगा,
फूलों का उपहास और काँटों को मृदु कहना होगा।
संशय में मत पड़ ऐ राही तू अपना कर्त्तव्य निभा,
चलना ही है मन्दिर - मस्जिद वही तेरा भगवान है।

रुकने की मत सोच बहक जाना सम्भव हो सकता है,
हटने की आशाओं में ही पतन मूक आ सकता है।
घूम - घूम कर तुझे देखना मंथन इस संसार का,
क्या सच है क्या झूठ अरे इस जगती के विस्तार का।
अगर चाहता दुनिया क्या है इसे जानना तू राही,
तो फिर तुझको बढ़ना होगा, इसमें तेरी शान है।
आँखों से आँसू टपकेंगे ये तो उनका काम है,
फिर भी चलता रहे मुसाफिर इसमें उसका नाम है।

हरदम चलने वाले राही का है कोई धाम नहीं,
सुख-दुःख आशा और निराशा से है उसका काम नहीं।
ऐसा राही सीमा छूने का ही स्वप्न देख सकता है,
संघर्षों के कठिन क्षणों में वह रोने पर हँस सकता है।
रोते, हँसते बढ़ना होगा यह सच्चा पैगाम है,
पत्थर, पानी के मिलने से प्रीत और विश्राम है।
गति ही राही की मंजिल है, गति ही उसका जीवन है,
नहीं मानता वह चलने में क्या सुबहो क्या शाम है।

गहरे पानी पैठ

[श्री बाबूसिंह चौहान]

मैंने ज्योंही पंडितजी की बैठक में पग रक्खा, सामने दीवार पर लिखे एक श्लोक पर दृष्टि गई—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत॥

यह कथन है—व्यासजी का। समस्त धर्म का तत्व मैं तुम्हें बताता हूं, सुनो और सुनकर उस पर मनन करके उसे हृदय में उतारो, आचरण में लाओ। तुमको जो आचरण के प्रतिकूल लगता हो अर्थात् जैसे तुम्हारा दिल दुखना हो, वैसा व्यवहार तुम दूसरों के साथ न करो।

ओह! मनुष्य की सुप्त आत्माको जागृत करने, मनुष्यत्व की ओर प्रोत्साहित करने की कितनी उत्कृष्ट प्रेरणा है, इस श्लोक में? हृदय गद्‌गद्‌ हो गया।

× × ×

पंडितजी की पुत्रवधु को सामने देख मैंने पूछा, "भाभी! कहो अच्छी तो हो?" फिर अपने प्रश्न पर मन ही मन लज्जित हुआ। उनका पीला चेहरा, धंसी हुई आंखें, डूबी-डूबी-सी। ओह! साक्षात पीड़ा की प्रतिमूर्ति। दो वर्ष पूर्व देखा था, वह सेवका-सा रंग क्या हुआ?

कृत्रिम मुस्कान लाते हुए बोली, "हाँ, ठीक ही हूँ!" फिर इधर उधर देखकर धीरे से याचना के स्वरमें बोली," "भैयाजी? एक काम करदो, बड़ा अहसान होगा। मेरे पिताजी से जाकर कह देना, वह किसी प्रकार मुझे बुलालें।"

कहते-कहते उनकी आँखें डबडबा आईं। और उसी समय पंडितजी की धर्मपत्नी ने प्रवेश किया। भाभी का अंग-प्रत्यंग कांप उठा, जैसे सिंहको देखकर भेड़ थर्रा उठी हो।

× × ×

"चाचीजी तुम्हारी बहूमें तो हड्डी ही हड्डी दिखाई देती है, क्या हुआ? क्या कोई रोग.........।"

इतना पूछना था कि उन्होंने सारा घर सिर पर उठा लिया, "अरे मैं तो पहले ही जानती थी, यह कलमुंही जरूर चुगली कर रही होगी। सारे दिन बिस्तर पर पड़ी ऐंडती है। न काम न धाम, खाना और गुलछर्रे उड़ाना। हे राम! कैसी डायन है?"

मोटी-मोटी गालियों और भारी-भारी आरोपों से उन्होंने निहाल कर दिया और भाभी थी कि सारे घरके स्नान के लिये कुएं से पानी खींचना, रसोई बनाना, सभीके बिस्तर लगाना, सीना पिरोना, चक्की चलाना, पशुओं के लिये चारे का प्रबन्ध करना, कुट्टी काटना, घरकी सफाई करना और बाल-बच्चोंको सम्भालना, ढेर सारे काम और ऊपर से सासजी की गालियां, ससुरजी की झिड़कियां, रोज-रोजका झगड़ा-टंटा सभी कुछ सहन करती।

मैंने पंडितजी से पूछा, "धर्मका मर्म क्या है?"

वे बोले, "आत्मवत सर्वभूतेषु।"

मैं हंसकर बोला, "पंडितजी आप-अपने धर्मग्रन्थों से तो इसे निकाल ही दें।"

× × ×

बड़ी सजधज के साथ भगवान नेमिनाथजी की बारात चली। ढोल तमूरे, शहनाई, बाजे गाजे, हाथी-घोड़े, रथ-पालकियां मुद्राओं की बखेर। मानो साक्षात इन्द्रकी सवारी हो।

राजमती सहेलियों सहित महल पर खड़ी अपने होनेवाले प्राणनाथ के दर्शन के लिये उत्सुक थी। हाथी पर सवार नेमिनाथजी के कानोंमें पशुओं के चीत्कार पड़े। सारथीसे पूछ लिया, "शहनाई की मधुर ध्वनि को भेदती हुई यह आवाज कैसी?"

"आपकी बारात के भोजन के लिये बलि चढ़ानेवाले निरीह पशुओं की आवाज है यह।" सारथी बोला।

... और नेमिनाथजी ने तुरन्त ही आभूषण उतार कर सारथी को दे दिये। हाथी वापिस ले चलने का आदेश दिया।

सारथी विस्मित था और नेमिनाथजी कह रहे थे, "सब प्राणी सुख चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। मेरे गृहस्थ के शुभारम्भ के निमित्त इतने निरीह जीवोंके प्राण जाते हैं, यह मुझे स्वीकार नहीं। जब मैं किसीको जीवन नहीं दे सकता तो मृत्युका कारण क्यों बनूं? जिसके श्रीगणेश में इतनी हिंसा हो, वह गृहस्थ तो साक्षात हिंसाका खेल है।"

और "आत्मवत् सर्वभूतेषु" का नाद चारों ओर गूंज उठा।

एक ओर पशुओं के लिये भी इतना प्रेम! दूसरी ओर मनुष्य के प्रति इतनी क्रूरता। एक ओर मानवता दूसरी ओर दानवता।

× × ×

चौपाल में बाहर पलंग डाले वार्तालाप में मस्त था कि ग्रीष्म ऋतुकी झुलसानेवाली गरमी से त्रसित होकर एक सांप हमारी ही भांति खुली हवाका आनन्द लेने चला आया। मेरे मित्र ठाकुर साहब की नजर पड़ गयी। लाठी ली और कर दिया आक्रमण।

एकबार किया फिर दूसरा और तीसरा भी कर डाला। पर सांप ने मार न खाई। ठाकुर साहब हाथ मलते रह गये। कुछ देर

शान्त रहे और फिर चिन्ता व्यक्त करते हुए बोले, "देखो बच निकला। अब सावधान रहना होगा। चोट खाया हुआ नाग, प्रतिशोध की भावना से ओत-प्रोत हो जाता है। वह बिना चोट किये न मानेगा।"

मैंने कहा, "आपने अपने हाथों ही ऐसी चिन्ता मोल ले ली, अब तो पश्चात्ताप होगा ही आपको" ठाकुर साहब मनमें चिन्तित थे, पर हेकड़ी भरकर बोले, आप भी कैसी बातें करते हैं?"

रात्रिको हम दोनों पास-पास ही सो रहे थे, अचानक ठाकुर साहब की चीख सुनकर आँख खुली। सांपने उन्हें काट लिया था।

ठीक समय पर इलाज किया गया। ठाकुर साहब चंगे हो गये। तब मैंने उनसे कहा—"ठाकुर साहब! सांपने मुझे नहीं छुआ आपही को काटा! क्यों?"

उत्तर साफ था। तब मैंने कहा, "महावीर ने इसीलिये तो कहा है कि वैरसे वैर निकालने पर वैरकी वृद्धि होती है। हिंसा किसी समस्या का हल नहीं।"

× × ×

घोड़ेकी पीठके अग्र भागमें घाव थे। लाल-लाल मांस दिखाई दे रहा था और तांगेवाला आवाज लगा रहा था, "एक सवारी शेरकोट के लिये।"

एक सवारी आई, तो फिर एक और सवारी के लिये आवाज लगाने लगा। चार सवारियों के स्थान पर छः भरकर भी उसे सन्तोष न हुआ, दिल मसोसता हुआ चला।

सामने से एक राज्य कर्मचारी आ निकला, उसे कदाचित घोड़े पर रहम आ गया। तांगा रुकवा लिया। दस-बीस मोटी-मोटी गालियां दीं और घायल घोड़े को जोतने के आरोप में चलान करने की धमकी भी।

तांगेवाले ने अपने भूखे बालकों पर तरस खानेकी विनती करते हुए एक रुपया कर्मचारी की जेबमें ठूंस दिया। लीजिये खेल खतम! हो गया कानून पंगु। "एक न शुद दो बाशद" एक अपराध को छिपाने के लिये दूसरा अपराध खटाक से कर दिया और तांगेवालों को खरी-खरी गालियां देता हुआ अपने रास्ते चला। यात्री पुलिसवाले के अन्याय पर खिन्न थे।

वाह रे! कानून।

× × ×

लालाजी के लिये कन्ट्रोल और वस्तुओं की कमी साकार भाग्य का उज्ज्वल सितारा सिद्ध हुए। काला बाजार क्या चला लक्ष्मी छप्पर फाड़कर बरस पड़ी और तोंद भी उनकी तिजोरी की गतिसे बढ़ी।

खद्दर की अचकन में तोंद को कसते हुए सड़क पर निकले और एक रिक्शे पर जा विराजमान हुए। तीन मनकी लाशको खींचते हुए रिक्सावाले की आंतें तोबाह बोल गईं! पर लालाजी, बार-बार तेज चलने का तकाजा करते जाते। पूरे तीन मीलका चक्कर काट रिक्शावाले ने उन्हें सप्लाई आफिस के सामने ला उतारा।

पसीने से सराबोर रिक्शेवाले ने मजदूरी के लिये हाथ पसार दिया। लालाजी ने ६ पैसे हाथ पर धरे।

रिक्शेवाला गिड़गिड़ाने लगा। लालाजी बिगड़ पड़े, "सुअर का बच्चा दो घंटेमें यहाँ पहुँचा। चींटीकी चाल चलता है। मालूम है कितना घाटा हो गया मुझे तेरी सुस्तीसे?"

रिक्शेवाला माई-बापसे दो पैसे और मांगने लगा।

माई-बापको क्रोध आ गया। बोले, "अबे और क्या तुझे सारा घर ही दे दूँ। दे तो दिया।"

पहले रिक्शावाले की आँखों में याचना और दीनता थी पर लालाजी की पीठ उसकी ओर होते ही उन्हीं नेत्रोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं।

मंगल का दिन था। लालाजी ने चार आनेके चने लिये और बन्दरों को, भगवान रामकी सेनाको, जिमाए। उस दिन उन्हें एक परमिट और मिला था जिसमें कमसे कम दस हजार का हाथ था। यह दूसरी बात है कि यह हाथ धौले बाजार में न होकर काले बाजार में था।

"अहरन की चोरी करी, किया सुईका दान।"

धर्म कमाने के इच्छुक लालाजी से अब यह कौन कहे कि

जे पावकम्मेहिं धणं मणूसा,
समाद्यंति अमई गहाय।
पहाए ते पास पयट्टिए नरे,
वेराणुवद्धा णरयं उवेंति॥

"जो मनुष्य पापसे धन संचय करते हैं वे मोहमें फंसे हुए वैरसे बंधे हुए धनको यहीं छोड़कर नरक में जाते हैं।"

× × ×

एक मित्रसे वार्तालाप कर रहा था। बातचीत चल रही थी। पदोंकी भूख पर—वे महाशय इस बात पर क्रुद्ध थे कि उनकी तुलना में एक अयोग्य व्यक्ति को वह पद मिल गया जिसे वे चाहते थे। उन पर अन्याय हुआ वे इस अन्याय पर झुंझला रहे थे।

तभी वानर सेना आ धमकी। एक बन्दर रसोई में घुसा और रसोईये की आँख बचाकर एक रोटी ले भागा। जब तक रसोईये को चोरीका ज्ञान हो, दूसरे बन्दर रसोई में जा घुसे। फिर क्या था रसोईये और बन्दरों में संघर्ष हो गया। पहलेवाला बन्दर दूर जा बैठा था रोटी लेकर और ठाठसे पेट पूजा कर रहा था और दूसरे बन्दर अपने-अपने लिये जूझ रहे थे। इस संघर्ष में रसोईये की जीत होनी थी, सो हुई। पर किसी बन्दर ने पहले बन्दर की रोटी न छीनी।

[१५ जुलाई, १९५९

मैंने बन्दरों को हाथ जोड़कर कहा—"प्रणाम महापुरुषों ! शत-शत प्रणाम।"

मेरे मित्र मेरी मूर्खता पर हँसे।

मैंने कहा, "यदि हमलोग इस वानर दलके ही शिष्य बन जायें तो अहोभाग्य। आपस में तो न लड़ें।"

मित्रवर की हंसी लुप्त हो गई।

× × ×

मित्र बोले "वानर की मूर्खता और द्वेष भावकी कथा आपने नहीं सुनी ?"

मैंने जानने की इच्छा प्रकट की।

"एक बन्दर और एक बयामें मित्रता थी। एक दिन अनायास वर्षा होने लगी। बया उड़ कर अपने घोंसले में जा घुसी पर बन्दर वर्षामें भीगता रहा शीतल पवन के झोंकोंसे बन्दर थर-थर कांप रहा था। बयाके हृदय में करुणा जाग्रत हुई, वह सीख देते हुई बोली, "भैया यदि तुम भी मेरी ही भाँति सर छुपाने को स्थान बना लेते तो आज इस प्रकार क्यों ठिठुरते ?" बन्दर को उसकी सीख न सुहाई, क्रोधवश बयाका घोंसला तोड़ दिया।

कथा सुनकर मैंने कहा, "कथाकार ने बन्दर के मनकी बात न परखी हो यह भी सम्भव है।"

मित्रवर चकित थे। मैं बोला—"बन्दर ने बयाको यह बताना चाहा कि ओ मूर्ख जिस घोंसले पर तुझे इतना अभिमान है, जिससे तुझे इतना मोह है, देख उसका जीवन क्षण-भंगुर और नाशवान है। नाशवान वस्तु पर गर्व कैसा, उससे मोह क्या ? जिसे एक-एक तिनका एकत्र करके तूने बड़े परिश्रम से तैयार किया वह तुझे वर्षाकी बूंदोंसे भले ही बचादे, दूसरों की घृणा, द्वेष और आक्रोश से नहीं बचा सकता, [illegible]नाना ही है तो ऐसा घोंसला बना जो तेरे शरीर की नहीं आत्मा की रक्षा कर सके। ऐसा घोंसला जो घृणा और वैमनस्य का शिकार न हो सके।"

लोग समाज सुधार के लिये आन्दोलन किया करते थे। तब वह दासता का युग था, आज स्वतन्त्रता का युग है, इसलिये अब समाज सुधार के लिये कानून बनवाने का आन्दोलन होता है। तब हम कानून के दास नहीं थे और आज कानून के ऐसे दास हैं कि बिना उसके हमें चैन नहीं।

हमने शृंखलाएं पैरोंसे निकालकर मन और मस्तिष्क में पहन ली हैं। क्योंकि हम स्वतन्त्र जो हैं और बिना कानून के कदाचित समाज सुधार नहीं होता ? कितनी उन्नति की है हमने ?

× × ×

एक दिन न्यायालय में पहुँच गया। सभीकी दृष्टि दो बन्दियों पर जमी थी. जिनके पीछे डण्डे लिये हुए तीन वर्दीधारी, खिंचे तने सिपाही थे।

बन्दी तो कितने ही न्यायालय में आते हैं, पर इन बन्दियों की छवि ही निराली थी। मुश्किल से दो-दो फुटके होंगे, दोनों की आयु ६ और ८ वर्षके बीच रही होगी। पतले-दुबले इन बन्दियों से कानून डरता था कि कहीं वे उसके पंजेसे निकल भागें।

अपराध क्या था ?

उन्होंने हरिद्वार के मेलेमें लोगोंकी जेबों-पर हाथ साफ किया था। जबकि कानून जेबकतरी का निषेध करता है।

इन नौनिहालों ने एक पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की जेब पर भी छापा मारा था, यही उनका महत्त्वपूर्ण कारनामा था।

एक नौनिहाल के वकील ने सिविल सर्जन का सार्टिफिकेट पेश किया। सिविल सर्जन ने लिखा था कि इस बालक का मस्तिष्क ऐसे अपराध करने के अयोग्य है। यह बालक ऐसे कुकर्म करने लायक ही नहीं।

लीजिये कानून के घातक दांत टूट गये और वह भी लेखनी की नोकसे। दूसरे बालक के वकील को भी इसी नुस्खेको आजमाने की सूझी।

व्यासजी कहते हैं :

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि नहि मानुषात श्रेष्ठ तरहि किंचित।

"आओ मैं तुम्हें एक रहस्य बताऊं : यह अच्छी तरह मनमें दृढ़ करलो कि संसार में मनुष्य से बढ़कर और कोई श्रेष्ठ नहीं है।"

पर मैं पूछता हूँ कि श्रेष्ठ का जब यह हाल तो फिर अश्रेष्ठ से क्या आशाकी जाय ?

क्या इसी बलबूते पर मनुष्य अपने को श्रेष्ठ कहने का दम भरता है ?

यदि ऐसा है तो मनुष्य को अपनी श्रेष्ठता मुबारक हो।

ढोल बजाबजाकर भगवान का नाम लेनेवालों से कोई पूछे कि पशु और मानव में क्या अन्तर है ? तो कदाचित इसका छोटा-सा उत्तर यही हो सकता है कि "पशुके पास वह बुद्धि नहीं है जिससे वह व्यभिचार, भ्रष्टाचार, धोखादेही, विद्वेष और स्वार्थपूर्ति के लिये नई-नई खोज कर सके।"

'अणु युग' का मानव अणु बम बनाता है, अणु शक्तियों का अनुसंधान करता है पर अन्दर छुपी हुई अणुशक्ति का न दर्शन करना चाहता है न उपयोग ही। फिर भी ठाठसे इसे कहना है "अणु युग"। इस सफेद झूठसे बढ़कर भी कोई झूठ हो सकता है ?

शेषनाग

यह पृथ्वी शेषनाग के मस्तक पर स्थिर है। अगर शेषनाग का आधार टूट जाय तो पृथ्वी स्थिर नहीं रह सकेगी, वह जर्जर हो जायगी। हमने सोचा यह शेषनाग कौन है ? ध्यान आया कि दिन भर काम करनेवाला मजदूर ही शेषनाग है।

—आचार्य विनोबा

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत क्रमशः नवोदित बन्धुओं की सुन्दर रचनाएं प्रकाशित हुआ करेगी। रचना भेजते समय 'स्तम्भ' का उल्लेख करना आवश्यक है।

—सम्पादक]

हम क्यों पीछे रहें ?

[श्री सम्पतराज बैद "राजू"]

ज़माना आगे बढ़ता जारहा है। देश दिनों-दिन उन्नति कर रहा है। फिर हमारा समाज क्यों पीछे रहे ?

हमारे समाज में रूढ़िवादी विचारों के बहुत लोग हैं। प्रगतिशील नवयुवकों की भी कमी नहीं हैं। हमारे समाज में शिक्षित भी काफी हैं तब क्यों हमारा समाज पीछे रहे ? क्या हम लोग उन रूढ़िवादी लोगों की भावना नहीं बदल सकते ? क्या हम उन्हें नहीं समझा सकते कि हमारे समाज को कुरूढ़ियों और कुप्रथाओं ने जर्जर बना दिया है। उन कुप्रथाओं में पर्दा भी एक है। इसी की वजह से हमारी बहिनें उन्नति नहीं कर सकतीं, पुरुषों के काम में हाथ नहीं बंटा सकतीं, समाज हित का कार्य नहीं कर सकती तथा अपने विचार लोगों के सामने खुले दिल से रख नहीं सकतीं।

विचारशील नौजवानों को इस ओर खूब गहराई से ध्यान देना चाहिये, और इस कुप्रथा को दूर करके बहिनों की सहायता करनी चाहिए। बहिनों को भी इस ओर हिम्मत के साथ आगे बढ़ने की कोशिश करनी चाहिए। क्यों कि उन्हें जीवन-विकास के क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं रहना है।

यह सोचकर कि मैं इस कार्य में पहल कैसे करूं, उन्हें रुक नहीं जाना चाहिए। घरवाले विरोध करेंगे, समाज वाले बातें बनायेंगे, कोई फिक्र नहीं। आप किसी का बुरा तो नहीं कर रहे हैं आप तो एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं तथा बहिनों को इस कष्टपूर्ण कारावास से मुक्त कर रहे हैं।

यह तो आप जानते ही हैं कि जब भी कोई नया कार्य सर्व प्रथम किया जाता है तो लोग उसका विरोध अवश्य करते हैं तथा कार्य करनेवालों को पागल समझकर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं। जब आप उस कार्य में सफलता प्राप्त कर लेते हैं और लोग इससे होनेवाले लाभ को समझ जाते हैं तो उनकी प्रशंसा करने लगते हैं। अतः प्रारम्भ में विरोध का डटकर मुकाबला करना चाहिए।

मैं आपको एक उदाहरण देता हूं—मेरी भुआजी (हुलासीबाई भूतोड़िया) ने, जिनके चरणों में मैं विनय से अपना मस्तक झुकाता हूं, कितना अपूर्व साहस किया है! उनमें अपने कार्यों पर कितना आत्म-विश्वास है कि समाज के विरोध के बावजूद भी उन्होंने पर्दा हटा दिया। समाज के कतिपय लोग विरोध करते रह गये, आज कितना शान्त और सुखद उनका जीवन है! जीवन में सादगी उनका लक्ष्य है। सारा कार्य अपने हाथों से करती हैं तथा बाजार से जो भी वस्तु खरीदनी होती है, खरीद लाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि एक मर्द जो कार्य कर सकता है, वे सारे कार्य वे अपने आप कर लेती हैं।

आज हमारे घर में भी उनके विचारों की छाप है। हालांकि उन जैसा त्यागपूर्ण जीवन बितानेवाला हममें कोई नहीं है। फिर भी हमारे यहाँ पर्दा प्रथा का खात्मा तो हो ही गया है। सर्व प्रथम मेरी बढ़िया जी ने पर्दा हटाया। उसके बाद उनकी लड़की की शादी बिना पर्दे हुई और एक शादी हाल ही में मेरे बाबाजी की लड़की की हुई है। वह सबसे भिन्न तथा सादगी से हुई है। सादगी से मेरा मतलब यही है कि इस विवाह में जीमनवार का झमेला बिल्कुल हटा दिया गया। इसके लिये हम वर पक्ष वालों को बहुत-बहुत धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने समाज की इस कुप्रथा को बंद करने में नवयुवकों का साथ दिया तथा बहुत बड़े साहस का परिचय दिया।

प्रगतिशील नवयुवकों को चाहिए कि समाज में जो रूढ़िवाद, देखा-देखी तथा कुप्रथायें हैं उनको दूर करने में तन-मन से योग दें। पहले अपने ही घर से इस कार्य का श्रीगणेश करें, तभी हमारा समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। तब हम क्यों किसी से पीछे रहेंगे ?

—:०:—

सच्चं लोगम्मि सारभूयं
सत्य ही लोक में सारभूत है।

नारी के अश्लील चित्र

श्री आदित्यकिशोर आर्य

[सदियों से नारी के प्रति आदर और श्रद्धा के पुष्प चढ़ाने वाला भारत आज किस प्रकार उनके जीवन से खिलवाड़ कर रहा है, यह एक कटु सत्य तो है ही साथ ही हमारे पतन की पराकाष्ठा और हीनता की भी करुण कहानी कह रहा है और आज यह केवल एक प्रश्न ही नहीं अपितु प्रत्येक सुनागरिक को चुनौति है।

—सम्पादक]

प्रत्येक जाति, राष्ट्र एवं समाज की उन्नति वहाँ की स्त्री जाति की दशा पर बहुत कुछ आधारित होती है। जहाँ पर स्त्रियों को उचित आदरपूर्ण स्थान प्राप्त होता है, वह समाज अवश्य उन्नति करता है। परन्तु जिस समाज में स्त्रियों का स्थान निम्न तथा अपमानपूर्ण होता है वह समाज कभी भी उन्नति नहीं कर सकता। इसीलिये कहा गया है, "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"

समाज को उन्नत करने के लिये आवश्यक है कि नारी का आदर्श रूप समाज के सम्मुख रक्खा जाय न कि वासनामय रूप। यदि नारी का पवित्र, शक्ति-सम्पन्न तथा उच्च स्वरूप समाज के सम्मुख रक्खा जाता तो समाज में पवित्रता, वीरता एवं शिवत्व के भाव जाग्रत होते हैं और जहाँ नारी का कुत्सित व वासनापूर्ण रूप समाज के सम्मुख रक्खा जाता है, वहाँ समाज में क्षुद्र तथा वासनापूर्ण भावनायें उत्पन्न होती हैं।

कितने दुःख की बात है कि जो देश आदि महीतल का गुरु रहा, जिसने सभ्यता एवं संस्कृति का सन्देश सर्वप्रथम विश्व को दिया, जिसने सर्वप्रथम संसार के सम्मुख नारी का मर्यादापूर्ण शुद्ध चरित्र दिग्दर्शित किया तथा जिस देश में सीता, उर्मिला, गार्गी, दुर्गा एवं लक्ष्मीबाई जैसी नारियों के आदर्श चरित्र समाज के सम्मुख आते रहे, उस देश के बाजारों में नारी के अपमानजनक, अश्लील एवं वासनापूर्ण चित्र भारी संख्या में देखने को मिल रहे हैं। क्या यह राष्ट्र के पतन का द्योतक नहीं? क्या इसी प्रकार का नारी-स्वरूप अपने सम्मुख रखकर हम उन्नति कर सकेंगे? क्या यही नारी का आदर्श हमारे देश में राम, कृष्ण, बुद्ध, दयानन्द, गांधी, सीता, लक्ष्मीबाई एवं दुर्गा के भाव प्रसारित करेगा? क्या इसी प्रकार का वातावरण निर्माण करके हम अपनी नवजात स्वतंत्रता की रक्षा के लिये शक्ति का परिग्रह कर सकेंगे?

आज जिधर देखिये उधर नारी के अश्लील चित्र व्यापार, सिनेमा थियेटर एवं पत्रिकाओं के विज्ञापनों के हेतु प्रयुक्त हो रहे हैं। पत्रिकाओं के मुखपृष्ठों पर, शृंगारिक वस्तुओं के विज्ञापनों में तथा अन्य व्यापारिक प्रचारों में हृदय में लज्जा उत्पन्न करनेवाले तथा देश के नैतिक पतन की कल्पना करके दृगों में आँसू उमड़ा देनेवाले नारी के घोर अश्लील चित्र दृष्टिगोचर होते हैं।

दुःख है कि न तो हमारे देश की सरकार ही इस बात पर ध्यान देती है और न जनता ही। सरकार का कर्तव्य है कि इस प्रकार का कलंकित कार्य रोकने के लिये विधान भवनों द्वारा शीघ्र विधेयक पारित करे तथा जनता का भी कर्तव्य है कि वह इस प्रकार के वासनामय अश्लील एवं दूषित नारी चित्रों के विरुद्ध आवाज उठाये। जबतक इस प्रकार के चित्रों का प्रकाशन बन्द नहीं होता तबतक हमारे राष्ट्र का नैतिक उत्थान कदापि सम्भव नहीं। आपका कर्तव्य है कि अपनी मातृ-शक्ति का निरादर रोकने के हेतु तथा राष्ट्र के नैतिक उत्थान के हेतु ऐसे चित्रों का प्रबल बहिष्कार करें तथा उनका प्रकाशन बन्द करवाने के लिये दृढ़ता से कटिबद्ध हो जावें।

हमारा आदर्श

सती सीता, सावित्री, दुर्गावती तथा लक्ष्मीबाई का आदर्श सम्मुख रखकर हमें जीवन में अग्रसर होना चाहिये। एक ओर हम ग्राहस्थ जीवन को सुखी-सम्पन्न बनायें तथा दूसरी ओर स्वयं के चरित्रिक प्रकाश से भारत के राष्ट्रीय जीवन को जगमगा दें।

—श्रीमती हीराबाई अय्यर

नारी

अच्छा लड़का

श्रीजयचन्दलाल श्यामसुखा

सुरेश सेठ सुन्दरलाल का इकलौता लड़का था। असीमित लाड़-प्यार के कारण वह विगड़ गया, उसे गहनों का बहुत शौक हो गया, नित्य नये गहने पहनता। उसे आठ आना रोज मिलते थे, जिसे वह वाजारू चाट-पकौड़ी खाने, सिनेमा, नाटक और नाच देखने तथा सिनेमादि की गन्दी पुस्तकें खरीदने में खर्च कर डालता। इससे उसका स्वास्थ्य खराव हो गया। गहनां पहनने की हानियाँ तो हम सव जानते ही हैं। चोर और लुटेरों का डर वना रहता है और कभी-कभी गहने मृत्यु का कारण वन जाते हैं। सुरेश के साथ भी यही हुआ। स्कूल जाते समय एक लुटेरे ने उसके मुंह में रुमाल डाल दिया जिससे वह चिल्ला भी नहीं सका। डाकू उसको उठा ले गया, जंगल में ले जाकर उसके गहने उतार लिये और उसको मार डाला।

× × ×

लाला लाजपतराय का लड़का सुशील वड़ा विनम्र, विनयी और माता-पिता का आज्ञाकारी था। वह साफ और धुले कपड़े पहनता, गहनों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता, जव कभी उसकी माँ गहना पहनाने का आग्रह करती, वह साफ इन्कार कर देता। वह गहना पहनने की हानियाँ समझता था। उसको प्रतिदिन दो आना मिलते, जिसको वह अपनी माँ के पास रखी डब्बी में डाल देता। वह सुवह का नाश्ता और दोपहर का कलेवा अपनी माँ से ही वनवा लेना। वाजारू मिठाई और चाट कभी नहीं खाता। इससे उसका स्वास्थ्य तो वहुत अच्छा रहा ही, साथ ही उसको खराव आदतें भी नहीं पड़ी, वह जीभ लोलुप होने से भी वच गया। जव अपनी दो आने वाली राशि कुछ वढ़ जाती, तो वह अपनी माँ की आज्ञा से उससे वालोपयोगी पुस्तकें और पत्रिकायें खरीद लेता और उनको पढ़कर अपना ज्ञान वढ़ाता—

सुन्दर स्वास्थ्य और विस्तृत ज्ञानके वलपर एक दिन वह एक वहुत महान् आदमी वनगया—

वालको! तुम सुरेश वनकर प्राण गँवाना चाहोगे या सुशील वनकर महान वननां?

सवक :—गहना कभी मत पहनो, वाजारू चाट और मिठाई से स्वास्थ्य मत खोओ और सद्-साहित्य पढ़कर अपना ज्ञान वढ़ाओ।

—○—

अभिलाषा

[श्री इन्द्रदेव प्रसाद]

काँटे पथ पर विछे हुए,
तू आगे हँसकर वढ़ जाना।
मिलती है सफलता कष्टों से,
तू कष्टों में ही गुथ जाना ॥१॥
कष्टों के सहने से जीवन,
मिलती है भरपूर लगन।
है दीप हमें वननां जग में,
हो दीप में चाहे क्यों न जलन ॥२॥
यह जलता दीप हमें लेकर,
आगे वढ़ते ही जाना है।
औ तमको आज मिटा जगमें,
मानव को पथ दिखलाना है ॥३॥

मच्छर की घूं-घूं

[श्री 'हरि']

'घूँ - घूँ घूँ - घूँ'—मैं हूं मच्छर;
पढ़ा - लिखा न चार भी अक्षर।

पर इससे होता - जाता क्या?
काम मजे में चलता मेरा;
पढ़ लिख कागज चीतो तुम तो—
कोरे!—मैं नाम घना पाता;

वजे दुन्दुभी मेरी घर - घर।
'घूँ - घूँ घूँ - घूँ'—मैं हूं मच्छर।

डूवे - डूवे सोच रहे तुम;
खूवी मेरी खोज रहे तुम;
पर क्या पाते? कहो, कहो, उँह!
सोच - सोच वस पोच रहे तुम;

सुनो, शौर्य में अव्वल नम्वर।
'घूँ - घूँ घूँ - घूँ'—मैं हूं मच्छर।

'घूँ - घूँ' कर के ही कानों में,
चुट् चुट् चुट् चुट् काट रहा मैं;
आक्रमण विकट मेरा, लेकिन—
न यूँही, चेतावनी दे - दे;

वीरत्व मुझसे सीखते नर।
'घूँ - घूँ घूँ - घूँ'—मैं हूं मच्छर।

(पृष्ठ १६ का शेषांश)

मिठ्ठन ने कहा—'यह तो भंगी की लड़की की बारात है।'—मिठ्ठन को पहिली बार अपना भंगी होना बुरी तरह अखर रहा था।

'भंगी भी तो हम उन्हींके हैं।'—मंगला ने दलील दी।

'तो इससे क्या हुआ? हैं तो भंगी ही।'

मंगला को उत्तर न आया। फिर भी उसने आग्रह के साथ कहा—'उठो, चलो। मेरा मन कहता है, वह जरूर देंगे।'

'परन्तु······'

'परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं।' मंगला ने कहा—'जल्दी करो, दिन छुपा जाता है। मिठ्ठन निराश मन से टूटते पाँव मंगला के साथ चल दिया।

× × ×

मंगला जब मिठ्ठन को लिये, हवेली के द्वार पर गई, तो लाला संध्या के भोजन के लिए ऊपर जा रहे थे। शादी के दिन लड़की के माँ-बाप को उदास मन वापिस आते देख, उन्होंने मुनीमजी से कहा—'मुनीमजी! मालूम होता है, इनके पास खर्च थोड़ा पड़ गया है। कुछ और मांगे तो दे देना। मैं ऊपर जा रहा हूँ।'

लालाजी ने ज्योंहि पहिली सीढ़ी पर पैर रक्खा, रोती हुई मंगला ने आगे बढ़कर कहा—'लालाजी! मेरी लड़की की बारात लौट रही है।'

'लड़की की बारात लौट रही है?' लाला ने घबराकर पूछा।

'हाँ, लालाजी।'

'क्यों?'—लाला की आँखें विस्मय से फैलकर चौड़ी हो गई।

'लड़का कहता है।' मंगला ने रोते-रोते कहा—'मैं लाला की चार घोड़ोंवाली गाड़ीपर ही अगवानी को जाऊँगा, नहीं तो लौट जाऊँगा।'

'तुम लोगों ने समझाया नहीं कि लाला की गाड़ी किसी भंगी के घर नहीं जाती?'—लाला ने रुखाई से कहा।

'सभी लोगों ने समझाया, पर वह मानता ही नहीं सरकार।'—मिठ्ठन के कंठ से अपने आप आवाज फूट निकली।

'मानता नहीं।'

'नहीं मालिक।'—मंगला ने रोते जवाब दिया।

लाला सहसा गंभीर हो गए और लौटकर चुपचाप चारपाई पर धम्म से बैठ गए और न मालूम कब तक बैठे रहते, यदि उनका मुनीम चीखकर यह न कहता—'जाओ, भाई! जाओ! नरमी से काम नहीं चलता। उन बारातियों से कह दो—ऐसी जिद कभी पूरी नहीं हुआ करती।'

लाला जैसे सोते से जाग उठे। उन्होंने कहा—'ठहरो भाई! बाल-हठ कभी-कभी नहीं छुड़ाई जा सकती। मुनीमजी! कोचवान से कहो गाड़ी तैयार करे।'

'लालाजी!'—डरते-डरते मुनीमजी ने कुछ कहना चाहा।

'ठहरो, मुनीमजी! मैं तुम्हारी बात समझ रहा हूँ। तुम कोचवान से कहो गाड़ी तैयार करे। मैं कपड़े बदलकर आता हूं। आज दूल्हा को अपने साथ बैठाकर द्वार पर ले जाऊँगा।'

'लालाजी!'—मिठ्ठन ने हाथ जोड़कर कहा—'आप मालिक!'

'हाँ! हाँ!!' लाला ने कहा—'मैं अभी चलता हूं, फिर रात हो जायगी न?

× × ×

चारों घोड़ों की गाड़ी लेकर जब लाला, जहाँ बारात ठहरी थी, गये, तो बारातियों में कोलाहल मच गया। लड़के का बाप और उसके बड़े-बूढ़े रिश्तेदार हाथ जोड़कर कहने लगे—'भाई-बाप! बस बहुत हो गया। हम तो आपके भंगी की बात देखना चाहते थे और कुछ नहीं। सचमुच आप उसे बहुत मानते हैं। हम तो पैदल ही चलेंगे। चार घोड़ोंवाली गाड़ी पर बैठने की हमारी औकात ही कहाँ?'

लाला ने बहुत बार कहा, पर लड़का गाड़ी पर नहीं बैठा। जब बारात लाला की चार घोड़ों वाली गाड़ी को साथ लिये, अगवानी के लिए द्वार पर गई, तो मिठ्ठन ने, चाचा चतरू की ओर देखकर कई बार अपनी मूँछें नोंच-नोंच कर ऊपर की।

अणुव्रत]

(पृष्ठ ६ का शेषांश)

अणुव्रत आन्दोलन यह नहीं कहता कि घर-बार छोड़ो, सन्यासी बन जाओ या दुनिया में कुछ नहीं है। वह कहता है यदि व्यापारी है तो व्यापार में प्रमाणिकता, सचाई व ईमानदारी रक्खें। पहले इसमें कुछ झिझक सी महसूस होगी, मगर बाद में वह व्यापार चलेगा। अतः इस तरह व्यक्ति स्वयं सुधरे। व्यक्ति सुधार से ही समाज, देश व राष्ट्र-सुधार संभव है। केवल थोथी डींगें हांकनेसे क्या होनेवाला है? इस आन्दोलन के प्रति सभी व्यक्तियों की रुचि रही है और रहनी भी चाहिये। यह आन्दोलन जिस तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है, यदि यही क्रम रहा तो यह शीघ्र ही देश व राष्ट्र में नैतिक क्रान्ति का प्रभुत्व पूर्णरूपेण स्थापित कर सकेगा।

मेरी तो एक ही धारणा रही है कि जो भी व्यक्ति इस आन्दोलन में आवें वे निष्ठावान हों, गहराई के साथ चिन्तन, मनन व अध्ययन करें, इच्छाओं को सीमित रक्खें व वर्तमान समाज की मान्यताओं को बदलने में योग दें। शीघ्र ही यह आन्दोलन विश्वगामी होगा और मानव में जो मानवता की कमी है वह दिखाई नहीं देगी। अहिंसक समाज-रचना का स्वप्न भी शीघ्र ही साकार हो सकेगा। ऐसा मेरा विश्वास है।

[मद्रास स्वागत-समारोह में दिये गये भाषण से]

समस्याओं का हल

[एक विचारक]

अणुव्रत-आन्दोलन समाज में व्याप्त अनैतिक वातावरण में सदाचार, संयम, सत्य एवं नैतिकता के नियमों के प्रचार द्वारा व्यक्ति-व्यक्ति में आत्म-निष्ठा पैदा कर सुषुप्त मानवता को जगाने का एक आन्दोलन है। मानव में मानवता को पुनः स्थापित करने के एकमात्र लक्ष्य से आज देश-विदेश में यह प्रचारित हो रहा है। व्यक्ति के जीवन-स्तर को संग्रह और शोषण-वृत्ति से ऊँचा उठकर अहिंसक समाज-रचना इसका परम पुनीत उद्देश्य है।

अणुव्रत-आन्दोलन का घोष है जन-जन के जीवन का दृष्टिकोण बदले, जीवन संयम की ओर मुड़े, आत्म-शुद्धि के प्रशस्त पथपर आगे बढ़े, सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यों में परिवर्तन हो। धन जीवन का साध्य न रहे। यह आन्दोलन जन-जन के समक्ष डिमडिम नाद कर रहा है कि ऐ मानव! वस्तुतः तुझे सुख चाहिए तो अपने जीवन की दिशा को बदल; शोषण, दम्भ और अन्याय के द्वारा अर्थार्जन की कुत्सित लिप्सा का त्याग कर, जीवन के रहन-सहन का स्तर सादा व हलका बना, मार्ग पर आगे बढ़। इस प्रकार नई करवट लेने से तेरे जीवन में जो एक बड़ा परिवर्तन आयेगा वह तुझे यह प्रमाणित करके बतायेगा कि जो जीवन आज तेरे लिए अभिशाप था वह किस प्रकार वरदान के रूप में उद्दीप्त हुआ है। इस आन्दोलन का आधार आत्म-संयम है। संयम को ही जीवन माना गया है।

इसकी पहली भावना यह है कि वर्तमान युग के लोग प्रायः बाह्य दृष्टिकोणके ही उपासक हैं, लिप्साओं के विस्तार ने आज मानव को अंधा बना दिया है। सुख-श्रोत के केन्द्र अर्थात् आत्म-तत्व को भूलकर भौतिक तत्वों में ही सुखान्वेषण के लिये मानव दत्तचित्त है। जहाँ तटों की मर्यादा में चलना चाहिए वहाँ वह आकांक्षाओं की बाढ़ में बहा जा रहा है इस प्रकार शांति व सुख को जीवन सम्बन्धी नाना समस्याओं के समाधान को वह बाहर ही खोजता है पर वह ऐसा करते हुए भूल जाता है कि समस्याओं का मूल श्रोत उसकी वृत्तियों में ही छिपा हुआ है। अणुव्रत-आन्दोलन मानव के इसी दृष्टि वैपरित्य नामक रोग की एक अचूक औषधि है। इसका लक्ष्य जन-जन के मानस-तल पर यह अंकित कर देना है कि सुख आत्मनिष्ठ है भौतिक तत्वों की चकाचौंध में उसकी छाया तक भी नहीं। भौतिकवाद एक खोटा प्रलोभन है, मृगमरीचिका है। भौतिक सामग्री का इतना प्राचुर्य होने पर भी आज संसार में सुख की श्वांस भी नहीं, प्रत्युतः दुख का दमघोट वातावरण छाया हुआ है। आत्म-स्थिति सुख को बाहर खोजना अज्ञान है। कस्तूरी मृग की नाभि के अन्दर रहती है और वह उसे वन-वन खोजता फिरता है यह कितनी बड़ी भूल है। अणुव्रत-आन्दोलन यही पाठ पढाता है कि सुख को स्व में खोजो पर में नहीं। अन्तर्मुखी व्यक्ति भी पारिवारिक दायित्व को लिए हुए धन-संग्रह करता है। पर वह संग्रह अपनी अल्पमत आवश्यकताओं को लांघकर नहीं। उसमें शोषण की गन्ध नहीं रहती है। एक का एक के प्रति कोई अप्रिय कार्य ही दूसरे के लिए समस्या बन जाती है। यदि कोई भी मनुष्य ऐसा कार्य न करे जिससे किसी दूसरे प्राणी को असुविधा हो तो समस्याओं का अंत यहीं हो जाता है। इसी प्रकार जब अन्तर्मुखी भावनाका उदय होगा तो आर्थिक विषमता एवं सभी संघर्ष अपने आप अस्त हो जायेंगे।

अणुव्रत-आन्दोलन विश्व को दूसरी दृष्टि यह देता है कि अभिलाषायें तो आकाश के समान अनन्त हैं। सुख इच्छाओं के बढ़ाने में नहीं किन्तु उनके नियंत्रण में है। जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है किन्तु लालसाओं की पूर्ति कभी संभव नहीं। वे कभी भी पूरी होनेवाली नहीं, फिर उनकी और वृद्धि करके तो दुविधा में ही पड़ना है।

अणुव्रत-आन्दोलन-युग को तीसरी यह प्रेरणा देता है कि सुख त्यागमूलक है: भोग-मूलक नहीं। भोग छीना-झपटी करता है। वह सिर्फ अपनी देखता है पर की नहीं जब कि त्याग अपने को छोड़कर भी पर की बात विचारता है और उनका मूल्यांकन करता है। भोग, हिंसा, स्वार्थ और शोषण पर पलता है जबकि त्याग, अहिंसा परमार्थ और अशोषण का प्रतीक है। भोग की वृद्धि अशान्ति की जननी है और त्याग की वृद्धि शांति की। भोग व्यक्ति को भटकाता है और त्याग सन्मार्ग पर लाता है। भोग वैषम्य और वैमनस्य बढ़ाता है तो त्याग समता और आत्मीयता। इस प्रकार अणुव्रत-आन्दोलन के प्रकाश में यदि जीवन के इष्ट सुखों को देखें तो मिलेगा कि वह आत्मदृष्टि में, इच्छा निरोध में और त्याग में निहित है। उसे जड़ पदार्थों में, आशाओं की बाढ़ में और मार्ग में खोजना अज्ञान है व्यामोह है और भ्रान्ति है।

—०—
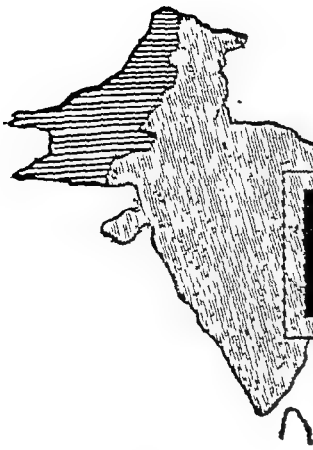
अणुव्रत प्रचार कार्य—

● देहली (डाक से) यहाँ गत १ जुलाई को बारहखम्बा रोड पर एक अणुव्रत विचार-परिषद् का आयोजन किया गया। 'भारत का नव-निर्माण और अणुव्रत' विषय पर बोलते हुए मुनिश्री नगराजजी ने भौतिक विकास की अपेक्षा नैतिक विकास की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी। आज के कार्यक्रम में प्रमुख वक्ता के रूप में उपस्थित केन्द्रीय उप-विद्युत मंत्री श्री जयसुखलाल हाथी ने भी 'अणुव्रत-आन्दोलन' की प्रशंसा करते हुए मोह-वृत्ति के त्याग पर जोर दिया।

अणुव्रत सम्बन्धी वार्तालाप—

● इन्दौर (डाक से) गत ३० जून को यहाँ अणुव्रत-आन्दोलन को लेकर मुनिश्री सागरमलजी व मध्यभारत के शिक्षा-मंत्री श्री मनोहरसिंह मेहता के बीच वार्तालाप हुई। मुनिश्री ने हृदय-परिवर्तन के द्वारा नैतिक क्रान्ति की सफलता की चर्चा करते हुए आन्दोलन की व्यापकता पर प्रकाश डाला। इसकी उपयोगिता व आवश्यकता को स्वीकार करते हुए श्री मेहता ने कहा—"मैं स्वयं अणुव्रतों को पालन करने का प्रयत्न करता हूं। इनका व्यापक प्रचार व बच्चों में आध्यात्मिक संस्कार जगाने की परम आवश्यकता है।"

कार्यकर्ता सम्मेलन—

● जलगांव (डाक से) १८ जून के मध्यान्ह में मुनिश्री पुष्पराजजी के तत्त्वावधान में अणुव्रती कार्यकर्त्ताओं का एक सम्मेलन सम्पन्न हुआ जिसमें प्रत्येक कार्यकर्त्ता ने एक वर्ष में कम-से-कम १० प्रवेशक अणुव्रती और एक विशिष्ट अणुव्रती बनाने की प्रतिज्ञाएं लीं।

महिला सम्मेलन—

● देवलगांव माली (डाक से) २९ जून को साध्वीश्री रायकंवरजी के सान्निध्य में एक महिला सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें साध्वीश्री के अतिरिक्त सुश्री सुशीलाबाई कुलकर्णी व जनपद सभा के सदस्य श्री रामभाऊ गुरुजी ने अपने विचार व्यक्त किये और राष्ट्र-निर्माण में महिलाओं को अपना उत्तरदायित्व समझने की बात पर जोर दिया।

शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला—

अणुव्रत का विशेषांक

अनुमानित पृष्ठ संख्या—१००
मूल्य—केवल एक रुपया

सुन्दर व कलात्मक चित्रों और व्यंग चित्रों (कार्टून्स) से युक्त इस अंक में निम्नलिखित विषयों का विशेष रूप से समावेश होगा—

१ आन्दोलन के सात वर्ष
२ अणुव्रत आन्दोलन विचारकों की दृष्टि में
३ अणुव्रत आन्दोलन का राष्ट्रीय महत्व
४ आन्दोलन की भावी दिशा क्या हो ?
५ अणुव्रत समिति का वार्षिक विवरण
६ आचार्य श्रीतुलसी (एक चरित्र)
७ नैतिक पुरुषों की जीवन झाँकियाँ
८ पूंजीवाद और अपरिग्रवाद
६ साम्यवाद और अपरिग्रहवाद
१० हम क्या करें ?
११ राष्ट्र-निर्माण में नैतिक विकास की आवश्यकता
१२ शिक्षा और सदाचार
१३ नागरिकता का आदर्श
१४ धर्म का वास्तविक स्वरूप
१५ व्यावहारिक जीवन में अहिंसा
१६ मद्य-निषेध
१७ जीवन का नैतिक मूल्य
१८ अणु से महान की ओर
१६ भारतीय संस्कृति का तत्त्व
२० भूदान और अणुव्रत

इसके अतिरिक्त अन्य जीवन-निर्माण और आत्म-विकास सम्बन्धी प्रेरक और पठनीय लेख, कहानी, एकांकी कविता, गद्यगीत आदि से भरपूर

इस अनूठे प्रयास की प्रतीक्षा करें

लेखकगण विशेषांक का उल्लेख करते हुए अपनी मौलिक व अप्रकाशित रचनाएं यथाशीघ्र १५ अगस्त ५६ तक कार्यालय में भेजें

इस सम्बन्ध में पाठकों के बहुमूल्य सुझाव व विचार भी सादर आमन्त्रित हैं —सम्पादक

लेखकों से !

प्रत्येक रचना की स्वीकृति अधिक से अधिक १५ दिनमें भेजदी जाती है। स्वीकृति के अभाव में रचना अस्वीकृत समझें। पर्याप्त डाक-व्ययके अभाव में अस्वीकृत रचनाएँ वापस न भेजी जा सकेंगी और न ही अस्वीकृत रचनाओं के सम्बन्ध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार किया जायगा।

—सम्पादक

ग्राहकों से :—

१—अङ्क भेजनेमें पूर्ण सावधानी बरतने के पश्चात् भी अगर किसी ग्राहक के पास 'अणुव्रत' "हर माह की ५ व २० ता० तक नहीं पहुँच सके तो उन्हें कार्ड द्वारा कार्यालय को सूचित करना चाहिये ताकि अङ्क दुबारा भेजा जा सके।

२—जिन ग्राहकों को अपना पता बदलवाना हो, या पतों में संशोधन कराना हो वे पत्रमें ग्राहक नम्बर का हवाला अवश्य दें। —व्यवस्थापक
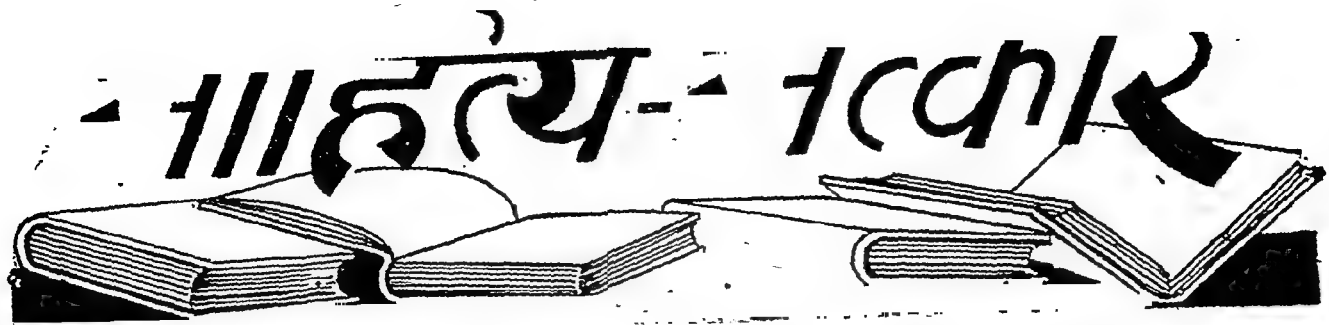
[समालोचनार्थ पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियाँ कार्यालय में भेजनी चाहिए]
एक प्रति आने पर केवल प्राप्ति मात्र दी जा सकेगी ।

छाया की प्रति छवि :—ले० तथा प्रकाशक, श्री गोपालकृष्ण सारंग, एम० ए०, ७६, कबीर मार्ग, लखनऊ। सम्पादक श्री राजेश सक्सेना 'विजय', पृष्ठ सं० ५४ मूल्य ।),

प्रस्तुत पुस्तक में कुछ गद्य-काव्यों का संग्रह है। गद्य गीतों के कथानक के रूपमें संपादकने पाठकों के लिए कुछ सुविधा प्रदान कर दी है।

गद्य काव्यों का साहित्यमें महत्वपूर्ण स्थान है। सर्वश्री वियोगीहरी, रायकृष्णदास, चतुरसेन शास्त्री तथा श्रीमती दिनेशनन्दिनी डालमिया ने इस सम्बन्ध में अन्य लेखकों का हिन्दी साहित्य में पथ-प्रदर्शन किया है। कविता की अपेक्षा गद्य-काव्य हृदय को अधिक स्पर्श करते हैं। "प्रेम करके क्या करोगे", 'दिल की दुनिया', 'रोशनी और दीपक', 'इन्सान और मौत', 'शमा और शलभ', 'चोट का निशान', 'अरमान', 'आशा और जीवन', 'सामाजिक पशु, 'मुक्ति दूत', 'विरहाग्नि', 'रागिनी' शीर्षक गद्य-काव्य पढ़ते हुए काव्य का सा आनन्द आता है।

प्रथम प्रयास :—लेखक श्री वीरेन्द्र अग्रवाल 'मृदु', प्रकाशक—अग्रवाल प्रिंटिंग प्रेस, फर्रुखाबाद; मूल्य ।।।)। पृष्ठ ४८।

जैसा कि नाम से प्रकट है प्रस्तुत काव्य-संग्रह लेखक का प्रथम ही प्रयास प्रतीत होता है। इसमें कुछ बचपन के गीत हैं, तथा कुछ प्रेम के। कुछ गीतों में उस असीम सत्ता का आभास भी मिलता है। कुछ गीतों में प्रकृति का वर्णन किया गया है। कुछ में ईश-प्रार्थना है। पुस्तक का नाम पहली कविता के शीर्षक के आधार पर रखा गया प्रतीत होता है। 'प्रिय स्मरण' तथा 'हार' शीर्षक कविताओं के नीचे के नोट व्यर्थ से लगते हैं। "प्रिय प्राप्ति का साहस" तथा "प्रात में प्रिय दर्शन" कविताओं के नीचे के नोट भी इसी प्रकार के हैं। "निराश पथिक" तथा 'साहस की लहर', कविताएँ अच्छी हैं। पुस्तक में छापे की अशुद्धियाँ बहुत-सी हैं। कुल मिलाकर कविताएँ साधारण कोटि की हैं। *रामकृष्ण 'भारती'*

जागृति (कविता संग्रह) प्रकाशक-नवयुवक साहित्य परिषद् हापुड़ (उ० प्र०) पृष्ठ ६२ मूल्य १) रु०।

कई शताब्दियों के अनन्तर आज भारत स्वतंत्रता की साँसें ले रहा है। किन्तु केवल स्वतंत्रता मिल जाने से ही समाज में स्वस्थता नहीं आ सकती, सामाजिक उत्थान में साहित्य का महत्त्वपूर्ण योग रहता आया है। यह इतिहास सिद्ध बात है कि जब-जब साहित्य में संकीर्ण रूढ़ियाँ प्रविष्ट हुईं, समाज दौर्बल्य की खाइयों में दम तोड़ता रहा। इसका अन्तिम परिणाम यावनी आक्रमण था जिससे भारतीय संस्कृति आक्रान्त हुई, साथ ही साहित्य का ह्रास हुआ और युगों से अपने अस्तित्व को अविच्छेद्य रखनेवाला भारतीय जन-समाज पराभूत हो गया।

आज हमें ऐसी कविताओं की आवश्यकता है जिनसे हमारे भावों को बल मिले और भाषा का संस्कार हो। भाषा को और भी अपरिष्कृत करना भारी अन्याय है।

अभी हाल में ही हापुड़ के नव कवियों ने 'जागृति' कविता-संग्रह प्रस्तुत किया है, उनका यह उत्साह वांछनीय है भविष्यमें उनसे हम यह आशा करेंगे कि ऊपर लिखी बातों को शान्ति से सोचें और सही दिशाकी ओर अपना ध्यान ले जायें केवल छन्दों का निर्माण कर देने से ही कविता का उद्देश्य पूरा न होगा। कवि हापुड़ का हो या हावड़ा का वह भारतवर्ष का है उसकी कृति अखिल भारतीय है। जो लोग इसे केवल हापुड़ का महत्त्व समझने की कोशिश करेंगे, मैं उनके विरुद्ध हूं। पूर्वोक्त कविता-संग्रह में ३९ कवितायें हैं उनमें कतिपय प्रशंसनीय हैं। कितनी ही कवितायें ऐसी भी हैं जो किताब का रूप देने के लिये छाप दी गयी हैं। यहाँ पर प्रत्येक कविता की पृथक् समालोचना की जाय यह असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। फिर भी यह स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं है कि संग्रह अच्छा निकला है।

उक्त संग्रह में, चिविधाकर्षण, देवोपम, जैसे समसित शब्दों के साथ मुश्किल, मस्त, महफिल आदि का जमघट नहीं जंचता। ऐसे शब्द अजायबघर के जानवरों की तरह विचित्र लगते हैं। उनके योग से बनी हुई कविता ऊंट के कूबड़-सी लगती है। वहीं 'प्रवासी से' जैसी कवितायें संग्रह का महत्त्व महनीय कर देती हैं। कवियों का प्रयास सुन्दर रहा है। इस संग्रह से उन्हें और अधिक प्रेरणा मिलेगी यही आशा है, पुस्तक का मूल्य कुछ अधिक प्रतीत होता है। सार्वजनिक हितको ध्यान में रखते हुये मूल्य निर्धारित करना अधिक उचित होता।

—पीताम्बरदत्त शास्त्री

श्री प्रतापसिंह वैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं
रेफिल आर्ट प्रेस-३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित

अङ्क २०

आत्मिक दृष्टि से इतिहास सार्वभौमिक बन गया है। इसका विषय, यूरोप या एशिया नहीं, पूर्व या पश्चिम नहीं, बल्कि सब देशों की समूची मानवता है। राजनीतिक भेदों के बावजूद भी, संसार एक है। हरएक का भाग्य दूसरों से सम्बद्ध है। लेकिन आज हम आत्मिक रूप से दिवालिया हो गये हैं और वैयक्तिक तथा सामूहिक घमंड बढ़ गया है, जिसके कारण विश्व-समाज व्यवस्था के आदर्श का विचार करना ही कठिन प्रतीत होता है।

आज सबसे अधिक आवश्यकता संसार को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखने की है। हमारे देश ने सदा से इसी का समर्थन किया है। हमें आध्यात्मिक स्वतंत्रता के खोये हुए आदर्श को फिर से प्राप्त करना चाहिये। "आत्मा लाभंना परम विद्यते"। यदि हम शांति प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें आध्यात्मिक शांति पाने का प्रयत्न करना चाहिये। बंधन मुक्त आत्मा के प्रेम की कोई सीमा नहीं है। सभी मनुष्यों में वह दिव्य ज्योति का दर्शन करती है। वह निर्भय है—यदि भय रहता है तो केवल बुरे कर्म का। यह समय और काल की परिधि से बाहर निकल जाती है और अनन्त जीवन में जा मिलती है।

—डा० राधाकृष्णन

१ अगस्त १९५६

आपके अणुव्रत के विषय में—

कौन क्या कहता है ?

"...पत्र के सुरुचिपूर्ण सम्पादन के लिये बधाई। देश में नैतिक जागरण की कितनी आवश्यकता है, यह किसी से छिपी नहीं है। आपने समय की माँगपर ध्यान देकर स्तुत्य कार्य किया है।"

—विनयमोहन शर्मा, नागपुर

"...अणुव्रत का अंक मिला। हार्दिक धन्यवाद। देश के स्वतंत्र होने पर जहाँ सब ओर पुनःनिर्माण की चर्चा है वहाँ नैतिक पुनर्निमाण की चर्चा नहीं के बराबर रही। इस कमी की पूर्ति आपके 'अणुव्रत' से होती है। इस पत्रिका की पहुंच विशेष रूप से हमारे विद्यालयों में अवश्य होनी चाहिये।"

—कालिदास कपूर, लखनऊ

"...अणुव्रत के लिये मेरी मंगल कामनाएँ स्वीकार कीजिये। आपका पत्र अपने विषय की दृष्टि से स्तुत्य है।"

—रामावतार त्यागी, देहली

"...आपकी पत्रिका मिली, काफी पसंद आई। भारत में अपने ढंगकी निराली है, इसमें संदेह नहीं।"

—राजेश्वर गुरु, भोपाल

"...अणुव्रत का उद्देश्य बहुत ही अच्छा है। हरएक भारतीय के लिये अपनी संस्कृति, इतिहास और परम्परा के तत्व को समझ लेना आवश्यक है। अब जबकि देश में नव-निर्माण के प्रति उत्साह प्रकट किया जा रहा है, हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि सुन्दर और स्वस्थ भविष्य का निर्माण अतीत पर होता है। मेरा ख्याल है कि 'अणुव्रत' इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करने में बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा।"

—हंसराज रहबर, देहली

"...पत्र के अंतरंग एवं बहिरंग चित्ताकर्षक हैं और इसमें सामग्री उच्च कोटि की रहती है, जिसमें पाठकों के मानसिक भोजन की लब्धि सम्भव है। प्रूफ की त्रुटियाँ यत्र-तत्र रह जाती हैं, इस पर ध्यान रखना आवश्यक है।"

—भागवतप्रसाद सिंह, निपनिया

"...अणुव्रत को मैंने ध्यान से देखा। आज देश को ऐसे ही रचनात्मक सुझाव देने वाले पत्रों की आवश्यकता है। आपका प्रयत्न सराहनीय है।" —उमाशंकर शुक्ल, वर्धा

"...१ जुलाई का अणुव्रत मिला। धन्य-अंक मुझे काफी अच्छा लगा। भागवत और श्रीमती कुशवाहा की रचनाएँ बड़ी अच्छी व इस अंक की प्रमुख आकर्षण हैं। इसके स्तम्भ गम्भीर एवं प्रेरणादायक होते हैं। सम्पादकीय टिप्पणी एवं सूक्ति-चयन से सम्पादक की सूक्ष्म-दृष्टि और कार्य-शीलता का परिचय मिलता है।"

—कीर्तिनारायण मिश्र, शोकहरा

"...ऐसे पत्र की इस समय जबकि अनैतिकता और बेईमानी का बोलबाला है, नितान्त आवश्यकता है। आशा है 'अणुव्रत' अपने धीर-गम्भीर पथ-प्रदर्शन से गिरतों को उठायेगा, डूबतों को बचायेगा।"

—बालकृष्ण बलदुवा, कानपुर

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१

卐

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १ अगस्त, १९५६ [अंक २०

धर्म को केवल कहने और परम्परा पालने तक सीमित नहीं रखना है !

सत्य, प्रामाणिकता और नीतिमत्ता से संसार में काम चल सकता है—आज का मानव यह स्वीकार करने में भी हिचकिचाता है। यह कितनी बड़ी श्रद्धाहीनता का परिचय है। वस्तुतः आज मानव की आत्म-श्रद्धा डगमगा उठी है। यह उसकी बहुत बड़ी आत्म दुर्बलता है। सत्य पराङ्मुखता का ऐसा ही प्रति फल होता है। इस दुरावस्था से मानव को आज निकलना है। अपने श्रद्धाशून्य और सत्य-वर्जित जीवन को सम्हालना है। डगमगाती श्रद्धा को पुनः यथावस्थित करना है, क्योंकि जब तक व्यक्ति के मन में श्रद्धा या विश्वास नहीं होता, वह कुछ नहीं कर सकता। जिसके मन में यह विश्वास नहीं कि सत्य से जीवन व्यवहार चल सकता है, वह सत्य को कैसे पकड़ेगा? अतः मेरा राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक से कहना है कि सत्य और यथार्थ के प्रति वह अपनी खोई हुई श्रद्धा को पुनः प्राप्त करे।

कुछ ही दिन पूर्व की तो बातें हैं-सीमा कमीशन का फैसला देश के लोगों के समक्ष आया, तब कहीं कहीं तो ऐसी दुर्घटनाएं और जघन्य घटनायें घटीं कि उन्हें देखते नागरिकता स्वयं लजाती है। आप अखबारों में पढ़ते हैं, आज भी उसको लेकर कहीं २ कितनी उग्रता और उद्दण्डता देखने में आ रही है।

आप लोग अपने जीवन को अधिक से अधिक अहिंसामय बनाने का प्रयत्न करें। अहिंसा महान् धर्म है, पर उसकी उपयोगिता तब है, जबकि जीवन में उसकी परिव्याप्ति हो। कहने को "अहिंसा परमो धर्मः" का नारा सभी लगाते हैं, सभी धर्मों में इसका उल्लेख है। ऐसा कौनसा धर्म होगा, जो कहेगा कि हिंसा करो, शोषण करो, क्लेश, कदाग्रह और संघर्ष करो। पर हम दुनिया में प्रत्यक्ष देखते हैं कि इन बुराइयों का आज तांता सा जुड़ रहा है। चाहे कहीं जायें, सर्वत्र ऐसा ही ऐसा नजर आता है। यह सब क्यों? इसलिये कि धर्म के आदर्शों को आज का व्यक्ति अपने सुनने तक के लिये सीमित रखने लगा है, जीवन में उन्हें उतारना है, इससे उसका क्या सरोकार? कितनी विषम और विपरीत स्थिति आज की बन गई है? आज आपको इसे बदलना होगा। धर्म को केवल कहने और परम्परा पालने तक सीमित न रख उसके आदर्शों पर जुटना होगा, तभी आपका जीवन सच्चे सुख का अनुभव कर सकेगा।

धर्म के विश्लेषण में जायें तो पायेंगे—धर्म त्याग में है, सन्तोष में है, शान्ति में है, समता में है, जीवन-शुद्धि में है, यह तथ्य आपको हृदयंगम करना है। इसपर आपको आगे बढ़ना है तभी जीवनमें हलकापन, शान्ति और स्थिरता का आप अनुभव करेंगे।

अणुव्रतों के आदर्श विश्वजनीन आदर्श हैं, शाश्वत और सनातन आदर्श हैं। अणुव्रत-आन्दोलन उन आदर्शों को व्यवहारिक जीवन में देखना चाहता है। आदर्श केवल ग्रन्थ और वाणी में न रहकर जन-जन के व्यापार में आयें, रोजमर्रा की जिन्दगी में उनका संचार हो, इस वृत्ति को जगाना अणुव्रत-आन्दोलन का अभिप्रेत है। व्रतगत नियमोपनियमों का गठन इसका स्पष्ट परिचायक है।

अनीति, अनाचार, असत्य और असद् व्यवहार जैसे अमानुसिक कृत्यों से जर्जरित मानव-जीवन के लिये अणुव्रत आन्दोलन वह शीतल सेक है, जो उसे सही शान्ति देता है। अनीति के बदले नीति, अनाचार के बदले सदाचार, असत्य के बदले सत्य और असद्व्यवहार के बदले सद्-व्यवहार की प्रतिष्ठा यह करता है। यह अन्तर-जागृति का आन्दोलन है।

—आचार्य तुलसी

धार्मिक एकता का एक अद्वितीय आदर्श

आज के प्रगतिशील युग में अनेक धार्मिक संस्थाएं, साधु-महन्त और उनकी प्रवृत्तियाँ व्यक्तिगत स्वार्थवादी मनोवृत्ति, संकीर्ण व संकुचित हृदय तथा छोटी-छोटी हीन महत्वाकांक्षाओं के कारण आत्म-कल्याण व पारमार्थिक जीवन से लक्ष्य-भ्रष्ट हो पारस्परिक कलह और सामाजिक उत्पात का पिण्ड बनती जा रही हैं। धार्मिक सहिष्णुता, समन्वय-दृष्टि और चारित्रिक आदर्शों से रहित एवं पतित होकर आज इनके द्वारा सत्य सनातन मानवता के आदर्शों का संदेश मिलना तो दूर यह स्वयं जीवन-याचना का पात्र बन गई है। मानवीय अखण्डता से खण्ड-खण्ड हो सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक एकता के मार्ग में यह विरोधी दीवारें सिद्ध हो रही हैं। धर्म के प्रति अश्रद्धा और घृणा की भावना का एकमात्र यही कारण है। इस तरह के वातायन से जनसाधारण का ध्यान धर्म के प्रतिकूल अन्य प्रवृत्तियों की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक है। प्रमुखतः शिक्षित और युवकवर्ग का, जो इस प्रकार की अधार्मिक हरकतों को देख धर्म को अफीम की तरह कोसने लगे हैं। यह सौभाग्य का विषय है कि धर्म के नामपर धार्मिकों की ऐसी कुंठित वृत्ति और हीनावस्था देख कुछ लोगों का ध्यान इसके उद्धार की ओर गया है और वे भारत की प्राचीन ऋषि-परम्परा को पुनः लाने के लिये चिन्तनीय हैं। इस दिशा में प्राचीनता का कोई एक साकार रूप मिले, यह कहना अत्यन्त कठिन है। लेकिन आज के अर्वाचीन युग में भी ऐसी संस्थाएं विद्यमान हैं, जो साधना की परम्परा को निभाते हुए धर्म व संस्कृति का अखण्ड संदेश देती हैं। उनमें जैन आदर्शों को लेकर तेरापंथ साधु-संस्था भी एक ऐसी संस्था है जो धार्मिक संगठन की दृष्टि से अपना एक अनुपम उदाहरण रखती है। उसकी अहिंसात्मक अनुशासन-प्रणाली को देख यह कहा जा सकता है कि धार्मिक जगत् में अध्यात्म-प्रधान संगठन का यह एक बेजोड़ नमूना है। धार्मिक सिद्धान्तों के एक सूत्र में संगठित होकर एक आचार्य के नेतृत्व में ६०० से अधिक साधु-साध्वियों का एक कार्य-क्रम और एक श्रृंखला में कार्य करना अद्वितीय है। एक आचार्य की मान्यता में साधुओं के लगभग १२५ ग्रूप हैं और ये प्रतिवर्ष आचार्य से गण का संदेश लेकर भारत के विभिन्न गांवों में पाद-विहार करते हुए जन-जन में अहिंसा का सञ्चार करते हैं। आचार्य की जो वाणी उनके चतुर्मास-स्थल से सुनाई देती है, वही प्रतिध्वनि दिल्ली, बम्बई, पंजाब, हरियाणा, मद्रास, सौराष्ट्र, दक्षिण व राजस्थान में उनके प्रतिनिधि साधुओं से सुनने

सम्पादकीय

को मिलती है। आचार्य संगठन के सार्वभौम स्वरूप हैं और साधुगण उस स्वरूप की जीवन-शक्ति हैं। अणुव्रत आन्दोलन का थोड़े समय में इतना प्रचार व विस्तार इसी शक्ति और संगठन का श्रेय है। आज भारत के कोने-कोने में अणुव्रत आन्दोलन का स्वर सुनने को मिलता है, यह इसी चरित्रिक श्रृङ्खला का परिणाम है। इसके पीछे तेज है, तपस्या है और साधकों का असीम बल है। अणुव्रत आन्दोलन की प्रगति ने तेरापंथ साधु-संस्था की उदारता, सार्वजनिनता और प्रभावशीलता को भी प्रस्फुटित किया है। आज विश्व के अनेक गणमान्य विचारकों ने संस्था की उपादेयता व लोकप्रियता को स्वीकार किया है। निःसंदेह आचार्यश्री भिक्षु की संघर्षशील साधना, श्री जयाचार्य की अनुशासनबद्धता और वर्त्तमान समय में आचार्यश्री तुलसी की युग-दृष्टि ने तेरापंथ संस्था को अधिकाधिक विकासोन्मुख रूप दिया है। इसका आध्यात्मिक गौरव और एकाकार अधिकाधिक प्रस्फुटित हुआ है।

लेकिन पिछले दिनों नई-नई धार्मिक प्रवृत्तियों की दृष्टि को लेकर संस्था की अन्तरंग शक्ति में एक व्यवधान पड़ा और सैकड़ों वर्षों से एकाकार रूप में चले आ रहे इस संगठन में भी मतभेद का बीजारोपण हुआ। परिणाम स्वरूप कतिपय साधुगण संघ के अनुशासन से पृथक हुए। बाह्य जगत् ने धार्मिक अखण्डता के इस एकाकार में कभी न पड़नेवाली दरार को अपनी आंखों पड़ती देख क्या-क्या नहीं सोचा? लेकिन सौभाग्य से यह मतभेद मनभेद के रूपमें न बदला। उसीका यह श्रेय है कि सरदारशहर की पुनीत स्थली में मनभेद के एक प्रमुख प्रसंग को आचार्यश्री ने केवलियों को सौंपते हुए अपने विशाल हृदय का परिचय दिया और संतों ने अपने अन्य सब मतभेदों को आचार्य के विश्वासपर छोड़ अपनी उदारता हृदयशीलता और संघ के प्रति एक्य भावना का अटूट परिचय दिया। दर्शक आश्चर्यान्वित रह गये। निसंदेह यह प्रकरण भी आज तेरापंथ के इतिहासका एक स्वर्णिम अध्याय बनगया है, जिसने उसकी संगठन-शक्ति में एक नई श्रृङ्खला जोड़ी है। निसन्देह यह अभिनन्दनीय है।

धार्मिक प्रवृतियों और छोटी छोटी बातों को लेकर धार्मिक संस्थाओं और साधु-महन्तों में जो दलबन्दी और अखाड़ेबाजी आये दिन सुनने को मिलती है, वह यदि तेरापंथ साधु-संस्था की इस धार्मिक सहिष्णुता व संगठन की वृत्ति को अंगीकार कर चले तो आज बहुत सारी समस्याएं सहज ही हल हो सकती हैं। हम देखते हैं कि धर्म के नामपर न सिर्फ अनेक कलह और झगड़े खड़े होते हैं

वरन् समाज पर भी अपने-अपने क्षेत्र में इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है और अनावश्यक सामाजिक उत्पाद पैदा हो जाते हैं। इसलिये आवश्यकता है कि तथ्यहीन बातों को महत्व न देकर धर्म व अहिंसा के पोषक कहे जानेवाले ऋषि-महर्षि अपने हृदय को उदारता बनायें और धार्मिक सहिष्णुता व समन्वय-दृष्टि से विचारकर धार्मिक विश्वासों को अंगभंग करने की अपेक्षा उसकी अखण्डता व एकता को दीर्घायु करें। इसके लिये हमारे चरित्रका अक्षुण्ण होना भी आवश्यक है। तेरापंथी साधु इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

आज के प्रगतिशील युग में चारों ओर से सर्व धर्मों की एकता व सम्मिश्रण की आवाज भी उठाई जा रही है। यह अच्छा है। लेकिन प्राथमिक रूप में हम अपने-अपने धार्मिक संगठन को एक्य रूप दें और उनमें चारित्रिक बल तथा सहिष्णुता की भावना जागृत करने के साथ नैतिक एकता व उत्तरदायित्व को संगठित करें तब ही बहुत बड़ा काम होगा और जन-जीवन की खोई हुई श्रद्धा को संकलित करने का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम होगा। इस दृष्टि से हमें भारत की नैतिक शक्ति को पुनः संस्थापित करना है, जो कि तेरापंथ साधु-संस्था का एक मुख्य कार्यक्रम है। अब समय आ गया है कि धार्मिक जगत् की संस्थाएं अधिक सहिष्णु और संगठनशील बनें। तब ही वे आत्म-कल्याण और पारमार्थिक जीवन के लक्ष्य को सार्थक करने के साथ अपने अहिंसात्मक आदर्शों को स्थायी रख सकती हैं।

> जो सचमुच उठना चाहता है, उसे कानून की झूठी बेड़ियों में कसकर मत सुलाओ, उसे उठने दो। कानून सत्य के लिये है, सत्य कानून के लिये नहीं।
>
> —अज्ञात

महान लज्जाजनक !

भारत की धर्म, संस्कृति व आध्यात्मिक विचारधारा के प्रचार-प्रसार में ऋषि-महर्षियों की परम्परा का सदैव से एक महत्वपूर्ण और आदरणीय स्थान रहा है। अज्ञान के अन्धकार में भटकते मानव को दिव्य-ज्ञान के प्रकाश की जो प्राप्ति इस परम्परा से हुई है, वह भी किसी से छिपी नहीं है। जीवन में उत्पन्न निराशा, असंयम, चरित्रहीनता, अनैतिकता और मोहादि से संतप्त और दुःखी संसार को शान्ति का सन्देश देनेवाले इन पथ-प्रदर्शकों के सामने हम श्रद्धा से नतमस्तक हैं। परन्तु हमारी इस श्रद्धा और सम्मान का लाभ उठा कर जो तथाकथित साधु इस परम्परा को कलंकित करने का दुस्साहस करते हैं, उनसे हमें सावधान रहने की भी आवश्यकता है।

पिछले दिनों का समाचार है कि पुलिस ने दो साधुओं को गिरफ्तार किया जिनके पास चोरी का माल बरामद हुआ। साधुवेश में अपनी चरित्रहीनता और दुराचरण से इस पुण्य परम्परा को बदनाम करनेवाले ऐसे कुकृत्य निश्चय ही महान लज्जाजनक हैं।

कारनामों का फल

सरकार की ओर से नित नवीन योजनाएं प्रस्तुत की जाती हैं, जिनमें कुछ तो विचारों की दौड़ में ही पिछड़ कर रह जाती हैं और जो कुछ कार्यरूप में परिणत होती हैं वे अधिकारियों की लापरवाही, अनियमितता व गोलमाल की वारदातों से बेमौत खत्म होती दीखती हैं। पिछले वर्षों में अनेक स्थानों पर बाँध बनाने के कार्य प्रारम्भ हुए जिनमें अधिकांश पूरे हो चुके हैं और हो रहे हैं।

जनता की गाढ़ी कमाई और बहुमूल्य समय लगने के बाद भी यदि ये बाँध असावधानी, गबन और मिलावट आदि के कारण देर में तैयार हों और असमय में ही टूट जाय तो किसको आश्चर्य न होगा? कहीं-कहीं तो बांध बनाते समय ही उसके तैयार हिस्से में दरारें पड़ गई थीं, कहीं अब बाढ़ व वर्षा के कारण वे फूट गये। ऐसी स्थिति में जबकि हमारा चारित्रिक व नैतिक पतन चरम सीमा पर पहुंचा हुआ है, हमारे मन से जनहित की भावना लोप होती जा रही है और हम अपने कर्तव्य को ठुकराकर घर भरने में लगे हैं तब ऐसा सब कुछ हो जाना अस्वाभाविक भी नहीं। यदि हमारी अपेक्षा है कि राष्ट्र निर्माणकारी योजनाएं सफल हों तो सर्व प्रथम अपने चरित्र व आत्म-विकास की ओर ध्यान देना होगा जिससे हमारा दृष्टिकोण निःस्वार्थी होकर कर्तव्य की भूख जगा सके और इन काले कारनामों के दुष्परिणाम से देश की रक्षा कर सके।

जीने की जिन्दगी में

[श्री इन्दुभूषण नेहरू]

जीने की जिन्दगी में—
दो मिनट मौज है
दो मिनट सोच है
डरो नहीं जिये चलो
सुधा गरल पिये चलो
मस्ती में पस्त क्यों
अपने से त्रस्त क्यों
सोचो कुछ और की
जीने की जिन्दगी में—

भौतिकवादी प्रभाव में भारत

[श्री सूर्यनारायण व्यास]

यह सर्वमान्य बात है कि जब भौतिक सम्पत्ति सीमोत्तर बढ़ जाती है, और सत्य-निष्ठा से समाज विचलित हो जाता है तब राष्ट्र का अधःपतन निश्चित हो जाता है। आज हमारे राष्ट्र की दशा ठीक इसी प्रकार की बन रही है। हम भौतिकता की ओर निरंतर बढ़ते जा रहे हैं, मानव की ऊंचाई और शासन की प्रगति का 'नाप' हमने भौतिक-वाद की कसौटी पर बना लिया है, इसे ही हमने उन्नति और कल्याण-मार्ग समझ लिया है, सत्यनिष्ठा का महत्व निरंतर हम भुलाते जा रहे हैं। 'बापू' का 'स्वराज्य' पश्चिम के उच्च स्तर का प्रतीक बनना नहीं चाहता था, उसका आधार 'सत्य' था, परंतु हमारे सामने यूरोप-अमेरिका की उन्नति है, भौतिकता की ओर हम प्रभावित हो रहे हैं और उसे हम 'प्रगति' के नाम से बोधित कर रहे हैं, भारत के पुराने आचार्यों ने इसी भौतिकवाद को 'आसुरी-सम्पत्ति' की संज्ञा से सूचित किया है, आसुरी-सम्पत्ति में समाज का मूल्य भौतिक-स्तर पर समुन्नत समझा जाता है। जबकि दैवी-सम्पत्ति में आत्मोन्नति और आत्म-कल्याण, (विश्व विकल्याण) ही महत्त्व रखता है। आत्मोन्नति में विवेक विकसित होता है, सत्य की साधना होती है और विश्वकल्याण की भव्य-भावना भरी हुई होती है, भौतिक-वादी मानव (या समाज) मानव के मूल्यको ऊपर उठाने के साधनों में इतना अधिक स्वार्थान्ध बन जाता है कि उसकी प्रगति सर्व-नाश तक पहुंच जाती है, सत्य-सापपेक्षता की उसे चिंता नहीं, चाहे सत्यानाश ही को क्यों न न्यौतना पड़े! भौतिकवाद विषम-स्वार्थ और अनुदारता का जनक है, जबकि आत्मो-न्नति का पथ—"सर्वेपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद्दुःख भाग्भवेत्"—का समर्थक है।

उदाहरणार्थ—ब्रिटेन का वर्चस्व जो प्रथम महासमर के पूर्व था, वहाँ उदार मनवादिता पोषित हो रही थी पर उसकी प्रगतिशील कूटनीति, स्वार्थपरता, साम्राज्य-लिप्सा और एक दूसरे के प्रति स्पर्धा ने आज उसे कहीं का नहीं रहने दिया है। यह प्रथम श्रेणी का साम्राज्य प्रथम युद्ध के बाद ही द्वितीय श्रेणी में समाविष्ट हो गया और दूसरे महासमर के बाद तो तीसरी श्रेणीमें उतरकर अपने पतन के पथ का पथिक बन गया है। ब्रिटेन के पतन का कारण स्पष्ट है और भारत की स्वराज्य सिद्धि उसकी सत्यनिष्ठा, और नैतिकता को आभारी रही है। परन्तु विजय मिलते ही हम पर भी पश्चिम की चकाचौंध में भौतिकता का भूत सवार हो गया है, हमारा विवेक विकार के वशीभूत हो गया है, हमारी सत्यनिष्ठा वाणी तक सीमित बन रही है और नैतिक धरातल से हम निरन्तर नीचे उतरते चले जा रहे हैं, यह अत्यंत चिंताजनक ही नहीं, हमारे भावी को अन्धकारमय बना देनेवाली बात है। स्वराज्य समर के समय हम जिस नैतिक उच्च स्तर पर आसीन हो, विजय की ओर अग्रसर हो रहे थे, स्वराज्य के पाते ही उसी द्रुतगति से अनैतिक पथपर फिसलते चले जा रहे हैं, आज विश्व अशांति के विषम वायु-मण्डल से व्याप्त हो रहा है, एटम बम, और उद्जन-बम जैसे—संहारक शस्त्रास्त्र पर सवार होकर शांति की साधना की जा रही है, कैसी आत्म-प्रवचना और 'सत्य' का सत्या-नाश है!

एक ओर हम संस्कृतियों के संहारके षड्यंत्र रच रहे हैं, दूसरी ओर संस्कृति समुत्थान की योजना भी बनाते हैं। वस्तुतः संस्कृतियों का तो कभी नाश नहीं होता, उसमें परिवर्तन भी होजाए पर अभी हम मानव संस्कृति के विकास की ओर ही पहिले ध्यान दें, उसको ईमानदारी सत्यनिष्ठा, विनम्र, भावना सौजन्य आदि गुणों का यथार्थरूप में विकसित करें, तो यह अशांति और अविश्वास का वातावरण ही पलट जाय। हम में यदि विश्व कल्याण या विश्वशांति की वास्तविक भावना है तो विश्व-मानव के गुणों को (संस्कृतिको) विकसित करने की ओर ही अपना लक्ष्य केन्द्रित करना चाहिए। संकुचित भावनाओं को समाप्त किए बिना विश्व-मानव संस्कृति को जागृत एवं पुष्ट नहीं किया जा सकता। परन्तु आश्चर्य यही है कि ज्ञान और विज्ञान के इस चकाचौंध वाले युग में भी लोग जीवन की एकता के तथ्य समझने में कैसे अस-फल हो रहे हैं! वस्तुतः भौतिकवाद ने हमारे विवेकशील 'चिंतक' की दृष्टिपर अंधेरा-परदा डाल दिया है। जब हम पराधीन थे, तब हमें यह आत्मविश्वास नहीं बैठता था कि हमारी संस्कृति भी कोई उच्च रही होगी, परंतु अब स्वतंत्र हैं, स्वतंत्र विचार करने की क्षमता रखते हैं, ऐसी स्थिति में हमें अपनी संस्कृति-परम्परा के क्रमिक विकास को भुला नहीं देना चाहिए.

(शेषांश पृष्ठ २७ पर)

एक मनोवैज्ञानिक लेख—

अपने भाग्य के हम स्वयं निर्माता हैं !

[प्रो० श्री लालजीराम शुक्ल एम० ए०, बी० टी०]

[हमारा मन एक लैम्प की तरह है। इसमें आशा-निराशा, सद्-असद् और स्वस्थ-अस्वस्थ जैसे विचारों का तेल दिया जायगा वैसा ही जीवन-प्रकाश यह फैलायेगा। दूसरे शब्दों में जीवन या भाग्य का जन्मदाता कोई अन्य नहीं स्वयं हम और हमारे मन के विचार हैं। इसीकी विस्तृत व्याख्या अपने जाने-पहचाने लेखक के प्रस्तुत प्रेरणादायक निबन्ध में पढ़िये। —सम्पादक]

जिस दुनिया में हम रहते हैं, वह हमारे विचारों के अनुरूप होती है। जिस विचार को दीर्घकाल तक हम मन में धारण करते हैं, वस्तुस्थिति में परिणत हो जाता है। यदि हम किसी परिस्थिति को बदलना चाहते हैं, तो प्रथम हमें अपने विचारों को ही बदलना होगा।

उपर्युक्त विचार आध्यात्मिक साधना का आधारभूत सिद्धान्त है। इस विचार को मान लेना सरल बात नहीं है। जो मनुष्य जितना ही निराशावादी होता है, वह बाह्य जगत को उतना ही महत्त्व देता है। बाह्य-जगत की महत्ता को बढ़ाना अपने आपको निराशा में ढकेल देना है। जब बाह्य परिस्थितियों और घटनाओं की प्रबलता को हम मान लेते हैं तो हम अपने आपको निकम्मा बना लेते हैं। वास्तव में, निकम्मे मनुष्य ही अपनी असफलता का दोष परिस्थितियों के मत्थे मढ़ते हैं। जो मनुष्य अपनी दुःखद परिस्थितियों से मुक्त नहीं होना चाहता, वह बाहरी घटनाओं को उतना ही अधिक महत्त्व देता है। ऐसे ही लोग भाग्य, ईश्वर, देवी-देवता, भूत-प्रेत आदि को अपने दुःखों का कारण मान लेते हैं। मनुष्य जितना ही अधिक अपने अन्दर दुर्बल होने की अनुभूति करता है, वह अपनी इच्छा-शक्ति को उतना ही दुर्बल बनाता है।

जिस मनुष्य के विचार अपने वश में नहीं हैं, उसके विचार किसी बाहरी पदार्थ अथवा घटनाओंके वश में होकर ही रहेंगे। पराधीनता भी मनुष्य को कुछ मानसिक स्थिरता देती है। मनुष्य पराधीन भी इसीलिये होता है कि उसका आन्तरिक मन बिना पराधीन हुए चैन नहीं पाता। अस्थिर मन भूत के समान है। यह भूत दूसरों को तो त्रास देता ही है, स्वयं को भी त्रास देता है। मनुष्य की आन्तरिक प्रकृति मन की इस अस्थिरता को रोकने के लिए किसी ऐसी कल्पना की सृष्टि कर लेती है जिससे कि उसमें स्थिरता आए। ईश्वर और भाग्य की कल्पना इसीलिए ही की जाती है। अस्थिर मन रोग की भी कल्पना करता है। कल्पना वास्तविक रोग में परिणत हो जाती है। फिर, यह मन का रोग इस भूत के आस-पास घूमते रहता है। वास्तव में, मनुष्य के दुःख और सुख, उसके रोग-दोष एवं हानि-लाभ का निर्माता स्वयं मनुष्य का मन ही है।

मनुष्य उपर्युक्त तथ्य की सत्यता इसलिए नहीं पहचानता कि उसके विचार एवं फल की दूरी अत्यधिक रहती है। छोटी बातों के संकल्प जल्दही फलित होते हैं और बड़ी बातों के संकल्प देर से। जिस प्रकार बीज बोये जाने पर बहुत समय तक ढँका रहता है, बाद में वह पौधे के रूपमें अंकुरित होता है और पीछे वृक्ष बन जाता है; उसी प्रकार कोई भी विचार कुछ समय तक मनुष्य के अचेतन मन में अज्ञात रूप से स्थित रहने पर उस वस्तुस्थिति में परिणत हो जाता है जिसमें विचार होता है। इमरसन का कथन है कि मनुष्य का मन और बाहरी जगत एक दूसरे के सापेक्ष हैं। विचारों के अनुरूप जगत होता है और जगत के अनुरूप विचार। जिस पदार्थ को आज हम जगत के रूप में देखते हैं वह किसी समय हमारा विचार ही था। एक व्यक्ति का विचार दीर्घ काल तक धारण किये रहने पर अनेक व्यक्तियों का विचार बन जाता है। फिर, यही सामूहिक विचार जगत की सृष्टि कर देता है।

एक व्यक्ति का विचार अनेक व्यक्तियों का विचार किस प्रकार होता है, इसके विषय में कुछ महत्व की बातें जानना आवश्यक है। हमारे कुछ विचार दूसरों तक ज्ञात साधनों के द्वारा जाते हैं। परन्तु जो विचार जितनी सुगमता के साथ दूर-दूर तक फैलता है उसका जीवनकाल उतना ही कम भी होता है। ज्ञात साधन जितने शक्ति-सम्पन्न लोगों के पास रहते हैं उतने वे दूसरे लोगों के पास नहीं रहते। यदि ज्ञात साधन ही विचारोंको फैलाते तो संसार के उदार दृढ़ व्रती लोग अपने भले विचारों को कभी भी नहीं फैला पाते। परन्तु भले विचार बुरे विचारों-पर विजय प्राप्त करते

हैं। स्वार्थी लोगों के विचार भले नहीं होते। शक्ति-सम्पन्न लोग प्रायः स्वार्थी ही होते हैं। यदि जगत में इन्हीं लोगों के विचारों की प्रधानता रहती तो जगत विनष्ट ही हो जाता। हम देखते हैं कि जगत चल रहा है। इससे यह निश्चित होता है कि ज्ञात साधनों के अतिरिक्त संसार में दूसरे साधन भी हैं जिनके द्वारा संसार में मौलिक विचारों का प्रसार होता है।

मनुष्य की भाषा दो प्रकार की होती है। एक बुद्धि की और दूसरी हृदय की। बुद्धि की भाषा चतुराईपूर्ण रहती है तथा हृदय की भाषा सरलता से ओत-प्रोत। हृदय की भाषा को हृदय ग्रहण करता है तथा बुद्धि की भाषा को बुद्धि। जो विचार अपने प्रचार के लिये सभी प्रकार के वाह्य साधनों का व्यवहार करता है वह प्रायः हृदय का विचार नहीं होता। वह जितनी जल्दी फैलता है उतनी ही जल्दी समाप्त भी हो जाता है। हृदय का विचार दूर-दूर तक बिना भौतिक साधनों के फैल जाता है। इस तथ्य की सत्यता में सभी सच्चे हृदय के लोग विश्वास करते आये हैं, चाहे वे जड़वादी हों अथवा चेतनवादी। 'प्रिंस क्रोप्टकिन' खुले मैदान में अकेले में अपने सिद्धान्तों का व्याख्यान किया करता था। उसका विश्वास था कि अपने विचारों को तुम कहते चले जाओ, चाहे कोई सुननेवाला हो अथवा नहीं। तुम देखोगे कि एक दिन वह सर्व साधारण का विचार बन गया। कभी-कभी वह सिरपर घास का गठ्ठर लिये घसियारों को अराजकता के सिद्धान्तों पर इस आशा से लेक्चर देता था कि उस घसियारे के रूप में विश्वात्मा उसके विचारों को ग्रहण कर रही है। इस प्रकार के दृढ़-व्रती लोगों ने ही रूस की क्रान्ति को सफल बनाया। जेल में पड़े-पड़े लोग, सुदूर देश में कैद देशभक्त अपने अप्रकाशित विचारों से ही उन देशों में क्रान्ति की लहर फैलाने में सफल हुए। कोई भी देशभक्त साधनों की न्यूनता अथवा संपन्नता पर विचार करके कभी भी देश में क्रान्ति पैदा करने में सफल नहीं हुआ। नये समाज का निर्माता प्राथमिक अवस्था में जनसाधारण एवं विद्वानों द्वारा पागल ही समझा जाता है। परन्तु जिस प्रकार आकाशवाणी में रेडियो की लहरें एक स्थान से दूसरे स्थान पर अदृश्य भौतिक साधनों के द्वारा जाती हैं, उसी प्रकार मनुष्य के विचारों की लहरें एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य तक अदृश्य मानसिक साधनों द्वारा जाती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक मनुष्य का विचार अनेक मनुष्यों का विचार बनकर वाह्य जगत में परिवर्त्तन करता है। यह जगत का परिवर्तन भी दो प्रकार से होता है। एक ज्ञात रूप से अथवा दूसरा अज्ञात रूप से। कभी-कभी हम देखते हैं कि हमारे सामने ऐसी परिस्थितियाँ आ गई जो हमारी इच्छाओं तथा भावनाओं के सर्वथा प्रतिकूल हैं। हम कहा करते हैं कि भगवान ने उन परिस्थितियों को पैदा कर दिया। परन्तु यदि हम अपनी बहुत पुरानी विचारधारा को, अपनी इच्छाओं एवं आकांक्षाओं को जानने की चेष्टा करें तो हमें ज्ञात होगा कि ये बाहरी परिस्थितियाँ हमारे आन्तरिक मन से असंबन्धित नहीं हैं। भारतवर्ष में मुहम्मद गोरी एवं मुहम्मद गजनवी का आक्रमण हुआ। मुसलमानों ने सात सौ वर्ष तक यहाँ राज्य किया। आज पाकिस्तान का निर्माण हुआ है। ये सभी घटनायें भारतवासियों की इच्छाओं के प्रतिकूल दिखाई देती हैं। परन्तु यदि हम मन की भीतरी तह को समझें तो पता चलेगा कि ये सारी परिस्थितियाँ हमारे राष्ट्रीय मनके द्वारा निमंत्रित थीं। इन सबकी आध्यात्मिक महत्ता हमारे राष्ट्रीय जीवन को रही है। अंग्रेजों का भारतवर्ष में आना और उनका यहाँ से चला जाना हमारे राष्ट्र की आध्यात्मिक आवश्यकता थी। मनुष्य को रोग इसलिये होते हैं क्योंकि वह अपने अन्तर्मन से उसे चाहता है। इसी प्रकार दुर्घटनायें भी मनुष्य के आन्तरिक मन से चाही हुई होती हैं। इसलिये कभी-कभी भविष्य में होने वाली दुर्घटनायें अथवा रोग मनुष्य को उसके स्वप्न में अथवा उसके अकारण भय एवं चिन्ता में प्रतीक रूप से उसे ज्ञात हो जाते हैं।

लेखक के एक मित्र विलायत पहुंचने के दो सप्ताह के भीतर दमा के रोग से पीड़ित होकर मर गये। विलायत जाने के पूर्व लेखक से बातचीत करते हुए अचानक उन्होंने कहा कि हर साल के प्रारम्भ में 'ट्रेनिङ्ग कालेज' में एक न एक व्यक्ति किसी दुर्घटना से अवश्य मर जाता है। अबतक विद्यार्थियों की ही मृत्यु होती रही है। इसबार किसी प्रोफेसर की बारी है। एक अन्य मित्र से उन्होंने कहा कि कमरों के सामने लगे हुए स्मारक पत्थरों के समान दिखाई पड़ते हैं। वे कहने लगे कि किसी पत्थर में यह भी लिखा रहेगा कि यहाँ पर अमुक व्यक्ति दफनाया गया है।

कितने ही रोगियों को मनोविश्लेषण करते समय यह पाया गया कि जिस रोग से वे पीड़ित हैं और जिससे मुक्त होने की वे अधिक से अधिक कोशिश करते हैं वे आन्तरिक मन से उसे चाहते हैं। वह रोग उन्हें इतना प्यारा है कि यदि वह उनसे छुड़ा लिया जाय तो वे आत्म-हत्या ही करलें। इस प्रकार की आत्म-स्वीकृति कई रोगियों ने लेखक से की है। किसी भी रोगी को रोग से तबतक मुक्त नहीं किया जा सकता जबतक उसकी इस आन्तरिक इच्छा को बदल नहीं दिया जाय।

आधुनिक मनोविज्ञान की यह खोज हमें

सत्य शब्द प्रधान नहीं भावना-प्रधान है

[७]

[प्रायः हर क्षेत्र में आज यह धारणा सी बन गई है कि 'असत्य के बिना कोई काम ही नहीं चल सकता।' वस्तुतः हमारा यह दृष्टिकोण जहाँ एक ओर चारित्रिक पतन का द्योतक है वहीं हमारी आत्म-विश्वास हीनता और आत्मिक-शक्ति के दिवालियेपन का भी परिचायक है। मुनिश्री के प्रस्तुत विचारों को पढ़कर क्या हम सत्य की गहराई और भावना तक पहुँचने का प्रयत्न करेंगे ?

—सम्पादक]

सत्य शास्त्र-सम्मत है इसीलिये वह जीवन का सिद्धान्त हो ऐसी बात नहीं, वह जितना शास्त्र-सम्मत है उतना तर्क-सम्मत भी। कुछ लोग कहा करते हैं सत्य व असत्य का भेद ही अनावश्यक है। बोलने का उद्देश्य जैसे फलित होता हो वैसे बोलना चाहिये। यह यदि नियम होता कि सत्य बोलने से ही फलित सिद्ध हो तो अवश्य हम सत्य को जीवन सिद्धांत मानते। किन्तु ऐसा नहीं है, असत्य वादन से भी मनुष्य बहुत सारी सफलतायें पाता है। तर्क रुचिकर लगता है पर इसके नीचे सुदृढ़ आधार नहीं है। सफलता मिलने से ही जीवन का कोई प्रयत्न उपादेय बने, मानने योग्य बात नहीं है। चोरी से भी धन मिलता है, व्यभिचार में भी वैषयिक आनन्द है पर ये जीवन के उपादेय तत्त्व कभी नहीं बनते। उपादेयता को परखने के लिये देखना होगा सत्य और असत्य में सहज क्या है, स्वभाव व विभाव क्या है? सहज सत्य है जिसे मनुष्य अनायास बोलता है। असत्य वादन में विशेष प्रयत्न अपेक्षित है। जीवन सिद्धान्त वह होता है जो व्यवहार्य हो। सत्य व्यवहार्य है। मैं सदा सत्य ही बोलूंगा ऐसा व्रत लेकर अनेक लोग चलते हैं,

सब लोग चल सकते हैं। मैं असत्य ही बोलूंगा ऐसा व्रत लेकर न कोई चलता है और न चल सकता है। कोई भी व्यक्ति समग्र झूठ कैसे बोलेगा क्या वह खाते हुये भी कहेगा—नहीं खाता हूँ, बोलते हुये भी कहेगा मैं नहीं बोल रहा हूं और वह जीवित होते भी कहेगा मैं मर गया हूं। अस्तु—असत्य जीवन में व्यवहार्य नहीं होता इसलिये वह जीवन का सिद्धान्त भी नहीं बन सकता और उपादेय भी। सत्य स्वभाव है असत्य विभाव, वह स्व है, वह पर है। 'पर' भी क्या कभी 'स्व' होगा?

सत्य का शुद्ध रूप नकारात्मक

'मैं सत्य बोलूंगा' सत्य के इस विधेय रूप में समग्र अभिधेय नहीं आता। सत्य भी कुछ मर्यादाओं में वाच्य है कुछ अवाच्य। 'मैं असत्य न बोलूंगा' यह विधेय अपने आप में शुद्ध है, इनमें कोई अपवाद व विकल्प जोड़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती। अणुव्रत-आन्दोलन सार्वजनीन है इसलिये इसमें नकारात्मक सत्य को विशेष स्थान दिया गया है। विधानात्मक सत्य में नाना मत सम्भव है, उदाहरणार्थ कटु सत्य, मर्म प्रकाश। ये सब कहाँ तक उपादेय हैं इसमें व्यक्ति-व्यक्ति का भिन्न मत सम्भव है। इस विषय में सुप्रसिद्ध उक्ति तो यह है ही 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यम-प्रियम्' अर्थात् सत्य बोलो, प्रिय बोलो परन्तु अप्रिय सत्य मत बोलो। पर यह जीवन के समस्त व्यवहार में चलता नहीं। एक सत्यनिष्ठ वक्ता अनैतिकता और भ्रष्टाचार का व धर्म के नाम पर चलनेवाले अधर्म का व न्यायके नाम-पर चलनेवाले अन्याय का खंडन नहीं करेगा? क्या एक आदर्श अधिनेता दूसरे तथाकथित अधिनेता व अधिकारी के द्वारा होनेवाले गबन को चुपचाप देखता रहेगा? अणुव्रत-आन्दोलन में सत्य के निषेधात्मक रूप को स्थिरता देने का तात्पर्य यह नहीं कि उक्त प्रकार के विधानात्मक सत्यों को वाच्य की सम्भ्रात स्थिति में यों ही छोड़ देता है। किन्तु उक्त विषयों पर भी वह एक न्यायपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। अप्रिय सत्य और मर्म प्रकाश के विषय में अणुव्रती का मार्ग यह है कि वह कटु-सत्य भी बोलते समय या किसी के गबन का रहस्योद्‌घाटन करते समय अपने आपको टटोले कि मेरा दृष्टिकोण सामाजिक हित की रक्षा का है या प्रतिपक्ष को गिराने का। दूसरे को हतप्रभ करने की बुद्धि से बोला गया सत्य भी असत्य से कम नहीं होता।

राजनीति और सत्य

व्यवसायी लोगों ने जैसे अशक्यता बताकर असत्य को अपने व्यवसाय में प्रश्रय दे रखा है

(पृष्ठ ८ का शेषांश)

इस निष्कर्ष पर ले जाती है कि यदि हम अपने विचारों की पतवार अपने हाथ में रखें तो हम अपनी जीवन नौका को जिस स्थान पर ले जाना चाहते हैं वहाँ पहुँचाने में अवश्य ही समर्थ होंगे। इस सामर्थ्य की प्राप्ति के लिये सतत् प्रयत्नशीलता एवं धैर्य की आवश्यकता होती है। हमारा कोई महत्वपूर्ण विचार तुरन्त फलित नहीं होता। जो विचार जितना ही हमारे लिये कल्याणकारी होता है, वह उतना ही अधिक समय फलित होने में लगाता है।

लगता है राजनैतिक क्षेत्र में काम करनेवाले व्यक्तियों ने भी यही रास्ता पकड़ा है। एक दल के व्यक्ति जब राजनैतिक मंच पर आकर दूसरे दल पर बोलना आरम्भ करते हैं तब इतनी झूठ तक कोई आपत्ति मानते ही नहीं जितना कि जनता में चल सकता है। अपने पक्ष की असत्य स्लाघा दूसरे पक्षकी असत्य निन्दा वहां अत्यन्त ही सहज होती देखी जाती है। वही वक्ता कुशल माना जाता है जो अपने शब्दों की चद्दर में लपेटकर अधिक से अधिक असत्य जनता के हृदय तक पहुँचा देता है। एक दल के लोग दूसरे दलपर ही असत्य का प्रयोग करते हों ऐसी बात नहीं। बहुधा एक बड़े दल में नाना अवान्तर दल देखे जाते हैं, वहाँ की पारस्परिक भांजगड़ में भी असत्य खुले हाथों बंटता है। स्थितियाँ यहाँ तक पहुंच जाती हैं कि सत्तारूढ़ पक्षको तोड़ने के लिये व अपने पक्ष को सत्तारूढ़ बनाने के लिये तटस्थ व दूसरे पक्षके व्यक्तियों को गुमराह किया जाता है। अमुक प्रमुख व्यक्ति व अमुक-अमुक सदस्य हमारे पक्षमें आ गये हैं, हमारा पक्ष सत्तारूढ़ होने वाला है यदि आप हमारे साथी नहीं होंगे तो बननेवाली स्थिति में कोरे-के कोरे रह जायेंगे। यही बात इन पांच सदस्यों को दूसरे पांच सदस्यों का नाम लेकर कहेंगे और उन पांचों को इन पांचों का नाम लेकर। पहले पांच यह सोच कर कि वे पांच भी उनके साथ हैं तब तो इनका बहुमत है और हमें भी इनके साथ हो जाना चाहिये। यही बात दूसरे पांच सोच लेते हैं। तात्पर्य यह होता है असत्य बहुमत का प्रचार कर लोग सच्चा बहुमत बनाने का प्रयत्न करते हैं। कभी-कभी ऐसे अवैध प्रयत्न सफल भी होते देखे जाते हैं पर यह बिना नींव का प्रासाद आगे चलकर एकाएक ढह पड़ता है। राजनीति में और भी नाना असत्य हैं।

जीवन-संगीत

[श्री कीर्तिनारायण मिश्र]

अम्बर है विस्तार तुम्हारा, किन्तु नीड़ है जीवन, पंछी!

भटक चुके तुम नील गगन में
ढूढ़ चुके आश्रय कण-कण में,
पर बिछुड़ा वह विटप, तुम्हारी बाट जोहता प्रतिक्षण, पंछी!
अम्बर है विस्तार तुम्हारा, किन्तु नीड़ है जीवन, पंछी!

जिसकी सुधि है आज न तुमको,
जिस पर है विश्वास न तुमको;
देने वही सहारा तुमको आज बना आकुल मन, पंछी!
अम्बर है विस्तार तुम्हारा किन्तु नीड़ है जीवन, पंछी!

माना, क्षिप्र तुम्हारी गति है,
कौन इसे कहता अवनति है;
पर, दो क्षण विश्राम चाहिये किसे नहीं रे उन्मन, पंछी!
अम्बर है विस्तार तुम्हारा किन्तु नीड़ है जीवन, पंछी!

आज यहाँ, कल वहाँ भटकना,
नित मिलना, हर रोज बिछुड़ना,
विभ्रम के इस जरा-जाल में मिला किसे जीवन-धन पंछी?
अम्बर है विस्तार तुम्हारा किन्तु नीड़ है जीवन, पंछी!

असत्य के स्थूल आचरण से बहुत सारे आदर्श राजनैतिक बच भी जाते हैं पर राजनीति में रहकर असत्य से पूर्णतः बच जाना वे स्वयं ही कठिन बताते हैं। बहुत सारे आदर्श पर चलनेवाले राजनैतिक हैं जो अणुव्रत आन्दोलन में सक्रिय रस लेते हैं। उनका जीवन भी ऐसा मजा हुआ है कि अणुव्रतों का पालन उनके लिये कुछ भी कठिन नहीं लगता। अणुव्रती बनने की बात चलने पर उनमें से बहुतों ने कहा—अणुव्रती बनने में हमें कोई आपत्ति नहीं है केवल सत्य अणुव्रत का हम यथार्थ पालन नहीं कर सकते क्योंकि हम राजनैतिक क्षेत्रके प्राणी हैं और उन्होंने बताया कि आजके वातावरण में, राजनीति के भांजगड़ों में कोई भी व्यक्ति पूर्ण सत्य नहीं पर्याप्त सत्य का भी पालन कर सके—यह कठिन है।

उक्त विवरण से राजनैतिक क्षेत्रमें सत्य किस मुसीबत में फंसा है यह स्पष्ट हो जाता है। अणुव्रती अनुचित बातको क्षम्य मानकर उसका अनुकरण न करे। एक साधक यह कभी नहीं देखता इस रास्ते में मेरे कितने साथी हैं वह केवल यही देखेगा कि मेरा रास्ता सही है न? साधकों को दृढ़ संकल्प कर लेना चाहिये कि हम निर्वाचन में सफल हों या न हों या किसी दल के रहकर व जुड़कर लाभ उठा सकें, या न उठा सकें, जीवन के उन तुच्छ प्रलोभनों के लिये

हम कभी भी असत्य के उपासक होकर नहीं चलेंगे।

शब्द की रक्षा और सत्य की हत्या

सत्य का सम्बन्ध शब्दों से है या भावना से यह एक गम्भीर विषय है। इसमें बड़े-बड़े साधक खला जाते हैं। अपनी सत्यप्रियता को बचाने के लिये शब्दों का आश्रय लेते हैं। मेरे शब्द ये थे यह उनका नारा-सा बन जाता है। किन्तु तत्त्व की बात यह है सत्य का सम्बन्ध शब्दों से अधिक भावना से है। कहा कुछ और किया कुछ, बचने के लिये अपने ही शब्दों को तोड़-मोड़ कर उसका दूसरा अर्थ लगाया जाता है। कभी-कभी इस शब्दकी मारामारी में सामनेवाले व्यक्ति को फांसा भी जा सकता है। पर अपनी आत्मा से सामनेवाले व्यक्ति की आत्मा से वह असत्य छिप नहीं सकता। कभी-कभी लोग जानबूझ कर द्वयर्थक भाषा बोल देते हैं फिर जरूरत पड़ने पर अपना इच्छित अर्थ जनता को समझाते हैं; यह सब असत्य है, वंचना है।

नियमों के पालन में भी शब्द-प्रधान चिन्तन करते रहते हैं ऐसे लोग व्रतकी आत्मा का हनन करते हैं और कलेवर को उठाये फिरते हैं। व्रत भावना प्रधान होता है। भावना से ही उसका पालन होना चाहिये। उसके अभाव में बहुधा व्यक्ति नियम भंग और असत्य आचरण दो पाप कमा लेता है।

व्यापार और सत्य

व्यवसायिक जगत में यह एक सर्वमान्य सी भाषा बन गई है कि व्यापार में सत्य पर डटे रहने से काम नहीं चलता। सत्य का आग्रह रखनेवाले अपने व्यवसाय को नहीं चला सकते। यही कारण है व्यावसायिक जगत में असत्य इतना सहज हो गया है कि लोगों के अनुभव में भी नहीं आता कि हमारे जीवन में असत्य नाम की कोई बुराई है। इसी कुसंस्कार के कारण भारतवासियों ने विरासत में मिली सच्चरित्रता के गौरव का बहुत बड़ा हिस्सा खो दिया है। सभी कहते हैं—क्या करें ऐसी ही स्थिति है, पर सोचना यह है स्थिति मनुष्य का सर्जन करती है या मनुष्य स्थिति का स्रष्टा है। प्रथम तो यह विश्वास ही मिथ्या है कि असत्य का सहारा लिये बिना व्यवसायिक उन्नति नहीं हो सकती। व्यवसायिक सफलता की दृष्टि से भी सत्य ही श्रेयस्कर है। असत्य पर चलनेवाला व्यवसाय आरम्भ में कुछ अधिक चलता है पर धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है। सत्य पर चलनेवाला व्यवसाय आरम्भ में सूक्ष्म और क्रमशः विस्तृत होता जाता है। यह कहावत असत्य नहीं है 'Honesty pays in long run' अर्थात् ईमानदारी लम्बी दौड़में फल देती है।

इस विषय में विदेशी लोग भारतवर्ष के लिये उदाहरण बन सकते हैं। उनके व्यवसाय में भारतवासियों की अपेक्षा अबतक कहीं अधिक सत्य व प्रामाणिकता देखे जाते हैं और वे एक व्यवसायिक जगत की उन्नति के शिखर पर भी है। सत्य में निष्ठा बनाकर चलनेवाले भारतवासी उनसे बहुत पिछड़े हुये हैं इसलिये इस कथन की कोई यथार्थता नहीं है कि—असत्य से व्यापार अधिक फलता-फूलता है। बहुत सारे अणुव्रतियों के जीवन संस्मरण सामने आये हैं जिनमें वे बताते हैं कि अणुव्रती होनेके बाद उनके व्यवसाय में चार चांद लग गये। सारे बाजार में यह विश्वास हो गया कि यहाँ असत्य व्यवहार नहीं होता। इसलिये ग्राहक सबसे पहले उनकी ही दुकान पर पहुंचने लगे। अतः यह निर्मूल धारणा है कि सत्य का आग्रह व्यापार में बाधक है। 'सत्यमेव जयते' या 'सच्चमेव भयवं' सत्य से सफलता मिलती है यह एक गौण पक्ष है। साधक सत्यको सफलता का धर्म मानकर नहीं परन्तु आत्मा का धर्म मानकर अपनाता है। 'सत्यमेव जयते' अर्थात् सत्य की ही विजय होती है, केवल इसीलिये साधक सत्य की उपासना न करे क्योंकि यह निष्ठा किसी भी समय ढह सकती है। ऐसे प्रसंग हर एक मनुष्य के जीवन में आते रहते हैं, देखो सत्य का आग्रह रखने से मुझे इस प्रकार हानि उठानी पड़ी या इस प्रकार हार खानी पड़ी। विजय में निष्ठा रखकर सत्य की उपासना करनेवाला व्यक्ति ऐसी स्थिति में एकाएक सत्य छोड़ देगा वह इसकी प्रतीक्षा नहीं करेगा कि सत्य एक लम्बी अवधि के बाद ही फल दिया करता है। इसके बदले साधक की निष्ठा यदि यहां केन्द्रित होती है 'सच्चमेव भयवं' अर्थात् सत्य ही भगवान है या 'सच्चं लोगंम्मि सारभूयं' सत्य ही लोक में सारभूत है तो वह जीवन के नाना उतार चढ़ाओं में भी कभी स्खलित नहीं होती।

—क्रमशः

एक शर्त

[श्री शतानन्द सक्सैना "सन्तोषी"]

ज्ञान बोला गर्व से इन्सान में भगवान है,
भक्ति बोली—यों नहीं, भगवान में इन्सान है।
कर्म बोला—हो सही दोनों, मगर है शर्त ये
वक्ष में बैठा अगर इन्सान के इन्सान है॥

बापू की दीक्षा

[श्री कैलाश 'कल्पित']

गांधीजी जितने बड़े राजनीतिक थे उतने ही बड़े संत और विचारक थे। उनकी दृढ़ प्रवृत्ति, अडिग आस्था और अकंपित निष्ठा ने उन्हें सफल विद्रोही के रूप में संसार के मंच पर खड़ा कर दिया। गम्भीर चिन्तन और संघर्षशील जीवन ने उनको वे अनुभूतियाँ प्रदान की कि आज संसार की मुख्य दार्शनिक धाराओं में गांधीवाद ने अपना एक अलग स्थान बना लिया।

आज गांधी साहित्य के अन्तर्गत अनेकानेक ग्रन्थ बाजार में उपलब्ध हैं और जिनका मूल्य ~) प्रति पुस्तक से लेकर ११०) रु० प्रति पुस्तक तक है। ये ग्रन्थ विभिन्न व्यक्तियों के सामर्थ्य और निष्ठा अनुसार क्रय किए जाते हैं किन्तु इनको आद्योपान्त पढ़नेवाले विरले ही होते हैं। कितने ही ऐसे परिवार मिलेंगे जिन्होंने अपनी सम्पन्नता के बूते पर सम्पूर्ण गांधी साहित्य अपने पुस्तकालय की शोभार्थ खरीद लिया है किन्तु शायद ही कभी उनके बताए हुए मार्ग पर चलने का रंचमात्र भी प्रयास किया हो। प्रायः यह देखने में आता है कि लोग किसी विशेष मनोवेग में आकर मोटे-मोटे ग्रन्थों को ले तो लेते हैं फिर उसी की मोटाई से डरकर एकबार भी उसे खोलकर नहीं पढ़ते।

विषय विशेष को तर्क-संगत और विस्तृत रूप से जानने के लिए यह आवश्यक होता है कि उसे विस्तार और धैर्य से पढ़ा जाय किन्तु साधारण रूप से जानने के लिए कुछ मोटी-मोटी बातें ही पर्याप्त सहायक होती हैं।

हमारा नवयुवक वर्ग, विशेष रूप से आज के युग में गम्भीर विषयोंसे बहुत जल्दी बिचक जाता है और वह स्थायी तत्त्व की बातों से विलग हो पिछली सामयिक बातों में ही इति श्री समझता है। आज ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो थोड़े में ही वस्तु विशेष के विषय में बहुत कुछ बता दे।

बापू ने समय-समय पर लोगों की जिज्ञासा शान्त करने के लिए 'यंग इण्डिया' और 'हरिजन' नामक पत्रों में अपने अमूल्य वचनों से विभिन्न समस्याओं और प्रश्नों पर प्रकाश डाला है और बड़े-बड़े योग्य संपादकों ने उसका

सम्पादन कर ग्रन्थ पर ग्रन्थ बना डाले हैं। यहाँ पर मैं उन्हीं ग्रन्थों का कुछ सारांश प्रस्तुत करता हूँ और यह जिज्ञासा रखता हूँ कि हमारा नवयुवक समाज क्रियात्मक रूप से इस ओर

अग्रसर हो और राष्ट्रपिता की अनुभूतियों से लाभान्वित हो, गाँधी-दर्शन-सार को समझे।

संसार, राजनीति, आचार-विचार, धर्म, संस्कृति, समाज और कर्त्तव्य को समझने के लिए सत्याग्रह व तपस्या, अहिंसा, भारतीयता व्यवस्था, स्त्री, धर्म-ऐक्य, सामाजिक व्याधियाँ, हिन्दू धर्म, ब्रह्मचर्य व संयम आदि का प्राथमिक ज्ञान आवश्यक है। अतः निम्न पंक्तियों में बापूके ही शब्दोंमें विषय-सार प्रस्तुत है।

सत्याग्रह व तपस्या

जो क्रिया व्यक्तिगत मोक्ष या सिद्ध के लिये की जाती है उसका महत्त्व सामाजिक सुख-समृद्धि के लिये की जानेवाली क्रिया के सम्मुख अपना कोई भी मूल्य नहीं रखती।

जिन चीजों की सत्याग्रहीको आवश्यकता है वह अब सोचें।......उसमें दिन-रात एक ही जगह पर खड़े रहनेकी शक्ति होनी चाहिये, ठंड, धूप, बारिश सहन करते हुये भी वह बीमार न हो। जहाँ आग लगी हो वहाँ दौड़ जाने की शक्ति उसमें होनी चाहिये। निर्जन जंगल में, श्मशान में निडर अकेले घूमने की शक्ति होनी चाहिये। चाहे कितनी मार पड़े, घायल हो जाय, भूखों मरे, तब भी वह चूं-चाँ न करे, न घबराए और न अपना स्थान छोड़े।

इस फेहरिस्त को जितनी विस्तृत करना चाहें उतनी कर सकते हैं। सारांश सिर्फ इतना ही है कि जहाँ दुःख हो वहाँ मदद करने, दौड़ जाने और चाहे हमें कितना ही दुःख कोई दे तब भी हँसते-हँसते उसे सहन करने की शक्ति होनी चाहिये।

यह तपस्या का ही प्रताप है कि पश्चिमी वैज्ञानिकों ने इतने आविष्कार कर डाले। तपस्या के सिर्फ यह अर्थ नहीं है कि वन में जाकर बैठ जाय, और अपने चारों ओर आग जला लेवे। यह तपस्या तो मूर्खता की हद होगी। हमें इसलिये तमीज करनी चाहिये।

अहिंसा

...मनुष्य का जीवन अन्य जीव से श्रेष्ठ

है मछली या मांस खानेवाले को ये चीजें खाने देने में जो हिंसा है, उसे मैं हिंसा नहीं मानता।

...अहिंसा की पुकार एक ईश्वर का ही भय रखे और दूसरे सब भयों को जीत ले।... दो आदमियों को लड़ता देखकर जो मनुष्य

कांपने लगता है या भाग जाता है वह अहिंसक नहीं, कायर है। अहिंसक ऐसे झगड़ों के रोकने में अपने को कुर्बान कर देगा।...अहिंसक की बहादुरी हिंसक की बहादुरी से बहुत आगे है। अहिंसा अजेय है।

भारतीयता

मेरा दावा है गुजराती होकर भी मैंने अपने आपको दूसरे प्रान्तों से भिन्न कभी नहीं माना। मैंने अपने आपको हमेशा हिन्दुस्तानी समझा है और यह ख्याल रखा है कि दूसरे भी मुझे एक हिन्दुस्तानीके रूपमें ही पहचानें। प्रान्त अलग, धर्म अलग-अलग, भाषा भी अलग-अलग यह सब सही है मगर सबका देश एक है, सबके सुख-दुःख एक हैं, सब एक ही राजसत्ता के नीचे हैं और परदेश जाओ तो परदेशी भी जात-पांत, धर्म, प्रांत का भेद नहीं जानते हैं, न उसे कुछ प्रधानता देते हैं। उनके सामने हम सब हिन्दुस्तानी हैं।...सबके लिये एक कानून है। अनुभव से मैंने इस किस्म का भेद कभी माना ही नहीं है और न किसी को मानना ही चाहिये।

व्यवस्था

एक अँग्रेज बहिन ने यह लिखा है जो बिल्कुल सच है—"परचक्र अथवा बाहरी आक्रमण के आगे अहिंसा का प्रयोग करना, यह हमेशा के लिए और आज की परिस्थितियों में तो खास जरूरी है, और यह भी संभव है कि इसका अधिक अच्छा परिणाम सिद्ध हो।...हमारे यहां मुख्य तीन प्रकार के हुल्लड़ों की कल्पना की जा सकती है—साम्प्रदायिक दंगे, जहाँ औद्योगिक केन्द्र हों वहाँ मजदूरों के झगड़े और चोर-डाकुओं की लूटपाट या डाके से उपद्रव।......सामाजिक अन्याय तथा आर्थिक शोषण से पैदा हुई गरीबी और बेकारी, जहाँ तक ये कारण दूर नहीं हो जाते, वहाँतक इन हुल्लड़ों को चाहे कितनी ;जोर-जबरदस्ती से दबा दिया जाय, तो भी ये बराबर होते रहेंगे। मूल कारण तो रचनात्मक प्रवृत्ति से ही दूर किये जा सकेंगे।...हम ऐसी कल्पना कर सकते हैं कि समाज में अधिकांश लोगों के पास इतनी सम्पत्ति न हो कि उसे छीन लेने के लिए दूसरों की नियत बिगड़ जाय। इसी प्रकार हरएक के पास इतनी संपत्ति हो कि सब संतोष से रह सकें, जिससे कि दूसरों की संपत्ति छीनने का उनका मन ही न हो।"

अहिंसक शासन में एक मर्यादित हद तक पुलिस बल के लिए स्थान होगा। मान्यता मेरी अपूर्ण अहिंसा का चिन्ह है पुलिस के बिना मैं चला सकूँगा, ऐसा कहने की मेरी हिम्मत नहीं, जैसा कि यह कहने की हिम्मत है कि बिना फौज के मैं चला लूँगा। मैं जरूर ऐसी स्थिति की कल्पना करता हूं जब पुलिस की भी जरूरत नहीं पड़ेगी किन्तु इसका सच्चा पता तो अनुभव से ही लग सकता है।

स्त्री

स्त्री पुरुष की गुलाम नहीं है। वह अर्द्धाङ्गिनी है, सहधर्मिणी है। उसको मित्र समझना चाहिये।

स्त्री को अबला कहना उसका अपमान करना है। उसे अबला कहकर पुरुष उसके साथ अन्याय करता है। अगर ताकत से मतलब पाशवी ताकत से है तो निःसन्देह पुरुष की अपेक्षा स्त्री में कम पशुता है। किन्तु इसका तात्पर्य यदि नैतिक शक्ति से है तो अवश्य ही पुरुष की अपेक्षा स्त्री कहीं शक्तिशालिनी है। क्या उसका आत्म-त्याग पुरुषसे बढ़कर नहीं है? क्या उसमें सहन-शक्ति की कमी है? साहस का अभाव है? बिना स्त्री के पुरुष नहीं हो सकता। यदि अहिंसा हमारे जीवन का ध्यान मंत्र है तो कहना होगा कि देश का भविष्य स्त्रियों के हाथ में है।

स्त्री अहिंसा की मूर्ति और शक्ति की प्रतीक है। अहिंसा का अर्थ है अनन्त प्रेम। कष्ट सहने की अनन्त शक्ति पुरुष की माता और स्त्री से बढ़कर इस शक्ति का परिचय अधिक से अधिक मात्रा में और किससे मिलता है।...युद्ध में फँसी हुई दुनियां आज शान्ति का अमृत पान करने के लिए तड़प रही है। इस शान्ति कला को सिखाने का काम भगवान ने स्त्री को ही दिया है।

स्त्री किसी काम में जी-जान से लग जाती है तो वह पहाड़ को भी हिला देती है।

धर्म ऐक्य

पशुरूप में तो मनुष्य हिंसक ही है, आत्मा के रूप में ही वह अहिंसक है। जब मनुष्य को आत्मा का भान होता है तब वह हिंसक रह ही नहीं सकता। या तो वह अहिंसा सीख जायगा या नाश को प्राप्त होगा। इसलिए पैगम्बरों ने और अवतारों ने सत्य ऐक्य, भ्रातृ भाव, संयम, न्याय इत्यादि का उपदेश दिया है।

धर्म की नाप तो प्रेम से, दया से और सत्य से होती है।

धर्म का बदले के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, उसका सम्बन्ध तो परमेश्वर के साथ है।

सत्य का पालन ही धर्म है। सत्य ही राम है, नारायण है, ईश्वर है, खुदा है, अल्ला है और 'गॉड' भी है।

सामाजिक व्याधियाँ

जब गुलामी मिटकर आजादी आ जाती है, तब समाज की सारी व्याधियाँ ऊपर आ जाती हैं। इससे भड़कने का मैं कोई कारण नहीं पाता। अगर ऐसे मौके पर हमारा मन स्थिर रहे तो मार्ग साफ हो जाता है। हर हालत में आर्थिक सवाल हल होना ही है। आज आर्थिक असमानता है। समाजवाद की जड़ में आर्थिक समानता है। थोड़ों को करोड़ और बाकी लोगों को सूखी रोटी भी नहीं,

ऐसी भयानक असमानता में रामराज्य का दर्शन करने की आशा कभी न रखी जाय।

...मैंने दक्षिणी अफरीका में ही समाजवाद को स्वीकार किया था। मेरा समाजवादियों और दूसरों से यही विरोध रहा है कि सब सुधारों के लिए सत्य और अहिंसा ही सर्वोपरि साधन है।

जमींदारी, पूंजी और राजसत्ता की ताकत तब तक ही कायम रह सकती है, जबतक आम लोगों में अपनी ताकत की समझ नहीं होती।

अस्पृश्यता का निवारण असल में तो आर्थिक प्रश्न से भी अधिक महत्व का है हम अपने आपही अपनी एक बड़ी शक्ति अपने से अलग किए हैं। यह भी एक सामाजिक व्याधि है, इसका हल होना ही चाहिए और इसका हल तभी समझा जा सकता है जब अस्पृश्य समझे जानेवाले भाई-बहनों के प्रति मैं वही व्यवहार रखूं जो अपने भाई बहनों के प्रति रखता हूं।

जिस प्रकार एक रत्ती संखिया से लोटाभर दूध बिगड़ जाता है उसी प्रकार अस्पृश्यता से हिन्दू धर्म चौपट हो रहा है।

हिन्दू धर्म

निःसन्देह दयाभाव अथवा प्रेम भाव को हिन्दूधर्म ने सबसे ऊँचा धर्म बताया है।... ...हिन्दूधर्म तो निरंतर विकास करता आया हैं। कुरान या बायबिल की तरह उसका कोई एक निश्चित धर्म ग्रंथ नहीं है। फिर उसके धर्म ग्रंथों में विकास और वृद्धि भी होती रही है ......मैंने संसार के कई धर्मों का श्रद्धापूर्वक अध्ययन और मनन किया है: और खासकर गीता प्रतिपादित हिन्दूधर्म के पालन का अपनी शक्तिभर पूरा यत्न भी किया है। इसी श्रद्धा और अनुभव के आधार पर बगैर किसी प्रकार की खींचा-तानी किए हिन्दू-धर्म का एक व्यापक और विशाल स्वरूप जनता के सामने रखने का मैंने यत्न किया है— वह रूप नहीं जो असंख्य धर्म ग्रन्थों में दबा पड़ा है। मैंने तो हिन्दूधर्म का वह सजीव स्वरूप देश के सम्मुख रक्खा है जो अपने दुःखी बालक को सान्त्वना देने वाली माता के समान है। और मेरा यह दावा है कि इसमें मैंने कोई नई बात नहीं की, अपने पूर्व पुरुषों के चरण-चिन्हों का ही मैंने अनुगमन किया है। ......उन्होंने बताया है कि बलिदान प्राणियों का नहीं हमारे अधम विकारों का हो और वह क्रुद्ध देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए हो।

ब्रह्मचर्य व संयम

मैंने १९०६ में ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था। ......जिस दिन से मैंने ब्रह्मचर्य शुरू किया, उसी दिन से हमारी स्वतन्त्रता का आरम्भ हुआ है। मेरी पत्नी मेरे स्वामित्व के अधिकार से मुक्त हो गई, और मैं अपनी उस वासना की दासता से मुक्त हो गया जिसकी पूर्ति उसे करनी पड़ती थी। जिस भावना में मैं अपनी पत्नी के प्रति अनुरक्त था उस भावना में और किसी स्त्री के प्रति मेरा आकर्षण नहीं रहा है। पति के रूप में उसके प्रति मैं बहुत वफादार था, और अपनी माता के सामने किसी अन्य स्त्री का दास बनने की मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसके प्रति भी मैं साहसी वफ़ादार था। लेकिन जिस तरह मेरे अन्दर ब्रह्मचर्य का उदय हुआ, उसके कारण अदम्य रूप से स्त्रियों को मातृभाव से देखने लगा। स्त्रियाँ मेरे लिए इतनी पवित्र हो गई कि मैं उनके प्रति कामुकतापूर्ण प्रेम का ख्याल ही नहीं कर सकता। ......लेकिन मेरा यह विश्वास कभी नहीं रहा कि ब्रह्मचर्य का उपयुक्त रूप में पालन करने के लिये मुझे स्त्रियों के किसी तरह के संसर्ग से बिल्कुल बचना चाहिए। जो संयम अपने विपरीत वर्ग के संसर्ग से बचने को कहे फिर वह कितना ही निर्दोष क्यों न हो वह बलात् संयम है जिसका कोई महत्त्व नहीं। ...गुप्त या खुले स्वतन्त्र प्रेम में मेरा विश्वास नहीं है। उन्मुक्त प्रेम को मैं कुत्तों का प्रेम समझता हूं और गुप्त प्रेम में तो इसके अलावा, कायरता भी है।

कर्मयोगी को वीर्य संग्रह करना ही होगा। मनुष्य की वह बड़ी से बड़ी पूँजी है। जो उसका संग्रह कर सके वह नित्य नया बल पाता रहेगा।...जो आँख से या स्पर्श से भोग करता है, वह कभी वीर्य संग्रह नहीं कर पाएगा। और जिसको छप्पन तरह के भोजन की आदत है वह भी न कर सकेगा। बाढ़ के सामने चलते हुए न थकने का संकल्प जैसे व्यर्थ जाता है, वैसे ही नियमों का अनादर करके वीर्य-संग्रह करने की आशा व्यर्थ जायगी, और ऐसा प्रयत्न करनेवाला आखिर में ब्रह्मचर्य का दावा न करते हुए मर्यादित विषय-तृप्ति करनेवालों से निर्बल सिद्ध होगा।

महामन्त्र

सच बोलो, अहिंसक बनो, जीने के लिए खाओ, खाने के लिए मत जियो, जरूरत की चीजें लो, गैर जरूरी चीजों को बाँट दो, तन-मन-धन से किसी की चोरी मत करो, किसी को चोर बनने के लिये मत उकसाओ, भले बनो, ब्रह्मचारी बनो, व्यायाम करके बलवान बनो, श्रमी बनो, श्रम की पूजा करो, न किसी से डरो और न किसी को डराओ, सम्बन्धियों का आदर करो, सबको समान समझो, स्वदेशी का पालन करो, जीवन में ऊँच-नीच के भाव को या छूत-अछूत को आश्रय मत दो, व्रत का का पालन करो। इन गुणों को साधो, इनसे गरीबी मिटेगी, सम्पन्नता बढ़ेगी, आदमी आदमी बनेगा और यह दुनिया रहने लायक बनेगी। इसे याद रक्खो यह महामन्त्र है।

—०—

[मुनिश्री सुखलालजी]

अब सवेरा हो रहा है
पूर्व में जो लाल रेखा
सूर्य की वह सुघर लेखा
मृदुल कलरव से विहगगण
नींद सबकी खो रहा है ॥१॥

जी चुका अन्याय-तामस
आयु के अन्तिम चरण तक
अब उसे मरना पड़ेगा
अश्रु से मुख धो रहा है ॥२॥

आज तक कुछ तुच्छ दीये
टिमटिमाते थे मसीहे
चिर प्रतीक्षा में उसीकी
उदय उसका हो रहा है ॥३॥

नीति का अविकार सूरज
आज भारत में खड़ा है
जग उसी की सद्रुची से
पाप अपने खो रहा है ॥४॥

—०—

आदमी है क्या नहीं ?

[श्री रोहिणीकान्त देव]

मैं न किस्मत के भरोसे जी रहा हूँ !
स्वयं किस्मत को बनाना जानता हूँ !
किरण की खातिर भला जो बैठ जाये
तिमिर की ही गोद में निश्चेष्ट होकर,
जिन्दगी भी बोझ - सी लगती तभी तक
मनुज जब तक काटता दिन, शौर्य खोकर:
बह रही निर्बन्ध आँधी, बढ़ रहा हूं,
धैर्य के दीपक जलाना जानता हूँ !
सांस चलती है, न रुकना है हमें भी,
हारकर भी जीत के ही गीत गाना—
चाहिये, हर जिन्दगी की राह पर के
पथिक को, यदि चाहता वह पार जाना;
धरा पर ही जिन्दगी मैं बो रहा हूं,
भूख से आकुल न नभ को छानता हूं !
आदमी सब कुछ कि सूरज, चाँद भी है
आदमी है क्या नहीं, भगवान भी है,
स्वयं गढ़कर नियम, उलझा है उसी में
अश्रु अबला के प्रलय के गान भी है;
भूलकर वह शक्ति रोता है अहर्निश,
स्वयम् को मैं जानता, पहचानता हूं !

———)०(———

गीत

श्री जगदीश 'सलिल'

●

चाँद ! तुम जमीन पर उतर निखर चलो !
जिन्दगी सितार और राग भैरवी
रात का महल जला कि आग भैरवी
यह पुनीत धुन सुनो, 'मगर न दूर से
आ जरा समीप, ज्योति बन बिखर चलो !
क्या कभी निदाघ की लपट तुम्हें मिली
कब पर सुहाग भरी लट तुम्हें मिली
रूप-राशि की प्रलय मिली न यदि तुम्हें
तुम सृजन लिए जरा प्रलय-डगर चलो !
भूमि का पथिक तुम्हें निहारता, सुनो
यह थका श्रमिक तुम्हें पुकारता, सुनो
प्राण-पथ इधर, उधर गगन गवाक्ष है
व्योम के पथिक ! उधर नहीं, इधर चलो !

नींव के पत्थर

श्री रामपाल उपाध्याय

ल्लो की तरह आज भी न जाने कितने व्यक्ति पारिवारिक व सामाजिक संघर्षों से जूझते, अभावों की आंधी के थपेड़े खाते और अधिकारियों के कोप भाजन बनते हुए भी चुपचाप मानवता और राष्ट्र-मंदिर में नींव के पत्थर की तरह अपनी आहुति दे रहे हैं! काश! हम उनका मूल्यांकन कर पाते —सम्पादक]

"सुनिये! लल्लो लाइन्समेन इसी क्वार्टर में रहता है?"

"जी हाँ!...कहिए क्या काम है? क्या उनकी ड्यूटी कहीं बाहर लगी है?"

"नहीं तो!"

"वे तो इस समय बड़े स्टेशन के प्लेट-फार्म पर रातवाली लास्ट ड्यूटी पर गये हैं। अभी आने ही वाले होंगे"—कहते-कहते सुमित्रा भयभीत-सी प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा करने लगी। पर उसे कुछ भी उत्तर नहीं मिला और उसका मस्तिष्क जिज्ञासु बन सब कुछ जान लेना चाहता था।

वह सहजभाव से बोली—"क्या आप मुझे नहीं बता सकते हैं कि उनसे क्या काम है?"

"जी नहीं; कुछ सरकारी काम है; जो उसीसे सरोकार रखता है"—कहते-कहते कान्स्टेबल वहीं पासवाली फर्शपर कागज-पन्ने लिए बैठ गया और इधर-उधर आती-जाती रमणियों की तरफ आँख बचा बचाकर देखने लगा।

इधर सुमित्रा भी बिना कुछ कहे अन्दर चली गई, क्योंकि चूल्हा जो जल रहा था उसका अन्दर। आज अच्छे कोयले समाप्त हो जाने से अत्यधिक धुँआ उठने से उसकी आँखों से पानी गिर रहा था; नाक व कपोल सुर्ख हो गये थे। पर वह जल्दी-जल्दी भोजन बनाने में जुटी थी, क्योंकि उसके पति जो आनेवाले हैं। लम्बे आठ-नौ घण्टे की ड्यूटी देकर तथा उसकी बड़ी लड़की भी पाठशाला से आ जायेगी। उसका छोटा बच्चा पानीसे बाहर खेल रहा था। वह कुछ सोच ही रही थी कि उसके पति बाहर से बच्चे को गोदमें उठाए घरमें आए। उनके सारे कपड़े काले हो रहे थे। हाथ, पैर, मुँह आदि भी काले-सागर से स्नान किये हुए थे, बड़ी-बड़ी मूछों पर भी कोयले के कण लगे थे। उसने हँसते हुए पूछा—"बिटिया अभी तक स्कूल से नहीं आई?"

"नहीं तो! क्या आप बाहर बैठे कान्स्टेबल से मिल चुके हैं? क्या बात है? वह आज क्यों आया है?"

"मैं सब जानता हूं"—कहता हुआ लल्लो बाहर जाकर ऊँघते कान्स्टेबल से बातचीत करने लगा। तब उसे विदित हुआ कि उसके नामपर रेलवे आफिस से सम्मन आया है कि वह ३ दिनमें उस क्वार्टर को खाली कर कहीं अन्यत्र चला जाय अन्यथा उसपर सख्त कार्र-वाई की जायगी। पर लल्लो तो इस शङ्कासे पहले ही शंकित था। खैर, उसने सम्मन पर हस्ताक्षर कर स्वीकार कर अन्दर आकर उसी मस्ती से नहाने का उपक्रम करने लगा। जब उसकी पत्नीने पूछा तो उसने संक्षेप में कोई इधर-उधर की बात कह टाल दिया और अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गया।

× × ×

"क्या तुम्हीं लल्लो लाइन्समेन हो?"

"जी हाँ!"

"तो तुम्हारी इतनी मजाल कि तुम रेलवे आदेश को भी नहीं मानते? आखिर तुम्हारे बापका तो राज्य नहीं है!" कहते-कहते रेलवे न्यायाधीश डी० एस० की तरफ देखने लगे।

"जी नहीं! न मेरे बापका राज्य है और न मैंने आदेशों का उल्लंघन ही किया"—साहसपूर्वक लल्लोने उत्तर दिया। "तो फिर अपना क्वार्टर खाली क्यों नहीं करते?...आज ही शामतक खाली हो जाना चाहिए" डी० एस० ने डाँटते हुए कहा।

अब लल्लोका क्रोध ग्लानि में बदल गया। वह दीनता से अनुनय करने लगा कि "सरकार आसपास दो माइल में मुझे कहीं भी रहने का स्थान नहीं मिल सकता। मेरे छोटे-छोटे बाल-बच्चे हैं। उनको मैं कहाँ रक्खूं? यदि मैं अकेला ही होता तो फुटपाथ पर ही समय निकाल लेता। हुजूर! हुजू..."

'अधिक बकबक मत करो। ऑर्डर का पालन करो!.......चपरासी इसे निकाल बाहर करो...कम्बख्त, दिमाग चाटता है!" साहब ने आदेश दिया।

लल्लोको बाहर निकाल दिया गया। उसका हृदय फूल रहा था, मस्तिष्क चक्कर खा रहा था। स्वांस की गति अधिक तीव्र थी,

आँखों से क्रोध एवं ग्लानि का भाव झलक रहा था। सभी को देख रहा था, पर कुछ निश्चित भी नहीं कर पा रहा था। सोचने लगा कि क्या करूँ? अब इन आफिसरों को कैसे समझाऊँ कि मेरा वेतन कुल ६६ रु० ही है। कहाँ से मकान लूँगा? कैसे जीवन चलाऊँगा? इन नन्हें-नन्हें अबोध बालकों को क्या कहकर पैसोंके लिए इनकार करूँगा? घर भी मेरा दो सौ माइल दूर है।" अचानक उसको ध्यान आया कि क्यों न छुट्टी लेकर बाल-बच्चों को अपने घरपर भाईके पास छोड़ आऊँ। छुट्टी भी ६० दिन की बाकी है ही। यही सोच उसने प्रार्थनापत्र दिया पर कार्याधिक्य व आदमियों की कमी होने से उसे अवकाश नहीं मिल सका। वह पथरायी दृष्टि से अपने क्वार्टर गया।

× × ×

आज लल्लो ज्वर से पीड़ित है। उसकी पत्नी व बाल-बच्चे सभी चिन्तित हैं। फिर भी वह ड्यूटी पर चला आया। उसे लाख समझाया, पर वह माना नहीं। काम करते-करते वह थककर एक वेगन के पास जा बैठा—कुछ सोचता रहा, कुछ विचारता रहा, इतने में उसके साथी कल्लो ने पूछा—

"क्या सोच रहे हो यार! क्या आज बीवीसे झगड़ा हो गया है??"

"अरे भाई नहीं। बेचारी बीवीसे झगड़ा क्योंकर होता? वह तो आजतक हर दुख-सुखमें साथ देती आ रही है।"

"तो आखिर आज उदास क्यों हो?"

"भाई बात यह है कि साहब अब क्वार्टर का झगड़ा डालकर मुझे अपने बाल-बच्चों से अलग करना चाहते हैं मैंने लाख हाथ जोड़े, सर पटका, पर उनको कुछ भी नहीं लगी। उनके लिए तो सारा हरा ही हरा है।"

कल्लो और पास आकर पूछने लगा—

"क्या अब यहाँ से छोड़ देना पड़ेगा।"

"हाँ कल्लो! क्या करूँ? पैसा एक भी नहीं बचता है। लाख पेट काटो, पर दोनों जून-रोटी तो चाहिए ही?...देख मुझे ज्वर आ रहा है, पर फिर भी मैं काम पर आया हूँ। न ये लोग छुट्टी देते हैं और न हम गरीबों की गरीबी का खयाल रखते हैं... सच बताऊँ—भैया"...कहते-कहते लल्लो मूर्छित हो गया और किसी तरह उसे घर पहुँचाया गया।

× × ×

लल्लो रेलवे अस्पताल में है। उसकी पत्नी दिन-रात उसके पास ही रहती है। अब तक उसके साथी-संगी भी उसे देखने आ जाते हैं। उसके ज्वरकी गति अधिक बढ़ गई है। शायद इसीसे उसे सन्निपात हो गया है। पता नहीं वह क्या-क्या बक-झक रहा है। उसकी पत्नी आँखोंमें आँसू भरे मनमारे पासमें बैठी है। तीन चार और व्यक्ति उसके पास बैठे हैं। उसका छोटा बच्चा रो रहा है। वातावरण पूर्णतः गम्भीर बना हुआ है। प्रातः ९ बजे होंगे। डाक्टर नर्सको लेकर निरीक्षण को आये हुए हैं। ज्योंही उसका ज्वर लिया जाने लगा तो वह हड़बड़ाया और जोरसे पूछने लगा "कौन डाक्टर साहब?"

नर्स ने उत्तर दिया—हाँ! शान्त रहो। अच्छे हो जाओगे।

"अच्छा! मैं अच्छा हो जाऊँगा? नहीं डाक्टर साहब! मुझे अच्छा मत करिये। मुझे मरने दीजिए। आपको भगवान की शपथ है ना...ना...अब मैं इस संसार में नहीं रहना चाहूँगा" इतने में नर्स व अन्य व्यक्तियों ने उसे लिटा दिया, पर वह फिर जोर से उठकर कहने लगा—

"शायद आप लोग मुझे पागल समझ रहे हैं। मैं पागल नहीं हूँ।...ओह। मेरे भी सुन्दर सपने थे। इसीलिए मैंने मैट्रिक पास किया...सोचता था कि मैं बड़ा आदमी बनूंगा काम करूँगा, नाम कमाऊँगा। भारत में एक भी गरीब नहीं रहने दूंगा, पर मैं तो खुद ही असहाय बन गया। मेरे बच्चे... और तो और मुझे रहने को भी स्थान नहीं—बिटिया! वह क्वार्टर खाली कर दिया है... नहीं...नहीं...उसे खाली मत करना...आज मैं पिस्तौल से...नहीं...ऐसा नहीं करूँगा। न ही करना चाहिए मैं इन्सान हूं...।"

डाक्टर ने रोकते हुए टेम्परेचर पूछा तो विदित हुआ कि १०५° है। किसी तरह उसे शान्त कर वे चले गए। सारा वातावरण निराश हो गया। उसकी पत्नी रो रही थी... बच्चे बिलख रहे थे......उसके साथी सभी को शान्त कर रहे थे......

× × ×

आज लल्लो फिर काम पर आ गया है। लगभग २० दिन की अस्वस्थता ने उसे निर्बल बना दिया है। पर वह अब खुश है। उसके बाल-बच्चे घर भेज दिए गए हैं। उसका भाई जो आया था उसे देखने। उसने सोचा, बस अब कहीं प्लेटफार्म पर पड़ रहेंगे।...क्या फिक्र गर्मी का समय तो है...यह सब सोच ही रहा था कि उसकी दृष्टि स्टेशन पर की गई सजावट से जा टकराई। पूछने पर मालूम हुआ कि आज बड़े अफसर रेलवे मिनिस्टर के साथ दौरे पर आ रहे हैं। खैर, वह अपना कार्य करने लगा। अपनी लाल-हरी झंडियों को थामे वह इधर से उधर कार्य पर घूम रहा था। शन्टिंग हो रहा था, डिब्बे काटे व जोड़े जा रहे थे, बड़ा जंकशन इलाहाबाद जो ठहरा। एक के बाद एक गाड़ी आ-जा रही थी। समय हुआ और स्पेशल गाड़ीकी प्रतीक्षा होने लगी। अब गाड़ी दूर से सीटी बजाती आ रही थी। लल्लो पोइन्ट घुमा-घुमा कर लाइनें बदल रहा था

पर अचानक उसने देखा कि पोइन्ट कुछ खराब हो गया है और सारी शक्ति लगाने पर भी ठीक काम नहीं कर पा रहा है।

इधर सिगनल के अन्दर गाड़ी आ रही है साहब लोगों की व उधर बाम्बे एक्सप्रेस प्रतिकूल दिशा में भागी आ रही है। बड़ी गंभीर स्थिति जो हो गई थी। उस समय आस-पास में देखा तो कोई खाली आदमी नजर नहीं आया वह इधर-उधर देखने लगा। अधिक समय भी नहीं था, खतरा अधिक बढ़ता जा रहा था। दोनों गाड़ियाँ प्रतिकूल दिशाओं से एक ही पटरी पर भगी आ रही थीं, उसका श्वांस फूलने लगा, आँखों के सामने अन्धेरा छाने लगा। भला हो ही क्या सकता था? वह एकदम कूदकर लाइन के बीच में आ गया। स्पेशल ट्रेन पहले आ रही थी। ड्राइवर ने सीटी दी, ब्रेक लगाया पर लड़ोके कटनेपर ही गाड़ी रुक सकी। उधर बोम्बे एक्सप्रेस भी रुक गई, सभी लोग दौड़े। मृत आत्मा का शरीर छिन्न-भिन्न हो गया था उसे अन्दर से निकाला गया और मंत्री व अन्य अफसरों के समक्ष लाया गया। जब लाइन की व पोइन्ट की स्थिति समझी गई, तो सारा रहस्य प्रकट हो गया। एक तरफ उसकी जान थी व दूसरी तरफ हजारों व्यक्तियों की रक्षा का सवाल था। उस समय डी० एस० व न्यायाधीश भी वहीं उपस्थित थे। मिनिस्टर उसे देखते रहे, पूछते रहे, पर डी० एस० ने उसके पास आ मृत शरीर को उठा छाती से लगाकर पथरायी व अश्रुमयी दृष्टि से देखकर कहने लगे—"इसका त्याग अपूर्व है। सचमुच ऐसे महान व्यक्ति मानवता के भव्य प्रासाद की नींवके पत्थर हैं··· मैं इसे जानता हूँ मैंने इसे सताया है···और विलख-विलखकर रोने लगे अन्य साश्चर्य गम्भीर बने देख रहे थे।

—:o:—

समाधान

श्री पन्नालाल भन्साली, कलकत्ता—

प्र० —कोई ऐसा व्यक्ति जो किसी धर्ममें विश्वास नहीं करता, ईश्वर का अस्तित्व भी नहीं मानता व "ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या" के स्थान पर "जगत सत्यम् ब्रह्म मिथ्या" मानता हो, वह इस धर्म निरपेक्ष अणुव्रत आन्दोलन का सदस्य बन सकता है या नहीं?

उ० —जीवन-शुद्धि में विश्वास रखने-वाले स्त्री-पुरुष अणुव्रती हो सकेंगे। अतः आत्म-शुद्धि में विश्वास न रखनेवाले व्यक्ति का अणुव्रती बनने का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता।

प्र० —यदि कोई व्यक्ति किसी अणुव्रती के सम्पर्क में नहीं आया हो और सिर्फ अणुव्रत साहित्य पढ़कर उसकी इच्छा अणुव्रत आन्दोलन के सदस्य बनने की हो तो उसके लिए सदस्य बनने की क्या विधि है?

उ० —जिसने अणुव्रतों का पालन यथाविधि शुरू कर दिया है वह सही अर्थ में अणुव्रती तो बन ही गया है। आन्दोलन के लक्ष्य और साधना की भावना में स्पष्ट है कि "अणुव्रतों को स्वीकार करनेवाला अणुव्रती कहलायेगा।"

एक प्रश्नकर्त्ता—

प्र० —अणुव्रत आन्दोलन साम्प्र-दायिक है या सम्प्रदायातीत? अगर असाम्प्रदायिकता की भावना से परि-प्लावित है तो कब से?

उ० —अणुव्रत आन्दोलन सदा से ही असाम्प्रदायिक भूमिका पर आधारित है।

——o——

मानव तो बने रहना ही है!

[*श्री बालकृष्ण बलदुवा*]

जीवन, प्रकाश के रहते, अंधियारी से क्यों डरे?

बड़ी से बड़ी अँधियारी का कलेजा चीर देने की सामर्थ्य प्रकाश की एक लघुतम किरण में भी है।

तब,—जीवन में निराशा के लिये, अवसाद के लिये, जो अँधियारी के ही पिछलगुएँ हैं कौनसा स्थान रह गया?

इनसे अभिभूत होना कायरता है। इनके बीच चमकते रहना मानवता है।

और मानव को मानव तो बने रहना ही है। इससे कम उसका पतन है।

और पतन मानव की गति नहीं। उसकी प्रगति तो है—गिर २ कर भी उठना—ऊपर की ओर, बढ़ना—आगे की ओर, निरन्तर—सदैव।

यही मानवता के विकास का इतिहास है और रहस्य भी।

● *मूल कारण*

आये दिन होनेवाली तोड़-फोड़ व हिंसा का मूल कारण क्या है इसकी जानकारी के लिये 'साम्ययोग' में प्रकाशित आचार्यश्री विनोवा का यह दृष्टान्त कितना पद-प्रदर्शक है—

"हमने अखवार में एक मजेदार खबर पढ़ी कि बंगाल के एक अस्पताल के भीतर बीमार लोगों को समय पर दूध न मिलने के कारण उठ खड़े हुए और डाक्टर के साथ लड़ने लगे और उनके हाथ में जो बर्तन थे, वे डाक्टर पर फैंके। हम मनमें सोचने लगे कि अगर बीमार लोग चंगे लोगों के साथ लड़ेंगे तो क्या कभी उन्हें यश मिलेगा? उनको न यश की आशा होगी न उनका हिंसा पर विश्वास होगा, परन्तु गुस्सा आया तो उसे रोक नहीं सके। उसी तरह हिन्दुस्तान में जो दंगे चलते हैं, यह हिंसाका परिणाम नहीं है वल्कि संयमके अभाव का परिणाम है। कभी-कभी माता भी अपने बच्चे को वेरहमी से पीटती है, उसके मन में द्वेष तो नहीं होता है परन्तु वह अपने को रोक नहीं सकती।

इसलिये सबको मन, वाणी इन्द्रियों आदि पर संयम रखने की तालीम देनी चाहिये, जिसका आज की तालीम में अभाव पाया जाता है।"

● *मानव धर्म ?*

निराशा और अन्धकार में डूबे व संघर्षों से ऊबे हुए आज के लड़खड़ाते मानव के लिये 'शक्ति' में प्रकाशित प्रो० श्री रामचरण महेन्द्र का प्रस्तुत अवतरण क्या प्रेरणा स्रोत का काम नहीं करेगा—

"ईश्वर के पुंज असीम शक्तियों के केन्द्र मनुष्य! उठ, कायरता और गुप्त भय की गुदड़ी उखाड़ फेंक! डरपोकपन की केंचुली से मुक्त होकर साहस और पौरुष के प्रभात में जाग, निर्भयता के सूर्य को देख! यही तेरा परम निर्भय स्वरूप है। तू सावधान होकर आत्म-तत्त्व के दीपक से ब्रह्म-तत्त्व का दर्शन कर, जिसका तू प्रतिविम्ब है। भयका अस्तित्व अज्ञान में है। तेरे अन्तस्थल में आत्म-ज्योति जगमग कर रही है, फिर तेरे अन्तःप्रदेश में भ्रम, शंका, सन्देह, चिन्ता और अभिष्ट प्रसंग कैसे उथल-पुथल मचा सकते हैं। तुझे हीनता का विचार नहीं करना चाहिये। रोग, प्रतिकूलता और व्यग्रता से विचलित नहीं होना चाहिये। तू अपने अज्ञान का त्याग कर, निर्भयता ही तेरा मुख्य गुण है। इसीके वलपर तू भूतल का स्वामी वना है और चिरकाल तक राज्य करता रहेगा। स्मरण रख, स्वयं मिथ्या भयों में लगे रहना या अन्य किसी को व्यर्थ ही भयभीत रखना दोनों ही मानव धर्म के विपरीत हैं।"

● *तेरे से बड़ा मूर्ख कौन ?*

सब कुछ जानते हुए भी मनुष्य किस प्रकार मूर्ख बना रहता है इसका एक सजीव चित्र 'गीता सन्देश' में प्रकाशित इस लघु-कथा में देखिये—

"एक धनिक-साहूकार ने जिसे कि अपने योग्य होने का वड़ा घमण्ड था, एक रमते योगी-महात्मा को एक शीशा दिया और कहा—'महात्माजी पर्यटन करते हुए आपको संसार में जो सवसे वड़ा मूर्ख मिले उसे आप यह शीशा दे दीजियेगा।'

शीशा था भी वड़ा विचित्र—उसमें एक आदमी की अनेक प्रतिमाएँ दृष्टिगत होती थीं। जब महात्मा-योगी पर्यटन के पश्चात, लौटकर आये तो उन्होंने उस साहूकार को मृत्यु-सय्या पर पड़ा देखा।

साहूकार, महात्मा को पहचान गया। योगी ने साहूकार से पूछा—साहूकार! तू कोई ऐसी विद्या जानता है, जो तुझे बचा सकती हो? साहूकार ने उत्तर दिया—'नहीं'। महात्माजी ने फिर पूछा—'अच्छा तेरे धन में यह सामर्थ्य है कि तुझे इस मौत से बचा सके, साहूकार ने उत्तर दिया—'जी नहीं'।

योगी-महात्मा ने झोले से शीशा निकाला और उसीको दे दिया और कहा कि, आप से वड़ा मूर्ख मुझे संसार में कहीं नहीं मिला जो सभी वस्तुओं की निस्सारता को जानता हुआ भी उन्हीं में जीवन भर लगा रहा फिर तेरे से वड़ा मूर्ख और कौन है?"

● *एक चुनौति !*

आज का वातावरण किस सीमातक भ्रष्ट, अनैतिक व पतित हो चुका है यद्यपि यह सर्व विदित है तथापि 'चिन्गारी' में प्रकाशित श्री मुनीश्वरानन्द त्यागी के ये विचार हमारी सुनावस्था व वेपरवाही को चुनौति दे रहे हैं—

"आज कौन नहीं जानता कि स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी भी जनता के एकमात्र अधिकार वोट से सरकार वदलने के अधिकार को छीनना चाहते हैं? कौन नहीं जानता कि रक्षाके नाम पर पुलिस डकैत पैदा कर रही है? कौन नहीं जानता कि एक-एक अधिकारी अपने और अपनी वीवी-बच्चों के नामपर आज दौलत के अम्बार लगा रहा है? कौन नहीं जानता खुशामदी और भ्रष्ट अधिकारियों को मिनिस्टरों ने छाती से चिपटा रक्खा है? कौन नहीं जानता कि आज जनता की गाढ़े पसीने की कमाई का उपभोग भाई-भतीजों – रिश्तेदारों को पेंसन देनेमें हो रहा है? इस वात से कौन

अनभिज्ञ है कि न्याय मिलता नहीं, खरीदा जाता है—रुपयों और दूसरी चीजों के बल पर? किसे पता नहीं कि कुछ अधिकारी इसलिये मजेंमें रहते हैं कि वे अपने उच्चाधिकारियों और नेताओं के पिछलग्गू बनकर जनता पर अपना रौब जमवाते हैं? क्या यह बात किसी से छिपी है कि बड़े-बड़े पेटवाले—ऐसे पेटवाले जो लाखों के बाद भी डकार नहीं लेते—आज न केवल शासक दलके नेता बने बैठे हैं वरन् उन्होंने नौकरशाहों के सामने आत्म-समर्पण कर दिया है? इस बात से कौन इन्कार कर सकता है कि जनता को सहायता दिये जाने के नाम पर साम्प्रदायिकता का बोलवाला है?"

● *इसे ही खाओ, पियो और पचाओ—*

पग-पग पर फल की इच्छा रखनेवालों व बिना फल के तनिक भी टस से मस न होनेवालों के लिये आचार्य विनोबा द्वारा लिखित, 'गीता प्रवचन' का यह अंश दिशा-बोधक है—

"ज्ञानदेव ने यह ठीक ही पूछा है—"वृक्ष में फल लगते हैं, पर फल में अब और क्या फल लगेंगे?" इस देह रूपी वृक्ष में निष्काम स्वधर्माचरण जैसा सुन्दर फल लग चुकने पर अब और किसी फलकी और क्यों अपेक्षा रखें? किसान खेत में गेहूं बोये और गेहूँ बेचकर ज्वार की रोटी खाये? सुस्वादु केले लगाये और उन्हें बेचकर मिर्च क्यों खाये? अरे भाई! केले ही खाओ न? पर लोकमत को यह स्वीकार नहीं। केले खाने का भाग्य लेकर भी लोग मिर्च पर ही टूटते हैं। गीता कहती है—'तुम ऐसा मत करो, कर्म को ही खाओ, कर्म को ही पिओ और कर्म को ही पचाओ।' बस कर्म करने में ही सब कुछ आ जाता है। बच्चा खेलने के आनन्द के लिये खेलता है। इससे उसे व्यायाम का फल अपने आप ही मिल जाता है। परन्तु उस फल की ओर उसका ध्यान नहीं रहता। उसका सारा आनन्द उस खेल में ही रहता है।"

● *संकट का कारण*

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में समय-समय पर संकट आते रहते हैं परन्तु वह आत्म-निरीक्षण न करते हुए उनका दोष मंढता है—दूसरों के माथे पर। 'शारदा' में प्रकाशित इन विचारों में श्री रिषभदास रांका ने संकटों का मूल कारण सामने रखा है—

"संकट जो हम पर आते हैं वे या तो हमारी भूलोंके कारण होते हैं या हमें सावधान बनाने के लिये आते हैं। संकट आने पर विवेकी पुरुष न तो घबराता ही है और न अपने पर आये संकट के लिये दूसरे को दोष देता है। धीरज और विवेक के साथ उस संकट को हटाने का, दूर करने का प्रयत्न करता है। अपनी किस भूलका यह परिणाम था यह सोचकर उस भूल से बचने का संकल्प करता है। संकट उसके लिये उन्नति का द्वार खोलनेवाला प्रहरी बन जाता है। वह उसकी उन्नति का, भलाई का साथी बन जाता है। वह संकट को कोसता नहीं और उसके कारण न हिम्मत-पस्त ही होता है।

यदि संकट किसी दुर्जन पर आवे तो वह विकल बनता है, दूसरे को दोष देता है और स्वयं दुःखी बनकर दूसरोंको दुःखी बनाता है।

विचारपूर्वक देखा जाय तो हमारे किसी न किसी दोष के कारण ही यह संकट आया था पर उस दोष को अपनी कमीको देखकर दूर न करनेवाला, दूसरे को दोष देकर अपनी कमी दोष या दुर्गुण को प्रश्रय देकर बड़े-बड़े संकट को न्यौता देता है।"

कहते हो यह दान किया है!

[मुनिश्री नगराजजी]

ओ दानवीर! ओ धर्मवीर!!
युग बीत गया वह
जिसमें तेरी
करुणा के आलम्बन से ही
तेरी दानवीरता से ही
तेरी धर्मवीरता से ही
मेरे जीवन की कलियों में
मुरझाई अलसाई में भी
नव सौरभ का नव सुषमा का
होता था संचार सदा ही।

आज मुझे आलोक मिला है
नवयुग का संदेश मिला है
दान नहीं वह धर्म नहीं है
मेरा मेरे जैसों ही का
कोटि-कोटि निज बन्धुजनों का
आहें भरते दीन-मनों का
निर्दयता से
बर्बरता से
हो नृशंस तुम शोषण करते।

भूखे प्यासे और दिगम्बर
उनको देते हो अपने इस
पत्तल की अवशेष मिठाई
पयः पात्र का भूठा पानी
फटा पुराना उतरा चीवर
कहते हो-यह दान किया है
त्रस्त, दीन, पीड़ित मानव का
कहते हो सम्मान किया है
भरते हो यह दम्भ सदा फिर
परोपकार हित सरपच कर हम
अर्थार्जन कर दान धर्म कर
दीन जनों का पोषण करते
रहने दो बस! दान तुम्हारा
रहने दो सम्मान तुम्हारा
आज मुझे तो न्याय चाहिए
अपना ही अधिकार चाहिए
अनाधिकृत अर्थार्जन छोड़ो
दान यही है धर्म यही है
मानवता का मर्म यही है

समाज सेवा का क्रमिक विकास

श्री राजेश्वर सक्सेना एम० ए०, साहित्यभूषण

समाज सेवा का आज का सुव्यवस्थित व वैज्ञानिक रूप धीरे-धीरे विकसित हुआ है। इस विकास को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) व्यक्तिगत कार्य

(२) व्यवस्थित कार्य

(३) समाजसेवा 'एक पेशे तथा व्यवसाय के रूप में'।

व्यक्तिगत कार्य :—इससे उस समय का अनुमान होता है जबकि समाजसेवा कुछ ही व्यक्तियों के द्वारा सम्पन्न होती थी। विकास के इस युग में समाजसेवा की निम्नलिखित विशेषताएं थीं—

(अ) दया, दान व धर्म की भावना पर आधारित सहायता जो कि उस वर्ग को पर्याप्त होती थी जो अविकसित, पीड़ित व दुखी होते थे।

(ब) इसके अन्तर्गत उन लोगों तथा समूहों की सहायता की जाती थी जो कि पिछड़े व असहाय वर्ग के होते थे।

(स) ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखने पर इस बात का ज्ञान होता है कि इस समय के समाजसेवा कार्य के अन्तर्गत केवल बीमार व गरीब लोगों को सहायता प्रदान की जाती थी। इसके अतिरिक्त और किसी रूप में समाजसेवा का कार्य न होता था।

परन्तु शीघ्र ही ऐसे कार्यक्रम असफल होने लगे। इनकी सफलता केवल उनके संचालकों तक ही सीमित थी। उनके मरजाने पर या उनकी अरुचि होने पर ये सेवाएं शिथिल हो जाती थीं। परन्तु बाद में इस बात की आवश्यकता हुई कि सुव्यवस्थित सेवाऐं समाज के लिए हों। इसलिए सुगठित व सुव्यवस्थित समाजसेवा कार्यक्रमों व संस्थाओं का विकास हुआ।

सुव्यवस्थित कार्य :—यह समाजसेवा का विकसित और सुगठित रूप है। इसके अन्तर्गत समाज सेवाऐं व्यक्तिगत और निजी होने के साथ-साथ स्थानीय सभाओं, नगर पालिकाओं व सरकार का भी उत्तरदायित्व हो गईं। अब राज्य व 'नगर सभाओं' के अन्तर्गत इन सेवाओं को जनता के लिए विस्तृत किया गया।

इन सेवाओं के तीन प्रमुख रूप हैं :—

(अ) समस्या को ऊपर से ही सुलझाने का रूप (Palliative)

(ब) बचाने या बसाने का रूप (Protective or Rehabilitative)

(स) रोकथाम या बचाव (Preventive) का रूप।

समस्या को ऊपरी ढंग से सुलझाने से उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं होता। इसके अन्तर्गत कभी भी समस्या की गहराई तक नहीं पहुँचा जाता और न ही उसके मूल कारणों पर कोई विशेष ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार की कोशिश से कोई भी समस्या जड़ से समाप्त भी नहीं होती और वास्तव में तो इससे समस्या के निरोध सम्बन्धी कोशिशें व्यर्थ ही जाती हैं।

दूसरे रूप के अन्तर्गत किसी भी समस्या से समाज का बचाव किया जाता है और पीड़ित लोगों व परिवारों आदि को बसाया जाता है। जैसे कि बालअपराधियों, शरणार्थियों आदि को बसाया जाता है। इसमें इस बात की चेष्टा होती है कि जो पीड़ित व्यक्ति हों वे समाज में समाज के सदस्यों की भाँति बस जाऐं।

रोक-थाम व समस्या से बचाव का ढंग वास्तव में समाज-सेवा-क्षेत्र में भारत में नया है। विदेशों में सर्वेक्षण आदि के पश्चात् पहले से ही इस बात की चेष्टा की जाती है कि समाज को किसी समस्या विशेष से सुरक्षित रखा जाए। जैसे कि मलेरिया, हैजे, आदि के लिए पहले से रोक-थाम होती है। इसी प्रकार सामाजिक समस्यासे भी समाज की पूर्णरूप से रोक-थाम होती है। वास्तव में यह बात सत्य है कि "इलाज से बीमारी की रोकथाम ही श्रेष्ठ है" और इसी दृष्टिकोण को लिए हुए समाज में भी इस बात की चेष्टा की जाती है कि इससे पहिले कि कोई भी सामाजिक समस्या समाज में हो, उसकी पहले से ही रोक-थाम की जाए जिससे वह बाद में दैत्य रूप न धारण करले।

एक पेशा और व्यवसाय :—आज के युग में समाज सेवा इतनी विकसित अवस्था में है कि वह एक पेशा और व्यवसाय भी बन गया है। आज समाज सेवा के क्षेत्र में वह हर कार्य आता है जो कि व्यक्तियों और समाज के लिए लाभप्रद है। अब समाज-सेवा और कल्याण-कार्यों के लिए अन्वेषण सर्वेक्षण,

वैज्ञानिक ढंग और शिक्षण आदि सब ही कुछ पर्याप्त हैं।

इस रूप का कार्यक्रम राज्य सरकार व व्यक्तिगत संस्थाओं द्वारा ही अधिक होता है।

यह बात विशेष रूपसे स्मरणीय है कि इस प्रकार की समाज सेवाऐं वहीं सम्भव हैं जहाँ कि राज्य समाज-कल्याण का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। इसमें यह आवश्यक है कि ऐसी सेवाओं का नियोजन हो और योजना के अनुसार सेवाऐं राज्य की ओर से पर्याप्त हों इसके अन्तर्गत समाज सेवा का क्षेत्र न केवल बीमारी व गरीबी का निरोध है, वरन् अन्य अनेक क्षेत्रों में विस्तृत होता है। इन सबका ध्येय समाज का कल्याण होता है।

इस प्रकार की सेवाओं का रूप पूर्णरूप से वैज्ञानिक होता है। इसके अन्तर्गत समाजसेवी शिक्षित और सर्वेक्षण व अन्य सेवा सम्बन्धित कार्यों में दक्ष होते हैं। इस प्रकार से वह अपने-अपने कार्य में पूर्ण होते हैं। इसलिए यह सीखा जाता है और इसका शिक्षण व प्रशिक्षण विस्तार रूप से होता है।

इसमें समाजसेवी के अपने कर्त्तव्य व ध्येय निश्चित होते हैं और कार्यक्रम की सफलता केवल समाजसेवी या राज्य का ही धर्म नहीं वरन् हर व्यक्ति का कर्त्तव्य होता है।

इसकी यह विशेषता है कि इसकी शिक्षा वैज्ञानिक रूप से की जा सकती है। इसकी रीतियाँ व ढंग एक से दूसरे को सुगमता से बनाए जा सकते हैं।

इसका ध्येय केवल समाज-कल्याण ही नहीं वरन् कल्याणकार्यों में उच्च-स्तर व कार्य कुशलता भी लाना है क्योंकि इस प्रकार की समाज सेवा प्रगतिशील व परिवर्तनशील होती है इसलिए यह वास्तव में कार्यान्वित (Practicable) हो सकती है।

इस तरह के समाज-कल्याण व सेवा कार्य मानव के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, भौतिक, मनोवैज्ञानिक व नैतिक स्तर को ऊँचा करने में सहायक होते हैं।

परन्तु जैसा कि मैं पहले बता चुका हूं समाजसेवा को पूर्ण रूप से पेशे व व्यवसाय के दृष्टिकोण से नहीं लिया जा सकता। भारतीय आदर्शों को लेते हुए यह आवश्यक है कि इस प्रकार की विचारधारा को धर्म व नैतिकता से ओतप्रोत रखा जाए और तब ही भारतीय समाज सेवा कार्यक्रम सफल हो सकता है।

—o—

एक लघु कथा—

आंख की शर्म

[मुनि श्री नथमलजी]

वरुण शुरू से ही स्वेच्छाचारी हो गया। अनुशासन उसे मौत-सा डरावना लगता। अपनी मनमानी करते-करते वह मर्यादा से बाहर हो चला। भूला भटका-सा वह घर आता और रोटी खा फिर विदा हो जाता। जुआरियों के चक्कर में फंस गया. जुआ खेलने लगा। कभी पैसा आया, कभी गया। आखिर ऋणी हो गया, चोरी करने लगा। फिरता फिरता हैरान हो जाता तब विश्राम के लिये दारू की एक बोतल उडेल लेता। उसकी मस्ती में वेश्या के यहां भी हो आया करता। सृष्टि की सारी चीजें उसके लिये समान थीं। फिर वह क्यों मांस से बचे और अंडों से? दोस्तों के साथ जंगल की सैर को भी चला जाता। मूक पशु-पक्षियों के प्राण लूटने में भी नहीं सकुचाता। "द्यूतं मासंच सुरा च वेश्या, पापर्द्धिचौर्यं परदार सेवा"—ये सातों व्यसन उसके साथी बन गये।

घरवालों को चकमा देने में बड़ा कुशल था। बहुत दिनों तक मां-बाप बेटे की करतूतों से अनजान रहे। आखिर पाप का घड़ा फूट गया।

सच बोलना उसे याद तक नहीं रहा। घरवालों ने पूछा तो उसने इन्कार कर दिया। हवाके झोंको के साथ उसकी बुराई की गंध आती पर वह कभी 'हां' नहीं करता।

बाहर जाते बेटे को रोकते हुए पिताने कहा—गांव में साधु आये हैं, उनके दर्शन को चलो। उनके प्रत्यक्ष आग्रह को वह टाल न सका, उनके साथ चल पड़ा। साधुओं को वंदना की व प्रवचन सुनने बैठ गया। मुनि ने संत-वाणी की महिमा बताई। उन्होंने कहा—जो व्यक्ति संत-वाणी का एक वाक्य भी हृदय से धार लेता है वह तर जाता है। लोकोत्तर लाभ के साथ लौकिक हित भी सध जाता है। रौहिणेयक चोर की घटना सुनाते हुए कहा—वह पकड़ा न जा सके वैसा चोर था। विद्या का धनी और चोरों का सरदार था। राजगृह के नागरिकों में उसका आतंक फैला था। मगध सम्राट् ने अभयकुमार को बुलाया और चोरों को पकड़ने का आदेश दिया। ग्राम रक्षकों की सरगरमी ने रौहिणेयक को चौंका दिया। वह राजगृह को छोड़ बाहर जा रहा था। बीच में भगवान महावीर का प्रवचन हो रहा था। रौहिणेयक घबराया। कानों में अंगुली डाल भागा। संत वाणी सुनना वह पाप मानता था। भाग्य या दुर्भाग्य से कुछ भी समझिये अचानक उसके पैर में कांटा चुभा। उसे निकालने लगा। भगवान महावीर का एक वचन कानों में आ पड़ा—"देवता के पैर धरती को नहीं छूते"—रौहिणेयक ने

अपना दुर्भाग्य समझा। कांटा निकाल चलता बना।

अभयकुमार ने रौहिणेयक को बन्दी बना लेनेका आदेश दिया। पुलिस ने दौड़-धूप की पर नगर में उसका पता न लगा। खोज चलती रही। आखिर चोरपल्ली में वह पकड़ा गया। राजपुरुष उसे राजगृह ले आये। अभयकुमार ने उसकी आवभगत की। उसे एक राज भवन में ठहरा दिया। भोजन की वेला हुई। आदमी भांति-भाति की खाद्य वस्तुएँ ले आया। रौहिणेयक ने भोजन किया। आहार की मादकता ने उस पर अपना असर डाला। वह खाते-खाते ही बेभान बन गया। तत्काल राजपुरुष आये, उसे उठा दूसरे राज-भवन में ले गये। वहाँ उसे सुला दिया। थोड़ी देर हुई, एक देवांगना आई। उसने रौहिणेयक को सहलाया उसकी आंखे खुली और देखा—वह कोई दूसरी दुनिया में है। सुन्दर प्रासाद, कोमल शय्या और देवांगना का रूप और वहाँ के समूचे वातावरण ने उसे अचम्भे में डाल दिया। अधखुली आँखें झेंप रही थी। इतने में वह स्त्री आगे बढ़ी। और बोली—मेरे भाग्य विधाता! जरा आँख खोलो न, देखो तो सही, यह देवलोक का कितना मनोरम प्रासाद है, यह सुखद शय्या और यह मैं, सब आपके अधीन हैं। आपने कौनसे कर्म किये जिससे आप हमारे स्वामी बने हैं। जरा आप बतलाइये तो सही—क्या आपने किसी को मारा, डाके डाले या चोरी की, कोई न कोई साहसपूर्ण कार्य किया होगा जिससे आपको यह सुख-सम्पदा मिली है। रौहिणेयक अवाक् रह गया। उसने मन ही मनमें सोचा—क्या मैं सचमुच देवलोक में आ गया हूं? क्या यह देवांगना है? क्या यह देव-भवन है। थोड़ी सुध आई और फिर सोचने लगा—यह अभयकुमार का मायाजाल तो नहीं है? उसे तत्काल भगवान महावीर की वह वाणी—"देवता के पैर धरती को नहीं छूते"—याद हो आई। वह सम्हला, सजग दृष्टि से देवांगना की ओर निहारा...उसके पैर धरती से लगे हुए थे। रौहिणेयक को निश्चय करते देर न लगी। वह अभयकुमार को इन्द्र-जाल को ताड़ गया। क्रोध की मुद्रा बना बोला—मारकाट, डाके और चोरी से भला कोई आदमी देवता बनता है? तुम क्या देवी हो, जो इतना भी नहीं जानती। मैंने जीवन भर भले काम किये—अहिंसा पाली, झूठ नहीं बोला, चोरी नहीं की, ब्रह्मचारी रहा—उन्हीं का फल है कि यहाँ मैं देवता बना हूँ।

अभयकुमार का षड्यंत्र विफल हो गया। उसने क्षमा मांगी और रौहिणेयक को छोड़ दिया। उसने संतवाणी की महिमा समझ ली। अब वह चोर नहीं रहा। जिसने उसे बचाया उसी की शरण में चला गया। यह प्रसंग पूरा हुआ, प्रवचन भी पूरा हुआ। जनता के मुंह पर संत-वाणी की महिमा मुखरित हो रही थी। वरुण मुनि के पास आया। उसका गला भारी और आंखें गीली हो रही थी। पापी का दिल सदा रोता है—औरों के पास अन्दर ही अन्दर संतों के पास अन्दर और बाहर भी। उसने अपनी सारी पाप कहानी कही...आँसुओं की धार ने मुनि के पैर पखार डाले। लम्बी सांस भरते हुए बोला—महाराज विवश हूँ, बुराई को बुराई मानता हूँ, आदत की लाचारी है, छोड़ने में असमर्थ हूं। मुनि ने कहा—अधीर मत बनो, सब नहीं छोड़ सको तो कुछ तो छोड़ो, धीरे-धीरे अभ्यास करो, सब छूट जायेगी। "गुरुदेव! आप सच कहते हैं, पर जुआ खेले बिना सबकुछ फीका है। जुआ जो है तो सब बुराइयां है। महाराज! जड़ कटे बिना टहनियां टूटें तो क्या और न टूटें तो क्या?" वरुण की धीमी आवाज में एक बचाव की भावना थी। पिता को अपने आचरण का ज्ञान नहीं होने देना चाहता था। मुनि ने जड़ की बात पकड़ ली। आंख की शर्म को ताड़ गये। मुनि बोले—भाई! तुम एक छोटा सा व्रत ले लो, असत्य न बोलने का दृढ़ संकल्प करलो। इसमें क्या कष्ट होनेवाला है, तुम्हारा यहां आना भी सफल हो जायेगा। वरुण ने सोचा—यह तो सरल बात है। "अच्छा महाराज, आज्ञा हो, मैं आपकी आज्ञा से यह व्रत लेता हूं—आज से कभी भी झूठ नहीं बोलूंगा।" मुनि शेष बात पी गये, और उसके सत्य-व्रत की बात घोषित करदी। सब लोग उठे, मुनि को वंदना की, अपने-अपने घर चले गये।

× × ×

दुपहरी हो रही थी, रोटी खा वरुण बाहर जाने लगा। उसका पिता मित्रों की टोली से घिरा बैठा था। तुरन्त वहाँ से आवाज आई वरुण अभी कहाँ जा रहे हो? वह सदा की भाँति आज बहानाबाजी न कर सका। असत्य बोलना अब वह छोड़ चुका था...उसने रुंधे गले से कहा—पिताजी मैं जुआ खेलने जा रहा हूं। छि छि की आवाज से वातावरण गूंज उठा। भले मानस! इन सेठजी का लड़का और काम ऐसा? वरुण की आँखें झेंप गई। वह उन्हीं पैरों वापिस अन्दर चला गया। मन-ही-मन सोचा—मेरे कारण मेरे पिताजी को फटकार लगे यह बहुत बुरी बात है। मैं जुआ खेलता रहा तो मित्र-गोष्ठी में उनकी गर्दन कभी भी ऊँची नहीं उठ सकेगी। अब इस जीवन में जुआ नहीं खेलूंगा।

सांझ हो गई। अंधेरे ने अपने पंख पसारे। वरुण उठा। पिता की आंख चुरा बाहर जाने लगा। सहेलियों की टोली में बैठी हुई माँ ने कहा—वरुण कहां जा रहे हो? वरुण सन्न रह गया। मां के सामने भला बेटा

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत क्रमशः नवोदित बन्धुओं की सुन्दर रचनाएं प्रकाशित हुआ करेंगी । रचना भेजते समय स्तम्भ उल्लेख करना आवश्यक है —सम्पादक]

अणुव्रत आन्दोलन की सर्वोत्मुखी आवश्यकता

[श्री विजयकुमार 'मधुप']

आज चरित्रहीनता की समस्या ही विश्व में मुख्य हो रही है। इसको दूर करनेके लिए अणुव्रत चरित्र विकासका आन्दोलन हैं। व्यक्ति २ में यह सत्यनिष्ठा, प्रामाणिकता और नैतिकता का दीप प्रज्वलित करना चाहताहै। आन्दोलनकी सर्वोत्मुखी आवश्यकता है—समाज के विभिन्न वर्गों को आवश्यकता है। व्यक्ति २ में प्रामाणिकता आने से राष्ट्र का विकास होगा और नैतिक क्रान्ति की ज्योति प्रज्वलित होकर विश्व को प्रकाश देगी। व्यापारी समाज कितने पानी में है। यह आए दिनों के समाचारों से मालूम होता है। व्यापार में कितनी अनैतिकता, अप्रामाणिकता आ गई है। चोरबाजारी, जालसाजी, मिलावट इत्यादि का बाहुल्य होता जा रहा है। समाज का एक अंग भी अनैतिकता की ओर जाए तो साथ में दूसरे अंगो को भी ले जाता है। एक अंगमें घाव होनेपर समस्त शरीरमें विष का असर हो जाता है। यह आन्दोलन व्यापारियों में प्रामाणिकता लाने का प्रयत्न कर रहा है।

अध्यापक ही भावी भारत के निर्माता हैं। विद्यार्थीयों को जैसे साँचेमें वे ढालेंगें वैसा ही भविष्यमें जाकर देश बन सकेगा। आजकल अध्यापकों में भी अप्रमाणिकता, चरित्रहीनता आगई है। विद्यार्थियों से रिश्वत लेकर परीक्षा में पास कर देना, अनुचित प्रमाणपत्र देना तो कुछ अध्यापकों का मुख्य पेशा ही हो गया है। क्या ऐसी हरकतों को देखकर हम नैतिक विकास की आशा कर सकते हैं? अणुव्रत आन्दोलन में सहयोग देकर अध्यापकों को 'संयमः खलु जीवनं' का घोष करना चाहिए।

(शेषांश पृष्ठ २९ पर)

(पृष्ठ २३ का शेषांश)

वेश्यागमन और मदिरा पान की बात कहे, यह कैसे हो सकता है? व्रत छोड़ना और भी बड़ा पाप है। दबी जबान से उत्तर मिला—माँ, क्षमा करना अब नहीं जाऊँगा। तुम्हारा पापी पुत्र वेश्या के घर मदिरा पीने जा रहा था। शर्म के मारे आंखें गड़ गई। स्त्रियों की चुभती चर्चा ने उसे मृत सा बना दिया। आज का दिन और आज की रात वरुण की बुराइयों का अन्तिम दिन और अन्तिम रात थी। फिर कभी भी न जुआ खेला, न चोरी की, न वेश्या गमन किया और न मदिरा पी। आंख की शरम ने उसे उबारा व सत्य व्रत ने उसे उठाया।

—o—

कसौटी पर

[श्री देवेन्द्रकुमार हिरण, साहित्य रत्न]

खरी कसौटी पर जीवन को मानव तुझे चढ़ाना होगा।

मन भावों के मन्थन में ही परिवर्तन का होना संभव।
पर असमंजस सी वेला में मंजिल पाना बड़ा असंभव॥
लक्ष्य पंथ पर निर्भयता से आगे कदम बढ़ाना होगा।
खरी कसौटी पर जीवन को मानव तुझे चढ़ाना होगा॥

समय परीक्षा का आया है, कहीं आलसी मत बन जाना।
तन्मयता औ आध्यात्मिकता अपना पाओ तो अपनाना॥
जीवन के निर्माण-कार्य में, भव्य स्वरों से गाना होगा।
खरी कसौटी पर जीवन को मानव तुझे चढ़ाना होगा॥

कर्म उषा के शुभ मुहूर्त में कायरता से नाता तोड़ो।
औ, साहस के दीप जलाकर वक्ष निराशा-तम का तोड़ो॥
निर्माणों की महादिशा में सत्य ध्येय को पाना होगा।
खरी कसौटी पर जीवन को मानव तुझे चढ़ाना होगा॥

एक बाल मनोवैज्ञानिक चित्र—

स हा य ता

रूपान्तरकार—श्री नवीन मोरवाल

हमारी साधारण और छोटी-छोटी बातों का बच्चों पर कितना गलत असर पड़ता है और पड़ सकता है यह बताना इस सहायता का अभिप्राय है। अब हमें कहाँ व कितनी सावधानी बरतनी है यह हम स्वयं सोचें और ध्यान रखें।

—सम्पादक]

ठंड का मौसम था, खुली छत की धूप में माँ अपने १० मास के बच्चे को नहला रही थी। किशोर और मीनू नहा चुकने के बाद पास ही बैठे धूप ले रहे थे।

नहाते समय बच्चा खूब रो रहा था और माँ काफी खीज चुकी थी।

"माँ हमें कपड़े पहिना दो," किशोर ने कहा।

"जरा ठहरो बेबीको नहला दूं फिर पहिनाती हूं।"

"नहीं माँ पहिले हमें कपड़े पहिना दो," मीनू बोली।

माँ ने खीजकर उनकी ओर घूरा, बच्चे सहमकर चुप हो गये।

छोटा बच्चा रोता ही जा रहा था। किशोर उठकर पास आया। ओठो पर अगुँली रख डाँटता-सा बोला—"अले चुप, नहाते में लोता है बदमाश!"

माँ के ओठों पर दबी मुस्कुराहट आई पर खीज के कारण बाहर न निकल सकी। किशोर को डाँटते हुये बोली—"अरे-अरे, यहाँ पानी में कहाँ आ रहा है, वहाँ सूखे में बैठो!"

और रोते बच्चे को धमकाते, हल्के हाथों से चपत लगाते हुये बोली—"चुप—चुप, नहीं तो मुंडेर पर बैठा दूँगी और कौआ काट खायेगा। चुप हो!"

और नादान बच्चा कुछ न समझते हुये भी कुछ क्षण को चुप हो गया।

किशोर ताली बजाता हुआ मीनू से बोला—"देखो कैंटा चुप हो गया!"

× × ×

चरित्र-निर्माण

माँ ने बच्चे को नहला और कपड़े पहिनाकर एक ओर धूप में कपड़े पर लिटा दिया। दोनों बच्चों को भी कपड़े पहिना दिये। बेबी नहा-धोकर चुपचाप पड़ा, अपनी भोली-भोली आँखों से टुकुर-टुकुर माँ, किशोर और मीनू को ताक रहा था।

"अच्छा देखो, तुम दोनों बेबी को देखना मैं उसके लिये दूध लेकर अभी आती हूँ।"

"अच्छा माँ!"

बेबी जाती हुई माँ को ताकता रहा। जैसे ही वह आँखों से ओझल हुई वह पूरी ताकत लगा फिर से रो पड़ा। किशोर और मीनू उसके नजदीक आ गये। मीनू ओठों पर अंगुली रख बोली—"चुप।"

किशोर एक अनुभवी की तरह उसे थपथपाता बोला—"अले लाजा भैया लोता क्यों है?" पर बेबी ने अपना रोना-धोना जारी रखा।

तभी मीनू माँ की नकल करती बोली—"चुप! नहीं तो मुँडेल पर बैठा दूँगी और कौआ काट खायेगा।"

पर इस बार बच्चा चुप नहीं हुआ।

"भैया ये तो चुप नहीं होता!"

"तो क्या कलें?" किशोर ने पूछा।

"ऐसा कलो कि मुंडेल पर बैठा दो तो चुप हो जायेगा।"

"अले, नईं—नईं।"

"नईं क्या, माँ तो कहती थी कि मुंडेल पर बैठा दूँगी। वहाँ बैठा दोगे तो चुप हो जायेगा। नहीं तो माँ आयेगी तो उसको बैठाना पड़ेगा।"

"चुप-चुप नहीं तो मुंडेल पर बैठा दूंगा" किशोर जैसे अंतिम चेतावनी देता हुआ बोला।

पर बच्चेके रोनेमें कमी नहीं आई।

"अच्छा आओ इसे मुंडेल पर बैठा दें, बदमाश चुप नहीं होता।"

दोनों मिलकर उसे छत की दीवार के पास ले आये।

किशोर बोला—"मेला हाथ नहीं पहुँचेगा, दीवाल ऊँची है।"

मीनू ने इधर-उधर नजर दौड़ाई। उसे एक कोने में पड़ा स्टूल दिख गया।

"अरे भैया वो देखो स्टूल लखा है।"

किशोर स्टूल उठा लाया और उस पर खड़ा हो गया। मीनू ने अपने नन्हें हाथों से बेबी को उठाकर किशोर को थमा दिया और खुद भी स्टूल पर आ चढ़ी।

दोनों ने मिलकर बेबी को एक फुट चौड़ी छत की मुंडेर पर बैठा दिया और खुद उतर

अपने-अपने विचार—

भ्रष्टाचार कैसे मिटे ?

[इस स्तम्भ के अन्तर्गत उपरोक्त विषय पर इसी तरह हमारे पाठकों, कार्यकर्ताओं और साथियों के विचार प्रकाशित होते रहेंगे। विचार संक्षिप्त और स्पष्ट लिखकर कार्यालय में भेजें, उनको क्रमानुसार प्रकाशित किया जायगा। प्रकाशित विचारों का उत्तरदायी स्वयं लेखक होगा। —सम्पादक]

संस्थाओं का भ्रष्टाचार

[श्री केवलचन्द नाहटा]

कुछ अवसरवादी व्यक्ति निजी अर्थाभाव को मिटाने के लिए ही संस्थाओं की रचना करते हैं। अर्थ-संग्रह के पश्चात् न तो उस संस्था का चिन्ह दृष्टिगोचर होता है, न ही वह व्यक्ति। ऐसे समाज-द्रोहियों की भी कमी नहीं जो संस्थाओं के नाम पर चंदा मांगते हैं पर राशि को उस संस्था के हित में न लगाकर स्वयं ही हजम कर जाते हैं।

इस प्रकार अनेक संस्थाओं का जन्म किसी न किसी प्रकार के स्वार्थ को लेकर ही हुआ करता है। आए दिन ऐसी घटनाएं हमारे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष गुजरा करती हैं। शायद ही ऐसे कम व्यक्ति हों, जो इन कुसंस्थाओं द्वारा ठगी के शिकार न हुए हों।

यह तो हुई जनता की आँखों में धूल भोंककर संस्थाकी स्थापना करनेवालों की बात। अब हमारे सामने ऐसी संस्थाएं आती हैं जिनका स्वरूप ठीक है किन्तु गलत कार्यकर्त्ताओं के कारण नष्ट हो गया है—सदस्यों की अनेक विषयों में पारस्परिक जिद् एवं द्वन्द होना ही इनके विनाश के कारण है। पद एवं यश लिप्सा भी बहुत अंशों में संस्था के विकास में बाधक बनती है। सदस्यों में उत्पन्न इस प्रकार के अनेक दोष संस्था पर कुप्रभाव छोड़ते हैं और संस्था का पनपना दूभर हो जाता है ?

कुछ संस्थाएं ऐसी भी होती हैं जिन पर एक वर्ग का स्वामित्व चलता है। व्यक्तिगत दृष्टिकोणसे अनुशापित वे संस्थाएं योग्य सुझाव एवं सह-अस्तित्व के अभाव में अविकसित ही रहती हैं क्योंकि ऐसी परिस्थिति में अनेक सदस्यों की समुचित आवाज दब जाती है—जिससे संस्था नई दिशा की सूझ से वंचित रहती है।

संस्था किसी भी रूप की हो चाहे राजनीतिक सामाजिक धार्मिक या अन्य कोई भी हो पर वे सर्वप्रथम स्वस्थ एवं निस्वार्थ दृष्टिकोण मांगती हैं। कार्यकर्त्ताओं में उत्साह एवं कार्य करने की लगन भी वे चाहती हैं। उनके उद्देश्य एवं विकासशील प्रवृत्तियां सही ढंग के नेतृत्व का आह्वान करती है। तभी वे संस्थाएं अपने स्वरूप को स्थायित्व प्रदान करने में समर्थ बनती हैं।

तो क्यों न हम आज इन संस्थाओं के सही मार्ग का मूल्यांकन करें। अपने सामने जर्जरित पड़ी इन संस्थाओं को ऊपर उठाने के कार्य की शुरुआत करें।। भले उद्देश्य रखनेवाली इन संस्थाओं की सेवा हमारे समाज, एवं देश की सेवा होगी जो राष्ट्रोन्नति में सहायक बनने में एक स्थायी कड़ी सिद्ध होगी।

अतः पारस्परिक प्रतिस्पर्धा एवं स्वार्थपरता के भ्रष्टाचारी दायरे से मुक्त होकर प्रत्येक व्यक्ति निस्पृहता एवं शुद्ध हृदय के साथ संस्थाओं को योगदान दे तभी संस्थाओं में व्याप्त अनियमितता दूर होकर एक निर्मल वातावरण की सृष्टि हो सकेगी।

अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों पर ध्यान दें !

[श्री राकेशकुमार सुराना]

अधिकार मानव या मानव समुदाय के उच्च और आदर्श जीवन व्यतीत करने की वे मांगें हैं जिन्हें समाज समान एवं सामूहिक हित की भावना से अपनी मंजूरी देता है।

कुछ स्वार्थी मानव अधिकार और कर्तव्यों को एक दूसरे का विरोधी बतलाते हैं, क्योंकि अधिकार शब्द से उन्हें कुछ प्राप्त होता है और कर्तव्य से कुछ छुट जाता है। परन्तु मेरा अनुमान है कि यह केवल भ्रममात्र है और

(पृष्ठ २५ का शेषांश)

कर अपनी जगह पर आ बैठे।

बेबी कुछ क्षण स्थिर बैठा रहा, बाद में कुछ आगे हिला और पीछे। अंत में एक तेज झोंके में आ वह पीछे की ओर लुढ़क गया।

माँ दूध की शीशी भर लाई। छत पर बेबी नहीं दिखाई पड़ा तो घबरा गई।

"क्यों किशोर बेबी कहाँ है ?"

"माँ वह खूब रो रहा था तो हमने उठे मुंडेल पर बैठा दिया।" किशोर ने सरलता से कहा।

माँ ने सुना तो उसका हृदय धक्क रह गया।

दौड़कर मुंडेर के पास पहुँची। नीचे झाँककर देखा। देखकर अपने को सम्हाल न सकी—वहीं बेहोश हो लुढ़क गई।

संगठन के चौराहे से—

आन्दोलन की भावना को व्यापक और क्रियात्मक रूप दें !

[अध्यक्ष श्री पारस जैन का आह्वान]

अणुव्रत आन्दोलन वास्तव में नैतिक क्रान्ति का आन्दोलन है और इसकी संसार को आवश्यकता भी है। आज समाज में कितनी विषमताएँ व्याप्त हैं। शोषण व स्वार्थ-परता का बोलवाला है, मानवता कोसों दूर है, झूठ, कपट, दम्भचर्या और अनैतिकता का बोलवाला है। मनुष्य में प्रलोभन की भावना उग्र रूपसे है। मानव-मानव को कोसने का प्रयास करता है। यह आज का वातावरण है। इसके विपरीत "अणुव्रत आन्दोलन" मानव को शान्ति व सुखका सही मार्ग बताता है, सही पथ-प्रदर्शन करता है। मेरी तो यह इच्छा है कि यह आन्दोलन जन-जन का आन्दोलन हो, मानव-मानव का आन्दोलन हो, व्यक्ति-व्यक्ति की दृष्टि इसपर टिके, वे इसकी भावना को समझें। हर्षका विषय है कि समूचे भारत में इस आन्दोलन का हार्दिक स्वागत हुआ है।

आन्दोलन का प्रचारात्मक पक्ष ठोस रूप से आपके समक्ष आया मगर इसका दूसरा क्रियात्मक पक्ष जो अभी अधूरा ही है; अब हमें इस ओर मुड़ना है व क्रियात्मक पक्ष को सबल बनाना है। इसी दृष्टिकोण से बोलारममें "साधना मंदिर" का निर्माण किया गया जिसके अन्तर्गत ऐसी कई प्रवृत्तियां चलती हैं जिनसे मानव स्वावलम्बी बन सके जो जन-जीवन के नैतिक-निर्माण में सहयोग दे सके।

इसी प्रकार अन्य कई स्थानों पर भी ऐसी प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ करने का विचार है। राजस्थान में राजनगर, खानदेश में जलगांव व अन्य जो भी स्थान इस दृष्टि से सुविधाजनक होंगे, वहाँ केन्द्र खोले जायेंगे व इस प्रकार की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया जायगा जिसके फलस्वरूप मानव नैतिक-क्रान्ति के इस आन्दोलन में सहयोगी बने, इसकी भावनाओं को बल मिले, और कार्य की दिशा ठोस रूप ले सके।

क्रियात्मक रूप ही आन्दोलन की जान है। आशा है आपके सहयोग से इस ओर बढ़कर व सफल होकर अपनी निश्चित मंजिल प्राप्त कर सकेंगे। आप भी अपने क्षेत्र में आन्दोलन की भावनाओं को व्यापक बनायें जिससे जन-जीवन में नैतिकता का संचार हो, शोषण की भावनाएँ मिटे। —[मद्रास स्वागत समारोह के अवसर पर व्यक्त विचारों से]

(पृष्ठ २६ का शेषांश)

इनका रात-दिन की तरह सम्बन्ध है, ये एक दूसरे के पूरक हैं। किसी ने कहा भी है 'Rights born in the world of duties." प्रत्येक अधिकार के दो रूप होते हैं—(i) सामाजिक (ii) व्यक्तिगत। व्यक्तिगत दृष्टि से जो हमारे अधिकार हैं, सामाजिक दृष्टि से वे ही कर्तव्य हैं। इस तरह एक व्यक्ति का अधिकार सारे समाज अथवा समुदायों का उसके प्रति कर्तव्य है, यदि इन कर्तव्यों का उचित पालन न हो तो समाज से अधिकार नामक शब्द ही उठ जाए।

अधिकार का उद्देश्य मानव की वे मांगे हैं जो समाज के समान हितकी भावनासे स्वीकार होती हैं। इस दृष्टिकोण से जागीरदारों और जमींदारों का किसानों के विरुद्ध कथित अधिकार अधिकार नहीं माना जा सकता। वह तो केवल एक शक्ति है जिसका अस्तित्व अन्याय और अत्याचार पर निर्भर है, समाज की नैतिक शक्ति पर नहीं। आज हम केवल अधिकार अधिकार की ही आवाज बुलन्द करते हैं पर कर्तव्यों की तरफ ध्यान ही नहीं देते। यदि हम अधिकारों से कर्तव्यों को ज्यादा महत्व दें तो शीघ्र ही शान्ति एवं आदर्श व्यवस्था स्थापित हो जाय।

(पृष्ठ ९ का शेषांश)

भारतीय सदैव बुद्धिवादी रहे हैं और जिस-जिस काल में बुद्धिवाद पर हमारी आस्था ने, ज्ञानोन्नति ने, शौर्य ने और सत्यनिष्ठा ने वर्चस्व प्रतिष्ठित रखा, उस-उस समय हम विश्ववंद्य बने रहे, आज यह अवसर आगया है कि इन गुणों का भारतीय-समाज में पुनर्विकास हो, तभी हमारा भविष्य उज्ज्वल रह सकता है। हम अनेक संकटों से, संघर्षों से गुजरे हैं, परकीय संस्कृति ने सर्वग्रासी प्रहार का पाश भी हम पर डाला है। पर हमारी संस्कृति सभी में से अक्षुण्ण निकली है, आज हम उस चिरंतन संस्कृति पर गर्व कर सकते हैं। किन्तु संस्कृति धर्म-सापेक्ष्य रहती है, धर्म भावना को संकुचित साम्प्रदायिकता से अभिभूत नहीं मानना चाहिए। वह अध्यात्म-भावना के उच्च स्तर पर समाश्रित रही है, परन्तु हमने धर्म की इस उदात्त भावना को भी संकुचित सीमामें समेट कर रख लिया है, यही कारण है कि हम अपने शासन को भी धर्म-निरपेक्ष घोषित करने का दम्भ रचने लगते हैं, हमारा धर्म अत्यंत व्यापक रहा है। यह नहीं भूलना चाहिए कि सर्व धर्म सहिष्णुता के ध्येय ने ही—

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' जैसी भव्य भावना को जन्म दिया था, ऐसे विशद अर्थ वाले धर्म से ही हमारी उच्च संस्कृति पोषित हुई है, इसलिए वह विश्व के सभी समुन्नत समाज को आज भी संदेश देने का सामर्थ्य रखती चली आ रही है।

—०—
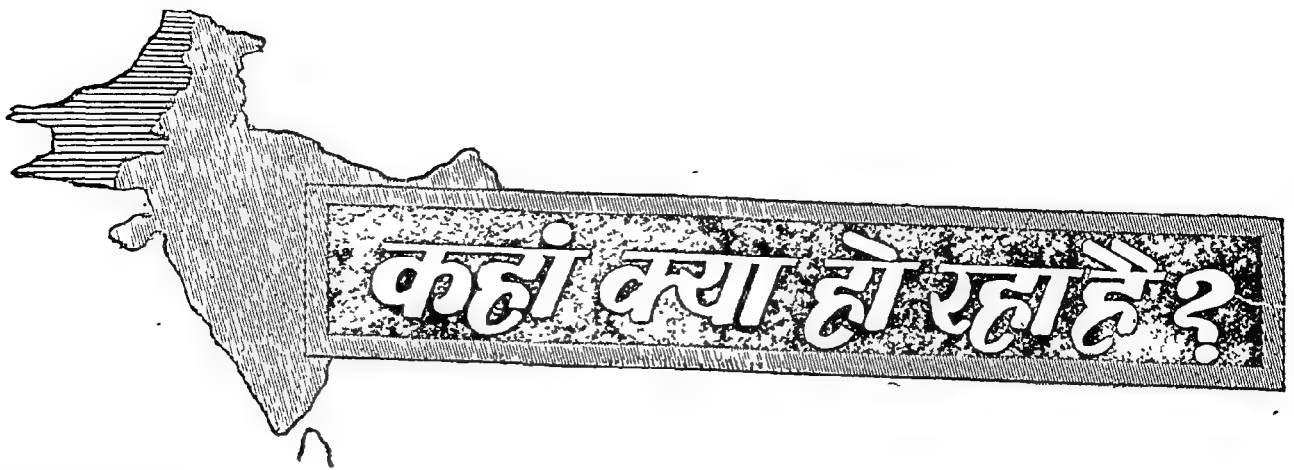
हरिजन सम्मेलन—

❂ कंडारी, खानदेश (डाक से) यहाँ १६ जुलाई को सायं ८ बजे श्री नारायणराव सुर्वे (भूदान कार्यकर्ता) की अध्यक्षता में एक हरिजन सम्मेलन आयोजित हुआ। हरिजन भाइयों को अणुव्रती बनने की प्रेरणा देते हुए श्री सुर्वे ने कहा—"मैंने आज 'अणुव्रत' की पुस्तिका पढी, पढ़ने के पश्चात् मुझे यह भूदान आन्दोलन से भी अधिक महत्व का प्रतीत हुआ।"

सन्तोपजनक उपस्थिति के बीच अन्य वक्ताओं ने भी छूआछूत व घृणा को बुरा बताते हुए आन्दोलन की भावना को श्रोताओं के सामने रखा।

विद्यार्थी सम्मेलन—

❂ भुसावल (डाक से) गत ७ जून को यहाँ मुनिश्री पुष्पराजजी के सान्निध्य में एक विद्यार्थी सम्मेलन सम्पन्न हुआ। अध्यापक-अध्यापिकाओं व छात्र-छात्राओं की लगभग ५०० की उपस्थिति में मुनिश्री ने नैतिक जीवन-निर्माण की दिशा में बढ़ने व विद्यार्थियों की आचरण-शुद्धि की बात पर जोर दिया। पाटलसा के एक स्थानीय प्रधानाध्यापक महोदय ने भी इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। श्री एम० बाफणा ने आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित विद्यार्थी जीवन-निर्माण उद्बोधन के नियम मराठी में पढ़कर सुनाये।

विचार विनिमय—

❂ देहली (डाक से) ४ जुलाई को यहाँ मुनिश्री नगराजजी व श्री काका कालेलकर के बीच लगभग २ घंटे तक विचार-विनिमय हुआ। काकाजी मुनिश्री के साहित्य से पूर्व ही परिचित थे अतः विचार-विमर्श का विषय प्रमुखतः साहित्यिक व दार्शनिक रहा।

इसी प्रकार ५ और ७ जुलाई को मुनिश्री के और भारत सरकार के गृहमंत्री पं० गोविन्द बल्लभ पन्त व श्रममंत्री श्री खंडूभाई देसाई के बीच क्रमशः विचार-विनिमय हुआ जिसमें पं० पन्त व श्री खण्डूभाई ने अणुव्रत आन्दोलन के प्रति अपनी अपनी सद्भावनाएं व्यक्त कीं।

कार्यकर्ताओं का दौरा—

❂ कलकत्ता। १६ जुलाई को यहाँ से अणुव्रत समिति के अर्थमंत्री श्री गजानन्द सरावगी ने राजगढ़, सरदारशहर व चुरु में आन्दोलन की भावना के प्रसार व 'अणुव्रत' पत्र के ग्राहक बनाने की दृष्टि से प्रस्थान किया। अगस्त के प्रथम सप्ताह में श्री देवेन्द्र हिरण भी उड़िसा, मध्यप्रदेश और मध्यभारत के ग्राम व नगरों के दौरे पर जा रहे हैं।

आवश्यक सूचनाएं

अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी ने जिन ११५ स्थानों के लिये अध्यात्म व अणुव्रत प्रसारक साधु-साध्वियों के चातुर्मास की घोषणा की है वहां के कार्यकर्त्ताओं से सूचनार्थ निवेदन है:—

१. अपने-अपने स्थानों पर चलनेवाले कार्यक्रमों से यथासमय केन्द्रीय कार्यालय को सूचित करते रहें।

२. जहां जिस साहित्य या अन्य वस्तु व जानकारी की जरूरत हो वे सीधे केन्द्रीय कार्यालय को लिखें। और जो साहित्यादि वहां भेजा जाय उसे कृपया वितरित कर दें।

३. आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी की सेवा में पहुंचकर जो सज्जन आन्दोलन सम्बन्धी विशेष जानकारी या अध्ययन करना चाहें वे यहां सूचित करें। उनके निवास व भोजनादि का प्रबन्ध समिति द्वारा हो सकेगा।

४. अस्थायी कार्यालय का पता यह है (जहां आचार्य श्री का चातुर्मास है)—*अणुव्रत समिति (अस्थायी कार्यालय)* सरदारशहर (राजस्थान)

—मंत्री, केन्द्रीय कार्यालय

(शेषांश पृष्ठ २४ का)

वैद्य, डाक्टर और वकीलों के द्वारा भी अनैतिकता का पोषण होता है। वैद्य, डाक्टर लोग लोभवश रोगी की चिकित्सा में ज्यादा समय लगा देते हैं। आज के वकील लोग सत्यासत्य कैसा भी मामला हो, भूखे बाज की तरह झपटते रहते हैं। कैसा सुन्दर आदर्श गान्धीजी ने उपस्थित किया था वकील समाज के सामने! 'अणुव्रत' आन्दोलन यही चाहता है कि वे सत्य को जीवन में रमायें।

सम्पादक व लेखकगण लोभ, स्वार्थ या द्वेषवश भ्रमोत्पादक और मिथ्या संवाद और लेख टिप्पणी लिख देते हैं। जिससे काफी विद्वेष फैलता है। लखनऊ के एक पत्र में प्रकाशित विज्ञापन के द्वारा साम्प्रदायिकता का जहरीला सर्प प्रकट हो गया था। लेकिन 'अणुव्रत' आन्दोलन ऐसी बातों का निषेध करता है और प्रामाणिकता व्यवहार में लाने का आग्रह करता है।

यह आन्दोलन मानवमात्र के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्न कर रहा है। समाज की रूढ़ियों और अंध विश्वासों को 'अणुव्रत' मिटाता जा रहा है। वास्तव में इसके द्वारा विश्व में एक महान क्रान्ति का बीजारोपण कर दिया गया है। 'अणुव्रत' आन्दोलन स्वयं पर शासन करने का आग्रह करता है।

आयुर्वेद का चमत्कार

पारगो च्यवन प्राश (अवलेह)—फेफड़े के विकार, सर्दी जुकाम, खांसी, शारीरिक दुर्बलता आदि में विशेष फायदेमन्द। इसमें केलसियम, लोहासार विटामिन 'सी' भी है।

पारगो द्राक्षासव—ताकत, ताजगी लानेवाला, भूख बढ़ानेवाला, दिमाग व दिलमें स्फूर्ति लानेवाला।

पारगो कुमारी आसव—पेट की बीमारी, लिवर की बीमारी, पांडुरोग, भोजन की अरुचि आदि में लाभदायक।

पारगो अशोकारिष्ट—हर प्रकार के स्त्री रोग की उत्तम व प्रसिद्ध औषधि।

पारगो अश्वगन्धारिष्ट—ताकत बढ़ानेमें, धातुपुष्ट करनेमें, हिस्टीरिया आदि बीमारीमें बहुत उपकारी।

पारगो सारिवाद्यारिष्ट—रक्तपित्त का विकार, सुजाक, वातव्याधि, श्वेत प्रदर आदि का शर्तिया इलाज।

पारगो दशमूलारिष्ट—प्रसूतिकाल में स्त्रियों के लिये बहुमूल्य औषधि।

पारगो अभयारिष्ट—रक्तश्राव, कब्जियत व बवासीर आदि में उपकारी।

निर्माता :—

प्रतापमल गोबिन्दराम

१७-११६, खेंगरापट्टी स्ट्रीट, कलकत्ता-७

कृपया माल मंगाते व सम्पर्क स्थापित करते समय "अणुव्रत" का उल्लेख अवश्य करें।

लेखकों से !

प्रत्येक रचना की स्वीकृति अधिक से अधिक १५ दिन में भेजदी जाती है। स्वीकृति के अभाव में रचना अस्वीकृत समझें। पर्याप्त डाक-व्ययके अभावमें अस्वीकृत रचनाएँ वापस न भेजी जा-सकेंगी और न ही अस्वीकृत रचनाओं के सम्बन्ध में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार किया जायगा। —सम्पादक

[समालोचनार्थ पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियाँ कार्यालय में भेजनी चाहिए एक प्रति आने पर केवल प्राप्तिमात्र दी जा सकेगी]

एक महान् चुनौती (लेख संग्रह) लेखक—मुनिश्री सुरेशचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, प्रकाशक—रतन प्रकाशन मन्दिर, आगरा—पृष्ठ ३२

यह पुस्तिका ९ लेखों का एक संग्रह है। इसमें आजकल जो जैन साधु-सम्प्रदाय में कतिपय आचार परम्पराओं को लेकर किंचित् विवाद उठ खड़ा हुआ है, उसके सम्बन्ध में एक नवीन दृष्टिकोण लेकर युगीन परिस्थितियों को देखते हुये विचार किया गया है। सभी विचारों का निष्कर्ष नया और पुराना शीर्षक लेखमें प्रतिध्वनित होता है। इस पुस्तिका में लेखक के विचार सामयिक हैं। जैन धर्म के सुशिक्षित वर्गको ये विचार पूर्णतया संगत एवं सुलझे हुए प्रतीत होंगे ऐसी आशा है। लेखक ने बड़ी गम्भीरता से विचारों को सामने रखने का प्रयास किया है। भाषा कहीं-कहीं अत्यन्त उग्र हो गयी है। लेखक का यह कहना ठीक है कि हजारों वर्ष पुराने नियमों का पालन आज के वैज्ञानिक युगमें कठिन है, फिरभी पुरानी सभी चीजें निकृष्ट नहीं होती।

"इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हर समाज में प्रगति के रोड़े पुराण तत्व ही होते हैं।" इस मत को अङ्गीकार करने में अवश्य विप्रति पत्ति होगी। क्योंकि नया भी सबका सब सोलहों आना ठीक नहीं होता। पुराने आचार-विचारों को आज के युगके साथ घसीटकर उसकी तुलना करना उपयुक्त नहीं। प्राचीन विचारों को परखने के लिये उसी युगकी परिस्थितियों पर दृष्टिपात करना चाहिये। तभी हम उसकी गहरायी में से वर्त्तमान युगके अनुरूप उपयोगी तत्वों को खोज सकेंगे। हाँ यह बात ठीक है कि इस वैज्ञानिक युग में अन्ध परम्परायें अपनाकर रूढ़ियों की पगडण्डी पर लकीर का फकीर बने रहना युगानुरूप नहीं है। यह बात भी मान्य है कि शिक्षा केवल भिक्षावृत्ति के लिये नहीं अपितु समाज के नैतिक पहलू को मार्जित करने के लिये और उसे पूर्णतया आत्म-निर्भर बनाने के निमित्त होनी चाहिये। शिक्षा का उद्देश्य ही यही है कि मनुष्य युग के परिवर्तनों को बुद्धि और विवेक से आँक सके और मानव समाज को समयोचित सूचना दे सके।

लेखक ने जैन श्रमण-संघ में निविष्ट कमियों की ओर बुद्धिमानी से संकेत किया है। मुनियों का लक्ष्य यही है कि वे गुमराह लोगों को अपने ज्ञान से सत्पथ पर प्रवृत्त करें। यदि समाज के उन्नायक पुरोहित स्वयं ही विपथगामी हो रहे हों और परस्पर विवाद के आवर्त में चक्कर खा रहे हों तो उनसे समाज क्या आशा रख सकता है? लेखक ने जो सामयिक चुनौती दी है उस पर शान्त चित्त से विचार करना चाहिये। आग, आग से नहीं बुझ सकती। सामाजिक रूढ़ियों और परम्पराओं के साथ किसी धर्म विशेषको घसीटना ठीक नहीं है। लोकाचार और शास्त्राचार में अन्तर होता है। यह अन्तर उतना ही होता है जितना एक शास्त्राचार्य में और निरक्षर व्यक्ति में। अतः हमारी राय से—"हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः" के अनुसार इस महान् चुनौती के विचार दूर विच्छिन्न लोगों को समन्वय के निकट लायेंगे और आनपेक्षित रूढ़ियों से समाज को सत्यता की ओर अग्रसर होने के लिये सचेत कर सकेंगे। —*पीताम्बर शास्त्री*

शक्ति मासिक (कहानी विशेषांक) जुलाई १९५६ सम्पादकः—श्री ब्रह्मानन्द नन्दा, प्रकाशक :—शक्ति कार्यालय, अजमेरी गेट देहली, पृष्ठ संख्या ८०, मूल्य-वार्षिक ४) एकप्रति ।≈) छः आने।

प्रस्तुत कहानी विशेषांक में यों तो सभी कहानियाँ अच्छी हैं। परन्तु "चन्द्रमोहन" कहानी पाठकों को ग्राम-सुधार की दिशा में रचनात्मक कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करनेवाली है। "आखिरी मंजिल" तथा 'माँग का सिन्दूर' विधवा समस्या पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। "शरबती" कहानी में वेश्या समस्या का अनुकरणीय समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'कहानी विशेषांक' होने पर भी दो तीन गीत इस अङ्क में प्रकाशित हुये हैं जिनमें श्रीमती विद्यावती मिश्र का गीत अत्यन्त प्रभावी है। "मजबूरी" एकांकी कन्या के विवाह की परेशानियोंका सुन्दर हल प्रस्तुत करता है।

संक्षेप में अङ्क विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालनेवाली रोचक कहानी व एकांकी से युक्त है। आवरण पृष्ठ आकर्षक व छपाई सुन्दर है। —*"हृदयेश"*

श्री प्रतापसिंह वैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित (३००० प्रतियां)

सौन्दर्य का दिव्य प्रकाश

यदि हम चाहते हैं कि हम नौजवान बने रहें, नवयौवन
का पुरजोश खून हमारे शरीर में बहता रहे—बुढ़ापे की
- रियों से हमारी देह जीर्ण-शीर्ण न हो तो हमें चाहिये कि
हम सदा अपने मन को यौवन के सुखद-विचारों के आनन्द-
समुद्र में लहरें खिलाते रहें। यदि हम चाहते हैं कि हम
सदा सुन्दर बने रहें, हमारे मुख-मंडल पर सौन्दर्य का दिव्य
प्रकाश झलका करे, तो हमें चाहिये कि सदा हम अपनी
आत्मा को सौन्दर्य के मीठे सरोवर में सुख-स्नान कराते रहें।
आत्मा को रमण करने का—आदर्श पर कायम रहने
का—क्या यह कुछ कम फायदा है? इससे शारीरिक,
मानसिक और नैतिक अपूर्णताएँ नष्ट हो जाती हैं। ऐसी
दशा में, ऐसी पूर्ण स्थिति में हो नहीं सकता कि हम कभी
बुढ़ापा देखें, क्योंकि बुढ़ापा अपूर्णता और जरा का ही तो
परिणाम है और आदर्श से तो ये बलाएँ कोसों दूर रहती हैं।

—स्वेट मार्डेन

आपके अणुव्रत के विषय में—

"...आपकी पत्रिका मिली, काफी पसन्द आयी। भारत में अपने ढंग की निराली है, इसमें सन्देह नहीं।"

—विश्वनाथ मुखर्जी, बनारस

"अणुव्रत का प्रकाशन हिन्दी की अभूतपूर्व घटना है। नैतिक चरित्र को बल देनेवाली ऐसी पत्रिकाओं की आज हमारे देश को बड़ी आवश्यकता है। आप इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर रहे हैं। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।"

—सुरेन्द्रमोहन मिश्र, चन्दौसी

"....चित्ताकर्षक आवरण ठोस और पठनीय रचनाएं इस पाक्षिक की विशेषता और आपके कुशल सम्पादन के परिचायक हैं। ऐसे सुन्दर और युगोपयोगी पत्र के प्रकाशन के लिये मेरी बधाइयां स्वीकार कीजिये।"

—योगेन्द्र चौधरी, रघुनाथपुर

"...आपका भेजा हुआ जुलाई का 'अणुव्रत' मिल गया। धन्यवाद, अणुव्रत पढ़ने के बाद कुछ ऐसा लगा मानो किसीने मेरे विचारों को ही लेकर इस पत्र में जमा दिया हो। वे ही विश्वास, वे ही मत जो प्रायः मेरे मन को मन्थित करते रहते हैं, इस पत्र में ज्यों के त्यों रख दिये गये हैं।"

—सिद्धान्त संकल्प, प्रयाग

"....अणुव्रत द्वारा स्वस्थ, सुरुचिपूर्ण और प्रेरक साहित्य आप समाज को दे रहे हैं, ऐसा लगा। आशा है भविष्य में अपेक्षया अधिक निखर, सँवर कर, 'अणुव्रत' सक्रिय सहयोग समाज-सुधार में दे सकेगा। मेरी शुभ कामनायें स्वीकार करें।" —शैलेश, बम्बई

"....'अणुव्रत की प्रति के लिये धन्यवाद। निःसन्देह इस समय ऐसे पत्र की बहुत आवश्यकता थी जबकि चहुं ओर से नैतिक पतन की घोर घटायें भारत को घेरे हुए हैं। आज का भारतवासी अपनी संस्कृति और सभ्यता को छोड़ पाश्चात्य के रंग में रंगा जाने की चेष्टा कर रहा है और पतन के उस गर्त की ओर बढ़ रहा है जिसमें दल-दल ही दल-दल है, जहाँ धँसना ही धँसना है। इस समय आपने ऐसे कार्य को सम्हाला है जिसकी अत्यधिक आवश्यकता थी। 'अणुव्रत' की सामग्री रुचिकर होने के साथ-साथ हमारे सांस्कृतिक विकास की द्योतक है। मैं आपको इस सफल प्रयास के लिये बधाई देता हूँ।"

—जितेन्द्र तारा पत्रकार, जालन्धर

"....'अणुव्रत' मुझे बहुत पसन्द आया है और ऐसा मालूम पड़ता है कि इसका विशेषांक प्राप्त करने के लिये अगस्त तक ग्राहक बन ही जाना पड़ेगा।"

—अरुणकुमार द्विवेदी, कानपुर

"....'अणुव्रत' प्राप्त हुआ। यह वास्तव में नैतिक जागरण का अग्रदूत है। मैं इसकी शुभ कामना चाहता हूँ।"

—सुरेशप्रसाद 'भ्रमर', आसनसोल

—इस अंक में—

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१

卐

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १५ अगस्त, १९५६ [अङ्क २१

हमारा यह दृष्टिकोण अशान्ति की चिंगारियां उछाल रहा है !

संसार में रचा-पचा मानव सोचता है—संसार ही उसके लिये सब कुछ है। अपने सांसारिक जीवन को सुखी, समृद्ध और सुसज्ज बनाना वह अपना लक्ष्य मान बैठा है। इससे उसका जीवन भोगोन्मुख है। भोगोन्मुखता को पूरा करने के लिये उसे येनकेन प्रकारेण अर्थ-संग्रह में जुटना पड़ता है। इतनी उलझन में वह पड़ जाता है कि अपने इस घेरे के अतिरिक्त उसे कुछ सूझता तक नहीं। सूझे भी तो कैसे? स्वयं उसने बड़े सघन आवरण अपने लिये तैयार कर लिये हैं।

व्यक्ति की यह समझ सचमुच भूल है। जिन भोगोपभोगों की भूल-भूलैया में गुमराह बन वह अपने को भूल जाता है, जीवन को भूल जाता है, वह भोग-सामग्री मृग-मरीचिका से अधिक क्या है? जीवन को वह जर्जर, ध्वस्त और निराश्रित जैसा बना देती है। सही माने में यह सुखाभास है, सुख नहीं। इन्हें सुख मानना ही सबसे बड़ी भूल है।

क्रान्ति का स्वर

सच्चा सुख, सच्ची शान्ति भोग में नहीं है, त्याग में है, भौतिक साधनों में नहीं है, अध्यात्म-साधना में है। इस तत्व को प्रत्येक व्यक्ति को हृदयंगम करना है। यह सम्भव नहीं कि संसार के समग्र व्यक्ति संसार से सर्वथा पराङ्मुख बन अपने को सम्पूर्ण रूप से अध्यात्म-साधना में जोड़ दें। ऐसे तो कुछ ही व्यक्ति हुआ करते हैं। पर साथ साथ में इतना तो है—जीवन ऐकान्तिक रूप में भोग-परायण तो न बने। जहां तक बन सके, अध्यात्म-जागरण भी जीवन में व्यापे।

अध्यात्म जागरण का अर्थ है—जो विकार, अशुद्ध प्रवृत्तियां आत्मा को मलिन बना रही है, उनसे छुटकारा पाना। पर-पीड़न, पर-शोषण आदि हिंसक वृत्तियों से जीवन दिन पर दिन पतन की ओर जा रहा है। उसका सत् स्वरूप दूषित हो रहा है। लोभ, अविश्वास, छल, मिथ्याचरण जैसी नीच वृत्तियों ने जीवन को घिनौना बना रखा है। इन सब पर रोक लगानी होगी। ताकि आत्मा अपनी निर्मलता को न खोये। आत्मा में व्यापनेवाले इन विकारों से आत्मा को बचाये रखना, पहले के लगे विकारों को निकालकर बाहर फेंकना—यही अध्यात्म-साधना है।

इसके लिये आत्मा के शुद्धस्वरूप का चिन्तन, उसके गुणों का स्मरण, उस पर स्थिर बने रहने की भावना, आते हुए विकारों को देख अस्थिर न बनने की दृढ़ता, इस मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों का हंसते-हंसते मुकाबला आदि में मानव को जुड़ना होगा। ऐसा कर अपने आप को कलुषित वृत्तियों से बचाने में बहुत कुछ सफल हो सकेगा।

नीचाई की ओर जाने में कठिनता नहीं होती। बिना ताकत लगाये जाया जा सकता है। पर ऊपर उठने में, ऊंचा चढ़ने में कठिनाई होती है। वही बात आत्म-विकास के ऊंचे आदर्शों को पाने में है। हां, कठिनाई जरूर लगेगी पर उस ओर आगे बढ़नेवाले को उस कठिनाई में भी एक रस आता है, प्रसन्नता का अनुभव होता है।

आवश्यकताओं की पूर्ति करके शान्ति पाने का जो दृष्टिकोण बनता जा रहा है वह एक भ्रामक दृष्टिकोण है, जो जगत् पर अशान्ति की चिनगारियां उछाल रहा है। संयम की साधना ही शान्ति की साधना है, जिस पर आज के मानव को अग्रसर होकर वास्तविक सुख और शान्ति को प्राप्त करना है।

आज का लोक-जीवन अशान्ति और विद्वेष के बीच से गुजर रहा है। संयम और सदाचार का अभाव ही इसका मूल हेतु है। लोग भौतिक सुख-सुविधाओं की ओर अधिक दौड़ते हैं, संयम का पक्ष कमजोर पड़ता जा रहा है। आवश्यकतायें दिन पर दिन बढ़ रही हैं फिर अशान्ति हो भी क्यों नहीं? जो कार्य अशान्ति के हैं उनसे वह बढ़ेगी ही।

—आचार्य तुलसी
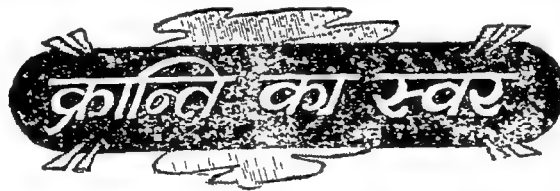
स्वाधीनता की पुकार

आज १५ अगस्त १९५६ है, जबकि हम सदियों की गुलामी के बन्धनों को तोड़ स्वाधीनता के ९ वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। आज का दिन हमारे देश का मुक्ति-दिवस है, हमारे राष्ट्र का परम कल्याणकारी राष्ट्रीय पर्व है, जो विश्व-क्रान्ति की ऐतिहासिक घटनाओं में सदैव स्मरणीय रहेगा।

आजादी के बाद गत ८ वर्षों में हमारे राष्ट्र ने अनेक कठिनाइयों का सामना किया है। जीवन-क्रान्ति के थपेड़ों में दुर्धर्ष संघर्ष देखे हैं। देश की अनेक समस्याओं को अत्यन्त धैर्य से सुलझाकर अपनी स्थिरता का प्रभाव छोड़ा है और अपनी राष्ट्र-व्यापी शक्तियों को विकसित किया है।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य जो हुआ है, वह यह कि विदेशों में भारत की अविस्मरणीय प्रतिष्ठा बढ़ी है। विश्वशान्ति के प्रयत्नों में भारत ने अपना नैतिक कर्त्तव्य निभाया और अपनी तटस्थ नीति के कारण न सिर्फ एशियाई वरन् योरोपीय राष्ट्रों में भी लोकप्रियता प्राप्त की है। पश्चिमी राष्ट्रों में जहाँ अमरीका जैसे शक्तिशाली देश का सहयोग प्राप्त किया, वहां सोवियत रूस की समाजवादी सरकार के साथ न सिर्फ अटूट सम्बन्ध स्थापित किये वरन् उन्हें जनतंत्रात्मक शक्तियों के बीच लाकर भारत ने अप्रत्यक्ष रूप से जो कार्य किया है, उससे न केवल भारत की प्रतिष्ठा में एक नई कड़ी जुड़ी है, वरन् परस्पर राष्ट्रों में सह-अस्तित्व और मैत्री में अपूर्व अभिवृद्धि हैं। निःसंदेह आजादी के बाद भारत का यह प्रयत्न अपने ढंग का अनूठा और लोक-कल्याणकारी है, जिससे हमारी स्वतन्त्रता की विदेशों में साख बढ़ी है।

पंचवर्षीय योजनाओं, सामुदायिक कार्यों और बांधों के निर्माण से देश में निर्माणात्मक कार्यों की अभिवृद्धि हुई है और जनता में नव-निर्माण की एक अपूर्व लहर फैली है। आज गांव-गांव में कहीं स्कूल खुलने की चर्चा है तो कहीं सड़क नापी जा रही है। कहीं कुएं खुद रहे हैं, कहीं तालाब बन रहे हैं और कहीं सहकारी-समितियां संगठित हो रही हैं। चारों ओर हलचल है। संस्थाओं की भी बाढ़ आ रही है। किसान व मजदूरों में एक नई चेतना सर्वत्र दिखाई देती है। कभी हाथों से काम नहीं करनेवाले भी आज फावड़ा और गेंती के अभ्यस्त बन रहे हैं। जनता-जनार्दन के श्रम से बड़ी बड़ी योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं। यह जन-जागृति का शुभोदय है। ऐसा लगता है कि हमारी स्वाधीनता की किरणें आज चहुँ ओर प्रस्फुटित हो रही हैं।

सम्पादकीय

इसी तरह आर्थिक उन्नति और बेकारी-निवारण के लिये भी व्यापक कदम उठाये जा रहे हैं। देश की समृद्धि के लिये बड़े-बड़े निर्माण कार्य किये जा रहे हैं और अब दूसरी पंचवर्षीय योजना में बेकारी-निवारण का भी एक वृहद प्रयत्न किया जा रहा है। आवश्यकता है योजनाएं आर्थिक क्रान्ति का मूलभूत लक्ष्य बनें और वे केवल शहरों में केन्द्रित न होकर गांव गांव की मार्ग दिशा बनें। यह दृष्टि सचमुच ही हमारी स्वतंत्रता को अधिक पुष्ट व चिरायु करेगी।

लेकिन इन सब कार्यों के बावजूद भी हमारी स्वाधीनता तबतक अधूरी ही रहेगी, जबतक कि राष्ट्र का नैतिक स्तर उन्नत और बलवान नहीं बनेगा। आज भी हमारे देश में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। राज्य के ऐसे अनेक प्रतिष्ठान हैं, जिनमें घूसखोरी के बिना काम नहीं चलता। व्यवसायियों में ब्लेक और मिलावट की प्रवृत्ति घटने की अपेक्षा बढ़ती ही जा रही है। हमारे क्रय-विक्रय की साख विदेशों में नहीं है। यहां तक कि देशवासी भी भारतीय ट्रेडमार्क की वस्तु को अप्रमाणित और अविश्वसनीय मानकर खरीदने से हिचकते हैं और जहांतक साध्य हो विदेशी वस्तु ही लेने का प्रयत्न करते हैं। बन्द माल में प्रायः ऐसा होना भी है। यह हमारे लिये कितनी लज्जा की बात है? इसी तरह आज हमारे राष्ट्र के नागरिकों का चरित्र प्रत्येक क्षेत्र में गिरता जा रहा है। ऐसे नागरिकों की संख्या अल्प है जो अपने कार्य में विश्वसनीय और ईमानदार हैं। इसीलिये वे अल्प भी 'आदर्श' नाम से सम्बोधित होते हैं। आश्चर्य है, जहाँ भारतीय संस्कृति प्रत्येक नागरिक के लिये आदर्श नागरिकता का उद्‌बोधन करती है, वहां यह अल्प आज आदर्श का प्रतीकमात्र रह गया है और बहुजन उस अल्प का कथनमात्र! यह कैसी विचित्रता है? यही स्थिति आज हमारे राष्ट्र के भीतरी अवयवों को दुर्बल और निष्प्राण कर रही है। जहाँ आत्मा नहीं, वहाँ शरीर निष्प्राण ही तो है! हमारी संस्कृति की मूल भित्ति चरित्र है और यह चरित्र आज भौतिक आवरणमात्र बनता जा रहा है। इसीलिये चारों ओर अनुशासनहीनता आती जा रही है। प्रान्तीय परिवर्तन को लेकर हिंसा की उत्तेजना का मूल कारण यही है। हम भारतीय नागरिक की दृष्टि से न सोचकर अपने स्वार्थ को प्राथमिकता देते हैं और नागरिकता की बात भूल जाते हैं। मिलावट करते समय हमारे व्यवसायी प्रमाणिकता को नहीं देखते। उन्हें येनकेन प्रकारेण पैसे से मतलब है। यही बात रिश्वत लेनेवालों के लिये है। छोटे-छोटे तुच्छ स्वार्थों के लिये व्यक्ति आज

कितना पतित वन गया है। चरित्र में सर्वाधिक गिरावट हमारे विद्यार्थी वर्ग में आ रही है। उनमें विलासिता, चकमावाजी, स्वार्थपरता और अनुशासनहीनता विशेष जोर पकड़ती जा रही है। आये दिन वात-वात पर हड़ताल की धमकियाँ मिलती हैं, सभाएं होती हैं, पुतले जलाये जाते हैं। यह हमारी भावी पीढ़ी की हालत है, जो कल के भारत के निर्माता हैं। शिक्षक आज छात्रों के आधीन हैं, उन्हें छात्रों की दृष्टि देखकर चलना होता है। सरकार छात्रों में अनुशासन लाने के लिये विभिन्न समितियां स्थापित कर रही है। लेकिन कोई असर नहीं हो पा रहा है। हो भी नहीं सकता! जबतक कि चरित्र-निर्माण को माध्यम मानकर शिक्षण में क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं किया जाता। आज आवश्यकना राष्ट्र के हर क्षेत्र और हर वर्गमें चरित्र-निर्माण की है। अन्यथा यह भौतिक भूख हमें कहीं की न रक्खेगी और हमारी स्वाधीनता हमें ही खाने को दौड़ेगी। अनुभव यह सिद्ध भी कर रहा है।

कहा जा सकता है कि नैतिकता की यह समस्या बड़े-बड़े अधिकारी वर्ग, व्यापारी समाज और छात्रों के लिये ही है। यह कहना गलत होगा। चारित्रिक दुर्बलता, अनागरिता, स्वार्थवृत्ति, मादकता और अनुशासनहीनता का साम्राज्य वड़े से लेकर छोटों तक व्यापक रूप में छाया हुआ है। किसानों, मजदूरों व निम्न जातियों में आज जो अज्ञानता, संकीर्णता व नैतिक दुर्बलता है, यह सर्व विदित है। वारीकी से हमें इस वृहत् समस्या के प्रति अपना ध्यान आकर्षित करना होगा।

हमारी निर्माण-योजनाएं और वैदेशिक प्रतिष्ठा भी तव अधिक कारगर होगी, जब राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक अपने चरित्र का सम्वल होगा, हमारे राज्य का प्रत्येक कर्मचारी घूंस लेना पाप समझेगा और हमारे देशके व्यवसायी मिलावट व ब्लेक से घृणाकर अपनी प्रमाणिकता का परिचय देंगे। हमारे देश की भावी पीढ़ी चरित्र-निर्माण को अपना लक्ष्य मानकर विदेशों में अपने जीवन का एक अनुकरणीय आदर्श रक्खेगी। किसान और मजदूर अब अपने-अपने क्षेत्र में उन्नत और ज्ञानशीलता का वाना ग्रहण करेंगे। यह काम सबसे बड़ा और अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दुर्भाग्य से इसकी उपेक्षा ही हो रही है। इसीलिये हजारों योजनाओं के बावजूद भी हमारे 'राष्ट्र की आन्तरिक दुर्वलता कायम है। अणुव्रत आन्दोलन लगातार ६ वर्ष से यही आवाज-बुलन्द कर रहा है और आज भी जवकि हमारा राष्ट्र स्वाधीनता के ८ वर्ष समाप्त कर नवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है, अत्यन्त विनम्रता पूर्वक सारे देश को आह्वान किये विना नहीं रह सकता कि केवल भौतिक योजनाओं से मुक्ति सम्भव नहीं। आत्मिक स्पन्दन के विना सव कुछ निष्प्राण है। स्वाधीनता की अखंड ज्योति को चिर प्रकाशमान रखने के लिये शोषण, अनाचार व भ्रष्टाचारसे मुक्ति आवश्यक है और यह तब ही सम्भव है, जब हमारी दृष्टि चरित्र-निर्माण अर्थात् नैतिक-क्रान्ति की ओर मुड़े। इसके लिये वृहत् आन्दोलन की जरूरत है। क्या हम स्वाधीनता-दिवस के उल्लास में अपना आत्म-निरीक्षण कर जीवन-क्रान्ति की चिन्गारियों को अग्रसर करेंगे? स्वाधीनता की आत्मा आज रह-रह कर यही पुकार रही है।

● शान्ति का अग्रदूत

लेबनान की एक सभा में भाषण देते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा—"अब समय आ गया है, जबकि आधुनिक विश्व में पृथक्तावाद नहीं चल सकता और न कोई बड़ी लड़ाई होने दी जा सकती है। कारण यह है कि यदि कोई बड़ी लड़ाई हो गई तो मानव जाति खत्म हो जायगी।" नेहरूजी ने यह शब्द इतनी दृढ़ता से कहे हैं कि मानों अणुकी कोई शक्ति उन्हें अपने शांति मिशन से विचलित नहीं कर सकती। जहाँ एक ओर योरोप के शक्तिशाली नेताओं के मस्तिष्क में अणुका भूत सवार है और वे अपने को इसके कारण विश्व की करोड़ों जनता के भाग्य के एकमात्र अधिनायक मान बैठे हैं, वहाँ नेहरूजी की निर्भीक व आत्म-प्रेरणा से युक्त यह जन-वाणी आज उनके अणु आयुधों को भी चुनौती दे रही है। सह-अस्तित्व के नारेके बाद पंडितजी ने यह नारा दिया है—"अब विश्व में कोई बड़ी लड़ाई नहीं होने दी जायगी।" यह उनकी न सिर्फ ऐशियाई वरन् योरोपीय जनता की भावना का भी दृढ़ प्रतिनिधित्व करती है। शान्ति के इस मिशन में नेहरूजी ने बाहर रहकर विश्व का एक बड़ा लोकमत जाग्रत और संग्रहीत किया है और आज वह बलवान होकर अणु-आयुधों पर शांतिपूर्ण आक्रमण कर रहा है। यह आक्रमण अणु-युद्ध से भी अधिक ताकतवर हो सकता है। शान्ति के अग्रदूत के रूपमें नेहरूजी ने केवल भारतीय आत्मा का प्रतिनिधित्व ही नहीं किया है वरन् विश्व-शान्ति का एक महानतम कार्य सम्पन्न किया है। युग संकेत दे रहा है कि हम भी अपने नेताके शब्दों में इस आत्म-विश्वास को प्रस्फुटित करें कि "विश्व में अब कोई बड़ी लड़ाई नहीं होने दी जायगी।"

● घातक और असाध्य

भारत के दूरदर्शी राजनीतिज्ञ श्री राजगोपालाचार्य बहुत कम बोलते हैं लेकिन जब भी बोलते हैं, बहुत ही पते की बात कहते

(शेषांश पृष्ठ २६ पर)

अहिंसा और विश्वशान्ति

[श्री सेवाधर झा एम० ए०, साहित्यरत्न]

[भौतिक बल की प्रतिद्वन्द्वता में यदि आज कोई राष्ट्र आगे है तो कल कोई उससे भी अधिक बलशाली हो सकता है। शस्त्रों की घुड़दौड़ में कब कौन आगे रहेगा, यह बताना बड़ा कठिन है, उसके द्वारा मनुष्य सृजन की ओर नहीं, बल्कि संहार की ओर बढ़ता है। यदि हमें सृजन व शान्ति की ओर बढ़ना है तो हमारे लिये एकमात्र मार्ग अहिंसा का है।]

संसार में आज चारों ओर हिंसा का बोलबाला है। एक प्राणी दूसरे प्राणी को तथा एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को निगल जाना चाहता है और अपने अस्तित्व को सुदृढ़ बनाना चाहता है। यही कारण है कि आज विश्व के किसी भाग में वास्तविक शांति दृष्टि-गोचर नहीं होती। ऊपर से तो सभी शांति-शांति चिल्लाते हैं किन्तु भीतर से मारात्मक शस्त्रास्त्रों का निर्माण करने में संलग्न हैं। उन्हें आशंका है कि किसी भी समय कोई शक्तिशाली राष्ट्र उन पर आक्रमण कर उनको अपने में आत्मसात न करले और संसारसे उनका अस्तित्व ही विलुप्त हो जाय। आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को सन्देह की दृष्टि से देखता है। सुरक्षा के नामपर तरह-तरह की दल-बन्दियां हो रही हैं और अपने प्रभाव को विस्तृत करने के लिये विभिन्न प्रकार के राज-नीतिक दाँव-पेंच खेले जा रहे हैं। एक सम्पन्न तथा शक्तिशाली राष्ट्र किसी अनुन्नत तथा पिछड़े हुए देश की जो सहायता कर रहा है, उसके पीछे भी उसका स्वार्थ सन्निहित है। ऐसी अवस्था में यह नहीं बतलाया जा सकता है कि संसार के मानव कबतक अपना शांति-पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकेंगे और कब उनके ऊपर प्रलय के बादल मँडराने लगेंगे। विगत महायुद्ध का इतिहास इस भावना को और भी पुष्ट करता है कि भविष्य में यदि युद्ध होगा तो उसमें ऐसे-ऐसे शस्त्रास्त्रों को काम में लाया जायगा जिनसे विश्व का विनाश निश्चित है। ऐसी अवस्था में मानव कबतक अपने कल्याण की आशा कर सकता है?

यदि विश्व को अपना अस्तित्व कायम रखना है, यदि मानव समाज चाहता है कि वह उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर बढ़ता जाय तो उसे 'जियो और जीने दो' की नीति अपनानी होगी। उसे अपना हृदय विशाल बनाना होगा और अपनी संकीर्णता, ईर्ष्या-द्वेष और स्वार्थ को तिलांजलि देकर ऐसे पथ का आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा जिससे सभी प्राणियों का हित हो—सबका कल्याण संभव हो सके।

इन सब बातों पर विचार करने के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि हमें विश्व का कल्याण अपेक्षित है तो हमें हिंसक नीति का परित्याग करना होगा। हिंसा का त्याग ही वास्तव में अहिंसा का सम्मान है। लोगों को यह विश्वास नहीं होता कि अहिंसा के द्वारा भी कोई राष्ट्र अपने को जीवित रख सकता है या अपना अस्तित्व सुरक्षित रख सकता है। वस्तुतः विश्व का आजतक का इतिहास यही प्रमाणित करता आया है कि हिंसकों की ही सदैव विजय होती आयी है और हिंसा करनेवाले राष्ट्रों की ही गिनती प्रथम वर्ग के राष्ट्रों में हुई है। ऐसी अवस्था में सहसा अहिंसा के महत्व पर विश्वास भी हो तो किस प्रकार? किन्तुः जब हम गंभीरता-पूर्वक विचार करें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि आजके युग में हिंसा की नहीं प्रत्युत अहिंसा की आवश्यकता है। अहिंसा का संदेश देने वाले भगवान बुद्ध; महावीर स्वामी और ईसा-मसीह के द्वारा निर्धारित मार्ग को हमें पुनः अपनाना होगा। हम अहिंसा के द्वारा एक दूसरे के शरीर पर नहीं प्रत्युत हृदय पर विजय प्राप्त कर सकेंगे। अहिंसा के सामने क्रूर से क्रूर शासक को भी नतमस्तक होना पड़ेगा और बाध्य होकर अपनी हिंसा-वृत्ति त्याग देनी होगी। इस दिशा में विश्ववंद्य महात्मा गांधी का उदाहरण हमारे सामने है। अहिंसा के सेनानी महात्मा गाँधी के साथ अहिंसात्मक संग्राम में भाग लेनेवाले उन्मुक्त कण्ठ से इस बातको स्वीकार करते हैं कि अहिंसा हमारी दुर्बलता का चिह्न नहीं थी; बल्कि वह एक ऐसी साहसिकता का प्रतीक थी जिसके सामने ब्रिटेन जैसे साम्राज्यवादी एवं हृदयहीन राष्ट्र को घुटने टेक देने पड़े और विश्व के समक्ष पुराना उदाहरण फिर से नवीन हो उठा कि अहिंसा के द्वारा किसी के हृदय पर विजय प्राप्त की जा सकती है और ऐसी विजय संसार में चिरकाल के लिये अपनी अमिट छाप छोड़ जाती है।

इतिहास में हम पढ़ते हैं कि सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार देश के अलावा विदेशों में भी बड़े ही जोर-शोर के साथ कराया। अनेक देशों में बौद्ध भिक्षु भेजे गये। आज के युग की तरह उनके पास न हाइड्रोजन बम था और न एटम बम। फिर भी चीन, जापान, सिंहल, मलाया, जावा, सुमात्रा और तिब्बत आदि देशों की जनता ने हर्ष के साथ बौद्ध को—अहिंसा के सिद्धांत को अपनाया। कई देशों की जनता धर्म

राजधर्म घोषित कर दिया गया। क्या इन देशों की जनता मूर्ख थी? हर्गिज नहीं। उन्होंने यह महसूस किया कि विश्व में 'जियो और जीने दो' की नीति को सार्थक करने के लिये एकमात्र मार्ग अहिंसा है। इसीके द्वारा मानव मानव बना रह सकता है। अथवा वह दानवता की श्रेणी में पहुँच जायगा, वास्तव में जबतक भारत के साथ-साथ ये देश अहिंसा के सिद्धांत पर अटल रहे तबतक किसी प्रकार का रक्त-पात या खून-खराबी न हुई, किन्तु भगवान बुद्ध के संदेश को भुला देने एवं नयी परिस्थितियाँ आ जाने के कारण उन्हें अहिंसा का मार्ग त्यागने के लिये विवश होना पड़ा। इन देशों में अहिंसा की विजय भारत की विजय थी और संसार के सामने भारत ने यह प्रमाणित कर दिया कि यदि किसी को अपने वश में करना है तो उसके हृदय पर विजय प्राप्त करें और उसके लिये सर्वोत्तम मार्ग अहिंसा है। संसार में जितने भी धर्म हैं, अहिंसा के महत्व को सभी प्रमुखता देते हैं। धार्मिक दृष्टिकोण से भी अहिंसा का स्थान अत्यन्त प्रमुख है। सभी धर्म शांति की स्थापना पर जोर देते हैं। *शांति स्थापना का अर्थ ही है* अहिंसा का समर्थन। जबतक हिंसा होती रहेगी तबतक शांति कभी संभव नहीं। हिन्दू धर्म सदा से शान्ति को उच्च स्थान देता आया है। उपनिषद् शान्ति का उपदेश देती है। धर्म के लिये यम और नियम निर्धारित किये गये हैं। उनमें अहिंसा को प्रमुख स्थान दिया गया है। महात्मा पतंजलि ने अपने योगसूत्र में लिखा है :—

'अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यपरिग्रहाः यमाः' अर्थात् अहिंसा, सत्य, आस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच यम हैं। यहां भी पहला स्थान अहिंसा को ही दिया गया है।

'इस्लाम' शब्द भी अत्यन्त उच्च और पवित्र आशय रखता है। उसे हम धर्म का सार-तत्व कह सकते हैं। यह शब्द 'सल्म' मूल से बना है, जिसका अर्थ होता है शांति। इस्लाम ईश्वर की शांतिपूर्ण स्वीकृति को कहते हैं। शांतिपूर्ण स्वीकृति का तात्पर्य है—आत्म-त्याग, अहंकार को दूर करना और सर्वात्मभाव को ग्रहण करना।

संसार के दो प्रमुख धर्मों-बौद्ध और जैन में तो अहिंसा ही सर्वोपरि है। भगवान बुद्ध और महावीर स्वामी अहिंसा के ही अवतार माने गये हैं। ईसामसीह का कहना था कि अगर कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल फेर दो। इस प्रकार संसार के सभी प्रमुख धर्म अहिंसा का उपदेश देते हैं। एशिया के लिये यह गौरव का विषय है कि संसार के सभी प्रमुख धर्मों की उत्पत्ति यहीं से हुई और आज भी एशिया संसार को अहिंसा का संदेश दे रहा है। महात्मा गांधी ने अहिंसा के सिद्धांत को नये रूप में उपस्थित किया और भारतवर्ष उनके मार्ग पर चलकर अहिंसा के द्वारा विश्वशांति के लिये प्रयत्नशील है। इस प्रकार धार्मिक दृष्टिकोण से भी विश्व में अहिंसा का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है।

विज्ञान के विकास ने मानव को हिंसा की ओर अधिक प्रवृत्त किया। इसमें शक नहीं कि विज्ञान ने विश्व को बहुत लाभ पहुंचाया। किन्तु, इसे भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उसने मानव को विनाश के गड्ढे में ढकेल दिया। लोग आध्यात्मिकता को छोड़ कर भौतिकता की ओर तीव्र गतिसे बढ़ने लगे। वे आध्यात्मिक सुख को छोड़कर भौतिक सुख की ओर अग्रसर हुए। इतना ही नहीं यदि यों कहा जाय कि विज्ञान ने सात्विक ज्ञान को विनष्ट कर दिया तो कोई अत्युक्ति न होगी। सात्विक ज्ञानके द्वारा ही मनुष्य अपने स्वार्थ और पारस्परिक भेदभावों को भूलकर विश्व-बन्धुत्व की ओर अग्रसर होता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में सात्विक ज्ञान के सम्बन्ध में कहा है :—

सर्वभूतेषुयैनकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं सात्विके स्मृतम्॥

अर्थात् सात्विक ज्ञान वह है जो सब जीवों में एक ही अविनाशी भाव देखता है और विभेदों में अविभेद या एकता के दर्शन करता है। कहना न होगा कि मनुष्यों में उपर्युक्त भावना तभी आ सकती है जब वे अहिंसा के मार्ग को अपनावें।

अब प्रश्न यह आता है कि यदि शक्ति से उन्मत्त कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण कर दे तो उससे बचने का कौन सा उपाय है। विश्ववंद्य महात्मा गाँधी ने एक बार एक महिला के पत्र का उत्तर देते हुए लिखा था कि यदि कोई तुम्हारी प्रतिष्ठा को नष्ट करना चाहता है तो तुम हर प्रकार से अपनी रक्षा करो। ऐसे अवसर पर आक्रमणात्मक कार्य भी अहिंसा के अन्तर्गत गिना जायगा। इसी प्रकार अपनी सुरक्षा के लिये जो लड़ाई लड़ी जायगी वह अहिंसात्मक कहलायेगी। ऐसे मौके पर मौन रहना कायरता है। हमें सदैव यही ध्यान में रखना चाहिये कि हम किसी पर आक्रमण न करें अथवा किसी राज्य पर बलपूर्वक अधिकार कर उसके अस्तित्व को खतरे में न डालें।

आज विश्व के समक्ष विविध समस्याएं उपस्थित हैं और ऐसा ज्ञात होता है कि उनसे संलग्न राष्ट्र युद्ध के द्वारा उन्हें हल करने का प्रयत्न करेंगे। किन्तु, आज तक युद्ध के द्वारा किसी भी समस्या का स्थायी समाधान नहीं हुआ। हिंसा से सदा नरसंहार एवं विनाश के दृश्य उपस्थित होते रहे हैं और होते रहेंगे। भौतिक बल की प्रतिद्वन्द्विता में यदि आज कोई राष्ट्र आगे है तो कल कोई

उससे भी अधिक बलशाली हो सकता है। शस्त्रों की घुड़दौड़ में कब कौन आगे रहेगा, यह बताना कठिन है। उसके द्वारा मनुष्य सृजन की ओर नहीं, बल्कि संहार की ओर बढ़ता है। यदि हमें सृजन की ओर बढ़ना है; यदि हमें शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करना एवं दूसरों को सुखी देखना चाहते हैं तो हमारे लिए एकमात्र उपयुक्त मार्ग अहिन्सा है। संसार आजतक युद्धों के द्वारा केवल संहार ही करता आया है। द्वितीय महायुद्ध इसका सबसे ताजा उदाहरण है। यही कारण है कि आज पैंतरेबाजी तो बहुत हो रही है किन्तु; सभी युद्ध के विनाशात्मक प्रभाव से डरते हैं। ऐसे लोगों को खुलकर अहिंसा का समर्थन करना चाहिए तभी विश्व में शांति स्थापित हो सकेगी और विश्व-बंधुत्व का नया आदर्श उपस्थित किया जा सकेगा।

गद्यगीत—

खंडहर

[श्री सन्तोषकुमार जैन]

देव ! मैं तेरी ड्योढ़ी पर आ गया। शीश झुकाने—नहीं-नहीं पुष्पाहार समर्पित करने, वन्दना के स्वर गुन-गुनाने,

नहीं—कदापि नहीं।

मेरा कलुषित हृदय-विषैली रसना, पापों के भार से बोझिल हाथ-पाँव तुम्हारा स्पर्श करने योग्य नहीं।

बगल में दबी हुई पोटली देख रहे हो ! इसमें सुदामा के चावल नहीं, भिलनी के मीठे बेर नहीं।

यह तो मेरे अपराधों का कच्चा खाता है।

शैशव और यौवन के स्वप्नों की झिलमिल छाया चूर्णकर अपनी जीर्ण-शीर्ण खंडहर काया लेकर देव ! मैं तुम्हारी ड्योढ़ी पर आ गया

क्या अपने अपराधी को क्षमा नहीं करोगे ?

नैतिक परिवर्तन और आर्थिक क्रान्ति

[*श्री जयप्रकाशनारायण*]

हम जब विचार-परिवर्तन की बात करते हैं, तो उससे हमारा मतलब क्या होता है, इसे हम पहले ठीक से समझलें।

आज सबसे बड़ा सवाल आर्थिक है। मौजूदा आर्थिक रचना बदल देते हैं, तो दूसरी चीजें भी साथ-साथ बदल जाती हैं। आज पूंजीवाद का गलत व्यक्तिवाद हम पर छाया हुआ है। स्वार्थ ही हमारा देवता बन बैठा है। करोड़पति और भूमिपति लाखों रुपयों का और हजारों एकड़ों का उपयोग तो कर नहीं सकता, लेकिन फिर भी उसकी लालसा बढ़ती ही जा रही है। संग्रह को प्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी है। पुराने मूल्य वैसे के वैसे बने हुए हैं। कल्याणकारी राज्य का सिद्धांत सामने रखकर आदम स्मिथ का ही पुराना अर्थशास्त्रीय पाठ पढ़ाया जाता है। उसके अनुसार व्यक्ति के स्वार्थ में ही समाज का स्वार्थ मान लिया गया है। लेकिन इन मूल्यों से आज काम नहीं चल सकता, क्योंकि ९२½ प्रतिशत आदमी गरीब ही पड़े हैं। राजस्थान में हमने अभी देखा है कि एक के नीचे दूसरी, दूसरी के नीचे तीसरी, ऐसी चारपाइयां पड़ी हैं और लोग उसी में गुजर-बसर करते हैं। भोजन, वस्त्र, निवास, शिक्षा और स्वास्थ्य ये जीवन की पांच प्राथमिक आवश्यकताएं सौ में से मुश्किल से पांच लोगों की पूरी होती हैं। बाकी सब इस लड़ाई में हार जाते हैं। यह सारी स्थिति हमें पलट देनी है और उसके लिए आर्थिक क्रान्ति अनिवार्य है जो विचार-परिवर्तन के बिना हो नहीं सकती।

आज सारी दुनिया में विश्व-शांति की कोशिशें चल रही हैं। लेकिन जरा गहराई से सोचकर देखिये कि यदि एक कागज पर आयसनहोवर, बुल्गानीन, ख्रुश्चेव, इडेन, चाउएनलाई और जवाहरलालजी दस्तखत कर दें, तो क्या उसीसे शांति स्थापित हो जायगी और युद्ध खतम हो जायेंगे ? अबतक कम समझौते नहीं हुए हैं। अतः हनुमान-छलांग से आप समुद्र तो पार कर लेंगे, लेकिन नदी और नहर पार करने के लिए पुल ही चाहिए। इसलिए बड़ा सवाल राजनीतिक नहीं है, नैतिक है। नैतिक-परिवर्तन के बिना आर्थिक विचार में भी परिवर्तन हो नहीं सकता। विज्ञान का विकास तो बहुत हुआ है। लेकिन पुराने आदमी के पास अगर मोटा डंडा था, तो अब एटम बम हाथ में आ गया और सभ्यता लोगों को खतम करने के प्रयत्नों का परिपाक मानी जाने लगी। इसलिए मनुष्य में मौलिक परिवर्तन की ही आवश्यकता है और उसके लिए जरूरत इस बात की है कि हम यह समझें कि हमारे पास जो कुछ है; सब कुछ समाज का है, निजी मिल्कियत किसी की नहीं है। सारी मालकियत समाज को अर्पित कर देनी है। परस्पर के लिए जब हम ऐसा त्याग करेंगे; तभी हम सामाजिक क्रांति करके असमानता दूर कर सकेंगे; तभी विचार-परिवर्तन का लक्ष्य पूरा होगा।

आज न्यायालयों में सत्य की अपेक्षा तर्क प्रधान है!

[८]

अन्य क्षेत्रों में तो असत्य का बोलबाला है ही परन्तु सत्य की संरक्षिका-न्याय-व्यवस्था में तर्क को प्रधानता देकर सत्य की जो दुर्दशा हो रही है वह भी हमारे पतन की एक करुण कहानी है। झूठी गवाहियों के आधार पर जीते जानेवाले मुकदमें आज सर्वसाधारण की सत्यनिष्ठा को डगमगा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में अपने कर्तव्य के प्रति हमें और भी ज्यादा जागरूक होने की आवश्यकता है।

सम्पादक]

क्रय-विक्रय में असत्य का प्रसंग अधिकांशतया माप, तोल, संख्या व प्रकार से जुड़ता है।

माप—गज आदि के विषय में असत्य बोलना।

तोल—तोला, सेर, मन आदिके विषयमें।

संख्या—गिनती आदि को लेकर।

प्रकार—क्वालिटी आदि को लेकर जैसे—जूट में बोटम को मिडिल या टोप बताना आदि।

वस्तु सापेक्ष भी नाना प्रचलित असत्य हैं जो अणुव्रती के लिये वर्जनीय हैं—

जमीन मकान के सम्बन्ध में—

क—किसी दूसरे व्यक्ति की जमीन व मकान को अपना बताकर उसका पट्टा व खत अपने नाम से बना लेना।

ख—दूसरे की अच्छी जमीन व मकान को अशुभ व अन्य किसी प्रकार से दोषयुक्त बताना।

ग—मकान जमीन दूसरे का हो या अपनी जमीन दूसरे के रेहन हो या उस जमीन के और भी हिस्सेदार हो ऐसी जमीन अपनी कहकर बेचना।

घ—कुंवा, मन्दिर, धर्मशाला आदि बनाने का व जीर्णोद्धार करने को झूठा बहाना करके लोगों से चन्दा लेना।

ङ—अपनी जमीन की कीमत बढ़ाने के लिये झूठ मूठ कहना कि अमुक व्यक्ति मेरी जमीन के इतने रुपये कह चुका है।

च—अपने मकान आदि की 'फोल्स रजिस्ट्री' करवाकर उसे दूसरे का बनाना आदि।

पशु-पक्षी के सम्बन्ध में—

क—गाय, भैंस, घोड़ा, ऊँट आदि पशुओं के बड़े दोषों के सम्बन्ध में असत्य

बोलकर बेच देना। बड़े दोषों का तात्पर्य है जिन दोषों के कारण खरीददार को सोचना पड़े कि मेरे साथ धोखा हुआ।

ख—दूसरे के पशु को अपना कहकर बेच देना।

ग—गाय, भैंस, घोड़ा आदि की आयु, दूध, प्रसव आदि को अन्यथा बताकर बेच देना आदि। इस प्रकार माप, तोल, संख्या प्रकार आदि को लेकर व तत् सदृश अनेक असत्य हैं जो शब्दों में बांधे नहीं जा सकते। उस प्रकार के किसी भी असत्य को 'अणुव्रती' भावना से मापकर छोड़ता रहे।

न्याय-व्यवस्था और सत्य

लोग कहते हैं व्यवसाय में तो फिर भी व्यक्ति असत्य से बहुत कुछ बच सकता है, पर न्यायालयों में जाकर तो असत्य से बचना नितांत असम्भव है। लोगों का यह कथन एकदम निराधार है ऐसा नहीं लगता। आज की न्याय-व्यवस्था अनुभूति-प्रधान नहीं तर्क प्रधान है। न्यायाधीश की अनुभूति कुछ भी बोलती हो उसे तर्क-समर्थित पक्ष को सत्य मानना होगा। न्यायालय में सत्य की गवेषणा गौण वकीलों की बुद्धि-व्याख्यान प्रमुख देखा जाता है। अभियुक्त कितना ही सत्य है, उसे सत्य को प्रमाणित करने के लिये गवाह चाहिये। यदि घटना-स्थल पर कोई था ही नहीं तो गवाह कौन होगा? पर न्याय-व्यवस्था विवश करती है और वह झूठे गवाह तैयार करके लाता है। गवाह यदि असत्य गवाही देने में चतुर है तो अभियुक्त सत्य फैसला पा लेता है, नहीं तो उसे असत्य निर्णय ही भोगना पड़ता है।

'नोली; लाल भी और धोली भी' वकीलों का बुद्धि-व्यायाम असत्य की सुरक्षा में सफल हो जाता है। ये आश्चर्य में पड़ जाते हैं। एक बार की घटना है एक आदमी ने एक दूसरे आदमी पर ३०००) का दावा किया। दूसरे व्यक्ति ने रुपये वापिस दिये नहीं पर वकील की सलाह से उसने यही बयान दिये कि मैंने अमुक महीने व अमुक तिथि के दिन इसके ३०००) रुपये वापिस कर दिये। अगली ता० पर झूठे गवाह उपस्थित किये गये। कैसे बोलना है, इसकी सारी तरकीब वकील ने बता दी थी और कह दिया—नोलीसे रुपये निकालकर इसे वापिस देते हुये हमने आँखों देखा, यह सभी गवाहों को एक ही प्रकार से कहनी है। पर न्यायाधीश ने पहले गवाह से ही एक अचूक प्रश्न कर लिया। उसने गवाहसे पूछा—बोलो भैया उस नोली का रंग कैसा था? गवाह को इस विषय में कुछ बताया नहीं गया था। उसने कहा लाल थी। दूसरे गवाह को न्यायाधीश

ने अन्य प्रश्नों के बीच में यही प्रश्न कर लिया, नोली कैसे रंग की थी? वह बोल पड़ा-धोली थी। वकील ने देखा हमारे गवाह तो नकली साबित हो गये उसने अपने तीसरे गवाह को नये सिरे से पढ़ाकर उपस्थित किया। उससे भी न्यायाधीश ने पूछा नोली कैसी थी? वह बोला—महोदय! वह एक ओर से लाल थी और एक ओर से धोली। तात्पर्य यह हुआ कि तीसरे झूठे गवाह ने पिछले दो झूठे गवाहों को भी सच्चा कर दिया। न्यायाधीश की आत्मा कुछ भी कहे वह उन गवाहों को झूठ करार नहीं दे सकता। यह है आज की न्याय-व्यवस्था में सत्य की दुर्दशा। मामला जीतने के लिये सत्यवादी होना इतना महत्त्व नहीं रखता जितना असत्य बोलने में कलाकार होना।

असत्य निर्णय

निर्णय देने का सम्बन्ध मुख्यतया न्यायाधीश व पंचों से है। एक अणुव्रती न्यायाधीश पंच किसी के प्रति अन्यायपूर्ण फैसला नहीं कर सकता। उस पर रिश्वत आदि का स्वार्थ, अपने निजी व्यक्ति का पक्षपात व किसी बड़े आदमी की सिफारिश आदि प्रभाव नहीं पड़ने चाहिये।

वास्तव में वर्तमान न्याय-व्यवस्था की कठिनाइयों से लोग पूर्णतः ऊब गये हैं। भले आदमी जहाँ तक हो सके न्यायालय का मुंह भी नहीं देखना चाहते। समाज में यदि अणुव्रतियों का प्रभाव बढ़ा तो वे एक बहुत बड़े कार्य की पूर्ति कर सकेंगे। अब तक भी बहुत सारे अणुव्रती बहुत से प्रसंगों पर पंच माने गये हैं और तटस्थ निर्णय से जनता में संतोष भी हुआ है। जनता से कभी-कभी सुझाव भी आते हैं विचारक अणुव्रतियों का एक आरबीट्रेशन बोर्ड (पंचायत) स्थापित होना चाहिये जो सर्व साधारण के पारस्परिक झगड़ों का निपटारा करता रहे। इसमें सन्देह नहीं यदि ऐसा हुआ और अणुव्रती अपनी प्रमाणिकता का ध्यान रखते रहे तो लोग न्यायालय की व्याधि से बहुत कुछ बच सकते हैं।

असत्य साक्षी व असत्य मामला

जैसा कि बताया गया है न्यायालयों की जटिल व्यवस्था के कारण झूठी गवाही का भी एक स्वतन्त्र पेशा बनता जा रहा है, वह समाज और न्याय-व्यवस्था के लिये कलंक की बात है। अणुव्रती के सामने भी यह एक समस्या है, सत्य उसका आदर्श है तथापि वस्तु स्थिति में उसकी साधना कहीं-कहीं अत्यन्त जटिल हो जाती है। यह तो निर्विवाद है कि अणुव्रती किसी भी झूठे पक्ष को सिद्ध करने के लिये गवाह न बनाये। समस्या वहाँ

मैं अमर जीवन उपासक

[श्री स्वामीशरण सक्सेना]

मैं अमर जीवन उपासक साधना नूतन करूंगा!

आज तक विश्वास मेरे ह्रास के ही गीत गाकर,
हैं मिटा जाते मुझे ही सृष्टि के शुचि मीत आकर
शक्ति-श्रम का सूर्य मेरा तप न पाता है घड़ी भर
रोक लेते ज्योति का पथ व्योम में नित मेघ छाकर,
किन्तु घहरेंगी नहीं अब युद्ध की काली घटायें—
मैं स्वयं शिव रूप बनकर शाप का खंडन करूंगा।
मैं अमर जीवन उपासक साधना नूतन करूंगा॥

विश्व मेरा, विश्व का मैं कौन किसको छोड़ सकता,
चिर प्रवाहित धार जो है कौन उसको मोड़ सकता,
दीन था कल, हीन था कल, आज तो मैं भी सबल हूं।
औ अक्षय वट सा अडिग चिर क्या प्रभंजन तोड़ सकता?
मैं अकेला अब नहीं, है साथ मेरे विश्व का स्वर—
क्रान्ति के अन्त-करण में शान्ति का स्पन्दन भरूंगा।
मैं अमर जीवन उपासक साधना नूतन करूंगा॥

रह सकेगा अब न मानव वर्ग-भेदों से प्रपीड़ित,
अर्थ के अभिशाप से जल सृष्टि का सौरभ तिरोहित
हो न पायेगा यहां अब दासता का क्रूर नर्तन
आज मानवता जगी है हो रहा 'अणुव्रत' प्रसारित,
दूर कुत्सित वासना से, राग से औ' द्वेष से अब—
प्रेम का पाथेय लेकर दूर दुःख-क्रन्दन करूंगा।
मैं अमर जीवन उपासक साधना नूतन करूंगा॥

उत्पन्न होती है जहां अणुव्रती स्वयं व उसका पक्ष सत्य है किन्तु उस सत्य को प्रमाणित करने में कहीं-कहीं यत्किंचित् असत्य की अनिवार्य अपेक्षा सौ हो जाती है। ऐसी स्थिति में वह क्या करे? आदर्श तो यह है कि वह अपनी बड़ी-सी क्षति के लिये भी असत्य का तनिक आश्रय न ले। फिर भी ऐसा शक्य नहीं होता तो भी असत्य से बचने के लिये यथा-सम्भव प्रयत्नशील रहना ही चाहिये।

कुछ लोगों की भावना बन गई है कि अणुव्रती को अनर्थकारी साक्षी नहीं देनी चाहिये। अनर्थकारी का तात्पर्य वे समझते हैं जिससे किसी को मृत्यु दण्ड होता हो, पर ऐसा सोचना भूल है। जहाँ विपक्षी मूलतः सत्य है उसके विपक्ष में जान-बूझकर कुछ भी साक्षी देना अनर्थकारी साक्षी के अन्तर्गत आ जाता है।

कुछ भाई इस विषय में एक अनर्थक तर्क उपस्थित किया करते हैं। वे कहते हैं, अणुव्रती का नियम है—असत्य साक्षी न देना, पर जब ऐसी स्थिति हो कि अणुव्रती की असत्य साक्षी से किसी का मृत्यु दंड टलता हो तो उस समय वह क्या करे? ऐसे प्रश्न और उनके समाधानों का जीवन व्यवहार से कोई निकटतम सम्बन्ध नहीं रहता। सहस्त्रों व्यक्तियों से यदि एक साथ पूछा जाय—किसी के जीवन में ऐसा प्रसंग आया है? तो सम्भवतः सबका यही उत्तर होगा कभी नहीं। बहुधा ऐसे प्रश्न सत्य को शिथिल करने के लिये ही गढ़े जाते हैं जरा सोचने से तो स्पष्ट यही लगेगा कि ऐसा निश्चय हो ही कैसे सकता है कि अमुक की असत्य गवाही से किसी का मृत्यु-दंड टल जाय। साथ-साथ असत्य बोलने में वक्ता का आत्म-हनन तो निश्चित है ही।

असत्य मामला खड़ा करना अणुव्रती क्या किसी भी नागरिक के लिये अवांछनीय है। फिर भी आजकल यह मनोवृत्ति बहुत बार देखी जाती है। अमुक व्यक्ति मेरे पर मामला करेगा इसलिये उस पर एक झूठा मामला पहले ही मैं क्यों न लगा दूँ? ताकि फिर दोनों मामलों का निपटारा सुगमता से हो सकेगा। कभी-कभी व्यक्ति को तंग करने के लिये भी उस पर झूठा मामला लगा दिया जाता है। अणुव्रती ऐसे मामलों में न तो रस लें और न किसी को ऐसा मामला करनेकी सम्मति ही दें।

असत्य मामले की तरह अर्धसत्य मामले का भी एक प्रकार होता है। जो व्यक्ति किसी से २५०००) रुपये मांगता है वह ४००००) का दावा उस पर करना चाहता है ताकि आगे मामले की हार-जीत में वह उससे लाभ उठा सके। अणुव्रती के लिये यह मार्ग भी अवांछनीय है।

मर्म-प्रकाश

किसी व्यक्ति के मर्म या रहस्य को प्रकट करना एक महान हिंसा है। समय-समय पर इससे बड़े अनर्थ भी हो जाया करते हैं। कभी कभी मर्म-प्रकाश न करने में भी सामूहिक अहित उपस्थित हो जाता है। उदाहरणार्थ एक अधिकारी या एक मंत्री रिश्वत लेता है या गबन करता है। ऐसी स्थिति में चुप रहना, एक सामाजिक अन्याय माना गया है। इसलिये ऐसी विवक्षा की गई है कि मर्म-प्रकाश का हेतु व्यक्तिगत स्वार्थ या द्वेष नहीं होना चाहिये। साधारणतया तो बहुत सारे व्यक्ति केवल मनोविनोद-सर्जन के लिये दूसरों के चरित्र की अवांछनीय घटनायें प्रकाश में लाते रहते हैं। यह आध्यात्मिक और समाजिक दोनों पक्षों में बुरा है। आध्यात्मिक पक्ष में तो ऐसी प्रवृत्तियों में प्रमाद बढ़ता है और सामाजिक पक्ष में गन्दी व अश्लील घटनाओं का जन-जन के सामने आना अश्रेयस्कर है ही। आधुनिक मनोवैज्ञानिक बताते हैं कि अश्लील व अभद्र घटनाओं को किसी अच्छे उद्देश्य से भी समाज में प्रसारित नहीं करना चाहिये क्योंकि वे बहुतों के मानस पर बुरी प्रेरणायें अंकित कर जाती हैं। —क्रमशः

आन्दोलन को किसी घेरे में बाँधने का प्रयत्न करना प्रगति का चिन्ह नहीं !

[श्री पारस जैन, अध्यक्ष अणुव्रत समिति]

अणुव्रत आन्दोलन इतना सहज व आवश्यक है कि इसको किसी भी परिधि में बांधना न्याय संगत नहीं है। आजतक का इसका इतिहास अपने-आप बोलता है। उसका विकास जो भी अवतक हुआ है उसका कारण यह नहीं कि कुछ सीमित लोगों ने ही इसको सींचा या बल दिया है। यह आन्दोलन नाले से नदी में परिवर्तित हुआ है और आगे यह महानदी का रूप लेने जा रहा है। जिस तरह महानदी अपने-आप में कुछ नहीं, छोटी-मोटी नदी और नालों का ही रूप महानदी है, उसी प्रकार अणुव्रत आन्दोलन अपने-आप में कुछ नहीं, उसकी पूर्णता ही इसमें है कि वह सभी सद्विचारों को अपने में समावेश कर वहां ले जाने की क्षमता दिखाये।

मैं इस विचार से कतई सहमत नहीं कि अणुव्रत-आन्दोलन जैसे विचार प्रधान आन्दोलन को एक सम्प्रदाय के लोगों का दल संचालन करे। जिस तरह अणुव्रती होना सब के लिये खुला है, उसी तरह इसके संचालन की जिम्मेवारी भी सभी पर आ जाती है।

जीवनमें हमें आचरण की प्रतिष्ठा करनी है

आचार्यश्री तुलसी

भारतवर्ष एक ऐसा देश है जहाँ के नागरिकों का सन्तों के प्रति स्वाभाविक आकर्षण और निष्ठा रही है। उनके जीवन की साधना या वास्तविकता को लोग समझें या न समझें पर यह सही है कि उनका सन्तोंके प्रति आन्तरिक प्रेम है। कबीरजी ने वास्तविक सन्तों का स्वरूप-दर्शन कराते हुए एक जगह कहा है—

"मैं तो उन्हीं सन्तों का दास,
जिन्होंने मन मार लिया।
आपो मार जगत् में बैठे, नहीं जगत् से काम
उनमें तो कछु अन्तर नांहीं, सन्त कहो चाहे राम
...............जिन्होंने मन मार लिया।

कितने सीधे और हृदय-स्पर्शी शब्दों में सन्तों का स्वरूप दर्शाया गया है। दुनिया को नहीं, अपने मन को जिसने मार लिया है वही वास्तविक सन्त पुरुष है।

भारतीय परम्परा और ऋषि-वाणी में वे ही वास्तविक सन्त हैं जिन्होंने अपने मन और इन्द्रियों को वश में कर लिया है—उन पर नियंत्रण कर लिया है। जगत् भर का परिग्रह अपने सिर पर ढोये फिरे, दुनिया भरकी विषय वासनाओं में फंसे और साधु भी कहलाये, वह साधु के नामपर साधुता को लजाने से अधिक कुछ नहीं है।

लोग यदाकदा कह बैठते हैं—आखिर साधुओं की इस बहुत बड़ी जमात की क्या उपयोगिता है? उनका एक ही कार्य है—बहुत सारे लोग जो न्याय-पथ को जानते हुए या न जानते हुए भी अन्यान्य पथ की ओर जाते हैं, निद्रा, प्रमाद और अज्ञान के कारण रास्ता भूल जाते हैं, उन्हें रास्ता दिखाना, सत्पथ की ओर लगाना।

विश्व में बहुत तरह के आकर्षण हैं—राजनीति का आकर्षण है, विज्ञान का आकर्षण है, भौतिक-विकास का आकर्षण है। पौद्गलिक विकासवाद के इस युग में चेतन के बजाय जड़ की अधिक उपयोगिता आंकी जाती है। मूल्यांकन का दृष्टिकोण बदला है—व्यक्ति की दृष्टि चेतन से जड़ की ओर गई है। फलस्वरूप ये भौतिक आकर्षण बढ़े हैं। हमारा आकर्षण या आध्यात्मिक जगत् का आकर्षण तो जीवन तत्त्व में है। हम उस जीवन-तत्त्व की उपयोगिता सिद्ध कर पाये तो मानना चाहिये कि हमने सब कुछ कर लिया।

इस बात में कोई दो मत नहीं कि सब प्राणियों में मानव जीवन की सर्वाधिक महत्ता है। आखिर उसको सर्वाधिक महत्व क्यों दिया जाता है? वह अपनी बुद्धि वैभव से सारे संसार को संत्रस्त कर सकता है क्या इसीलिये उसकी महत्ता है? वह राज्य और अतुल सम्पत्ति का स्वामी बन सकता है, क्या इसीलिये? नहीं आध्यात्मिक-दृष्टि से मानव जीवन की महत्ता इसलिये है कि मानव जीवन वह जीवन है जिसमें आकर व्यक्ति समग्र दुखों, कर्म-बन्धनों से मुक्ति पा सकता है। दुःख-मुक्ति सबको अभिष्ट है। उसका साधन मानव-जीवन है। मानव-जीवन के सहारे आत्मा अजरामर पद को पा सकती है। अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित हो सकती है। इसलिये मानव-जीवन की उपयोगिता और महत्ता है। उपाध्याय विनय विजयजी के शब्दों में—यह शरीर कच्चा घड़ा है, अशुचि का भाजन है, पवित्र-पवित्र वस्तुयें भी इसके स्पर्श से गन्दी बनती हैं। पाकशाला के पकवान और सन्दूक में रखे सुन्दर आभूषण भी इसके संसर्ग से गन्दे होते हैं। संसार को गन्दगी से भरनेवाला यह शरीर और फिर इसकी उपयोगिता? उपाध्यायजी कहते हैं—इतनी निःसारता के बाद भी इसमें एक सार है कि मोक्ष साधना का यह सदुपाय है। पर साथ-साथ में यह भी खयाल रखना होगा कि मुक्ति के लिये इस शरीर को भी छोड़ना पड़ेगा। नहीं चाहने पर भी छोड़ना पड़ेगा। तत्त्वतः यह शरीर साधनमात्र है, साध्य नहीं। महात्मा बुद्ध ने एक जगह कहा—शरीरादि तत्त्वों को यही समझो कि ये काम के हैं। काम हो गया फिर इनको छोड़ दो। एक मनुष्य चला, चलते-चलते रास्ते में नदी आगई, नदी को पार करने के लिये उसने एक सुन्दर सा बेड़ा बनाया। उसके सहारे नदी को पार कर लिया। पार करने के बाद किनारे पर जाकर सोचा—इस बेड़े का क्या करूं? बेड़ा सुन्दर बना है, काफी मेहनत हुई है, सिर पर रख साथ में लेता चलूं। उसकी यह कितनी मूर्खता है। जब काम हो गया तब फिर उसका भार ढोकर क्या करेगा? यही तत्व है। जैन-दर्शन कहता है—जब शरीर काम न दे तो इस शरीर का विसर्जन करदो, जीवित समाधि ले लो। यह शरीर संसार-रूपी नदी को पार करने के लिये एक बेड़ा है। नदी पार हो गई, फिर शरीर रूपी बेड़े को सिर पर कब तक ढोओगे? परम तत्त्व मुक्ति है, शरीर

उसका साधनमात्र है। तत्व-दर्शन के ये ऊंचे विचार हैं, हर व्यक्ति इन पर चल सके, यह सम्भव नहीं। पर असलियत तो यही है।

लोग सोचेंगे—मुक्ति का साधन क्या है? मैं संक्षेप में बताना चाहूंगा कि मुक्ति का साधन धर्म है। लोग चौंकेंगे, अरे, यह क्या? जिस धर्मने संसार में युद्धों का तांता सा लगा लिया, विग्रह और द्वेष फैलाया फिर भी आज उसकी गाथाऐं गाई जाती हैं? लोग भूल करते हैं—धर्म ने लड़ाइयां और विग्रह नहीं कराये। विग्रह और लड़ाइयां संकीर्ण स्वार्थों के कारण हुई हैं। वास्तव में धर्म वह है जिसके द्वारा हम जीवन-शुद्धि के पथ की ओर आगे बढ़ें। भगवान महावीर ने कहा है— जन्म और मरण के प्रवाह में जो बह रहा है उसको उबारने के लिये धर्म दीप है, आश्रय है, स्तम्भ है। कितना धर्म का समादर है! आत्मानुशासन की साधना धर्म है। धर्म में जातिवाद, सम्प्रदायवाद और मतवाद बाधक नहीं बनते।

धर्म के दो रूप हमारे सामने आते हैं— उपासना और आचार। उपासना का जहाँ तक प्रश्न है वह बाह्य क्रिया-कांडों और प्रदर्शन से दूर रहकर की जाये तो आत्म-शुद्धि की वह बहुत बड़ी साधना है। बाहरी क्रिया-काण्ड और प्रदर्शन पर जहाँ धर्म टिकता है वहाँ धर्म जड़ बन जाता है। धर्म संजीवनी है, अमृत है पर तभी, जब उसकी सही उपासना हो। प्रदर्शन की अधिकता के कारण लोगों की धर्म पर से श्रद्धा उठ रही है। उसे दूर कर उपासना का वास्तविक रूप सामने रखने की आवश्यकता है।

उपासना के साथ-साथ आचार के क्षेत्र में भी उन्नति करनी है। आज जीवन का मूल्यांकन पैसे के आधार पर होता है उसकी जगह हमें आचार की प्रतिष्ठा करनी है। भर्तृहरि धर्म की विवेचना करते हुए एक पद में कहते हैं—

"प्राणाघातः निवृत्ति,
परधन हरणे संयमः सत्य वाक्यं
काले शक्त्या प्रदानं,
युवति जन कथा मूक भावः परेषाम्।
तृष्णा स्रोतो विभंगः गुरु
ष च विनयः सर्व भूतानुकम्पा,
सामान्य सर्व शास्त्रै श्रेयसां सर्व मानवा।"

पद की भावना है—हिंसा मत करो— दूसरों के प्राण मत लूटो, दूसरों के धन का अपहरण मत करो, असत्य से दूर रहो, सत्पात्र को दान दो, वासनामय चर्चासे परे रहो, तृष्णा के बहते प्रवाह का निरोध करो, सद्गुरु के प्रति विनयशील बनो, सब प्राणियों के प्रति अनुकम्पा करो इत्यादि। इससे जीवन सच्चे श्रेयस् की ओर आगे बढ़ेगा।

नैतिकता के बिना विज्ञान पंगु है

[साहित्याचार्य श्री पीताम्बरदत्त शास्त्री]

मनुष्य आज जितना भूत-प्रेत, शैतान, सिद्ध या साँप से नहीं डरता उससे कहीं अधिक मानव से डरने लगा है, वैज्ञानिकता से चमत्कृत इस युग में प्राणतिपात का दारुण भय समस्त विश्वके लिये अभिशाप सिद्ध हो रहा है। जहाँ जीवन के सरल उपकरणों की वृद्धि हो रही है, वहीं जीवन-साधना का ह्रास भी रहा है। दुर्वार द्वन्दों की भीषिका में विश्व के अधःकोण से विस्फोटक रूप धारण करती हुई भयंकर ज्वाला को मौखिक शान्ति का झीना आवरण कब तक आवृत रख सकेगा? अशान्ति की आड़ में छिपकर शान्ति-शान्ति चिल्लाने से संदिग्ध विश्व में शान्ति कभी नहीं आ सकती। वाणी भी क्रिया की अपेक्षा रखती है। आज क्रियात्मकता निष्क्रियता में परिणत हो रही है। क्या शक्तिधरों ने कभी सोचा कि भीषण रक्तपात मचाकर क्रन्दन बन्द नहीं हो सकता? प्रभुत्व लिप्सा में क्षुब्ध मनुष्य ने स्वयं को शक्तिशाली सिद्ध करने के लिये जो कदम उठाया है, निश्चय ही गर्तमें जानेवाला है। जन्म और मृत्यु के अन्तराल में जीवन को सही रूप में देखना मनुष्यत्व है और स्वयं जीवित रहने की लालसा से दूसरों को मृत्यु के मुख में ढकेल देने की चेष्टा करना पशुत्व है। सहज ज्ञान से मौढ्य को पार कर परोपकार के लिये आत्मोत्सर्ग करना अमरत्व है। मनुष्य की इन तीनों प्रवृत्तियों को राजस, तामस और सत्व के नाम से अभिहित किया गया है।

यदि सूक्ष्म रीति से देखा जाय तो जीवन की सार्थकता सादगी और संयम पर निर्भर है। जितनी ही गृद्धता बढ़ती है, असंतोष का उदर भी बढ़ने लगता है। इस दशा में पहले शोषण जन्म लेता है तब विनाश। मृत्युको अवश्यम्भावी जानता हुआ भी मनुष्य दूसरों के नाश का उपाय रचता है। क्षुद्र जन्तुओं को जब जीवन अभीष्ट है तो मनुष्यों का क्या कहना? किन्तु आज मानव संतानों का निर्मम वध करने के लिये विज्ञानका अन्ध भक्त रेगिस्तानों में अपनी सिद्धि की परीक्षा ले रहा है। भूत धात्री में जहाँ जीवन के अपेक्षित साधन हैं, विनाश के बीज भी वहीं हैं। जिस प्रकार गुलाब में फूल और काँटे दोनों हैं। फूल चुननेवाला काँटों से बिंध सकता है पर काँटे

घीननेवाला फूलों से आहत नहीं हो सकता। उद्जन की संहारक शक्ति अभी अपने अंकुर में ही सिमटी हुई है फिर भी विश्व में हाहाकार फैला हुआ है जब उसका उद्रेक होगा तो संसार की क्या दशा होगी, कल्पनातीत है। जीवन साधनों को मृत्यु का साधन बनाने में जो लोग बुद्धि का विकास मानते हैं उनकी समझ से बुद्धिवादिता का ह्रास क्या है, कहा नहीं जा सकता। विकसित सभ्यता के नाम पर मानव-संस्कृति का उपहास इतिहास में अवश्य ही अन्ध युगके पृष्ठ जोड़ेगा। विश्व की भावी संतति के लिये आधुनिक युग दारुण कदम उठा रहा है, बची हुई पंगु सृष्टि में मानवता बिलखती हुई दृष्टिगोचर होगी। विनाश के पंख आकाश की ओर ही प्रेरित करते हैं। सभ्यता का मापदण्ड खण्डयुग की परम्पराओं से निर्धारित नहीं किया जा सकता। इनसे मापी जानेवाली मानव सभ्यता विकास की प्रतीक नहीं बन सकती। विगत युगों का इतिहास इसका प्रमाण है। प्राचीन इतिहास अंधकाराच्छन्न है, अविकसित युग का मनुष्य पाषाण सभ्यता से वेष्टित था, यह कहकर अब बुद्धिवादी मनुष्य को कपोल कल्पित आधारों पर कदापि नहीं बहलाया जा सकता।

आज मनुष्य को वास्तविक प्रकाश की दिशा में ले जाना होगा। ज्ञान-विज्ञान का समन्वय कर उसकी वृत्तियों को स्थिर करना होगा। जबतक विज्ञान विश्व को अपनी पीठ पर लादकर एक पैर से चलता रहेगा सब कुछ लिये-दिये उसे खाई में गिरते देर न लगेगी, वह एक साधारण ठोकर में ही लड़खड़ा जायेगा इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतः आध्यात्मिक चेतना का द्वितीय पद उसे अत्यन्त अपेक्षित है। विज्ञान मुक्ति नहीं चाहता, वह स्वयं निर्मुक्त है। मुक्ति है क्या चीज? ऐसा सोचकर सत्य की अवहेलना करना उपहासास्पद है। यह प्रत्यक्ष है कि भौतिक युग का मनुष्य भय-बाधा, दुःख दारिद्र्य, विनाश इत्यादि रोग-शोक और अनापेक्षित त्रासों से सदा अपनी मुक्ति चाह रहा है। मुक्ति का स्वरूप सामने होते हुए भी उसे न पहचानना अन्धकार की सूचना देता है। तब हम कैसे विश्वास कर सकते हैं कि विज्ञान वरदायी सिद्ध हो रहा है? यदि वह अपनी शक्ति भी उपार्जित कर रहा है तो केवल अपने भारवाहकों के लिये होगा। शेष तो उपेक्षित ही रह जायेंगे। विगत शताब्दी में विज्ञान पालकी पर आरूढ़ होकर जितने कदम आगे बढ़ा है, विश्व का जीवन उससे कई गुना पीछे की ओर हटा है। विज्ञान को अब तक हम संसार का सिर कुचल कर आगे बढ़ते देखते हैं। यदि जन-जीवन ही कुचला गया तो उसकी उपयोगिता और गतिशीलता कुछ नहीं है। विज्ञान के नवीन चरणों का उपयोग सार्वजनिक होना चाहिये।

अभी भारत में ३० प्रतिशत से भी अधिक लोग होंगे जिन्होंने रेलगाड़ी तक नहीं देखी, ९९ प्रतिशत से अधिक हैं जो हवाई जहाज पर नहीं चढ़े, ९० प्रतिशत से अधिक होंगे जिनके घरों में रेडियो नहीं है, ७० प्रतिशत से भी अधिक लोग आधुनिक औषधियों का उपयोग करने में असमर्थ हैं। अशिक्षा के बारे में क्या कहा जाय! विगत युद्धों के दुष्परिणाम को शत-प्रतिशत लोग जानते हैं। विज्ञानकी उपयोगिता अबतक तो यही दिखाई दी है, आगे हाइड्रोजनबम के प्रयोग के अनन्तर और भी स्पष्ट हो जायगी। बिजली की बत्तियों से सजे हुए दो चार कल कारखानेवाले नगरोंको देखकर हम भौतिक चमत्कार पर न्यौछावर नहीं हो सकते, जहाँ एक ऊँची हवेली में पैर तानता है और दूसरा फुटपाथ पर कुक्कुटासन लगाता है। यह अच्छी विडम्बना है। वैज्ञानिक युग में भी एक को कर्महीन होते हुये भाग्यशाली कहा जाता है, दूसरे को कर्मयोगी होते हुये भाग्यहीन। क्या यह असमर्थ की आँखों में धूल झोंकना नहीं है?

जन-समाज ने अपनी आध्यात्मिक-दृष्टि बन्द करली है उसका यह दुर्विपाक है। इस लिये आज के युग में मनुष्यों को नैतिक चेतना का आश्रय लेना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य ही है। विश्व-कल्याणकी भावना को जरा-जीर्ण कहकर दफनाया नहीं जा सकता। अधोगति से मानवता का उत्थान करना ही विद्या और बुद्धि की कसौटी है। इस कसौटी पर लोभ से नहीं त्याग से सचाई प्राप्त करनी होगी। तभी समाज का सुधार संभव है। दुर्वृत्तियों के अन्धः-गर्त से विश्व को मुक्त करने का उपाय केवल नैतिकता है। ज्ञान और विज्ञान नैतिकता के उभय पद हैं, जिनके सहारे संसार का संतुलन ठीक रहता है। बिना श्रेय की भावना ग्रहण किये विश्व में सुख-शान्ति की अभिलाषा अरण्य रोदनमात्र है। 'ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्य सेऽशुभात्' गीता की इस अमर उक्ति को ध्यान में रखकर चलने से ही विश्व का कल्याण संभव है।

जीवन क्या है?

[सुश्री शारदा तिवारी]

● जीवन एक रस्सी के समान है। छोटे-छोटे तिनके लेकर इसे बनाते जाओ और जब तुम्हारी रस्सी का सिरा आ जाये तो बस, गांठ लगाओ और लटक जाओ।

● जीवन का आनन्द इसीमें है कि लोग हमें जिस काम के लिए योग्य समझें, हम उसे ही करें। हम करते भी ऐसा ही हैं।

● जीवन की कोठरी को आलोकित करने के लिए असीम ज्ञान नहीं अपितु मुट्ठी भर सद्चरित्र आवश्यक है।

कविता

अमर चाहिए

[श्री नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी]

नहीं चाहता प्यार तुम्हारा,
दो जलते अंगार चाहिए!

अपने नयनों में मत बांधो,
मैं युग-ज्वाल लिए चलता हूं,
मुझे बुझाओ मत निर्मोहिन
मैं जन-ज्वाल लिए चलता हूं,

युग की चिर प्यासी आहों पर,
आज नई रसधार चाहिए!

गगन बरसता है अंगारे,
तुमने सुरभित सेज सजाई,
चरण रखूं कैसे शैय्या पर,
जलती है युग की तरुणाई,

युग को देने नई जवानी,
आज नई ललकार चाहिए!

मेरे पथ का भार बने जो,
मेरे अथ की हार बने जो,
बीच भँवर में मुझे डूबा दे,
जीवन की मँझधार बने जो,

ऐसा प्यार नहीं चाहूंगा,
आज नई झंकार चाहिये!

अणुव्रत]
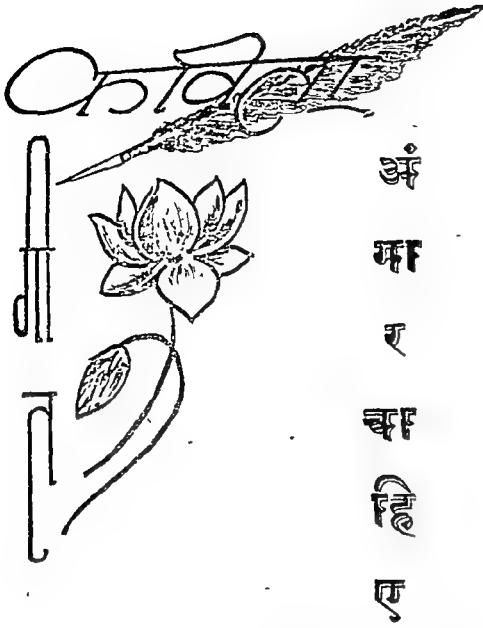
मेघ से!

[मुनिश्री बुद्धमलजी]

शून्य-पथ में यों न घन! तुम उड़े जाओ।

ध्येय जीवन का भुलाकर भटकते हो
किन्तु भूले हो परिग्रह को बढ़ाकर—
रख सकोगे अब नहीं चिरकाल तक तुम
यों निरर्थक ही इसे सिर पर चढ़ाकर
भार यह क्यों जिन्दगी का ढो रहे हो?
स्वत्व को वितरित करो मत हिचकिचाओ
शून्य-पथ में यों न घन! तुम उड़े जाओ।

क्या न सुनते हो अरे! क्रन्दन धरा का
तप्त ये निःश्वास हैं अभिशाप जैसे
याचना समझो न, यह अधिकार उसका
मांग हो अधिकार की तो, पाप कैसे?
पर-हितों की लाश पर तुम उठ रहे हो
पतन यह, उत्थान मत इसको बताओ
शून्य-पथ में यों न घन! तुम उड़े जाओ।

पैर धरती पर टिकेगा जब तुम्हारा
तत्त्व जीवन का तभी तुमको मिलेगा
संग्रहण से जब विसर्जन जन्म लेगा
उच्चता के भाव का आसन हिलेगा—
स्वप्न छोड़ो, उतर जाओ, घर यही है
एक रस हो नव सृजन के गीत गाओ
शून्य-पथ में यों न घन! तुम उड़े जाओ

देश जगाओ

[श्री रमेश सक्सैना]

तन अर्पित है लो मन्दिर की नींव उठाओ,
ध्वस्त हुई जिसकी प्राचीरें आघातों से
भग्न हुई जिसकी प्रतिमायें संहारों से
जीर्णोद्धार करो, तन का आधार बनाओ!

मन अर्पित है लो स्वदेश में प्राण जगाओ,
अन्तरमन वह क्या विपदा में जो भय पाये
वह कैसा मन? आत्मरति में जो सुख पाये
कलुष मिटाकर जनके मनका दीप जलाओ!

धन अर्पित है लो माँ का शृङ्गार सजाओ,
धुंधला है सिन्दूर नयन जिसके गीले हैं
कोटि सुतों की जननी, फिर भी कर रीते हैं
पद-पंकज में रत्नों का अम्बार लगाओ

तन, मन, धन, जीवन अर्पित लो देश जगाओ

[१५ अगस्त १९५६

दीपक और मानव

श्री हरनारायणप्रसाद सकसेना 'हरि'

[दीपक और मानव को यदि वास्तविक दृष्टि से देखिये तो कोई अन्तर नहीं मिलेगा। जब तक मानव जीवित रहता है, वह जलते हुए दीपक के समान है और जब मृत्यु को प्राप्त कर लेता है तो वह बुझा चिराग है]

लक्ष्मी की असीम कृपा से जगदीश बाबू धन-धान्य से सदैव भरपूर रहे। धन में इनकी तुलना कुबेर के ऐश्वर्य से की जा सकती थी, पर सुविख्यात कहावत "धन है तो जन नहीं" ने इनका भी साथ न छोड़ा। सुजाता विवाह के केवल दो वर्ष बाद ही इस नश्वर संसार को छोड़कर चल बसी। जगदीश बाबू को सुजाता के न रहने का दुःख तो अवश्य था; पर विशेष चिन्ता तो इस बात की थी कि इस अपार संपत्ति का अधिकारी कौन होगा? इसी कारण जगदीश बाबू इन दिनों बहुत चिंतित रहा करते थे और अन्त में जब किसी निश्चित इरादे पर न पहुँच सके तो अपने अभिन्न मित्र रामजीवन बाबू से इस सम्बन्ध में बातचीत की। घंटों सोच-विचार करने के बाद रामजीवन बाबू ने कहा—"यदि पुत्र पाने की इतनी प्रबल इच्छा रखते हैं तो आप निःसंकोच यथाशीघ्र शादी कर लें।" जगदीश बाबू यह वाक्य सुनकर सोच में पड़ गए और फिर एक लम्बी श्वांस खींचकर छोटा सा उत्तर दिया—"अच्छा सोचूँगा।"

× × ×

कुछ सोच-विचार कर जगदीश बाबू ने दूसरी शादी की। पर वर्ष-दो वर्ष बीतते ही आशाकिरण धुँधली हो चली। कान्ता जैसी सुन्दरी पर कोई दवा जौहर न दिखा सकी। हकीम, वैद्य और डॉक्टर का इलाज बेअसर साबित हो गया। और अब एक छोटी सी आशा लेकर वह सपत्नी 'अस्पताल' आये।

हेड-नर्स ने बारी-बारी से सभी नुस्खों की जांच की और कुछ देर बाद उसके मुख पर भी उदासीनता की रेखा दौड़ पड़ी और तब वह रुँधे हुए कण्ठ से बोली—"अब तो आशा करना व्यर्थ है, फिर भी यदि पुत्र पाने की प्रबल उत्कण्ठा है तो क्यों नहीं अस्पताल से किसी बालक को ले लेते हैं? आपका काम भी चल जायगा और मेरा भी बोझ हल्का हो जायगा।"

कान्ता ने सहर्ष हेड नर्स की बात मान ली।

× × ×

वर्षों का संचित मातृ-प्रेम आज बांध तोड़ कर उमड़ पड़ा। कान्ता के स्तनों से दुग्ध की धार बह चली। अबोध बालक का नाम 'दीपक' रखा गया।

दिन बीतते देर नहीं लगती। दीपक अब इस योग्य हुआ कि वह विद्याभ्यास करे। कौन जानता था, यह बालक पढ़ने में काफी तेज निकलेगा। मैट्रिक तक की परीक्षा उसने हँसते-खेलते पार कर ली।

कुल को रोशन करनेवाला दीपक अब कॉलेज का छात्र हुआ। साथ ही उसके भाग्य का सितारा कॉलेज में भी चमक उठा। प्रोफ़ेसर सदा यही चाहते कि दीपक जैसा विद्यार्थी ही उसकी कक्षा में रहे। ग्रैजुएट भी होते उसे देर न लगी।

बी० ए० पास करने के साथ दीपक का विवाह एक पढ़ी लिखी सुन्दरी के साथ संपन्न हो गया। हँसी-खुशी से दिन बीतने लगे।

× × ×

तीन मास बाद—

दिन के तीन बज चुके थे। सुबह का गया दीपक अब तक शहर से वापस न लौटा था। कान्ता के अन्तस्तल में बुरी-बुरी भावनायें उठ रही थीं। वह खिड़की पर खड़ी उसकी राह देख रही थी।

ठीक इसी क्षण सांप की तरह लहराती हुई सड़क पर बस का नाचता हुआ पहिया रुक रहा था। बस अब तक स्पीड में थी। दीपक पावदान पर से पृथ्वी पर आना चाहता था। ड्राइवर की आज्ञानुसार बस रोकी फिर भी गति अभी पूर्ण-रूपेण धीमी न हो पाई थी जिससे उसका पैर लड़खड़ा गया। गिरते ही वह महा निद्रा में लीन हो गया।

राहगीरों द्वारा दीपक का शव घर लाया गया। हरे-भरे घर में ईद-मुहर्रम मच गया।

माँ शव को चूम-चूम कर कहने लगी—"हाय अब मैं क्या करूँ? अब मैं किसका मुँह देखकर संसार में जीवित रहूँगी? हा! नित्य सवेरे उठकर अब मैं किसकी चिन्ता करूँगी? अब मैं परोसी थाली को सूनी देख कर कैसे शान्त रहूँगी?"

जगदीश बाबू भी रोते हुए इन शब्दों में फूट पड़े—"हा पुत्र! तुम इस तरह छोड़कर कहाँ चले गए? तुमने क्या खाया, क्या सुख

भोगा कि अभी से चल बसे ? पुत्र ! स्वर्ग ऐसा ही प्यारा था तो मुझसे कहते ! हाय ! मुझसे बढ़कर अभागा कौन होगा ? न जाने हमारे किस जन्म के पाप आज उदय हुए हैं, जो कुछ हमने आज तक किया वह यदि पुण्य ही होता तो मुझे यह शोक देखने को क्यों मिलता ? निःसंदेह मैं पापी हूं, यह मेरे पाप का ही फल है...''...आदि।

पत्नी कलेजे पर पत्थर रखकर अब तक फटे हृदय से सब कुछ देख रही थी पर अब उससे भी शान्त नहीं रहा गया और वह भी आठ-आठ आँसू गिनते हुए इन शब्दों में फूट ही पड़ी—"मेरे आँसू, मेरा प्यार भी आप को रोकने में असफल हैं तभी तो आप मुझसे आज सदा के लिये दूर हो गये।''

× × ×

दीपक का शव मरघट पर लाया गया। आँसू का पंखा झलते हुए पिता ने अग्नि की लपटों में दीपक के कोमल शव को दहकाया। अग्नि की लपटें आकाश को छू रही थीं, दीपक भक-भक कर बुझ रहा था। उस समय भी पिता के फटे कलेजे से "खुश रहो लाल" का शब्द ही निकल रहा था।

× × ×

मरघट से लौटकर जब जगदीश बाबू घर वापस आये तो उनसे रहा न गया और इन शब्दों में फूट पड़े :—"दीपक ! मैं जानता था कि जलता हुआ दीपक भी एक दिन भक-भक कर बुझ जाता है। सच, मुझसे यह भूल हुई जो मैंने तुम्हारा नाम 'दीपक' रक्खा। यदि तुम्हारा नाम दीपक न होता तो शायद हमें यह दुख सहन न करना पड़ता—''

बीच में ही किसी अदृश्य ने बात काटकर कहा—"...... ! आपसे कुछ भी भूल नहीं हुई—आप जानते हैं कि मानव का जन्म मरने के लिए ही हुआ है उसी प्रकार दीपक की सृष्टि बुझने के लिए ही हुई है अर्थात् एक दिन मैं या तू, हम सबको इसी प्रकार दुनिया से जाना ही होगा। फिर आप ही बताइये, मैं इस कठोर दैवी नियम से कैसे वंचित रह सकता था। दीपक और मानव को यदि वास्तविक दृष्टि से देखिए तो कोई अन्तर नहीं मिलेगा। जब तक मानव जीवित रहता है, वह जलते हुए दीपक के समान है और जब मृत्यु को प्राप्त कर लेता है तो वह बुझा हुआ चिराग है। दीप जब तक जल रहा है उसकी रोशनी तेज हो सकती है लेकिन प्राण रूपी दीपक जब एक बार बुझ जाता है तो फिर दुबारा नहीं जलता...... नहीं जलता......किसी की जिन्दगी लेकर भी नहीं जलता चाहे अब आपकी जिन्दगी का टिमटिमाता हुआ दीप भी......क्यों न बुझ जाये ?''

जगदीश बाबू इस वाक्य को सुन फूट-फूट कर रो पड़े। आँसू बह गया, दुःख का बोझ हल्का हुआ और तब यह ज्ञात हुआ कि आँसू बहाना तो कायरता है, महानता तो इसीमें है कि हम सत्य को सोचें और समझें ताकि मोह-माया के झूठे बंधन में जकड़ा हुआ इन्सान मुक्ति पाने के लिए अग्रगामी हो !

गद्य गीत—

बन्दी घर से प्यार

[रानी लक्ष्मीकुमारी चूड़ावत]

इस बन्दीघर से मुझे प्यार हो गया है। सदियों के संस्कारों ने इसके लिये मेरे हृदय में एक अद्भुत ममता की सृष्टि कर दी है। इस बन्दीघर की शक्तिशालिनी दीवारों ने अपनी बलिष्ट भुजाओं से अब तक मुझे कैदी बना रखा था।

इनके विरुद्ध विद्रोह की आग मेरे हृदय में जला करती थी। पर अब तो ये गरीब खुद ही गिर रही हैं

इन्हें मिटते देख, न जाने क्यों मुझे इन पर रहम आता है। जब सारे पंछी इन टूटे पिंजड़ों से उड़ रहे हैं, मेरा हृदय मुझसे कह रहा है "उड़ मत जाना"।

बन्दीघर की सब दीवारें गिर चुकी हैं, भीषण कपाट औंधे मुँह पड़े है और जर्जर पिंजड़े के सीखचे टूट चुके हैं। द्वार खुले हुए हैं फिर भी यह पंछी उड़ने को तैयार नहीं।

कल तक क्रांतिकारी भावनायें इन्हें नष्ट कर आगे बढ़ने को तैयार थी, पर आज इस कातिल के लिये मेरे दिल में रहम पैदा हो गया है।

इसके सब गुनाह मैंने माफ कर दिये हैं। वीरगति प्राप्त सैनिक को और अतीत के गौरव को सिर झुकाना हमारे यहाँ की परम्परा है।

मैं यहीं सिर झुकाये जीवन बीता दूंगी पर यहाँ से हटूंगी नहीं।

जब तुम दुनिया के नये नये चित्र देखकर आओगे तब मैं तुम्हें दीवारों के बहुत पुराने गौरवशाली चित्र दिखलाऊँगी।

इस बन्दी घर में तुम सदा मुझ से मिलते रहे हो और अब भी यहीं मिलना होगा।

एक विचारणीय प्रश्न !

जागरण तो तब हो जब नीति की भित्ति हो। क्या आपको नहीं लगता कि बहुत सी भित्तियाँ टूट चुकी हैं ?

क्या नीति की कल्पनाएं वही रहेगीं जो सनातन सम्मत, मनुस्मृति सम्मत या हिन्दू, बौद्ध-जैन-ईसाई-मुस्लिम धर्म-शास्त्रों पर आधारित होंगी ? याकि युगानुसार उसमें परिवर्तन करना आवश्यक है ? यह परिवर्तन कहाँ से जागेंगे ? व्यक्ति से, समूह से या संस्था से ?

—प्रभाकर माचवे

[माचवेजी ने "अणुव्रत" के पाठकों के विचारार्थ उपरोक्त प्रश्न उठाया है। अतः इस विषय पर पाठक व विद्वान अपने विचार सहर्ष प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं। इस अंक में श्री रामकृष्ण 'भारती' के विचार प्रकाशित किये जा रहे हैं।

—सम्पादक]

"श्री प्रभाकर माचवे ने अपने पत्र में कुछ मूलभूत बातों की चर्चा की है। उनमें बहुत कुछ तथ्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि नीति की भित्ति के बिना "जागरण" अस्थायी होता है। यह भी सत्य है कि बहुत सी भित्तियाँ टूट चुकी हैं, किन्तु हमें यह मानकर तो चलना ही होगा कि वे भित्तियाँ समय की आवश्यकता को लेकर हमारे कल्याण के लिए बनाई गई होंगी। आज भले ही उनकी इस रूप में आवश्यकता न हो, किन्तु हमें इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ तो मर्यादा रखनी ही होगी। इसका यह भी अभिप्राय नहीं कि सभी भित्तियाँ आवश्यक हैं। हमें यह समझ कर चलना होगा कि जो बन्धन अनावश्यक तथा आजकी स्थिति में अव्यवहार्य हैं, उनमें समयोचित परिवर्त्तन अपेक्षित है, किन्तु साथ ही यह भी विचारणीय है कि सभी कुछ पुराना त्याज्य नहीं।

जहाँ तक नीति की तथाकथित कल्पनाओं का प्रश्न है, मेरा विनम्र निवेदन है कि वे चाहे सनातन-सम्मत हों, मनुस्मृति-सम्मत हों अथवा हिन्दू-बौद्ध-जैन-ईसाई-मुस्लिम धर्मशास्त्रों पर निर्धारित हों (जैसा कि स्वयं श्री माचवे ने लिखा है)। वे वही रहें, ऐसा तो कहीं प्रतिपादित नहीं। उनमें युगानुसार परिवर्तन तो होता ही रहता है, किन्तु यहां "कल्पना" शब्द का प्रयोग चिन्त्य है, क्योंकि उससे ऐसा लगता है कि लेखक की आस्था धर्म अथवा संस्कृति में नहीं है और वे धर्म, सम्प्रदाय अथवा मत की मान्यताओं को एक ही लाठी से रूढ़ि समझकर चलना चाहते हैं। क्या मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों के द्वारा प्रतिपादित मान्यताएँ कल्पना-मात्र हैं ? क्या हिन्दू-बौद्ध जैन-ईसाई-मुस्लिम धर्मशास्त्र, जिनमें वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, कुरान, बाइबल, गीता, रामायण, महाभारत आदि धर्मशास्त्र सम्मिलित हैं केवल कल्पना-मात्र हैं ? यहां हम श्री माचवे से कुछ अधिक संयम तथा मर्यादा से लेखनी चलाने की अपेक्षा रखते हैं। यह अलग बात है कि उनकी व्यक्तिगत आस्था इन धर्म-शास्त्रों पर भले ही न हो, किन्तु उन्हें अपने देश तथा देश की संस्कृति के प्रति तो आस्था रखनी ही चाहिए।

युगानुसार होनेवाले आवश्यक परिवर्तन कहाँ से जागेंगे, इसका समाधान तो उन्होंने स्वयं एक वाक्य में व्यक्त कर ही दिया है— "व्यक्ति से या समूह या संस्था से ?" मेरे विचार में वे व्यक्ति से भी जाग सकते हैं, समूह से भी अथवा संस्था से भी। अभी इस सम्बन्ध में और अधिक लिखने की अपेक्षा है, किन्तु अच्छा हो, यदि माचवेजी और विस्तार से अपने विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त करें।"

—रामकृष्ण 'भारती'

सच्चा वीर

अपने व्यवसाय में अधिकाधिक नीतिमत्ता और सचाई का समावेश करें। वे इस विचार को दिमाग से सर्वथा दूर कर दें कि इससे उनका काम अवरुद्ध हो जायेगा। सचाई के मार्ग पर चलनेवालों को अलबत्ता कठिनाइयों का सामना तो करना ही पड़ता है पर याद रखें सच्चा वीर और साहसी वही है जो सत्यनिष्ठा, नैतिकता और सदाचरण के मार्ग पर सत्यनिष्ठा के साथ चलता हुआ कठिनाइयों, बाधाओं और असुविधाओं की जरा भी परवाह न करें। मुझे आशा है, व्यापारी बन्धु अपने जीवन को अधिकाधिक प्रामाणिक और सत्यनिष्ठ बनाने में यत्नशील होंगे

—आचार्यश्री तुलसी

विचार-दोहन

● *निर्बल के अपराध*

बलवान के अपराध तो विवशता में सभी सहन करते हैं। किन्तु निर्बल के अपराधों को सहन करने के लिये कितने धैर्य व सहनशीलता की आवश्यकता है इसका उदाहरण 'चिनगारी' में प्रकाशित इन पंक्तियों से प्राप्त करें—

"भगवान बुद्ध किसी जन्म में भैंसे की योनी में थे। जंगली भैंसा होने पर भी बोधिसत्व अत्यन्त शान्त थे। उनके सीधेपन का लाभ उठाकर एक बन्दर उन्हें बहुत तंग करता था। वह कभी उनकी पीठ पर चढ़कर कूदता, कभी उनके सींग पकड़कर हिलाना और कभी पूँछ खींचता था। कभी-कभी तो उनकी आँख में अँगुलि डाल देता था। परन्तु बोधिसत्व सदा शान्त ही रहते थे। यह देखकर देवताओं ने कहा—'ओ शान्तिमूर्ति! इस दुष्ट बन्दर को दंड देना चाहिये। इसने क्या तुमको खरीद लिया है या तुम इससे डरते हो?'

बोधिसत्व बोले—'देवगण! न इस बन्दर ने मुझे खरीदा है न मैं इससे डरता हूँ। इसकी दुष्टता भी मैं समझता हूँ और केवल सिर के एक झटके से अपने सींगों द्वारा इसे फाड़ डालने जितना बल भी मुझ में है। परन्तु मैं इसके अपराध क्षमा करता हूं। अपने से बलवान के अपराध तो सभी विवश होकर सहन करते हैं। सहनशीलता तो वह है जब अपने से निर्बल के अपराध सहन किये जाँय।"

● *छोटे से बड़े सब*

हमारे छोटे-छोटे कामों का भी जीवन-निर्माण में कितना महत्व है यह जानने के लिये 'शारदा' में प्रकाशित श्री रिषभदास रांका के लेख का यह संस्मरण कितना पथ-प्रदर्शक है—

"मेरे एक मित्र जो बहुत कुशल विक्रेता माने जाते हैं उनके पास एक मील मालिक ने अपने लड़के को काम सीखने भेजा तो उन्होंने प्रथम झाड़ू हाथ में देकर कहा—दुकान साफ करो। लड़का विवेकी था, काम तो कर लिया पर घर आकर अपने पिता से बोला कि आपने मुझे वहाँ विक्रय-कला सीखने भेजा पर उन्होंने तो मुझे झाड़ने का काम सौंपा है। तब उसके पिता ने कहा—जो वे कहें, वह काम करो। कुछ दिनों बाद दुकान में कपड़े कैसे रखे जाँय, दुकान सजाने, फिर ग्राहक से बात करने और धीरे-धीरे सब काम सिखाये। जो व्यक्ति छोटे से बड़े सब काम अच्छी तरह से करता है वह जीवन में सफल होता है। पर जो छोटे काम करना अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते हैं वे अपने जीवन विकास में असफल रहते हैं।"

● *दीप और अन्धकार*

विद्वेष की अग्नि में झुलसकर कपटी और छली व्यक्ति अपना सर्वस्व नाश कर लेते हैं परन्तु निष्कपट और निर्मल हृदयी व्यक्ति द्वेष की झंझा में अडिग रहता है। 'पांचजन्य' में प्रकाशित श्री पुरानन की यह लघुकथा इस दृष्टि से सचमुच ही पठनीय है—

"सन्ध्या का समय था। दीप टिमटिमा रहा था।

अन्धकार की गहनता प्रतिपल बढ़ती जा रही थी।

अन्धकार ने गर्व से अट्टहास किया "नादान संभल! मुझे चुनौती देता है। अभी अपनी गहनता में तेरा अस्तित्व विलीन किए देता हूं।

दीपक मुस्करा दिया।

अन्धकार को उसका मुस्कराना और भी चुभ गया।

घुमड़-घुमड़कर अन्धकार दीपक के चारों ओर कालिमा का अम्बार लगाने लगा।

किन्तु दीपक की ज्योति प्रखरतर होती गई।

दीपक की देहली पर सिर पटककर अन्धकार अपना अस्तित्व मिटाता रहा।

अन्धकार की इस बेबसी के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए दीपक ने कहा—"बन्धु! विद्वेष की अग्नि में झुलसकर तुम भूल गए कि अन्धकार की गहनता के बीच प्रकाश-पुंज का रूप और निखर उठता है।"

अन्धकार के पास निःश्वास छोड़ने के अतिरिक्त बचा ही क्या था?"

● *दो संस्मरण!*

कर्मनिष्ठ और देशभक्त महापुरुषों का यों तो सारा जीवन ही एक प्रेरणा-स्रोत रहता है तथापि कुछ विशेष घटनाएं और दृष्टान्त अनायास ही हृदय को छूते चले जाते हैं। लोकमान्य तिलक के सम्बन्ध में उन्हीं की जेष्ठ पुत्री श्री पार्वती बाई केलकर और उनके भाँजे श्री बाबा साहब विद्वांस द्वारा लिखित 'रामराज्य' में प्रकाशित ये संस्मरण कितने मर्म-स्पर्शी हैं—

"एक बार मैंने पिताजी से भोजन के लिये कहा—जबकि 'केसरी' के लिये लिखने में वे व्यस्त थे। अभी नहाये भी नहीं थे। दो बार मैंने कहा; पर बात नहीं सुनी। फिर मैंने जोर से कहा, तो मुड़कर कहने लगे—"ब्रह्मदेव ने बड़ी गलती की।" मैंने पूछा—'सो कौन सी?' उन्होंने कहा—'अरे, इस पेट की थैली में एक छेद ही रक्खा होता, तो कितना अच्छा होता? अन्न, रस उसमें भर दिया कि काम हो गया। भोजन के लिये ऐसा महत्व का वक्त कैसे खर्च करें?"

× × ×

"कई बार पूज्य बाबा (लो॰ तिलक) देश की करुणाजनक स्थिति का चिंतन करते हुए बैठे रहते थे। एक बार मैंने देखा कि वे

कुर्सी से उठकर कहने लगे—'अगर ईश्वर ने क्षण भर भी यह कहा कि मैं तुमको साक्षात मोक्ष देता हूं, तो मैं उसे ठुकराकर कहूंगा कि नहीं मुझे पहले अपने देश की गुलामी के बन्धनों से मुक्त देखना है। व्यक्तिगत मोक्ष चाहे जितनी उच्चकोटि का हो वह पराकाष्ठा का व्यक्तिगत स्वार्थ है।"

● *तीस, साठ और सौ गुना*

जैसे भी वातावरण में व्यक्ति जन्मता व पलता है वैसे ही संस्कार उसमें उत्पन्न होते हैं और जैसे संस्कारों की पृष्ठभूमि होती है उसी के अनुरूप वह गुणों को ग्रहण कर पाता है। 'सेवाग्राम' में प्रकाशित ईशा मसीह का यह वाक्य उसी ओर संकेत कर रहा है—

'खेत में बोये बीज एक से नहीं उगते। कुछ रास्ते में गिर जाते हैं, जिन्हें पक्षी चुग लेते हैं; कुछ पथरीली धरती पर गिरते हैं, उनके अंकुर जल्दी सूख जाते हैं। कुछ बीज काँटों पर गिरते हैं, उन्हें काँटे दबा लेते हैं। लेकिन कुछ बीज अच्छी धरती पर गिरते हैं जो पैदा होकर बड़े होते हैं और उनके एक एक दाने से ३०-६० दाने फलते हैं।

यही दशा आदमियों की है। कुछ आदमी बाहरी लोभ में फंसे रहते हैं। कुछ खुशी-खुशी उपदेश सुन लेते हैं पर कष्ट या अपमान सहने पर रास्ते से हट जाते हैं। कुछ ज्ञान की बात समझते हैं, पर संसार का मोह उन्हें दबा लेता है। जो लोग भगवान की बात समझते हैं; वे फलते फूलते हैं—कुछ तीस गुना; कुछ साठ-गुना और कुछ सौ गुना।"

● *पाप के बदले पद*

एकतंत्रीय शासन और तानाशाही के बर्बर व नृशंस रूप के पश्चात् हमने जिस प्रजातंत्र के दर्शन किये, उसमें भी पर्दे की ओट में वही नजारे कैसे दीख रहे हैं इसकी जानकारी के लिये "जिनवाणी' में प्रकाशित मुनि श्री मनोहर जी के ये विचार निश्चय ही ध्यान देने योग्य हैं—

"वासना की पंकिलता में फंसे हमारे मध्ययुगीन राजाओं के महलों में विलास नृत्य कर रहा था। दुर्बल प्रजा की रक्षा का भार अपने कंधों पर उठानेवाला क्षत्रिय-समाज वासना का दास बन चुका था। वैभव उसके स्वर्ण प्रासादों में मुस्कराता था, मदिरा की लाली में जीवन की लाली देख रहा था। उनकी आँखें ३॥ हाथ की पुतली से ऊपर उठना ही नहीं चाहती थीं, सुरा और सुन्दरी उनके जीवन-लक्ष्य थे।

यमुना की छलछलाती लहरों के निकट स्वर्ण प्रासाद में अन्तिम मुगल सम्राट मुहम्मद और लालकुंवर यमुना की लहरों से खेलती नोकाएं देख रहे थे। लालकुंवर यौवन की मुस्कान में सम्राट से बोली—दुनिया का वैभव देखनेवाली इन आँखों ने सवारियों से भरी किश्ती को मझधार में डूबते नहीं देखा। बस इशारा काफी था, सम्राट् के इंगित पर मल्लाह ने मझधार में नौका डुबोदी। बीसियों व्यक्ति चीखते-चिल्लाते व तड़पते डूब कर मर गये।

राजाशाही की प्रतिक्रिया में आनेवाली नेताशाही कितने गहरे पानी में है। स्वातंत्र्य के पूर्व त्याग और सेवा की साकार तपोमूर्ति नेता कुर्सी पाकर वैभव का दीवाना बन गया है। सातों पीढ़ियों के लिये धन एकत्रित करने में जुट गया। इस जेब भरने की नीति में उसके हाथ रह गई काष्ठ की कुर्सी, जनता के हृदय-सिंहासन से वंचित हो गया है। १९५१ में आसाम के राज्यपाल की कन्या की मुद्रिका सरोवर में गिर पड़ी बस फिर क्या था, राज्यपाल की आज्ञा हुई तालाब का सारा पानी उलच दो। हजारों मछलियों ने तड़पकर प्राण दे दिये और जनता को भयंकर जल-कष्ट का सामना करना पड़ा पर राज्यपाल के हाथ लगा केवल कीचड़। पर स्वार्थ-लिप्सा का यहाँ कहाँ विराम था? बड़ी-बड़ी मछलियों का पेट चीरकर मुद्रिका शोधी गई। पर हाथ लगी केवल निराशा। कुर्सी का नशा जो कराये वही थोड़ा है। सफेद टोपी की ओट में काले कारनामों में क्या ये विलास की प्रतिमाएं मध्ययुगीन निरंकुश राजाओं की नियंत्रणहीनता की पुनरावृत्ति नहीं करतीं? पाप ज्यों का त्यों है, हाँ, गद्दी का स्थान कुर्सी ने ले लिया है।"

● *यही तो खूबी है!*

कहते हैं कि 'माया से जितना दूर भागोगे उतना ही वह तुम्हारे चरण चूमने को उतावली रहेगी' इसी भावना को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य श्री विनोबा के 'गीताप्रवचन' का यह दृष्टान्त कैसा दिशा-बोधक है—

"लक्ष्मी का स्वयंवर था। सारे देव-दानव बड़ी आशा बांधे आये थे। लक्ष्मी ने अपना प्रण पहले प्रकट नहीं किया था। सभा-मंडप में आकर वह बोली—"मैं उसी के गले में वरमाला डालूंगी, जिसे मेरी चाह न होगी।" वे तो सब थे लालची। सो लक्ष्मी निस्पृह वर खोजने लगी। इतने में शेषनाग पर शान्त भाव से लेटी हुई भगवान् विष्णु की मूर्ति उसे दिखाई दी। उसके गले में माला डालकर वह आजतक उनके पैर दबाती हुई बैठी है। 'जो न चाहे उसकी होती रमा दासी' यही तो खूबी है।"

हे गृहस्थो!

तुम्हारे पारिवारिक जीवन में परस्पर ऐक्य, सौहार्द्र और सद्भावना होनी चाहिये। द्वेष की गन्ध भी न हो। तुम एक-दूसरे को उसी तरह प्रेम करो, जिस तरह गाय अपने तुरन्त जनमें हुए बछड़े को प्यार करती है।

—अथर्ववेद

जीवन के संस्मरण

[श्री दुलासी बाई भूतोड़िया]

समाज की कुप्रथा के कारण ११ वर्ष की छोटी उम्र में मेरा विवाह हो गया। लगभग सवा वर्ष बाद मेरे पतिश्री का देहान्त हो गया। पारिवारिक लोगों में शोक छा गया। सभी बहुत दुःखी थे। बचपन तथा सहज भोलेपन के कारण मुझे इसका अनुभव भी नहीं हुआ। न तो जब विवाह हुआ तब खुशी थी और न इस बार दुःख।

माता-पिता तथा परिवार के लोगों ने सोचा कि यों इस अवस्था में इसके दिन कटने मुश्किल होंगे, यह सत्संगति में अपना समय बितावे तो इसके जीवन में शान्ति रहे। अतः उन्होंने मुझे सत्संगति की ओर प्रेरित किया।

मेरे पिताश्री का स्वभाव बहुत शान्त, सरल और भला था। किसी पर गुस्सा करना तो मानो वे जानते ही नहीं थे। उनके स्वभाव की मेरे जीवन पर अमिट छाप पड़ी। इसी प्रकार मेरी माताजी की गंभीरता और सहनशीलता का भी मेरे जीवन पर प्रभाव पड़ा।

मेरी मासीजी ७-८ महीने आचार्यश्री के सत्संग में रहती हुई धर्म-ध्यान में अपना समय बिताती थीं। मैं भी उनके साथ सत्संग में, धर्म-ध्यान में रहने लगी। सत्संगति से मेरी वैराग्य भावना और त्याग-वृत्ति बढ़ने लगी। लगभग १४ वर्ष की उम्र में मैंने नित्य प्रति नवकारस्मरण, गुरु-दर्शन, बिना भोजन किये दो समायक, पहरसी (एक प्रहर दिन चढ़े तक कुछ भी नहीं खाना) रात्रि में चौ-विहार (खाद्य-पेय आदि का सम्पूर्ण परित्याग), सचित्त का त्याग तथा महीने भर में दो उपवास का जीवन भर के लिये नियम लिया। अस्वस्थता आदि विशेष कारण का अपवाद रखा।

मेरा शरीर अस्वस्थ रहने लगा, यात्रा में पैदल चलती। इससे सीखे हुये थोकड़े दुहराने का मौका नहीं मिला। अधिकांश भूल गई।

मेरे पिताश्री सचाई का बहुत बड़ा ध्यान रखते थे। इससे मेरा बचपन से ही सत्य की ओर झुकाव था। मैं अपने को सदा झूठ से बचाये रखने की चेष्टा रखती। सं० २००५ में रतनगढ़ में आचार्यश्री के सामने जीवन भर के लिये मैंने असत्य बोलने का त्याग किया। मुझे खुशी है कि मैं अपने इस नियम का ठीक पालन करती आ रही हूँ।

सं०.२००८ में छापर में आचार्यश्री के समक्ष जीवन भर के लिये मशीन का पिसा आटा खाने का परित्याग किया। प्रतिदिन पानी सहित ११ द्रव्य से अधिक न खाने का व्रत लिया। कुल द्रव्य १२५ रखें। मशीन का पिसा आटा प्रयोग न करने का नियम लेने के पीछे मेरी भावना यह थी कि मशीन द्वारा होने वाली हिंसा की क्रिया से मैं बच सकूं तथा अनाज के विटामिन भी नष्ट न होने पाए।

मशीन का पिसा आटा न खाने का नियम पालन करने में मुझे गुजरात, महाराष्ट्र आदि की यात्राओं (इन यात्राओं में मैं आचार्यश्री के सत्संग में थी) में असुविधाओं का सामना करना पड़ा, परन्तु मैंने नियम पर आंच नहीं आने दी।

चाय पीने का काम पड़ा हो, ऐसा याद नहीं। बचपन में कभी पी हो तो ख्याल नहीं। आइसक्रीम और बर्फ का मुझे जीवन-भर के लिये त्याग है।

प्रतिदिन एक घंटा मौन करती हूँ। आधा घंटा ध्यान करती हूँ। इससे मुझे जीवन में शान्ति का अनुभव होता है। दिनभर के चार प्रहरों में भोजन के लिये मैंने एक प्रहर खुला रख छोड़ा है। अछाया (बिना छत की खुली जगह) में सोने का वर्षभर में ९ महीने मुझे त्याग है। पलंग, खाट, ढोलिया आदि का आजीवन व्यवहार न करने का मेरे नियम है, यात्रा आदि का अपवाद मैंने रखा है क्योंकि कहीं पर भूमि पर जीव-जन्तुओं की बहुत अधिकता होती है जिससे वहां पर सोया नहीं जा सकता। भोजन पर बैठकर इक्कीस नवकार का स्मरण करके जीमने का मेरा नियम है। नहाने में कभी भी साबुन इस्तेमाल न करने का भी मेरा नियम है। यह सब इसलिये कि जीवन ज्यादा से ज्यादा सरल, सीधा और धर्म की तरफ झुका हुआ हो।

सं० २००८ में मैंने खादी के सिवाय दूसरे कपड़े पहनने का परित्याग किया। अब हाथ की कती-बुनी खादी के सिवाय दूसरे किसी भी प्रकार के कपड़े का उपयोग न

करने की मेरे प्रतिज्ञा है।

बीच में जब मेरा शरीर अस्वस्थ रहने लगा और सब तरह के आयुर्वेदिक और डाक्टरी इलाज कराकर मैं थक गई, कोई फायदा नहीं हुआ, तब मैंने प्राकृतिक चिकित्सा का सहारा लिया, खुद श्रम करने लगी। थोड़े समय में नतीजा यह हुआ कि मेरी सारी बीमारियाँ दूर होगईं। शरीर स्वस्थ हो गया। शरीर जब अस्वस्थ रहता था, तब दस-दस सामायक करने में जो शान्ति नहीं मिलती, अब चार-पाँच सामायक होती हैं तो भी शान्ति का विशेष अनुभव होता है। शुभयोग की अच्छी प्रवृत्ति रहती है।

तपस्या के प्रति भी मेरी अभिरुचि रही है। प्राकृतिक चिकित्सा कराने के पूर्व मैं चार दिनों तक की तपस्या (अनशन) कर चुकी थी। पर इसमें मुझे बड़ी कठिनाई लगती थी। प्राकृतिक चिकित्सा कराने के पश्चात् मैंने ऊपर में ८ दिन तक की तपस्या (अनशन) की। आठ दिनों की तपस्या के बाद आठ दिन तक केवल दूध आदि का उपयोग किया, अन्न, का बिल्कुल उपयोग नहीं किया। अब मुझे तपस्या करना कठिन नहीं लगता, सहज लगता है। अपना रोजाना का काम करते हुये समय-समय पर उपवास कर लेती हूं। चित्त में बड़ी शान्ति अनुभव होती है।

अब मुझे सब प्रकार की डाक्टरी दवाई और इन्जेक्शन का जीवनभर के लिये परित्याग है। खादी के अलावा मिल आदि से बने कपड़े का तो त्याग है ही, साथ ही साथ मशीन से सिले कपड़े पहनने का भी मुझे परित्याग है। जीवन में पर-निर्भरता कम से कम रहे, इस दृष्टि से मेरी यह कोशिश रहती है कि मैं जीवन को इस तरह के ढांचे में ढालूं।

सादगी से जीवन में मुझे जो संतोष मिला और जो मिल रहा है, आडम्बरमय जीवन में ऐसा कभी अनुभव नहीं हुआ। मैं सब भाइयों और बहिनों से जोरदार शब्दों में कहूंगी कि वे अपने जीवन को ज्यादा से ज्यादा सरल, संयत और सादगीमय बनायें। वे खुद महसूस करेंगे कि एक अनूठी शान्ति उन्हें मिल रही है।

मैं विशिष्ट अणुव्रती हूं। अणुव्रत-आन्दोलन के प्रति मेरे मन में दृढ़-निष्ठा है। अणुव्रत-आन्दोलन के नियम अपनाने पर मुझे जीवन में आत्म-संतोष मिला है, सुख मिला है। अणुव्रत-आन्दोलन के रूप में आचार्य श्री ने संसार को जीवन-विकास की एक बहुत बड़ी चीज दी है। भाई और बहिनें अणुव्रत आन्दोलन में दिलचस्पी लें, अपने घर का वातावरण नैतिक बनायें ताकि घर के बालक-बालिकाओं पर नैतिकता और सचाई जैसे गुणों की कुदरती छाप पड़ सके।

मुझे अपने वर्तमान जीवन में बड़ी शान्ति अनुभव हो रही है। खानपान आदि के पदार्थों में तथा दूसरी तरह की बाहरी सुविधाओं में मैंने जो कमी की है, उससे मुझे कोई तकलीफ महसूस नहीं होती। मैं तो अपने जीवन में हलकापन अनुभव करती हूँ। आडम्बरों से घिरा हुआ जीवन मुझे भार लगता ह। अपने जीवन की अनुभूतियों को प्रगट करने के लिए मैंने अपने विचार रखे हैं और कोई भावना इसके पीछे नहीं है।

—०—

आत्म-ज्योति

[*श्री सुरेशप्रसाद 'अमर'*]

चन्द्रमा, तारे और सभी ग्रह चलते हैं, घूमते हैं रातदिन, एक दूसरे के सम्बन्ध से, आकर्षण से, रीति से, व्यवहार से और बनावट से।

सम्भव है, चलते-चलते किसी दिन आपस में टकरा जायँ।

तो क्या होगा ? कैसे रहेगी उनकी ज्योति, शक्ति ?

क्षणभर में सारा विश्व टूट कर गिर जायगा। उनकी शक्तियाँ नष्ट हो जायेंगी।

और यह 'ऐटम', विश्व-शक्ति क्या होगी ? कहाँ रुकेगी ?

लेकिन नहीं। इसके पहले कुछ करना होगा। आत्म-प्रेरणा से अपने आप ही अपने हाथों में धारण करना होगा, विश्व को दिखलाना होगा कि अमर बापू के मन्त्र, अहिंसा व्रत में कौन-सी शक्ति नीहित है।

यह जो विश्व उन्नति की आड़ में विनष्ट की ओर जा रहा है, रोकना होगा।

यह निश्चित है 'वे' नहीं रोक सकेंगे। 'उन्हें' यह वरदान नहीं मिला। सभी जानते हैं, प्राचीनकाल में और आज भी हो रहा है—दैत्य और देवता में युद्ध। देवता दैत्य से व्याकुल हुए हैं पर क्षणभर के लिए। देवताओं की पावन-शक्ति के सामने दैत्यों की विनाशकारिणी शक्ति शीथिल पड़ ही जाती है।

यही होगा।

कैसे ?

इसे रोकने की शक्ति है। पर ग्रहण करना होगा अपनी हथेली पर आत्म प्रेरणा से अपने आप धारण करना होगा—

आत्मबल ! आत्मशक्ति !! आत्मज्योति !!!

आन्दोलन की आवाज

देश की निःस्वार्थ सेवा

[श्री गोविन्दवल्लभ पन्त, गृह मंत्री, भारत सरकार]

अणुव्रत आन्दोलन का संचालन देश की निःस्वार्थ सेवा है। इसका संचालन कर देश के नैतिक उत्थान का प्रयास किया जा रहा है। यह एक बहुत बड़ा काम है। आप त्यागी हैं अतः आपके प्रयत्नों का असर सहजतया हो सकता है। राजनैनिक और साम्प्रदायिक स्वार्थों से रहित यह जो प्रयास किया जा रहा है वह श्रेयस्कर है।

—विचार-विनिमय के अवसर पर व्यक्त विचार

आधुनिक युग का आन्दोलन

[श्रममंत्री श्री खण्डूभाई देसाई]

सत्य अहिंसा जैन धर्म का मूल लक्ष्य-विन्दु है। पर आज का जीवन भौतिक चकाचौंध में से गुजर रहा है। अतः आज सत्य अहिंसा से अधिक अपरिग्रह पर बल देने की आवश्यकता है। यदि अपरिग्रह को लेकर आन्दोलन किया गया तो सत्य-अहिंसा अपने आप आ जायेंगे। आज असत्य और हिंसा बढ़े हुये हैं इसका मूल कारण परिग्रह है। व्यक्ति संग्रह शील है अतः संग्रह के लिये वह सब कुछ कर लेता है। भगवान महावीर यदि आज पैदा होते और वे आधुनिक युग की विभूति के रूप में उपदेश करते तो मैं समझता हूँ वे वर्तमान के भौतिक जाल को सामने रखकर उपदेश करते। अभी-अभी मैं दक्षिण का दौरा करके आया हूँ,। मैंने वहाँ कहा था—मार्क्स बुरा नहीं था वह तो जीवन को सुखी बनाने आया था। पर आज यदि वह पैदा होता तो वह भी दुनिया को अहिंसा का ही रास्ता दिखाता। इसी तरह भगवान महावीर या वैदिकों के वेद या अन्य कोई भी सम्प्रदाय सब युगानुकूल चले और इसी कारण जन साधारण ने उनके विचारों का अनुगमन किया। आप लोगों को भी अपने विचारों को उसी रूप में रखना चाहिये जिससे सर्व साधारण के दिल पर वे असर कर सकें और आप वैसा करते भी हैं। आचार्यश्री तुलसीजी का अणुव्रत आन्दोलन आधुनिक युग का जैन धर्म ही तो है। सभी नैतिक जीवन पर चल देंगे। नैतिक और आध्यात्मिक जीवन दृढ़ होने से सब समस्याएं हल हो सकती हैं। अणुव्रत आन्दोलन नैतिक और आध्यात्मिक जीवन-निर्माण का प्रेरणा-स्रोत है। वैसे संसार कभी दोष विमुक्त नहीं रहा और न रहेगा ही, पर उसमें सन्तुलन तो रहना ही चाहिये। इसके लिये सभी अच्छे आदमी प्रयत्नशील रहे हैं। आज क्या नहीं है? सब कुछ है, सिर्फ सन्तुलन नहीं है। वात पित कफ के असन्तुलन नहीं है। वात पित कफ के असन्तुलन से शरीर में बीमारियां पैदा हो जाती हैं और जबतक वे सन्तुलित नहीं होते उसमें कुछ न कुछ कसर रहती ही है। पर शरीर में उन दोषों को निकालने की शक्ति होती है। वह दोषपूर्ण तत्वों को मल मूत्र के जरिये बाहर निकालता रहता है। इसी तरह आज के समाज में बुराइयों को निकालते रहने की शक्ति होनी चाहिये। समाज यदि बुराइयों को स्थान नहीं देगा तो वे अपने आप मिट जायेंगी।

आज हमारी संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित है। यूरोपीय सभ्यता के प्रकाश में लोग चौंधिया गये हैं। उसके सद्गुणों को अपनाने की उनमें शक्ति नहीं और दुर्गुणों को सहज ही अपना लिया जाता है। ऐसे समय में आपके द्वारा जो प्रयास किया जा रहा है मैं उसका स्वागत करता हूं। यह और खुशी की बात है कि उसमें कतई साम्प्रदायिक बू नहीं है।

—विचार-विनयम में व्यक्त विचार

जन-जागृतिमूलक कार्यक्रम

[विधिमंत्री श्री हरिविनायक पाटस्कर]

हमें कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये जो हमारे लिये या समाज के लिये हानिप्रद हो। अणुव्रत आन्दोलन जन-जागृतिमूलक कार्यक्रम है और वह हमें एक ऐसा रास्ता दिखाता है जिस पर चलकर हम अपना और समाज का उत्थान कर सकते हैं। अणुव्रत आन्दोलन हृदय-परिवर्तन का प्रतीक है। जहाँतक कानून का सवाल है वह समाज पर नियंत्रण रखने के लिये होता है और जब ९० प्रतिशत व्यक्ति उसे मानते हैं तो वह समाज के सामने मर्यादा के ही रूप में आता है। इस तरह कानून भी समाज सुधार का एक अंग है पर प्राथमिकता हृदय-परिवर्तन को ही दी जावेगी क्योंकि हृदय परिवर्तनपूर्वक आया हुआ कानून ही सफल हो सकता है।"

—देहली में आयोजित एक विचार-परिषद् में व्यक्त विचारों से

आन्दोलन के सारे नियम प्रशस्त हैं।

[खाद्यमंत्री श्री अजितप्रसाद जैन]

"आप लोग गुरुतर कार्य को उठाकर देश की महान् सेवा कर रहे हैं। विद्यार्थियों में व अन्य वर्गों में जिस प्रकार कार्य चला है मुझे सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। अणुव्रत आन्दोलन के सारे नियम प्रशस्त हैं। पर खाद्य मन्त्री होने के नाते मुझे जो अनुभव मिला है उसके आधार पर मैं आपसे विशेष अनुरोध करूँगा। मैं समझता हूँ सबसे अधिक अनीति के केन्द्र व्यवसायी हैं। मुझे परेशान हो जाना पड़ता है। जहाँ भारतवर्ष के

अनेक लोगों को पेट भर अन्न सुलभ नहीं है वहाँ व्यवसायी लोग आनेवाली तेजी की प्रतीक्षा में, बाजार में तेजी लाने के लिये निर्मम रूप से अन्न का संग्रह करके रखते हैं। मुनाफे की भी कोई हद होती है। कहीं पर आकर व्यवसायी उससे संतोष नहीं लेते। अच्छा हो इस गूढ़ अनैतिकता को हटाने के लिये निर्धारित व्रतों के साथ आप यह व्रत और जोड़ दें "मैं बाजार में तेजी लाने के लिये धान्य आदि किसी भी सामग्री विशेष को संग्रहित नहीं करूँगा।"

—एक वार्तालापमें व्यक्त विचारों से

अन्तर्राष्ट्रीय टक्कर का हल

[श्री अक्षयकुमार जैन, सम्पादक नवभारत टाइम्स]

हमारे देश में धर्म व्यक्ति के जीवन के साथ चलता है वह किसी स्थान विशेष से सम्बन्धित नहीं है। आज जो वर्ण, सम्प्रदाय और राष्ट्रीय टक्कर से आगे अन्तर्राष्ट्रीय टक्कर का प्रश्न है उसका यदि कोई हल निकाल सकता है तो वह पूर्व ही निकाल सकता है और समय-समय पर उसने ऐसे हल निकाले भी हैं। आज भी उसका प्रकाश अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह के रूप में विश्व को मिलता है। समस्याओं के हल के लिये कुछ लोग अब भी यह सोचते हैं कि वे अणुबम और उद्जन बम से हल हो जायेंगी। पर उनसे तो चन्द क्षणों में विश्व में विनाश का ताण्डव ही किया जा सकता है। हमारा देश शान्ति का समर्थक रहा है अतः अहिंसा अपरिग्रह आदि शान्तिमूलक नियम हमारे जीवन में आने चाहिएं जिससे उनका वह अलौकिक प्रकाश दूसरों के लिये प्रेरक बन सके। हमें अपने दैनिक कार्यों पर चिन्तन करना चाहिये और यह देखना चाहिये कि मैंने आज कोई ऐसा काम तो नहीं किया है जिसका समाज या राष्ट्र पर बुरा असर पड़ता हो। इस तरह बुराइयों को कम करने का प्रयत्न किया गया तो समाज और राष्ट्र के तनाव कम करने में निश्चित सफलता मिल सकती है।

—देहली की एक विचार-परिषद् में व्यक्त विचार

आत्म-साक्षात्कार का आन्दोलन

[श्री ब्रह्मानन्द मावे]

आज के समय को देखकर यह महसूस किया जाता है कि इस नैतिक आन्दोलन की मानव को आवश्यकता है। यह आत्म-शुद्धि का आन्दोलन है, आत्म-साक्षात्कार का आन्दोलन है, मानव के सतपथ का दिग्दर्शन करानेवाला आन्दोलन है। यह आन्दोलन अवश्य ही चलना चाहिये, इसमें कोई शक नहीं।

आत्म-साधन ही परमात्म-साधन है। मानव का दृष्टिकोण निवृत्ति-प्रधान होना चाहिये, यह व्यापक व विशाल दृष्टिकोण है। मैं सोचता हूं कि मैं भी कुछ बन जाऊँ, मगर केन्द्रित-दृष्टि इस ओर होना चाहिये कि मैं क्या बनूं? व्यापार में ईमानदारी रक्खूं, सच्चाई के साथ व्यवहार करूं, विचारों को संयमित बनाऊँ व साधनामय जीवन बिताऊँ। तभी जाकर मैं कुछ बनूं। मेरी आपसे प्रार्थना है आप भी उक्त दृष्टिकोण पर चलें। अपने जीवन को संयमित बना कर लालसाओं को सीमित कर इस आन्दोलन की भावनाओं को ग्रहण करें, सोचें समझें व चिंतन करें। निसन्देह आपका जीवन हल्का बनेगा। —मद्रास स्वागत समारोह के अवसर पर पल्लवरम् में दिए गये भाषण से

सरिता और सरोवर

[श्री मुरारिलाल शर्मा]

एक दिन आलसी सरोवर ने अपने निकट बहती हुई सरिता से कहा— बहन सरिता, मैंने आप जैसा उद्योगी आज तक नहीं देखा। आप तो हर समय ही काम में लगी रहती हैं। कभी नावों और जहाजों में यात्रियों को समुद्र तक पहुंचाती हैं तो कभी उन पर बोझा ढोती हैं। यदि मैं इस प्रकार काम करूं तो मैं तो दो दिन में ही सूख जाऊँ।

इसीलिए मैंने तो पहले से ही ऐसा काम चुना है कि हर समय आराम से पड़ा रहता हूं। संसार के धन्धे तो चलते ही रहते हैं। अपने राम तो सेठों की तरह निश्चिन्त लेट लगाते हैं।"

इसपर सरिता बोली—लेकिन भैया सरोवर, इस प्रकार हर समय आलस्य में पड़े रहने से तो आप शीघ्र ही अशुद्ध हो जायेंगे, काम करने से मेरा जल मीठा और शुद्ध बना रहता है। मैं देखती हूं कि दिन-दिन आपकी कीचड़ बढ़ रही है। यदि यही दशा रही तो शीघ्र ही आप कीचड़ ही कीचड़ बन जायेंगे। काम करने से मेरा जल तो दिन दिन पवित्र ही होता जायगा। उस जल को पीकर मनुष्य और पशु-पक्षी अपनी प्यास बुझायेंगे। और उनकी सेवा करके मैं अपने को धन्य समझूंगी। मेरा विचार है कि मेरा उद्योग आपके आलस्य से बहुत अच्छा है।

यदि मनुष्य चाहे और लगन से काम ले तो संसार में काम की कमी नहीं। देखो ये चांद, सूरज, तारे और झरने सदा ही अपने-अपने काम में लगे रहते हैं। हमें इनसे सीख लेनी चाहिए।

पिता का पत्र

[श्री रिषभदास रांका]

प्यारे राजा बेटा,

देखो, राखी आरही है। तुम्हारी बहनें तुम्हें राखी बांधेगी। उस दिन घर २ में त्यौहार मनाया जायेगा। खाने के लिये मिठी चीजें बनेंगी। तुम्हें और तुम्हारी बहनों को नए कपड़े पहनाए जावेंगे। राखी बांधते समय बहनें तुम्हारी मंगल-कामना करेंगी। उनकी अभिलाषा होगी कि तुम्हारी उम्र, शक्ति और ऐश्वर्य बढे। भाई के नाते तुम उन्हें क्या दोगे? मंगल-कामना करनेवाली बहनों को तुम आश्वासन-वचन दो कि 'बहनों! जब तुम बुलाओगी, मैं तुम्हारी सहायता के लिए तैयार रहूंगा। राखी का यह पवित्र धागा तुम भाई-बहनों को स्नेह-सूत्र में बांधेगा। यह कितना अच्छा त्यौहार है!

बेटा, यह बहुत पुराना त्यौहार है। राखी की कथाएं पुराणों में मिलती हैं। इतिहासों में भी ऐसी घटनाओं का उल्लेख आता है। लेकिन सबका सार यही है कि अन्याय और संकट से रक्षा करना प्रत्येक आदमी का धर्म है, फर्ज है। लेकिन राखी में भाई-बहन का सम्बन्ध कैसे आया, इसकी एक इतिहास प्रसिद्ध कहानी यहां देता हूं।

तुमने राजपूत जाति का नाम सुना है न? हमलोग भी राजस्थान के ही हैं। राजस्थान में छोटे २ कई राज्य और राजा हो गये हैं। राजपूत जाति बड़ी वीर मानी जाती है। छोटे-छोटे राज्य होने से यहां हर समय लड़ाई की शंका रहती थी और संकट भी आया करते थे। जब कोई राजा मर जाता और उसके कोई लड़का नहीं होता तो रानी ही राज्य चलाया करती थी। ऐसी हालत में जब दूसरा कोई लोभी राजा शत्रु बनकर उसके राज्य को जीतना चाहता तब ये राजपूत बहनें किसी को भाई मानकर राखी भेजतीं और उसे अपनी मदद के लिए बुलाती थी। ऐसी राखियां सब जाति और धर्म वालों को भेजी जती थीं।

चार सौ वर्ष पहले की मेवाड़ की बात है। भारत का नक्शा सामने रखकर मेवाड़ को देखो। यह राजस्थान में एक प्रसिद्ध राज्य है। मेवाड़ का राजवंश राजपूतों में बहुत नामी, ऊँचा और प्रतिष्ठित माना जाता था; क्योंकि ये लोग बड़े वीर; बहादुर और बात के पक्के होते थे। मुसलमान बादशाहों के आगे कभी नहीं झुके। अन्तिम घड़ी तक अनेक मुसीबतें उठा-उठाकर भी लड़ते रहते और लड़ते २ ही मर जाते थे। परन्तु सिर झुकाने को सबसे बड़ा पाप समझते थे। उस समय देश में मुसलमानों का राज्य और शक्ति बहुत बढ़ गई थी कई राजपूत राजाओं ने उनकी अधीनता मंजूर करली और अपनी बहन-बेटियों की शादियां भी उन बादशाहों से कर दी। लेकिन मेवाड़ का सिर हमेशा ऊँचा ही रहा। मेवाड़ी राजपूत अपनी आन-बान के लिए हँसते-हँसते मर जाने वाले वीर थे।

मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह की मृत्यु के समय उनके पुत्र उदयसिंह की अवस्था बहुत छोटी थी। संग्रामसिंह का एक दासी पुत्र भी था। उस समय राजा लोग दासियां भी रखते थे और इनसे उत्पन्न पुत्र दासी-पुत्र कहलाते थे। बनवारी ऐसा ही एक दासी-पुत्र था। संग्रामसिंह की मृत्यु के बाद राज्य-वंश में सवाल उठा कि अब गद्दी पर किसे बिठाया जाय—उदयसिंह तो दूधपीता बालक था। अतएव सरदारों ने तय किया कि उदयसिंह के बड़े होने तक बनवारी को राज्यगद्दी पर बिठाया जाय। लेकिन बनवीर बहुत ही क्रूर, दुष्ट और नीच था। उसने सोचा कि यदि मैं उदयसिंह को मार डालूं तो अच्छा रहेगा। वह जिन्दा रहा तो उसके बड़े होने पर मुझे राज्य त्यागना पड़ेगा। यह सोच वह तलवार लेकर रनवास में गया। लेकिन यह खबर वहां पहले ही पहुंच गई थी। उदयसिंह पन्ना नामक दासी के पास पल रहा था। पन्ना बड़ी स्वामी-भक्त और राज-भक्त थी। उसने खबर पाते ही हाथोंहाथ टोकनी में उदयसिंह को किले के बाहर भेज दिया और उसके स्थानपर अपने लड़के को सुला दिया।

वनवीर ने आते ही पूछा तो उसने अँगुली से अपने पुत्र की ओर संकेत कर दिया कि यही उदयसिंह है। वनवीर ने अपने निश्चय के अनुसार उसे मार डाला और चला गया। अपने पुत्र को अपनी आँखों के आगे मरते देखकर भी पन्ना ने धीरज नहीं खोया। कितनी पवित्र स्वामी-भक्ति थी उसमें। धन्य हैं ऐसी माताएं।

वनवीर की क्रूरता और नीचता से सभी सरदार नाराज हो गए। राज्य में अव्यवस्था फैल गई, अत्याचार बढ़ गए। व्यवस्था और एकता खतम हो गई वह समाचार पाकर गुजरात का सुलतान बहादुरशाह बहुत खुश हुआ। वह अहमदा में, (जिसे कर्णावती कहते थे) रहते थे। उसने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी।

उस समय चित्तौड़ मेवाड़ की राजधानी थी। चित्तौड़ का किला बहुत प्रसिद्ध है। वह पहाड़ पर है, इससे दुश्मन को उसे जीतने में काफी मेहनत करनी पड़ती है। बहादुर मेवाड़ियों का सामना करना कोई हंसी खेल नहीं था, इसमें दुश्मनों को बहुत हानि उठानी पड़ती थी। पर इसवार राजपूतों में संगठन न देखकर राजमाता कर्मावती ने दिल्ली के बादशाह हुमायूं के पास राखी भेजकर मदद के लिए संदेश दिया।

इधर गुजरात का सुलतान जल्दी आ पहुंचा। राजपूतों ने सामना किया लेकिन आपसी कलह के कारण उनमें पहले जैसी ताकत नहीं रह गई थी। यद्यपि हूमायूं के दूत ने आकर कह दिया कि वह जल्द ही मदद को आ रहे हैं, पर यहां तो एक एक दिन मुश्किल जा रहा था। शत्रु की सेना आगे बढ़ रही थी। राजपूतों ने सेना का सामना किया लेकिन वे अंत तक टिक न सके। इसलिए निरुपाय होकर सबने तैयार की और कर्मावती ने अपने को सबसे आगेकर चिता में आग लगाकर उसमें हँसी-खुशी बैठकर जौहर हो गई। ऐसे जलने को जौहर कहते हैं। धर्म बचाने के लिए ऐसे जौहर कई बार हुए हैं। इधर रानियों ने जौहर किया और राजपूत वीर केसरिया बाने में लड़ते २ वीर गति को प्राप्त हुए। युद्ध करते हुए मरने को वीर गति कहते हैं।

यह सब हुआ कि हुमायूं फौज लेकर पहुंच गया। उसे यह हाल जानकर बहुत दुःख हुआ। सबसे पहले युद्ध में बहादुर को हराकर, उससे चित्तौड़ लेकर उदयसिंह को अपना भानजा मानकर गद्दीपर बैठा दिया। इसके बाद उसने चिता की भस्म अपने माथेपर लगाई और स्वर्गस्थ कर्मावती से क्षमा मांगकर अपने स्थान पर लौट गया।

अपने देश में ऐसे २ उदार लोग भी होते रहते हैं। ऐसे लोग धर्म या जाति का विचार न करके अपनी आन-बान के लिए मर मिटते थे।

नवीन क्रान्ति

[सुश्री विमला अवस्थी]

आ गई स्वतंत्रता अशान्ति भी भगाइये।
शान्तिमंत्र से नवीन क्रान्ति कर दिखाइये॥

हम जो स्वतंत्र हैं तो विश्व भी स्वतंत्र हो,
दासता का अन्त औ स्वतंत्रता दिगन्त हो।
व्याप्त विश्व क्षेत्र में हमारा शान्तिमंत्र हो,
साम्यता औ भ्रातृभाव चाव यह अनन्त हो॥
भेद भाव भूलकर सभी को अपनाइये।
शान्तिमंत्र से नवीन क्रान्ति कर दिखाइये॥

स्वत्व छोड़ आज अपनत्व भाव लीजिये,
कर्तव्य कीजिये ममत्व बाँट दीजिये।
जातिवाद पंचतत्व में विलीन कीजिये,
मृत्यु भी मिले तो अमरत्व पद लीजिये॥
त्याग की ध्वजा पवित्र सर्व फहराइये।
शान्तिमंत्र से नवीन क्रान्ति कर दिखाइये।

ज्ञान की शिखा से विश्व की अमाका ह्रास हो,
गति पगों में किन्तु मति लक्ष्य के ही पास हो।
आत्म अभिमान का 'विमल' मृदु हास हो,
मर्मशील किन्तु रंचमात्र भी न त्रास हो।
कार्यक्षेत्र में सदैव फेरियाँ लगाइये॥
शान्तिमंत्र से नवीन क्रान्ति कर दिखाइये।

[समालोचनार्थ पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियाँ कार्यालय में भेजनी चाहिए
एक प्रति आने पर केवल प्राप्तिमात्र दी जा सकेगी]

गीता - नवनीत (प्रथम भाग) लेखक—श्री केशवदेव आचार्य, प्रकाशक—श्री अरविन्द पुस्तकालय, रेलवे रोड, हापुड़ (मेरठ) उ० प्र०, पृष्ठ २४२, मूल्य ३॥)

किसी पत्रिका में पढ़ा था कि गीता में हमारी भूत, वर्तमान और भावी तीनों युगों की समस्याओं का समाधान निहित है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से 'गीता' की गहराई तक पहुंचने पर निश्चय ही इसकी सत्यता सिद्ध होती है। यही कारण है कि यह बहुमूल्य ग्रन्थ चिर-प्राचीन होते हुए भी नित-नवीन बना हुआ है।

यौंतो समय-समय पर 'गीता' की अनेक टीकाएं और व्याख्याएं प्रकाशित हो चुकी हैं किन्तु श्री अरविन्द के 'गीता-प्रबन्ध' पर आधारित प्रस्तुत 'गीता-नवनीत' की अपनी अलग विशेषताएं हैं। इसके लेखक ने भारतीय व पाश्चात्य साहित्य और दर्शन का तो गहन अध्ययन किया ही है साथ में योग-साधना और आध्यात्म-जगत के व्यावहारिक ज्ञान ने उसकी विचाराभिव्यक्ति को और अधिक सबल बना दिया है। यही कारण है कि इसके पढ़ने से पाठक को स्थान-स्थान पर अपने दैनिक जीवन में आये संघर्षों व कठिनाइयों से जूझने की एक नई प्रेरणा व उत्साह अनुभव होता है।

बीच-बीच में उत्पन्न शंकाओं का समाधान करते हुए लेखक ने गीता के आधुनिकतम व व्यापक दृष्टिकोण को लेखरूप में इस प्रकार संजोया है कि पाठक अन्ततक पुस्तक में रुचि लेते हुए पढ़ता ही चला जाता है। इसमें श्लोक-व्याख्या की रूढ़िवादिता न निभाकर गीता के युगानुकूल सन्देश और भावना का अधिक ध्यान रखा गया है जिसके कारण सर्व साधारण भी नीरसता अनुभव नहीं कर पाता।

विचारों में अरविन्द-दर्शन की गहरी छाप होते हुए भी उनके प्रकटीकरण में लेखक की भाषा सरल व स्वाभाविक ही रही है, फिर भी कहीं-कहीं विषय की गहनता के साथ-साथ भाषा का रूप क्लिष्ट हो गया है। पुस्तक की छपाई व जिल्द सादी और सुन्दर है। प्रूफ सम्बन्धी कुछ अशुद्धियाँ खटकनेवाली हैं। मूल्य कुछ अधिक प्रतीत होता है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि 'गीता-नवनीत' का साहित्यक व धार्मिक दोनों क्षेत्रों में अच्छा स्वागत होगा। इस बहुमूल्य प्रयास व देन के लिये श्री केशवदेव आचार्य निश्चय ही बधाई के पात्र हैं। पुस्तक सर्वथा पठनीय और संग्रहणीय है।

—प्रभाकर

निहारिका:—सम्पादक श्री राजेश-सक्सैना, प्रकाशक—विश्वविद्यालय कलाकार संघ, लखनऊ, पृष्ठ ६४ मूल्य १)।

प्रस्तुत पुस्तक में लखनऊ विश्वविद्यालय के चौदह कवि-कलाकारों की कुछ रचनाओं का संकलन किया गया है। सम्पादक ने "दो शब्द" में "नीहारिका" नामकरण की चर्चा करते हुए बतलाया है—"गगन में सितारों से बनी दूधिया-डगर के समान यह ऐसे ही सितारोंका एक झुरमुट है, जिसकी ओर हिन्दी विश्व बड़ी आशा लिए निहार रहा है......"

प्रस्तुत संग्रह में गद्य-गीत, मुक्तक और स्वच्छन्द काव्य (प्रयोगवाद) आदि सभी प्रकार की रचनाएँ हैं। अधिकांश रचनाएँ मुक्तक हैं। कुछ रचनाओं में उर्दू काव्य शैली का प्रभाव स्पष्ट झलकता है श्री भगवत-शरण अग्रवाल की प्रथम कविता इस प्रकार की है। उर्दू की रुबाई—(चतुष्पदी) पद्धति को भी कई कवियों ने अपनाया है। प्रायः रचनाओं में सामान्य प्रेम-वर्णन है। भगवत-शरण अग्रवाल के चार मुक्तकों में से "जिन्दगी" तथा "आशा", श्री व्रजेन्द्र सेंगर का दूसरा, चौथा तथा पांचवाँ गीत, श्री दामोदरस्वरूप विद्रोही की दो रचनाएँ— "तुमने शाप दिया जो मुझको" तथा "दो मुक्तक", कुमारी इला बनर्जी का "युग मानव", श्री हरिहरनारायण चौबे का "कंगाल" तथा 'बेकारी', श्री जगदीश अतृप्त का चौथा गीत, श्री कैलाश वाजपेयी के पहले तीन गीत तथा पहली व पाँचवीं रुबाई, श्री महेश सन्तोषी की "जिन्दगी स्वयं" "दो दिन", तथा 'मिट्टी खुदही युगके अभिशाप मिटायगी' शीर्षक कविताएँ, सुश्री रेखा बनर्जी की "प्रगति के पथ पर" शीर्षक रचना, श्री योगेन्द्र त्यागी हिमकर का पहला तथा अन्तिम गीत तथा श्री राजेश सक्सैना की "आ करें निर्माण साथी" तथा "सच्ची आजादी तब है जब"...आदि कविताएँ प्रशंसनीय प्रयास हैं। कुल मिलाकर इस संग्रह का प्रकाशन उदीयमान कलाकारों को प्रकाश में लाने के लिये अच्छा प्रयत्न है।

—रामकृष्ण 'भारती'

अणुव्रत विचार- गोष्ठी—

देहली (डाक से) गत २२ जुलाई को यहाँ मुनिश्री नगराजजी के तत्वावधान में दिल्ली के सामुदायिक विकास के हेतु एक महत्वपूर्ण 'अणुव्रत विचार गोष्ठी' का आयोजन किया गया। जिसमें देहली राज्य के मुख्य मंत्री श्री गुरुमुख निहाल सिंह, भूतपूर्व विकास मंत्री श्री गोपीनाथ 'अमन' प्रदेश भारतसेवक समाजके संयोजक श्री बृजकिशन चाँदीवाला संसद सदस्या श्रीमती सावित्री देवी निगम, नगर कॉंग्रेस की अध्यक्षा श्रीमती सुशीला मोहन, 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक श्री मुकुटविहारी वर्मा, सह-सम्पादक श्री शंकरलाल वर्मा, 'जीवन साहित्य' के सम्पादक श्री यशलाल जैन, 'सम्पदा' के सम्पादक श्री कृष्णचन्द विद्यालंकार 'नवभारत टाइम्स' के भू० सम्पादक श्री रामगोपाल विद्यालंकार, देहली नगरपालिका के सदस्य श्री वंशीलाल चौहान आदि ने भी भाग लिया।

विद्यार्थी अणुव्रत सप्ताह

देहली (डाक से) गत ४ अगस्त को अणुव्रत समिति द्वारा मुनिश्री नगराजजी के तत्त्वावधान में आयोजित विद्यार्थी अणुव्रत सप्ताह का चान्दनी चौक टाउन हाल में उद्‌घाटन करते हुये अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री ढेवर भाई ने अपने भाषण में कहा—"शरीर शुद्धि के लिये पानी का उपयोग किया जाता है। वस्त्रों को साफ करने के लिये पानी और साबुन को काम में लाया जाता है। इसी तरह क्या हमारे दिमाग की विशुद्धि आवश्यक नहीं है? वह भी तो सरस और साफ रहना चाहिये। उसमें जमे मैल और विकारों को साफ करने के लिये क्या हमारे पास कोई ऐसा साबुन या पानी है जो उसे शुद्ध बना सके। अणुव्रत आन्दोलन इस काम को पूरा करता है। यह मानसिक विशुद्धि का उपक्रम है। उसके व्रत छोटे पर महत्त्वपूर्ण हैं और आज के वातावरण में तो अणुव्रत आन्दोलन रेगिस्तान में बारिस के समान है।"

विद्यार्थियों के नाम एक सन्देश देते हुए मुनिश्री नगराजजी ने उन्हें निम्नलिखित पाँच अणुव्रत पालने की प्रेरणा दी—

१—मैं धूम्रपान नहीं करूंगा।

२—मैं मद्यपान नहीं करूंगा।

३—अवैध तरीकों से मैं परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रयत्न नहीं करूंगा।

४—मैं किसी तोड़फोड़मूलक हिंसात्मक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।

५—मैं रुपये आदि के ठहराव से अपना विवाह-सम्बन्ध नहीं कराऊंगा।

आचार्यश्री तुलसी द्वारा उद्‌बोधित

अणुव्रत प्रेरणा दिवस

[भाद्र शुक्ला ४ शनिवार ८ सितम्बर, १९५६]

जहां तक हो सके सामूहिक रूप से या व्यक्तिगत रूप से अणुव्रत साहित्य का अध्ययन करना और दूसरों को अणुव्रतों की भावना से परिचित कराना, उन्हें संयम के पथपर आगे बढ़नेकी प्रेरणा देना, जहां साधु-साध्वियों का संयोग मिले वहां उनके पास सामूहिक रूपसे अणुव्रतों की विचारधारा का ज्ञान करना अथवा किसी गृहस्थ विद्वान् के पास अणुव्रतों के बारेमें विचार-विमर्श करना और अणुव्रत प्रार्थना को कण्ठस्थ करना और उसका सामूहिक ज्ञान करना और आज से २ दिन के लिये अणुव्रत नियम पालन करना।

शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला—

अणुव्रत का विशेषांक

अनुमानित पृष्ठ संख्या—१००
मूल्य—केवल एक रुपया

सुन्दर व कलात्मक चित्रों और व्यंग चित्रों (कार्टून्स) से युक्त इस अंक में निम्नलिखित विषयों का विशेष रूप से समावेश होगा—

१ आन्दोलन के सात वर्ष
२ अणुव्रत आन्दोलन—विचारकों की दृष्टि में
३ अणुव्रत आन्दोलन का राष्ट्रीय महत्व
४ आन्दोलन की भावी दिशा क्या हो?
५ अणुव्रत समिति का वार्षिक विवरण
६ आचार्य श्रीतुलसी (एक चरित्र)
७ नैतिक पुरुषों की जीवन झाँकियाँ
८ पूंजीवाद और अपरिग्रवाद
९ साम्यवाद और अपरिग्रहवाद
१० हम क्या करें?
११ राष्ट्र-निर्माण में नैतिक विकास की आवश्यकता
१२ शिक्षा और सदाचार
१३ नागरिकता का आदर्श
१४ धर्म का वास्तविक स्वरूप
१५ व्यावहारिक जीवन में अहिंसा
१६ मद्य-निषेध
१७ जीवन का नैतिक मूल्य
१८ अणु से महान की ओर
१९ भारतीय संस्कृति का तत्त्व
२० भूदान और अणुव्रत

इसके अतिरिक्त अन्य जीवन-निर्माण और आत्म-विकास सम्बन्धी प्रेरक और पठनीय लेख, कहानी, एकांकी कविता, गद्यगीत आदि से भरपूर

इस अङ्क की रचनाओं व विद्वान लेखकों के सम्बन्ध में संक्षिप्त सी रूपरेखा आगामी अङ्क में देखिये।

इस सम्बन्ध में पाठकों के बहुमूल्य सुझाव व विचार भी सादर आमन्त्रित हैं —सम्पादक

(पृष्ठ ५ का शेषांश)

हैं। राजाजी ने अणु-आयुधों के परीक्षण पर समय-समय पर अत्यन्त वैज्ञानिक और महत्त्वपूर्ण चेतावनी दी है। इस बार भी राजाजी ने त्रिओनी-सम्मेलन की स्थिति पर विचार प्रकट करते हुए पार-क्षणात्मक अणु - विस्फोटों की निन्दा की है और चुनौतीपूर्ण शब्दों में चेताया है कि वे अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकताका उल्लङ्घन करते हैं।

राजाजी ने आगे कहा है कि; प्रयोगात्मक विस्फोटों से भी न केवल मानवता को खतरे की सम्भावना है वरन् उसे समस्त वातावरण के दूषित होने का वास्तविक और निश्चित खतरा है जो घातक और असाध्य होगा।

क्या विश्व के राजनीतिज्ञ राजाजी की इस चेतावनी को व्यवहारिक समझकर इस घातक और असाध्य स्थिति को नहीं लाने देंगे? आवश्यकता है संयुक्त राष्ट्र-संघ इसके लिये सक्रिय हो। लेकिन अभी निःशस्त्रीकरण समिति की बैठक से सर्वथा निराशा हुई है। ऐसे समय सोवियत रूस ने अणु - आयुधों के खिलाफ अपनी नैतिक आवाज बुलन्द की है। यही नहीं वरन् निःशस्त्रीकरण की दिशामें अपनी सेनामें कमी करके जो व्यवहारिक रूप दिया, उसके लिये वह बधाई का पात्र है। क्या अन्य योरोपीय राष्ट्र भी इसका अनुकरण करेंगे या इस प्रकार की विश्व-घातक स्थितियाँ उत्पन्न करेंगे?

राजाजी ने एक से अधिक बार अमेरिका से अपील की कि आणविक शक्ति को घटाने का एक पक्षीय कार्य उसे करना चाहिए। एक पक्षीय कार्य से ही राष्ट्र एक दूसरे पर विश्वास कर सकेंगे और उनके दिलों से भय का वातावरण भी निकल जायगा। इस दृष्टि से रूस के एकपक्षीय कार्यों और बयानों की प्रशंसा की जानी चाहिए।

—०—

कृपया माल मंगाते व सम्पर्क स्थापित करते समय "अणुव्रत" का उल्लेख अवश्य करें।

लेखकों से!

प्रत्येक रचना की स्वीकृति अधिक से अधिक १५ दिन में भेजदी जाती है। स्वीकृति के अभाव में रचना अस्वीकृत समझें। पर्याप्त डाक-व्ययके अभावमें अस्वीकृत रचनाएँ वापस न भेजी जा सकेंगी और न ही अस्वीकृत रचनाओं के सम्बन्ध में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार किया जायगा। —सम्पादक

अणुव्रती भाई बहनों से

आवश्यक निवेदन

१—अणुव्रत प्रेरणा दिवस के सम्बन्ध में आगामी १ सितम्बर ५६ के (२३ वें) अंक में विशेष सामग्री का समावेश रहेगा।

२—इस अवसर पर 'अणुव्रत' का यह अंक २० रुपये सैकड़ा और 'अणुव्रत नियमावली' १० रुपये सैकड़ा से रियायती दरों पर मिल सकेगी। अतः जो सज्जन अंक मंगाना चाहें वे अपना आदेश (आर्डर) २२ अगस्त तक यहाँ अवश्य भेज दें।

३—अपने अपने स्थानों पर सभी भाई बहन 'अणुव्रत' के अधिकाधिक ग्राहक बनाने का प्रयत्न करें।

४—अणुव्रत प्रार्थना यहाँ पत्र लिखकर मुफ्त मंगायी जा सकती है।

५—'प्रेरणा दिवस' के सम्बन्ध में अन्य किसी प्रकार के सुझाव व सहयोग के लिये कार्यालय को लिखें।

—मंत्री, केन्द्रीय कार्यालय, कलकत्ता

दक्षिण भारत के दौरे में अध्यक्ष श्री पारस जैन व अन्य साथी
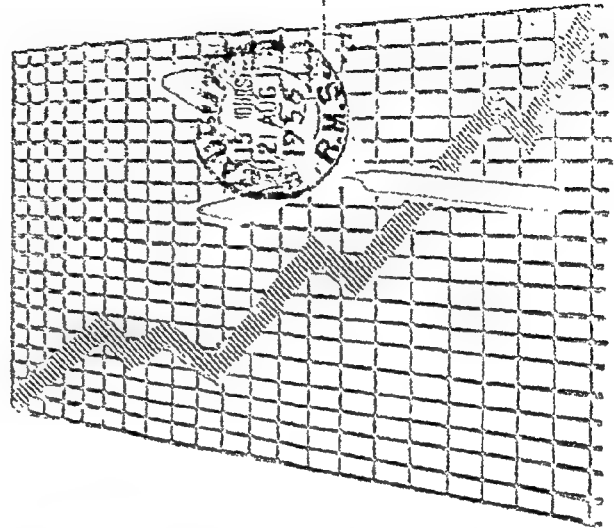
—:o:—

श्री प्रतापसिंह वैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित (३००० प्रतियां)

आपके अणुव्रत के विषय में—

कौन क्या कहता है?

"१ अगस्त ५६ का "अणुव्रत" मिला। धन्यवाद। सुरुचिपूर्ण सम्पादन, सश्रम उपयोगी सामग्री का आकलन, सुन्दर, उपादेय सूक्ति चयन आदि सभी दृष्टियों से "अणुव्रत" आपकी योग्यता को मनादी करता है। आपका पत्र समय की माँग का खरा और वास्तविक उत्तर है। मैं चाहता हूँ सभी शिक्षा-संस्थाओं और सरकारी कार्यालयों में इसका प्रचार बढ़े। शुभ कामनाओं सहित।"

—आचार्य 'बटुक', शिमला

"...आज भारत में नैतिक मूल्य खत्म हो रहे हैं और भौतिकवाद की आँधी के आगे भारत की संस्कृति पर गर्व करनेवाले भी टिक नहीं रहे, फलस्वरूप चहुँओर आपाधापी और भ्रष्टाचारका वातावरण फैल रहा है। "अणुव्रत" इस प्रवृत्ति को बदलने की ओर एक उचित और आवश्यक कदम है। इसमें सामग्री अच्छी है और उसका संकलन भी सुन्दर ढंग से किया गया है। इसकी सफलता के लिये प्रार्थी हूं।"

—बलराज मधोक, नई दिल्ली

"...आपका पत्र मैंने बड़े ध्यान और दिलचस्पी से पढ़ा। ऐसे पत्र हिन्दी में कम निकलते हैं। ऐसे अच्छे पत्र के प्रकाशन के लिये मैं आपको हृदय से बधाई देता हूँ।"

—रा० रा० सर्वटे, जबलपुर

"...अणुव्रत का जुलाई अङ्क मिला। पत्र सुन्दर तथा प्रभावोत्पादक है, यदि इसमें एक दो साहित्यिक लेख भी रहें तो अति सुन्दर हो"

—सावित्री रस्तौगी, मेरठ

"अणुव्रत" पत्रिका समय की एक बड़ी कमी की पूर्ति कर रही है। देश के युवक, तरुण, वृद्ध इस प्रकार की पत्रिका का अध्ययन करें। हमारी संस्था की सभी शुभकामनायें "अणुव्रत" की प्रगति के लिये स्वीकार करें।"

—गंगाप्रसाद 'विमल', प्रयाग

"अणुव्रत" मानवता का सबल प्रतीक है। यह प्रतीक युग-युग तक जिये एवं पाठकों को निरन्तर पवित्र मानसिक भोजन प्रदान करता रहे।"

—राजेन्द्रराय 'राजेश', बेगूसराय

"...१५ जुलाई का अंक पहले के अंकों से बहुत सुन्दर है। जगदीशचन्द्र मिश्र की "चार घोड़ों की गाड़ी" शीर्षक मुझे बेहद अच्छी लगी।

— विन्देश्वरी मिश्र, मुंगेर

"...आपकी पत्रिका मिली। "अणुव्रत" भारतवर्ष में अपनी ढंग की एक निराली पत्रिका है। वास्तव में अभी इस प्रकार की पत्रिका की भारत में जरूरत है।"

—बी० एम० बैंगानी, कलकत्ता

"अणुव्रत का १ अगस्त १९५६ का अंक मिला। हार्दिक धन्यवाद। इस अङ्क की रचनायें मुझे काफी अच्छी लगी। नथमलजी, नगराजजी, श्री कैलास, श्रीरामपाल व नवीन मोरवाल की रचनायें बड़ी अच्छी, शिक्षात्मक व इस अङ्क की प्रमुख आकर्षण हैं। इसके स्तम्भ प्रेरणादायक व गम्भीर हैं। "अणुव्रत" से नैतिक व सामाजिक पुनर्निर्माण की पूर्ति अवश्य होती है और होती रहेगी ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।"

—आर० पारस, चिकमंगलूर

क्या ?	किसका ?	कहां ?
१ अणुव्रत प्रेरणा दिवस	—सम्पादकीय	४
२ अहिंसा में निष्ठा	—श्री रिषभदास रांका	६
३ 'असंविभागी नहु तस्स मोक्खो'	—श्री नेमिशरण मित्तल एम० ए०	७
४ चेतना की लौ (कविता)	— मुनिश्री नथमलजी	८
५ अतीत के पन्ने (गद्यगीत)	—श्री महावीरसिंह गौतम	९
६ अणुव्रत जीवन-दर्शन-३	—मुनिश्री नगराजजी	१०
७ दो चतुष्पदी	—श्री शतानन्द सक्सैना 'सन्तोषी'	११
८ आपका चश्मा काला है या सफेद	—श्री कृष्णदत्त भट्ट एम० ए०	१२
९ ब्रह्मचर्य	—मुनिश्री नथमलजी	१४
१० परिचय (कविता)	—श्री प्रकाश दीक्षित	१५
११ आवाहन "	—प्रो० श्री आनन्दनारायण शर्मा	१५
१२ दो मुक्तक "	—प्रो० श्री राजेश्वर गुरु	१५
१३ दीक्षा (कहानी)	—श्री रतनलाल अग्रवाल	१६
१४ जीवन लक्ष्य	—श्री हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि'	१७
१५ जीवन का वरदान (गद्यगीत)	—सुश्री कमला दीक्षित	१९
१६ युग की मांग : अणुव्रत	—श्री शान्तानन्द	२३
१७ रोको अपने हाथ अरे! (कविता)	— " केदार शुक्ल 'केशु'	२४
१८ गहनों पर इतना मोह क्यों ?	— " प्यारचन्द महता	२५

इनके साथ ही विचार दोहन, अपने-अपने विचार आदि स्थायी स्तम्भ

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१

卐

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १ सितम्बर, १९५६ [अङ्क २२

आगामी अणुव्रत प्रेरणा दिवस के लिये विशेष रूप से—

बुराई को मिटाने के लिये संस्कार-परिवर्तन की आवश्यकता है !

संसार में रहनेवाला व्यक्ति बहु कर्मी होता है। वह जहां राजनैतिक दलबन्दियों में पड़ता है वहां सामाजिक और धार्मिक पहलुओं को भी छूना है। छूने की अपनी अलग-अलग पद्धति होती है। कोई किसी विचार को आगे किये चलता है और कोई किसी विचार को। आखिर गन्तव्य-स्थल एक है—सुख और शान्ति की प्राप्ति। वह सबको अभीष्ट है और उसे पाने के लिये लोग अनेक विध प्रवृत्तियों का संचालन करते हैं। हमें न राजनैतिक क्षेत्र को छूना है न आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र को। हमारा चुना हुआ क्षेत्र आध्यात्मिक, नैतिक या चारित्रिक है। गिरते हुओं को उठायें, उठाने में प्रेरक बनें, उनके जीवन को ऊंचा उठाने के लिये कोई व्यवस्थित रूपरेखा सामने रखें—उसी भावना का मूर्त रूप अणुव्रत-आन्दोलन है।

जीवन की दो धाराएं हैं—आस्तिकवाद और नास्तिकवाद। जो नास्तिक हैं, चक्षु प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं, उन लोगों के लिये कुछ सोचने जैसा है तो वह वर्तमान और प्रत्यक्ष ही है। पर जिसमें विवेक का जागरण है, कर्तव्याकर्तव्य का विचार है, मैं-आत्मा हूं-अजर अमर हूँ के विचार का प्रतीति है उनके लिये आत्मा ही परम तत्व है। उस चिन्तन के फलस्वरूप तीन बातें बनती हैं:-१—आत्म-निरीक्षण। २—आत्म-परीक्षण। ३—आत्म-नियमन।

ये तीन विचार जहां नहीं आये हैं वहां मनुष्य अपने आप को नहीं पहिचानता। समाज सुधार और राष्ट्र सुधार के कानून बनते हैं पर अपने आपको—अपनी आत्मा को समझे बिना उनसे बनने का क्या है? मैंने बम्बई प्रान्त में देखा—वहां मद्य-निषेध का कानून है पर फिर भी वहां लोग शराब पीते हैं। कारण यही—कानून बुराई छोड़ने के लिये दबाव डालता है किन्तु बुराई के प्रति घृणा पैदा नहीं करता। बुराई के प्रति घृणा का संस्कार बन जाये तो वह बुराई टिक नहीं सकती। वह आज खत्म होगी या कल खत्म होगी, आखिर खत्म होकर रहेगी। अतः बुराई को मिटाने के लिये संस्कार-परिवर्तन या हृदय-परिवर्तन का प्रयास हो तो वह बुराई जड़ मूल से मिट सकती है। अपने आपको समझने और पहचानने का प्रयास होगा तभी कुछ बनने का है।

युग प्रगति का है। लोग एक साथ सारी दुनिया को सुधार डालना चाहते हैं। उनका विचार सही है, मंगल कामना है पर सुधार का सही माध्यम व्यक्ति-सुधार ही है। अणुव्रत-आन्दोलन व्यक्ति सुधार को प्रमुखता देकर चलनेवाला एक चरित्र शुद्धिमूलक रचनात्मक आन्दोलन है। उदाहरण के रूप में एक कहानी है—अध्यापक ने विद्यार्थियों को एक नक्शे के कई विभक्त खण्ड, जिसकी एक ओर दुनिया तथा दूसरी ओर मनुष्य शरीर की आकृति अङ्कित थी, दिये और कहा कि इन्हें यथावस्थित कर फिर से व्यवस्थित बनाओ। विद्यार्थी उसे जोड़नेके लिये दुनियाके नक्शे को ठीक करने लगे। वे दुनिया से अपरिचित ठहरे—अफ्रीका को ठीक बैठाया तो अमेरिका अव्यवस्थित हो गया और अमेरिका को ठीक किया तो ऐशिया अस्त-व्यस्त हो गया। अध्यापक ने सबको समझाते हुए कहा कि पहले आदमी को बनाओ, दुनिया का नक्शा स्वतः बन जायेगा। विद्यार्थी आदमी के शरीर के सारे अवयवों से परिचित तो थे ही, मानव-शरीर को व्यवस्थित किया; कागज के पीछे का नक्शा स्वतः ठीक बन गया। इस तरह विश्व के निर्माण से पहले मानव का निर्माण होगा तभी हमारा कार्य ठोस और क्रियाशील बन सकेगा। अतः अणुव्रत-आन्दोलन की गति व्यक्ति सुधार के माध्यम से आगे बढ़ने की है और उसी दिशा में वह आगे बढ़ रहा है।

—आचार्य तुल

अणुव्रत प्रेरणा दिवस

अणुव्रत आन्दोलन की शुरुआत पर अपना संदेश देते हुए 'हरिजन-सेवक' के संपादक और बापू के निकट सहकर्मी स्व० श्री किशोरीलाल मश्रुवाला ने लिखा था कि "संसार में बुरे कार्यों के लिये जब हिंसक शक्तियों का संगठन हो सकता है तो क्या अहिंसक शक्तियाँ एक होकर अपने उद्देश्य का प्रसार नहीं कर सकतीं? आवश्यकता प्रेरणा की है।" अणुव्रत आन्दोलन के दिल्ली अधिवेशन के बाद आपने 'हरिजन' में इस पर विस्तार से विवेचन भी किया था और अणुव्रत की आवश्यकता पर बल देते हुए जन-जीवन का ध्यान अणु अर्थात् छोटे-छोटे व्रतों की ओर प्रेरित किया था। जन समुदाय ने इसे कितना लक्ष्य किया? लेकिन उस कर्मशील मनीषी की एक सात्विक चेतावनी और देश के बड़े बड़े विचारकों द्वारा जीवन-निर्माण की पथ-दिशा देने के बाद भी जितना ध्यान बड़ी बड़ी यंत्र चालित योजनाओं की पूर्ति में दिया जा रहा है, उतना मानवता प्रेरित इन छोटे व्रतों की ओर नहीं दिया जा रहा है। ऐसा लगता है कि मनुष्य मानो स्वयं यन्त्र बन गया है और जीवन उस यन्त्रवत् प्रभाव में डूब सा गया है। यही कारण है कि मनुष्य स्वयं अपने जीवन को हीन समझने लगा है और यन्त्र-प्रधान अर्थ उस पर हावी हो उठा है। इसीलिये आज का मनुष्य आत्मिक न रहकर यान्त्रिक हो चला है। यही उसकी मानवीय दुर्बलता है। यह दुर्बलता आज उसके नैतिक जीवन को चुनौती दे रही है। उसके परिणाम हो रहे हैं,—देश में बेईमानी, भ्रष्टाचार, शोषण, अनाचार और भौतिक आडम्बर में अभिवृद्धि! मानव जीवन की 'श्री' लोप हो रही है और अर्थ-शक्तियों की अपनी बन आई है। यह हिंसाकी शक्ति है, अहिंसा की नहीं। यह कैसा दुर्भाग्य है कि अहिंसा के सामूहिक प्रयोग से प्राप्त स्वराज्य के द्वार में आज धीरे धीरे यन्त्रवत् चलनेवाली हिंसा प्रविष्ट हो रही है। ऐसी हिंसा जो थपकी दे देकर आघात करती है। यह एक ऐसा घुन है, जो स्वराज्य को नींव को किसी भी समय खोखली कर सकता है। स्वराज्य में चरित्र-प्रधान है। चरित्र ही स्वराज्य की आत्मा है और यह आत्मा आज निष्प्राण दिखाई दे रही है। "अणुव्रत आन्दोलन" इसी निष्प्राणता का अन्त करने के लिये प्रस्फुटित हुआ है। हिंसक शक्तियाँ धीरे धीरे कमजोर बनें और राष्ट्र के हर अंग अहिंसा-

प्रधान होकर अहिंसक शक्तियाँ ऊपर उठें। इसी भावना को अग्रसर करने के लिये ८ सितम्बर को सारे देश में 'अणुव्रत-प्रेरणा दिवस' मनाया जा रहा है।

गत वर्ष भी यह दिवस अत्यन्त उल्लास और उत्साह के साथ मनाया गया। इसी अवसर पर भारत की राजधानी में बोलते हुए सुप्रसिद्ध हिन्दी पत्रकार श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार ने कहा था कि दिवस अनेक मनाये जाते हैं लेकिन वह अधिक भौतिक या बाहरी आवरण को लिये हुए होते हैं। लेकिन यह एक दिवस है, जो हर वर्ग के हर मनुष्य को आत्म-निरीक्षण की प्रेरणा देता है। नेता सोचे कि हमने ऐसा कोई कार्य तो नहीं किया जो हमारी अपनी एक चारित्रिक कमजोरी से समस्त देश या समाज को बदनाम करे! पत्रकार सोचे कि मैंने कोई ऐसी चीज तो नहीं लिखी जो एक दूसरे में कटुता व द्वेष पैदा करे! व्यवसायी सोचे कि मैंने अपने व्यापार में अप्रमाणिकता कर अपनी आत्मा को धोखा तो नहीं दिया? यही बात राज्य कर्मचारी, विद्यार्थी, वकील, मजदूर और किसान आदि सब ही वर्गों के लिये है। समाज के प्रत्येक वर्ग में आत्म-निरीक्षण की सहज भावना पैदा हो और वह सब यन्त्रवत् न होकर आत्म-प्रधान होकर चलें। इसीलिये 'अणुव्रत आन्दोलन' का आविर्भाव हुआ है।

आन्दोलन की महत्ता इन छोटे-छोटे व्रतों की ग्रहणता में छिपी हुई है। बहुत से लोग सोच सकते हैं कि हम ये छोटे-छोटे व्रत क्या लें? हम तो इन सबसे ऊपर उठे हुए हैं। हो सकता है, कतिपय ऐसे महापुरुष हों! लेकिन अधिकांश में हमारा यह निरा अहम् मात्र है। छोटे-छोटे व्रतों से ही व्यक्ति का जीवन ऊपर उठता है। व्रत अर्थात् नियम, मनुष्य का जीवन नियमित और संयमित हो, इसीमें मानव-जीवन की सार्थकता है। छोटी-छोटी बातों से मुँह मोड़ने का अर्थ असंयम और अश्रद्धा का पोषण है। फिर यह अश्रद्धा हमें कहीं भी ले जा सकती है। जहाँ शून्य है। बड़े बड़े महापुरुषों के जीवन को देखें तो ज्ञात होगा कि साधारण से साधारण कार्य को भी उन्होंने महत्व दिया है। इसीलिये वे महान् बने हैं। महानता की कसौटी लम्बी चौड़ी योजनाएं नहीं वरन् अपनी जीवन रूपी योजना है। हमारा जीवन स्वयं योजित नहीं तो फिर कैसे हम कल्याणकारी या समाजवादी समाज की संयोजना कर सकते हैं? आज राज्य की इतनी वृहत् योजनाओं पर भी जनता का विश्वास क्यों प्राप्त नहीं हो रहा है? इसलिये कि जन-विश्वास के लिये हमारा जीवन योजित

नहीं है।

अणुव्रत-आन्दोलन और किसी वृहत् योजना का सूचक नहीं वह तो मनुष्यमात्र के हित का योजक है और प्राणीमात्र के कल्याण का चिन्तक है। आन्दोलन की सफलता इसी में है कि व्यक्ति-व्यक्ति अपने स्व जीवन को देखे, अपना आत्म-निरीक्षण करे और अपनी यांत्रिक दुर्बलता को दूर कर आत्म-प्रधान अर्थात् अहिंसा व्रती बने। अपने सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यवहारिक हर कार्यों में अहिंसा को प्रधानता दे। यहाँ तक कि वह अपने जीविकोपार्जन के साधन में भी अहिंसा की निष्ठा को न भूले। अहिंसा के प्रति व्यक्ति-व्यक्ति में निष्ठा उत्पन्न करना—यही अणुव्रत-आन्दोलन का मूल उद्देश्य है।

लेकिन यह बहुत बड़ा काम है। आज हम देख रहे हैं कि संसार में हिंसा होती है और हमारी प्रभुता पर हिंसक शक्तियाँ छाती जा रही हैं। अणुबम का बोलबाला है और प्रवाह उसी ओर बहा जा रहा है। राष्ट्र-निर्माण का स्वप्न भी अणु-शक्ति के विकास पर देखा जा रहा है। यह नहीं तो हमारी शक्ति नगण्य है। यह कैसी निर्बलता है? मानो अवशेष सब दरिद्र हो उठे हैं। ऐसी स्थिति में आज स्व० मश्रुवाला के शब्द उतने ही तरोताजा प्रतीत हो रहे हैं कि हिंसक शक्तियाँ जब चारों ओर आविर्भूत हो रही हैं तो क्यों नहीं अहिंसक शक्तियाँ एक होकर अहिंसा के प्रसार में व्यापक बनें। अणु-युग की इस धधकती ज्वाला में तो आज इसकी विशेष उपादेयता और अनिवार्यता है। 'अणुव्रत-आन्दोलन' अहिंसा के इसी निष्ठा रूपी कण को जन-जन में बिखरने और उनकी शक्ति को विकसित करने की एक क्रान्तिकारी दिशा देता है। हो सकता है आन्दोलन का यह रूप आज छोटा लगे। आचार्यश्री तुलसी इसके प्रेरक होने के नाते कतिपय लोगों को संकीर्ण और साम्प्रदायिक भी लगे। लेकिन पिछले वर्षों में उनकी सार्वजनिक शक्तियों और असाम्प्रदायिक वाणी ने आन्दोलन को और भी अधिक लोकप्रिय बनाया है और जीवन-निर्माण को क्रान्तिकारी प्रक्रियाओं ने आन्दोलन को हर एक वर्ग में अग्रसर किया है। इतना अवश्य है कि जीवन के मूल्यों को बदलने और अहिंसा की किरणें चहुँ ओर प्रकाशमान करने के लिये जन-जन को इस ओर प्रेरित होना चाहिए और यही 'अणुव्रत-प्रेरणा-दिवस' का उद्बोधन है। आशा है, देशवासी इसी आन्तरिक प्रेरणा से अपना आत्म-निरीक्षण कर जीवन के क्रान्तिकारी मूल्य स्थिर करने में अग्रसर होंगे।

भेदभाव क्यों?

पिछले दिनों का समाचार है कि जाति-भेद कानूनों को लागू करने की दिशा में दक्षिणी अफ्रीका की सरकार जो नये कदम उठा रही है उसके फलस्वरूप १० हजार भारतीयों को विनाशक स्थिति का सामना करना पड़ेगा।

जाहनीजवर्ग के पश्चिमी उपनगरों में रह रहे ये भारतीय, व्यापारी वर्ग के हैं और अनेक वर्षों से वहाँ अपनी दुकानें और कारखाने चला रहे हैं। अनेक भारतीयों की वहाँ अचल सम्पत्ति है जिसे नये कानून के अन्तर्गत सरकार अपने कब्जे में कर लेगी। इस प्रकार उन्हें लगभग १॥ करोड़ पौंड की हानि होगी।

भेदभाव और विषमता की भावना ने इस प्रकार प्रश्रय पाकर अन्याय व अत्याचारों द्वारा मानवता के माथेपर जो कलंक के टीके लगाये हैं उनसे इतिहास भरा पड़ा है। बड़े छोटे की या गोरे-काले की भावना चाहे परिवार में हो, राष्ट्र में हो या विश्व में सदैव से जीवन के सरल व स्वाभाविक प्रवाह को रोककर परस्पर कलह के बीज बोती आई है। दक्षिणी अफ्रीका में उत्पन्न जाति-भेद की घातक नीति क्या उसी इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं कर रही?

इन कानूनों से वहाँ के भारतीयों की दशा जो शोचनीय होगी वह तो ध्यान देने योग्य है ही साथ ही इसके द्वारा विश्व-बन्धुत्व और शान्ति का राग अलापनेवालों के मुँह पर जो करारा तमाचा लगाने का दुस्साहस किया जा रहा है वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। जब हम सारी दुनिया को एकसूत्र में बाँधने का प्रयत्न कर रहे हैं या स्वप्न देख रहे हैं तो ऐसे विघटनकारी तत्त्वों को कैसे सहन किया जा सकता है? अतः प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इन अमानवी कार्यों की भर्त्सना करे और कराहती मानवता को त्राण दे।

—०—

"वह अर्थशास्त्र असत्य है जो नैतिक मान्यताओं को नजरअंदाज करता है या उनकी उपेक्षा करता है। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अहिंसा के उसूल के विस्तार का अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को नियंत्रित करने में नैतिक मान्यताओं द्वारा साधन के रूप में भाग लेना ही माना जाया जायगा।"

सच्चा अर्थशास्त्र कभी भी उच्चतम धार्मिक स्तर के विरुद्ध नहीं होता, बिल्कुल उसी प्रकार जैसे सच्चा धर्म शास्त्र, सही अर्थों में, साथ ही साथ उत्तम अर्थशास्त्र भी होना चाहिए। ऐसा अर्थशास्त्र जो धन की पूजा का प्रचार करता है और शक्तिशाली के लिए निर्बल को क्षति पहुँचाकर धन-संचय का अवसर देता है, एक झूठा और दुःखास्पद विज्ञान है। यह मृत्यु का सूचक है। दूसरी ओर, सच्चा अर्थशास्त्र सामयिक न्याय का पोषक है, यह सभी की बेहतरी समेत, निर्बलतम को विकसित करता है और उत्तम जीवन के लिए अत्यावश्यक है।"

—महात्मा गांधी

[श्री रिषभदास रांका]

संसारके सभी महान पुरुषों ने सभी सद्-गुणोंमें अहिंसा को प्रथम स्थान दिया है। भूतमात्र के प्रति समता अहिंसा है और इस विचारको आचरणमें लाकर सबके प्रति संयम का व्यवहार अहिंसा पालनकी प्रथम सीढ़ी है। अहिंसा का पालन इसलिए आवश्यक है कि सब लोग सुखपूर्वक रहें। सुखमय जीवन बिताना सब को पसंद है कोई दुख नहीं चाहता। जो बात हमको प्रिय है, दूसरे को भी प्रियही लगेगी और जो हमें अप्रिय है वह दूसरे को भी अप्रिय ही लगेगी। जैसे दुख हमें प्रिय नहीं लगता दूसरे को भी नहीं लग सकता। इसलिए विवेकी पुरुष दूसरे को दुख नहीं देते, कष्ट नहीं पहुंचाते।

सुख-प्राप्ति की अभिलाषा सभीमें पाई जाती है और सुखप्राप्तिके लिए सभी प्रयत्नशील हैं। फिरभी बहुत कम लोग सुखी पाए जाते हैं। कारण यह दिखाई देता है कि अपने सुख की प्राप्तिके लिए मनुष्य दूसरे के सुखकी परवाह नहीं करता-दूसरों को कष्ट देता है। पर ज्ञानियोंका कहना है कि सुख और दुख बाहर नहीं किंतु हमारे ही भीतर हैं। सुखी बनने का सही रास्ता यह है कि हमें सुख चाहिए तो हम दूसरे को सुखी बनावें। तृष्णाके पीछे पड़कर दुःखोंकी वृद्धि न कर प्राप्त परिस्थिति में संतुष्ट रहे।

ज्ञानियोंके ज्ञानका सार यही है कि किसी को कष्ट न पहुँचाओ। जो दूसरेको कष्ट नहीं देता वह सदा निर्भय होता है। हिंसासे वैरकी वृद्धि होती है। दुःखोंके मूलमें हिंसा रहती है। इसलिए सच्चे सुख की चाह रखनेवाले को चाहिए कि प्राणीमात्रके प्रति चाहे वह शत्रु हो या मित्र समताका व्यवहार ही करे।

सुख प्राप्तिके गलत प्रयत्नोंका परिणाम ही विषमता है। विषमतासे अशांति पैदा होती है। परिग्रह को सुख का साधन मानकर विषमता बढ़ानेवालोंने शोषण को अपनाया, पर न तो सुख मिला और न शांति ही।

देखा जाय तो बड़े बड़े युद्धों के मूल में व्यक्तिगत सुख प्राप्ति के गलत साधनों और उपायों को अपनाना है। मानव जाति ने विज्ञान पर विजय प्राप्त कर सुखके अनेक साधन निर्माण किए पर सुखी नहीं बन सका। अपने और अपनों के प्रति आसक्ति के कारण सुखके साधन दुख और विनाश के कारण बन गए। विनाश के भयानक परिणामों से संसार के विचारक त्रस्त हैं। व्यापक हिंसा से कैसे बचें यह प्रश्न है। विश्व-शांति के उपाय ढूंढे जा रहे हैं पर संत कहते हैं कि संसार में शांति चाहिए तो प्रथम, व्यक्ति अपने जीवन में अहिंसा को स्थान दे। अहिंसा हितकर, कल्याणकारी तथा श्रेयस्कर होने पर भी उसका पालन सर्वत्र क्यों नहीं होता? अहिंसा के पालन में आसक्ति, अहंकार और प्रमाद ये तीन बाधाएं हैं।

आसक्ति शरीर की हो या शरीर-संबंधी की, पर वह अपने परायेपन की दीवार खड़ी करती है। अपनों के प्रति राग और दूसरों के प्रति द्वेष, यह उसका परिणाम है। इस कारण विषमता पैदा होती है जो हिंसा को जन्म देती है। यदि सच्चे सुखकी चाह हो तो अपने परायेपन की दीवार को तोड़ना होगा, ममत्व त्यागना होगा।

ममत्व या आसक्ति अनेक रूपों में काम करती है। इसलिए राग के जीतनेवाले को आदर्श माना गया है। वीतराग का जीवन स्वावलंबी, संयमपूर्ण और कम से कम जरूरत-वाला हो जाता है जिससे वह अपने सुखके लिए दूसरे को कष्ट नहीं देता। वह स्वयं सुखी बनता है और उसके द्वारा दूसरे को भी सुख ही मिलता है। इसलिए अहिंसा को क्षेमकरी कहा है।

शरीर की आसक्ति की तरह अहंकार भी अहिंसा में बाधक है। इसलिए अहंकार को हिंसा कहा गया है। अपने को श्रेष्ठ मानकर दूसरे को हलका समझना हिंसा है क्योंकि इसके मूल में विषमता रहती है। सबमें हमारी तरह जीव है और सबमें हमारी तरह शक्ति विद्यमान है, फर्क इतना ही है कि वह शक्ति सुप्त रहती है। इसलिए किसी को छोटा या बड़ा मानकर भेद करनेकी जरूरत नहीं। हर व्यक्ति को अपने विकास के लिए आवश्यक ज्ञान और शक्ति मिली हुई है। तब स्वयं दूसरों से अधिक बुद्धिमान, बलवान, साधन-सम्पन्न या सत्ता-शाली ऐसा मानना, अपनी मर्यादा को भूल जाना है। इन बातोंके कारण अपने आपको श्रेष्ठ मानकर 'हमारे कहे अनुसार दूसरे चलें' इसमें दूसरेमें जो ज्ञान है उसकी अस्वीकृति है और चुनौती है जो प्रतिक्रिया निर्माण करती है। मनुष्य जब अपनी मर्यादा को भूलकर अहंकारके वश होता है तब उसके द्वारा अनेक अनर्थ निर्माण होते हैं। दूसरों की स्वाधीनता में बाधा पहुंचाकर हम वैर निर्माण करते हैं। अहंकार जब धर्म, जातीयता और राष्ट्रीयता की ओट लेता है तब और भी खतरनाक बन जाता है। जो धर्म भेदकी दीवारें तोड़कर समता निर्माण करने के लिए है उसी धर्मके नामपर लाखोंका रक्त बहा है।

जिन्होंने संसार त्यागकर सन्यास लिया।

वे त्यागी भी इस अहंकार के लिए आपस में लड़ते हुए दिखाई देते हैं। अहंकारी व्यक्ति अपने अज्ञानके कारण अपनी मर्यादा नहीं पहचानता और अपनेको सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ, मानकर स्वयं दुःखी बनता है, दूसरों के दुःख में वृद्धि करता है। काम, क्रोध, लोभ मोहादिके आवेगोंसे त्रस्त रहता है और स्वयं कषायों से जलकर दूसरों को भी जलाता है।

आसक्ति व अहंकार की तरह प्रमाद के कारण भी हिंसा होती है। हमारे आहार विहार और व्यवहार में यदि सावधानी न हुई तो हिसा हो ही जाती है। इसलिए प्रत्येक काममें हमें इस बातका ध्यान रखना होता है कि हमारी कोई बात ऐसी न हो जिससे किसी को कष्ट हो। विज्ञानने हिंसाके क्षेत्रको बहुत ही व्यापक और उलझन भरा बना दिया है। विज्ञान के कारण भौतिक सुख साधनोंका बाहुल्य है। उसके निर्माण में होनेवाली हिंसाका यदि ध्यान न रखा जाय तो हमारे द्वारा हिंसाको पोषण मिलना संभव है और हम अनजाने में भयानक हिंसाको पोषण देने वाले भी बन सकते हैं।

कई लोग हिंसा अहिंसा के विचारको मानव तक ही सीमित रखते हैं। उनकी दृष्टि से दूसरे प्राणियों की होनेवाली हिंसा त्याज्य नहीं है पर उसे वे आवश्यक भी मानते हैं। ऐसी स्थितिमें जिनकी व्याप्ति प्राणीमात्र तक व्याप्त है ऐसों के लिए चीजोंके उपयोग में विवेक नहीं होगा तो अनजानमें हिंसाको प्रोत्साहन देने के दोष से बचा नहीं जा सकता। इसीलिए अहिंसक साधक के लिए सावधानी आवश्यक है और परिग्रह, परिमाण तथा उपभोगके साधनोंकी मर्यादा रखना जरूरी हो जाता है। कमसे कम चीजों के उपयोग में दूसरों को कष्ट न हो यह विचार प्रमुख है लेकिन पर-वस्तु पर अवलंबित नहीं रहना यह दूसरा विचार भी है। दूसरे के परिश्रमका अन्यायपूर्ण रीतिसे उपयोग शोषण है और जहाँ शोषण है आवेगा वहाँ अशांति अनिवार्य है।

जिसका जीवन कम से कम जरूरतवाला सादगीपूर्ण अहंकार आसक्ति तथा प्रमाद रहित होगा वही अहिंसा की साधना अधिकाधिक कर पावेगा। लेकिन यह तभी होगा जब हमारी निष्ठा अहिंसापर होगी। हम यह विश्वास रखेंगे कि अहिंसा में ही हम सबका कल्याण है। तभी अहिंसा पालन की ओर कदम बढ़ सकेगा।

—:o:—

आत्म-निरीक्षण की ओर—

"असंविभागी नहु तस्स मोक्खो"

[श्री नेमिशरण मित्तल एम० ए०]

धार्मिक सिद्धान्तों व आदर्शों की रात-दिन दुहाई देते हुए भी हम अपने व्यवहारिक जीवनमें इनसे कितने दूर हैं, इसका प्रमाण आजकी बेरोजगारी, कलह, विषमता प्रान्तीयता और तोड़-फोड़ आदि स्वतः दे रहे हैं। हम अपने को तोलें, आत्म-निरीक्षण करें और आदर्श-पथ पर अग्रसर हों यही इस लेख का मन्तव्य है। —सम्पादक]

मैं नहीं कहता हूँ, स्वयं भगवान महावीर का वचन है—*"असंविभागी नहु तस्स मोक्खो"* 'तुम तबतक मुक्त नहीं हो जब तक (अपने पास पड़ी हुई सम्पत्ति का) सम-विभाजन नहीं कर देते।' आज हमारे हाथ एक दिव्य-सूत्र पड़ गया है, इसके सहारे हम संसार के जैन-समाज से कुछ निकट की चर्चा करना चाहते हैं।

धर्मका रहस्य

संसार के जो प्रसिद्ध धर्म हैं जैन धर्म उनमें से एक माना गया है? परन्तु हमें खेद है कि जो दुर्दशा आज संसार के दूसरे धर्मावलम्बियों की हुई है वही जैन-धर्म के अनुयायियों की भी है। संसार के ईसाई समाज ने जिस प्रकार महात्मा ईसा के उपदेशों के साथ विश्वासघात किया है उसी प्रकार जैन समाज ने भी भगवान महावीर की पावन वाणी और उनके सदुपदेशों की अवहेलना की है। यहाँ हम साधारण समाज की चर्चा कर रहे हैं, तपोनिष्ठ-साधु वर्ग की नहीं। धर्म का रहस्य उसके सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करने में समाया हुआ है। यदि मैं भगवान महावीर की शिक्षा का पालन अपने जीवन में नहीं करता हूं तो मुझे अपने को जैन कहने या मानने का कोई अधिकार नहीं है। 'जैन' शब्द का अर्थ ही है 'जितेन्द्रिय'। यदि हम भोगासक्त और मायालिप्त जीवन का मोह रखते हैं तो हम 'जैन' नहीं हो सकते और कुछ भी भले ही हों। भगवान ईसा ने कहा—अहिंसा परमो धर्मः और इससे भी आगे उन्होंने कहा—'जो बायें गाल पर थप्पड़ मारे उसके आगे दाहिना गाल भी कर दो' अर्थात् 'तुम बुराई का प्रतिरोध मत करो'। परन्तु आज मानव जाति के संहारकी समिधा-सामग्री तैयार करनेवाले अणु और उद्जन आग्नेय अस्त्रों के सभी निर्माता अपने को महात्मा

ईसा का अनुगामी अर्थात् ईसाई बताते हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि यह कैसा ईसा अनुयायी समाज है जो ईसा के नाम को तो छोड़ता नहीं लेकिन उसकी शिक्षा के बिल्कुल प्रतिकूल दिशा में यत्नपूर्वक चला जा रहा है। ठीक इसी प्रकार 'जैन-समाज' की स्थिति हमें दिखाई देती है। जैन ही क्या, सभी धर्मों के अनुयायियों की यह अधर्माचार की स्थिति है।

अहिंसा और अपरिग्रह

भगवान महावीर ने जैन धर्म को दो सुदृढ़ खम्भों पर आधारित किया है, वे हैं अहिंसा और अपरिग्रह। जीव-हिंसा को उन्होंने वर्जित कहा है और अपरिग्रह को मानव जाति का विघातक अभिशाप। जीव से 'भगवान' का अभिप्राय मनुष्येत्तर प्राणियों से ही नहीं था, मनुष्य भी जीव है और मनसा-वाचा कर्मणा उसे चोट या हानि पहुँचाना भी हिंसा है। दुर्भाग्य से अहिंसा का तत्त्व चिंतन करते समय हमारे प्रबुद्ध भाई-बहिन भी मनुष्य को भूल जाते हैं और चींटी, मच्छर, बन्दर, कुत्ता आदि उनकी दृष्टि के सामने घूमने लगते हैं। हम मानते हैं कि इन सब जीवों के साथ भी हमारा हिंसा का नाता न बने, और हम यह भी मान लेते हैं कि भौतिक दृष्टि से मनुष्य के शरीर और मनुष्येत्तर प्राणियों की देह में कोई अन्तर या श्रेष्ठहीन भेद नहीं है, परन्तु क्या हम इस पर से यह परिणाम निकाल सकते हैं कि मनुष्य के साथ हमारा प्रेम का नाता नहीं होना चाहिये। समाज के व्यापारी और व्यवसायी और पूंजी-समृद्ध लोगों से हम नम्रता के साथ पूछना चाहते हैं कि क्या उन्होंने धन-संचय करनेमें अहिंसाकी पूरी सावधानी बरती है? क्या उनका धन किसी भूखे की रोटी और नंगे का चिथड़ा बिककर उनके पास नहीं आया है? क्या उनका कारोबार किसी भी मनुष्य की हानि या शोषण पर आधारित नहीं है?

धर्म ने कहा है—'मनुष्य को मनुष्य के बराबर में खड़ा करो।' हमने मनुष्यको मनुष्य के नीचे, ऊपर, आगे, पीछे सब तरफ रखा लेकिन बराबर में खड़ा नहीं किया। यहीं हो हमारी अधार्मिकता का आरम्भ होता है। अहिंसा का अर्थ है—जीवमात्र के साथ हमारी सहानुभूति, सह-अस्तित्त्व और समानता। "मैं जो हूँ वही ये सब हैं," इन्हें मारकर मैं *ही मरता हूं* और इन्हें नंगा-भूखा रखकर मैं ही नंगा भूखा रहता हूं।' यह प्रतीति जिसे हुई है वह धर्मवान् व्यक्ति है। समाज में हमारे पास शरीर श्रम के अतिरिक्त और किसी मार्ग से सम्पत्ति आती है तो वह विपत्ति हो जाती है। शोषण विपत्ति का द्वार है। आज हमारे इन भाइयों को पश्चिमी स्वार्थ-शास्त्रियों का अनर्थ-शास्त्र या शोषण-शास्त्र जिसे वे अर्थशास्त्र कहते हैं बहुत समझ में आता है। कैसी भयंकर विडम्बना है, कैसी विरोधी स्थिति है कि जिन भगवान महावीर ने आप अपरिग्रह का पाठ पढ़ाया और कहा '*मोक्ष प्राप्त करना है तो संविभागी बनो,*' उन्हीं के तथाकथित शिष्य आज संग्रह-वृत्ति के साथ परिग्रही बनकर बैठे हैं।

चेतना की लौ....

[*मुनिश्री नथमलजी*]

शूल पर चल! भूल मत तू फूल ये तुझको गिराते।
कष्ट ही है सार जग जो चेतना की लौ जलाते॥

पृष्ठ पढ़ इतिहास के इतिहास-स्रष्टा जो बने हैं,
प्राण से खेले सदा वे और शोणित से सने हैं
इस विलासी जिन्दगी के क्षण तुझे सचमुच सताते
कष्ट ही है सार जग जो चेतना की लौ जलाते

जो गंवाकर मान अपना ध्यान रोटी में रमाते
और 'जी हां' की लगन में मौज मनमानी उड़ाते
मनुज के आकार में वे जिन्दगी पशु की बिताते
कष्ट ही है सार जग जो चेतना की लौ जलाते

चाह से जो राह मिलती राह वह सच्ची नहीं है
आह से जो है निकलती वाह के लायक वही है
दाह की चिनगारियों में तुहिन का जो स्पर्श पाते
कष्ट ही है सार जग जो चेतना की लौ जलाते

मूल्य जीवन का बना क्यों तुच्छ इतना सोच मन में
लगन धन की ही लगी है चेतना की लय न तन में
शून्य में भी विहग रवि की रश्मि का आलोक पाते
कष्ट ही है सार जग जो चेतना की लौ जलाते

दानं संविभागः

इस संकट से मुक्त होने का एक ही सुलभ मार्ग है—दान। शंकराचार्य ने कहा है 'दानं संविभागः', सम विभाजन का नाम दान है। यह दान अंशदान, प्रतीकदान या परोपकार वृत्ति से पुण्यार्थ दिया गया 'खैरात' नहीं है। वस्तुतः यह दान समाज के चरणों में पूर्ण आत्मसमर्पण है, इसके द्वारा व्यक्ति समष्टि के साथ एकाकार होता है और उसके तादात्म्य के बीच में जो सम्पत्ति का संग्रह है वह उसका नम्रतापूर्वक विसर्जन करता है। भगवान महावीर की वाणी को सार्थक करने के लिए उनके अनुयायियों को इस अर्थ में दान अर्थात् सम-वितरण की शरण लेनी चाहिये। इस समवितरण के तीन अंग हैं—(१) यदि आप ऐसा कोई धन्धा करते हों—जैसे मिल चलाना, जिसमें अनेक मनुष्यों की रोजी छिनती हो तो उसे छोड़ दीजिए और अपनी रोजी प्राप्त करने के लिये शरीर श्रम करना शुरू कर दीजिये। श्रम न होता हो तो जीवन भर सादगी के साथ जी सकें उतना द्रव्य पास रख लीजिए। (२) अभी तक आपके पास जो सम्पत्ति जमा है उसे समाज की धरोहर अपने पास समझिये, उसमें से (आपके लिए चाहिए उसके अतिरिक्त) एक कौड़ी भी आपकी नहीं है, वह समाज के आधारभूत अंग श्रमिकवर्गके श्रम का संचित संग्रहीत और शोपित श्रमफल है। अतः उसे समाज के समुत्थान के लिए लगाने का संकल्प कीजिये। (३) अपनी सन्तान को आरम्भ से ही श्रमिक का जीवन जीने के लिए आवश्यक शिक्षण दिलाइये, उन्हें उत्तराधिकार के रूप में कोई सम्पत्ति नहीं छोड़िये तभी वे सच्चे कर्मवान और वीर्यवान पुरुष बनेंगे।

समाज का समुत्थान

आज का समाज सुधार या संशोधन के योग्य नहीं है। हमें सुधारवादी न बनकर क्रान्तिकारी बनना है। हमें ऐसे नवीन मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करनी है जिनमें ऐसे समाज का निर्माण हो सके जिसमें मानव की समान प्रतिष्ठा स्थापित हो तथा उसका मूल्य धन-दौलत के आंकड़ों में न कूता जा सके। हमारी सम्पत्ति का सबसे बड़ा सदुपयोग यही है कि हम तुरन्त इसके द्वारा समाज के दीनहीन और बेरोजगार सदस्यों को ग्रामोद्योग और कृषि के साधन जुटावें। आज राहत और खैरात का युग नहीं है, सदाव्रत, अस्पताल और स्कूल खोलने का जमाना भी पूंजीवाद की शवयात्रा के साथ अन्तिम सांस ले रहा है। आज तो हमें यह देखना है कि देश में कोई भी अनुद्योगी और निरुद्यमी न रहे इसका एक ही मार्ग है—देश भर में ग्रामोद्योग चलाने के लिए आवश्यक साधन जुटाना। हमें स्वयं सर्वसामान्य लोगों के समान आर्थिक स्तर पर जीना होगा और कुछ न कुछ उत्पादक श्रम भी करना होगा। 'संविभागी' शब्द भगवान महावीर का है। इस शब्दका अर्थ यही है कि हमारे पासकी सम्पत्ति, भूमि और बुद्धि का उपयोग हम सबके साथ मिलकर करें। यह आत्म निवेदन है। हम उठें, जागें और सत्कर्म में, सद्धर्म में प्रवृत्त हों।

—०—

गद्यगीत—

अतीत के पन्ने

[श्री महावीरसिंह गौतम]

मैंने आज तक लिखे अपने जीवन के पन्नों को खोला, इस आशा से कि क्या कोई अंश सुन्दर भी लिखा गया है? अब तक ली गई सांसों के आने जाने के व्यापार को अन्तरतल में पैठ निहारा।

प्रतिपल की धड़कन को आज एकान्त में उर-निशीथ के शाश्वत अन्धकार में प्राणाकाश से टूटते हुए एक लघु नीहारिका की चमक में अधिक गतिमान पाया और सुना—

एक मंद मन्द आता हुआ संगीत दूर कहीं एकान्त प्रदेश से।

मैं चेतनाहीन था। इन्द्रियों का प्रमाद और पंचभूत शिथिल था।

मैंने अब तक पन्नों को लिख लिख स्याही से पोता— और लिखा हुआ सब निरर्थक !

कोई भी शब्द, वाक्य व पैरा मेरे जीवन का सुन्दर न था। सब स्थानों पर काट-फांस।

मेरे जीवन का एक पल भी आत्म-ज्ञान, परोक्षज्ञान, भगवत्-चिन्तन व भगवत् गान में न बीता।

मैं राजस और तामस से बुनी चादर ओढ़ विषयों में मोहित हो तत्त्व की सीमा से परे मनोविकारों की निष्ठा में लगा रहा।

राग द्वेष और विकारों की पोटली पीठ पर रख-विषयासक्त हो—पापाचरण में रत, सांसों के वजन को ढोता रहा केवल।

सच पूछो तो अभी तक सांस लेना भी नहीं आया। मुझे तो एक एक सांस लेने का ढंग सीखना चाहिए। हर सांस गिन गिन के लेनी थी। एक २ सांस का महत्व है, एक २ पल का महत्व है। इस जीवन का भी महत्व है। सांस, पल और जीवन का महत्व ही जान लेना अद्भुत का पथ प्राप्त कर लेना है।

मैंने पन्नों को खोल टोकरी में डाल दिया।

—:—:—

जालसाजी के व्यवहार से जीवन को बचायें !

[९]

[जीवन की छोटी छोटी बातों में जालसाजी, झूठ और बेईमानी को हमने कितना अपनाया हुआ है यह हम सभी के सामने है। अणुव्रती और जीवन-शुद्धि के इच्छुक इनसे बचें और क्रमशः आत्म-विकास के पथ पर अग्रसर हों यही अणुव्रत आन्दोलन की भावना और कर्तव्य की पुकार है।

—सम्पादक]

किसी अन्य की वस्तु जो उसके आग्रह पर सुरक्षाके लिये अपने पास रख ली जाती है वह धरोहर कहलाती है। जो जमीन, मकान, गहना आदि आवश्यकतावश किसी से रुपये लेकर अस्थायी रूपसे उसके हस्तगत कर दिये जाते हैं, इस शर्त पर कि जब रुपये वापस करूँगा अपनी वस्तु वापस लूँगा बंधक वस्तु कहलाती है। सौंपी या धरी वस्तु को लेकर आये दिन झगड़े होते रहते हैं। अणुव्रती का व्यवहार विश्वस्त होना चाहिये। वह किसी धरोहर व बन्धक वस्तु से इन्कार नहीं हो सकता। कानून का दृष्टि से भी कहीं-कहीं बचाव होता है पर ऐसे सम्बन्धों में लोक-व्यवहार का भी ध्यान रखना अणुव्रती के लिये आवश्यक है। मानो किसी व्यक्ति ने अणुव्रती के पास अपना गहना रखा। गहने की कीमत उसके दिये रुपयों से दुगुनी चौगुनी है। लिखित अवधि तक वह व्यक्ति अणुव्रती को रुपये नहीं दे सका। अवधि समाप्त होने से वह अपनी वस्तु मांगने का कोई अधिकार नहीं रखता, अवधि के कुछ पश्चात् ही वह अपनी वस्तु को रुपये देकर लेना चाहता है। ऐसी स्थिति में कानून की बात आगे रखकर उसकी दुगुनी चौगुनी धनराशी को रोक लेना शोषण की कोटि में आ जाता है। लोक व्यवहार में अपवाद का हेतु भी है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि बन्धक की अवधि समाप्त हो जाती है, रखनेवाला उसे बार-बार सूचित भी कर देता है कि अब मैं तुम्हारी बन्धक को बेच रहा हूँ और उसे बेच देनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में भी मय ब्याज के अपने मूल से अधिक रुपये अपने मानकर रख लेना भी अनैतिकता को कोटि में हैं।

धरोहर रखने का भी समाज में अधिक प्रचलन है क्योंकि इसके बिना काम भी नहीं चलता। जहाँ व्यक्ति अपने ग्राम से दूसरे

ग्राम जाता है उसे अपनी बहुमूल्य वस्तुयें किसी मित्र व सगे-सम्बन्धी को सम्भलवानी ही पड़ती हैं। प्रेम व विश्वास के वातावरण में ऐसी चीजों के लिये कोई लिखा पढ़ी नहीं हुआ करती, ऐसी स्थिति में यदि धरोहर रखनेवाले का जी ललचा जाता है, तो वह वस्तु देने से इन्कार हो जाता है कानून वहाँ कोई काम नहीं करता। फिर भी वह एक घोर विश्वासघात होता है। अणुव्रती आदर्श तो यहाँ तक अनिवार्य है कि घरोहर रखने-वाला व्यक्ति स्वयं मर गया और उसके वारिसों को कुछ भी पता नहीं तो भी अणु-व्रती उस धरोहर को अपनी नहीं कर सकता।

जालसाजी के व्यवहार

हस्ताक्षर मनुष्य की सहमति का अनन्य प्रमाण है। प्रमाण भी वह इसलिये माना गया है कि एक व्यक्ति की लिपि दूसरे व्यक्ति से पूर्णतः कभी नहीं मिलती, जैसे कि एक मनुष्य का चेहरा दूसरे मनुष्य से। न्यायालय में, बैंक में बही खाते में हस्ताक्षर सर्वत्र प्रमाण माने जाते हैं। पर अनैतिक लोग समाज के किसी मानदंड को स्वस्थ नहीं रहने देते हर सदाचार की शकल में दुराचार खड़ा कर देते हैं। भारतीय संस्कृति में साधु सदाचार का उत्कृष्ट रूप एवं पूजनीय होता है, दुष्ट लोगों ने उस वेशको भी ठगबाजी का साधन बना लिया है। हस्ताक्षरों की भी यही बात है। जाली हस्ताक्षरों के नाना तरीके बन गये हैं। उन हस्ताक्षरों से न्यायालय, बैंक आदि को खूब धोखा दिया जाता है। लोग पकड़े भी जाते हैं, दण्डित भी होते हैं, फिर भी आदत से लाचार हैं। अणुव्रती इस प्रकार के कार्यों से कोसों दूर रहेगा।

जाली हस्ताक्षर दो प्रकार से चलते हैं। एक तो जैसे कि ऊपर बताया गया तत्सम लिपि बना लेना, दूसरा किसी के नाम से अपना दस्तखत कर देना। दूसरे प्रकार में दो बुद्धियाँ होती हैं। एक तो दुर्बुद्धिपूर्वक धोखा देने की और दूसरी सामान्य व्यवहार साधन की। उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति की अनुपस्थिति में उसके पुत्र, भाई, मुनीम आदि बहुत से प्रसंगों पर हस्ताक्षर करते हैं। वहाँ यह समझ रहती है कि हस्ताक्षर करानेवाले व जिसके लिये किये जाते हैं उन दोनों पक्षों का इसमें विरोध व अलाभ नहीं है, अतः उक्त उपक्रम जालसाजी में नहीं आता।

अनैतिकताओं में एक झूठा खत या दस्तावेज लिखवाने की अनैतिकता भी प्रमुख है। आज का मनुष्य इतना स्वार्थी हो गया है कि जहाँ एक सामाजिकता के प्रति किसी विपत्ति में पड़े मनुष्य की सहायता करना

उसका एक व्यवहार-होता है, वहाँ वह ऐसे अवसरों से भी शोषित के शोषण की व अपने स्वार्थ पोषण की बात सोचता है। एक व्यक्ति जिसे ५००) रुपयों की अनिवार्य आवश्यकता हुई है। उसकी प्रतिष्ठा व उसका जीवन व्यवहार खतरे में है। वह किसी परिचित से ऋण के रूप में उतना द्रव्य लेने जाता है। समाज के कलंक-स्वरूप ऐसे व्यक्ति बहुत मिल जाते हैं जो उसे पांच सौ देकर हजार का खत लिखवाते हैं। बेचारा मुसीबत में फंसा होता है और सब कुछ लिख देता है। निश्चित अवधि तक यदि वह हजार रुपये नहीं चुका सकता तो येनकेन प्रकारेण उसके घर, दुकान आदि नीलाम कराके भी रुपये अदा किये जाते हैं। समता व अशोषण के इस युग में यह घोर अनैतिकता है। समाज में ऐसी घटनायें कदाचित् ही होती हों ऐसी बात भी नहीं है बहुत सारे लोगों का तो व्यापार ही यही बन गया है। गरीब व ग्रामीण लोगों का इस तरह अनहद शोषण होता है।

ऐसी चिट्ठियां लिखनेवाले भी दो प्रकार के होते हैं एक वास्तविक गरीबीवाले व दूसरे दुर्व्यसनी। माता-पिता धनवान हैं लड़के दुर्व्यसनी हैं उन्हें दुर्व्यसन में उड़ाने के लिये धन चाहिये। आवश्यकता अधिक होनेपर वे स्वयं हजार लिखकर पांच सौ लेने को तैयार होते हैं। इतना ही नहीं वे 'सुपुत्र' कभी-कभी इस शर्त पर ही रुपये लेते हैं,—'मां मरते ही दुगुना व बाप मरते ही चौगुना' दूंगा। अणुव्रती किसी भी स्थिति में झूठे खत न लिखे, न लिखवाये।

अत्यधिक व्याज लेना भी अनैतिकता है यद्यपि सामान्य अणुव्रती के लिये इस विषय में कोई नियम नहीं है तो भी आदर्श के नाते लोक-मर्यादा का ध्यान रखना चाहिये।

कुछ स्थलों में रुपये देते समय होनेवाले व्याज के रुपये पहले ही जोड़कर खत लिखाया जाता है। वह बाजार में साहूकारी प्रथा मानी जाती है झूठे खत की कोटि में नहीं माना जाता।

सिक्का समाज व्यवहार का एक अभिन्न पहलू है। करेंसी से निकलता हुआ ही वह प्रामाणिक होता है—करेंसी का भरसक प्रयत्न रहता है तत्सम दूसरा सिक्का बन ही न सके, पर आखिर मनुष्य की कृति पर मनुष्य विजय पा सकता है। जाली सिक्कों व नोटों का प्रचलन बढ़ना ही जा रहा है। आये दिन ऐसे व्यक्ति व गिरोह पकड़े जाते हैं। कुछ समय पूर्व की घटना है—पटना में पांच व्यक्तियों का एक गिरोह उक्त अपराध में पकड़ा गया। एक अभियुक्त के बयान से पता चला है वे जाली नोट बनानेवाले एक अन्तर्राज्यीय गिरोह से सम्बन्धित है। उक्त गिरोह अबतक इक्कीस करोड़ के जाली नोट चला चुका है। अस्तु, अणुव्रती ऐसे काम करना तो दूर ऐसे व्यक्ति व गिरोह को एतद् सम्बन्धी योगदान भी नहीं कर सकता।

वंचनापूर्ण व्यवहार

झूठे प्रमाणपत्र का सम्बन्ध मुख्यतः मास्टर, डाक्टर आदि व्यक्तियों से होता है। पर वैसे उन व्यक्तियों से उनका सम्बन्ध है जिनका प्रमाणपत्र कहीं भी चलता हो। असत्य प्रमाण पत्र देने के मुख्य कारण हैं—रिश्वत, दबाव, सिफारिश, निजीपन आदि। अणुव्रती किसी भी उक्त प्रकार के कारण से किसी को भी असत् प्रमाणपत्र न दे।

लोग कहते हैं आज की दुनियां विज्ञापन की है। जो जितना अधिक विज्ञापन कर सकता है वह उतना ही अधिक अपने व्यवसाय में सफल हो सकता है। इसी सफलता के नाम पर आज विज्ञापन—असत्य ज्ञापन हो रहा है। अपनी वस्तु का लोगों को परिचय देना व वह परिचय अच्छे ढंग से देना यह कोई अनीति की बात नहीं है। पर उस प्रवृत्ति में अनैतिकता यहां तक बढ़ गई है कि लोग प्रायः असत्य व मानव जाति के अहितकर पदार्थों का भी विज्ञापन करने में लाखों रुपये खर्च करते हैं। अणुव्रती इस विषय में अपनी प्रामाणिकता समझे। अतिशयोक्तिपूर्ण, असत्य बहुल विज्ञापन उसके लिये वर्जनीय है।

—०—

दो चतुष्पदी

[श्री शतानन्द सक्सैना 'सन्तोषी']

दूर यदि भगवान है तो क्या हुआ
जब यहां इन्सान इतना पास है।
क्या मनुज-अध्ययन, नमन, वंदन नहीं
दे रहा उस ईश का आभास है?

●

धर्म, मन्दिर और मस्जिद से विभिन्न
प्राणधारी एक 'अद्भुत मर्म है।
अस्थियां हैं भिन्न जिसकी, किन्तु वह
हैं जुड़ीं जिसमें वही वह चर्म है'॥

[श्री कृष्णदत्त भट्ट एम० ए०]

एक थे गुरु, एक था चेला।

बहुत दिनों चेले ने गुरु की सेवा की।

गुरुदेव प्रसन्न हो गये।

बोले—"बेटा, मांग ले वरदान।"

चेले ने कहा—"गुरुदेव, आप प्रसन्न ही हैं तो मुझे यह वरदान दीजिये कि मैं जिसके दिल का हाल जानना चाहूं, जान लूं।"

"यह तो बड़ा टेढ़ा वरदान है बेटा, इसका दुरुपयोग भी हो सकता है। तू और कोई वरदान मांग ले"

लाख समझाया गुरु ने, पर चेला तो अड़ गया—'लूंगा तो यही वरदान। दूसरा वरदान लूंगा ही नहीं।'

लाचार गुरु ने चेले के हाथ में एक लकड़ी दी।

"ले, तू नहीं मानता तो तुझे देता हूं यह लकड़ी। जिसके भी सामने तू यह लकड़ी कर देगा, उसके दिल का हाल 'एक्स-रे' की तरह तुझे साफ-साफ दीख पड़ेगा।

चेला खुश—आकाश का तारा ही मानो हाथ लग गया।

× × ×

गुरुजी समाधि में बैठे तो चेले ने सोचा—क्यों न इस लकड़ी का प्रयोग गुरुजी से ही शुरु करूँ?

'मियां की जूती, मियां का सिर।'

अरे यह क्या? गुरुजी के दिल के एक कोने में तिल बराबर 'लोभ' छिपा पड़ा है, दूसरे कोने में राई भर 'काम' दबा पड़ा है, और तीसरे कोने में सरसों बराबर 'क्रोध' दबा पड़ा है! राम, राम! ऐसे आदमी को मैंने गुरु बना रखा था—

चेलाजी तुरत कुटिया से चल पड़े।

गुरुकी समाधि खुली तो देखा चेला नदारद।

कुछ देर तो प्रतीक्षा की, पर बहुत देरतक जब चेला नहीं लौटा तो वे गये उसके घर।
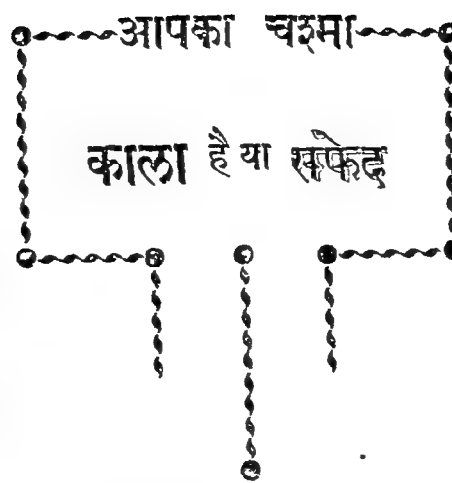
पूछा—"क्या बात है बेटा, बिना कहे-सुने तू क्यों चला आया?"

चेले ने जवाब दिया—"चल-चल, मैंने पहचान लिया तुझे।"

गुरुदेव बोले—"सो तो ठीक है बेटा, पर इस लकड़ी को जरा अपने सामने भी तो करके देख।"

चेले ने गुरुजी की लकड़ी लेकर अपने सामने की तो जो देखा उसकी स्वप्न में भी कल्पना न की थी उसने। चारों ओर काम, क्रोध, लोभ, मोह मद, मत्सर आदि के बड़े-बड़े कीड़े बिलबिला रहे थे, अज्ञान का अन्धकार सर्वत्र फैला हुआ था। प्रकाश की एक क्षीण रेखा भी कहीं नहीं दीख पड़ती थी।

दौड़कर उसने पकड़ लिये गुरुजी के चरण। रोते-रोते बोला—'क्षमा करिये गुरुदेव! मैं नहीं जानता था कि मेरा हाल ऐसा बुरा है। गुरुजी ने उसके आँसू पोंछते हुए कहा—"बेटा, रो मत। कुछ न कुछ दोष, कुछ न कुछ कमी हर आदमी में होती है। पूर्ण तो केवल परमात्मा है। इससे हमें दूसरों की तरफ न देखकर, अपनी तरफ देखना चाहिये।

अपने ऐबों पर नजर कर,
अपने दिल को पाक कर,
"क्या हुआ गर खल्क में तू, पारसा मशहूर है!"

× × ×

यह लकड़ी हमारे पास भी है, आपके पास भी।

यह चश्मा हम भी लगाते हैं, आप भी।

और इस चश्मे का रंग जैसा होता है वैसा ही हमें सारा संसार दीख पड़ता है।

आंखें जब दुखती हैं, उनका आपरेशन करने की नौबत आती है, वे जब लाल हो उठनी हैं तो डाक्टर हमें सलाह देता है—"आप हरा चश्मा लगाइये।"

हरा चश्मा हमने लगाया कि सारी प्रकृति हमें हरी-हरी दीखने लगती है।

किसी ने ठीक कहा है—

"सावन के अन्धे को हरा ही हरा सूझता है।"

× × ×

और काला चश्मा?

हमारे देश के कुछ राजनीतिज्ञ काला चश्मा लगाते हैं।

काला चश्मा लगाने पर सारी दुनिया कालीकाली दीख पड़ती है।

× × ×

तुलसी बाबा ने कहा है—

'नयन दोष जा कहँ जब होई,
पीत बरन ससि कहुं कह सोई।'

मुझे एकबार पीलिया रोग हो गया था।

सारा शरीर पीला पड़ गया।

थूक पीला, मल-मूत्र पीला, आखें पीली।

सारी दुनिया मुझे पीली ही दीखती।

मतलब?

आपका चश्मा जैसा होता है, संसार आपको उसी रंग का दीख पड़ता है।

और सफेद चश्मा ?

उससे आपको दुनिया वैसी ही दीखेगी जैसीकि वह है।

हम चोर हैं तो सारा संसार हमें चोर ही दिखाई पड़ेगा। लोभी हैं तो सब लोभी दिखेंगे।

क्रोधी हैं तो सब क्रोधी दिखेंगे, कामी हैं तो सब कामी।

हमारी आंख पर जैसा चश्मा रहेगा, उसी रंग की दुनिया हमें दीख पड़ेगी।

× × ×

एक आदमी कहता है—

राम दुबला है।

राम कमजोर है।

कमजोर आदमी से क्या काम होगा ?

राम से क्या काम होगा ?

राम कौड़ी काम का नहीं।

राम को कोई काम देना बेकार है।

× × ×

दूसरा आदमी कहता है—

ठीक है, राम दुबला है।

लेकिन दुबला होना कोई दोष है ?

गांधी दुबले थे, विनोबा दुबले हैं।

संसार के अधिकांश महापुरुष दुबले ही रहे हैं। दुबला आदमी फुर्तीला होता है।

दुबला आदमी ज्यादा काम करता है।

राम दुबला है तो क्या हुआ ?

राम सब काम करेगा।

राम को काम देना चाहिए।

एक ही सिक्के के दो पहलू।

एक के लिए राम का कोई उपयोग नहीं।

दूसरे के लिए राम परम उपयोगी।

× × ×

मान लें, मैं बातूनी आदमी नहीं।

अब कुछ लोग कहते हैं—'यह आदमी किसी काम का नहीं 'सुन्न'-(शून्य) है।"

दूसरे लोग कहते हैं—"यह आदमी बड़े काम का है। फालतू बातों में वक्त नहीं गवांता।"

× × ×

चापलूसी करने की मेरी आदत नहीं।

आज का जमाना चापलूसी का है।

पर, "खरी बात सादुल्ला कहें।

सबके मन से उतरे रहें।"

मेरे बहुत से हितैषी मुझसे कहते हैं—"दुनिया में रहना है तो चापलूसी सीखो। क्योंकि :—

'खुशामद में ही आमद है,

इसलिये बड़ी खुशामद है।"

और मैं हूँ कि ऐसी बातों को इस कान से सुनता हूँ और उस कान से उड़ा देता हूं। सोचता हूं—

"उम्र सारी तो कटी इश्के बुतां में 'मोमिन',

आखिरी वक्त में क्या खाक मुंसल्मां होंगे" नतीजा—

चापलूसी-पसन्द लोग मुझसे नाराज हैं। कहते हैं—"यह आदमी 'शोसल' नहीं, सामाजिक प्राणी नहीं, मिलनसार नहीं।"

दूसरे लोग कहते हैं—"यह आदमी ठीक है, काम से काम रहता है इसे। न ऊधो का लेना, न माधो का देना।'

× × ×

मैं अच्छा हूं कि बुरा, इसका पता मुझे छोड़कर और किसे है ?

अकबर ने इसीलिए कहा था—

"लोग कहते हैं कि आप निहायत काबिल हैं, मैं इसी सोच में रहता हूँ कि मैं किस काबिल हूँ ?"

× × ×

कोई व्यक्ति एक की नजर में महात्मा है, दूसरे की नजर में दुष्टाधिराज। एक की दृष्टि में दाता है, दूसरे की दृष्टि में कृपण। एक की आँखों में दीनों का सेवक है, दूसरे की आँखों में बना हुआ घाघ। किसी में मुझे गुण ही गुण दीखते हैं, दूसरे को उसमें दोष ही दोष। "लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।"

× × ×

ऐसा क्यों होता है ?

इसीलिये कि हम अपनी आँखों पर जिस रंग का चश्मा चढ़ाये रहते हैं, उसी रंग की दुनिया हमें दिखाई पड़ती है।

हमारे हृदय में जब तक विकार हैं, दोष हैं, पाप हैं, कमजोरियाँ हैं, तब तक हमें सर्वत्र उन्हीं के दर्शन होंगे। उनका स्वरूप कैसा भी हो। असलियत यही है।

और हमारा हृदय शुद्ध हो जाय तो सर्वत्र हमें शुद्धता के ही, शुभ के ही दर्शन होंगे।

तो हमें सर्वत्र शुभ के ही दर्शन करने हैं।

पर, उसका उपाय ?

वह तो स्वामी विवेकानन्द ने बता ही रखा है—

"संसार की दुष्टता और उसके पापों की चर्चा मत करो। रोओ कि अब भी तुम दुष्टता के ही, बुराई के ही दर्शन करते हो। रोओ कि अब भी तुम्हें सर्वत्र पाप के ही दर्शन होते हैं। यदि तुम संसार की सहायता करना चाहते हो तो उसकी निंदा या कटु आलोचना मत करो, उसे और निर्बल मत बनाओ। कारण, ये पाप, ये मुसीबतें और ये सब बातें कमजोरियों का नतीजा छोड़कर और हैं क्या ? ऐसे उपदेशों से संसार दिन दिन दुर्बल होता जाता है। मनुष्यों को बचपन से ही सिखा दिया जाता है कि तुम कमजोर हो, तुम पापी हो। उन्हें, भले ही वे सबसे दुर्बल हों, सिखाओ कि तुम सब 'अमर-पुत्र' हो। बचपन से ही उनमें पवित्र, उत्तम, ऊँचे उठानेवाले विचार भरने चाहिये, न कि गंदे, कलुषित और नीच विचार।"

× × ×

आइये, इस पाथेयको लेकर हम आगे बढ़ें।

काला चश्मा फेंककर सफेद चश्मा लगा लें। फिर तो हमें सर्वत्र हरि-दर्शन ही होगा।

"कृष्णैर मूर्ति करे सर्वत्र झलमल

संह देखें जो आंखि हय निरमल।"

—०—

ब्रह्मचर्य

[मुनिश्री नथमलजी]

अब्रह्मचर्य क्या है ? शारीरिक विकार है या मानसिक ? थोड़ेमें यह मानसिक संकल्प है। वह आगे जो कायिक चेष्टामें बनता है, अवस्था उसे उभार देती है। यौवन में विकार सहज पैदा होता है इससे छुट्टी चाहनेवाले साधक के भी और दूसरों के भी। ऐसी स्थिति में ब्रह्मचारी को क्या करना चाहिए ? साधक किसे कहना चाहिए ? साधक वह है जो विकार-शमन का यत्न करे, पल-पल सावधान रहे। वह संकल्पों पर नियंत्रण रखे, मनको मजबूती के साथ आदेश दे, असत्य संकल्पों को पास में न आने दे। वासना वेग है। वेग को रोकना क्या उचित है ? वेग दो प्रकार के होते हैं। उनमें मल मूत्र श्लेष्म का वेग नहीं रोकना चाहिए। उससे शारीरिक हानि होती है। काम क्रोध का वेग रोकना चाहिए। इसमें कोई शारीरिक हानि नहीं होती, प्रत्युत शरीर के साथ साथ मन का विकास होता है।

विकार के चिन्तन और सेवन का परिणाम जो होता है, वह हमसे छिपा नहीं है। वीर्य का नाश, शरीर का नाश, मनका नाश, इसके सिवाय कुछ हाथ नहीं लगता। बूर के लड्डू का दृष्टान्त बड़ा सुन्दर है। उसे खानेवाले भी पछताते हैं और न खानेवाले भी। यही बात अब्रह्मचर्य सेवन की है। जब तक बुरी आदत न पड़े तब तक काम का वेग सरलता से रुक सकता है। आदत पड़ने पर उसे रोकना और अधिक कठिन है। प्रारम्भ से ध्यान रखा जाए तो ऐसी बुरी आदत न पड़े।

विचारों की शृंखला सदा एकसी नहीं रहती। फिरभी मन साधना से दूर नहीं भागे वही बड़ी बात है। बाल-जीवन की पवित्रता बनी रहे तब बात बने। बचपन में विकारपूर्ण चेष्टाओं से घृणा किये चलना सहज होता है। वहाँ लाज का लचीलापन होता है। यौवन में वह घृणा और वह लाज स्मृति की बातें बन जाती है। बचपन में भीषण लगनेवाली बातें यौवन में साधारण सी लगने लग जाती हैं। यह यौवन का उन्माद है। बचपन में पाप का जितना डर होता है, उतना यौवन में कहाँ ? वहाँ तर्कणा के तीखे बाण जाने-अनजाने उसे घायल कर डालते हैं। जीवन का सिंहावलोकन करने पर लगेगा कि हर व्यक्ति बचपन में जितना दृढ़ और धीर होता है उतना यौवन में नहीं होता। चलते चलते लड़खड़ाना न मिटे यह तब तक अचिन्तनीय है जब तक कि साधना में रस मिलता रहे। भूलों पर अनुताप होता रहे तब तक उसके सुधार की आशा क्षीण नहीं होती।

आत्म-निरीक्षण की प्रवृत्ति ब्रह्मचर्य की साधना में संलग्न रहने में बहुत लाभ पहुंचाती है। साधना का मार्ग कांटों से खाली नहीं है। वे चुभते हैं यत्र तत्र किन्तु साधक को दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि वह उन्हें मचलकर आगे बढ़ेगा। ब्रह्मचारी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी वृत्तियों को नियंत्रित रखने के लिये मार्ग-दर्शन पाने के लिये एक योग्य विश्वस्त और अनुभवी मार्ग-दर्शक चुने, उससे प्रेरणा ले। अंधेरी कोठरी में पत्थर फेंकनेवाले की तरह ब्रह्मचारी को अज्ञात-दशा से नही चलते रहना चाहिए। ब्रह्मचर्य की साधना इतनी तुच्छ साधना नहीं कि असावधान आदमी उस पर टिका रह सके।

ब्रह्मचारी का कर्तव्य है कि वह अपने सहयोगी बन्धुओं के जीवन का मूल्य आंके उन्हें सत् मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे। इससे पहले आत्म-नियंत्रण की बहुत आवश्यकता है। अन्यथा वह दूसरों को कह नहीं सकता। और न कहने का कुछ परिणाम भी होगा। उसे ब्रह्मचर्य के बारे में बार-बार विचार-विनियम करते रहना चाहिए। उपाय ढूंढते रहना चाहिए दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाना चाहिए। बहुत दिनों तक दूसरों को धोखे में नहीं रखा जा सकता। आत्म-वंचना का परिणाम बहुत बुरा होता है। मनुष्य अपनी कमजोरी छोड़ना नहीं चाहता और अपनी प्रतिष्ठा का मोह भी छोड़ना नहीं चाहता। यह बड़ा टेढ़ा प्रश्न है।

मनुष्य में मोहातिरेक होता है। वह दूसरों के प्रति इतना जल्दी आकृष्ट होता है कि जितना नहीं होना चाहिए। दूसरों को अपना भाई या बहन समझना अच्छा है किन्तु अपना अनन्य समझना अच्छा नहीं। भावों में लेप न आये, इसका ध्यान रखना जरूरी है। प्रेम विशुद्ध होना चाहिए। उसमें विकार की मात्रा न आये, यह नितान्त शोचनीय है। प्रेम का सम्बन्ध जटिल है। उसकी मात्रा बढ़ती है तब साथ साथ विकार का अंश शुरु होने लग जाता है, जो कि नहीं होना चाहिए। क्या मनुष्य के हृदय में शुद्ध प्रेम के लिये स्थान नहीं ? है, तो कहाँ ?

विशुद्ध प्रेम के पीछे कोई बंधा फिरे, यह देखने में कम आता है, नहीं के समान आता है। विकारपूर्ण प्रेम के पीछे सारी दुनिया पागल है। हाय ! यह स्थिति है ? कोई कहे मैं शुद्ध प्रेम चाहता हूँ। यह मानसिक भ्रम है। विशुद्ध प्रेम के लिये साधना क्यों ? प्रयत्न क्यों वह सहज प्रगट होता है। दूसरों का प्रेम पाने की इच्छा क्यों ? अपनी वृत्तियोंमें प्रेम होगा तो वह अपने आप दूसरों पर प्रतिबिम्बित होगा।

ब्रह्मचारी न प्रेम की भीख मांगे और न प्रेम विनियम करे। सबके प्रति जो समता-भाव जागे उसी में रमता रहे।

परिचय

[श्री प्रकाश दीक्षित]

●

धरती की कन्या,
आज सुहागन होगी,
मानव कन्यादान करेगा,
युग वर होगा,
खुशियां और उमंगें होंगी बाराती,
वेदऋचायें, उपनिषदों के मंत्र,
आयतें कुरान कीं,
गीता के पृष्ठ
औ, शत-शत इन्जीलों की भाषा—
मंगल-गान करेंगी,
हृदय-हृदय से सांस-सांस की,
शहनाई आज बजेगी,
विज्ञान गोद धरती की,
शुभ्र-शान्ति पुष्पों से आज भरेगा—
अम्बर के मण्डप के नीचे यह होनेवाला है,
युग-धरती का परिणय,
घर की कन्या वर के घर जाती है,
नव-आगत के स्वागत में आओ दे दें,
हम भी अपने विशाल हृदय का परिचय।

—०—

आ ह्वा न

[प्रो० श्री आनन्दनारायण शर्मा, एम० ए०]

आओ, कालिदास के बादल बरसो जग-आंगन में!
उमड़-घुमड़ कर रहो न केवल शून्य अशेष गगन में!

कब से आंखें तृषित, तुम्हारी, करती रहीं प्रतीक्षा,
सूत्र धैर्य का टूट रहा है, लो मत निठुर परीक्षा,
थककर गिरा अचेत कलापी झुलसे हुए विजन में!
आओ कालिदास के बादल बरसो जग-आंगन में!

देखो, जन-जीवन की धारा मरु में जाकर सूखी;
कण्ठ दग्ध म्रियमाण प्राण है, मानवता है भूखी;
वाणी मौन हुई कल्याणी, भाव नहीं वन्दन में!
आओ कालिदास के बादल बरसो जग-आंगन में!

नहीं राम गिरिवर का शापित यक्ष जिसे पहचानो,
और मिली मिट्टी में अलका धनपति की, सच मानो;
किन्तु व्याप्त है शाप आज वह धरती के कण-कण में!
आओ कालिदास के बादल बरसो जग-आंगन में!

कुछ दानों के लिये हाय. यौवन-तन बेचा जाता,
खड़ी हाट में मोल पूछती अपने शिशु का माता;
देख दशा इन मरभूखों की शरमाओ मत मनमें!
आओ कालिदास के बादल बरसो जग-आंगन में!

कभी एक विरहिन के दुख से फटी तुम्हारी छाती,
पर हैं आज कोटि क्षुधिताएँ जीवन-कोश लुटाती,
फिर भी एक बूँद आँसू की छलकी नहीं नयन में!
आओ कालिदास के बादल बरसो जग-आंगन में!

कैसा यह विद्रूप की नभ से बरस रहे अंगारे!
कैसी यह बरसात, धरा से फूटे रुधिर-पनारे,
गिरीगराज, लुट गयी आज, निर्व्याज भरे सावन में!
आओ कालिदास के बादल बरसो जग-आंगन में!

—:०:—

दो मुक्तक

काल छिद्रमय सांसों का घट बूंद-बूंद रिसता है,
बूंदें बन भव-सिंधु लहरियां जुड़ती हैं मंजिल से,
जीवन एक नाव है जिसका लहरों से रिश्ता है,
जिसने अपनी मुक्ति कामना की न कभी साहिल से।

●

बीजांकुर विकास के क्षण में रूप रंग रस लय है,
जिसका रूप-अरूप सजाता भव की विभव कहानी
जीवन एक फूल है जिसकी सुरभि विशाल हृदय है
फैल पवन के संग बन गई जो संसृति की वाणी।

[श्री राजेश्वर गुरु]

दीक्षा

[श्री रतनलाल अग्रवाल]

[वेष-भूषा में साधु, मुनि, परिव्राजक, यति और महन्त पर मनमें कामी, लम्पट लोभी दुर्व्यसनी उसी अभिनेता के समान हैं जो मुँह पर खड़िया मिट्टी रंग व गुलाल पोतकर नृप का अभिनय करते हैं पर पहने गये वस्त्र भी उनके नहीं होते।]

पूरा समाचार सुनने के पश्चात् शाह विह्वल हो गये। चम्पा, चीन, अंगद्वीप (सुमात्रा) यवद्वीप (जावा) आदि उनके नेत्रों के समक्ष घूमने लगे। वे सोचने लगे—आज वहाँ के निवासी उन्हें पृथ्वी के धन-कुबेर के नाम से जानते हैं और कल···कल सारे लोग उन पर हंसेंगे। वाह रे भाग्य! एक साथ इतना दुःख!

विमलशाह की गणना प्रमुख व्यापारियों में होती थी। पृथ्वी के अधिकांश द्वीपों में उनकी हट्ट थी। एक द्वीप की वस्तु दूसरे द्वीप में क्रय-विक्रय करनेवाले व्यापारियों में विमलशाह का नाम सबसे आगे था। जल थल दोनों के द्वारा वे व्यवसाय करते थे।

व्यापारिक वस्तुओं का आवागमन हो रहा था, इसके साथ ही अन्य व्यापारियों का माल भी था और निर्दिष्ट स्थान पर उन सब के सकुशल पहुंच जाने का उत्तरदायित्व भी शाह पर ही था। इस जिम्मेदारी के लिये उसे प्रतिशतानुसार आढ़त प्राप्त होती थी। अधिक आढ़त के हेतु शाह एवं नष्ट होने पर अधिक धन प्राप्ति की लालसा के हित वणिकगण वस्तुओं के मूल्य वास्तविक मूल्य से कुछ अधिक ही निश्चित करते थे।

संयोग की बात, थल पर अग्नि प्रकोप एवं जल में दस्युओं के कारण लगभग सात लक्ष स्वर्ण मुद्राओं के बराबर का माल नष्ट हो गया। व्यापारियों के माल का मूल्य चुकाने के लिये शाह को चम्पा एवं चीन की सारी व्यापारिक साख सहित हट्टों का विक्रय करना पड़ा और यह हानि देख उनके हृदय में प्रचण्ड वेग उठा, व अशान्ति की अग्नि भभक उठी जिसे देखकर उनके प्रधान आय-व्यय लेखक ने शाह को कृष्णा के तीरवासी मुनि के आश्रम पर पहुंचने की सलाह दी।

× × ×

वे वहाँ पहुंचे।

"शाह! यहाँ आने का प्रयोजन" मुनि ने शान्त व मीठे स्वर में प्रश्न किया। विमलशाह के हृदय का स्रोत फूट पड़ा।

"मुनिवर, मैं लुट गया, सारा विश्व और उसके व्यापारी जो मेरे इंगित पर थे आज मेरे सर्वस्व नष्ट होने के कारण हँस रहे हैं।"

मुनि मौन थे और शाह के हृदय का वेग शब्दों द्वारा उसी प्रकार बाहर आ रहा था। वे कहते गये—"श्रीनार (अरब) के निवासी मलमल पहिने या नहीं, यहाँ की स्त्रियाँ अपने अपने रसोई-गृह में सुदूर द्वीपों से आने वाले मशालों का उपयोग करें या नहीं, सामंतों के कार्य हेतु कुशद्वीप (आफ्रिका) के दास-दासियाँ यहाँ पर आये या नहीं यह सब मेरी इच्छा पर निर्भर रहता था, पर आज···आज में···" शाह चाहते हुए भी अपने लिये हीनता सूचक शब्दों का प्रयोग न कर सके।

"धन से कोई भी अमर नहीं बनता···।" मौन भंग करके मुनि ने संयत वाणी से कहा—"यदि ऐसा होता तो संसार के सभी धनवान अमर हो जाते"।

"पर यह सत्य नहीं, प्राचीन नरेश, सामंत एवं व्यापारीगण भी धन व्यय करके ही प्रसिद्धि प्राप्त कर सके हैं, प्रियदर्शी ने राजकोष के धन को व्यय करके ही स्वयं को अमर बनाया है, यदि धन नहीं होता तो अन्य नरेशों की भाँति वह भी शरीर नष्ट होने के संग ही नष्ट हो जाते"।

"यहीं तुम भूलते हो शाह! अर्द्ध सत्य, असत्य के समान ही त्याज्य है, अधूरा ज्ञान और अधूरी बात भी भ्रम उत्पन्न करनेवाली होती है" मुनि जैसे इस प्रश्न के लिये प्रस्तुत हों, बोले "बिन्दुसार प्रियदर्शी, वे सब वैभव के कारण अमर नहीं हुए; इनके समय में और इनसे पहले-पीछे भी असंख्य वैभवशाली पुरुष काल के कराल गाल में समा गये और आनन्द, मातुल, पांग आदि अमरत्व को प्राप्त हो गये फिर वैभव प्राप्ति के हेतु मनुष्य न जाने कितने कर्म-अकर्म करता है।"

शाह ने सुनकर उत्तर दिया—"धन वैभव कुकर्म से प्राप्त किये जाते हैं" जो इसके रहस्य को नहीं समझते उन लोगों का ही यह कथन है। व्यवसायिक वर्ग में प्रचलित मतानुसार तो धन, वैभव, योग्यता का पुरस्कार है, जिस प्रकार नृपों को उनकी शक्तिनुसार भूमि का स्वामित्व प्राप्त होता है उसी प्रकार धन वैभव भी योग्यतानुसार ही प्राप्त होता है"।

विमलशाह के तर्क को सुनकर पहले तो मुनि हँसे फिर बोले "क्या धन, वैभव व पद, आदि योग्यता के पुरस्कार हैं? यदि ऐसा है तो महावीर, चाणक्य को देने के लिये इस संसार में क्या है, नागानन्द को यह संसार अथवा हर्षवर्धन क्या देता है?"

मुनि के तर्क को सुनकर विमलशाह मौन हो गये। कुछ देर के बाद उन्होंने कहा—"मैं उन व्यवसायियों की भी हत्या करवा दूंगा, जिन्होंने मेरे वैभव से ईर्ष्या के कारण अपनी वस्तुओं के अधिक मूल्य लिखवाये हैं।"

"तो तुम हत्या करोगे ?" मुनि ने सुनकर कहा "क्या यही तुम्हारी योग्यता है। जिसके अनुसार पुरस्कार के नष्ट होने पर हत्या भी करने को प्रस्तुत हो गये।"

शाह के माथे पर स्वेद की बूंदे आगई। मुनि ने ताड़पत्र उनके समक्ष प्रस्तुत कर दिया और बोले—

"जीवन में एक क्षण ऐसा भी आता है जब जीवन और चरित्र नष्ट होते बच जाता है अथवा बनता-बनता नष्ट हो जाता है क्या तुम इसे नष्ट करना चाहते हो ?"

विमलशाह ने देश-विदेश के सैंकड़ों व्यवसायी अवश्य देखे थे। वे व्यवसायी जो मदिरा एवं चन्दन का, पशु और दासों का मोलभाव स्वयं के लाभ हित एक साथ एक ही स्थल पर करते थे। दास के मरने पर उसकी क्षतिपूर्ति भेड़ों से और भेड़ों के मरने पर कुशद्वीप के दासों से उसकी क्षतिपूर्ति की जाती थी। निश्चित अनुपात था,— दो भेड़ों के बराबर एक दास और आठ भेड़ों के बराबर एक युवा और एक सुन्दरी दासी।

पर विमलशाह को लगा इस निर्जन नदी के तट पर स्थित इस मानव के तर्क उन सब तर्कों से भारी हैं।

"तू अपराधी है" शाह के हृदय ने पुकारा "हत्या की बात विचारों के उद्वेग के कारण निकल गई थी" उसने संकुचित होकर कहा।

शिष्य की तरह शाह को समझाते हुए मुनि ने कहा—पहले लोग यज्ञ करते थे, बलि-त्याग के नाम सहस्त्रों पशुओं का वध करते थे पर अपने राज्य की नौंकभर सीमा हेतु देशों को युद्ध की अग्नि में फेंक देते थे, सारे विश्व पर शासन करने के इच्छुक रहते थे किन्तु अपनी जिह्वा, नेत्र, मन पर भी संयम नहीं कर पाते थे और इस प्रकार असंतोष की अग्नि में जीवन पर्यन्त धधका करते थे।"

"मुझे संतोष चाहिये, मन का सन्तोष" शाह ने विकल होकर कहा—"ऐसी शान्ति जो आपके हृदय में विद्यमान है, मैं भी आपके समान वस्त्रधारी हो जीवन व्यतीत करना चाहता हूं, मुझे दीक्षा दीजिये।"

मुनि उठ खड़े हुए। समय बहुत हो गया था। उनके उठते ही शाह भी उठ गये। मुनि टहलने लगे और टहलते हुए उन्होंने कहा—"वेष-भूषा में साधु, मुनि, परिव्राजक, यति और महंत पर मन में कामी, लम्पट, लोभी, दुर्व्यसनी उसी अभिनेता के समान हैं जो मुँह पर खड़िया, मिट्टी रंग व गुलाल पोतकर नृप का अभिनय करते हैं पर पहने गये वस्त्र भी उनके नहीं होते, धनाभाव के कारण भूखे तक सो जाते हैं"।

"मुनिवर ! यह उनका नहीं उनके यांत्रिक जीवनका दोष है, वे नृप का अभिनय करते हैं पर नृप जैसी योग्यता उनमें नहीं होती"।

टहलते हुए दोनों बाहर निकल आये और तटपर की गीली मिट्टी दोनों के पैरों से चिपकने लगी थी।

जीवन लक्ष्य

[श्री हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि']

देखो तो, इस कोमल परिजात में कलियां लग आई हैं।

कल ही ये कलियाँ विकास पाकर फूट निकलेंगी और फूल खिल उठेंगे—सुन्दर सरल निर्दोष।

प्रातः रवि की रश्मियां ऊषा की लजीली ललाई से लाल-लाल हुई सी इन्हें—इन फूलों को प्यार करेंगी धीरे-धीरे पर खूब घना-घना।

शीतल समीर भी चूमेगा इन्हें अठखेलियां करता। चूमकर निक चंचल करेगा अपनी ही तरह इन्हें भी; चंचल कहीं का ! और फिर स्वयं इनके प्रसाद स्वरूप सौरभ से परिपूर्ण होकर विश्व-परिक्रमा करता हुआ तुझ मुझ सबको प्रफुल्लित कर देगा।

समय पर सन्ध्या आयेगी—मुस्कान बखेरती विकास की सीमा पर कुलेलें करते ये पुष्प सहज देहावसान करेंगे उस समय अपनी जननी धरती मां के श्री चरणों में प्राणिपात करते हुए.........मन्द मन्द मुस्कानसे मुस्कराते हुए भी—उस मुस्कानसे जिसमें जीवन-साफल्य झाँक रहा होगा।

मलियानिल से लौटता हुआ सान्ध्य-पवन धूरि-धूसरित से दीख रहे इन पुष्प-शवों का ससम्मान चूमकर जीवन गीत गायेगा तब—वह जीवन गीत जिसकी प्रथम पंक्ति होगी—

"जीवन तो हो पुष्प समान"

मुनि ने कहा "जीवन और यंत्र में अन्तर होता है, यंत्र में स्वभाव परिवर्तन होना असंभव होता है, वे जिस परिस्थिति और कार्य के लिये निर्मित किये जाते हैं वही करते हैं, क्योंकि वे मनुष्य की कृति हैं, किन्तु मानव···मानव संसार को उन्नत करने का प्रयत्न करता है, जो ऐसा नहीं करता वह माँस, हड्डी और मज्जा के आवरण में लोह, ईंट व पाषाण ही है" शाह मन्त्र-मुग्ध हो सुनते गये। "और अभिनेता, यदि क्षुधा सहकर भी अपनी कला से संसार को उन्नत बनाने का प्रयत्न करता है तो स्तुत्य है, पर यदि नृप अपने शासन द्वारा संसार को अपनी व्यक्तिगत लिप्सा का साधन समझता है तो वह निंद्य है।

तुम्हारी दीक्षा का समय अभी नहीं आया, लौट जावो"।

विमलशाह प्रणाम करके वहीं अपने निवास स्थान पर लौट गये।

दूसरे दिन की सुबह एक निराशा की सुबह थी, विषादपूर्ण प्रातः। कटे हुए वृक्ष के समान वे अपनी हट्ट पर गये। सभी कर्मचारियों के मुख-मण्डल पर विषाद था।

वे सोचने लगे—मैं दुःखी हूं क्योंकि लाखों की हानि हुई है, मुख्य लेखक इसलिये शोकग्रस्त है कि कहीं दो सहस्र वार्षिक मुद्राओं का कार्य न छूट जाय। अन्य कर्मचारी भी अपनी-अपनी आय हित दुखी हैं और भृत्य-वर्ग···वे दुखी हैं, अन्न-वस्त्र की प्राप्ति में बाधा पड़ने की आशंका से, किसको दुख कम है और किसको अधिक?"

हट्ट से निवास स्थल पर आने पर शाहके विचार पुनः उसी गति से चलने लगे—'मुनि ने सच कहा था कि दुख और सुख स्वयं कुछ नहीं है वे केवल अनुभव किये जाते हैं, और विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न प्रकार से। जो वस्तु ऐसी होती है उनको असत्य कहते हैं।' मुनि के वाक्य शाह के कानों में गूँजने लगे सत्य सब परिस्थितियों में सभी प्रकार के व्यक्ति द्वारा एक ही रूपमें देखा जाता हैं तथा असत्य···तो क्या दुख-सुख सब असत्य हैं क्योंकि वे परिस्थिति और व्यक्ति के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं?"

प्रत्येक विचार एक दूसरे विचार को जन्म देता गया। शाह सोचते रहे, सोचते रहे और दिन बीतने लगे। एक दिन फिर सुना लाभ! तीन लक्ष स्वर्ण मुद्राओं का लाभ सबके मुखों पर प्रसन्नता की लाली आगई। सूर्योदय के कमल की तरह सब के मुख-मण्डल खिल उठे। प्रधान आय-व्यय लेखक प्रसन्न था और यह समाचार शाह तक भी पहुंचाया किन्तु उनके मुख पर इतनी प्रसन्नता नहीं है, यह बात उसके अनुभवी नेत्रों से छिप न सकी।

थोड़े ही दिनों में यह बात सर्वत्र प्रसारित हो गई कि शाहजी व्यापार की अपेक्षा चिन्तन की ओर अधिक ध्यान देते हैं।

और फिर सभी ने अनुभव किया कि हानि, लाभ, इन दोनों के सन्देश उनके मुख-मण्डल के भावों को परिवर्तित करने में असमर्थ हैं।

× × ×

एक रात्रि को—

"तुम यहाँ इस समय"

"हाँ"

"क्यों, पुनः अत्याधिक हानि हुई है?"

"नहीं"

"अस्वस्थ हो"

"नहीं"

"परिजन विछोह हुआ है"

'नहीं"

"वैरी का मिलन हुआ है"

"नहीं"

और फिर मुनि ने पूछा—"अत्याधिक लाभ हुआ है?" "नहीं" शाह ने उत्तर देकर पूछा, "मुनिवर! आपका अन्तिम प्रश्न विचित्र है। क्या अत्याधिक लाभ होने पर भी चैन छूट जाता है?"

मुनि के मुख पर हँसी थी। उन्होंने गम्भीर होकर कहा—"अति भी दुख और आश्चर्य का हेतु होता है, अति लाभ अथवा अनसोचा सुख भी मनुष्य को अदृश्य शक्तियों के प्रति आकर्षित करता है अथवा मनुष्य किसी को चमत्कारिक पुरुष मान लेता है।"

"मुनिवर!" शाह ने धीरे से कहा, उनके नेत्र आर्द्र थे।

मुनि कहते रहे—दो मास पूर्व तुम आये थे, अत्यन्त उद्विग्न, अत्यन्त विषाद-ग्रस्त और आज सम्भव है लाभ सोचकर इस धारणा से कि मैं कोई चमत्कारिक पुरुष हूँ"

"नहीं, ऐसा तो मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा, अब मैं लाभ-हानि से परे हूं, क्या अब भी दीक्षा के योग्य नहीं हूँ"

"कोई भी प्राणी जन्म से योग्य या अयोग्य उत्पन्न नहीं होता। प्रत्येक प्राणी अपने को योग्य अथवा अयोग्य बनाता है अभी समय नहीं आया है, तुम फिर आना"

अश्व हिनहिनाये। घण्टियों की टनकार हुई और शाह का रथ अपनी वायु की गति की भाँति वापस लौट गया। भृत्य वर्ग ऊँघ रहे थे। शाह के रथ की घण्टिकाओं का नाद सुनकर वे चौंककर उठ गये।

'रक्षा···इस विशाल वैभवपूर्ण नगरी में भी मैं अरक्षित हूं' शाह सोचने लगे—और कृष्णा के तीरवासी मुनि, उन्हें मनुष्य तो क्या जंगली पशु तक का भय नहीं। मनुष्य का शत्रु अन्य कोई नहीं, वह स्वयं ही अपना शत्रु अथवा मित्र है।

शाह में परिवर्तन हुआ। सुना गया उन्होंने चीन के रेशम के स्थान पर सूत पहिनना प्रारम्भ कर दिया है। भोजन अत्यधिक सादा हो गया है। शनैः शनैः कर्मचारीगण व्यापार सम्बन्धी परामर्श शाह की अपेक्षा उनके पुत्र से लेने लगे।

वर्षा प्रारम्भ हुई। नदी नाले उमड़ पड़े। पहाड़ों पर कठोर पाषाण के स्थान पर हरियाली छा गई। विद्युत की अत्यधिक कौंध, वायु का प्रचण्ड वेग! शाह ने मुनि के आश्रम की ओर फिर प्रस्थान किया।

× × ×

मुनि चिन्तन में लीन थे।

शाह के मुँह से जो स्वर निकला वह धीमा था। बादलों की गड़गड़ाहट में वह खो गया।

"कब आये?" आँखें खोलकर मुनि ने प्रश्न किया।

शाह चुप रहे। मुनि के प्रश्न सूचक दृष्टि से पुनः देखने पर उन्होंने कहा—"मध्याह्न रात्रि को"

"मुझे सूचित नहीं किया"

"सूचित करना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, जितना आपका चिन्तन"

"जानते हो रोग कितने प्रकार के होते हैं, क्यों होते हैं?" शाह नीची दृष्टि किये बैठे रहे। मुनि बोले—"अत्यधिक भोजन और भोग के कारण शरीर रोगी हो जाता है और जिस प्रकार अजीर्ण का रोगी अन्न से विमुख हो जाता है पर वह विरक्ति क्षणिक होती है इसी प्रकार अत्यधिक भोगों के कारण भी उनके प्रति क्षणिक विरक्ति हो जाती है।"

"मुझे इसका अनुभव है"

इसीलिये ब्राह्मणों ने कहा है—'अति सर्वत्र वर्जते' और अमिताभ बुद्ध ने भी मध्यम-मार्ग का उपदेश दिया"

"मुझे इस मार्ग पर विश्वास है"

एकाएक मुनि ने प्रसंग बदल दिया—सारथी कहां है? उससे सूखे वस्त्र तो मँगवालो"

शाह नीची दृष्टि किये हुए बोले "मैं रथ पर नहीं आया हूँ।"

"समझा, तुम मध्य रात्रि से इस प्रथम प्रहर की अन्तिम वेला तक भीगे वस्त्र पहिने ही बैठे रहे।"

फिर दोनों कुछ समय के लिये मौन हो गये।

"जावो तुम्हें बहुत विलम्ब हो गया, कहीं कोई महत्त्वपूर्ण कार्य न बिगड़ जाय।"

"विलम्ब का पश्चाताप ही तो करने आया हूँ, और कार्य तो क्या यह जीवन ही बिगड़ रहा है"

और फिर मध्याह्न, सन्ध्या, व सम्पूर्ण रजनी बीत गई। पक्षियों के गीतों ने प्रातः के आगमन की सूचना दी। नित्य कर्म से निपटने के पश्चात् मुनि ने पूछा—

"दीक्षा लोगे?"

शाह ने अपना शीश मुनि के चरणों पर रख दिया।

"उठो" मुनि ने अपना स्नेहपूर्ण हाथ शाह की पीठ पर फेरकर कहा—"आज से सम्पूर्ण विश्व तुम्हारा है, संसार छोड़ने का तात्पर्य इसमें होनेवाले अत्याचारों-अनाचारों, के प्रति उदासीन होना नहीं, जगो और जगाओ उनको जिन्हें सही मार्ग की लालसा है"।

शाह के नेत्रों में स्नेह का समुद्र हिलोरें लेने लगा।

——:o:——

गद्यगीत—

जीवन का वरदान

[सुश्री कमला दीक्षित]

असद् से निरन्तर संघर्ष करती हुई, मानव हृदय की अन्तरज्वाला, जब २ चिरन्तन सत्य की ओर अग्रसर होती है, तत्क्षण आत्मा स्वयंमेव, आलोकित हो उठती है, मानव एक अनिर्वचनीय आनन्द से ओत-प्रोत हो उठता है। और तब जबकि अपने-पराये की क्षुद्र भावनाओं को भस्मिभूत करते हुए, स्नेह के उज्ज्वलतम स्फुलिंग-अन्तरतम में झड़ने लगते हैं।

मानवता तपे हुए कुन्दन की भांति, दमकने लगती है। और वे ही स्फुलिंग जीवन का प्रकाश बन, मानव-पथ को आलोकित कर देते हैं। इतना ही नहीं; जब २ अज्ञान का आवरण मानवी प्रगति की प्रकाश किरण को अवगुंठित कर निःशेष करना चाहता है—आत्म-विवेचन, अंतर्ज्ञान की शाश्वत लौ उस तामस घन—आवरण को भेद, प्रकाश किरण के पथ को और भी अधिक प्रशस्त ज्वाजल्यमान कर देती है। मानव मन की अन्तर्ज्वालायें, शाप अथवा पाप नहीं, वे जीवन का पावनतम वरदान हैं एवं पवित्रतम विभूतियाँ।

एक विचारणीय प्रश्न !

जागरण तो तब हो जब नीति की भित्ति हो। क्या आपको नहीं लगता कि बहुत सी भित्तियाँ टूट चुकी हैं ?

क्या नीति की कल्पनाएं वही रहेंगीं जो सनातन सम्मत, मनुस्मृति सम्मत या हिन्दू, बौद्ध-जैन-ईसाई-मुस्लिम धर्म-शास्त्रों पर आधारित होंगी ? याकि युगानुसार उसमें परिवर्तन करना आवश्यक है ? यह परिवर्तन कहाँ से जागेंगे ? व्यक्ति से, समूह से या संस्था से ?

—प्रभाकर माचवे

[माचवेजी ने "अणुव्रत" के पाठकों के विचारार्थ उपरोक्त प्रश्न उठाया है। अतः इस विषय पर पाठक व विद्वान अपने विचार सहर्ष प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं। इस अंक में श्री पीताम्बर शास्त्री के विचार प्रकाशित किये जा रहे हैं। सम्पादक]

व्यक्ति से ही समूह और संस्थाओं का संगठन होता है। व्यक्ति ही इन दोनों का साधन है। व्यक्ति के सुधार से समूह और संस्थाओं का सम्मार्जन होता है। समूह अथवा संस्था में सभी व्यक्ति नैष्ठिक हों असम्भव है। हम प्राचीन से प्राचीन इतिहास को लेकर विचार करें तो नैतिक भित्तियाँ टूटनी-निर्माण होती चली हैं। समय-समय पर इसीलिये दण्ड-विधान किया गया, नैतिक सुधार के निमित्त स्वर्गीय सुख और नारकीय भय की कल्पना का प्रभावकारी प्रचार किया गया। श्रुति-स्मृतियों के जन्म और उनकी परम्परा की यही संक्षिप्त कहानी है।

'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' ...का उद्घोष इस तथ्य की ओर पर्याप्त संकेत करता है, उक्त दोनों श्लोकों का अर्थ व्यापक है। इनका प्रत्येक शब्द गम्भीर रहस्य रखता है। धर्मशास्त्र कानून का ही दूसरा नाम है। वर्तमान का कानून भविष्य का धर्मशास्त्र और भूत का कानून वर्तमान का धर्मशास्त्र है। फिर भी युग-परिस्थितियों के तथा देश-काल पात्रों के अनुरूप इनमें सामयिक परिवर्तन की अपेक्षा स्वभावतया रहती है, कभी-कभी देशाचार और लोकाचार भी धर्मशास्त्रीय रूप लेते हैं।

मनीषि बेकन का कहना है—"समूह का नाम संगत नहीं है, जहाँ प्रेम नहीं है वहाँ लोगों की आकृतियाँ चित्रवत् हैं और उनकी बातचीत झांझ की झनकार है।" ये पंक्तियाँ ध्यान देने और मनन करने योग्य हैं। यहाँ समूह-संगत-प्रेम आकृतियाँ चित्र, बातचीत और झाँझ की झंकार शब्द सजीव और बड़े गम्भीर हैं। ये मानवीय धर्म के मापक हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी—संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि विकार।' कहकर तात्विक सन्देश दिया है। मेरे विचार से जागरण ही नैतिकता का आधार है और नैतिकता जागरण का प्रतीक। जागरण के पूर्व नैतिकता संस्थापन स्वाप में कैसे सम्भव हो सकेगा ? इसलिये जागरण-भित्ति पर नैतिकता का निर्माण तर्क संगत है। भित्तियाँ टूटती हैं तभी तो जागरण होता है और फिर नैतिकता का प्रसार होने लगता है। चिर नियम केवल एक है, अविकारी है। 'तमेव विदित्वाऽति मृत्यु मेति नान्यः पन्था विद्यते मनाय।' भारतीय दर्शन-शास्त्रों में कर्म विपाक-पुनर्जन्मादिका निरूपण किया गया है।

अधोगति का कारण तामसी प्रवृत्तियाँ हैं। इस प्रकार सुख और दुःख अनादि सिद्ध होते हैं। इनका आगमन-निर्गमन होता रहता है मानव-परम्परायें अनादि नहीं हैं अतः उनके धर्म भी अनादि नहीं। हिन्दू-मुस्लिम ईसाई—आदि धर्म अपरिवर्तनीय या अपरिहार्य नहीं हैं। ये सभी परस्पर-धर्म परिवर्तन करते देखे जाते हैं। उनका परिहार भी है, सम्प्रदाय को धर्म का स्थूल नाम दिया गया है। चूँकि युगों से चलकर वे अपनी पृथक् समष्टि बना चुके हैं इसलिये उन्हें धर्म कहा जाता है। 'हिन्दू' धर्म नहीं अपितु 'हिन्दुत्व' धर्म है। हिन्दुत्व, ईसाइत्व, मुस्लिमत्व, इन सबके मूल में एक ही धर्म है वह है—मानव धर्म। जिस प्रकार जाति में जातित्व रहता है वैसे ही धर्म में धर्मत्व रहना चाहिये। अब मनुष्यत्व और धर्मत्व पर विवेक करना चाहिये, जब इन दोनों का लोप दिखाई देने लगता है तब नव जागरण और नैतिकता की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। नैतिकता बोध का ही अपर नाम है, जागरण के बिना वह संभव कहाँ ? अतः सर्व प्रथम जागरण की अपेक्षा है। जागरण दुःख-दुरित-दुरापों के सतत आघात प्रत्याघात से निष्पन्न होता है। क्रौंच द्वन्द वियोगोत्थ शोकः श्लोकत्वमागवः"। बाल्मीकि का कठोर सुप्त हृदय क्रौंची-क्रन्दन से जाग पड़ा तब चिर संचित काठिन्य भार अनायास द्रवित हो प्रवाहित होने लगा।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वयगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकमेवधी काममोहितम्॥

क्या इस जागरण में नैतिकता का अवतरण नहीं है ?

—पीताम्बर शास्त्री

● और मैं चुप हो गया

आज देश की निर्धनता और बेरोजगारी व्यक्तियों को किस प्रकार आत्म-पतन की ओर अग्रसर व विवश कर रही है। इसका जीता जागता उदाहरण 'जैन जगत्' में प्रकाशित श्री मन्नारायण अग्रवाल के इस संस्मरण में देखिये—

"एकबार रेलगाड़ी में एक भिखारी मिला। मेरे डब्बे में आकर उसने कुछ गाने गाये और बाद में मुसाफिरों के पास आकर पैसा माँगने लगा। मेरी भी बारी आई। मुझे भिखारियों से कुछ चिढ़ सी है। भले चंगे लोगों को मैं कभी पैसा नहीं देता। हाँ, अगर कोई अपंग-अपाहिज आदमी या औरत नजर आई तो दूसरी बात है। मैंने उस भिखारी से पूछा—

"तुम भीख क्यों माँगते हो? कुछ धंधा क्यों नहीं करते?"

झट से जवाब मिला—"बाबूजी, मेरा यही धंधा है।"

"तुमको इस तरह भीख माँगने में शर्म नहीं आती।" मैंने कुछ गुस्से में कहा।

"बाबूजी, कोई भी आदमी लाचारी के बिना भीख क्यों माँगे? भीख माँगना आसान नहीं है। बहुत कठिन पेशा है, बाबू।"

"तुम कुछ काम क्यों नहीं करते?" मैंने पूछा। भिखारी की आँखों में आँसू छलछलाने लगे। उसने अपनी राम कहानी सुनाते हुआ कहा—

"मैंने कुछ काम खोजने की कितनी कोशिश की; लेकिन कुछ भी काम-धंधा न मिला। आखिर भूखों मरने की नौबत आ गयी। शर्म छोड़कर, जी मारकर, यह पेशा करना पड़ा। ईश्वर न करे, भीख का पेशा करना पड़े।"

मैं चुप हो गया। सोचा कि उसे कुछ पैसे दे दूँ। लेकिन कुछ तय न कर सका। अगला स्टेशन आया और वह भिखारी उतर कर दूसरे डब्बे में चला गया।"

● गुलाब के आँसू

चिर-संचित मानवता के पुष्पों को झड़ते हुए देखकर भी आज का विज्ञान-प्रधान युग उसकी कराहट, क्रन्दन और चीख से बेखबर है। 'समाज' में प्रकाशित इस लघुकथा में श्री ज्योतिप्रकाश ने उसी ओर एक संकेत किया है—

"चार बालक बड़े प्रेम से किसी खेल में लगे हुए थे। खेल ही खेल में एक ने मिट्टी को कोड़कर उसे बहुत मुलायम बना डाला। दूसरे ने उसमें तालाबका मीठा जल डाल दिया तीसरे ने एक काँटेदार गुलाब की एक डाली रोप डाली। चौथे ने मिट्टी, जल, और अपनी मेहनत से उसकी देख-रेख शुरू करदी।

उनका यह खेल पूरे चार वर्ष तक चला। तब वे जवान हो गये, साथ ही गुलाब भी खिलकर जवान हो गया। एक तरफ बालकों की जवानी फूटी तो दूसरी तरफ गुलाब में बेहद सौन्दर्य फूटा, ऐसा मानो पारिजात का पुष्प हो, ऐसा मानो माँ-बेटे की मधुर मुस्कान हो।

तब उन गुलाबों से पूरा बाग ही भर गया। उनसे यह खुशबू फूटी और वह सुरभि फैली कि उस सड़क से गुजरनेवाले तमाम राही उन्हें एकटक अवश्य देखने लगते। मगर राहगीरों को यह पता न था कि यह बाग किसने लगाये।

फिरभी इन चार बालकों को जो अब जवान हो चुके थे, बड़ा आत्म-संतोष होता कि कैसा बाग खिला कि सभी राही देखकर बड़े खुश हो पड़ते हैं। कितने ही राही तो वहीं घंटे दो घंटे बैठकर आराम भी कर लेते।

लेकिन एक दिन न जाने कौन सा ऐसा जानवर उस बाग में रात के पहर घुसा कि देखते ही देखते उसने उस बाग को रौंद डाला और कुछ ही घंटों में सारे बाग को मिटा डाला।

गुलाब सब झड़कर जमीन पर गिर गये, उनकी पत्तियाँ इधर उधर बिखर गईं। तब वे आपस में बड़े रोये। सुबह हमने देखा कि ऐसा कोई गुलाब और पत्ती न थी कि जिसपर आँसू की बूँदें न पड़ी हों।

दो बूढ़े राहगीर उसी समय उधर से गुजर रहे थे मगर तमाशा देखनेवालों की इस भीड़ पर उनकी नजर न पड़ी, क्योंकि वे एक किनारे से, एक नई ईजाद, एटम बम की वार्ता में तल्लीन चले जा रहे थे।......"

● इसकी उसे चिन्ता नहीं!

सेवा के प्रतिफल में व कर्त्तव्य-पूर्ति के उपलक्ष में कुछ चाहनेवालों के लिये या लेनेवालों के लिये श्री गोविन्दसिंह की 'नया-जीवन' में प्रकाशित एक मूक सेवक की इस चलती-फिरती तस्वीर में जहाँ एक चुनौती है वहीं ध्येय-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा है—

"खादी की स्काउट जैसी ड्रेस, सिरपर टोपी, आँखों पर डोरों से बँधा चश्मा, तगमे, हाथ में साइकिल और साइकिल पर हमेशा तिरंगा झंडा, बूढ़ी दुबली पतली काया। नगरमें कोई नेता आये, तो सबसे आगे बिगुल फूंकते हुये उसे देखा जाता है। कांग्रेस की ओर से निकलनेवाले हर जलूस, सभा में इस

व्यक्ति को देखा जा सकता है। झंडा कप्तान खनमन।

झन्डा कप्तान खनमन आजादी का एक सिपाही रहा है। लात, डंडे, जेल भोग चुका है। आजादी की लड़ाई में सर्वस्व गँवा चुका है। आज भी एक सिपाही की तरह जिन्दा है वह। खनमन देश के लिये लड़ा और आज भी हारा नहीं है। देश आजाद हो गया। साथी क्या से क्या बन गये, पर खनमन आज भी अपने स्थान पर ज्यों का त्यों है। सभी नेता, मंत्री उसे जानते हैं। खनमन आजादी का एक सैनिक रहा है। कांग्रेस का अटूट भक्त। पैदल, साइकिल जैसे भी बन पड़ा, हर कांग्रेस अधिवेशन में वह सम्मिलित हुआ है। देश की हर पुकार पर खनमन आगे आया है। अगस्त क्रांति से गोवा आन्दोलन तक खनमन पीछे नहीं रहा।

खनमन पढ़ा लिखा नहीं। वह एक सीधा सादा सिपाही है। सौराष्ट्र का एक शिक्षा मंत्री केवल चार दरजा पास है, दक्षिण का एक मंत्री अंग्रेजी का ए भी नहीं जानता इसकी खनमन को चिन्ता नहीं। सब कुछ गँवाकर भी खनमन कुछ नहीं बन पाया। इसके लिये वह दुःखी नहीं। आज भी साइकिल पर अपना तिरंगा फहराता हुआ खनमन देश का एक सिपाही है।"

o न्याय या सट्टा

झूठी वकालत और बातों के दाँव-पेंच से न्याय का आज दम घुट रहा है। न्याय न्याय न रहकर भाग्य का खेल या जुआ बना हुआ है। ऐसी अवस्था में 'पांचजन्य' में प्रकाशित श्री पी० कोदंडराव के ये महत्वपूर्ण विचार निश्चय ही पठनीय व मननीय हैं—

"अपील करने की पद्धति ने जिसमें नीचे की अदालतों के फैसलों के परिवर्तन हो जाने की भी संभावना रहती ह न्याय को सट्टा बना दिया है। कोई भी अपील पीछे के फैसले को बदल सकती है। किसका न्याय ठीक माना जाये? और यदि एक ही बेंच के न्यायाधीशों में मतैक्य न हो तो किसकी राय ठीक है? प्रत्येक फैसला न्याय के स्थान पर झगड़ों का निबटारा मात्र ही हो जाता है, क्योंकि न्यायाधीशों के वोटों के द्वारा न्याय की सत्यता प्रमाणित नहीं होती। इसलिये यह उचित दिखाई देता है कि केवल एक अपील की जाने की अनुमति हो। वह फिर एक मैजिस्ट्रेट या एक न्यायाधीश के स्थान पर ३ लोगों की बेंच के सम्मुख हो सके। इस प्रकार यह होगा कि या तो तीनों न्यायाधीश एकमत होंगे अन्यथा कम से कम दो तो एक मत होंगे ही। जो अभियोग सर्वोच्च न्यायालय तक जाते हैं, उनको हाई कोर्ट तक ही किया जा सकता है। इसी प्रकार नीचे की अदालतों में बदल लाई जा सकती है।

कानून की उच्च शिक्षा प्राप्त स्नातकों को न्यायाधीशों के सहयोगी जनसेवकों के रूप में रखना अधिक उपयुक्त है, बनिस्पत इसके वे वकील बनकर कानून का जुआ और सट्टा खेलते हुए अपना अनिश्चित भविष्य प्रारम्भ करें, क्योंकि इसके कारण न्यायाधीशों को न्याय करने में सहायता प्राप्त होगी।"

● संख्या का नहीं, पाप का भार

पृथ्वी पर अपने रजोगुणी स्वभाववश अन्याय और अत्याचार करनेवालों की ही भार नहीं है अपितु कायरता और भीरुतावश ऐसे कुकृत्य शान्तिपूर्वक सहनेवाले भी उसी श्रेणी में आ जाते हैं। 'भूदान-यज्ञ' में प्रकाशित आचार्यश्री विनोबा का यह प्रेरक अवतरण सचमुच दिशा-बोधक है—

"जो लोग रजोगुणी होते हैं, वे दुनिया को लूटने का कार्य करते हैं। बहुत जोरदार काम चलाते-चलाते वे हायड्रोजन बम तक पहुँच गये हैं। अब उनकी आपस-आपस में टक्कर शुरू हो गई है, क्योंकि रजोगुण का ठेका भगवान ने किसी एक देश को तो नहीं दिया है। दूसरे देशों में भी रजोगुण होता है। रजोगुणी देशों के बीच आपस में टक्कर चल रही है। उससे सारी जनता भयभीत हो गई है। रजोगुणियों की तमोगुणियों से टक्कर हो रही है। तमोगुणी लोग लूटे जाते हैं, जिसका उन्हें खुद को भान नहीं है। वे आलसी हैं, लोग उन्हें पीड़ा देते हैं, तो उसका उन्हें दुःख भी होता है परन्तु उसका प्रतिकार करने की न उनमें हिम्मत है, न स्फूर्ति, क्योंकि प्रतिकार करने के लिये लिये भी तो थोड़ी मेहनत और तकलीफ उठानी पड़ती है न? उतनी भी वे नहीं उठाते हैं, इसलिये कष्ट सहते रहते हैं, और कभी-कभी अपने बचाव के लिये वेदांत का भी उपयोग करते हैं। जिन्होंने सारी दुनिया का कब्जा करने की महत्वाकांक्षा रखी है, वे तो पाप के ठेकेदार हैं ही, परन्तु जो उसका प्रतिकार नहीं करते हैं, लूटे जाते हैं, दुःख झेलते रहते हैं और सिर्फ गालियाँ देते हैं, वे भी पाप में पड़े हैं। इस तरह से दोनों बाजू पाप हो रहा है। पाप के भार से पृथ्वी कम्पित हो रही है। वास्तव में दुनिया को आज संख्या का भार नहीं, बल्कि पाप का भार हुआ है। पाप के भार से पृथ्वी तंग आ गई है, दीन बन गई है।"

> साहित्य आत्मा का भोजन है और साहित्यकारों को सोचना है कि वह आज आर्थिक विकास के ध्यान के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास को भी ला सकें और हमारे किये जा रहे प्रयासों में एक तरह का सन्तुलन रख सकें। —जवाहरलाल नेहरू

युग की मांग : अणुव्रत

[श्री शान्तानन्द साहित्य विशारद]

वर्तमान युग में समस्त विश्व के सामने मानव के नैतिक-पुनरुत्थान की ही एक महत्वपूर्ण समस्या है। इस समस्या को सुलझाने के लिए कई महत्त्वपूर्ण प्रयत्न भी हुए हैं। भोगवृत्ति, विलासिता, संग्रह-बुद्धि, और स्वार्थ-परता के कारण यह समस्या अधिक जटिल ही होती जा रही है। विश्व में कहीं भी शांति एवं तृप्ति का वातावरण नहीं है। समस्त विश्व आज यही चाहता है कि जल्दी से जल्दी शान्ति एवं सर्वहित का वातावरण पैदा हो जाय। लेकिन केवल चाहनेमात्र से शान्ति या समरसता उत्पन्न नहीं हो सकती। उसके लिए ठोस प्रयत्न चाहिए। व्यक्ति ही अपने भाग्य का विधाता है। सतत् प्रयत्न, कर्तव्य-निष्ठा एवं सच्ची साधना के द्वारा व्यक्ति ही अपनी इच्छा पूर्ण कर सकता है। वर्तमान युग की जटिल समस्या का हल भी व्यक्ति के प्रयत्न से ही हो सकता है। व्यक्ति ही समाज का प्रतिबिंब या प्रतिनिधि है। व्यक्ति-सुधार के लिए कानून, बाहुबल या अस्त्रबल व्यर्थ सिद्ध हो चुका है। शान्तिपूर्ण वातावरण के निर्माण के लिए व्यक्ति का चरित्र-निर्माण आवश्यक हो गया है।

वर्तमान युग में राष्ट्र व समाज की भौतिक उन्नति के लिए विज्ञान के सहारे वैज्ञानिकों ने अनेक योजनाएँ बनाई हैं। जनता और प्रभुत्व भी इन योजनाओं को सफल बनाने के लिए धनबल व बाहुबल के द्वारा सतत प्रयत्नशील हैं अस्तु, केवल भौतिक उन्नति से ही व्यक्ति या राष्ट्र की सर्वाङ्गपूर्ण उन्नति नहीं हो सकती। राष्ट्र की सर्वाङ्गपूर्ण उन्नति के लिए व्यक्ति-व्यक्ति में एक प्रभावशाली, क्रान्तिकारी रचनात्मक प्रवृत्ति की जरूरत है। राष्ट्र की कोटि-कोटि जनता में नैतिक जागरण एवं हृदय-मंथन की आवश्यकता है। स्वार्थ-बुद्धि तथा संग्रह-वृत्ति को छोड़कर समरसता एवं परहित भावना जागृत होना जरूरी है। अतृप्ति एवं अशान्ति को दूर करने के लिए भी आज एक महान् योजना की जरूरत है। नैतिक-जागरण एवं नैतिक-जीवन-निर्माण का कार्य भी योजनाबद्ध सुसंगठित रूप से एक उच्च आदर्श को सामने रखकर चलाना कल्याणकारी मार्ग है। वर्तमान युग में संगठन एवं सह-अस्तित्व के प्रति जनता की तीव्र रुचि है। युगकी माँग के अनुसार योजना कार्यान्वित हो जाय तो जनता का पूर्ण सहयोग निस्सन्देह प्राप्त हो सकेगा। आत्म-शान्ति अन्तरात्मा से ही उद्भूत होनी चाहिए। समरसता या सह-अस्तित्व की भावना भी अन्तःकरण से ही उद्भूत होती है। बाहरी शान्ति वास्तविक शान्ति नहीं हो सकती। मानव के प्रति मानव के हृदय में सहिष्णुता व समता जागृत करने का साधन भी आत्मानुराग ही हो सकता है। विश्व-प्रेम व विश्वमैत्री से ही विश्व-भ्रातृत्व पैदा हो सकता है। वर्तमान युग में आचार्य विनोबा का भूदान व सम्पत्तिदान यज्ञ इसका सफल प्रयोग है। परन्तु व्यक्ति के जीवन-विकास की सर्वोच्च साधना के लिए "भूदान" अधूरा है। अतः नवीन विचारधारा तथा विश्वात्म-भावना को जाग्रत करनेवाली आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक निर्माण की भावशाली योजना राष्ट्रों के सामने होना नितांत आवश्यक है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्ति, सहिष्णुता, समानता एवं समरसता पैदा करने की योजना ही युग की माँग है।

मानव स्वभाव हिंसा-प्रधान नहीं। हिंसा से मानव का हृदय कभी तृप्त नहीं होता। हिंसा से हिंसावृत्ति घटती नहीं, बढ़ती है। मानव का स्वभाव अहिंसा-प्रधान है। अहिंसा के सामने मानव का हृदय पिघल जाता है। अहिंसा अजातशत्रु है। अहिंसा में ही शान्ति निहित है। अहिंसा के बिना शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अतः वर्तमान युगके लिए सच्ची अहिंसा की जरूरत है, शास्त्रों की, पुस्तकों की या भाषणों की अहिंसा नहीं मानव-मानव में स्नेह पैदा करनेवाली, जीव जीव में मैत्री पैदा करनेवाली, चराचर के प्रति प्रेम पैदा करनेवाली अहिंसा की जरूरत है। अहिंसा-प्रधान योजना से ही आज की जटिल समस्या सुलझाई जा सकती है।

ऐसी सर्वोदयी व अहिंसा-प्रधान योजना के रूप में अणुव्रत योजना को विश्व मानने के लिये तैयार होगा? इस योजना का प्रयोग सार्वजनिक एवं प्रभुत्व के व्यवहारों में हो सकेगा? इसका उत्तर व्यक्ति-व्यक्ति ही दे सकता है। इस योजना के प्रति विश्व के महान् विचारकों एवं शान्ति-प्रिय जनता का ध्यान आकर्षित करना जरूरी है।

यह एक क्रियाशील, रचनात्मक योजना हो सकती है: ऐसा मेरा विश्वास है।

> भारत भूगोल के क्षेत्र का वर्णन नहीं है, बल्कि भारत एक सजीव आत्मा है। भारत यह प्रतिपादित करता है कि संसार भौतिक शास्त्र और रसायन शास्त्र के नियमों से ही संचालित नहीं होता, बल्कि सार्वभौमिकता के ऊंचे सिद्धान्तों पर टिका है।
>
> —डा० राधाकृष्णन

रोको अपने हाथ अरे !

—श्री केदार शुक्ल 'केशु'

[*आज वैज्ञानिक जगत में जहाँ एक ओर नाशक यंत्रों के निर्माण हो रहे हैं वहाँ कुछ ऐसे घातक प्रयोग भी हो रहे हैं जिनसे यद्यपि मनुष्य के शरीर का क्षय नहीं होगा परन्तु जीवन के उस माधुर्य का लोप हो जायेगा जो अभी तक उसे सुन्दर और श्रेष्ठ बनाये है। अमेरिका के कुछ वैज्ञानिक उपयुक्त वातावरण की व्यवस्था कर प्रयोगशाला में भ्रूण पोषण करने तथा शिशु उत्पादन करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसमें उन्हें आंशिक सफलता भी मिल चुकी है। आगे आनेवाली सदियों में इन्हीं कृत्रिम प्रयोगों से बच्चे पैदा किये जायेंगे तथा नारी प्रसव कष्ट से पूर्णतः मुक्त होगी। इससे ममता का लोप हो जायेगा और ममता का लोप जीवन में तिमिर भर देगा। यह मनुष्यता की सबसे बड़ी मौत होगी। भविष्य के अधः पतन की कल्पना से भीत होकर मेरे अन्तर की ममता वैज्ञानिकों के आगे आंचल फैलाकर निम्न पंक्तियों में बोल रही है। —लेखक*]

बहुत हो गया अब अपने निष्ठुर हाथों को रोको
ज्ञान-पिपासा के पंखों को थोड़ा धीमे करलो
इस उड़ान को मर्यादित कर बढ़ो नहीं तुम आगे
गुह्य तथ्य कुछ गुह्य रखो, जो जीमें आये करलो।

मैं माना हूँ, आज बहुत कुछ कहने तुमसे आई,
सुनकर खबर रुलानेवाली, हृदयं कंपानेवाली—
भ्रूण कांच की शीशी में रख अपनी सूक्ष बूझते
खोज रहे हो मानव उत्पादन की नई प्रणाली।

तुमने नाशक यंत्र बनाये खोजी विषमय गैसें,
प्रगति प्रगति कह ज्ञान-ज्ञान जो किया बहुत काफी है
फूलों की मुस्कान जलाकर, हरियाली दल-दल कर
मन को नहीं किन्तु तन को जो दिया बहुत काफी है।

यह प्रयोग जो आज कर रहे इसका फल घातक है
एटम से भी ज्यादा, पिछली सब खोजों से ज्यादा
शेष हृदय की स्नेह-रश्मियाँ मिल जायेंगी तम में
और तिमिरमय तन होगा पिछले रोजों से ज्यादा।

शिशु जन्मेंगे नहीं पेट से, स्तन में दूध न होगा
ममता मिट जायेगी, नारी में क्षय होगी माता
यौवन और रूप होगा, वासना असीमित होगी
किन्तु न होगा आंचल कोई सुमधुर लोरी गाता।

शिशु के गिरने पर कोई भी नयन न भर आयेंगे,
किलकारी सुन हाथ न कोई लेने अकुलायेंगे,
विजय और उन्नति पर कोई हृदय न पुलकित होगा,
नहीं मृत्यु पर नयन किसी के आंसू बरसायेंगे।

प्यार न होगा ऐसा जो तरु जैसा छाया देगा
पाप-पुण्य को, तम-प्रकाश को, अच्छे और बुरे को,
नाता कोई अमर अकलुषित या निरपेक्ष न होगा
गीत न होगा जो कि करेगा सुरमय बेसुरे को।

बोलो, बोलो, तब क्या होगा जड़ता और तिमिर में,
घृणा-द्वेष के पंकिल दलदल पग-पग भरे न होंगे?
मनुज-चेतना बुद्धि सर्पिणी से नित दंशित होगी,
कटुता के उद्वेग विषैले रग-रग भरे न होंगे?

सूरज चमकेगा फिर भी अंधियाला होगा भू पर
चांद गीत गायेगा फिर भी छायेगा सूनापन।
झर-झर फूल खिलेंगे, होगा लुप्त रूप का वैभव।
मृगनयनी होंगी लेकिन होंगे न कहीं भोलेमन।

रोको अपने हाथ अरे। तुम और न कलुष बढ़ाओ
ममता का विनाश कर नारी की गुरुता मत छीनो
जो पूजा के योग्य, मानवी पूजाओं से ऊँचा।
आँचल के स्वर्गिक प्रकाश की चिर प्रभुता मत छीनो।

प्रसव कष्ट है कष्ट, किन्तु फिर भी सबसे प्यारा है
सहज इसे सहती आई है नारी आदि काल से।
जो फलवान, अभीप्सित सुन्दर वर देनेवाला है
भार वही कहलाया है श्रमहारी आदि काल से।

तुमने दूध पिया है, पीकर इतने बड़े हुए हो,
ज्ञानी बनकर सब माया-मोहों के वस्त्र जलाये
आज दूध का आंचल जला न नग्न करो माता को
करो न वह जो रक्त सने हाथों से करते आये।

यह स्वर मेरा नहीं, किन्तु यह स्वर है मौन सत्य का
जो शाश्वत शिव है, सुन्दर है, उर से मुखरित होता
बहुत शान्त है, बहुत धीर है, और बहुत प्रलयंकर,
रुको, आज वह अनुनय कर नयनों से विचलित होता।

आश मोर पंखी, ममत्व बादल सा झरनेवाला
पूनम का मधुप्लावित यौवन, मेरे भीतर देखो
आओ ! आओ ! मेरी गोदी में झटपट तुम आओ।
बन्द करो सारे प्रयोग, वे परखनली सब फेंको।

[१ सितम्बर, १६५६

गहनों पर इतना मोह क्यों ?

[श्री प्यारचन्द महता साहित्यरत्न]

शृङ्गार और सौन्दर्य वढ़ाने में आभूषण को एक मुख्य अंग माना गया है। स्त्री-पुरुष के शारीरिक शृंगार के अतिरिक्त साहित्य में भी अलंकार-आभूषण ही माना गया है। अलंकारों से ही काव्य की सुन्दरता वढ़ती है। काव्य प्रेमी रसास्वादन कर आनन्द-विभोर हो जाते हैं। इसी प्रकार पुरुष व स्त्री में सौन्दर्य वढ़ाने के लिये आभूषणों का प्रचलन हुआ है।

साधारण दिनों की अपेक्षा उत्सव के मौके पर नाना प्रकार से आभूषणों का प्रदर्शन किया जाता है। राजा महाराजाओं की शानदार सवारियों को जाने दीजिये। साधारण गृहस्थ के यहाँ ही विवाहके अवसरपर कितना शृङ्गार किया जाता है। सवारी के लिये घोड़े तक को नाना प्रकार के चान्दी और कहीं २ सोने तक के जेवर पहनाये जाते हैं।

वालक जन्मते ही ननिहाल और घनिष्ठ संबंधियों के यहाँ से कड़े-हँसली उपहार में आते हैं। वह कुछ बड़ा होने भी नहीं पाता कि उसके हाथ और पैरों में तथा गले में ये आभूषण पहना दिये जाते हैं। कुछ वड़े होने पर उसके कानों में मोती पहनाने के लिये कान छेद दिये जाते हैं। संस्कारों की पंक्ति में कर्ण छेदन का भी एक स्थान है। वालिका के लिये तो कुछ वड़ी होने पर नाक भी छिदाना अनिवार्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त कानोंके ऊपरी भाग में भी तीन तीन छेद कराये जाते हैं। इस प्रकार गहनों के मोह से अंगोमें विकृति भी की जाती है।

वालिका की सगाई होते ही कई प्रकार के गहनों की मांग वढ़ जाती है। जो वालिका सगाई होने के पूर्व कई वर्षों तक विना गहनों के रही थी और उसको इस कमी का कुछ भी मान नहीं हुआ था, सगाई होने के महीने दो महीने पश्चात् ही गहनों के अभाव का कटु अनुभव होने लगता है। "अमुक की सगाई हुए ३ महीने हो गये अभी तक जेवर नहीं आया क्या वात है ?" यही चर्चा चारों ओर फैल जाती है। ससुराल वाले भी परेशान रहते हैं। किसी भी तरह से जायदाद व पुराने गहने वेचकर, कर्ज लेकर या मांगकर भी अपने लड़के की ससुराल जेवर भेजते हैं।

यह आभूषणों का मोह समाज में गहरा फैल गया है और दिन प्रतिदिन वढ़ता ही जा रहा है। किसी के यहाँ शादी या कुछ हो उसमें शामिल होने के लिये जब लोग और विशेषकर स्त्रियाँ जाती हैं, तव गहनों के प्रदर्शन का अवसर मिलता है। ऐसे अवसर पर स्त्रियों और वालक-वालिकाओं के लिये गहने मांगकर भी लाये जाते हैं। जब स्त्रियों को ऐसे अवसर पर आपस में वातचीत करने का अवकाश प्राप्त होता है तो गहनों की ही चर्चा रहती है। अमुक के नया गहना है, अच्छा है। शायद उनकी दृष्टिमें स्त्रियों की योग्यता के सूचक या मापक गहने ही हैं। चाहे स्त्री विल्कुल मूर्खा, आलसी, निरक्षर और कलह-प्रिय ही क्यों न हो, गहनों का शृङ्गार उसके इन दोषों पर पर्दा डाल देता है।

गहनों के प्रति इतना आकर्षण और मोह है कि थोड़ी देर के लिये मांगा हुआ या सौंपा हुआ जेवर भी यदि कोई पहन ले तो उसे अहंकार आही जाता है। वह उस धन को अपना समझने लग जाता है। वह विल्कुल भूल जाता है कि यह जेवर थोड़ी देर के पश्चात् ही मेरे से पृथक होगा और इस पर मेरा विल्कुल अधिकार नहीं है। वल्कि थोड़े समय में भी यदि उसकी कुछ हानि हो जायगी तो उसकी जोखम सिर पर अवश्य है।

उच्च कहलानेवाली मारवाड़ी जाति की स्त्रियों में नानाप्रकार के सोने के गहने नाक, कान गले और हाथों में और पैरों में चान्दी के गहने काफी वजनी पहने जाते हैं। समय २ पर इनमें परिवर्तन होता रहा है फिर भी भार कम नहीं हुआ है। भीलों की स्त्रियों को भी आप देखेंगे वहां सोना नहीं मिलेगा तो पीतल या चान्दी की नाक में नथ-तथा कानों में वालियाँ होगी और पैरों में पीतल की कड़ियों की भरमार होगी जो घुटने तक होगी। हाथों में लाख की चूड़ियाँ होगी जिन पर कांच के टुकड़े जड़े होंगे और पूरा का पूरा हाथ भरा हुआ होगा।

इन गहनों से पहननेवाली स्त्रियों को कितना आनन्द मिलता है, यह तो वही जानती हैं। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि

इन जेवरों के भार से स्त्रियाँ चाहे उच्च जाति की हों या मध्यम तथा पिछड़ी भील जाति की ही क्यों न हों सबको चलने फिरने घूमने और काम करने में पूरी अड़चन रहती है। यद्यपि वर्षों के अभ्यास और रिवाज के कारण उसका विरोध नहीं किया जाता, मगर सुविधा के लिहाज से यह जेवर उनपर भार है। उनके स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। पुष्ट अंग विकृत हो जाते हैं। जगह २ गढ्ढे भी पड़ जाते हैं। मैल जमा रहता है। कवि भूषण ने 'भूषण शिथिल अंग' ठीक ही कहा है।

जेल के अधिकारी अपराधियों को हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ पहनाते हैं किन्तु यह निरपराध स्त्री-समाज हथकड़ियों और बेड़ियों से सदैव लदा रहता है। जेल के अपराधियों की अवधि वर्ष—दो वर्ष होती है किन्तु ये अपराधी आजीवन लदे रहते हैं। अपराधियों की बेड़ियां हल्की होती हैं लेकिन इनकी बेड़ियां भारी होती हैं। कहा जाता है कि गहनों से सौंदर्य बढ़ता है, किन्तु यह बात भी पूर्णतया सत्य नहीं है। एक कवि का कथन है "जिसे खूबी खुदा ने दी नहीं मोहताज जेवर का, कैसा खुशनुमा लगता है चाँद बिन गहना"। इसका अर्थ यह है कि मौलिक प्राकृतिक सौन्दर्य ही सत्य है। बाहरी आभूषणों द्वारा सजाया हुआ कृत्रिम सौन्दर्य निरर्थक व झूठा है। काना काना ही रहेगा चाहे उसे कितना ही जेवर क्यों न पहनाया जाय? जेवर के लिये कान नाक छेदने से तो सौन्दर्य का ह्रास होता है।

गहने का मोह व झूठा सम्मान स्त्री समाज में अधिक होने से ही वह पतियों को नये-नये जेवर बनाने के लिये बाध्य करती रहती है। इन्हीं जेवरों के कारण कभी २ भयंकर दुष्परिणाम हो जाते हैं। सास बहू से जेवर अपनी भावी सेवा कराने के लिये छुपाती है तो बहुएँ उनकी उस्ताद होती हैं वे जेवर सास के पास से चुरा लेती हैं। कहीं २ इसके लिये भयंकर गृह-कलेश हुए हैं व होते रहते हैं। इसके अतिरिक्त जेवरों की रक्षा की भी कठिनाई है।

उदयपुर डिविजन के टाटगढ़ ग्राम में माहेश्वरी समाज में एक लड़के की शादी हुई थी। वरपक्ष के लोग शादी के कार्य से निपट चुके थे। दुल्हन घर आ गई थी। कुछ इने गिने नजदीकी रिश्तेदार रहे थे। उनके गांव के पास ही कुछ दूर दुदालिया नामक महादेवजी का एक तीर्थ स्थान है। वहाँ पर विवाहवालोंका एक दल दर्शनार्थ गया जिसमें ३०-३५ स्त्रियों व उतने ही पुरुष थे। सायंकाल ६ बजेके लगभग वापस आते हुए आगे आगे स्त्रियाँ थीं और पीछे-पीछे पुरुष। रास्ते में डाकुओं का सामना हो गया। स्त्रियों का प्रायः सारा जेवर आसानी से उतरवा लिया गया। पीछे से पुरुषों की पार्टी आई। उनमें से दो एक बहादुरों ने डाकुओं का सामना भी किया। रायफल भी छिनी। किन्तु एक डाकू को कुछ अवसर मिल गया उसके पास रायफल थी उसके फायर करने से ५ पुरुष एक स्त्री घटनास्थल पर ही मारे गये। शेष भाग गये।

इस दुर्घटना के मौलिक कारणों में गहनों का मोह भी एक प्रमुख कारण है। गहनों के समर्थक एक जबरदस्त दलील देते हैं कि थोड़ा २ बचाकर गहने बनाये जा सकते हैं। बचत का यह एक साधन है। बेशक इसमें कुछ तथ्य अवश्य है। किन्तु इसकी मर्यादा होनी चाहिये और इसमें जेवर की उपयोगिता का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये। अनावश्यक और निरुपयोगी गहनों से कोई लाभ नहीं है। जो जेवर पैरों में बेड़ियों का सा काम दे, कार्य में रुकावट पैदा करे, असुविधा हो ऐसा जेवर अनावश्यक है। इसी प्रकार बार बार टूटनेवाला घिसनेवाला जेवर भी निरर्थक है। इसके अतिरिक्त अब बचत के लिये जेवर का साधन भी अनुपयोगी है, गहनों में लगाया हुआ द्रव्य घटता रहता है। इसके बजाय दूसरे कई साधन हैं उनसे काम लीजिये। रकम सेविंग बैंक में जमा करा सकते हैं। नेशनल सेविंग्ज सर्टिफिकेट खरीदे जा सकते हैं। इस तरह से आप अपनी बचत कर सकते हैं। यह द्रव्य सुरक्षित रहकर बढ़ता रहेगा। स्त्रियाँ भी इसका लाभ अच्छी तरह उठा सकती हैं।

अणुव्रत के नियमों में एक नियम स्त्रियों के लिये रखा गया था कि १३ तोला सोने से अधिक का आभूषण धार्मिक स्थान पर नहीं पहनकर जावेगी। इसका उद्देश्य यही है कि स्त्रियों का गहनों के प्रति आकर्षण कम हो। धार्मिक स्थानों पर इस तरह से अधिक जेवर पहनकर आने से परस्पर जो होड़ पैदा होती है वह कम हो, यह त्याग की ओर एक संकेत है, सुधार का पथ है। दहेज आदिका प्रदर्शन नहीं करने व प्रदर्शन में भाग नहीं लेने के नियम का भी यही उद्देश्य है। इससे होड़ प स्पर्द्धा नहीं होती।

सारांश यह है कि जेवर न तो मूलतः सुन्दरता बढ़ाता है और न बचत का उत्तम साधन है। केवल शान दिखाने व आडम्बरमात्र है। इसमें मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। चोर डाकू व ठगों आदि की आँखें लगी रहती हैं। जिससे हर समय जान जोखिम में रहती है। इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि इसमें एकदम आमूल परिवर्तन किया जाय।

प्रसन्नता की बात है कि शिक्षित महिलाओं तथा उनके सम्पर्क में आने वाली बहनों का ध्यान इस ओर गया है। शहरों में यह भार दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है लेकिन देहात की बहनों का अभी मोह कम नहीं हुआ है। क्या यह सुअवसर भी जल्द ही आसकेगा कि उनका मोह भी कम होजाय और वे भी स्वच्छंदता से घूम फिर सकें और कार्य कर सकें वर्तमान अवस्था में जो जेवर बेड़ियों और हथकड़ियों का स्थान ग्रहण किये हुए हैं, वह कम हो जाय और इससे मुक्ति मिल जाय।

—०—
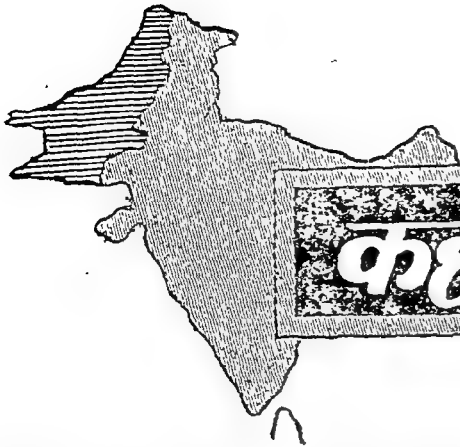
विद्यार्थी अणुव्रत सप्ताह व विचार-विनिमय

● देहली (डाक से) गत ४ अगस्त को प्रारम्भ होनेवाला विद्यार्थी अणुव्रत सप्ताह ११ अगस्त को सानन्द सम्पन्न हुआ। इस सप्ताह में मुनिश्री नगराजजी ने लगभग पाँच हजार छात्रों को उद्बोधन किया और लगभग एक हजार छात्र-छात्राओं ने विद्यार्थी-अणुव्रत ग्रहण किये। राजधानी में इस तरह के सुयोजित कार्यक्रम से सर्वत्र एक नया वातावरण व नई चहल-पहल देखने को मिली। स्थानीय दैनिक पत्र हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स, संसार आदि ने इसके उपलक्ष में मननशील सम्पादकीय भी लिखे।

विद्यार्थी अणुव्रत सप्ताह का कार्यक्रम सम्पन्न होने के बाद, वर्षा का मौसम और स्कूलों में विशेष छुट्टियाँ रहने से कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के साथ विचार-विनिमय का कार्यक्रम इन दिनों चला जिनमें उपराष्ट्रपति सर्वपल्ली डा० राधाकृष्णन, राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, भारत सरकार के रक्षामंत्री डा० कैलाशनाथ काटजू, देहली विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० जी० एस० महाजनी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

आध्यात्मिक समारोह

● सुजानगढ़ (डाक से) १५ अगस्त के पुनीत अवसर पर स्थानीय अणुव्रत समिति की ओर से आध्यात्मिक व सांस्कृतिक समारोह बहुत उत्साह पूर्वक मनाया गया। प्रातः ७॥ बजे यहाँ के ऐतिहासिक खरबूजा कोट व नगरपालिका-भवन पर राष्ट्र-ध्वजोतोलन के पश्चात स्थानीय विद्यालयों के छात्र छात्राओं तथा नागरिकों का एक विशाल जुलूस निकाला गया जो ८॥ बजे श्री शुभकरण दस्साणी के निवास पर पहुंचकर एक सभा के रूप में बदल गया। इस आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक समारोह में प्रधान वक्ता अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी के प्रसिद्ध एवं विद्वान आज्ञानुवर्ती शिष्य मुनिश्री कानमलजी थे। मुनिश्री के मंगल पाठोपरान्त स्थानीय कांग्रेस अध्यक्ष श्री गोपीकृष्ण शास्त्री, श्री कुन्दनलाल जैन, श्री बी० एम० त्रिवेदी प्रधानाध्यापक हाई स्कूल व नगरपालिकाध्यक्ष श्री धनराज, श्री मांगीलाल, प्रसिद्ध समाजसेवी श्री कुन्दनमल सेठिया, श्री सोहनलाल सिंघी श्रीवच्छराज सिंघी व हरिजनोंके प्रतिनिधि श्री मोतीलाल आदि सज्जनों ने स्वतन्त्रता-दिवस के महत्त्व को प्रकट करते हुये अपने २ सुविचार कहे।

मुनिश्री ने देशकी स्वतन्त्रता के लिये शताब्दियों से चलते आरहे संघर्ष का वर्णन करते हुये अनेक वीरों के बलिदान का वर्णन कराया। आपने कहा कि आखिर हिंसा व पशुबल के प्रतीक अस्त्र-शस्त्रों को त्यागकर सत्य और अहिंसा की अमोघ शक्ति द्वारा ही स्वतंत्रता की प्राप्ति हुई है और इसी मंत्र के द्वारा भारत आज भी दूसरे देशोंको प्रभावित कर रहा है। मुनिश्री के अत्यन्त प्रभावोत्पादक भाषणसे श्रोतृवृन्द पर अच्छा प्रभाव पड़ा। अन्तमें महिलाओं की ओर से कतिपय बहिनों ने एक मधुर एवं अत्यन्त प्रभावपूर्ण कविता का पाठ किया। समारोह लगभग तीन घण्टे तक बहुत शान्ति व सुन्दरतापूर्वक चलता रहा। उपस्थिति करीब १५०० थी।

अणुव्रत प्रचार कार्य—

● माधान (डाक से) ९ अगस्त को स्थानीय कस्तूरबा सेविका-शिविर के प्रार्थना भवन में श्री दादा साहेब के सभापतित्व में एक सभा का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के प्रारम्भ में श्री पुरवार गुरुजी द्वारा प्रार्थना और भजन हुए, तद् पश्चात् अणुव्रत-प्रचार समिति जलगांव के मंत्री श्री कासार गुरुजी ने आचार्यश्री तुलसी का परिचय देते हुए अणुव्रत-आन्दोलन के संबन्ध में अपने विचार प्रकट किये।

> "अगर कोई आदमी यह प्रतिज्ञा करले कि वह हर रोज अपनी शक्ति भर काम करेगा और पवित्र तथा उपकारी जीवन विताने में कोई दक्कीका उठा न रखेगा, तो मैं विश्वास करता हूँ कि उसका जीवन अभीक्षण और आशातीत उत्साह से लबरेज हो जायगा।"
>
> —बुकर टी० वाशिंगटन

विशेष सूचनाएँ

शीघ्र ही सरदारशहर में होनेवाले अणुव्रत समिति से आगामी सप्तम सम्मेलन में भाग लेने के लिये आन्दोलन के उद्देश्यों के अनुरूप कार्य करनेवाली जो संस्थाएं व अणुव्रत समिति की शाखायें केन्द्रीय कार्यालय को पत्र लिखकर पहले स्वीकृतिपत्र प्राप्त कर लेंगी वे अपने दो-दो प्रतिनिधि सम्मेलन के लिये भेज सकेगीं। इससे उन संस्थाओं को तो सहयोग व बल प्राप्त होगा ही केन्द्रीय कार्यालय को भी व्यवस्था करने में सुविधा रहेगी।

आशा है ऐसी संस्थाएं यथाशीघ्र कार्यालय से सम्पर्क स्थापित करेगी।

चर्चा के विषय

सम्मेलन में चर्चा के लिये कुछ विषय इस प्रकार सोचे गये हैं :—

(१) अणुव्रतियों के लिये क्रियात्मक पक्ष की रूपरेखा (२) अणुव्रत आन्दोलन और राष्ट्रीय नियोजन (३) शहरों व ग्रामों के लिये भावी कार्यक्रम (४) विद्यार्थीवर्ग में काम (५) 'अणुव्रत' पत्र का रूप क्या हो ? आदि आदि और अणुव्रत-आन्दोलन की गतिविधियों की चर्चा तो सम्मेलन में होगी ही।

इन चर्चाओं के लिये सम्मेलन के अवसर पर कुछ समय अलग दिया जायगा। सम्मेलन में भाग लेनेवाले भाई-बहन अपनी २ रुचि के अनुसार उपरोक्त चर्चाओं में भाग ले सकेंगे। अतः सब भाई-बहन इस सम्बन्ध में पूर्ण तैयारी के साथ पधारें। उपयुक्त विषयों के अतिरिक्त और भी जिस विषय या प्रश्न का सुझाव हो, केन्द्रीय कार्यालय को लिखें।

सम्मेलन की निश्चित तिथि शीघ्र ही घोषित की जायगी।

मंत्री—केन्द्रीय कार्यालय, कलकत्ता।

अणुव्रत विचार शिविर

सरदारशहर [राजस्थान]

आचार्यश्री तुलसी ने पिछले सात वर्षों की पद-यात्रा द्वारा जिस 'अणुव्रत-आन्दोलन' का दर्शन कराया है, उससे आज सब परिचित हो गये हैं। विशेष रूप से नौजवान इसके व्यापक स्वरूप को समझने के लिए उत्सुक हैं। संयम के प्रति नौजवानों का आकर्षण बढ़ रहा है। वे महसूस कर रहे हैं कि संयम ही जीवन है लेकिन आकर्षण एक चीज है और अनुसरण दूसरी। अनुसरण नहीं हो पा रहा है, उसका एक कारण यह है कि अभी विचार स्पष्ट नहीं हुआ है। जो पुराना है, उसकी विफलता से वे विकल हो उठे हैं लेकिन जो नया है, उसे अच्छी तरह न पकड़ सकने के कारण वे पुराने को छोड़ने का साहस नहीं कर पा रहे हैं। वे राह की खोज में हैं। वे चाहते हैं कि उन्हें अणुव्रत-विचार का स्पष्ट दर्शन हो, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अणुव्रत समिति (केन्द्रीय कार्यालय) की ओर से देश के छात्रों, शिक्षकों तथा दूसरे जिज्ञासु मित्रों के लिए इस साल अक्टूबर में (तारीख बाद में घोषित की जायगी) १५ दिन के लिये 'विचार-शिविर' का आयोजन किया जायेगा जिसमें अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी, अधिकारी मुनिवर एवं कार्यकर्त्तागण आये हुए भाई-बहनों से चर्चा के लिए उपलब्ध होंगे।

हमारी सभी छात्रों, शिक्षकों, कार्यकर्ताओं से निवेदन है वे इस शिविर में सम्मिलित हों और अणुव्रत विचार को प्रत्यक्ष समझें। देश की समस्याओं का मिल-जुलकर समाधान ढूढ़ें और फिर देश के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करें।

शिविर सरदारशहर (बीकानेर, राजस्थान) में होगा। निवास और भोजन का प्रबन्ध अणुव्रत समिति की ओर से रहेगा। जो शिविरार्थी मार्ग-व्यय देने में असमर्थ हैं उनको वह भी दिया जायेगा। अतः जो भाई-बहिन इस शिविर में भाग लेना चाहें, वे केन्द्रीय कार्यालय [३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१] को आवेदनपत्र दें। आवेदनपत्र के साथ नाम, पता, आयु, स्वास्थ्य, श्रम क्षमता और शैक्षणिक योग्यता का उल्लेख होना आवश्यक है।

मंत्री—केन्द्रीय कार्यालय, कलकत्ता

१५ अगस्त ५६ को अणुव्रत-प्रेरणा-समारोह के अवसर पर

आचार्यश्री तुलसी का संदेश

व्रत जीवन का सहज-सिद्ध अनुशासन है या यूं कहूं कि सहज-सिद्ध अनुशासन से ही जीवन में व्रत आता है।

वर्तमान जीवन में अनुशासन की शोचनीय कमी है। विद्यार्थी अनुशासन नहीं मानते, यह जन-प्रवाद है, पर आंख पसार देखिये—अनुशासन मानता कौन है ? अनुशासन मनानेवाले क्या स्वयं अनुशासित हैं ?

बाहरी अनुशासन से काम चलनेवाला नहीं है। आवश्यकता है आन्तरिक अनुशासन के विकास की। वही समाज सुसंस्कृत होता है जिसे बाहरी अनुशासन विशेष न बांधे।

व्रत आत्मा का शासन है। इसे जागृत करने पर बाहरी कानून अपनेआप निष्प्राण हो जाते हैं। अणुव्रत-आन्दोलन के द्वारा हम इसी आन्तरिक विवेक को जगाना चाहते हैं। इसकी अपेक्षा सभी को है—जो क्रियाशील अधिक हैं उन्हें और अधिक है। मेरा निश्चित मत है कि व्रत परम्परा को फिरसे विकसित किये बिना भारतीय आत्मा का सही तेज निखर नहीं सकेगा।

विचार कण

प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक है कि वह आत्म-निष्ठा के साथ अणुव्रतों का पालन करे। उसके रोजमर्रा के जीवन में अणुव्रत आदर्शों की छाप रहनी चाहिये। उसका जीवन औरों के लिये प्रेरणा का हेतु बन सके। उसका मौखिक कथन नहीं, आत्मनिष्ठापूर्वक अणुव्रत-पालन औरों को इस ओर अग्रसर होने की स्फुरणा दे सके—मैं यह चाहता हूं।

व्रत साध्य नहीं हैं। साध्य है—आत्मिक-पवित्रता, जीवन की शुद्धि। व्रत उसके साधन हैं। साधन को अपना कर निश्चिन्त हो जाना उचित नहीं है। वे आगे बढ़ने की प्रेरक पताकायें हैं, गतिरोध के स्तम्भ नहीं।

जिस दया और दान का आडम्बर रचा जा रहा है, दुनिया उसकी भूखी नहीं है। शोषण, अन्याय और अनैतिक प्रवृत्तियों द्वारा करोड़ों का संग्रह कर उसमें से कुछ यश पूर्ति के कामों में खर्च कर देना और अपने आपको महान् दयाशील और धर्मात्मा मान बैठना उस पाप को छिपाने का प्रयास है।

धर्म के नाम पर फैली हुई बुराइयों को आज हमें मिटाना है ध्यान रहे हमारा प्रहार बुराइयों पर हो, बुरों पर नहीं, बुरों के मनको आघात पहुंचे, ऐसा भी क्यों हो? उनमें ऐसा परिवर्तन लाया जाय कि बुरे बुराई की जघन्यता और परिहेयता को समझते हुए स्वयं उससे मुँह मोड़ने को प्रेरित हों।

—आचार्य तुलसी

उपरोक्त सामग्री मैसर्स पवनकुमार कं० लि०, १ रूपचन्दराय स्ट्रीट, कलकत्ता-१ द्वारा सधन्यवाद प्रकाशित।

मानव संस्कृति का निशान

[महात्मा भगवानदीन]

स्वामि-भक्ति में आदमी कुत्ते का क्या मुकाबला कर सकता है? इसी तरह घोड़े का भी आदमी क्या जोड़ है? पर कुत्ता-संस्कृति और घोड़ा-संस्कृति नाम की संस्कृतियां सुनने में नहीं आतीं। मनुष्य में सब जानवरों से और कुत्तों और घोड़ों से भी बढ़कर एक खासियत है। वह यह कि अपने साथियों का ही नहीं, पशु-पक्षियों तक का सुख-दुख जान और समझ सकता है। उसका सुख-दुख देखकर उसके मन के भावों में लहरें उठने लगती हैं। उसका उसके मस्तक पर असर होता है जो मस्तक उसको दूसरों के सुख-दुख में शरीक होने का हुक्म देता है और वह उसके हुक्म पर थोड़ा-बहुत अमल भी करता है। यह हुक्म असल में मस्तक का नहीं होता, अन्तरात्मा का होता है। मस्तक तो अन्तरात्मा के हाथ का औजार है। अब आत्मा जितना संस्कृत यानी मंझा हुआ होगा उतना ही मनोभावों और मस्तक के विचारों में मेल बिठा सकेगा। बस इसी मन-मस्तक के मेल बिठाने का नाम मानव-संस्कृति है। और यह देश और धर्म के नाम से या वंश और नस्ल के नाम से किसी तरह अलग नहीं की जा सकती। आत्मा की मंझाई जब इस हद तक पहुँच जाती है कि वह अपना आत्मा और दूसरों में रहनेवाले आत्मा में कोई भेद ही नहीं कर पाता तब उससे दुनिया की चीज़ों से और अपने तन से बेजा मोह-ममता दूर हो जाती है और उसका रहन-सहन कुछ इस ढंग का हो जाता है कि लोग उसे देवता कहकर पुकारने लगते हैं। अब वह अपनी जरूरत के मुताबिक खाता-पीता-पहनता है और अपनी शक्ति के अनुसार काम करता है। इस तरह से आदमी को लोग साधु कहने लगते हैं। अब दुनिया की कोई चीज़ उसकी नहीं रह जाती। यानी वह सब चीज़ों को सबकी समझता है। ऐसा ही आदमी मानव-संस्कृति का निशान बन जाता है।

उपरोक्त सामग्री मैसर्स सोहनलाल पचीसिया एण्ड को० ९ रॉयल एक्सचेंज प्लेस कलकत्ता-१ द्वारा सधन्यवाद प्रकाशित।

लेखकों से !

प्रत्येक रचना की स्वीकृति अधिक से अधिक १५ दिन में भेजदी जाती है। स्वीकृति के अभाव में रचना अस्वीकृत समझें। पर्याप्त डाक-व्यय के अभाव में अस्वीकृत रचनाएँ वापस न भेजी जा सकेंगी और न ही उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार किया जायगा। —सम्पादक

अणुव्रत-आन्दोलन

लक्ष्य और साधन

१—अणुव्रत-आन्दोलन का लक्ष्य है:—

(क) जाति, वर्ण, देश और धर्म का भेदभाव न रखते हुए मनुष्यमात्र को आत्म-संयम की ओर प्रेरित करना।

(ख) अहिंसा और विश्व-शान्ति की भावना का प्रसार करना।

२—इस लक्ष्य की पूर्ति के साधन-स्वरूप मनुष्य को अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का व्रती बनाना।

३—अणुव्रतों को ग्रहण करनेवाला 'अणुव्रती' कहलायेगा।

४—जीवन-शुद्धि में विश्वास रखनेवाले किसी भी धर्म, दल, जाति, वर्ण और राष्ट्र के स्त्री-पुरुष 'अणुव्रती' हो सकेंगे।

५—अणुव्रती तीन श्रेणियों में विभक्त होंगे—

(क) सब व्रतों को स्वीकार करनेवाला 'अणुव्रती'।

(ख) इसके साथ-साथ विशेष व्रतों को (जो परिशिष्ट संख्या १ में बतलाये गये हैं) स्वीकार करनेवाला 'विशिष्ट अणुव्रती'।

(ग) कम से कम ११ व्रतों को (जो परिशिष्ट संख्या २ में बतलाये गये हैं) स्वीकार करनेवाला 'प्रवेशक अणुव्रती' कहलायेगा।

६—व्रत भंग होने पर अणुव्रती को प्रायश्चित करना होगा।

७—व्रत पालन की दिशा में अणुव्रतियों का मार्ग-दर्शन प्रवर्त्तक करेंगे।

श्री महादेव रामकुमार ५६, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट, कलकत्ता द्वारा उपरोक्त सामग्री सधन्यवाद प्रकाशित
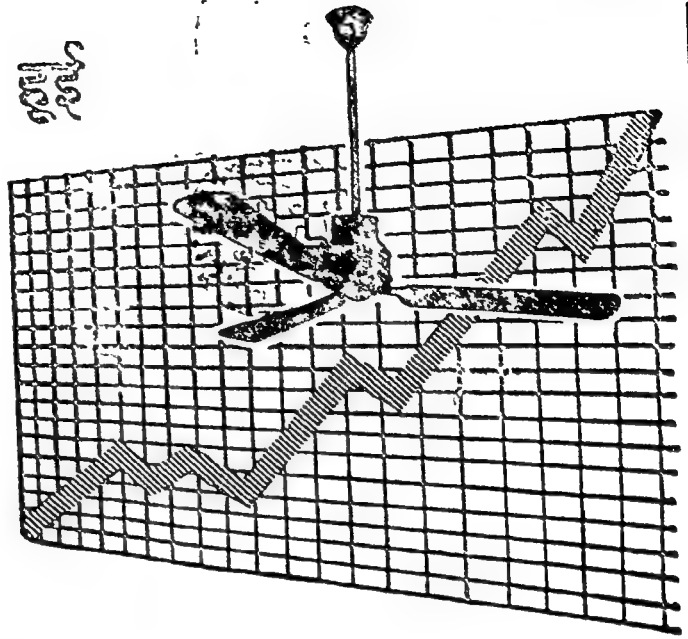
सिर्फ
६
मामूली कारण हैं

१ भारतीय और ब्रिटिश स्टैण्डर्ड स्पेसीफिकेशन से आम तौर पर मेल खाता है।
२ मोटर ठीक से ढका हुआ है।
३ पंखे आवाज नहीं करते जिनके दोनों ओर बाल बियरिंग लगे हुए हैं।
४ पुर्जे बढ़िया माल से बने हुए हैं जो एक दूसरे से एकदम बदले जा सकते हैं।
५ बनाने के हर मौके पर माल की खूबी की परख होती है।
६ केन्द्रीय और राज्य सरकारें माल लेती हैं।

कैसेल्स, आनन्द,
लकी और आजाद पंखे
मैचवेल इलेक्ट्रिकल्स (इण्डिया) लिमिटेड, पोस्ट बाक्स १४३० देहली

KX-58 HIN

श्री प्रतापसिंह वैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित (४००० प्रतियां)

वर्ष १

अङ्क २३

सच्चा मनुष्यत्व या व्यक्तित्व ही वह वस्तु है, जो हम पर प्रभाव डालती है। हमारे कर्म हमारे व्यक्तित्व के बाह्य आविष्कार मात्र हैं। प्रभावी व्यक्तित्व कर्म के रूप से प्रकट होगा ही—कारण के रहते हुए कार्य का आविर्भाव अवश्यम्भावी है।

सम्पूर्ण शिक्षा तथा समस्त अध्ययन का एकमेव उद्देश्य है इस व्यक्तित्व को गढ़ना। लेकिन हम यह न करके केवल बहिरंग पर ही पानी चढ़ाने का सदा प्रयत्न किया करते हैं। जहाँ व्यक्तित्व का ही अभाव है, वहां सिर्फ बहिरंग पर पानी चढ़ाने का प्रयत्न करने से क्या लाभ ? सारी शिक्षा का ध्येय है—मनुष्य का विकास। वह अन्तर्मानव—वह व्यक्तित्व, जो अपना प्रभाव सब पर डालता है, जो अपने संगियों पर जादू सा कर देता है, शक्ति का एक महान् केन्द्र है, और जब यह शक्तिशाली अन्तर्मानव तैयार हो जाता है, तो वह जो चाहे कर सकता है। यह व्यक्तित्व जिस वस्तु पर अपना प्रभाव डालता है, उसी वस्तु को कार्यशील बना देता है।

—स्वामी विवेकानन्द

आपके अणुव्रत के विषय में—

"...अणुव्रत मुझे बहुत पसंद है। ऐसे पत्रों की इस समय हमारे समाज को बहुत आवश्यकता है। मेरी इच्छा है यह पत्र दिनों-दिन विकसित और उन्नत हो।"

—निरंकार देव सेवक वकील, बरेली

"१५ जुलाई का 'अणुव्रत' देखा। आपका शुभ प्रयास सफल हो, हमारी यही कामना है। लेख सभी श्रेष्ठ और पठनीय एवं मननशील हैं। पत्र का काव्य पक्ष कमजोर है।"

—अरविन्द, संस्थापक-अर्चना, कानपुर

"...अणुव्रत का २० वां अंक मिला है। काफी रचनाएं पढ़ गया हूँ। रोज-रोज निखरता जा रहा है यह। एक शर्त, नींव के पत्थर, मानव तो बने रहना ही है, सहायता तथा अपने भाग्य के हम स्वयं निर्माता हैं, शीर्षक रचनाएं बहुत अच्छी लगीं।"

—हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि', देहली

"...अणुव्रत का जुलाई अंक देखा। विचारपूर्ण लेख, भावपूर्ण कविताएं एवं कहानियाँ—प्रत्येक दृष्टि से अंक मुझे स्वस्थ एवं सुन्दर लगा। भाई 'अमरेश' की कविता—'यह सब क्या है?' बड़ी भली लगी।"

—शैवाल सत्यार्थी, लश्कर

"नैतिक प्रयास के लिये आप 'अणुव्रत' निकाल रहे हैं अतः यह प्रयास स्तुत्य है। इतना ही कि संकीर्ण संप्रदायवाद और वर्ग आविप्लव से परे जब तक इस प्रकार के नैतिक आन्दोलन रह सकते हैं, तभी तक उनका मूल्य है। ईश्वर करे आपका पत्र समाज में नैतिक मूल्यों की पुनः स्थापना और सर्वोदय क्रान्ति का नम्र-वाहक बने।"

—नेमिशरण मित्तल, सरदार शहर

"...जितने पत्र मुझे मिल रहे हैं, उनके मैं प्रायः पन्ने पलटता चला जाता हूं पर 'अणुव्रत' के हर पृष्ठ पर नजर रुकनी जाती है, उसे पढ़ते चलना पड़ता है। बधाई।"

—विश्वदेव शर्मा पत्रकार, देहली

"...आजके युग में 'अणुव्रत' जैसे पत्र की अत्यन्त आवश्यकता थी जो इस आचार-भ्रष्टता के युग में फिर से आचारों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करे। आपका उद्देश्य समर्थ है। अस्तु, सफलता का चरण चूमना भी निश्चित है। मैं आपको ऐसा सुन्दर पत्र प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई देता हूँ।"

—राजेन्द्रमोहनशर्मा 'शृङ्ग', मैनपुरी

"...जैसे संध्या होते ही भ्रमर कमल की पँखुड़ियों में बन्द हो जाता है और सूर्य की किरणें ही उसे मुक्त करती हैं। भ्रमर के समान ही आज धर्म की परिस्थिति है। धर्म पर अज्ञान का पर्दा आ गया है। उसको हटाने का स्तुत्य कार्य "अणुव्रत" रूपी सूर्य ही करता दृष्टिगोचर होता है।"

—भीमसेन जैन, कोटाभांजी

इस अंक में

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१
卐
वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १५ सितम्बर, १९५६ [अङ्क २३

अशान्ति का अन्तर-दाह से झुलसा मनुष्य शान्ति के लिये दौड़ रहा है !

स्वतन्त्रता का मूल्य स्वयं सत्य है। नींद की बात तो छोड़िये। जागरण के बाद कोई भी परतंत्र रहना नहीं चाहता। इसीलिये ऋषि, जो द्रष्टा होते हैं, कहते आये हैं—स्वतंत्रता सुख है और परवशता दुख।

स्वतंत्रता का स्वर आज विश्वव्यापी है। इस नव-जागरण के युग में कोई भी देश ऐसा नहीं जो परतंत्रता का समर्थन कर सके। जो पराधीन हैं वे स्वतंत्रता के लिये लड़ रहे हैं। इन थोड़े वर्षों में अनेक राष्ट्र स्वतंत्र हो गये हैं और हो रहे हैं। विजातीय अधिकार के परे होते ही अपना कर्तृत्व चमक उठता है जैसाकि भारत में हुआ है। स्वतंत्रता के बाद भारत का गौरव बढ़ा है परन्तु स्वतंत्र वातावरण में सांस लेनेवाले पूर्ण सुखी हैं—ऐसा तो नहीं है। कहीं अभाव सता रहा है। कहीं भय और कहीं लालसायें। सब उद्विग्न, अशान्त और प्रलय की आशंका से चिन्तित से लगते हैं। यह क्यों ? स्वतंत्रता में अशान्ति क्यों ? इस मोड़ पर रुकना पड़ता है। सच यह है कि लोगों ने नग्न-सत्य को नहीं परखा।

अपने राष्ट्र पर छाई हुई विदेशी सत्ता को तोड़ फेंकने के लिये जो तत्परता है वह अपने पर छाई हुई बुराइयों की सत्ता के प्रति नहीं। स्वतंत्र राष्ट्र रोटी, कपड़े और मकान के अभाव को मिटा सकता है। भोगोपभोग के साधन वहां सुलभ हो सकते हैं किन्तु शारीरिक सुविधाओं के उपरान्त भी मानसिक-शान्ति, जो कि व्यक्ति की अपनी स्वतंत्र निधि है, नहीं होती, उसका दूसरा कौन क्या करे ? स्वतंत्रता की पहली मंजिल पार की है उन्हें आगे की मंजिल भी पार करनी है। पर उसकी चेतना जागे विना वह हो कैसे ? मनुष्य अभी नहीं जान पाया कि उसकी अशान्ति का मूल स्वयं नहीं है, उसकी वृत्तियां और प्रवृत्तियां उसका जीवन जटिल बनाती हैं। यदि इसे जान पाया है तो भी हृदयंगम नहीं कर पाया है। कोई संदेह नहीं, इस क्षेत्र में चेतना उद्बुद्ध नहीं हुई है। विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिये चेतना जागी और लाखों प्राण "स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है"—के नारों पर मर मिटे। अगर बुराई के विरुद्ध भी वैसी चेतना जाग जाती तो लोग कठिनाइयों से मुंह नहीं मोड़ते। नीति-निष्ठ व्यक्तियों का द्वार भी अनीति के लिये खुला है और इसलिये खुला है कि विना मतलब कठिनाई कौन झेले। कार्य जो बुरा है पर सब कर रहे हैं फिर कोई एक नहीं करेगा उससे क्या बनने का है ? आखिर तो सब भले बने तब नीति टिकेगी। इस प्रकार श्रद्धा गिरती है। व्यक्ति गिर जाता है। सुख, सुविधा और विलास का ऐसा नशा छा जाता है कि फिर उठने की बात नजदीक नहीं रहती। सरसरी दृष्टि डालिये—केवल भारत में ही नहीं, लगभग दुनियां के पटपर यही चित्र चल रहा है, आखिर यह कबतक चलेगा ? अशान्तिकी अन्तर-दाह से झुलसा मनुष्य शान्ति के लिये दौड़ रहा है और दौड़ता ही रहेगा। वैयक्तिक स्वतंत्रता के विना वह मिलने की नहीं और यह तत्व समझ में नहीं आ रहा है। ठीक वही दशा है—कस्तूरी की खोज में मृग समूचा जंगल गाह लेता है और वहां मिलती नहीं। सचमुच शान्ति चाहिये तो सबसे पहली अपेक्षा है—उसके अनुकूल श्रद्धा बने और चेतना जागे। प्रत्येक व्यक्ति अपने को स्वतंत्र बनाले तो अशान्ति की सत्ता उखड़ जाय, सारी समस्यायें सुलझ जांय। अणुव्रत भावना का यही आधार है। इससे सीधे रूप में न आर्थिक कठिनाइयां मिटती हैं और न अभाव की समस्यायें सुलझती हैं किन्तु इससे आगे व्यक्ति की जो मौलिक समस्या है सर्व-भाव में भी अशान्ति नहीं मिटती, को यह मिटा सकती है। व्यक्ति का आत्म-बल जाग जाये तो अभाव में भी शान्ति रह सकती है। पहली समस्या यही है कि ऐसी चेतना कैसे जागे ? समाज और राष्ट्र के कर्णधारों को इस यथार्थवादी दृष्टिकोण की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। स्वतंत्रता का दीप व्यक्ति-स्वातंत्र्य की बलि वेदी पर जले तभी शान्ति-रेखायें स्फुट होंगी।

—आचार्य तुलसी

आपके अणुव्रत के विषय में—

"....अणुव्रत मुझे बहुत पसंद है। ऐसे पत्रों की इस समय हमारे समाज को बहुत आवश्यकता है। मेरी इच्छा है यह पत्र दिनों-दिन विकसित और उन्नत हो।"

—निरंकार देव सेवक वकील, बरेली

"१५ जुलाई का 'अणुव्रत' देखा। आपका शुभ प्रयास सफल हो, हमारी यही कामना है। लेख सभी श्रेष्ठ और पठनीय एवं मननशील हैं। पत्र का काव्य पक्ष कमजोर है।"

—अरविन्द, संस्थापक-अर्चना, कानपुर

"....अणुव्रत का २० वां अंक मिला है। काफी रचनाएं पढ़ गया हूँ। रोज-रोज निखरता जा रहा है यह। एक शर्त, नींव के पत्थर, मानव तो बने रहना ही है, सहायता तथा अपने भाग्य के हम स्वयं निर्माता हैं, शीर्षक रचनाएं बहुत अच्छी लगीं।"

—हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि', देहली

"....अणुव्रत का जुलाई अंक देखा। विचारपूर्ण लेख, भावपूर्ण कविताएं एवं कहानियाँ—प्रत्येक दृष्टि से अंक मुझे स्वस्थ एवं सुन्दर लगा। भाई 'अमरेश' की कविता—'यह सब क्या है?' बड़ी भली लगी।"

—शैवाल सत्यार्थी, लश्कर

" नैतिक प्रयास के लिये आप 'अणुव्रत' निकाल रहे हैं अतः यह प्रयास स्तुत्य है। इतना ही कि संकीर्ण संप्रदायवाद और वर्ग आधिपत्य से परे जब तक इस प्रकार के नैतिक आन्दोलन रह सकते हैं, तभी तक उनका मूल्य है। ईश्वर करे आपका पत्र समाज में नैतिक मूल्यों की पुनः स्थापना और सर्वोदय क्रान्ति का नम्र-वाहक बने।"

—नेमिशरण मित्तल, सरदार शहर

"....जितने पत्र मुझे मिल रहे हैं, उनके में प्रायः पन्ने पलटता चला जाता हूं पर 'अणुव्रत' के हर पृष्ठ पर नजर रुकनी जाती है, उसे पढ़ते चलना पड़ता है। बधाई।"

—विश्वदेव शर्मा पत्रकार, देहली

"....आजके युग में 'अणुव्रत' जैसे पत्र की अत्यन्त आवश्यकता थी जो इस आचार-भ्रष्टता के युग में फिर से आचारों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करे। आपका उद्देश्य समर्थ है। अस्तु, सफलता का चरण चूमना भी निश्चित है। मैं आपको ऐसा सुन्दर पत्र प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई देता हूँ।"

—राजेन्द्रमोहनशर्मा 'श्रृङ्ग', मैनपुरी

"....जैसे संध्या होते ही भ्रमर कमल की पंखुड़ियों में बन्द हो जाता है और सूर्य की किरणें ही उसे मुक्त करती हैं। भ्रमर के समान ही आज धर्म की परिस्थिति है। धर्म पर अज्ञान का पर्दा आ गया है। उसको हटाने का स्तुत्य कार्य "अणुव्रत" रूपी सूर्य ही करता दृष्टिगोचर होता है।"

—भीमसेन जैन, कांटाभांजी

इस अंक में

इनके साथ ही विचार-दोहन, खिलती कलियाँ, साहित्य सत्कार, अपने अपने विचार, संतवाणी, आन्दोलन की आवाज आदि स्थायी स्तम्भ

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१

卐

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १५ सितम्बर, १९५६ [अङ्क २२

अशान्ति का अन्तर-दाह से झुलसा मनुष्य शान्ति के लिये दौड़ रहा है !

स्वतन्त्रता का मूल्य स्वयं सत्य है। नींद की बात तो छोड़िये। जागरण के बाद कोई भी परतंत्र रहना नहीं चाहता। इसीलिये ऋषि, जो द्रष्टा होते हैं, कहते आये हैं—स्वतंत्रता सुख है और परवशता दुख।

स्वतंत्रता का स्वर आज विश्वव्यापी है। इस नव-जागरण के युग में कोई भी देश ऐसा नहीं जो परतंत्रता का समर्थन कर सके। जो पराधीन हैं वे स्वतंत्रता के लिये लड़ रहे हैं। इन थोड़े वर्षों में अनेक राष्ट्र स्वतंत्र हो गये हैं और हो रहे हैं। विजातीय अधिकार के परे होते ही अपना कर्तृत्व चमक उठता है जैसाकि भारत में हुआ है। स्वतंत्रता के बाद भारत का गौरव बढ़ा है परन्तु स्वतंत्र वातावरण में सांस लेने-वाले पूर्ण सुखी हैं—ऐसा तो नहीं है। कहीं अभाव सता रहा है। कहीं भय और कहीं लालसायें। सब उद्विग्न, अशान्त और प्रलय की आशंका से चिन्तित से लगते हैं। यह क्यों ? स्वतंत्रता में अशान्ति क्यों ? इस मोड़ पर रुकना पड़ता है। सच यह है कि लोगों ने नग्न-सत्य को नहीं परखा।

क्रान्ति का स्वर

अपने राष्ट्र पर छाई हुई विदेशी सत्ता को तोड़ फेंकने के लिये जो तत्परता है वह अपने पर छाई हुई बुराइयों की सत्ता के प्रति नहीं। स्वतंत्र राष्ट्र रोटी, कपड़े और मकान के अभाव को मिटा सकता है। भोगोपभोग के साधन वहां सुलभ हो सकते हैं किन्तु शारीरिक सुविधाओं के उपरान्त भी मानसिक-शान्ति, जो कि व्यक्ति की अपनी स्वतंत्र निधि है, नहीं होती, उसका दूसरा कौन क्या करे ? स्वतंत्रता की पहली मंजिल पार की है उन्हें आगे की मंजिल भी पार करनी है। पर उसकी चेतना जागे बिना वह हो कैसे ? मनुष्य अभी नहीं जान पाया कि उसकी अशान्ति का मूल स्वयं नहीं है, उसकी वृत्तियां और प्रवृत्तियां उसका जीवन जटिल बनाती हैं। यदि इसे जान पाया है तो भी हृदयंगम नहीं कर पाया है। कोई संदेह नहीं, इस क्षेत्र में चेतना उद्बुद्ध नहीं हुई है। विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिये चेतना जागी और लाखों प्राण "स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है"—के नारों पर मर मिटे। अगर बुराई के विरुद्ध भी वैसी चेतना जाग जाती तो लोग कठिनाइयों से मुंह नहीं मोड़ते। नीति-निष्ठ व्यक्तियों का द्वार भी अनीति के लिये खुला है और इसलिये खुला है कि बिना मतलब कठिनाई कौन झेले। कार्य जो बुरा है पर सब कर रहे हैं फिर कोई एक नहीं करेगा उससे क्या बनने का है ? आखिर तो सब भले बने तब नीति टिकेगी। इस प्रकार श्रद्धा गिरती है। व्यक्ति गिर जाता है। सुख, सुविधा और विलास का ऐसा नशा छा जाता है कि फिर उठने की बात नजदीक नहीं रहती। सरसरी दृष्टि डालिये—केवल भारत में ही नहीं, लगभग दुनियां के पटपर यही चित्र चल रहा है, आखिर यह कबतक चलेगा ? अशान्तिकी अन्तर-दाह से झुलसा मनुष्य शान्ति के लिये दौड़ रहा है और दौड़ता ही रहेगा। वैयक्तिक स्वतंत्रता के बिना वह मिलने की नहीं और यह तत्व समझ में नहीं आ रहा है। ठीक वही दशा है—कस्तूरी की खोज में मृग समूचा जंगल गाह लेता है और वहां मिलती नहीं।

सचमुच शान्ति चाहिये तो सबसे पहली अपेक्षा है—उसके अनुकूल श्रद्धा बने और चेतना जागे। प्रत्येक व्यक्ति अपने को स्वतंत्र बनाले तो अशान्ति की सत्ता उखड़ जाय, सारी समस्यायें सुलझ जांय। अणुव्रत भावना का यही आधार है। इससे सीधे रूप में न आर्थिक कठिनाइयां मिटती हैं और न अभाव की समस्यायें सुलझती हैं किन्तु इससे आगे व्यक्ति की जो मौलिक समस्या है सर्व-भाव में भी अशान्ति नहीं मिटती, को यह मिटा सकती है। व्यक्ति का आत्म-बल जाग जाये तो अभाव में भी शान्ति रह सकती है। पहली समस्या यही है कि ऐसी चेतना कैसे जागे ? समाज और राष्ट्र के कर्णधारों को इस यथार्थवादी दृष्टिकोण की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। स्वतंत्रता का दीप व्यक्ति-स्वातंत्र्य की बलि वेदी पर जले तभी शान्ति-रेखायें स्फुट होंगी।

—आचार्य तुलसी

अनुशासन और विद्यार्थी

गत मास भारत की राजधानी दिल्ली में 'अणुव्रत विद्यार्थी सप्ताह' मनाया गया। सप्ताह का उद्घाटन करते हुए कांग्रेस-अध्यक्ष श्री उच्छंगराय ढेवर ने छात्रों में चारित्रिक विकास और अनुशासन की आवश्यकता पर बल दिया। सच तो यह है कि अनुशासन की समस्या ने आज समस्त देश में एक विकट रूप धारण कर लिया है। सचरित्र जीवन और अनुशासन का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे की कड़ी से जुड़े हुए हैं। जहाँ अनुशासन का अभाव है, वहाँ चारित्रिक दुर्बलताएँ सन्निहित हैं और जहाँ चरित्र की उपेक्षा है वहां अनुशासनहीनता स्वाभाविक है। इसलिये मूल समस्या आज चरित्र की है। दुर्भाग्य से आज हमारे राष्ट्र का न सिर्फ विद्यार्थी वर्ग वरन् समूचा जन-जीवन चारित्रिक उदासीनता का हेतु बना हुआ है और यही अनुशासन की समस्या का मुख्य कारण है। लोक-जीवन की इस दुर्बल धारा के साथ विद्यार्थी वर्ग भी इसका शिकार बनता जा रहा है और फिर शिक्षा-दीक्षा की वर्त्तमान प्रणाली से संस्कार-विमुख हो प्रगति और क्रान्ति के नामपर वह हावी बन बैठा है।

गत दिनों द्विभाषी राज्य के पुनर्गठन पर देश में तोड़-फोड़ और अनुशासनहीनता की जो घटनाएँ हुई, उससे सब आश्चर्यान्वित हो उठे हैं। गुजरात में तो विद्यार्थियों ने कर्फ्यु तक अपने हाथ में ले लिया था। बम्बई के मुख्यमंत्री श्री मोरारजी देसाई अहमदाबाद की जिस सभा में बोलनेवाले थे, वहाँ श्रोताओं को पहुँचने तक नहीं दिया गया। कहीं-कहीं तो विद्यार्थियों का स्वचालित प्रतिबन्ध काम कर रहा था। इससे मोरारजी भाई को अनशन करना पड़ा और आठ दिन के लम्बे प्रयास से जब फिर उनके भाषण का आयोजन किया और जनता ने उन्हें सुनने का आश्वासन दिया तो सभा का कार्यक्रम होते-होते फिर मारकाट और होहल्ले का क्रम चल पड़ा। हो सकता है, अहमदाबाद की इन घटनाओं में बड़ों-बड़ों का स्वार्थ निहित हो और छिपे दर पर्दे स्थानीय राजनीतिज्ञों का भी हाथ हो। लेकिन यह प्रायः देखा गया है कि तोड़-फोड़ की इन घटनाओं में विद्यार्थियों का जोश अग्रगामी रहता है। चाहे वह उकसाये ही क्यों न जाते हों? लेकिन तोड़-फोड़ और ध्वंस का यह रूप विद्यार्थियों के लिये लज्जाजनक ही नहीं वरन् उनके भविष्य के लिये भी खतरनाक है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के प्रयत्नों में छात्रों ने अपने अटूट उत्साह का परिचय दिया है। बापू के मार्गदर्शन में जहाँ हमारे युवक साथियों ने

सम्पादकीय

सत्य-अहिंसा की आन पर गोलियाँ भी खाईं लेकिन पथ-भ्रष्ट नहीं हुए, और जो हुए उसका परिणाम अच्छा भी नहीं हुआ। छात्रों की ध्वंसात्मक नीति से देश को एक बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है और आज भी वह पूरी नहीं हो पा रही है। आजादी के बाद भी जब हमारा हर प्रयत्न सत्य व अहिंसा के आदर्श पर होना चाहिए, वहाँ हम अपने देश में ही और अपने ही देशवासियों से हिंसात्मक प्रतिकार करें, क्या यह हमारी आजादी के इतिहास पर कलंक नहीं है? सोचें! हम किधर जा रहे हैं? हिंसा का मार्ग हमारे पतन का मार्ग है लेकिन आज हम चरित्र और अनुशासन दोनों से पथ-भ्रष्ट हो, अपने ही कारनामों से समाज को कलंकित कर रहे हैं। आवश्यकता है, विद्यार्थी वर्ग अपनी करवट बदले और अपने चारित्रिक बल से देश में अनुशासन की एक नई लहर जागृत करे।

इसी भावना से प्रेरित हो, राजधानी में आयोजित 'विद्यार्थी सप्ताह' का राष्ट्र में सर्वत्र स्वागत हुआ है और देशभर में इसके आयोजन की एक दिशा मिली है। सुप्रसिद्ध हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' व 'नवभारत टाइम्स' ने इसके आयोजन की ओर पाठकों का ध्यान खींचते हुए विद्यार्थियों को 'अणुव्रत' के लिये उद्बोधित किया है। छात्रों में न सिर्फ अनुशासन वरन् उनके चरित्र-निर्माण की एक देशव्यापी समस्या है। देखते-देखते आज छात्र-जीवन में धूम्रपान, मद्यपान व विलास की प्रवृत्ति द्रुत गति से चल पड़ी है। वह अपने भावी सुख की कल्पना भोगवाद के साधनों की ओर टिकाकर करते हैं। इसके लिये किसी को चकमा देना, फिसलाना और बिगाड़ना अपनी शैक्षणिक चतुरता मानते हैं। यह नैतिकता का ह्रास है! 'अणुव्रत-आन्दोलन' इन सब प्रवृत्तियों से विद्यार्थियों को मोड़कर चारित्रिक दृढ़ता का एक अभिनव संदेश देता है। साथ ही तोड़-फोड़ व हिंसात्मक प्रवृत्तियों से विमुख करके उनमें अहिंसात्मक समाज-व्यवस्था की भावना जागृत करता है। प्रसन्नता है कि राष्ट्र के नेतागण और विचारकों का ध्यान अणुव्रत-आन्दोलन के इस पुनीत लक्ष्य की ओर गया है और वह इसका प्रचार प्रसार भी करने लगे हैं।

हमारी विनम्र सम्मति में विद्यार्थियों में अणुव्रत प्रसार के साथ उनमें एक ऐसे संगठन की भी आवश्यकता है जो उनमें चारित्रिक उत्साह के साथ आत्मानुशासन के बीज बो सके। अस्तु, 'अणुव्रत विद्यार्थी सप्ताह' के साथ-साथ देशभर में 'अणुव्रत विद्यार्थी-संघ' का संगठन किया जाना चाहिए और विकेन्द्रित रूप से धीरे-धीरे उसका एक अखिल भारतीय स्तर बनना चाहिए। दुर्भाग्य से अनेक राजनैतिक दल अपनी-अपनी मान्यता की छाप लगाकर विद्यार्थियों की शक्ति का राजनैतिक उपयोग

कर रहे हैं। कुछ तो राजनीति का यह भूत भी छात्रों के चारित्रिक पतन का कारण है। इसके स्थान पर छात्रों का एक शुद्ध नैतिक संगठन बने तो वह छात्रों के जीवन-निर्माण में सहायक होने के साथ देश में अनुशासन की एक क्रान्तिकारी लहर जाग्रत कर सकता है।

छात्र ही हर कार्य और हर प्रवृति में आगे रहते हैं। तोड़-फोड़ और ध्वंसात्मक नीति से दूर कर यदि उनके मन में नैतिक मशाल जलाई जाय तो आज हमारे देश में अनुशासनहीनता की समस्या बहुत शीघ्र हल हो सकती है। अतएव हमारी शक्ति अधिकाधिक छात्रों के जीवन-स्तर को विकसित करने में लगनी चाहिए। छात्रों में काम की कठिन समस्या है। यह आसान नहीं है। अनुशासन की प्रेरणा के लिये अनुशासक को स्वयं अनुशासित होना आवश्यक है। अणुव्रत-आन्दोलन के प्रेरक आचार्य श्री तुलसी के शब्दों में—"विद्यार्थी अनुशासन नहीं मानते, यह जन-प्रवाद है। पर आँख पसार देखिये—अनुशासन मानता कौन है? अनुशासन मानने वाले क्या स्वयं अनुशासित हैं?" इसका समाधान देते हुए आगे उन्होंने आह्वान किया है—

"बाहरी अनुशासन से काम चलनेवाला नहीं है। आवश्यकता है आन्तरिक अनुशासन के विकास की। वही समाज सुसंस्कृत होता है, जिसे बाहरी अनुशासन विशेष न बांधे।"

अनुशासन की वर्तमान समस्या पर आचार्य श्री के उक्त शब्द मार्मिक चोट करते हैं। बुरा भले ही लगे, लेकिन आज कोरे उपदेशों से काम नहीं चलेगा। असाक्षर जनता के समक्ष चाहे चल जाय लेकिन समझ-बूझ रखनेवाले छात्रों के समक्ष तो सर्वथा कठिन है। त्याग और बलिदान का धारा-प्रवाहिक भाषण देने वाले सोचें कि आज वे कितने पानी में है? भोगवाद उनमें किस स्तर पर है? ठीक यही बात अनुशासन को लेकर है। हम अपने स्वार्थ के लिये अनुशासन को भूल जांय और छात्रों को भला बुरा कोसें, यह भी उचित नहीं है। देश में अनुशासन लाने के लिये अनुशासकों, नेताओं, उपदेशकों शिक्षकों, आदि सभी को अनुशासित होना होगा। छात्रों के जीवन में शिक्षकों का अविरल प्रभाव रहता है। उठते, बैठते, काम करते, खाते-पीते हर समय हर प्रवृत्ति वे शिक्षकों से ग्रहण करते हैं। शिक्षक स्वयं धूम्रपान व मद्यपान करें तो छात्रों का क्या दोष है? अस्तु, शिक्षकों के रहन सहन के साथ आजकी शिक्षा-पद्धति में भी परिवर्तन आना आवश्यक है। छात्रों की अनुशासनहीनता में आज की शिक्षा-प्रणाली का भी एक वृहत् प्रभाव है। शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन आये बिना नैतिक अनुशासन की बात सर्वथा असम्भव है। राष्ट्र की आजादी के प्रयत्नों के साथ ही डंके की चोट कहते आये हमारे नेतागण आजादी के १० वें वर्ष तक भी इस शिक्षा-पद्धति को नहीं बदल सके और अब तक शिक्षा-पद्धति को दोष देते जा रहे हैं और छात्रों के जीवन को कोस रहे हैं। यह कैसा अभिनय है? अनुशासन का अभाव तो पहले हमारे इन अनुशासकों के जीवन से ही प्रारम्भ होता है जो कहते हैं, करते नहीं। यह कब तक चलने वाला है? इस स्थिति को बदलने के लिये देश के अनुशासक स्वतः चेतें और छात्रों के भविष्य-निर्माण में सहायक बनें।

क्या ही सुन्दर हो छात्र स्वयं अपने चारित्रिक जीवन की एक रेखा खींचकर अनुशासन के आधार-स्तम्भ बनें और देश में नैतिकता की मशाल जलायें। अणुव्रत आन्दोलन इसी प्रेरणा का प्रतीक है।

● बैरंग बारात

दहेज की भीषण लपटों में कितनी बहनों का जीवन स्वाह हुआ है या हो रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है। इसके कारण परिवारों में जो अशान्ति, द्वेष और कलह ने जन्म लिया है वह भी समाज की एक करुण कहानी बनी हुई है। इसकी भयंकरता को सब समझते हैं और मुँह से कहते भी हैं मगर स्वयं कोई आदर्श पग उठाने की हममें हिम्मत नहीं है। प्रायः कालिज या प्रारम्भिक सामाजिक जीवन में उत्साही और शिक्षित युवक इस प्रथा के विरोध में न जाने कितनी आदर्शवादिता बघारते हैं लेकिन स्वयं के विवाह होने पर संरक्षकों के सामने भीगी-बिल्ली की तरह चुप-चाप उन्हें ही दहेज से घर भरते देखा है। स्वयं कोई साहसपूर्ण कदम उठाये बिना इसकी लपटों से झुलसती समाज-व्यवस्था में किसी प्रकार की शान्ति पैदा हो सकेगी, यह असंभव है। इसके लिये तो खुद छात्र-छात्राओं और युवक-युवतियों को मैदान में आकर अपनी आत्मा की आवाज को बुलन्द करना है! साहस का परिचय देना है!!

पिछले दिनों का समाचार है कि पानीपत में एक विवाह के अवसर पर वरपक्ष ने शगुन आदि का काफी माल-सामान लेने के बाद पाँच हजार रुपये का दहेज और माँगा। इस सम्बन्ध में दोनों पक्षों में बातचीत चल ही रही थी कि वधुको पता चल गया। उसने अपने माता-पिता से जोर देकर कहा कि कोई दहेज न दिया जाय। बारात बिना वधु के वापस लौट आई।

विवाह के समय यदि वर और कन्या दोनों का यह दृष्टकोण रहे कि चाहे कुछ भी हो दहेज लेकर या देकर विवाह नहीं होगा तो यह समस्या स्वमेव बड़ी सरलता से हल हो जाती है। परन्तु इसके लिये आत्म-हीनता की भावना को त्यागकर साहस व विश्वास के भाव जगाने की जरुरत है जिससे संरक्षकों या दहेज के इच्छुकों के दृष्टि-कोणमें परिवर्तन लाया जा सके। अन्य बातों के साथ ही इस दिशा में यदि प्रामाणिकतासे 'विद्यार्थी अणुव्रतों'को पालन किया जाय और उनको व्यवहारिक रूप दिया जाय तो ये छोटे किन्तु महत्वपूर्ण व्रत भी पथ-प्रदर्शक सिद्ध हो सकते हैं।

नैतिकता का मूल प्रेरणा स्रोत

श्री नि कारदेव सेवक एम०ए०

नैतिकता मानव समाज की आज एक विश्वव्यापी समस्या है। संसार जिस कठिन परिस्थिति की उलझन में से गुजर रहा है वह न तो राजनीतिक है, न धार्मिक और न आर्थिक या सामाजिक। वह केवल नैतिक और मनुष्य की अपनी बनाई हुई है। लोग किसी भी मानव समाज में प्रचलित अनैतिकता को धर्म के ह्रास के कारण बताकर मनुष्यों पर धर्म ग्रन्थों का बोझा फिर से लाद देना चाहते हैं। पर जैसे गधे की पीठ पर किताबें लाद देने से वह विद्वान् नहीं हो सकता, उसी प्रकार धर्म ग्रंथों का पाठ नित्य नियम से विधिपूर्वक करने से कोई व्यक्ति नैतिक नहीं बन सकता। धर्मोपदेश और सत्संग को भी कुछ लोग नैतिकता के लिए नितान्त आवश्यक बताते हैं पर इनके प्रभाव के जरा भी शिथिल होने पर मनुष्य का मन फिर अनैतिक आचरण की ओर भाग जाता है। राजनीति को कुछ लोग अनैतिकता के सारे कारणों के लिये दोषी ठहराते हैं। उनका कहना है कि बिना चालाकी छल और असत्य के राजनीति में काम चल ही नहीं सकता। जहाँ भारत के युद्ध में साक्षात् ईश्वर के अवतार कृष्ण भगवान् को भी अश्वत्थामा को मरवाने के लिए मिथ्या का प्रश्रय लेना पड़ा था। अतएव जब तक राजनीति अपने वर्त्तमान स्वरूप में विद्यमान रहेगी, मनुष्य के नैतिक आचरण की समस्या हल हो ही नहीं सकती। वे कहते हैं कि देश की राजनीतिक परिस्थितियों में आमूल परिवर्त्तन की आवश्यकता है, जब तक ऐसा नहीं होता मनुष्य अनैतिकता से बचकर नहीं रह सकता। इसी प्रकार अनेक लोग आर्थिक शोषण पर आधारित मानव समाज के संगठन को अनैतिकता का कारण बताते हैं। उनके अनुसार साम्यवादी और समाजवादी देशों में स्वार्थ और लाभ लोभ लिप्सा न होने के कारण मनुष्य की प्रवृत्ति अनैतिक आचरण की ओर होती ही नहीं। इनके विचार से संसार के सब देशों में साम्यवादी क्रांति की आवश्यकता है जिससे शोषक-शोषित और ऊँच-नीच का भेद भाव ही मिटाकर मनुष्यमात्र को समानता के अधिकार दिलाये जा सकें। लेकिन धर्म, राजनीति और समाज के यह सब ठेकेदार अपने-अपने विचार से आदर्श स्थिति उत्पन्न करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील होते हुए भी जिन कठिनाइयों का अनुभव करते हैं उनके कारण उन्हें कभी कभी बहुत निराशा होती है।

वास्तव में यह सब लोग मनुष्य की नैतिकता का आदि स्रोत धर्म, राजनीति या समाज संगठन को ही मानते हैं। वह यह समझते हैं कि किसी न किसी धार्मिक संस्था, राजनीतिक दल या समाज संगठन के अवलम्ब के बिना हम यह कल्पना ही नहीं कर सकते कि मनुष्य नैतिक आचरण कर सकता है। इसका अर्थ यह है कि बिना किसी आतंक, भय या दबाव के मनुष्य नैतिक कभी हो ही नहीं सकता। इसलिए शक्तिशाली और संगठित भय मनुष्यों के बीच में रहना चाहिये जिससे वह अनैतिक कार्य न करें। यह भय किसी समाज का हो, धर्मका या राज्य का हो। राज्य मनुष्य को शासन में रखने के लिए अनेकानेक रूपों में संगठित और संचालित अनादि काल से होते आए हैं। सेना, पुलिस और गुप्तचर विभागों के ऐसे संगठन बन चुके हैं कि कोई भी अपराध करनेवाला बचकर कहीं जा ही नहीं सकता। इतनी अधिक सेनाएँ, पुलिस तथा अन्य राजकीय विभागों के कर्मचारी काम में जुटे हुए हैं जिससे मनुष्य अनैतिक कार्यों से बचा हुआ शान्तिमय स्वभाव का सीधासादा व्यक्ति बना रह सके। पर अनैतिक कार्यों और अपराधों की संख्या में कहीं भी कमी नहीं है। जितने ही नये-नये उपाय मनुष्य की अनैतिकता को रोकने के लिए राज्यों के शासक वर्गों ने निकाले, उतने ही नये-नये उपाय मनुष्य अनैतिक कार्य और अपराध करने के लिए खोज निकालते गये हैं। इसी प्रकार विभिन्न समाजों के संगठन इसलिए अनादि काल से किये जाते रहे हैं कि मनुष्य स्वभाव से ही नैतिक आचरण करनेवाला बन सके। पर कोई भी सामाजिक संगठन आजतक संसार में स्थायी नहीं हो सका। उसके आधार नियम और रूप सदा परिवर्तित होते चले आए हैं। सामाजिक मर्यादाओं के भय ने मनुष्य को अनैतिक आचरण की ओर जाने से रोका अवश्य है पर कोई भी संगठित समाज आज तक अपने इस कार्य में पूर्णतया सफल नहीं हो पाया। इसी प्रकार धार्मिक संस्थाओं और ईश्वर का भय भी मनुष्य को अनैतिकता से बचाने के लिए अत्यन्त प्राचीन काल से प्रयास करते आए हैं। जो मनुष्य संसार में सेना, पुलिस, राज्य धर्म या समाज किसी का भय नहीं मानते वह भी ईश्वर की अव्यक्त शक्ति में विश्वास करने के कारण अपराध और पापों से बचते आए हैं। पर यदि ईश्वर का भय ही मनुष्य को नैतिक आचरण करनेवाला बना देता तो अनैतिकता आज मानव समाज की सबसे प्रमुख समस्या के रूप में संसार के सामने न आती।

यहाँ स्वभावतया यह प्रश्न उठता है कि फिर वह कौन सी शक्ति या उपाय है जिससे मनुष्य अनैतिक आचरण से बचकर नैतिक आचरण की ओर अग्रसर हो सके। ईश्वर, धर्म, राज्य और सुसंगठित समाज ऐसी एक से एक महान् शक्तियाँ जब मनुष्य को नैतिक बनाने ही नहीं, उसे अपनी अनैतिकता में चिंता जनक अभिवृद्धि करने से न रोक सकीं तो फिर क्या कोई भी ऐसा उपाय नहीं जिससे आज की विश्व-व्यापी मानव समाज की अनैतिकता के निवारण की युक्ति निकाली जा सके। इस प्रश्न पर विचार करने के लिये हमें मनुष्य को केन्द्र में रखकर उसकी दृष्टि से समग्र सृष्टि को देखना पड़ेगा। समस्या के न सुलझ सकने का कारण ही वास्तव में अब तक यह रहा है कि हम समाज, राज्य या धर्म की दृष्टि से मनुष्य को देखते आए हैं। इन दृष्टियों से देखकर हम मनुष्य को भयभीत या आर्तकित तो कर सकते हैं पर उसकी अनैतिक प्रवृत्तियों को समूल नष्ट नहीं कर सकते। मनुष्य को सृष्टि का केन्द्र-बिन्दु मानकर यदि हम देखें तो राज्य, समाज और धर्म का जितना भी ताना-बाना मनुष्य को घेरे-बांधे हैं वह सब उसे स्वतंत्रतापूर्वक नैतिकता की ओर ले जाने के बजाय अनैतिक आचरण की ओर घसीटने वाला है। जिन राज्य, समाज और धर्म को अपनी नैतिकता के मूल प्रेरणा-स्रोत समझकर मनुष्य निश्चिन्त, उदासीन और शिथिल होकर बैठ रहता है, वही वास्तव में उसके अनैतिक आचरण के मूल कारण हैं। मनुष्य यदि इनमें से किसी या किसी भी दूसरी शक्तिपर अपने नैतिक बनने के उत्तरदायित्व को रखने के बजाय स्वयं अपने में आत्म-विश्वास को उत्पन्न करके अपने को हर अनैतिक आचरण के लिये उत्तरदायी अनुभव करने लगे तो अनैतिकता मानव समाज से सर्वथा लोप होते जरा भी देर नहीं लग सकती। मनुष्य के आचरण में इतनी अधिक अनैतिकता तो केवल इसीलिए है कि वह इसके लिये स्वयं अपने आप को उत्तरदायी नहीं समझता। वह उसके लिए सारा दोष अपने राज्य, समाज या धर्म के संगठन पर आरोपित कर स्वयं निश्चिंत हो अलग बैठ सुख की नींद सोता है। इसलिए यदि मानव समाज में बढ़ी-चढ़ी अनैतिकता की समस्या को सचमुच हम हल करना चाहते हैं तो हममें से प्रत्येक मनुष्य को अपने आपको उसके लिए उत्तरदायी समझना पड़ेगा। धर्म, समाज, राष्ट्र या विधि के विधान पर उसके हल करने की सारी जिम्मेवारी छोड़कर हम निश्चिंत हो अलग बैठकर अनचाहे अनायास उसी अनैतिकता के जाल में फँसते चले जायँगे जो आजके विश्व व्यापी मानव समाज की राष्ट्रीय-अन्तराष्ट्रीय संघर्षों, अणु-परमाणु बमों के विस्फोटों आदि से भी कठिन और भयंकर समस्या हमारे लिए बनी हुई है।

—o—

नई जिन्दगी का चंदा मुसकाता है

[श्री श्यामलाल वशिष्ठ एम० ए०]

सोने से मत बहलाओ अब मानवता को,
धरती की दुलहन अपना शीश उठाती है!

धन की सत्ता श्रम के पांवों को चूम रही,
इन्सान आज युग को आवाज लगाता है।
प्राचीन शृङ्खलाओं की काली बदरी से—
अब नई जिन्दगी का चंदा मुसकाता है।

अब दौलत का आकाश धरा पर झुकता है,
खेतों में श्रम की दुलहन गीत सुनाती है।
मानवता जो लुट गई दनुजता के हाथों—
अब धरती के आँगन में फिर मुसकाती है।

हँसती है खेतों में रानी मानवता की,
मिट चला विश्व-युद्धों का जहरीला गुबार।
मेहनत की अमराई से खिलते गीत नये—
शोषण की बदरी हटी गगन से बेशुमार।

चांदी से नहीं खरीदोगे मानवता को,
लम्बे युग से सोया इन्सान जागता है।
अब नहीं रह सकेगा शोषण के बन्धन में—
जागो, मानव अपना अधिकार मांगता है।

अब नहीं उड़ेगा धुँआ गगन में एटम का,
इन राजनीति—चालों से मानव ऊब रहा।
संभलो चमका है सूर्य गगन में पूरब के—
पश्चिम का सूरज आज क्षितिज में डूब रहा।

मिट रही मान्यताएँ-सीमाएँ जीवन की,
दौलत के स्वामी से धरती शरमाती है।
फिर सत्य-अहिंसा के पथपर बढ़ चले चरण—
मेहनत-मानवता को दुनिया अपनाती है।

सभ्यता और विकास का प्रतीक

अहिंसात्मक सिद्धान्त

साहित्याचार्य श्री पीताम्बर शास्त्री

विभिन्न सभ्यता और संस्कृतियों का उत्थान-पतन ही मानव जाति का इतिहास है। मनुष्य ने जिस प्रकार अपने क्रमिक विकास के साथ समाज-रचना की उस काल-क्रम के अनुरूप ही संस्कृतियों की झलक भी प्राप्त होती है। जिस समय धरती पर आदि-मानव का अवतार हुआ होगा उस काल में भी कोई न कोई प्रारम्भिक मानव-सभ्यता अवश्य रही होगी, आदि-मानव भले ही वनों में रहता हो उसकी वन्य-संस्कृति निर्विवाद सिद्ध है, आज का अनुसंधाता उस संस्कृति का अनुमान वन-मानुष की संस्कृति से स्थिर करता है। वन्य जीवन भी अपनी एक अवस्था और विशेषता रखता है। वन्य समाज की व्यवस्थायें, व्यावहारिकतायें, प्रवृत्तियाँ आदि आधुनिक सभ्यता के लिये ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं। उस पर दृष्टि रखकर ही आज का सभ्य मानव स्वयं को विकसित कहता है। सहस्रों वर्ष व्यतीत हो गये, पशु-पक्षियों तथा जलचरों में अभी तक वही स्थिति दृष्टिगोचर होती है। अतः जीव-जगत् में मनुष्य ही ऐसा प्राणवान् था जिसका जीवन आद्योपान्त क्रान्तिमय दिखाई पड़ता है। वह अपनी चेतना के संस्कारों से पाशविक बन्धनों को ढीला करता हुआ वन्य संस्कृति से नागरिकता की ओर बढ़ा। हिंसा, जन्म-मरण की भावना, पशुता और क्रूरताओं से उसे आदर्श जीवन की प्रेरणा मिली होगी। पशुता से पृथक् अपना महत्त्व स्थापित करने के उसके मानसिक विद्रोह ने मानव जीवन की धारा बदल दी। क्रांति की इस प्रक्रिया ने वन्य-चेतना को विकास का पथ बताया। वास्तविक सभ्य कहलाने के पूर्व इस प्रकार मानव को पशु संस्कृति से पृथक् होने में सहस्रों वर्ष लग गये। उसने नगर बसाए, नगरों के कोलाहल का अनुभव किया। समाज और राज्य की व्यवस्था की। इस प्रकार नगरों की अशान्तिसे वनों की ओर, वनों की शून्यता से नगरों की ओर आने-जाने में भी मनुष्य ने उदय, विकास और अस्त के महत्त्वपूर्ण अनुभव किये। यही गति मानव संस्कृति की धारा है। इसके प्रवाह में मानव सभ्यता का क्रमिक इतिहास है जो विगत युगों की सांस्कृतिक गाथायें उपस्थित करता है। इसकी विवेचना करने पर पता चलता है कि मानव जाति का कल्याण सांस्कृतिक शुद्धता से होता है और पतन उच्छेदात्मक प्रवृत्तियों से।

भूतकालीन संस्कृतियों के उत्थान-पतन का इतिहास इस बात का साक्षी है कि राजनीतिक, सामाजिक, जातीय समूहों का घटन-विघटन किसी अदृश्य-शक्ति का विधान नहीं है, अपितु इनके विधानक ऐसे ही दूसरे संगठन हैं। परस्पर स्पर्धा के कारण जो दल दूसरों का विनाश करने में प्रवृत्त हुआ वह स्वयं नष्ट हो गया।

आधुनिक इतिहास में जिस युग को प्रस्तर युग की संज्ञा दी गयी है उसके हजारों वर्ष पहले मिश्र, बेबीलोन, एसीरिया, क्रीट, चालडिया आदि देशों ने सांस्कृतिक अभ्युत्थान में पर्याप्त प्रगति प्राप्त कर ली थी। प्रस्तर युगके पश्चात् अन्य यूरोपीय देशों में भी सांस्कृतिक जागरण हुआ, ऐतिहासिकों ने मिश्र की सभ्यता को ईरान से लगभग ६००० वर्ष प्राचीन माना है। अनुसन्धानों से इस मत को मान लेने के जो आधार और प्रमाण मिले हैं उनके अनुसार ऐतिहासिक निर्णय स्वीकार करते हुये इन ६००० वर्षों को अर्द्ध-सहस्राब्द के क्रम से देखें तो मिश्र, क्रीट, एसीरिया, चाल्डिया, चीन, भारत, मीडिया, ईरान, यूनान, रोम की सभ्यतायें उत्तरोत्तर सामने आती-जाती हैं, इसके अनन्तर उसी अन्तर पर सिकन्दर महान् दिखाई देता है जिसने ज्ञान दुनियां के साम्राज्यों का खाका मिलाकर एकाकार किया, इस हिसाब से ६००० वर्षों का क्रम पूरा हो गया तब ईसा के प्रारम्भ में पश्चिमी दुनियां में रोमन साम्राज्य का उत्कर्ष प्रारम्भ हुआ, उसके पतन के बाद यत्र-तत्र बलशाली राष्ट्रों का पृथक् उदय हुआ। फिर प्रत्येक शताब्दी या अर्द्ध-शताब्दी में यूरोप के राष्ट्रों का मानचित्र सिकुड़ता बिगड़ता नजर आने लगा। अभी विगत ५० वर्षों के अन्दर २ महायुद्ध हुये हैं, उनका प्रभाव भी यूरोप के नक्शे पर ही अधिक पड़ा है, इसके साथ-साथ धार्मिक क्रांतियों ने भी यूरोप की शकल में कम परिवर्तन नहीं किया। एशिया में भी सभी प्रकार के परिवर्तन हुये पर धार्मिक सहनशीलता के आधिक्य के कारण एशिया में यूरोप की अपेक्षा कम रक्तपात हुआ। जो कुछ हुआ वह पश्चिमी संसर्गके कारण हुआ। खानाबदोस जाति के लोग हूण, शक, किरात, यवन आदि सुव्यवस्थित स्थान खोजने के फिराक में ईसा के बाद भी इधर-उधर भटकते रहे। बहुत दिनों तक वे आँधी-तूफान बनकर यूरोप को ही तहस-नहस करने में लगे थे। इष्ट-सिद्ध न होनेपर स्वभावतया वे शान्त एशिया की ओर बढ़े, लूट-खसोट के बावजूद भी वे एशिया की भूमि में न टिक

(शेषांक पृष्ठ २७ पर)

जीवन-व्यवहार स्वयं एक पुस्तक व उपदेश है !

[१०]

[अनैतिकता का प्रभाव समाज-वृक्ष की गहरी जड़ों तक पहुँच चुका है यही कारण है कि हर ओर व हर शाखा में इसका बोलबाला है। 'और यह कैसे मिटे ?' एक ज्वलन्त प्रश्न के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित है। हम स्वयं को संयमित करें और सुधारें; क्योंकि इसी लघु सूत्र में उपरोक्त महान समस्या का हल निहित है। —सम्पादक]

अनैतिकता की महामारी इतनी बढ़ चली है कि विद्यालयों में पढ़नेवाले सुबोध बालक भी उससे आक्रांत हो गये हैं। इस महामारी से उनका बचना जरूरी है। बालक भावी समाज की ईंट हैं, उन पर ही भविष्य का प्रासाद खड़ा होनेवाला है। यदि भावी प्रासाद की मूलभूत ईंट ही जर्जरित एवं खोखली रहेगी तो सुनहरे भविष्य की क्या आशा की जा सकती है ? आज प्रति वर्ष प्राइमरी, हाईस्कूलों तथा कालेजों में सहस्रों विद्यार्थी उत्तीर्ण होने के लिये अवैध प्रयत्न करते हुए पकड़े जाते हैं। कुछ परीक्षा में जाते समय किसी प्रकार छिपा करके संकेत पत्र ले जाते हैं और कुछ वहाँ बैठकर परस्पर नकल करने का प्रयत्न करते हैं। यह बिमारी यहाँ तक भी बढ गई है कि कहीं-कहीं एक छात्र के बदले दूसरा छात्र परीक्षा देने चला जाता है। विद्यार्थियों में और भी नाना रहस्यमय प्रकार इस सम्बन्ध में प्रचलित हो चले हैं। विद्यार्थी जीवन के लिये यह एक कलंक की बात है। इसका प्रतिकार स्वयं विद्यार्थियों द्वारा ही हो, यही एकमात्र रास्ता अब बच पाया है। व्यवस्थापकों की सावधानी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है फिर भी वह विद्यार्थियों की चालाकी से बहुत पीछे हैं।

पिछले वर्ष की घटना है—एक स्कूल के विद्यार्थियों की परीक्षा चल रही थी। इतने में बाहर का एक लड़का निरीक्षक-अध्यापक के पास आया और बोला—मेरा छोटा भाई परीक्षा में बैठा है। शीघ्रतावश वह बिना कुछ खाये-पीये ही चला आया है। उसके लिये मैं यह दूधका ग्लास व कुछ बिस्कुट लाया हूं, बड़ी कृपा होगी यदि आप यह सब उसके पास पहुँचा दें। अध्यापक उदार था, दूध का ग्लास व बिस्कुट अपने हाथ में लेकर उसे देने

के लिये चला। रास्ते में अनायास हाथ से एक मक्खनी बिस्कुट गिर पड़ा। गिरने से दो बिस्कुट अलग-अलग हो गये। दोनों के बीच में एक कागज था जिसे मास्टर ने उठा कर देखा तो उसमें चालू परीक्षा सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर थे। मास्टर बोला—इतने दिन कहा जाता था कि पापका घड़ा फूट जाता है पर यह आज पता चला कि पापका बिस्कुट भी टूट जाता है। अस्तु—आवश्यकता है विद्यार्थी स्वयं अपने आपको सम्भाले और अपनी शुद्ध प्रतिभा का इस प्रकार दुरुपयोग न करें। विद्यार्थी के जीवन में महत्वाकांक्षायें होती हैं। वे सोचते हैं कि मैं एक असाधारण कवि बनूं, एक चिन्तनशील दार्शनिक बनूं, एक अप्रतिम राजनीतिज्ञ बनूं और देशके गौरव को ऊँचा करनेवाला एक वैज्ञानिक बनूं। किन्तु यह सब महत्वाकांक्षायें उक्त प्रकार के बौद्धिक दुरुपयोग से देखते-देखते अस्त हो जाती हैं। ऐसे बालकों का जीवन धौर्त्य और मायाचार से भर जाता है और वे अपने असफल जीवन में इधर उधर भटकते रह जाते हैं। उक्त प्रकार की महत्वाकांक्षाओं के फलित होने में सत्-परिश्रम व बुद्धि का सदुपयोग ही एकमात्र हेतु बन सकता है।

यह एक प्रश्न है—विद्यार्थी जीवन में इस प्रकार की तथा अन्य प्रकार की बुराइयां आ कैसे जाती हैं ? उसके नाना कारण हैं। प्राचीन कालमें विद्यार्थी-समूह नैतिक और चारित्रिक दृष्टि से इतना पवित्र समझा जाता था कि उसको 'ब्रह्मचारी' की संज्ञा से सम्बोधित किया जाता था जिसका अर्थ 'ब्रह्म अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति के लिये अनुष्ठान करने का व्रतधारी' लगाया जाता था। छात्रावस्था केवल शब्द-ज्ञान के लिये ही नहीं होती थी किन्तु उसमें संयमी होकर इस लोक व परलोक के सुधारने की साधना भी की जाती थी। उस समय के विद्यार्थी अधिकांशतया ग्राम और नगर के दूषित वातावरणसे दूर गुरुकुलों में शिक्षा ग्रहण करते थे। शिक्षा के विषय में आज वह व्यवस्था नहीं है। विद्यार्थी अपने घर-मुहल्ले व बाजार-सिनेमा आदि के दूषित वातावरण में पलता है। व्यवस्था के अनुसार वह चार, छै घंटे अध्यापकों के वातावरण में रहता है। शेष समय वह क्या करता है ? उसके लिये कोई जिम्मेदार नहीं। विद्यार्थी माता-पिता और अध्यापक, इन दो संरक्षणों में आवारा बन जाता है। उसके समग्र जीवन के संरक्षक व्यवस्था के अनुसार न माता-पिता रह सकते हैं, न अध्यापक। यह एक असाधारण हेतु है

कि बालकों के मस्तिष्क में भी समाज के चारों ओर के अनैतिक वातावरण से नाना दुर्बुद्धियां घर कर लेती हैं और अपने शिक्षा-विकास के साथ-साथ वंचना विकास भी करते जाते हैं।

समस्या जटिल हो जाती है। वर्तमान वातावरण से बालकों में अनैतिकता आती है और वे ही आगे चलकर समाज के कर्णधार बनते हैं तब वह समाज में भी आ जाती है। अतः इसमें सुधार आवश्यक है। अब सोचना है कि वह कहाँ से शुरू हो? प्राचीनकाल की तरह पढ़ने के लिये बालकों को जंगल में खदेड़ देना भी पर्याप्त समाधान नहीं है। आज की पीढ़ी जिसमें बालकों के अध्यापक, माता-पिता व अन्य सामाजिक-जन आ जाते हैं, वे स्वयं सुधरें, वंचनापूर्ण व्यवहारों से दूर रहें तो बालकों के आचरण स्वस्थ रह सकेंगे।

दूसरा मार्ग है—बालक स्वयं अपने अनुशासक बनें। किसी भी काम के करते समय वे यह सोचें कि मेरे अभिभावक या अध्यापक जन सामने होते तो मैं यह कार्य करता या नहीं, यदि आत्मासे उत्तर मिलता है, नहीं; तो वे उस काम को न करें। इसमें वे आवारा नहीं बनेंगे और गुरुजनों की स्मृति उनका पथ-प्रदर्शन करती रहेगी। अणुव्रती विद्यार्थी इस दिशामें पहल करें, यह अत्यन्त अपेक्षित है।

विद्यार्थियों की दुष्प्रवृत्ति में अध्यापक भी कभी-कभी योगभूत होते देखे जाते हैं, यह तो और भी दुःख की बात है। रिश्वत लेकर किसी की सिफारिश से व अपनी ट्यूशन की लाज बचाने के लिये वे अवैध प्रयत्नों से किसी विद्यार्थी को उत्तीर्ण करने का प्रयत्न करते हैं। अध्यापक जीवन के लिये इससे बढ़ कर और क्या अनैतिकता हो सकती है? जिस अध्यापक के हाथ में देश और समाज की बहुमूल्य सम्पत्ति—विद्यार्थी आता है, उस बालक को अवैध प्रयत्न से उत्तीर्ण करके अध्यापक अपना आत्म-हनन करता है, विद्यार्थी को भविष्य के लिये वंचना का मार्ग बताता है और देश समाज के साथ एक गद्दारी करता है क्योंकि वह देश व समाज की एक बहुमूल्य सम्पत्ति को बिगाड़ता है। बहुत कम आशा है जो बालक एक या दो बार इस प्रकार के सहयोग से उत्तीर्ण हो जाता है वह आगे चल कर परिश्रमशील रह सके व जीवन में कोई सात्विक विकास कर सके।

अणुव्रती अध्यापक का जीवन विद्यार्थियों के लिये स्वयं एक पुस्तक होगा। अध्यापक किसी विशेष उपक्रम से जैसे विद्यार्थियों को वंचना सिखाने में हेतुभूत हो जाता है वैसे ही वह अपने आचरण से भी होता है। अध्यापक धूम्रपान करता है, यह कैसे हो सकता है कि विद्यार्थी उससे बचा रहे। इस प्रकार पाठ्यक्रम की पुस्तकों से भी बढ़कर प्रेरणायें अध्यापकों के जीवन से मिलती हैं। अपेक्षा तो ऐसी लगती है—बालकों के जीवन को नैतिक व आदर्श बनाने के लिये हर एक अध्यापक अणुव्रती हो या उस प्रकार के आदर्श पथ पर चलनेवाला ही हो।

पत्रकार व नैतिकता

पत्र पत्रिकायें आज के मनुष्य की मानसिक खुराक हैं। बिछौने से उठते ही शारीरिक खुराक चाय और मानसिक खुराक समाचारपत्र होते हैं प्राचीनकाल में प्रातःकाल का समय शास्त्र-स्वाध्याय के लिये होता था। उठते ही नित्य कर्मसे निवृत्त होकर लोग गीता, रामायण आदि का वाचन करते, स्वाध्याय चिन्तन करते व सूत्र वाचन करते। धीरे-धीरे आज वह स्थान पत्र पत्रिकायें ले रही हैं। पत्रकारों को यह भूलना नहीं है—जन-जन के जीवन में सत् प्रेरणायें देने का दायित्व जो शास्त्रीय साहित्य का था वह अब पत्र पत्रिकाओं का होने लगा है। पत्रकारों को यह सोचना है क्या वे अपने पत्र पत्रिकाओं को उसके उपयुक्त बना सकेंगे? पत्रकारों का काम केवल यहीं समाप्त नहीं हो जाता कि कल दिन में होनेवाली चोरी, डकैती, हत्या, अग्निकांड व अन्यान्य दुर्घटनायें प्रातःकाल होते ही वे जनता के सामने रख सकें। ये बातें तो जनता के सामने न भी आयें तो कोई बृहत् क्षति होनेवाली नहीं है। आज जनता को आवश्यकता है—नैतिक पाथेय की।

पत्रकारिता-एक व्यवसाय

सभी सामाजिक पहलुओं में अनैतिकता हो और पत्रकारिता इससे अछूती रह सके, यह कैसे सम्भव था। आदर्श की छाया में अनादर्श सर्वत्र चलता ही है। जहाँ एक ओर देश में आदर्शवादी पत्रकार अपने पत्रों का स्तर क्रमशः ऊंचा बनाते हुए जन-व्यवहार को उच्च बनाने में प्रयत्नशील हैं, वहाँ ऐसे भी पत्रकार हैं जिन्होंने पत्रकारिता को केवल व्यवसाय बना लिया है। जन-रुचि को कैसे सात्विकता की ओर ले जाना है, इसकी उन्हें चिन्ता नहीं, उन्हें चिन्ता है अच्छी बुरी जो जन-रुचि है उसका पोषण करते हुये अपने व्यवसाय को बढ़ाने की। व्यवसाय बढ़ाने की बुद्धि भी यहाँ तक आगे बढ़ गई है कि दो समाजों को लड़ा देना, अश्लील विचार-सामग्री एवं विज्ञापन देना, अप्रमाणित व अल्प प्रमाणित समाचारों को शनैः शनैः पूर्ण बनाके किन्हीं बड़े आदमियों से धन ऐंठना आदि धर्म तो सहज होने लगे हैं।

ऐसे लोग कहा करते हैं—ऐसा किये बिना हम लोग अपने पत्रों को चला ही नहीं सकते, यह तो पत्रकारिता व्यवसाय की कुशलता है। उन्हें यह सोचना चाहिये कि उस प्रकार की नीति पर आधारित पत्र यदि नहीं भी चलेंगे तो देश व समाज की कोई हानि होने वाली नहीं है। पत्रकारिता को यदि व्यवसाय

मौत के कण..............

[आचार्यश्री सर्वे]

[वह समय अब एकदम करीब आ चुका है जबकि सत्ताधीशों द्वारा हाँके जानेवाले वैज्ञानिकों की इन संहार-क्रियाओं को थोड़ा बहुत 'रक्त-पात' खेल चुकने के तुरन्त बाद ही प्रतिक्रिया-स्वरूप सिर उठानेवाली आध्यात्म-शक्ति (प्राणः शक्ति) की कैद में पड़कर सदूर पूर्व की प्राचीनतम अवतार-शोध साधना में नियुक्त होना पड़ेगा ।]

अणु-मरीचिका की मोहान्ध दौड़ ने वैज्ञानिक-विश्व को उस 'वध्य-शिला' पर ला-पटका है जहाँ लाल-लाल खूनी बादल से बरसनेवाले मौत के कणों का अम्बार लगा है।

उधर पश्चिम के अनुकरण पर हम भी सोचने लगे हैं कि प्रगति का दौर वही है जो 'प्रलय की भूमिका' से आरम्भ होकर आणविक मृत्यु में समाप्त होता हो। जड़वादी दृष्टिकोण की इस निर्ममता ने हमारी बुद्धि का शोषण कर लिया है। हम यह सीधी-सी बात नहीं सोच पाते कि जब-जब प्रगति के लिये यन्त्र-शक्ति (शैतानी ताकत) का दामन थामा गया तब-तब घोर अशान्ति, पतन, युद्ध और हिंसा का ताण्डव हुआ है। इतिहास इस बात का साक्षी है। जो कर्म हम आज करते हैं कल वही हमारा भाग्य कहलाता है। उसे टालने की शक्ति तब किसी ईश्वर वा शैतान नाम की ताकत में भी नहीं होती।

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'

भी माना जाय तो उसका अर्थ यह तो नहीं है कि अनैतिकता के आधार पर ही चलाया जाय। व्यवसाय नाना प्रकार के हैं पर अर्थोपार्जन के हेय तरीके तो किसी व्यापार में क्षम्य नहीं हैं। अणुव्रती पत्रकार किसी भी स्थिति में स्वार्थ, लोभ व द्वेपवश भ्रमोत्पादक व मिथ्या संवाद, लेख व टिप्पणी प्रकाशित न करे। —क्रमशः

जिस विज्ञान ने सत्य की अनासक्त शोध का विषय बनकर, अंध-विश्वासों की अँधेरी घाटी में आहत होकर घिसटती हुई मानवता को सहारा दे प्रकाश के शिखर तक पहुंचाया —वही आज, आदमी की अहंकारमयी सत्ता-लोलुपता-वश वहिर्मुख हो, सन्तुलन-हेतु उस पर मौत बरसाने के परीक्षण कर रहा है। रेडियो एक्टिव कणों की शक्ल में इन्सान की हैवानियत अपनी ही 'मृग-मरीचिका' वश उसकी लहलहाती जीवन-कृषि पर बरसना चाहती है। दूसरी ओर, बापू की अहिंसा-रश्मियों से युक्त विनोबा सन्त का सर्वोदय-अभियान, महर्षि वशिष्ठ के 'ब्रह्म-दण्ड' की भाँति शान्ति एवं दृढ़तापूर्वक 'अपने धर्म' में स्थिर रहते हुए पूंजीवादी प्रदर्शनाधिकारिणी आसुरी सत्ता के विकेन्द्रीकरण की भूमिका तैयार कर रहा है— मानव को शान्ति, सृजन, श्रम व ब्रह्मचर्य के मार्ग से नए-युग की ओर ले जाने के लिये— यह चित्र का दूसरा पहलू है।

ऊपर से भिन्न प्रतीत होते हुए भी उक्त दोनों संक्रमण मूल अन्तर-चेतना ही के उच्चतर लक्ष्य में आवद्ध अपने-अपने ढंग के निराले प्रकाशन हैं। इन्हें देखकर मोहान्ध होने व भय से संत्रस्त हो अपना 'सन्तुलन' खोने की कोई उपादेयता नजर नहीं आ रही है। तो फिर मैं, क्यों विज्ञान को अन्तर्मुख होने की प्रेरणा करता हूँ और क्यों, मानवता चीख उठी है—यह सब हृदय-दौर्बल्य नहीं तो और क्या है? मैं सोच रहा हूँ कि यह सब क्या गोलमाल है? कौनसी अज्ञात शक्ति है जो यह सब ऊपरी विचित्र विरोधाभास रचाकर प्राणियों को संशय में डाल रही है—यह जानते-बूझते भी कि 'संशयात्मा विनश्यति' तो कहीं उसका कोई सुपुप्त उद्देश्य अब 'सृजन' से थककर बैठ जाने का तो नहीं, क्या इसे महा-प्रलय का संकेत तो हमें नहीं मान लेना चाहिये किन्तु...

वस्तुतः यह कुहासा बहुत जल्द दूर होने को है। क्योंकि यह स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि वह समय अब एकदम करीब आ-चुका है जब सत्ताधीशों द्वारा हाँके जानेवाले वैज्ञानिकों की इन संहार क्रियाओं को थोड़ा बहुत 'रक्त-पात' खेल चुकने के तुरन्त बाद ही प्रतिक्रिया स्वरूप सिर उठानेवाली आध्यात्म-शक्ति (प्राणः शक्ति) की कैद में पड़कर सुदूर पूर्व की प्राचीनतम अवतार-शोध साधना में नियुक्त होना पड़ेगा। यह एक समीचीन स्रोत तैयार हो रहा है उन प्रतिक्रियाओं के पूर्व-निर्दिष्ट विकास हेतु जो सन्तुलन-चक्र की परिधि से अधिक ऊँचे स्तर पर अधिस्थापित 'समन्वय-क्षेत्र' की संयोजिकाएं हैं।

ये मौत के कण, आज जो परिपूर्ण भयानकता में इठला रहे हैं अपनी ही संकीर्णता में खो-जाने को हैं। इनसे मानव के मिथ्या दम्भ के नष्ट होने के अलावा और कुछ होना जाना नहीं। यह अभिशाप अपनी ही हिंसा का अब स्वतः शिकार होने जा रहा है— इस कथन में भावुकता का अंश केवल उतना ही है जितना कि अभिव्यक्ति के लिये उन क्षेत्रों में आवश्यक रहता है क्योंकि मेरी अन्तरात्मा कहती है कि वैज्ञानिकों की बन्दर-घुड़की केवल उन्हीं क्षणों को प्रभावित कर सकती है जिन क्षणों में मनुष्य ईश्वरीय चेतना

की—आध्यात्म चेतना की अपराजेय शक्ति का अविश्वासी हो उठता है।

यह सब समझते हुए भी कि केवल विज्ञान की गुलामी स्वीकार कर लेना ही भयावह है—फिर कोई क्यों विद्रोही हो उठता है वैज्ञानिक आक्रमण के प्रति! क्यों अपने मतिष्क का सन्तुलन खो-बैठता है···इसका एक ही कारण अभी तक विचार सका हूँ वह यह कि पीड़ित मानवता के प्रति तीव्र-अनुरागात्मक सम्बन्ध होने से उसकी रक्षा की चिन्ता में ही उसका मनः सन्तुलन बिखर जाता है—अग्रसर होती हुई दुर्दमनीय दानवता को देखकर। क्योंकि यही मानव की सहज-प्रकृति है कि वह सत्य व अहिंसामूलक 'समवेदना' को सकल चराचर के प्रति अनुभव करे। यदि कुछ लोग ऐसा सचमुच अनुभव नहीं कर पाते तो भय है कि वे अपनी विशुद्ध प्रकृति से पतित होकर किन्हीं स्वार्थ-निहित व्यक्तियों या स्वयं अपनी ही मानसिक-दुर्बलता के फन्दे में जा पड़े हैं। उनकी अवस्था शोचनीय होने से वे क्रोध के नहीं, अपितु दया के पात्र ही अधिक हैं।

विज्ञान को बहिर्मुख बनाने के प्रयत्नों में आबद्ध उक्त प्रकार के दुर्बल व्यक्ति ठहरें और सोचें कि वे पवित्र कोमल-अनुभूतियों को कितना पीछे छोड़ आए हैं। सत्ता और पूँजी की उपज 'अहम्मन्यता' ने उनके हृदय के जीवन-स्रोत को सुखाकर कहीं पत्थर तो नहीं बना डाला है, यह भी उन्हें देखना है। साथ ही वे यह भी न भूलें कि उत्पीड़ित मानवता की आहों में कोबाल्ट की तहों को भी भस्म कर देने की शक्ति है और उन्हें यह भी याद रखना है कि राकेट की अवर्णनीय त्वरा से बढ़ती हुई उनकी तथाकथित भौतिक प्रगति के चरण, आध्यात्म-शक्ति के अतिमानसीकरण द्वारा अवतरित अमोघ जन-शक्ति पुंजसे टकरा कर खण्डशः हो जाने को हैं।

आज यह मोर्चा कोई नया नहीं है। भारत युगों से प्रबल आध्यात्मिक-गौरव का विनम्र अधिष्ठाता रहा है। मेरा निवेदन है कि हम 'अणु' के प्रति अपना मोहाश्रित भय प्रदर्शित करके पश्चिमी राष्ट्रों को और अधिक अभिमानी न बनावें अन्यथा पश्चिम का बढ़ा हुआ घोर अहंकार, उसके भयावह अन्त का कारण होगा जो एक खेदपूर्ण बात होगी—दयालु व धर्म-प्राण भारत के लिये। पश्चिम, अब चेत जाय और अपने मृत्यु-कणों को समय रहते समेट लेवे। क्योंकि अणु-बम में अंगड़ाई लेती हुई भयानक सार्वभौम भौतिक-मृत्यु, अपने निर्माताओं की जल्दबाजी और स्वामियों की मूर्खता पर हँस रही है।

आइये, हम सभी मिल-जुल कर अनासक्त-भाव से पूर्ण-अभीप्सा सहित— शाश्वत प्राणः शक्ति के प्रति समर्पित होते हुए माँ-भगवती की अनन्त कृपा की ओर अपने आपको पवित्र भाव से खोलें।

—o—

लघु कथा—

शैतान की विजय!

[श्री बाबूलाल तिवारी 'नयन']

विश्वस्रष्टा ने मानव को सर्वगुणसंपन्न बनाया। कर्मेंद्रियों के साथ ही उसे ज्ञानेंद्रियाँ भी प्रदान की, जिसमें बुद्धि की प्रधानता रही। मनुष्य ने अपनी कर्मेंद्रियों से अच्छे कार्य करना एवं बुद्धि का सदुपयोग करना प्रारम्भ किया

एक दिन—

शैतान ने वेष बदलकर मनुष्य से कहा—"तुम बड़े बलशाली हो, साथ ही सौभाग्य में भी मुझसे कम नहीं। यदि हो सके तो मुझे भी अपने ही निकट कहीं रहने का स्थान दो। मुझे जीवन दान दो, मैं उम्र भर तुम्हारा गुलाम रहूँगा।"

मनुष्य ने उदारता दर्शाते हुए कहा—"भाई इसमें याचना की कौन सी बात है? मनु के पुत्रों ने सहयोग से ही अपने जीवन का पहला पाठ पढ़ा है! माँगो, तुम्हें मुंह-माँगी मुराद मिलेगी।"

"—तो केवल एक विनती है। मुझे अपना एक हाथ, एक कान, और एक आँख समर्पित कर दो। मेरा पूर्ण विश्वास है कि इससे तुम्हारे कार्यों में कोई बाधा नहीं पड़ेगी" शैतान ने प्रार्थना की।

"तथास्तु"—मनुष्य ने कहा।

और उसी दिन से, मनुष्य ने अच्छे कार्यों के साथ ही बुरे कार्य करने, देखने, सुनने की आदत भी डाल ली। वह मजबूर था, चूँकी वचन दे चुका था।

यही शैतान की विजय थी।

—o—

चारित्र का महत्व

[श्री भोपालचन्द्र भंडारी]

जीवन के इस ऊबड़-खाबड़ एवं बीभत्स पथ को पार करने में यदि कोई सहायक है तो आदर्श चरित्र, मानव को उन्नति के शिखर पर चढ़ाने में यदि कोई सहायक है तो आदर्श चरित्र। इसका विकास मानव का उत्थान है। चरित्र का पतन मानव का पतन है। एक अंग्रेजी में कहावत है:—If you lost your wealth nothing is lost, if you lost your health, some thing is lost, and if you lost your charector, all thing is lost. देखिये इस चरित्र का महत्व। "अगर तुमने अपना चरित्र खो दिया तो सब कुछ खो दिया।" कितना महत्व है इस चरित्र का हमारे जीवन में। इस संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं उन सबकी आधार-शिलायें आदर्श चरित्र है। आज हम महावीर और बुद्ध को प्रातः स्मरणीय समझते हैं तो उनके चारित्रिक उत्थान के कारण। आज हम महात्मा गान्धी को "राष्ट्र पिता" या "बापू" कहकर पुकारते हैं तो उनके आदर्श चरित्र ही के कारण।

मानव की मानवता आदर्श चरित्र में है। व्यक्ति कितना ही प्रभावशाली क्यों न हो, अगर वह चरित्रहीन है तो वह मानव-समाज में सदैव निन्दनीय ही रहेगा। अगर आज कोई समाज में प्रतिष्ठित समझा जाता है तो अपने चरित्र बल पर, अगर कोई जन-समुदाय का नेतृत्व करता है तो अपने चरित्र-बल पर और जो समाज में हेय समझा जाता है तो चरित्रहीनता के कारण।

शिक्षा मानव के चरित्र की निर्मात्री है। बिना शिक्षा के चरित्र-निर्माण असम्भव है और बिना आदर्श चरित्र के आदर्श शिक्षा भी असम्भव है। पर शिक्षा से चरित्र-निर्माण का महान् कार्य तभी हो सकता है जब शिक्षा-पद्धति आदर्श हो। आज की सी शिक्षा-प्रणाली नहीं, जो विद्यार्थियों को चरित्र-निर्माण से कोसों दूर रखती है। जब हम अपने प्राचीन विद्यार्थियों के चरित्र की ओर देखते हैं तो हमें मालूम होगा कि आधुनिक विद्यार्थियों में चरित्र जैसी अमूल्य निधि है ही नहीं। एक दम परिवर्तन! घोर नैतिक पतन! और शिक्षा की चरित्र-हीन विद्यार्थी तैयार करने की निन्दनीय प्रणाली! क्या ही विडम्बना है—इन चरित्रहीन छात्रों और इन शिक्षाध्यक्षों की।

धर्म और चरित्र एक ही चीज के दो नाम हैं। पर आज के इस विज्ञान-युग में मानव धर्म को भूल बैठा है। वह भौतिकता की ओर अग्रसर हो रहा है। उसे धर्म एक आडम्बर लग रहा है। वह भूल गया है कि धर्म मानव जीवन का गौण नहीं बल्कि एक महत्वपूर्ण भाग है। चरित्र में ऐसी ताकत है जो कि भौतिक शक्तियों को बहुत पीछे छोड़ देती है। धर्म आत्मिक सुख प्रदान करता है। पर खेद है कि आज मानव आत्मिक सुख को भूलकर भौतिक सुख की ओर अग्रसर हो रहा है। वह आज वोटों के लिये लाखों रुपये बर्बाद कर देता है, अपने अमूल्य समय का कोई महत्व नहीं समझता, सिर्फ अपने मतों की प्रचुरता के लिये। वह झूठ बोलने और झूठे आश्वासन देने में भी नहीं हिचकिचाता—अपनी सीट असेम्बली में लगाने के लिये। देखिये आज के मानव के नैतिक पतन का नग्न दृश्य! अगर कहीं वह यही समय अपने चरित्र-विकास में लगाये तो अपनी, समाज की और राष्ट्र की अभूतपूर्व सेवा कर सकता है।

प्राचीन भारत स्वर्ण-युग कहा जाता है। आखिर क्या कारण था उसका? एकमात्र कारण था प्राचीन भारतीयों की सच्चरित्रता। जहाँ वे लोग गुप्तदान को महत्व देते थे वहाँ आज छोटे से दान के लिये नगर में ढिंढोरा पीटा जाता है, जहाँ वे अन्याय और चोरी का पैसा लेना हराम समझते थे वहाँ आज दोनों हाथों से जेबें भरी जाती हैं, जहाँ वे व्यापारी "महाजन" कहलाने योग्य थे वे ही आज चोर बाजारी करते शर्म नहीं खाते। आज के व्यापारी कहते हैं कि बिना चोर-बाजारी के हमारा व्यापार ही नहीं चल पाता। कैसी पतन की पराकाष्ठा है! जो देश दूसरों को नैतिकता की शिक्षा देता रहा वही आज नैतिक पतन की चरम सीमा को पहुँचा हुआ है। जिन देशों को इसने सभ्य बनाया वे ही आज इस देश के नैतिक पतन की ओर अंगुली उठाते हैं।

इसके निराकरण के लिये गान्धी जी ने नैतिक उत्थान का आन्दोलन चलाया। राष्ट्रीयता से बढ़कर अन्तर्राष्ट्रीयता का बीज बोया। "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सिद्धान्त पुनर्जीवित किया। सत्य और अहिंसा के प्रयोग दुनियाँ के सामने रखे। दुष्प्रवृत्तियों को निकाल फेंकने के असंख्य प्रयत्न किये। विश्व-शान्ति के लिये जी-जान से नाना प्रकार के उद्योग किये। फलतः लोगों में कुछ नैतिकता जागी और वे उस ओर कुछ बढ़े भी।

चलते फिरते—

मेरी निगाह में

श्री ज्यतिप्रकाश

एक दिन किसी काम के सिलसिले में कचहरी गया। वहां मैंने देखा कि कचहरी के हाते में एक जगह कुछ भीड़ लगी हुई है। कौतूहल के ख्याल से मैं भी वहां चला गया। और देखा कि एक दवाफरोश बड़े जोश से दवाओं के बारे में अपना भाषण जारी किये हुआ था—भाइयों यह मेरा जहर-मोहरा है। इससे सांप के काटे का, बिच्छू के डंक के मारे का सबका इलाज है। यहां तक कि इसकी एक बूटी दुश्मन को पिला दे तो उसका भी सफाया हो जाय। इसकी किमत छः आने। उसके बाद उसने एक चूरण की पुड़िया निकाली, उसके बारे में उसने फर्माया कि यह वह पुड़िया है जिसे खाने से फरहाद को शीरीं मिली थी, मजनू को लैला मिली और इंगलैंड के बादशाह को सिमसन ने मोह लिया था। भाइयों कोई आपसे कितना ही गैर क्यों न हो उसे मिला देने के लिये इसकी पुड़िया काफी है। इसकी भी कीमत छः आने वही छः आने। इसी तरह उसने बात रोग के बारे में, यक्ष्मा के बारे में, पेट के गोले के बारे में, बहुत से रोगों के बारे में, अपनी दवाओं के गुणों का बखान किया और हमारे देखते-ही-देखते दर्जनों दवायें उसकी खपत हो गई।

पता नहीं आज के इस दृश्य ने क्यों मेरे मस्तिष्क में एक हलचल पैदा कर दी। मैं सोचने लगा कि पत्रों में इस तरह के विज्ञापन तो रोज ही पढ़ता हूँ एक है अयोध्या के कोई महात्माजी जिन्होंने किसी जड़ी का विज्ञापन किया था कि पूर्णिमा की रात में इसे सेवन से दमा दूर हो जाता है। मगर इस जड़ी के खाने से मेरी स्त्री का दमा दूर होना तो दूर किनार रहा उल्टे दुगना बढ़ गया। एक रोज मैंने एक विज्ञापन देखा जिसमें लिखा था कि इसके सेवन से मलेरिया बुखार सदा के लिये छूट जाता है। मगर मेरे पड़ोसी का उस दवा के सेवन से मलेरिया तो नहीं गया उल्टे उसके पेट में पील्ही हो गई। ज्यों-ज्यों मैं इस मामले पर सोचता गया मुझे विश्वास हो चला कि इस बाबत शहर और देहात की एक ही हालत है। शहर में किसी और तरह की दवाओं का बोलबाला है तो देहात का भी अपना एक अखाड़ा है।

इस बारे में मुझे अपने देश के पत्रों की याद आने लगी क्या दैनिक क्या साप्ताहिक क्या मासिक, सभी विज्ञापनों के लिये मुंह बाये रहते हैं। खासकर दवाओं के विज्ञापन के लिये। मुझे दुख तो तब हुआ जब मैंने देखा कि देश के बड़े से बड़े विशिष्ट पत्र भी विज्ञापन छापते हैं जिनकी सत्यता का विश्वास उन्हें भी होगा। फिर भला ये पत्र जो सारी जनता में ज्ञान फैलाते हैं कैसे नहीं इस बात को समझ पाते कि उनके पत्रों में निकलनेवाले ऐसे विज्ञापनों से एक ओर तो सैकड़ों हजारों घर बर्बाद हो रहे हैं जबकि दूसरी ओर यही पत्र जनता के सच्चे ज्ञान के प्रतीक और पथ-प्रदर्शक बनते हैं। यह कैसा दुर्भाग्य है। जनता के जीवन से खेलने का हक किसी को भी नहीं दिया जा सकता।

आज प्रत्येक शहर के कोने कोने में अंग्रेजी के बड़े-बड़े दवाखाना खुले हुये मिलेंगे। वहाँ सैकड़ों रोगों की सैकड़ो दवा मिलेगीं। मगर दवाओं की कीमत हर्गिज कम न होगी। एक मामूली मिक्शचर को ही ले ले तो एक छोटी सी शीशी के ही आपको दो ढाइ रुपये से कम न लगेंगें। दूसरी पेटेन्ट दवाओं की बात छोड़ दीजिये। उनमें तरह तरह के इंजेक्शन भी हैं जिनमें दाम दस-पाँच रुपये से लेकर पचीस पचास रुपये तक भी जा सकते हैं। फिर मजा यह है कि अंग्रेजी दवाओं का बोलबाला आज इस स्वतन्त्र देश में भी इतना है कि उनके बगैर देश की जनता का काम चलता ही नहीं, उनके रोग थमते नहीं। बड़े-बड़े डाक्टरों की फीस देते और दवाओं खरीदते खरीदते लोगों की रीढ़ तक हिल गई है फिर भी हर घर में अनेक मरीज आपको मिलेंगे ही। ताज्जुब तो यह है कि जिस सरकार ने खाने के पदार्थों से लेकर अनेक जरूरत पर नियन्त्रण लगा कर उनके मूल्यों को रोक रखा वही सरकार भोजन और कपड़ा के बाद आज हमारे समाज की बनी हुई इस सबसे बड़ी जरूरत के बारे में कैसे चुप रही है? दवा से लेकर दवा के डाक्टरों तक की फीस पहाड़ छू रही है और देश का स्वास्थ्य इन दोनों के बीच झूल रहा है।

जो बड़े-बड़े बोलनेवाले होते हैं और जिनकी आवाजें बहुत दूर तक पहुँचती है उनकी बातों में कुछ मिथ्यापन भी हो सकता है यह बात मैं मानता हूं। मगर उन लाख-लाख मूक जनता की परेशानी और दर्द कैसे नहीं महसूस किये जा रहे हैं, यही तो इस जमाने का एक बड़ा आश्चर्य है?

—०—

दूसरा प्रयत्न आचार्यश्री तुलसी ने "अणुव्रत आन्दोलन" चला कर किया, जिसकी सफलता से भारतीयों में आदर्श चरित्र का निर्माण होगा और वे पुनः अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करेंगे।

आज हमारे स्वतन्त्र भारत को आवश्यकता है सच्चरित्रता, नैतिकता और आध्यात्मिकता की। जब इन गुणों से सम्पन्न नर-रत्न भारत भूमि पर अवतरित होंगे तभी यह देश अपने पूर्व गौरव को प्राप्त कर फूला न समावेगा। उस समय इस देश में न अशिक्षा रहेगी न बेकारी, न चोरी होगी न डाका, न वोटों के लिये धन खर्च करना पड़ेगा न झूठे आश्वासन देने पड़ेंगे और न घूंसखोरी रहेगी न अराजकता। सिर्फ सच्चरित्रता रहेगी। इस सच्चरित्रता से यहाँ के जन-समुदाय में मानवता एवं आध्यात्मिकता के साथ-साथ आत्म-साक्षरता की भावनायें प्रस्फुटित हो उठेंगी।

—०—

उतरो जीवन के प्रांगण में

[श्री कामेश्वरनाथ 'कमल']

हे नव ज्योतित रूप शान्ति के प्रेरक बनकर,
स्वर्ण किरण से उतरो जीवन के प्राँगण में।

ऊषा की पलकों पर
धरकर चरण सुशोभित,
दिव्य दृष्टि से हरो असित,
फैला उज्जवल सित,

मिटे निविड़ घन फैले नव आलोक गगन में।
स्वर्ण किरण से उतरो जीवन के प्राँगण में।

जीवन के दीपक में
भर दो स्नेह अपरिमित,
जले मनुजता शलभ रूप
पर जिसके नित नित,

करो सुरभि संचार हृदय के मृदुल सुमन में।
स्वर्ण किरण से उतरो जीवन के प्राँगण में।

आत्मा का पावन प्रकाश
भरदो अन्तर में,
सत्य अहिंसा का गूँजे
उद्गीत अधर में,

साम्य भाव का रूप भरो नव सृष्टि-सृजन में।
स्वर्ण किरण से उतरो जीवन के प्राँगण में।

आँखों की खिड़की

[श्री रमाकान्त श्रीवास्तव]

तुम पाप छिपाए हो,
लेकिन पापों का मुखर
ज्वार-सा आन्दोलन'
घेरे के बाहर चाह रहा ऐसा आना
कारा रहस्य की कँपती है
लगता जैसे वह ढहती है।

हर नजर
मनुज की, पशु की, जड़ की, जंगम की
जिसमें
कविता, दर्शन, शहादतों के रहस्य
खुलते हैं खुलते आए हैं
तुम्हें घूरती - सी लगती
जैसे कि तुम्हारे पापों का
लेखा - जोखा वह करती है।

संदेह , और भय के मारे
तब आँखें खुद छिप जाती हैं।

इसलिए करो
पापों का अपने प्रायश्चित
मत घेरो अपने को रहस्य के घेरे में
तुम साफ करो अपने दिल के हर कोने को
आँखों की खिड़की खुली रखो
रोशनी - हवा को मुक्त रूप से आने दो।

—:o:—

जागो हे नूतन मन

जागो हे नूतन मन
श्री, सुख, सौरभ, उज्जवलतासे भर दो मानव जीवन!
कर्मोदय हो, लोकोदय हो,
आत्मोदय हो, भाग्योदय हो,
धर्मपन्थ में, प्रगतिपन्थ में,
चेतन में, जड़ में, स्थावर में,
हरो अन्ध आवर्त्तन
महाक्रोड़ में जाग्रति भरने बन आओ आराधन!
शुद्ध हृदय में मुक्त प्रेरणा,
मुक्त हृदय में शुद्ध साधना,
विश्व-प्राण में बन्धु भावना,
प्राण-प्राण में कोटि कामना,
स्फूर्त करो शत २ जन,
पतझड़ में माधव भर लाने बन आओ सावन घन!
जागो हे नूतन मन

[श्री योगेश्वर शर्मा]

जीवन ज्योति

[श्री अर्जुनराव दर्शनकार]

[पुरुषार्थ की चोट सदैव से भाग्य की कठोरता को चूर-चूर करती आई है, आ रही है और आती रहेगी भी। इतिहास इस बात का साक्षी है। अभावों की ठोकरें और संघर्ष के थपेड़े खाते हुए मानवको ऐसी ही जीवन-ज्योतियों ने साहस का प्रकाश प्रदान किया है।
—सम्पादक]

ग्रीष्म ऋतु का दिवाकर अपनी प्रचण्डता से पृथ्वी-निवासियों को तपा रहा था, गर्मी के कारण प्राण सूखे से जा रहे थे। जहाँ देखो बिजली के पंखे चलते दिखाई देते थे, मानो ये पंखे ही उनके कुबेर होनेके प्रतीक हों। जहाँ अमीर घराने के लोग बिजली के पंखों का उपयोग करते वहीं निर्धन घरों के कुछ लोग हाथ के पंखों से ही सन्तुष्ट रहते। सदैव की भांति शान्ति की मूर्ति एवं घर की लक्ष्मी-स्त्री अपने आंचल से ही व्यंजन का आनन्द लिया करती। इन सब ढंगों के अतिरिक्त एक नवीन पंखा आजकल के फैशनेबुल लोगों ने निकाला था, वह अपने दस्ती से व्यंजन का काम लेते और खुश रहते।

मेरे आफिस में यद्यपि दिन भर पंखा चला करता था, परन्तु फिर भी कभी कभी मन उचाट सा लगता था। एक दिन दफ्तर से दोपहर में ही घर आगया। सूर्य ने ज्योंहीं अपना मुंह छिपाया, रजनी अपनी शान्ति लेकर आ धमकी परन्तु साथ २ दिवाकरकी सी गर्मी भी लेकर आई। रात की गर्म लू पर क्रोध आता था, मगर क्रोध किस काम का? गरमी के कारण मैं कुछ परेशान सा हो गया और इसीलिये घूमने निकल पड़ा। मगर प्रश्न था कि कहाँ दिल बहलायें?

निदान सोच विचारकर मैंने सिनेमा जाने का विचार किया। टिकिट मिलने में अभी विलम्ब था। मैं खामोश लाइन में खड़ा था। इसी बीच लगभग ७ वर्षीय एक बालक ने मेरे पैर पकड़ लिये। मैं कुछ समझ न सका, फिर मैंने भिखारी समझकर उसे एक पैसा देना चाहा, परन्तु ज्योंही उसने पैसा लेने से इन्कार किया, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। फटी पुरानी किन्तु स्वच्छ बनियान व चड्डी पहने बालक ने मेरे प्रश्न करने के पूर्व ही उत्तर दिया—मुझे भीख नहीं, काम चाहिए।

'काम चाहिये, मगर मैं क्या काम दे सकता हूं तुझे ?'

उसने एक दृष्टि मेरे जूतों पर डाली और झट से बगल में दबाई हुई पेटी से पालिश की डब्बी निकाल ली।

मेरे जूतों को पालिश की विशेष आवश्यकता नहीं थी फिर भी न जाने मैंने जूते खोल कर उसे पालिश के लिए क्यों दे दिये? और उससे पूछना आरम्भ किया—

इससे कितने पैसे मिल जाते हैं?'

'रोज डेढ़-दो रुपये मिल जाते हैं बावूजी!'

'तुम्हें इतने कम क्यों मिलते हैं? दूसरे लोग तो चार, पाँच रुपये कमा लेते हैं।'

'मैं दिन में पढ़ने भी जाता हूँ बावूजी!'

'दिन में पढ़ने जाते हो!'

'जी हाँ! बावूजी'

'फिर?'

'स्कूल से आने के बाद २-३ घंटे यह काम कर लेता हूँ।'

'तुम्हारे माता-पिता हैं?'

'मैं अपने छोटे भाई और माँ के साथ रहता हूँ।'

'वह क्या काम करती हैं?'

'६० रुपये पगार पर मील में नौकरी करती है।'

'बूट पालिश कबसे करते हो?'

'बावूजी! मैं पहले एक होटल में चाय का काम करता था। मालिक मुझे ५ से १२ तक रात में रखता था और पगार देता था केवल १५ रुपये महीना। इसके अतिरिक्त मैं रात में आकर पढ़ भी नहीं सकता था। इसलिये मैंने खुद ही उसे छोड़कर यह काम आरम्भ किया है।'

'अच्छा, तुम इसी लगन से पढ़ते रहो, एक दिन तुम्हें अवश्य इस परिश्रम का फल मिलेगा।'

इसी समय टिकिट मिलना आरम्भ हुआ और मैं उससे अधिक बात न कर सका। उसने भी अपने कार्य की दुअन्नी ली और चलता बना। मैं सोचता ही रह गया कि हर एक बालक यदि इतनी लगन से पढ़े तो कितना अच्छा हो! देश से अशिक्षा, बेकारी और भिखारीपन स्वयं ही चले जायें। रह रहकर मन में यही विचार उठता कि हजारों बालक जिनके माता-पिता पढ़ाने के लिए लाखों प्रयत्न करते

हैं, तो भी वे बालक नहीं पढ़ते और एक यह बालक है जो……। वाह रे विधाता ! क्या न्याय है तेरा ? जहाँ पढ़ने की इच्छा और रुचि है वहाँ धन नहीं और जहाँ धन है वहाँ पढ़ने की रुचि नहीं।

मैं सिनेमा देखकर घर लौट आया।

× × ×

गरमी का क्रोध समाप्त हुआ। वर्षा आरम्भ हुई। हल्की हल्की फुवार से बड़ा ही आनन्द आता था। इस दृश्य को देखने के लिए लोगों का मन मचलता था। पानी की बूंदें फूलों और पत्तों पर मोती की भांति चमकती दिखाई देतीं। जहाँ पर ये हल्की बूंदें हृदय-मनोरंजन करतीं वहीं पर मूसलाधार वर्षा हृदय-विदारक दृश्य भी उपस्थित कर देती। मिट्टी के बने पुराने मकानों को अपना अस्तित्व समाप्त करना पड़ता। गरीबों के झोंपड़े टपकते और घर में ही नदी और नाले के दृश्य दिखाई देने लगते थे।

इस ऋतु में भी बड़ा आनन्द आता है और एक दिन जबकि हल्की-सी वर्षा हो चुकी थी, आकाश साफ था मैं घूमने के लिए निकल पड़ा और घूमता घामता बगीचे में जा पहुंचा। बगीचे की सुन्दर हरियाली, आकाश के जगमगाते तारे और ठण्डी-ठण्डी हवा, यह सब देखकर ऐसा प्रतीत होता मानों अखिलेश्वर ने मनुष्य के दुःखों का अन्त करने के लिए इन्हें बनाया है।

मैं अभी हरियाली पर आराम ही कर रहा था कि एक बालक ने आकर कहा—'बाबूजी ! गर्म चटपटे चने लोगे ?' मेरे मुंह से एकदम निकल पड़ा—'नहीं चाहिये।'

'बड़े ही चटपटे हैं, मुँह लग जांय तो छूटेंगे नहीं'

मुझे कुछ जानी-पहचानी सी आवाज लगी। मैंने उठकर देखा कि वही बालक आज चने बेच रहा है। मेरा मन न जाने क्यों उसे देखकर पुलकित हो उठा। मैंने पूछा—

'बूट पालिश करनी छोड़ दी तुमने ?'

'बाबूजी, क्या इस ऋतु में भी कोई पालिश करायेगा ?'

'अब तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है ?'

'आप की कृपा से ठीक चल रही है'

'तुम्हारी माताजी और भाई तो कुशल से हैं'

'छोटा भाई भी स्कूल जा रहा है और माँ भी आजकल ज्यादा कार्य कर रही है।'

'वह और क्या कार्य करती है ?'

'भील से आने के बाद वह रात में चरखा कातती है, कागजों के लिफाफे बनाती है। हम लोग भी रात में कुछ देर तक उसका साथ देते हैं और निद्रादेवी के आक्रमण पर साथ छोड़ देते हैं।'

बालक बोल रहा था और उसकी आंखों से अश्रुधारा बह रही थी।

मुझे कुछ खुशी सी हुई कि भारतवर्ष में अभी भी ऐसी देवियाँ हैं जो अपने कर्तव्य का पालन लाखों मुसीबतों में भी करती हैं। धन्य है भारत ! जहाँ की देवियों में सीता का पतिव्रत, मीरा की भक्ति और महारानी लक्ष्मीबाई की वीरता अब भी बाकी है।

मैंने बालक को अपना पता लिखा दिया और कहा—

'तुम्हें जब भी किसी प्रकार की सहायता मुझसे लेनी हो—घर आजाना। मुझे अपना बड़ा भाई ही समझो'।

गद्यगीत—

फिर मैं ही क्यों डरूँ ?

[श्री राजेन्द्रमोहन शर्मा 'भृंग']

रजनी चन्द्रदेव की प्रतीक्षा में मग में पलक बिछाए बैठी थी। तभी संसृति को आलोक और शीतलता प्रदान करनेवाले चन्द्रदेव अवतीर्ण हुए। दोनों का वार्तालाप प्रारम्भ हुआ।

"प्राणनाथ ! कल दैत्य राहु आप पर कुपित होकर प्रहार करेगा। तब कैसे होगा ? पूर्णिमा तो कल है किन्तु मेरा दिल अभी से बैठा जा रहा है"—रजनी ने आकुलतापूर्वक कहा।

"प्रिये ! चिन्ता अपेक्षित नहीं ! अपने उर में धैर्य धारण करो। सुख और दुःख का मिश्रण ही तो जीवन है ! फिर मैं ही विपत्ति से क्यों डरूँ ? मैं सोत्साह राहु की लाई विपत्ति का निराकरण करूँगा, न कि कायरता का आश्रय लूं।" —चन्द्रदेव की संयत वाणी गूँजी।

वे पुनः बोले—"जग का ये नियम है कि प्रियजन के सम्मुख होने पर कोई भी हँसी-खुशी से कंटकों की डगर पर चलने को उद्यत हो जाता है। फिर मैं ही क्यों धैर्य छोड़ूँ ? तुम तो सम्मुख रहोगी ही। एतदर्थ मुझे राहु के अभियान की रंचमात्र भी चिंता नहीं है। समझी तुम !"

और तब वार्तालाप बंद हो गया।

बालक ने सप्रेम नमस्कार किया और चला गया। मैं भी अपने घरके लिए चल पड़ा।

× × ×

शरद् ऋतु के आते ही लोग गरम कपड़े पहनने के लिए उतावले होने लगे। भगवान की कृपा से अमीर लोगों ने गरम कपड़े बना भी लिए, परन्तु किसी ने भी उस मनुष्य की ओर ध्यान नहीं दिया जो दिन-रात दूसरों के लिए कार्य करता है और स्वयं भूखा और नंगा रहता है। कोई अपने ऊलन और सूती कपड़ों में मस्त था तो कोई अपने फटे-पुराने चीथड़ों में ही।

मैं भी ऊलन का एक कोट पहनकर ऑफिस से आने के पश्चात् घूमने निकल पड़ा। घूमता घामता फलों की दूकानों तक पहुँचा। इतने ही में आवाज आई—"सरदी का दुश्मन, एक आने में दो।"

घूमकर देखा तो वही बालक आज जाम बेच रहा है। छोटी सी बंडी में उसका नन्हा सा भाई भी है जो तोतली बोली में अपने बड़े भाई का साथ दे रहा है।

मैं निकट गया। अबकी बार उसने मुझे पहचान लिया और सभ्यतापूर्वक प्रणाम किया।

मैंने छोटे भाई की ओर संकेत कर कहा—'इसे क्यों ले आये?'

'क्या कहूँ बाबूसाहब, बहुत मना किया फिर भी न माना इसलिए साथ लेना आया।'

'बहुत अच्छा किया, मगर यह तो ठंड से काँप रहा है, इसे ज्वर तो नहीं आ रहा है?'

'आज चार दिन से माँ और इसे ज्वर आ रहा है। दवाई के लिए घरमें पैसे नहीं हैं और बाबूजी आपसे तो कोई चीज छिपी नहीं है!'

मुझे कुछ ऐसा लगा मानो मैं पृथ्वी पर एक भार हूँ। जब किसीकी सहायता नहीं कर सकता तो फिर क्या लाभ? मैंने झट से अपनी जेब से १०) निकालकर उसे दिये और दोनों का इलाज करने को कहा। उसने बहुत ही दुवाएं दीं और घर लौट पड़ा।

× × ×

उस दिन के पश्चात् मैंने उस बालक को नहीं देखा। इन्हीं दिनों मेरा तबादला हो गया और इसी प्रकार १८ वर्ष बीत गये। मैं भी उसे भूल गया और शायद वह भी...!

आज मेरे घर में कोहराम मचा हुआ था मेरा सबसे छोटा लड़का बहुत ही बीमार था। शहर के प्रसिद्ध डाक्टरों और वैद्यों से मुझे निराश होना पड़ा था। अचानक इसी बीच एक नवयुवक डाक्टर मेरे घर आये और उन्होंने आश्वासन दिया कि वह मेरे पुत्र को अच्छा कर देंगे। मुझे आशा नहीं थी परन्तु फिर भी मैंने उन्हें इलाज करने को कहा।

भगवान की कृपा और डाक्टर साहब के परिश्रम से मेरा पुत्र स्वस्थ हो गया। मैंने डाक्टर से उनका बिल माँगा। पहले तो वे देरी और टालमटोल करते रहे परन्तु मेरे बार बार पूछने पर १५००) का बिल रख दिया। परन्तु उन्होंने पैसे लेने से इन्कार कर दिया। मैं समझा डाक्टर साहब शायद इनाम चाहते हैं इस कारण मैंने और ५००) रुपये रख दिये। मैं कुछ परेशान हो गया डाक्टर साहब से कारण पूछा। उन्होंने सारे बचपन की 'कहानी कह सुनाई और कहा—उस दिन आपने १०) रुपये देकर मेरी माँ को स्वस्थ किया था, आज मैं यदि आपके बालक को स्वस्थ करूँ तो कोई बड़ी बात नहीं। हाँ, आपका अहसान ही मुझ पर अधिक है। आपके ही धैर्य दिलाने के कारण मैं यह पद पा सका हूं।

एक ही क्षण में १८ वर्ष पूर्व की सारी घटनाएँ सिनेमा की भांति आंखों के सामने आने लगीं। मनमें विचार आया कि बालक की विद्या-धुन कितनी पक्की है! सच है, यदि धैर्य से काम लिया जाय तो हर मुश्किल आसान हो जाती है।

अन्त में मैं यही सोचता रह गया—क्या मेरे देश में रत्नों की कमी है?

मन ने गवाही दी—'नहीं।'

मेरी ओर से एक भव्य पार्टी का आयोजन किया गया। इसलिये नहीं कि मेरा पुत्र स्वस्थ हो गया बल्कि इसलिए कि उस दिन मैंने डाक्टर साहब के नाम पर निःशुल्क प्राइमरी स्कूल की स्थापना की। मिठाई खाने के पश्चात् हम सब लोग अपने घर लौट आये।

जीता जागता उपदेश

[*आचार्य श्री तुलसी*]

विद्यार्थियों का जीवन कोमल है, मृदु है, सरल है। जैसे भाव उसमें अंकित किये जाते हैं, वही उसमें जम जाते हैं, यदि बुरे संस्कारों में विद्यार्थियों को गुजरना पड़ता है तो वे सहसा बुरे बन जाते हैं और यदि अच्छे संस्कार उन्हें मिलते हैं तो वे उनमें ढल जाते हैं। इसलिये मैं पहले अध्यापकों और अभिभावकों से कहूंगा कि विद्यार्थियों के जीवन को बनाने की बहुत बड़ी जिम्मेवारी उनपर है। इस जिम्मेदारी को वे उन्हें किताबों के पाठ रटाकर या उनके बीच मीठी मीठी और ऊँची ऊँची उपदेश की बातें कहकर ही पूरा नहीं कर सकते। उन्हें अपना खुद का जीवन ऊँचा बनाना होगा। वे यह न भूल जायें कि उनके जीवन के कामों की परख छोटे-छोटे बालक बड़ी बारीकी से करते हैं। वे यह नहीं देखते कि अध्यापक या अभिभावक क्या कहते हैं, वे देखते हैं कि ये करते क्या हैं और उसकी नकल भी करते हैं। इसलिये अभिभावक तथा अध्यापक अपने जीवन को सादा तथा हलका बनायें ताकि वे विद्यार्थियों के सामने जीता जागता उपदेश साबित हो सकें। ऐसा करने से ही वे अपनी जिम्मेवारी को पूरा कर सकेंगे।

● *निर्माण का सौन्दर्य*

निर्माण की अनवरत साधना और कठिन परिश्रम की अवहेलना कर निर्मित वस्तु की प्रशंसा करनेवालों को निर्माण के वास्तविक सौन्दर्य का बोध कैसे हो ? इसी प्रश्न का उत्तर श्री आनन्द ने 'वीणा' में प्रकाशित इस गद्यगीत द्वारा प्रस्तुत किया है—

"क्या तुमने कभी पतझड़ के झरते पत्तों में उत्सर्ग की गरिमा और ऋतुराज के स्वागत के उपस्कर की झाँकी देखी है ?

क्या तुमने कभी बैसाख जेठ की दोपहरी में धरती की छाती चीरते हुये कृषक के श्रम-सीकरों में श्रम-देवता की झिलमिलाती ज्योति के दर्शन किये हैं ? कभी तुमने कर्षित खेतों में झुककर विश्वम्भरा के लहराते आँचल को देखा है ?

तुमने कभी टेढ़े-मेढ़े पत्थर पर रखी हुई नुकीली छेनी पर पड़नेवाली सधी हुई चोट में मूर्तिकार की आत्माका पावन संगीत सुना है। उस विद्रूप पाषाण में कभी जीवन की मुस्कान भी देखी है ?

क्या कभी तुमने केतकी-गर्भ से पीत मुख के श्रान्त, क्लान्त, अनमने सौन्दर्य में भोले जीवन को पनपते और किलकते देखा हैं ?

सुहृद ! यदि नहीं देखा तो तुम निर्माण के सौन्दर्य को नहीं देख सकते, तुम निर्मित के ही लोलुप-ग्राहक हो।"

● *प्रजातन्त्र का नेता*

श्री हरिशंकर परसाई ने 'सवेरा' में प्रकाशित अपनी इस लघुकथा में आज के भाषण-भट्ट और बातूनी नेताओं पर जो व्यंग किया है वह कितना हृदयस्पर्शी है—

"एक स्त्री अपने छोटे लड़के को लेकर एक ज्योतिषी के पास गई और पूछा—"महाराज ! इस लड़के का भविष्य बतलाइये।"

ज्योतिषी ने पूछा—माता ! अपने पुत्र के कुछ लक्षण बतला। इसमें तूने क्या विशेष बात देखी ?"

स्त्री बोली—"पंडितजी ! यह लड़का रात में सोते-सोते एकदम चिल्लाने लगता है—जागो-जागो। आगे बढ़ो; आगे बढ़ो ?"

ज्योतिषी ने पूछा "देवी ! जब यह जागो; जागो चिल्लाता है तब खुद तो नहीं जागता ?"

स्त्री ने कहा—"अरे महाराज ! खुद तो पत्थर जैसा सोता रहता है।"

"ठीक है" "ज्योतिषी ने कहा, और जब यह "आगे बढ़ो" "चिल्लाता है तब खुद तो उठ कर नहीं चलता ?"

"नहीं पंडितजी !" स्त्रीने जवाब दिया "यह तो वहीं सोया रहता है, पर बड़े जोर से चिल्लाता है—"आगे बढ़ो' आगे बढ़ो।"

ज्योतिषी ने जरा देर विचार किया और बोले—"देवी ! तेरे पुत्र का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है।"

स्त्रीने उत्सुकता से पूछा,—"पंडितजी ! यह क्या बनेगा ?"

ज्योतिषी ने कहा—"यह किसी प्रजातन्त्र का नेता होगा।"

● *अपराजित मानव !*

जीवन के संघर्षों और निराशा में डूबे हुए मानव को लिये 'शक्ति' में प्रकाशित प्रो० श्री रामचरण महेन्द्र के ये स्फूर्तिदायक विचार प्रकाश-स्तम्भ का कार्य कर रहे हैं—

"जीवन में तुम्हें चहुँओर अन्धकार-प्रतिकूलता, दुःख-क्लेश दिखाई देते हों तो आत्मा के प्रकाश में आने का, आत्मा को जानने और अनुभव करने का प्रयत्न कीजिये। 'तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्यो !" (अथर्ववेद १०-८-४४)। उस आत्मा को जान लेने पर मनुष्य मृत्यु से नहीं डरता। स्मरण रखिये, आप महान शक्तिशाली सर्वगुण-सम्पन्न विशुद्ध आत्मा हैं। आप निर्विकार आत्मा हैं। आप को कोई हरा नहीं सकता। आपकी शक्तियाँ इन्द्र के वज्र से भी अधिक प्रभावशालिनी हैं। आप साहस और बलके अवतार हैं। विश्व के समस्त प्राणियों के सिरमौर हैं। आपको अक्षय सिद्धियाँ प्राप्त हैं इन्हीं का विकास निरन्तर होना चाहिये।"

● *और कर ही क्या रहा था ?*

भक्ति भजन के नाम पर अकर्मण्यता फैलानेवालों के लिये 'नया भारत' में प्रकाशित यह 'संस्मरण कार्य ही पूजा है' का दिव्य शंख-नाद कर रहा है—

"१९१६, लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में शरीक होनेवालों में एक ६० वर्षीय युवक नेता भी थे जो बर्मा की मॉडले जेल में कई वर्ष बिताकर आ रहे थे। वह रोज सुबह ३॥ बजे उठकर ५ बजे तक नित्य-क्रिया स्नान आदि से निवृत्त हो जाते। फिर ३ घण्टे तक चिट्ठी-पत्री करते। उसके बाद ११ तक मुलाकात-भेंट। उनके डेरेपर एक स्वयंसेवक हमेशा मौजूद रहता। ११ बजे के बाद वह अन्दर आया और बोला,—"महाराज ! आपने सुबह से कुछ खाया नहीं है। खाना तैयार है।"

"जी, अब ले आइये।"

स्वयं सेवक दौड़ा-दौड़ा रसोई तक गया, खाना लाया और माननीय नेता के आगे थाली रख दी, जब वह खाना खा रहे थे तो स्वयंसेवकने धीमी आवाज से कहा, "महाराज ! अगर इजाजत दें तो एक सवाल पूछूँ।"

"वाह, जरूर पूछिये।"

"सुबह जबसे आप उठे हैं, मैं यहीं दरवाजे पर ड्यूटी पर रहा। लेकिन मुझे एक चीज खटक रही है" यह कहकर स्वयंसेवक रुक गया।

"कहो, कहो, डरने की कोई बात नहीं।"

"वह यह कि आप खाना तो खा रहे हैं, मगर अबतक कोई पूजा आपने नहीं की।"

स्वयंसेवक की यह बात सुनकर वह (लोकमान्य तिलक) जोर से हँस पड़े और बोले "बेटा! सुबह से मैं और कर ही क्या रहा था?"

● *धरती की लाज*

किसी भी सपूत के कर्तव्य की इतिश्री केवल संरक्षकों की इच्छा-पूर्ति तक ही नहीं है, मातृ-भूमि के प्रति भी उसका महत्वपूर्ण कर्तव्य है। 'सेवाग्राम' की इस लघु कथा में ऐसे ही एक सपूत का चित्र है—

"तीन स्त्रियों के लड़के पैदा हुए। पहली माँ ने कहा—"बेटे! लाखों के ढेर पर घी के चिराग जलाना।"

दूसरी बोली—"मेरे लाल! अपने वंश का नाम अजर अमर रखना।"

तीसरी ने कहा—"मेरे लाड़ले! जिस मिट्टी पर तुम पैदा हुए हो उसकी लाज रखना

कुछ वर्षों बाद···

पहली माँ के सपूत ने लाखों के ढेर पर चिराग जलाने के बदले पूरा ढेर ही जलाकर राख कर दिया।

दूसरी माँ का बेटा गलियों और सड़कों पर अपने कुटुम्ब की इज्जत बढ़ाने लगा।

लेकिन तीसरी माँ की आशा पूरी हुई। उसका बेटा जेठ की तमतमाती धूप और घनघोर काली घटाओं में उस धरती की सेवा करना जिसने उसे जन्म दिया था। वह किसान था।

● *हानि कौन पहुँचाता है?*

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि किसीके प्रति जैसी भावना हमारी होगी, वैसी ही भावना उसकी भी हमारे प्रति हो जायगी। 'गीता-संदेश' में प्रकाशित इस लघुकथा में उसीकी एक झाँकी प्रस्तुत की गई है—

"नाग महाशय अहिंसा की साक्षात् मूर्ति थे। इनके घर के सामने से मछुवे यदि मछली लेकर निकलते तो आप सारी मछलियाँ खरीद लेते और उन्हें ले जाकर तालाब में छोड़ आते। एक दिन एक सर्प इनके बगीचे में आ गया। स्त्री ने इन्हें पुकारा—'काला साँप? लाठी ले आओ।'

नाग महाशय आये किन्तु खाली हाथ। आकर बोले—'जंगल का सर्प कहीं किसी को हानि पहुँचाता है? यह तो मन का सर्प है जो मनुष्य को मारे डाल रहा है।'

इसके पश्चात् वे सर्प से बोले—'देव! आपको देखकर लोग डर रहे हैं। कृपया आप यहाँ से बाहर पधारें।'

और सचमुच ही वह सर्प 'नाग महाशय' के पीछे-पीछे बाहर गया और जंगल में निकल गया। सच है जो कभी किसी का अनिष्ट नहीं चाहता, उसका कोई अनिष्ट नहीं कर सकता।"

● *अनर्थों की जड़*

'प्रदीप' में प्रकाशित श्री विष्णुदेवनारायण की इस लघुकथा में आये दिन होनेवाले अनर्थों की जड़ का सुन्दर विवेचन है—

"एक दिन शैतान एक आदमी के पास पहुंचा और बोला—'तेरा अन्तकाल अब समीप आ चुका है; किन्तु यदि तू चाहे तो मृत्यु से बच सकता है।'

भय विह्वल व्यक्ति ने कातर स्वर में प्रश्न किया—कैसे?

'अपने नौकर की हत्या कर डाल, अपनी पत्नी को खूब पीट और ले इस प्याले को होठों से लगा सारी चिन्ताओं से मुक्त हो जा—' शैतान ने उत्तर दिया।

'निरपराध नौकर की हत्या करूँ? अपनी पतिव्रता पत्नी का अपमान करूँ? नहीं, इससे तो अच्छा होगा···' और उस घबराये हुए व्यक्ति ने शैतान के हाथ का प्याला ले होठों पर लगा लिया।

किन्तु मदिरा का प्रभाव पड़ते ही उसने अपनी प्रिय पत्नी को पीटना शुरूकर दिया और जब उसका नौकर बीच बचाव के लिए आया तो गुस्से में उसकी हत्या भी कर डाली।"

● *अगर आदमी बनना है तो···*

चारों ओर अनैतिकता का जो रोग फैला हुआ है उससे छुटकारा पाने के लिये 'ग्राम राज' में प्रकाशित श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के विचार निश्चय ही उपयोगी सिद्ध होंगे—

"मेरी राय में आज भारत का सबसे बड़ा रोग यह है कि लोग बुरे होते जा रहे हैं। मैं इसकी छान-बीन नहीं करना चाहता लेकिन मेरी बचपन की हालत से आज ज्यादा लोग झूठ बोलना, छल करना आदि काम करते हैं। जहाँ देखो वहाँ लोगों के मन में—किसी न किसी तरह पैसा कमाना चाहिए, इसी की चिन्ता लगी रहती है, ऐसी हालत में सर्वोदय का उदय नहीं हो सकता। लोग ऐसा क्यों चाहते हैं—खर्च बढ़ गया है इसलिये, सरकार को चलानेवाले कांग्रेस दल को देखिये, नेताओं के बारे में ही नहीं, सेवकों के बारे में भी—उनके रहन-सहन, खाने-पीने का स्तर बढ़ गया है। क्या कोई नया पेशा इन्हें मिला है, बिना पेशे के वे ऐसा किस तरह कर सकते है? इस तरह का वेश वे क्यों धारण करना चाहते हैं? वे गरीब होते हुए भी अमीर की तरह रहना चाहते हैं। तब खर्च के लिये किसी न किसी तरह रुपया तो चाहिये ही। आज जो ठगी, झूठ, फरेब आदि चल रहा है उसकी कोई दवा तो होनी चाहिये। गीता को बार-बार पढ़ने व मनन करने से मुझे लगा कि अगर हमें अच्छा आदमी बनना है तो खर्च कम करना चाहिये नहीं तो हम चोर ही बनेंगे।"

—o—

[इस स्तम्भ के अन्तगत क्रमशः नवोदित वन्धुओं की सुन्दर रचनाएँ प्रकाशित हुआ करेगीं। रचना भेजते समय इस स्तम्भ का उल्लेख करना आवश्यक है— सम्पादक]

अणुव्रत और दुराग्रह

[श्री राकेश भंसाली]

आज का युग अन्याय एवं विषमताओं की परिधि में जकड़ा हुआ है। इसका कारण है कि मानव भ्रम-मूलक अज्ञानता में फंसकर सत्य से, आत्मा से जिसका रूप विश्व की अनेकता में नहीं, एकता में है, दूर भागता जा रहा है। वह नवजात शिशु की भाँति भोला नहीं, भोला बनता जाता है। वह पत्थर की भाँति जड़ नहीं किन्तु जड़वत् होता जाता है। यही है विषमताओं का केन्द्र-बिन्दु और इसी माध्यम से 'दुराग्रह' की उत्पत्ति होती है।

एक गुरु है और एक चेला। गुरु अपने शिष्य को शिक्षा देता है, धीरे-धीरे चेला अपनी बुद्धि का विकास करता है व आगे बढ़ता है और एक दिन वह अपने गुरु से भी आगे बढ़ जाता है किन्तु वह अपने गुरु की उपेक्षा नहीं कर सकता। ऐसा करना एक प्रकार बुद्धि का क्रम-विन्यास करना है। बुद्धि का क्रम-विन्यास ही विषमताओं का केन्द्र है और यहीं से दुराग्रही परंपराओं का इतिहास शृंखला-बद्ध होता है।

दुराग्रह मनुष्य की आन्तरिक कमजोरियों का बहिष्कार नहीं कर सकता, वह उसे देख भी नहीं सकता। यह तो एक प्रकार का अंध-विश्वास मनुष्य के हृदय में उत्पन्न करता है। अगर कोई कहे कि पत्थर की मौजूदा अवस्था में चैतन्य शक्ति विद्यमान है, तुमको बिना तर्क के इसको मान लेना चाहिए, ये विचार ईश्वरीय हैं और यदि हमने इसे अस्वीकार किया तो वह झट कहेगा तुम तो बड़े ही बुद्धिहीन निकले। बस! यही दुराग्रह है, यही हठधर्म है। इसके उत्पन्न होने का कारण अविवेक है।

स्वामी विवेकानन्दजी के शब्दों में—"मेरा अनुभव यह है कि दुराग्रहपूर्ण सभी सुधारों से अलग रहना चाहिए।" अर्थात् यह एक प्रकार का रोग है। एक शराबी शराब पीकर, माँसाहारी माँस खाकर, चोर चोरी करके और व्यभिचारी व्यभिचार करके घृणा के अतिरिक्त और क्या अर्जन करते हैं, यह दुराग्रह अधिकतर एक दूसरे के विपर्यास-जीवन में पाया जाता है।

अणुव्रत-आन्दोलन और क्या है? यह इसी प्रकार की दुराग्रहपूर्ण विषमताओं की जंजीरों से समाज को मुक्त करने की एक अमोघ शक्ति है।

राही से!

[श्री बद्रीनारायण दीक्षित]

संभल २ कर चलना राही,
यह मंजिल आसान नहीं है।
इस पथ कंटक झाड़ मिलेंगे,
फूलों का कुछ काम नहीं है।
यहाँ मिलेंगे मानव तन में,
दानव लोहित जीभ निकाले।
शोणित प्यासे-मनुज-वक्ष को-
चीर चढ़ानेवाले प्याले।
अपने हित को अमित कुटीरों,
में हँस आग लगाने वाले।
अपने हित लाखों प्राणों को
होली जला झुकानेवाले।
यहाँ मिलेंगे लाखों जिनका,
हँसनेका अधिकार मिट चुका
यहाँ मिलेंगे लाखों जिनका,
रोने का अधिकार छिन चुका
यहाँ न माया ममता कुछ है,
दया नहीं विश्वास न सम है।
अपना हित है छल कुचक्र है,
पंथी! चलना महा विषम है।

—o—

जिओ मौत से खेल!

[श्री इन्दुभूषण नेहरू]

जिओ मौत से खेल जिन्दगी जीवन और मरण है!
नभ से उतर, धरापर आये अपने को अपने में पाये
नहीं टूट यह जाये आशा तत्पर अभी चरण है!
विषम समस्या घबरायेगी ममता माया बहलायेगी
मगर न भूलो उनको जिनका पोषण नहीं मरण है!
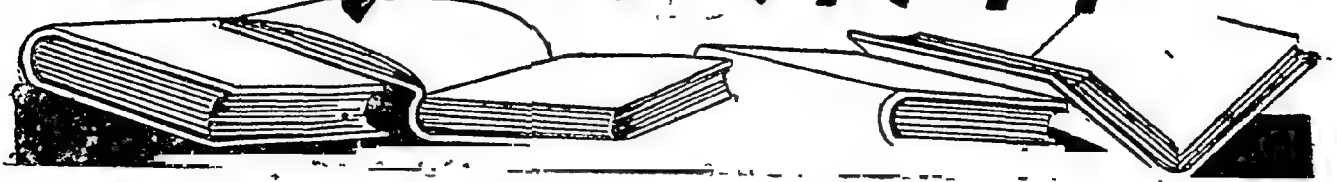
[समालोचनार्थ पुस्तक या पत्रिका की दो प्रतियाँ कार्यालय में भेजनी चाहिए एक प्रति आने पर केवल प्राप्तिमात्र दी जा सकेगी]

सर्वोदय राज क्यों और कैसे ? लेखक—श्री भगवानदास केला, प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग, पृष्ठ ७१, मूल्य दस आने।

प्रस्तुत पुस्तक में, जैसा कि नाम से प्रकट है, लेखक ने सर्वोदय राज्य के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक चर्चा की है। आरम्भ में राजनीतिक बुजुर्गों तथा साथियों से जो निवेदन आपने किया है वह कटु-सत्य होते हुए भी देश के नेताओं से मार्मिक अपील है। "स्वदेशी राज हुआ, किन्तु स्वराज्य नहीं", शीर्षक अध्याय में आपने अंग्रेजों से छुटकारा पाने को हमारी अधूरी सफलता माना है, क्योंकि अंग्रेजी शासन-पद्धति की नकल में स्वदेशी नौकरशाही चल रही है। संसद् आदि में निर्वाचित प्रतिनिधियों के न्यायशील चुनावादि की प्रणाली पर भी आपने आलोचना की है जो विचारणीय है।

'नई दृष्टि की आवश्यकता' शीर्षक अध्याय में आपने वर्तमान लोकतन्त्र को लोकतन्त्र मानने से इन्कार किया है तथा उसे बहुमत का शासन मानकर निर्वाचन-पद्धति के दोषों का उल्लेख किया है। अगले अध्याय में "सर्वोदय में राज्य के कार्य" किस प्रकार होंगे, इसकी विस्तृत चर्चाकी है। आरम्भमें आपने गांधीजी तथा आचार्य विनोबा भावे के विचारों को उद्धृत किया है।

"सर्वोदय-राज्य व्यवस्था" अध्याय में गान्धीजी के उद्धरण से कि "आजादी नीचे से शुरु होनी चाहिए," सरकार के संगठन, निर्वाचन-पद्धति, शासन—संस्थाएँ—ग्राम पञ्चायतें, नगर पंचायतें प्रादेशिक विधान संस्थाएं, संसद, न्याय-संस्थाएं, सरकारी नौकर, उनकी योग्यता और वेतन आदि विषयों पर चर्चा की गई है—

'संक्षेप में सर्वोदय राज्य-व्यवस्था में जनता का हित हमेशा सामने होगा तथा राज्य का लक्ष्य राष्ट्र की सुरक्षा, स्वतन्त्रता और एकता होगा। कर्मचारियों में हुकूमत की भावना न होकर लोकसेवा की कामना होगी...सबलोगों में सहानुभूति और सहयोग के लिए प्रबल प्रेरणा होगी।...व्यक्ति का दमन या हत्या न होगी वरन् उसकी उन्नति और विकास का समुचित अवसर मिलेगा; व्यक्ति ही समाज का केन्द्र विन्दु होगा।..."

"रामराज्य का आदर्श" अध्याय में लेखक ने 'सर्वोदय' तथा 'रामराज्य' की तुलना की है। स्वराज्य (रामराज्य) का अर्थ और भी स्पष्ट करने के लिए बापूजी के विचार 'हिन्दी नव-जीवन' १९-८-२१ के आधार पर उद्धृत किए हैं, जो आज भी विचारणीय हैं।

लेखक ने बापू के सपने के रामराज्य का चित्रण भी स्व० श्री किशोर भाई मश्रूवाला के शब्दों में किया है। इन विचारों के आधार पर लेखक ने अध्याय के अन्त में संक्षेप से "हमारे कर्त्तव्य" पर प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि इस प्रकार के रामराज्य के लिए हमें सरकार के भरोसे न बैठकर यह सोचना चाहिए कि कितना काम स्वयं हमारे करने का है तथा उसको करने में हमें तन, मन से लग जाना चाहिए।

"मार्ग दर्शन" अध्याय में लेखक ने राष्ट्र-पिता की 'अमृतवाणी' के आधार पर उनके कुछ महत्वपूर्ण विचारों को संकलित किया है। सर्वोदय-दृष्टि से राज्य-व्यवस्था का उत्तर-दायित्व कुछ सरकारी कर्मचारियों, विधान सभाओं के सदस्यों, मंत्रियों, राज्यपालों या राष्ट्रपति पर ही नहीं होता, प्रत्येक व्यक्ति पर होता है। जनता का भाग्य-निर्माता कोई दूसरा नहीं, वह स्वयं है।

कुल मिलाकर पुस्तक संग्रहणीय है। गागर में सागर भर दिया है। लेखक ने प्रायः प्रत्येक अध्याय का आरंभ किसी उद्धरण से किया है तथा अन्तमें सारे अध्याय का सारांश भी विशेष वक्तव्यके रूपमें दे दिया है। श्री केलाजी सचमुच बधाई के पात्र हैं। कार्यकर्ताओं, विचारकों, पुस्तकालयों, तथा व्यस्त नागरिकों के लिए यह पुस्तक अत्यंत महत्वपूर्ण है। लेखक की पद्धति अत्यंत सरल तथा स्वाभाविक है। राजनीति, अर्थशास्त्र तथा सामाजिक विज्ञान में रुचि रखनेवाले विद्यार्थी भी इस पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं।

—रामकृष्ण भारती

३

एक विचारणीय प्रश्न !

जागरण तो तब हो जब नीति की भित्ति हो। क्या आपको नहीं लगता कि बहुत सी भित्तियाँ टूट चुकी हैं ?

क्या नीति की कल्पनाएं वही रहेगीं जो सनातन सम्मत, मनुस्मृति सम्मत या हिन्दू, बौद्ध-जैन-ईसाई-मुस्लिम धर्म-शास्त्रों पर आधारित होंगी ? याकि युगानुसार उनमें परिवर्तन करना आवश्यक है ? यह परिवर्तन कहाँ से जागेंगे ? व्यक्ति से, समूह से या संस्था से ?

—प्रभाकर माचवे

[माचवेजी ने "अणुव्रत" के पाठकों के विचारार्थ उपरोक्त प्रश्न उठाया है। अतः इस विषय पर पाठक व विद्वान अपने विचार सहर्ष प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं। इस अंक में श्री पन्नालाल भन्साली के विचार प्रकाशित किये जा रहें हैं। —सम्पादक]

माचवेजी का यह प्रश्न मुझे उचित लगता है कि जागरण के लिए नीति की भित्ति होनी चाहिए। मेरे मतानुसार बिना भित्ति या आधार की कोई नीति ही नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति की नीति का कोई न कोई आधार होता है। चाहे उसका आधार वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत, कुरान, बाइबिल, पिट्टक, आगमसूत्र-शास्त्र जो भी हो। प्रत्येक देश व जाति के कानून व नियमों का आधार भी उस देश व जाति को मान्य धर्म-ग्रन्थ होते हैं। प्रत्येक कानून की रूह धर्म-ग्रन्थों से ली जाती है। यदि किसी को धर्म-ग्रन्थ मान्य नहीं होते तो अपने किसी आदर्श पुरुष के चरित्र व वाक्यों को आधार बनाता है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति का कोई न कोई आधार अवश्य होता है और प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्पनीय आदर्श को प्राप्त करने की चेष्टा में रहता है। यहां 'कल्पना' शब्द के लिए थोड़ा स्पष्टीकरण करना अप्रासंगिक न होगा चूँकि भारतीजी ने माचवेजी के 'कल्पना' शब्द को भी एक विचारणीय विषय बना दिया है। अतः मैंने यहाँ जो कल्पना शब्द का प्रयोग किया है उसे 'विश्वास' के अर्थ में समझना चाहिए। उदाहरणार्थ कोई मोक्ष को कोरी कल्पना की वस्तु मान सकता है और मेरा दृढ़ विश्वास है कि जीव की कर्म रहित अवस्था यानी मोक्ष हो सकती है। इसी प्रकार कइयों की मान्यता है कि श्रुति-स्मृतियाँ अथवा धर्म-ग्रन्थों में जो नियम व कानून बताये गये हैं उनका मूल उद्देश्य नैतिकता है और नैतिक सुधार के निमित्त स्वर्गीय सुख और नारकीय भय की कल्पना का प्रभावकारी प्रचार किया गया। इस विचारधारा से मैं सहमत ही नहीं बल्कि इसी विचारधारा को मैं आज की जटिल समस्याओं का मूल आधार व भयंकर विचार-धारा मानता हूं। मेरे मतानुसार नरक और स्वर्ग कोरी कल्पना की वस्तुएं नहीं बल्कि वास्तविक हैं और इसीसे धार्मिक सिद्धान्तों को मैं शास्वत सत्य मानता हूं। युगानुसार परिवर्तनशील नहीं।

आजकल एक शब्दका प्रयोग चला है—'धर्म निरपेक्ष राज्य', 'धर्म निरपेक्ष संघ' 'धर्म निरपेक्ष आन्दोलन' और 'धर्म निरपेक्ष समाज' आदि-आदि। मेरा इस पर विश्वास नहीं। मेरी मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति किन्हीं न किन्हीं संस्कारों से बंधा हुआ है, जुड़ा हुआ है। प्रमाण-स्वरूप जब 'धर्म निरपेक्ष' शब्द का अर्थ कोई 'धर्म विहीन' करता है तो वह उन्हें मान्य नहीं होता, इसी से जाना जा सकता है कि उनकी कोई न कोई कल्पना या विश्वास अवश्य है। उसे वे पक्षपात शब्द से भले ही दूर रखना चाहें किन्तु भावना से दूर नहीं हैं और न होना ही चाहिए। पक्षपात बुरा नहीं होता यदि वह अपनी जान में न्याय या उचित पक्षपात है। इसी से प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक स्वर्गीय श्री किशोरलाल घनश्याम मश्रूवाला ने इस मिली-जुली या अस्थिर विचारधारा को 'खिचड़ी' विचार धारा की उपमा दी है तथा इसके स्थान पर इकरंगी विचारधारा को पसंद करते हुए लिखा है "चाहे कोऊ गोरे कहो, चाहे कोऊ कारे। हम तो एक सहजानन्द रूप के मतवारे।" इसी विचारधारा को माननेवाले महात्मा गांधी थे और वे अपने को कट्टर वैष्णव सम्प्रदायी मानने में गौरव ही महसूस करते थे, लज्जा नहीं। यह दूसरी बात है कि वे अपने वैष्णव सम्प्रदाय को इतना व्यापक और उदार मानते थे कि कोई भी अच्छा विचार उनके दायरे के बाहर न था अस्तु आजकल जो यह एक विचारधारा काम कर रही है कि धर्म और सम्प्रदाय झगड़े की झोंपड़ियां हैं उसे दूर कर अपने सिद्धान्त व विश्वास पर प्रत्येक व्यक्ति को दृढ़ रहना चाहिए और उसे स्वीकार या प्रकट करने में घबराना भी नहीं चाहिए। यह सही बात है कि धर्म के नाम पर कितनी खून

(शेषांश पृष्ठ २७ पर)

लड़खड़ाती मानवता को युग-युग तक सहारा देनेवाली

संत वाणी

सफलता का आनन्द

[मुनिश्री कानमलजी]

सोचकर देखा जाय तो व्यवहारिक दृष्टि से ये व्रत इतने काम के हैं कि घर-घर में फैले हुए अन्तर द्वन्द्व, ईर्ष्या और प्रतिशोध की भावना को मिटा सकते हैं और समाज के विशृंखल जीवन को शृंखलाबद्ध बनाते हुए समाज को उचित पथ दिखा सकते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से तो जीवन ऊँचा उठेगा ही, इसमें तो कोई सन्देह नहीं है। स्त्रियों के लिये अणुव्रत के नियम ग्रहण करने में विशेष बाधा भी नहीं है। जो व्यापार नहीं कर रहे हैं उनके लिये भी इन नियमों का पालन करना सुगम है। इस प्रकार समाज का बारह आना भाग यदि अणुव्रत नियमों को ग्रहण करले तो शेष बचे भाग पर भी सुन्दर प्रभाव पड़ सकता है और जीवन त्यागमय और संयमी बन सकता है। सारी उलझनें, चिन्ताएं एवं बीमारियां भी इन नियमों का पालन करने से मिट सकती हैं। जैसाकि देखा जाता है कि जो अश्वारोही बनना चाहता है, वह दो एक बार घोड़े से गिरकर चोट भी खाता है किन्तु निरंतर अभ्यास के द्वारा एक दिन वही घोड़े की घुड़दौड़ में दो लाख का इनाम भी पा लेता है। प्रत्येक कार्य की सफलता का आनन्द उसके निरन्तर अभ्यास से ही साध्य है। इसी प्रकार अणुव्रत के नियमों का पालन मनुष्य अथवा स्त्री जाति को चरम सीमा की सफलता प्राप्त कराने में सच्चा सहायक सिद्ध होगा।

अपने आपको टटोलें !

[मुनिश्री सागरमलजी]

जीवन और नैतिकता का सम्बन्ध क्या है, यह आज आलोचनीय है। नैतिकता का जीवन में वही स्थान है जो शरीर में प्राणों का है। नैतिकताशून्य जीवन, प्राणशून्य देह की भाँति होगा। मानव संख्या दिन-प्रति-दिन अनिश्चित रूप से बढ़ रही है पर मानवता कहाँ? आज जरूरत इस बात की है कि हर मनुष्य अपनी छाती पर हाथ रखकर सोचे कि मेरी मानवता का स्तर कैसा है, नैतिकता का कितना अंश है?

आश्चर्य तो जब होगा कि साधु समाज व उपदेशक वर्ग भी अपनी अनैतिकता की सीमा लांघ जाते हैं। इसीलिये तो ईश्वर से साक्षात्कार करनेवाले और भक्तों को मोक्ष दिलानेवाले भगवान के तथाकथित एजेण्ट जेलों की हवा खाते हैं—ऐसा समाचारपत्रों में पढ़ने को मिलता है।

आज के दूषित वातावरण में यह विश्वास भी नहीं होता है कि क्या नैतिकता से काम चल सकता है? विश्वास करें भी तो कैसे जब विश्वास के केन्द्र त्रास के केन्द्र निकल जाते हैं। व्यापारी को ईमानदारी से, वकील को सत्य से, राज्य कर्मचारी को बिना रिश्वत से जीवन चला सकने का विश्वास ही नहीं होता। आज स्वतन्त्र भारत के नागरिकों का यह कर्तव्य है कि वे हजार-हजार बलिदान करके भी नैतिकता के मैदान में कूद पड़ें। अणुव्रत-आन्दोलन का यही महा घोष है। राम और कृष्ण को माननेवाले, बुद्ध और महावीर की पूजा करनेवाले अपने-आप को टटोलें तथा जीवन के आचार और विचार को पवित्र बनायें।

नैतिकता की आवश्यकता

[मुनिश्री इन्दरमलजी]

संसार में वादों की भरमार है। मनुष्य वादों की बढ़ती हुई इस बाढ़ में आज उलझ गया है। वादों के जाल में फंसा हुआ मानव नैतिकता तक को भूल गया। अतः आज के जन-जीवन में नैतिकता की अत्यावश्यकता है। नैतिकता के बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं, पशु होगा। अनैतिकता मानसिक बीमारी है जिसकी सफल चिकित्सा अणुव्रत-आन्दोलन करता है।

भारतीय विद्यार्थियों से !

[मुनिश्री नगराजजी]

आज के विद्यार्थी यह सहजतया जानते हैं कि डार्विन का विकासवाद क्या है और मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद क्या है? पर वे यह जरा भी नहीं जानते कि भगवान् श्री महावीर का स्याद्वाद क्या है? और श्री शंकर का अद्वैतवाद क्या है? शिक्षा व्यवस्था की इसी अपूर्णता के कारण भारतवर्ष में आज पश्चिमी विद्याओं का आयात हो रहा है पर यहाँ से पूर्वी विद्याओं का निर्यात नहीं हो पाता। जड़ विद्या के परमाणु बम, उद्जन बम के रूप में होनेवाले विकास के कारण आज का विश्व संत्रस्त है, वह शान्ति की खोज में है। अतः आज आप पर दायित्व है कि विरासत में मिली उन बहुमूल्य विद्याओं का अन्वेषण करें, पढ़ें व उनका दूर-दूर तक निर्यात करें।

आचार-शुद्धि का कार्यक्रम

[श्री गुरुमुख निहालसिंह, मुख्यमंत्री, देहली]

समाज में फैली हुई बुराइयों को मिटाने के लिये हम कानून बनाते हैं। फिर भी उनके उन्मूलन का प्रशस्त मार्ग उपदेश व शिक्षा ही है। यह आचार-शुद्धि का कार्यक्रम है। मुझे नहीं लगता कि यह एक ही दिन व एक ही वर्ष में पूरा हो जानेवाला है। संसार में कठिनतम कार्य मैं तो इसे ही मानता हूं। एक सुनिश्चित योजना के अनुसार सभी वर्गों में एक लम्बी अवधि तक कार्य होना आवश्यक है। मैंने अपना अधिकांश जीवन शिक्षा क्षेत्र में बिताया है। उससे मुझे जो नवनीत मिला वह यह है कि आप विद्यार्थियों से पहले अध्यापकों को सुधारें। अध्यापकों के सुधार में ही विद्यार्थियों का सुधार अन्तर्निहित है। व्यापारियों का सुधार व्यापारिक संगठनों से ही प्रारम्भ करना चाहिये। व्यापारिक संगठन यदि अपने-अपने चारित्रिक नियम बना लेंगे तो निश्चित ही उसका व्यापक असर होगा।

—देहली की अणुव्रत विचार गोष्ठी में व्यक्त विचारों से

मानवता की महान् सेवा

[उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्]

आज लोगों में जो नैतिक पतन हो रहा है, उसे देखकर मेरे हृदय में एक व्यथा पैदा हो जाती है। आज लोग बात अहिंसा की करते हैं पर समय आते ही हिंसा करने को तैयार हो जाते हैं। अहमदाबाद में यह क्या हो रहा है! दुःख तो यह है कुछ छात्र भी तोड़-फोड़ में भाग ले रहे हैं। अणुव्रत आन्दोलन की चर्चाओं से मैं चिर-परिचित हूं। मानवता के परित्राण में वह महान् योग दे रहा है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह--ये ही ऐसे सार्वभौम तथ्य हैं जिनपर सारा संसार टिका है। हमारे पंचशील भी इनमें समा जाते हैं। अणुव्रत आन्दोलन इन्हीं पांच तथ्यों को अणु से प्रारम्भ कर महान् में परिणत करना चाहता है। यह मानवता की महान् सेवा है। जन-जन में अहिंसा, सत्य का प्रसार हो, इससे बढ़कर मैं कोई सेवा नहीं मानता हूं।

भारतवर्ष धर्म प्रधान देश था पर आज तो भारतवासियों के विचारों में आस्तिक्य और आचार में पूर्ण नास्तिक्य उपलब्ध होता है। आज तो लोगों की वह स्थिति है जिसका परिचय विष्णु पुराण में, ऋषियों ने इस प्रकार दिया था—"धन संग्रह तो हमारे अशेष धर्मों का हेतु है, असत्य ही हमारे जीवन व्यवहार की जय का हेतु है, सूत्र धारण हमारे विप्रत्व का हेतु है और वेश धारण ही हमारे आश्रम का हेतु है।"

—देहली में हुए एक विचार-विनिमय से

कृत्रिमता मिटाने में सहायक

[कांग्रेसाध्यक्ष श्री. ढ़ेवर भाई]

आन्दोलन संगठन व कार्य-पद्धति दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। सही बात यह है कि आज जीवन-व्यवहार में कृत्रिमता घर कर गई है। जीवन का कोई भी पहलू उससे अछूता नहीं है, क्या राजनैतिक और क्या धार्मिक? वह कृत्रिमता भी सर्व साधारण में इतनी नहीं है जितनी धनी और पढ़े-लिखे कहलानेवाले लोगों में है। हाथी का नियंत्रण अंकुश करता है, समाज का नियंत्रण पढ़े-लिखे लोग करते हैं। इसलिये उनके कृत्रिम जीवन का प्रभाव सारे समाज पर छा जाता है। देखना यह है कि अणुव्रत आन्दोलन इस कृत्रिमता को मिटाने में कहांतक सफल होता है।

—देहली में हुई एक वार्तालाप से

मैं इस हिंसा को कैसे सह सकूँ?

[राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टंडन]

आज के भारतवर्ष को आध्यात्मिक देश कहने में हमारा सिर शर्म से झुक जाता है। क्या वह देश आध्यात्मिक है जहां तीस लाख वेश्यायें रहती हों, सत्तर लाख भिखमंगे घूमते हों, जहां लाखों की संख्या में कुत्ते, बन्दर और गायें मारी जाती हों? मेरा तो हृदय इन हत्याओं और कुकृत्यों को देखकर रोता ही रहता है। यह क्या दानवपन नहीं है? लोग बड़े-बड़े जहाज भरकर बन्दरों को विदेश मारे जाने के लिये भेजते हैं। यहां भी बन्दर मारनेवालों को इनाम बांटे जाते हैं।

मैं इस हिंसा को कैसे सह सकूं? मेरे जीवन में मेरे से एक चींटे (मकोड़े) की हत्या हुई जिसे मैं याद करता हूँ तो आज भी आंखों में आँसू आजाते हैं। वह घटना इस प्रकार है—एक बार मैं भूमि पर बिछौना बिछाकर सोया था, एक चींटा बिछौने पर चढ़ रहा था। मैंने बिछौने को थपथपाया कि वह नीचे चला जाये पर वह मेरी ओर ही दौड़ता रहा। मुझे झुंझलाहट आई और हाथ के झटके से उसे बिछौने पर से हटा दिया। वह एक हाथ दूर भूमि पर गिर पड़ा और चोट के मारे अपने कांपते हुये हाथ पैरों से अपने शरीर को सम्भालने लगा। मैं उठ बैठा और चींटे को उठाकर एक कागज पर रख दिया और एक घण्टे से भी अधिक मैं वहीं बैठा अपनी आत्मा को धिक्कारता रहा। मुझे यह भान हो गया—मैं अपराधी हूँ, दण्ड का भागी हूँ और उस समय मेरी आंखों से आंसू की धारा बह निकली थी।

—देहली में होनेवाले एक विचार-विनिमय का सार.

अहिंसा और अपरिग्रह का आन्दोलन

[प्रो० श्री कृष्णमूर्ति]

अणुव्रत-आन्दोलन नैतिक दृष्टिकोण का आन्दोलन है। आचार्य श्री तुलसी ने यह आन्दोलन आत्म-कल्याण के उद्देश्य से प्रारम्भ किया है। हम उस दृष्टिकोण से समाज सुधार करें तो अच्छा है, मगर उनका यह उद्देश्य नहीं। आन्दोलन के व्रत निवृति रूप में परिणत होने के लिये हैं। आखिरी उद्देश्य तो योग चित्त वृत्ति का निरोध करनेका है। सत्य प्रवृत्ति में कम हिंसा है। जितनी कम हिंसा है उतना अच्छा है। अणुव्रती खादी पहनता है, इसलिये कि खादी में कम हिंसा है, इसमें स्वदेशी समाज-सुधार की भावना नहीं है। अणुव्रत में नकारात्मक व्रत हैं। यह हिंसा व परिग्रह से निवृत्ति करने का आन्दोलन है। इसके साथ-साथ हम समाज-सुधार करें तो ज्यादा अच्छा है। अस्तु, आपसे मेरी अपील है कि आप आन्दोलन की भावना को समझकर इस पथ पर चलें तो प्रगति का मार्ग व आत्म-शुद्धि का मार्ग शीघ्र ही प्राप्त हो सकेगा।

—मद्रास स्वागत समारोह के अवसर पर पल्लावरम् में दिये गये भाषण से

नैतिक-क्रान्ति का आन्दोलन

[श्री उत्तमचन्द सेठिया, संगठन मंत्री, अणुव्रत समिति]

अणुव्रत-आन्दोलन नैतिक क्रान्ति का आन्दोलन है। मुझे सेवा करने का शौक है, मेरे दिल में तड़फ है, कार्य की लग्न है, ऐसा मैं महसूस करता हूं। अणुव्रत समिति में इस वार हमें कार्य करने का अवसर मिला है और चाहते हैं कि आन्दोलन की भावनाओं का समूचे विश्व में प्रसार हो। इसके लिये संगठन पर हमारी दृष्टि विशेष रूप से टिकनी चाहिये। आन्दोलन का प्रचारात्मक रूप तो बहुत ही अच्छे रूप से सामने आया है मगर समय को देखते हुये रचनात्मक प्रवृत्तियों की भी आवश्यकता है। अतः निवेदन है कि जिस लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ने का प्रयास किया जा है, वह शीघ्र ही आपके अविरल सहयोग से पूर्ण हो। आप अपने न्त में आन्दोलन की भावनाओं का ज्यादा से ज्यादा प्रसार व प्रचार गे, ऐसा मेरा विश्वास है।

—मद्रास स्वागत समारोह के अवसर पर दिये गये भाषण से

संसार के दुखों का कारण

श्री केसरीलाल बोर्दिया, प्रधानाध्यापक, विद्याभवन, उदयपुर]

संसार संघर्षमय है, और संघर्ष का मूल कारण लोगों में व्याप्त परिग्रह भावना है। जो साधन संपन्न हैं, वे साधनों को छोड़ना नहीं चाहते और जो साधन हीन हैं, वे साधन संपन्नों को देखकर उसी तरह के साधन प्राप्त करने को संघर्ष करते हैं। इस तरह साधन संपन्न शोषक बन जाते हैं और साधनहीन शोषित। शोषक और शोषितों का संघर्ष या शोषकों में ही परस्पर शोषितों के शोषण के लिये संघर्ष ने आज के संसार को हिंसात्मक बना दिया है। और हम यह महसूस करने लग गये हैं कि आज के समाज में त्याग और संतोष का जीवन बिताना दुष्कर है। जीवन में आवश्यकताओं को कम कर और संतोष की वृद्धि करके ही हम सच्चा सुख हासिल कर सकते हैं। आवश्यकताओं को कम करने से आदमी बादशाह बन जाता है। जीवन की अत्यन्त कम आवश्यकताओं की पूर्ति करके भी हमारे ये आदिवासी मीत निर्संदेह कितने सुखी हैं।

—अणुव्रत समिति द्वारा आयोजित विचारगोष्ठी में दिये गये भाषण के आधार पर

दीप से

[मुनिश्री मांगीलाल जी]

●

दीप! जलते ही रहो तुम।

-१-

व्याप्त होने को बढाता, तिमिर जब कर भूवलय पर,
पा तुम्हें कटिवद्ध सम्मुख, त्वरित होती प्रगति मन्थर।
आपदाओं को हटाकर, तम निगलते ही रहो तुम!
दीप! जलते ही रहो तुम!

-२-

कार्य के आरम्भ में, आते हमेशा विघ्न अगणित,
हारता कब आत्म-बल, जुटते लगाकर शक्ति द्विगुणित।
मार्ग-दर्शक बन अनूठे, जगमगाते ही रहो तुम!
दीप जलते ही रहो तुम!

-३-

स्वयं की चिन्ता जहां, जग किया करता है प्रतिक्षण,
स्वार्थ का अणु मात्र भी तजना कठिन, यों मानता मन
त्याग कर सर्वस्व का, नव-सृजन करते ही रहो तुम!
दीप! जलते ही रहो तुम!

———

(पृष्ठ ८ का शेषांश)

सके। अन्त में वे घूमते-घामते कहीं विलीन होते गये। चीन की दीवार इसी आतंक का प्रमाण है। तैमूरलंग, चंगेज खाँ, नादिरशाह आदि आक्रमणकारियों ने भारत में जो खून बहाया उसके छींटे इतिहास से दूर न हो सके जबकि सिकन्दर को सिन्ध से ही बैरंग वापस जाना पड़ा और सेल्यूकस का भी अधूरा ही स्वप्न भंग हो गया। ऐतिहासिकों का अनुमान है कि भारत में सम्राट् अशोक के अहिंसा धर्म को ग्रहण कर लेने के अनन्तर ही यहां के राजनैतिक जीवन में निष्क्रियता आयी और कालान्तर में भारत को विदेशी आक्रामकों से परास्त होकर स्वातन्त्र्य से हाथ धोना पड़ा। अशोक ने भारत को साधुओं का मठ बना दिया था। इसके बाद निर्विरोध रूप से मठ में विदेशी बसने लगे।

नैतिक रूप से विचार किया जाय तो इस तर्क में कोई तथ्य नहीं है। अशोक ने वास्तव में भारत को आध्यात्मिक शक्ति प्रदान की थी, जिसने संपूर्ण एशिया पर अपना अमोघ प्रभाव डाला। पतन के कारण तो हैं हमारे अन्धविश्वास, भूत-प्रेतों की पूजा, छूआछूत का भेद, जातीय संकीर्णतायें, रूढ़ियाँ, सामाजिक अविश्वास, ऊँच-नीच की तुच्छ भावनायें, बहुजातीय धन्धे और धार्मिक आडम्बर, जो अशोक के पश्चात् उसकी ऐकिक व्यवस्था की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न हुये और माला से टूट कर इधर-उधर बिखरे मनकों की तरह आकर्षणहीन हो गये। जनता ने उन्हें जहाँ-तहाँ बटोरा तथा एक-एक कर अपने गले बाँध लिया। राष्ट्रीय शक्ति के ह्रास का यही प्रमुख कारण था। अन्यथा नेपोलियन के दाँत खट्टे कर देनेवाले रूस को छोटा सा जापान भी कोई सबक नहीं पढ़ा सकता था, अजगर की तरह पड़े हुये चीन की पीठ पर आज अमेरिकी सेना परेड करती। इन सभी परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुये अब भी हमें सचेत होकर चलना चाहिये। राष्ट्रीय गौरव को अक्षुण्ण रखने का नया सबक अपना लेना चाहिये। हार्दिक अनैतिकता का प्रभाव मनुष्य के बाह्य आचरणों पर पड़ता है इससे सामाजिक व्यवस्था, संघठन, सांस्कृतिक नियम, इन सभी का व्याघात होता है और अमानवीय तत्वों का जन्म होता है, जिनसे शोषण, निर्दलन, द्वेष तथा हिंसा की भावनाओं को बल मिलता है। मनुष्यता का हनन करनेवाले इन उपायों का प्राबल्य ज्ञान-विज्ञान को अभिशप्त कर रूढ़ियों और विनाश-पथ की ओर अग्रसर करता है। जीवन का आदर्श राग या विराग मात्र नहीं है अपितु आध्यात्मिक अथवा पारमार्थिक राग और हिंसात्मक प्रवृत्तियों के विराग से अखिल विश्व हितों में सामञ्जस्य बनाये रखना तथा मानवीय संस्कृति एवं आदर्शों से च्युत न होना है। मनुष्य का बाह्याचार उसके अन्तर का प्रतिबिम्ब है। इसलिये बाह्य भावना आन्तरिक प्रतिक्रियाओं का प्रतिरोध नहीं कर सकती। अतएव अहिंसा और नैतिकता के आचरणों का परिपालन कर विश्व की विकटतम समस्यायें सुलझायी जा सकती हैं। आज विश्व-संकट जो दुरुह सा प्रतीत होता है उसे टालने का एक मात्र उपाय अहिंसा है। हिंसा विनाश की जड़ है।

(पृष्ठ २३ का शेषांश)

खराबियां तक हुई हैं किन्तु वे तो नीति के नाम पर भी हुई और हो सकती हैं। किन्तु विकारों को दूर रखकर विचार करने से शुद्ध धर्म और नीति से बुराई नहीं हो सकती। यह निश्चित मत है। हाँ, यदि अपनी विचारधारा गलत मालूम दे तो नई विचारधारा अपनाने में तनिक भी घबराहट या हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। परन्तु दुविधा या असमंजस किसी काम का नहीं। अपना जो भी धर्म या नीति हो उसे स्पष्ट प्रकट करना चाहिए। किसी ने क्या ही सुन्दर कहा है—"मज़हब नहीं सिखाता, आपस में वैर करना"। अस्तु धर्म रहित नीति वास्तव में नीति ही नहीं बल्कि उसे अनीति कह दिया जाय तो भी कोई अत्युक्ति न होगी।

अब माचवेजी के प्रश्न का आधा हिस्सा और रह जाता है। नीति में युगानुरूप परिवर्तन और संशोधन करने का। मेरे मतानुसार जब उसे नीति या सिद्धान्त स्वीकार कर लेते हैं फिर उसमें संशोधन की गुंजाइश नहीं रहती। परिवर्तन भी मानी हुई नीति में! बल्कि कभी कोई नीति काम में लाई जा सकती है और कभी कोई। उदाहरणार्थ कभी सत्य की नीति काम में लाई जा सकती है और कभी मौन की। कारण सत्य बोलना भी नीति है और मौन रखना भी नीति लेकिन झूठ कभी नहीं बोला जा सकता कारण कि झूठ बोलना नीति नहीं बल्कि अनीति है जबकि सत्य और मौन दोनों नीतियाँ हैं। अतः नीति में परिवर्तन किया जा सकता है लेकिन संशोधन नहीं। नीतियाँ कई प्रकार की होती हैं जैसे एक नीति है दुष्ट के साथ दुष्टता ही करनी चाहिए। दूसरी नीति है—तुम्हारे एक गाल पर कोई थप्पड़ दे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो। अथवा "जो ताको कांटा बोये वाही बोई तू फूल।"

तीसरी नीति है—किसी की बुराई न करना परन्तु अपना नुकशान न करना अथवा न किसी को ठगना और न किसी के द्वारा ठगाया जाना। इन नीतियों में जिस व्यक्ति को जो नीति पसन्द होती है वह उसी को अपनाता है। किन्तु वास्तव में नीति की उत्पत्ति व्यक्तियों से होती है। ऐसी विनम्र मान्यता है।

—पन्नालाल भन्साली

व्यापारी सम्मेलन

● सरदारशहर (डाक से) अणुव्रत सप्ताह के अन्तर्गत २२ अगस्त को यहाँ आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में एक व्यापारी सम्मेलन का आयोजन हुआ। जिसमें नगर के सैंकड़ों व्यापारी भाइयों ने सोत्साह भाग लिया। श्री भंवरलाल वैद के संयोजकीय वक्तव्य के पश्चात् आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में उपस्थित व्यापारियों को जीवन में अधिकाधिक प्रमाणिकता बरतने का आह्वान किया।

इसके पश्चात् सैकड़ों व्यापारी बन्धुओं ने नियम ग्रहण किये और कार्यक्रम उत्साह व आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ।

द्वितीय विद्यार्थी अणुव्रत सप्ताह

● देहली (डाक से) २८ अगस्त से द्वितीय विद्यार्थी अणुव्रत सप्ताह प्रारम्भ हुआ जिसका उद्घाटन गोलचा सिनेमा हाल में भारत सरकार के रक्षामंत्री डा० कैलाशनाथ काटजू ने किया। दिल्ली राज्य के मुख्यमंत्री सरदार गुरुमुख निहालसिंह ने भी उसमें भाग लिया। इस सप्ताह में दरियागंज व दिल्ली की आठ विभिन्न शिक्षण संस्थाओं के लगभग २५०० छात्र छात्राओं व अध्यापकों में मुनिश्री नगराजजी के प्रवचन हुए।

विद्यार्थी सम्मेलन

● कुर्हा, खानदेश (डाक से) १५ अगस्त को यहाँ मुनिश्री पुष्पराजजी के सान्निध्य में एक विद्यार्थी सम्मेलन सम्पन्न हुआ। जिसमें ६०० विद्यार्थी, २० अध्यापक, चेअरमैन श्री हुकमचंद जैन, मंत्री श्री नामदेव शिंदे, नगर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री राजाराम बड़गुजर एम० डी० एस० बी के अलावा अनेक स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित रहे।

राष्ट्रीय गान के बाद मुनिश्री ने "स्वतंत्रता और सच्चे नागरिक" विषय पर बोलते हुए विद्यार्थियों को आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित विद्यार्थी जीवन-निर्माण उद्बोधन के नियमोंको जीवनमें उतारकर सच्चे नागरिक बनने के लिये निवेदन किया।

कार्यकर्ताओं का दौरा—

● कलकत्ता, १० सितम्बर। श्री प्रतापसिंह वैद कई आवश्यक कार्यों से देहली, सरदारशहर, बनारस, प्रयाग और बोलारम (हैदराबाद) का लगभग १५ दिन का प्रवास करके यहाँ लौट आये हैं। आगामी अक्टूबर माह में होनेवाले 'अणुव्रत-अधिवेशन' की दृष्टि से वे शीघ्र ही पुनः सरदारशहर पहुँच रहे हैं।

उड़ीसा, मध्य प्रदेश व मध्यभारत का दौरा समाप्त करके श्री देवेन्द्र हिरण मेवाड़ होते हुए १३ सितम्बर को कलकत्ता कार्यालय में वापस आ गये हैं।

सरदारशहर (राजस्थान) में

आगामी १२, १३, १४ अक्टूबर को

अणुव्रत समिति द्वारा आयोजित

सप्तम अणुव्रत सम्मेलन

की तैयारियां शुरू हो गई हैं

इस अवसर पर पहुँचनेवाले सज्जनों से निवेदन है कि वे अपने आगमन की सूचना यथाशीघ्र कार्यालय में भेजें जिससे व्यवस्था सुविधाजनक हो सके।

● सम्मेलन के कारण समिति का केन्द्रीय कार्यालय २५ सितम्बर से १५ अक्टूबर तक सरदारशहर (राजस्थान) रहेगा। अतः भविष्य में इसी के हिसाब से पत्र-व्यवहार करें।

● गत अंक में जिस 'अणुव्रत विचार शिविर' की सूचना प्रकाशित की गई थी वह आगामी १ अक्टूबर से शुरू होगा।

—मंत्री, केन्द्रीय कार्यालय, कलकत्ता

विचार कण

● प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक है कि वह आत्म-निष्ठा के साथ अणुव्रतों का पालन करे। उसके रोजमर्रा के जीवन में अणुव्रत आदर्शों की छाप रहनी चाहिये। उसका जीवन औरों के लिये प्रेरणा का हेतु बन सके। उसका मौखिक कथन नहीं, आत्मनिष्ठापूर्वक अणुव्रत-पालन औरों को इस ओर अग्रसर होने की स्फुरणा दे सके—मैं यह चाहता हूं।

● व्रत साध्य नहीं हैं। साध्य है—आत्मिक-पवित्रता, जीवन की शुद्धि। व्रत उसके साधन हैं। साधन को अपना कर निश्चिन्त हो जाना उचित नहीं है। वे आगे बढ़ने की प्रेरक पताकायें हैं, गतिरोध के स्तम्भ नहीं।

● जिस दया और दान का आडम्बर रचा जा रहा है, दुनियां उसकी भूखी नहीं है। शोषण, अन्याय और अनैतिक प्रवृत्तियों द्वारा करोड़ों का संग्रह कर उसमें से कुछ यश पूर्ति के कामों में खर्च कर देना और अपने आपको महान्, दयाशील और धर्मात्मा मान बैठना उस पाप को छिपाने का प्रयास है।

● धर्म के नाम पर फैली हुई बुराइयों को आज हमें मिटाना है ध्यान रहे हमारा प्रहार बुराइयों पर हो, बुरों पर नहीं, बुरों के मनको आघात पहुंचे, ऐसा भी क्यों हो? उनमें ऐसा परिवर्तन लाया जाय कि बुरे बुराई की जघन्यता और परिहेयता को समझते हुए स्वयं उससे मुँह मोड़ने को प्रेरित हों।

—आचार्य तुलसी

हिन्द सूगर कं० लि० द्वारा प्रसारित।

मानव संस्कृति का निशान [महात्मा भगवानदीन]

स्वामि-भक्ति में आदमी कुत्ते का क्या मुकाबला कर सकता है? इसी तरह घोड़े का भी आदमी क्या जोड़ है? पर कुत्ता-संस्कृति और घोड़ा-संस्कृति नाम की संस्कृतियां सुनने में नहीं आतीं। मनुष्य में सब जानवरों से और कुत्तों और घोड़ों से भी बढ़कर एक खासियत है। वह यह कि अपने साथियों का ही नहीं, पशु-पक्षियों तक का सुख-दुख जान और समझ सकता है। उसका सुख-दुख देखकर उसके मन के भावों में लहरें उठने लगती हैं। उसका उसके मस्तक पर असर होता है जो मस्तक उसको दूसरों के सुख-दुख में शरीक होने का हुक्म देता है और वह उसके हुक्म पर थोड़ा-बहुत अमल भी करता है। यह हुक्म असल में मस्तक का नहीं होता, अन्तरात्मा का होता है। मस्तक तो अन्तरात्मा के हाथ का औजार है। जब आत्मा जितना संस्कृत यानी मंजा हुआ होगा उतना ही मनोभावों और मस्तक के विचारों में मेल बिठा सकेगा। बस इसी मन-मस्तक के मेल बिठाने का नाम मानव-संस्कृति है। और यह देश और धर्म के नाम से या वंश और नस्ल के नाम से किसी तरह अलग नहीं की जा सकती। आत्मा की मंझाई जब इस हद तक पहुँच जाती है कि वह अपना आत्मा और दूसरों में रहनेवाले आत्मा में कोई भेद ही नहीं कर पाता तब उससे दुनिया की चीज़ों से और अपने तन से बेजा मोह-ममता दूर हो जाती है और उसका रहन-सहन कुछ इस ढंग का हो जाता है कि लोग उसे देवता कहकर पुकारने लगते हैं। अब वह अपनी जरूरत के मुताबिक खाता-पीता-पहनता है और अपनी शक्ति के अनुसार काम करता है। इस तरह से आदमी को लोग साधु कहने लगते हैं। अब दुनिया की कोई चीज़ उसकी नहीं रह जाती। यानी वह सब चीज़ों को सबकी समझता है। ऐसा ही आदमी मानव-संस्कृति का निशान बन जाता है।

मैसर्स सोहनलाल पचीसिया एण्ड को० ९ रॉयल एक्सचेंज प्लेस कलकत्ता-१ द्वारा प्रसारित:

लेखकों से !

पहले से स्वीकृत रचनाओंके आधिक्यके कारण उनके क्रमानुसार प्रकाशन में विलम्ब हो जाना स्वाभाविक है। अतः रचना की स्वीकृति पहुंचने पश्चात् प्रकाशन के सम्बन्ध में बार-बार पूछे या लिखे गये अनेक पत्रों का इच्छा रहते हुए भी उत्तर दिया जाना असंभव है।

आशा है इस असमर्थता व विवशता के लिये हमारे लेखक बन्धु क्षमा करेंगे। —सम्पादक

अणुव्रत-आन्दोलन

अहिंसा-अणुव्रत

अहिंसा सव्वभूयखेमंकरी [जैन]
अहिंसा सव्वपाणानं अरियो ति पवुच्चति [बौद्ध]
न हिंस्यात् सर्व भूतानि [वैदिक]

अहिंसा में मेरी निष्ठा है। हिंसा को मैं त्याज्य मानता हूं। गृहस्थ-जीवन में संपूर्ण हिंसा से बचना मेरे लिए सम्भव नहीं। इसलिए मैं निम्न व्रतों को ग्रहण करता हूं :—

१—चलने फिरनेवाले निरपराध प्राणी की संकल्पपूर्वक घात नहीं करूँगा।
२—आत्म-हत्या नहीं करूँगा।
३—गर्भ-हत्या नहीं करूँगा।
४—हत्या व तोड़फोड़ का उद्देश्य रखनेवाले दल या संस्था का सदस्य नहीं बनूंगा और न उनके ऐसे कार्यों में भाग लूंगा।
५—किसी भी व्यक्ति को अस्पृश्य नहीं मानूंगा।
६—किसी के साथ क्रूर व्यवहार नहीं करूँगा।
  क—किसी कर्मचारी, नौकर या मजदूर से अतिश्रम नहीं लूंगा।
  ख—अपने आश्रित प्राणी के खान-पान व आजीविका का कलुष भाव से विच्छेद नहीं करूँगा।
  ग—पशुओं पर अति-भार नहीं लादूंगा।

श्री महादेव रामकुमार ५६, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट, कलकत्ता द्वारा प्रसारित

... नं॰ C-3828

श्री प्रतापसिंह वैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित (३००० प्रतियां)

क्या आप ऐसा समझते हैं कि भारत की सेना शस्त्र-सज्जित रूस और अमेरिका का सामना करेगी? हमें देश की रक्षा शस्त्र से नहीं करनी होगी, बल्कि वह निर्भयता से, नीतिमत्ता से और एकता से करनी होगी। हमारा देश इतना बड़ा भी नहीं कि वह शस्त्र-सम्पन्न हो सकता है, वह नीतिमत्ता से सम्पन्न हो सकता है। नहीं तो जिस देश में एक मनुष्य के पीछे एक एकड़ भी जमीन नहीं है, वह दूसरे देश की बराबरी भौतिक शक्ति में क्या करेगा? हमारी तो देव सेना होगी। हमारी सेना का एक-एक वीर लाखों के लिए भी भारी होगा। अकेला हनुमान लंका में गया और राक्षस नगरी का दहन करके आया। अंगद अकेला गया और रावण का आसन हिलाकर आया। वह कौन-सी शक्ति थी? वह नैतिक शक्ति थी। वह जो नैतिक शक्ति है, उसी शक्ति से भारत को इसके आगे लड़ाइयाँ लड़नी होंगी। उसके लिए भारत में एकता उत्तम होनी चाहिए। सिपाही के मन में ऐसी भावना होनी चाहिए कि मैं जन-सेवक हूँ, मैं भारतीय हूँ; मैं फलाने धर्म का हूं, फलानी जाति का हूँ, फलानी भाषा का हूँ; ऐसी भावना नहीं होनी चाहिए। छोटी-छोटी कल्पना, धर्म-भेद, जाति-भेद इत्यादि सिपाही के मनमें हो, तो सिपाही खतम ही होता है। सिपाही तो भारतीयता की मूर्ति होना चाहिए। इस प्रकार के गुण उसमें होने चाहिए; क्योंकि इसके आगे नैतिक लड़ाई लड़नी है।

—आचार्य विनोबा

आपके अणुव्रत के विषय में—

कौन क्या कहता है ?

"... . आपका 'अणुव्रत' पढ़कर चित्त प्रसन्न हुआ। हमें आशा है कि आपका पाक्षिक साहित्यिक एवं दार्शनिक क्षेत्र में बहुत ऊँचा उठेगा।"

—वंशीधर महर्षि वकील, मेहकर

"......इतने महान् उद्देश्यों का संदेश-वाहक 'अणुव्रत' अपनी गरिमा के अनुकूल निकल रहा है। लेख, छपाई, सफाई, गेट-अप सभी सुन्दर हैं—आकर्षक हैं। मेरी बधाई स्वीकार करें।

—विद्याभूषण 'श्रीरश्मि' पत्रकार, पटना

"अणुव्रत की एक प्रति अपने एक परिचित के पास देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रथम दर्शन से ही प्रभावित हुआ। व्यथित मानवता को ऐसे अभिनव संदेश देनेवाले पत्रों की आज सर्वाधिक आवश्यकता है।... आपका प्रयत्न इस क्षेत्र में श्लाघ्य है, ऐसा मेरा मत है। प्रगति हो यही आकांक्षा है।"

—पुरुषोत्तम राठी एम० ए०, एटा

"......कुशल सम्पादन एवं पत्रिकाओं में बेजोड़! अपने ढंग की अनूठी तथा प्रेरक सामग्री का चयन वस्तुतः प्रशंसनीय है।... संस्था एवं पत्रिका के प्रति शुभकामना स्वीकार करें।"

—बाबूलाल तिवारी 'नयन', खंडवा

"......एक मित्र की मेज पर 'अणुव्रत' देखा, घर ले आया। एक ही बैठक में पढ़ डाला, बहुत पसन्द आया। मुझे तनिक भान भी न था कि इतना सुन्दर-सात्विक विचारों का पत्र भी प्रकाशित होता है। खैर, प्रशंसा शोभा नहीं देती। केवल इतना ही कि पत्र बहुत ही उपयोगी और आदर्श जीवन का प्रेरक है।"

"१ अगस्त का 'अणुव्रत' देखा। यह जिस पावनपूत उद्देश्य को लेकर आगे बढ़ा है, वह केवल इसकी समृद्धि का सूचक ही नहीं, अपितु स्वतन्त्र भारत के लिये गौरव का विषय है। ऐसे पत्र की बहुत आवश्यकता थी।...'अणुव्रत' में सुरुचिपूर्ण सामग्री प्रकाशित होती है। धन्यवाद!

—रामचरित्र चौधरी, मुजफ्फरपुर

"मैंने ऐसी पत्रिका आज तक नहीं पढ़ी। वास्तव में यह पत्रिका भारत में अपने ढंग की अनूठी व प्रभावोत्पादक है। ऐसी पत्रिका की मैं दिन-दूनी और रात चौगुनी वृद्धि चाहता हूँ।"

—प्रेमचन्द जैन, हैदराबाद

पाठकों से !

'अणुव्रत' को और अधिक लोकोपयोगी व जनरुचिकर बनाने की दृष्टि से 'अणुव्रत' में प्रकाशित रचनाओं के सम्बन्ध में अपने सहृदय पाठकों का मत जानना आवश्यक है

अतः हमारा साग्रह निवेदन है कि भविष्य में सहयोगी पाठक 'अणुव्रत' के प्रत्येक अंक पर अपनी सम्मति, विचार व सुझाव आदि निःसंकोच लिखकर भेजें।

जो पाठक अंक की त्रुटियों व अभावों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे उनके हम विशेष आभारी होंगे।

रचनात्मक विचारों व सुझावों को यथाशीघ्र क्रियान्वित करने का भी प्रयत्न हो सकेगा। —सम्पादक

इनके साथ ही अपने अपने विचार, संगठन के चौराहे से, बाल जगत् एवं

कहाँ क्या हो ३ ट स म

अणुव्रत

[नैतिक जागरण का अग्रदूत]

'अणुव्रत' पाक्षिक
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१
卐
वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।)
सम्पादक—देवेन्द्रकुमार

वर्ष १] १ अक्टूबर, १९५६ [अङ्क २४

स्वार्थ-सिद्धि के लिये दूसरों के अधिकारों को कुचलने से शान्ति नहीं मिलेगी

विवेक संयुत मानव अनन्त-काल से शान्ति की साधना करता आ रहा है। भोग-विलास के पदार्थों को भोगने में शान्ति है या उनके त्याग में—यह प्रश्न आज भी एक बड़े मानव-समुदाय को उलझाये हैं। तत्वद्रष्टा ऋषि जो हुए हैं उन्होंने कहा है—भोग दुःख है और त्याग सुख। यह एक कटु-सत्य है। भोग और विलास इन्द्रियजन्य विकार हैं। विकारों का पोषण और शान्ति की कामना—यह भी आश्चर्य है। विकारों का निरोध और शान्ति का दर्शन—यह तत्व है। भोग और विलास शान्ति देते तो सम्राट् और ऐश्वर्य-समृद्ध व्यक्ति साधुओं के पास शान्ति की याचना करने नहीं आते। साधुओं के अपरिग्रहीपन ने शान्ति का मार्ग प्रशस्त किया है। पूँजी का संग्रह ही चिन्ता का मूल स्रोत बनता है। पास में संग्रह है—रात को नींद नहीं आती। चोर का भय, डाकू का भय, जान का भय—ये सब सताते हैं और नींद हराम करते हैं। इतने पर भी पैसे का मोह है और सारी प्रवृत्तियां उसी दिशा में गतिमान हैं। दिग्भ्रम हो रहा है—पैसे के बल पर सुख और शान्ति आयेगी। उसी के कारण सारा मानव समुदाय पूंजी के संग्रहीकरण में लगा हुआ है। शान्ति दूर, अति दूर बनती जा रही है।

आत्मिक-शान्ति की तरह विश्व-शान्ति का प्रश्न भी एक जटिल समस्या है। विश्व-शान्ति की कल्पना और उसके साथ ही अणु-शस्त्रों का निर्माण—यह शान्ति की विडम्बना नहीं तो और क्या है? इस शान्ति की कामना के पीछे एकाधिकार प्रभुत्व की दुर्भावना कार्य कर रही है। शान्ति-परिषदें और विज्ञान-परिषदें विश्व-शान्ति के लिये नाना प्रारूप प्रस्तुत कर रही हैं किन्तु जबतक अपने स्वार्थ-पोषण के लिये दूसरों के अधिकारों को कुचलने की दुष्प्रवृत्ति चलती है तबतक कुछ बनने जैसा नहीं दीखता। इतिहास के कुछ पन्ने देखिये—वहां भी शान्ति के लिये युद्धों का आश्रय लिया गया—ऐसा लिखा मिलेगा। सम्राट् अशोक ने कलिंग विजय की। युद्ध के परिणाम-स्वरूप लगभग एक लाख मनुष्य मर गये, लाखों आहत हुए। इतने मनुष्यों का बलिदान और कलिंग विजय—प्रभुत्व की प्राप्ति—यह देखकर सम्राट् अशोक का हृदय कांप उठा। क्या यही विजय है? सम्राट् अशोक की आत्मा ने अपने कृत कार्य के प्रति बगावत कर दी और वे शान्ति के लिये धर्म की शरण में चल पड़े। आज भी अशोक के शिलालेख देखिये, आपको मिलेगा—"विजय का अर्थ है—लाखों करोड़ों निर्दोष मनुष्यों का संहार" संहार के बल पर विजय और शान्ति पाने की परम्परा आज भी चालू है।

क्रान्ति का स्वर

अभी-अभी दो महायुद्ध हुए। उनके परिणामों को लोग भूले नहीं होंगे। वे भी शान्ति के लिये हुए होंगे। सत्ता का नशा, युद्ध का आश्रय और मानवता का संहार—यह विनाश की वेदिका है। शान्ति पाने के लिये यह क्रम टूटना चाहिये। सब अपनी मर्यादा का अतिक्रमण न करें, कोई किसी के अधिकार को न कुचले तो शान्तिमार्ग सरल हो सकता है।

युद्धों से संत्रस्त होकर मानव जाति का कुछ भाग सम्हला है, उससे उन्मुख हुआ है, मैत्री और अहिंसा के वातावरण को आगे बढ़ाने के लिये प्रयास किया जा रहा है—यह शुभ लक्षण है। इस प्रयास को बल मिलना चाहिये, यह आगे बढ़ना चाहिये। जो अहिंसानिष्ठ हैं उन पर भी इस समय एक विशेष वजन आता है कि वे उस प्रयास को आगे बढ़ाने में अग्रसर हों। हिंसा की ताकतें निर्जीव बन रही हैं और अहिंसा का बल बढ़ रहा है—यही शान्ति की शुरुआत है, जो आगे बढ़ती रही तो सारा मानव समुदाय सुखी और शान्त बन सकेगा।

—आचार्य तुलसी

समय का तकाजा

स्वार्थ के वशीभूत होकर मानव अन्धा हो जाता है, कोरी दलगत भावना उसके मन व स्वभाव में क्रूरता और द्वेष उत्पन्न कर देती है, 'मैं ही ठीक और मैं ही सब कुछ' का गर्व उसे पतन के गड्ढे में जा ढ़केलता है। मन में धधकती लालसाओं व महत्वाकांक्षाओं की भीषण अग्नि को बड़े-बड़े सिद्धान्तों और विचारों के थोथे उपदेश से शान्त करनेवाले तथाकथित महापुरुष स्वयं उस अन्तर्ज्वाला में भुलसकर भस्मीभूत हो जाते हैं। आज हम स्वार्थ की आँधी का कुछ ऐसा ही रुख देख रहे हैं और इसके फलस्वरूप समय-समय पर जो अनापेक्षित दृश्य सामने आते हैं, वे भी सर्वविदित हैं।

जैसे-जैसे चुनावों की हलचल नजदीक आती जा रही है वैसे ही वैसे आँखों में चका-चौंध उत्पन्न कर देनेवाली भूठी योजनाबन्दी, विज्ञापनबाज़ी, छींटाकसी, भाषणबाजी और सभा-सूचनावाद के दौर रंग लाते जा रहे हैं। देश के कोने-कोने में सभी पार्टियाँ अपनी अपनी कमर कसकर मानो 'सौत की तरह' चुनाव के युद्ध-स्थल में आने को तत्पर हैं। राष्ट्र के नव-निर्माण की हामी इन संस्थाओं के स्वार्थवाद का यह एक नमूना है।

प्रजातन्त्र प्रणाली के अनुसार देश में विचार-स्वातन्त्र्य व जन-जागरण की दृष्टि से दलोंका होना और उनका चुनाव में भाग लेना कोई अनुचित या अस्वाभाविक नहीं। परन्तु केवल चुनाव को ही अपना लक्ष्य बनाकर प्रचार की धूम-धाम मचाना जहाँ उस दलकी सृजनशील कल्पना एवं शक्ति का दिवालिया-पन सिद्ध करता है वहीं राष्ट्र के लिये एक विपत्ति का सन्देश भी देता है। यही वह विनाशकारी मनोवृत्ति है जो आज देश से अधिक पार्टी या दल का हित सोचने को विवश कर रही है। यही वह विघटनकारी तत्व है जो व्यक्ति-व्यक्ति और पार्टी-पार्टी के बीच द्वेष एवं वैमनस्य की लम्बी दरार डालता जा रहा है!! यही वे बेड़ियाँ हैं जो निर्माण पथ पर बढ़ते हुए हमारे कदमों को पीछे खींचने का प्रयत्न कर रही हैं!!!

प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति के सम्मुख प्रश्न है कि क्या इस प्रकार चुनावों से कुछ दिन पहले अपनी लम्बी चौड़ी योजनाएँ जनता के सामने रख देने मात्रसे हमारे कर्त्तव्यकी इतिश्री हो गई? चुनावों के अवसर पर अपने धुँआ-धार भाषणों व तूफानी दौरों द्वारा जनता को वरंगलाने से क्या राष्ट्र का कल्याण हो पाया?

एक दूसरे पर कीचड़ उछालने या गाली-गलौच से क्या जनमत हमारे पीछे लग सका? या चुनाव जीत लेने के बाद जनता के खून-पसीने की कमाई से अपना घर भरकर और समाज में प्रभुत्व जमाकर हम आत्मा के प्रति अपनी वफादारी सिद्ध कर सके? तो उत्तर सम्भवतः निराशाजनक ही मिलेगा।

आज देश को ऐसे अवसरवादी व स्वार्थी तत्त्वों की आवश्यकता नहीं है। विकास के पथ पर चरण धरते हुए भारत को ऐसे निःस्वार्थी, समाजसेवी और कर्मठ देश-भक्तों की आवश्यकता है जो वस्तुतः अपने कार्य, चरित्र, व्यवहार व विशाल-हृदयता के प्रकाश से कलह, स्वार्थ व पतन के अन्धकार को भेद-कर देश के भविष्य को समुज्ज्वल कर सकें, जो अपने सद्विचारों की चिन्गारी से व्यक्ति-व्यक्ति में व्याप्त शोषण, हिंसा, असन्तोष और क्रूरता की होली जला सकें। जिनका आचरण स्वयं ही उपदेश हो और मुख का आत्मीय तेज हो जिनकी मूक भाषा।

अभी कुछ दिन पूर्व एक राजनैतिक नेता ने आज की वस्तु-स्थिति पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि—"हम रचनात्मक कार्यों और जनता की सेवा से विमुख हो रहे हैं और अधिकांश……जनों का कार्य फूट, दलबन्दी, साम्प्रदायिकता फैलाना तथा पद प्राप्त करने के लिये चुनावों में हर प्रकार के वाजिव-गैर वाजिव तरीके अपनाना रह गया है। आज संस्था में सत्ता के भूखे और पद लोलुपियों के भारी संख्या में घुस जाने के कारण सेवा और त्याग के स्थान पर गुटबन्दी और एक साथी द्वारा दूसरे साथी को नीचे दिखाने तथा अनु-शासन भंग करने की प्रवृत्ति ने घर कर लिया है।…नामधारी सक्रिय सदस्य बनने से कोई लाभ नहीं यदि वे निष्क्रिय हों।" आदि-आदि ऐसे अनेक विचार व भाषण हैं जिनसे ज्ञात होता है कि पतन का भूत हमारे सिर पर चढ़कर खुद ही बोल रहा है और हमें कुछ सोचने व करने को विवश कर रहा है।

अपने कर्त्तव्य की पूर्ति एवं सेवा-त्याग का परिचय देने के लिये हमें चुनावों का आकर्षण छोड़ना होगा, पदों की चकाचौंध से आँख मीचनी पड़ेगी, निर्वाचन-विजय की लालसा व इसी तरह के अन्य मधुर स्वप्नों के संसार को तिलांजलि देनी होगी और उपदेश व भाषणों के ऊँचे मंच से नीचे उतरकर जन-जीवन से एकरस होना पड़ेगा उसी समय हम अपना और अपने विचारों का जीता-जागता परिचय जनता के सामने रख सकेंगे। आत्म-सुधार के पथ पर अग्रसर होते हुए प्रत्येक दलका, व्यक्ति का व हमारा यही परम कर्तव्य है और वास्तव में आज यही समय का तकाजा है।

● आदर्श को निभायें !

नागरिकता के अभाव में होनेवाली अनावश्यक बाधाओं और हानियों का ऊपर से चाहे हमें पता न चले, किन्तु कभी-कभी इसके परिणाम-स्वरूप भयंकर और हृदय-विदारक दृश्य भी उपस्थित हो जाता है। उज्जैन का समाचार था कि सस्ते अनाज की एक दुकान पर इतनी भीड़ थी कि एक गर्भवती महिला भीड़ में बुरी तरह से फंस गई और भीड़ की चपेट में आकर बेहोश हो गई व अस्पताल आने से पूर्व ही उस महिला की मृत्यु हो गई।

यह हमारे असंयमित और अनुशासन-हीन जीवन का एक जीता-जागता उदाहरण है। इस तरह न जाने कितनी बार हमारी अनियमितताएं और विश्रृंखलताएं नागरिक जीवन के लिये खतरा पैदा करती रहती हैं। हम पोष्ट ऑफिस, टिकट घर, राशन की दुकान, सिनेमा या अन्य किसी भी समारोह में हो भगदड़, धकापेल और जल्दबाजी से ऐसा नजारा बना देते हैं कि उसे देखकर नागरिकता स्वयं शर्माने लगती है। दिन-रात सभ्यता की डींग हाँकनेवाले—हम किस तरह असभ्यता का परिचय देते हैं? अपनी थोड़ी सी असावधानी और उतावलेपन से किस प्रकार जन-जीवन को दूभर करते हैं? यह प्रश्न जरा सा होते हुए भी महत्वपूर्ण है।

अपने और सार्वजनिक हितको दृष्टिगत रखते हुए, अच्छा हो यदि हम ऐसे अवसरों पर कुछ संयम से काम लें, नागरिकता के नियमों का किसी के दबाव से नहीं अपितु स्वतः प्रेरणा से पालन करें और परस्पर सहानुभूति एवं सहयोग का व्यवहार करके अपने सभ्य नागरिक के आदर्श को निभायें।

● नैतिक जिम्मेदारी

वैयक्तिक या सामाजिक जीवन को समुन्नत, सरस व सफल बनाने में सदैव से 'साहित्य' एक महत्वपूर्ण साधन रहा है। इसके द्वारा रूढ़ीवादिता, अन्ध-विश्वास, वैमनस्य और भेदभाव की चट्टानों को लाँघकर जीवन-धारा को जो युग-चेतना का समतल मार्ग मिला है वह किसी से छिपा नहीं है, विचारों के बीज बोकर इसने जो महान् क्रान्तियाँ रचाई हैं उनका भी इतिहास साक्षी है।

ऐसी अवस्था में जबकि चारों ओर हिंसा, शोषण, भ्रष्टाचार और फूट का बोलबाला है, साहित्य द्वारा निश्चय ही मानवता का पथ-प्रशस्त हो सकता है, परन्तु यह तभी सम्भव है जबकि इससे सम्बन्धित सभी व्यक्ति अपने-अपने उत्तरदायित्व का निष्ठा व ईमानदारी से पालन करें। इस दृष्टि से साहित्यकार के साथ ही साथ प्रकाशक का स्थान व कार्य भी प्रमुख है। तभी तो राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने पिछले दिनों कहा था—"आज प्रकाशकों की जिम्मेदारी है कि नयी पीढ़ी में अच्छे साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न करें।"

अपनी इस नैतिक जिम्मेदारी को पूरा करना यद्यपि असंभव नहीं है किन्तु स्वार्थ और लालच से असंभव बना हुआ है, यह भी कटु-सत्य है। चन्द चाँदी के टुकड़ों के लोभ में अश्लील और भ्रष्ट साहित्य निर्माण करके जनता की मनोभावना को विकृत और कुत्सित करने का दुस्साहस करना नैतिक अपराध है।

अतः व्यवहारिक कठिनाइयाँ होते हुए भी हमें लोकहित के विचार से अपने व्यवसाय के निमित्त धन का लालच छोड़ना होगा तभी हम अपनी जिम्मेदारी पूरी कर सकेंगे और सद्‌साहित्य का निर्माण कर जन-मानस की रुचि को भी उसकी ओर मोड़ सकेंगे।

—o—
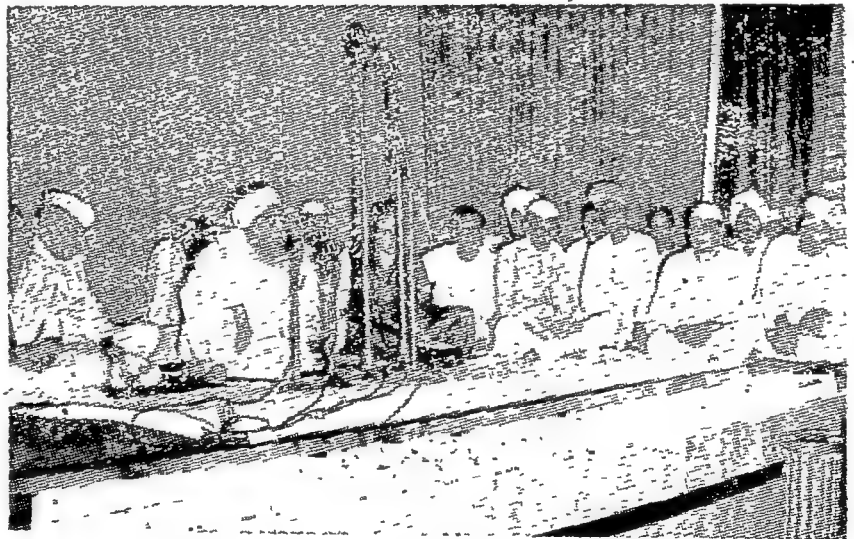
गत २८ अगस्त को दिल्ली में आयोजित द्वितीय विद्यार्थी अणुव्रत सप्ताह के अवसर पर दिल्ली के मुख्यमंत्री सरदार गुरुमुख निहाल सिंह भाषण करते हुए। सामने से बायें—केन्द्रीय रक्षामंत्री डा० कैलाशनाथ काटजू, संसद सदस्या श्रीमती सावित्री देवी निगम।

दायें—दिल्ली राज्य के विकास मंत्री श्री गोपीनाथ अमन, श्री मोहनलाल कठौतिया, ला० मंगतराय जैन, ला० गिरधारीलाल जैन,

पीछे—श्री पन्नालाल सरावगी, M. L. C., स्थानकवासी कान्फ्रेंस के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री चम्पालाल बांठिया, अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक परिषद् के जनरल सेक्रेटरी श्री एस० पी० जैन "नसीम" व श्री मदनलाल जैन।

हम सिकुड़ते क्यों जा रहे हैं?

[श्री विद्याभूषण 'श्रीरश्मि']

[यदि यही क्रम आगे भी जारी रहा तो एक दिन हम इतना सिकुड़ जायेंगे कि हमारा अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा। तो क्या मनुष्य अपनी समाप्ति चाहता है? यदि नहीं तो फिर क्या कारण है इसा वतावरण का—इस अविवेकपूर्ण गति का? हम सिकुड़ते क्यों जा रहे है? यह प्रश्न आज हमें, आपको और सभी मनुष्यों को अपने हृदय से हल करना है।]

एक राजकुमार थे। एक बार वे पर्यटन के लिए वन्य प्रदेश में गये। साथियों के साथ बातचीत करते हुए आगे बढ़ने के क्रम में राजकुमार ने अपनी उँगली से रत्नजटित अँगूठी निकाल ली और उस अँगूठी से खिलवाड़ करते हुए वे आगे बढ़ते गये। एक स्थान पर अँगूठी उनके हाथ से गिर पड़ी और लुढ़क कर कहीं चली गयी। लोग ढूँढ़ने लगे अँगूठी को—ढूँढ़ते-ढूँढ़ते लोग थक गये, पर अँगूठी नहीं मिली। राजकुमार ने ऊबकर अपने साथियों से कहा—"जाने दो, चलो अपने ही देशके किसी व्यक्ति के हाथ लगेगी न!" खोज बन्द हो गयी। लोग आगे बढ़ गये।

जब यह बात राजकुमार के गुरुके कान में पहुँची तो वे बहुत दुःखी हुए। लोगों ने समझा था कि राजकुमार के उदार दृष्टिकोण को जानकर गुरु महोदय प्रसन्न होंगे, पर ऐसा हुआ नहीं। लोग बहुत आश्चर्यान्वित थे गुरु महोदय की चिन्ता को देखकर। अन्ततः एक व्यक्ति ने पूछा—"परम श्रेष्ठ! राजकुमार ने तो उदारता का परिचय दिया, फिर भी आप चिन्तित क्यों हैं?"

गुरु महोदय ने उत्तर दिया—"राजकुमार की दृष्टि उदार नहीं, संकुचित है, इसीलिए।"

लोग भौंचक! यह कैसी उल्टी बात! श्रोता गुरुदेव का मुंह ताकते रहे।

गुरुदेव ने लोगों की जिज्ञासा को शांत किया—"यदि राजकुमार की दृष्टि उदार होती तो वह यह नहीं कहता कि अँगूठी किसी स्वदेशवासी को मिलेगी, इसलिए चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। यदि वह उदार होता तो कहता—किसी मनुष्य के ही काम आयगी। छोड़ दो, मत ढूँढ़ो।"

किन्तु उस राजकुमार के बराबर भी उदारता आज हममें नहीं है। हमारी दृष्टि संकुचित होती जा रही है—हम सिकुड़ते जा रहे हैं! क्या यह चिन्ता की बात नहीं है?

यह सर्वमान्य तथ्य है कि एक ही ईश्वर या प्रकृति ने संसार की रचना की है। जिस शक्ति ने मनुष्य का निर्माण किया है, उसीके द्वारा चींटी को भी जीवन मिला है। इस संसार की प्रत्येक वस्तु का जन्म एक ही सूत्र से हुआ है और उसी सूत्र के द्वारा सबका विनाश निश्चित है। इस प्रकार प्रकट होता है कि सभी प्राणी मूल रूप से एक हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं है। यह दूसरी बात है कि आवश्यकता के अनुसार सभी भूतों या प्राणियों के स्वभाव, गुण, शक्ति आदि में न्यूनाधिक मात्रा में अन्तर है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सृष्टिकर्ता या प्रकृति ने निर्माण-कार्य में अपनी पसन्दगी या नापसन्दगी का परिचय दिया है और इसके आधार पर शक्तिशाली को शक्तिहीन पर, सुन्दर को असुन्दर पर और तीव्र को मन्द पर शासन करने या अत्याचार करने का अधिकार है। सभी प्राणी समान हैं और प्रकृति का विधान है कि सहयोग के द्वारा जीवन व्यतीत किया जाय।

हिन्दू शास्त्रों में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त अपनाने की बात कही गयी है। कहा गया है कि सबसे प्रेम करो—सबके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझो, अपनी दृष्टि विशाल बनाओ। इतना ही नहीं, भय दिखलाने के लिए, मानव को नियमाबद्ध रखनेके लिए 'गीता' में श्रीकृष्णने कहा है :—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७।७॥

अर्थात् "हे धनंजय! मेरे अतिरिक्त किंचित् मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्र में सूत्र के मणियों के सदृश मुझमें गुंथा हुआ है।" मोटे तौर पर इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान सर्वत्र है। संसार की सभी वस्तुओं में उसका निवास है। और, चूंकि एक अदने-से-अदने पदार्थ में भी ईश्वर का निवास है, इसलिए उससे प्रेम करो—उसे ठुकराओ नहीं। ईश्वर का जितना अंश आपमें है, उतना ही एक निकृष्ट (आपकी समझ में) प्राणी अथवा भूत में भी है। संसार का कोई भी ऐसा धर्म नहीं है, जो यह नहीं कहता कि सभी प्राणियों का जन्मदाता एक ही परमेश्वर है और सभी प्राणियोंके प्रति प्रेम-भाव रखना चाहिये। जो लोग ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते और सारी सांसारिक गतिविधियों को स्वयं चालित प्रकृति मानते हैं, उनकी समझ में तो यह बात और शीघ्र आ जानी चाहिये कि नित्य परिवर्तनशील संसार में सभी कुछ अस्थायी है और किसीके प्रति आकर्षण या उचाटन एक भूल है—

उनके बौद्धिक विकास को चुनौती है। यह भी एक निश्चित तथ्य है कि आकर्षण या उच्चाटन का मन से तिरोहण विश्वमैत्री की भावना का मुख्य स्तम्भ है। इस प्रकार आस्तिक एवं नास्तिक, दोनों ही प्रकार के लोगों को 'विश्वमैत्री' का सिद्धान्त स्वीकार होना चाहिये। और सच तो यह है कि कम या अधिक, केवल दिखाने के लिए या हृदय से, सभी मनुष्य इस बातको स्वीकार भी करते हैं।

मनुष्य को सृष्टि का सर्वोपरि बौद्धिक प्राणी होने के नाते सच्ची मनुष्यता का परिचय देना चाहिये। कम-से-कम पशुता पर, और उससे भी नीचे तो नहीं ही उतरना चाहिये। प्रायः सभी देशों की जो प्राचीन कहानियाँ उपलब्ध हैं, उनमें मनुष्य का पशु-पक्षी तथा पेड़-पौधों से प्रेमपूर्ण सम्बन्ध हमें देखने को मिलता है। इतना ही नहीं, मनुष्य के साथ पशु-पक्षियों एवं पौधों आदि के सम्भाषण के दृष्टान्त भी जहाँ-तहाँ मिलते हैं। उन कहानियों के वैसे प्रसंगों में कितनी सचाई है, यह प्रश्न विवादास्पद है। यदि वे प्रसंग सत्य भी हों तो आजका वैज्ञानिक युग विश्वास कर लेगा उन बातों पर, यह सम्भव नहीं मालूम पड़ता। फिर भी यदि वे वर्णन कपोल-कल्पित भी हों तो उन आदर्शों पर चलकर विश्वमैत्री की ओर कदम बढ़ाने में क्या हानि है, जबकि हमारे धर्मग्रन्थ और विज्ञान इस बातका समर्थन मात्र ही नहीं करते, बल्कि इसके लिए हमें प्रेरित करते हैं और सबके कल्याण का एकमात्र मार्ग विश्व-प्रेम बतलाते हैं। आज का युग दमयंती और शकुंतला के युग से कई सदी आगे है। तदनुरूप ही हमारी प्रगति भी हुई है। बौद्धिक विकास के क्षेत्र में भी हम उसी अनुपात से आगे बढ़े हैं, परन्तु यह अत्यन्त खेद की बात है कि हमारा बौद्धिक विकास एक अत्यन्त संकुचित क्षेत्रमें हुआ है और स्वार्थ की भावना हममें घनीभूत हो गयी है। हम सबसे पहले अपने स्वार्थ पर नजर डालते हैं, फिर अपने समकक्ष एवं निकटस्थ गिरोह पर दृष्टिपात करते हैं और इसके बाद अकारण ही अपने से हीनों पर एवं अपने से विपरीत दिशा में जानेवाले लोगों पर आक्रमण शुरू कर देते हैं, उन्हें मिटा देने का प्रयत्न करते हैं। हमारी स्वार्थी मनोवृत्ति इतनी उग्र हो गयी है कि हम अपने सिवाय और किसी को देखना भी नहीं चाहते।

आज का मनुष्य मनुष्यता के आदर्शों से गिर गया है और अज्ञान-सागर में डुबकियाँ लगाता वहा-वहा जा रहा है। भाई-भाई में द्वेष, पड़ौसी से शत्रुता, पति-पत्नी में वैमनस्य, प्रदेश-प्रदेश में तनातनी, धर्म-धर्म में संघर्ष, भाषा-भाषा में द्रोह, राष्ट्र-राष्ट्र में विरोध, ऊँच-नीचका भेद, काले-गोरे में कलह, आदि ऐसी बातें हैं जो मनुष्य को पशु से भी बहुत नीचे प्रमाणित कर रही हैं। अखिल चराचर के प्रति प्रेम-भाव तो सपने की बात भी नहीं रह गयी है। धर्म के नाम पर आसुरी वृत्तियाँ इतनी प्रबल होती जा रही है कि अधर्म भी लजा रहा है। सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों की मूल सीख है—'संसार से प्रेम कर, सबको अपना मान।' यदि मनुष्य सबको अपना नहीं मानता, तो कम-से-कम मानव-मात्र को तो उसे अपना मानना ही चाहिये।

चरण रुक न जायें

[श्री विश्वदेव शर्मा एम० ए०, साहित्यरत्न]

नयी जिन्दगी का नया काफिला है,
नयी राह है लक्ष्य नूतन मिला है,
कुंवारी सुबह है, कि सूरज उनींदा—
कि मन का सुमन मुस्कराकर खिला है।
बुलायें भले ही किनारे मचल कर,
नदी के तरल ये चरण रुक न जायें।

कि हर फूल नर्तित लिये ताल नूतन;
भ्रमर गा रहे हैं मधुर गीत गुन-गुन;
पलक पांवड़े हैं बिछाते सभी तरु;
लता का भरा गंध से आज यौवन—
कि मरु की मगर याद मन से न जाये—
पवन के सरल ये चरण रुक न जायें।

भले राह का श्रम कि तन को थकाये,
कि मन-दीप की लौ निराशा बुझाये,
अंधेरा बिछे राह में पांवड़े बन—
स्वयं राह अपनी दिशा भूल जाये—
मगर लक्ष्य जीवित रहे चेतना में—
पथिक के प्रबल ये चरण रुक न जायें।

अन्य प्राणियों के साथ मनुष्य को भले ही कतिपय आधारभूत अन्तर दृष्टिगोचर होते हों, किन्तु मनुष्यों के साथ तो ऐसी कोई बात नहीं है। यदि मनुष्य मनुष्य का अनिष्ट करता चला जायगा, तो इसका क्या परिणाम होगा, सहज ही अन्दाज लगाया जा सकता है। फूट और दलबन्दी, सम्भव है, आज विशेष-विशेष मनुष्यों की हित-सिद्धि करें, परन्तु कल इसका परिणाम बड़ा भयंकर होगा और आज तक सृष्टि के आरम्भ से हम जितना आगे बढ़े हैं, उतना ही पीछे हट जायेंगे और वह दिन दूर नहीं होगा, जब हमारी सभ्यता और संस्कृति ताक पर धरी रह जायगी और मनुष्यता बर्बरता में परिणत हो जायगी।

एक मनुष्य और संसार का सर्वाधिक बुद्धि विकसित प्राणी होने के नाते संसार के प्रति हमारे भी कुछ कर्त्तव्य हैं और उन कर्त्तव्यों को पूरा करना स्वयं अपने हित में हमारे लिए आवश्यक है। अणु और उद्‌जन बमों का निर्माण करनेवाले और इसी तरह के वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रों के बल पर कूदनेवाले मनुष्यों और राष्ट्रों को यह समझना चाहिये कि संसार के विनाश के साथ ही उनका अस्तित्व भी समाप्त हो जायगा और विनाशकारी शस्त्रादि उनके विनाश का भी कारण बनेंगे। गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी का यह सिद्धान्त कि 'संसार को केवल प्रेमसे ही जीता जा सकता है' मानवधर्म के मूलतत्त्व का प्रकाशक है और आज या कल, पाशविक वृत्तियों की शान्ति के बाद इसका रहस्य भयानक से भयानक मानवता-विरोधी की समझ में भी आ जायेगा। आज जिस प्रकार हम सिकुड़ते जा रहे हैं, यदि यही क्रम आगे भी जारी रहा तो एक दिन हम इतना सिकुड़ जायेंगे कि हमारा अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा। तो क्या मनुष्य अपनी समाप्ति चाहता है? यदि नहीं, तो फिर क्या कारण है इस वातावरण का—इस अविवेकपूर्ण गति का? हम सिकुड़ते क्यों जा रहे हैं? यह प्रश्न आज हमें, आपको और सभी मनुष्यों को अपने हृदय से हल करना है और फिर हार्दिक अनुभूति के अनुसार आगे का कार्यक्रम तय करना है।

—o—

कामना और कर्तव्य

[श्री हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि']

कामना पतन के गर्त में गहरे गिराती है और कर्तव्य उत्थान-गिरि के शिखर पर चढ़ाता है।

परन्तु आश्चर्य असीम हो उठता है यह देखकर कि कामना की सब सुनते हैं, कर्तव्य की विरले।

आखिर ऐसा क्यों?

मानव को पतन ही अभीष्ट है क्या?

न, न यह बात नहीं।

कामना का दासत्व स्वीकार करके, कतव्य-भ्रष्ट होनेवाले मानव मानव कहाँ हैं? मानव-चोले पशु में हैं पशु वे तो;—नहीं पशु से भी गये-बीते हैं।

मानव और कर्तव्य-निष्ठा का तो चोली-दामन का सा साथ है, जो कर्तव्य-निष्ठ है, वही मानव है। अतः यह प्रश्न ही एक सिरे से निःशेष हो जाता है।

लेकिन एक बात और—

जिसमें कामना और कर्तव्य एक-दूसरे के गले में वरमाला पहिना, सदा-सदा के लिये प्रणय-सूत्र में आबद्ध होकर, धूप-छाँह के वस्त्र की तरह अलग-अलग झलक-झाँई देते हुए भी, तत्त्वतः एक हो जाते हैं, उस परिपूर्णता की सीमा पर पहुंचे हुए मानव को क्या कहें? मानव; भगवान या कुछ और? कहते नहीं बनता।

न बने। पर लक्ष्य यही है मानव जीवन का। मंजिल यही है नर-चोले की। उस तक पहुंचना ही होगा। पहुंचे बिना चैन है न चारा।

और इसीलिये निरर्थक नहीं है अस्तित्व कर्तव्य के साथ-साथ कामना का भी। संघर्ष-भट्टी में तपा-तपा कर परिपूर्णत्व-कुन्दन का लाभ तो वही कराती है मानव को—कर्तव्य-निष्ठ मानव को—मानव की सहज सत्य-साधना के फलस्वरूप, कर्तव्य के लक्ष्योन्मुख चरणों में स्वयं का अस्तित्व सहज विलुप्त करके—ऐसे कि जैसे था ही नहीं।

—o—

हमारे देश में

नैतिकता की आवश्यकता

[श्री रघुनाथ शास्त्री]

[जबतक हमारी सरकार की प्रत्येक इकाई धर्म, सदाचार, सत्य, अहिंसा पर व्यावहारिक बल नहीं देगी, साधु-सन्तों का समुदाय नैतिकता को उठाने की बागडोर अपने हाथ में न लेगा, वर्तमान शिक्षा का कुरूप ढंग नैतिक प्रारूप में न आयेगा....तबतक हमारा देश स्वर्गोपम एवं जगद्गुरु न बन सकेगा]

महाभारत से पूर्ववर्ती भारतीय साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि इस देश में नैतिकता एवं महान चारित्र्य के निर्माण का एक विशाल साम्राज्य था। मर्त्यजीवन का चार महत्वपूर्ण भागों में व्यावहारिक आवश्यकताओं के अनुसार विभाजन था। सर्वप्रथम माता, पिता तथा गुरु आचार्य ही के द्वारा मानव-जीवन की प्रारंभिक नींव का रुचि के साथ निर्माण होता था। यहाँ तक नहीं स्मार्त, श्रौत तथा गृह्यसूत्रों में वर्णित संस्कारों से पता चलता है कि अन्तर्वत्नी माताओं को मन मलिन होने का कोई भी साधन नहीं अपनाना चाहिये क्योंकि जिस २ परिस्थिति के वातावरण में माँ सुख-दुःख का अनुभव एवं व्यापार करेगी उसीका नमूना माँ के पेट से पैदा होगा। अतः मनुष्य के पवित्र जीवन की नैतिक एवं पौष्टिक पृष्ठभूमि के निर्माण का दायित्व माताओं पर है।

नगरों तथा गांव की बालिकाएँ जो भविष्य में इस देश की पीढ़ी-दर-पीढ़ी के सृजन का भार वहन करनेवाली हैं उनका रहन-सहन-विवषना, बाहर, भीतर की उनके संबंध में आम चर्चाएँ किसीसे छिपी नहीं हैं। गांव की माताओं की परंपरा वर्णनातीत मूर्खता के वातावरण में हजारों वर्षों की कुरीतियों में बनती आरही है। नगरों एवं छोटे २ कस्बों की दूषितप्रायः परिस्थितियों में जिस स्त्री-समाज के विकास का नाटक खेला जाता है। उसे विकास के नामपर प्राचीन परम्परा की दृष्टि से महान ह्रास कहना समीचीन जान पड़ता है।

अतः जिस भवन के निर्माता एवं नींव कमजोर हो उसकी ऊपरी मंजिलें कब कितनी देर में ढह जाय यह बताना कठिन नहीं है। ठीक इसी प्रकार सारे देशके जीवनका प्रारंभिक निर्माण होता जारहा है। शिक्षा-दीक्षा, समाज की परम्परा के आग्रहानुसार एवं मौलिक विश्वासों पर आधारित नहीं है। स्कूलों, कालेजों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में प्राचीन साहित्य एवं पिछले अमर इतिहास के बारे में पढ़ने का प्रबंध नहीं है। धार्मिक, नैतिक, चारित्रिक, एवं सदाचार के क्रियात्मक अध्ययन-अध्यापन का भी प्रबंध नहीं है। योग्यता की उपेक्षा करके टोटल नंबरों में या अधिक से अधिक नंबर पाने की होड़ में बालकों का प्रारंभिक जीवन बीतता रहता है। अपनी २ इच्छा एवं संकल्पानुसार शिक्षा सत्र से निकलने पर पराश्रित रोजी-रोजगार-नौकरी के नाम पर सहस्रों की संख्या में ये प्रारंभिक जीवन की हमारी पीढी ठोकरें खाती फिरती है। प्रायः छोटी बड़ी नौकरियों में थोड़े श्रम से अपेक्षित सुख मिल जाने के कारण शिक्षित-जन उसी को अधिक पसंद करते हैं। ऐसा करने के लिए वे बाध्य भी हैं क्योंकि पढ़ते २ और पढ़ने के जीवन में अनेक विषयों के नमूने का अध्ययन करते २ सारा शरीर उसीके लक्ष्य में सुखा डालते हैं। वर्तमान समाज के जीवन की व्यावहारिकता की अधिक आलोचना करना हमारा गंतव्य नहीं, क्योंकि यह बिम्ब सबके अनुभूत एवं समक्ष है।

प्राचीनतमकाल की इस धरापर निवास करनेवाली जनता की क्या मांग थी? उसके बारे में एवं उस दिशा में सारे देश को पीछे मोड़ने का संकेत ही हमारी लेखनी का निश्चित श्रम है। किंतु यह कार्य इस समय ऐसा लगता है कि जैसे इस देश का स्तर गिरते २ हजारों वर्ष लगे हैं उसी भांति इसे नैतिक बागडोर को संभालने में भी हजारों नहीं तो सैकड़ों वर्षों की तो अनिवार्य प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी। बात यह है कि किसी महान् उद्देश्य के सर्जन में एवं उसकी लक्ष्यपूर्ति में अधिक समय लगता है और ध्वंस में स्वल्पकाल ही लगता है।

प्राचीनकाल में जब सारा देश जगद्गुरु था, उस समय के जीवन की पुनः २ चर्चा एवं व्यवहार-आचरण से ही अपना पिछला आदर्श अपना सकते हैं। उस समय जनता का जीवन चार भागों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास, में विभक्त था और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यही चार सबकी आकांक्षाएँ थी। इनमें से आज एक गृहस्थाश्रम और अर्थलिप्सा ही प्रधान रूप से शेष है। शिक्षा-दीक्षा का संचालन सारे देश में वानप्रस्थी संन्यासी ही करते थे। उनकी सीमित आवश्यकताएँ थीं, तप एवं संयम

का जीवन जंगलों में बीतता था। २५ वर्ष तक का प्रारंभिक जीवन उन्हीं की देखरेख एवं प्रभाव में बीतता था। यह कोई आवश्यक न था कि प्रत्येक ब्रह्मचारी या विद्यार्थी २५ वर्ष में ही शिक्षा-शास्त्र को छोड़कर गृहस्थाश्रम में आवे। प्रत्युत ४८ वर्ष तक का जीवन प्रारंभिक शिक्षा के लक्ष्य की पूर्ति का था। उसके पश्चात् ७५ या उसके आसपास का जीवन गृहस्थी का सुख देखकर वानप्रस्थोन्मुख होता था। उसमें परिपक्व होनेपर मुमुक्षु का जीवन बिताने के लिए सन्यास लेना पड़ता था। संन्यासी एकत्र का सेवक न होकर सम्पूर्ण राष्ट्र का मनोनीत सेवक होता था।

अब प्रश्न यह है कि उस समय के फल-फूलों तथा खाद्य सामग्री से पूर्ण वनस्थलियाँ नहीं हैं। उस बारम्वार स्मरणीय युग का प्रतिबिम्ब भी आज सपना हो गया है। संसार के रीति-रिवाज, रहन-सहन, वेशभूषा, भाषा एवं सोचने का ढंग और विविध आकांक्षाओं में महान परिवर्तन हो गया है किन्तु पृथ्वी, चाँद, सूर्य, आकाश, हवा, पानी, मिट्टी, पर्वत, नदियां वही हैं। उनके रूप में अन्तर नहीं है। युगप्रवर्तक महात्माओं का जन्म सदा से होता ही आ रहा है। इसलिए उस युग का सपना साकार बनाने में निराश नहीं होना चाहिए।

एक बात समझ में आती है और बार २ प्रेरणा मिलती है। सदा से इस देश में साधु-संत, महात्माओं का समुदाय देश के नैतिक चरित्र के आदर्श को व्यावहारिक बनाने में बड़ा भारी संबल रहा है। जब-जब देश में धार्मिकता एवं नैतिकता का स्तर गिरा है तब-तब संतों, कवियों एवं विद्वानों ने ही सफल नेतृत्व किया है। यवनों से आक्रांत होनेपर सूर, तुलसी, कबीर ने बागडोर संभाली थी जिनसे प्रभावित होकर आज भी करोड़ों की संख्या में जन-समुदाय वर्तमान है। उनकी बातें (उपदेश) रोज २ दुहराए जानेपर भी प्रति-दिन नई २ जंचती हैं। इस युग में भी सबसे अधिक एवं ताजा प्रभाव महात्मा गांधी का दीख पड़ता है।

बौद्धकालीन भारत के महात्माओं, भिक्षुकों एवं प्रतिभा-संपन्न विद्वानों का तो चमत्कारी इतिहास देखते ही बनता है। उस समय का चक्रवर्ती सम्राट अशोक धार्मिक एवं बौद्ध होते हुए भी सभी धर्मों की सार्वभौम मौलिकता की रक्षा करता था। स्वयं धर्म का बाना धारण करके उपदेश एवं प्रजा का अनुरंजन करता था। सारे एशिया तथा अन्य देशों के लोग अपनी प्रतिभा को परखने, संवारने एवं विविध आचार-विचार से संबन्धित बातों की शिक्षा लेने के लिए नालंदा, तक्षशिला में बार २ आते थे।

हमारे यहाँ के भी जो आजन्म तपोमय जीवन व्यतीत करनेवाले विविध नैतिक साहित्य के विद्वान बाहरी देशों के आग्रह पर वहां जाकर सम्पूर्ण जीवन बिता देते थे। तिब्बत-चीन के दुर्गम मार्ग में प्रचारार्थ फंस कर जीवन-लीला समाप्त करने की अनेक घटनाएँ मिलती हैं। तिब्बत की भेड़, बकरियाँ चरानेवाले जनसमुद्र के स्वभाव में यहां के विद्वान जाकर हिल-मिल गए थे और उनको ऊँचा उठाने में अपना उत्सर्ग कर देते थे। धर्म से सम्बन्धित मूर्ख जनसमुदाय के अनेक वादविवादों को निपटाने एवं निर्णय देने में बहुसंख्यक देशरत्न विद्वानों ने अपने प्राणों की आहुति भी चढ़ा दी थी। तिब्बत में कमलशील तथा ज्ञानेन्द्र जैसे महाप्रतापी विद्वानों की यही अमर-गति हुई थी।

किन्तु आज समाज की अनेक भाव धाराओं में जकड़े संतों-साधुओं की मर्यादाएँ अब व्यावहारिक नहीं हैं। उनकी देशव्यापी एवं सर्वजन तक पहुँचनेवाली वाणियां स्वतंत्र मठ-मंदिर तक ही सीमित रह गई हैं। एक सत्री संगठन नहीं है। लोक में आधुनिक शिक्षा के आग्रहवश उनकी उपेक्षाएँ हो रही हैं। धार्मिक तथा नैतिक वातावरण पैदा करनेवाली पाठशालाएँ, ऋषिकुल व गुरुकुलों का नितांत अभाव है। प्रत्येक परिवार अपनी आगे आनेवाली पीढ़ी को 'हाय पैसा, हाय पैसा' वाली शिक्षा दिलाता है। योग्यता के नामपर लिखे-लिखाए प्रमाण-पत्र ही विद्वत्ता का परिचायक होते हैं। इसलिए नैतिकता की गिरावट को लेकर जितना लिखा जाय सब सदा थोड़ा ही रहेगा। हमारे देश के माने हुए नेतागण भी इस दिशा में रुचिके साथ संकेत करने लगे हैं। पर बोलने में और बोलने के अनुसार बातों को व्यावहारिक बनाने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।

अतः जबतक हमारी सरकार की प्रत्येक इकाई, धर्म, सदाचार, सत्य अहिंसा पर व्यावहा-रिक बल नहीं देगी, साधु-संतों का समुदाय नैतिकता को उठाने की बागडोर अपने हाथ में न लेगा, वर्तमान शिक्षा का कुरूप ढंग नैतिक प्रारूपमें न आएगा, सदाचार एवं नैति-कता के अधिक नंबरों के अभिप्राय से जबतक फेल-पास की सारे देश में लहर न दौड़ाई जावेगी तबतक हमारा देश स्वर्गोपम एवं जगद्-गुरु न बन सकेगा।

—०—

अपने दोषों से मुक्त होने के लिये उत्सुक और तैयार रहिये। विचार और आचार में सादगी अपनाने का साहस कीजिये। सेवा की इच्छा रखने की तुलना में सेवा करना अधिक ऊँची चीज है। नित्य के कार्यों से ही आपके चरित्र की जाँच होती है।

सेवा करने की आपकी शक्ति अनन्त है। आप अपनी शक्ति को पहचानिये।

—स्वामी कृष्णानन्द

वह भी पैरों में गिर पड़ा !

[मुनिश्री सुखलालजी]

[सुना था सत्य की विजय होती है, झूठ से आदमी कभी फल-फूल नहीं सकता पर गिरीश ने तो झूठ बोलकर गजब ढ़ाह दिया। सत्य बोलकर वह अपने रुपयों की रक्षा नहीं कर सकता था पर झूठ बोल क…अ…र…तो… और इस तरह क्या सचमुच ही वह सफल हो सका, उसकी आत्मा शान्त हो सकी ? यह एक प्रश्न है जिसका उत्तर ढूंढिये इस कहानी में।

—सम्पादक]

गिरीश !ओ गिरीश !! बाहर से आवाज आई। ध्वनिमें चिर परिचितता थी। अतः गिरीशने सम्बोधनको झेल लिया, बोला—क्यों निशान्त? अन्दर आजाओ तो! निशांत अन्दर आने लगा। कमरेमें पैर रखते ही बोला—गिरीश! आज तो १० रुपये चाहिये जरुरी काम है। घर से यों ही चला आया अब याद आया कि बाजार से घी लेते जाना है। गिरीश जानता था कि निशान्त को रुपये देने का मतलब है—उनसे हाथ धोना। अनेक अवसरों से परिपक्व होकर अनुभूति ने जब शब्दों का जामा पहना तो वह थी—'भाई! आज तो मेरे पास रुपये नहीं हैं। अभी मैं भी ऑफिस से आरहा हूं, आते वक्त फल लाया उसके भी पैसे नहीं दे सका। आजकल विना नगद पैसों के ये लोग किसीको फल देते ही नहीं। अतः रमेश से उधार लेकर चुकाकर आया हूं। मजबूर हूं भाई! कहते शर्माता हूँ अभी तो रुपये नहीं हैं।'

'देखो तो केश में होंगे, १० नहीं तो ५ ही दे दो। छोटा डिब्बा ही ले जाऊंगा नहीं तो माताजी बिगड़ेंगी।'

गिरीश—'सच कहता हूं भाई! पैसे हैं नहीं, नहीं तो भला १० रुपये के लिये तुम्हें क्या इन्कार करता।'

निशान्त चला गया। कहे भी तो क्या? जानता था कि गिरीश की जेब भारी है, पर उससे ऐसा कहा भी तो कैसे जाये? अपने दोष से दवा हुआ मनुष्य सत्य को भी सत्य नहीं बना सकता। पास में बैठे गिरीश के नौकर रामू ने यह बात सुनली। सोचने लगा—सुना था सत्य की विजय होती है, झूठ से आदमी कभी फलफूल नहीं सकता पर गिरीश ने तो झूठ बोलकर गजब ढाह दिया। सत्य बोलकर वह अपने रुपयों की रक्षा नहीं कर सकता था, पर झूठ बोलकर तो उसने अपने रुपये बचा ही लिये। सरल, सीधे और सत्यवादी १० वर्ष के रामू ने आज यह नया ही अनुभव किया कि झूठ और चोरी करके भी रुपये पैदा किये जा सकते हैं। सारे दिन उसके दिमाग में यह आन्दोलन रहा। तरह तरह की बातें सोचता रहा। शाम के समय वह गिरीश के कमरे में पानी भरने आया। अचानक उसकी दृष्टि खूंटी पर टंगी गिरीश की कमीज पर टिक गई। भारी जेबें जैसे कह रही थी—मेरे में रुपये भरे पड़े हैं और फिर उसके मनमें वे विचार घूम गये कि झूठ से रुपये बचाये जा सकते हैं। उसने सोचा—तो क्या वह भी झूठ से रुपये नहीं कमा सकता? क्या वह भी गिरीश की जेब में से रुपये नहीं निकाल सकता? सहसा उसके मनमें एक सिहरन-सी उठी छिः छिः वह कभी चोरी कर सकता है? चोरी पाप है और पाप का फल है दुःख! उसने अपने को समझाया, पर तर्क ने फिर जोर लगाया, पाप क्या है? क्या गिरीश को पाप नहीं लगता? लगता है तो फिर वह सुखी नजर क्यों आता है? भला गिरीश जैसा सुखी व्यक्ति भी पाप से नहीं डरता तो उसे क्या डर है? क्यों न जेबमें से रुपये निकाल लें" लेकिन तर्क हुआ—कोई देखलो तो? फिर तो चमड़ी नहीं उधड़ जाय, और समाधान हुआ—अभी देखता कौन है? गिरीश खेलने गया है। बाबूजी के आफिस से आने में देर है और सब घर में काम-काज में व्यस्त हैं। क्यों नहीं रुपये उठालूं? पूछेगा तो कह दूंगा—मैंने तो नहीं लिये। मुझे क्या पता रुपये कहाँ गये? इधर उधर देखा कोई देख तो नहीं रहा है और चुपके से जेब में हाथ डाला १०-१० के दो नोट हाथ में आये। आखिर साहस करके लेकर दौड़ा। पानी भरना भूल गया, जी बैठा सा जा रहा था। समस्या आई—अब रुपयोंको छुपाया कैसे जाये? समाधान चला—जेबमें रखलूं। फिर समस्या आई—जेब में तो कोई देख लेगा। अंटी में रखलूं पर यह भी सुरक्षित नहीं। सुरक्षा का चिन्तन आगे बढ़ा। आखिर ध्यान गया कि घासमें छिपा दूं और उसने वैसा ही किया। रुपये छिपा तो दिये पर अन्दर से आत्मा मानो कचोट रही थी, काम करता था पर मनमें ध्यान एक ही लगा

रहता था—कहीं चोरीका भेद खुल न जावे। बार-बार ध्यान घासके ढेरमें जाता—कोई रुपये ले तो नहीं रहा है। रात को सोया तो स्वप्न आया—गिरीश को उसकी चोरी का पता चल गया है। धन्ने ने गिरीश के आगे उसका सारा भण्डा-फोड़ कर दिया है। वह नींद में ही चिल्लाया 'नहीं मैंने रुपये नहीं लिये'। मेरी जेब देखलो मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं निर्दोष हूं। मुझे मत पीटो। पास में सोये हुए धन्नेकी नींद खुल गई। उसने सारी बातें सुनली पर समझ न सका। आखिर बात क्या है। सोचा—बच्चा है ऐसे ही बड़बड़ा गया होगा और फिर से नींद लेली।

सवेरे गिरीश ने अपनी जेब संभाली। उसमें २० रुपये गुम थे। देखते ही उसका दिल धक-धक करने लगा। रुपये कहाँ गये यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। आँखें बन्द कर सिर पर हाथ रखकर उसने बहुत कोशीश की कि उसने किसी को रुपये दे तो नहीं दिये हैं। पर दिये हों तो याद आये। उसने बाबूजी से कहा—२० रुपये नहीं मिले। इधर-उधर देखा, पूछ-ताछ की पर पता नहीं चला। धन्ने से पूछा। उसने रात की घटना सुनाई और कहने लगा—सम्भवतः रुपये रामू ने लिए हैं। उसकी बात को थोड़ा क्रियात्मक आश्रय था। गिरीश ने रामू को डराया धमकाया पर अब तो वह शिक्षा पा चुका था कि झूठ से धन की रक्षा की जाती है। झट नट गया। प्रेम-पुचकार, डराना-धमकाना कुछ भी काम नहीं आया तो उसने रामू पर हाथ उठा लिया। क्रोध में उसे ध्यान नहीं रहा और रामू के जोर से दे मारी। वह रोता-रोता अपने घर आया। माता-पिता ने उसके रोने का कारण पूछा। उसने सारी स्थिति सुनाई और कहा—मैंने रुपये बिल्कुल नहीं उठाये पर गिरीश बाबू ने मुझे पीटा। और उसने अपने शरीर पर मार पड़ने के चिन्ह भी दिखाये। उसके पिता को इसका बहुत दुःख हुआ। वह गिरीश के पिता के पास आया और गिरीश की निर्दयता की सारी घटना सुनाई। उन्होंने गिरीश को बुलाया और पूछा—तुमने इसे पीटा क्यों? उसने उत्तर दिया—रामू ने मेरे २० रुपये चुरा लिये और धन्ना इस बात का साक्षी है। रात्रि में जब रामू सोया हुआ था तो स्वप्न में यह बड़बड़ाया कि "रुपये मैंने नहीं लिये हैं। इसका क्या अर्थ होता है? मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य उसी चीज के लिये बिना पूछे नकार करता है जिस चीज का उसे अपने में सन्देह हो, और स्वप्नावस्था में तो यह विशेषतः सच है। अतः मैंने चोरी के दोष से इसको पीटा"।

रामू ने कहा—भैया! क्यों झूठ बोलते हो? आपके पास तो उस दिन रुपये थे ही नहीं तो मेरे द्वारा रुपये चुराने का प्रश्न ही कहाँ रह जाता है!

गिरीश ने कहा—छोकरे झूठ बोलता है। मेरे पास रुपये नहीं थे। क्या प्रमाण है मेरे पास रुपये नहीं थे? रामू ने कहा—बताऊं। चलिये निशान्त बाबू से पुछाऊं। गिरीश अब थोड़ा अचकचाया, कहने लगा—थे कैसे नहीं? रामू के पिता ने उसके मुँह के भाव पढ़ लिये और झट निशान्त को बुला लाया। निशान्त ने कहा—हाँ साहब! मैंने उस दिन गिरीश से रुपये मांगे पर इन्होंने स्पष्ट इन्कार कर दिया कि मेरे पास आज रुपये बिल्कुल नहीं हैं। मैं तो उल्टा रमेश से उधार लेकर फल लाया हूँ। गिरीश का सारा शरीर ठंडा हो गया। उसने निशान्त से क्षमा मांगी कि भाई! मैंने तुमसे झूठ ही यह कह दिया था कि मेरे पास रुपये नहीं हैं। वास्तव में मैं तुमको रुपये देना नहीं चाहता था। अतः मैंने तुम्हें झूठ ही कह दिया था। पर यह सही है कि मैं उसी दिन आफिस से वेतन लाया था और उसमें से २० रुपये गायब थे। उन्हें रामू के सिवाय और कौन ले जा सकता था?

रामू ने देखा—गिरीश भया झूठ बोलकर सुखी नहीं हो सके, उल्टा उन्हें अपने पर पछतावा होरहा है। तो क्या सचमुच ही आदमी झूठ बोलने से दुःखी होता है? वह झट दौड़ा और घास में से रुपये लाकर गिरीश के पिता के पैरों में रख स्वयं भी उनके पैरों में गिर पड़ा।

—:०:—

परम्परा

[श्री वष्णुदेव नारायण यादव]

रात्रि आई। पृथ्वी पर निविड़ अन्धकार छा गया। एक व्यक्ति पहाड़ों की गोद से निकला और घाटियों की ओर जाने लगा। उसके हाथ में एक मसाल थी।

थोड़ी ही दूर जाने पर उसने देखा कि सामने की चट्टान पर एक नंगा युवक बैठ कर रो रहा है। कुछ ही दिनों पूर्व उसके एक सम्बन्धी की मृत्यु हो गई थी। युवक सुन्दर था। गोरा शरीर और भूरे बाल। किन्तु उसने अपने को काँटों से नोच-नोच कर असुन्दर बना डाला था और उसके बाल भी अस्त-व्यस्त हो रहे थे।

राही रुका। उसने युवक की स्थिति का अनुमान लगाया, फिर बोला—"आखिर तुम्हें इसका इतना दुःख क्यों है? मनुष्य की मृत्यु तो अवश्यम्भावी है ही! फिर यदि मर ही गया तो क्या हुआ? रोने-धोने से वह लौटकर तो आ नहीं सकता?"

युवक ने कहा—"मैं उसके लिए नहीं रोता, मैं तो अपने लिये रोता हूँ। मैंने अपने जीवन में क्या कुछ भला नहीं किया? मैंने पीड़ितों की सेवा की, अन्धों को ज्योति दी, तृषित को जल दिया। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का जो कुछ भला कर सकता है, वह मैंने किया मगर फिर भी ये दुनियांवाले अपनी वहशी परम्परानुसार मुझे शूली पर क्यों नहीं चढ़ाते, मुझे गोली क्यों नहीं मारते? इसीका दुःख है मुझे।"

—ऑस्कर वाइल्ड की एक लघुकथा पर आधारित

मांझी का गीत

[श्री खुर्शीद]

रे मांझी ! उठा आज तूफान
संभलकर नाव चलाना !
उफ़ना पानी
रैन भयानी
लहरों की मद होश जवानी
तेज रवानी
तुम्हें सुनानी
तूफ़ानो से भरी कहानी
संघर्षों की एक निशानी।
रे मांझी ! लहरों को पहिचान
संभलकर दीप जलाना !
भोर कहां है
छोर कहां है
सुबह का सूरज चोर कहां है
मोर कहां है
शोर कहां है
चाँद न निकला चकोर कहां है !
गहरा सागर ठोर कहाँ है !!
रे मांझी ! उठा शीश असमान
नया सूरज चमकाना !
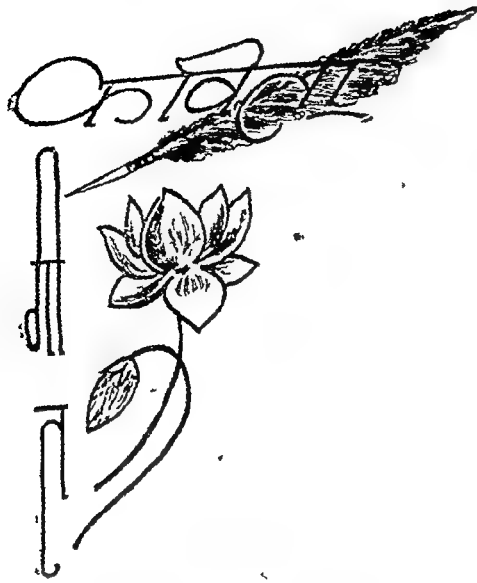
मानवी चोगा लिये पशु खेलता है

[मुनिश्री नगराजजी]

अर्थ के उत्तुङ्ग शिखरों से चली यह धार
उगलती शत-शत अनर्थों के विकट उद्गार

टूक मानवता हुई जो थी इकाई रूप
शैल धन के हो गये और दीनता के कूप
एक नर दुर्बल हुआ है एक दैत्याकार
अर्थ के उत्तुङ्ग शिखरों से चली यह धार ॥१॥

मानवी चोगा लिए पशु खेलता है खेल
देव के आवरण में है दानवों का मेल
आज होते दुर्जनों के स्वप्न भी साकार
अर्थ के उत्तुङ्ग शिखरों से चली यह धार ॥२॥

एक कौड़ी लाभ पर ही झूठ बोला जाय
एक कौड़ी लाभ पर निज धर्म तोला जाय
भूलना हो लालची नर मानवी व्यवहार
अर्थ के उत्तुङ्ग शिखरों से चली यह धार ॥३॥

बन्धु शोणित का पिपासी हो रहा नर-कीट
ध्वंस करने विश्व को अणुबम बनाता धीठ
मूल्य मानव का घटा यह प्रलय का आसार
अर्थ के उत्तुङ्ग शिखरों से चली यह धार ॥४॥

साधनों के ढेर में अब खो गया है साध्य
पीत रोगी पीत ही सब देखने को बाध्य
नाम से निर्माण के अब हो रहा संहार
अर्थ के उत्तुङ्ग शिखरों से चली यह धार ॥५॥

—o—

आचरण

श्री मंजुल

लो खिला फूल;
वेदना भूल;
मधुवन में मेरे यौवन का।
आयी समीर;
होकर अधीर;
बोली "है यह जीवन किसका?"
बोली आभा;
जैसे प्रतिभा;
"यह है दुलार मेरे कवि का।"
पूछा नभ से;
भू के तल ने;
"है क्या रहस्य इस उन्नति का।"
बोला अम्बर;
कुछ मुस्काकर;
"है खाद आचरण जीवन का।"

—o—

देश की भावी आशाओं पर—

अणुव्रत आन्दोलन का व्यापक प्रभाव

[मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी, देहली]

अणुव्रत आंदोलन के विद्यार्थी-सप्ताह के सम्बन्ध में लगभग पांच हजार छात्रों में हम साधुजन मिले। विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच में प्रवचन दिये व उनसे बातचीत की। वार्तालाप में चरित्र-निर्माण के विषय में सर्वत्र आकर्षण पाया। अध्यापक वर्ग भी इस विषय में दत्तचित्त दिखाई दिये। मुनिश्री नगराज के प्रवचनों का प्रभाव विद्यार्थियों के मानस को आंदोलित करता था। मुनि नगराज अध्यापकों से विशेषतया कहते—वे स्वयं विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम की एक पुस्तक हैं। अन्य पुस्तकों के पढ़ने का माध्यम वर्णमाला और अध्यापक रूपी पुस्तक को पढ़ने का माध्यम अध्यापक का आचार-विचार है। अतः अध्यापक को इस ओर पूर्ण सावधान रहना चाहिये। विद्यार्थियों से आप कहते—"विद्यार्थियों! तुम्हें गुरुजनों का अनुशासन अप्रिय लगता है क्योंकि वह तुम्हारी अबोध स्वतन्त्रता में बाधक होता है। पर यह तुम सत्य समझो कि अनुशासन तुम्हारे जीवन के निर्माण के लिये ही तुम पर थोपा गया है।"

मुनि नगराज का उपदेश श्रोताओं की पात्रता पर निर्भर रहता था। वहाँ छोटे विद्यार्थियों में मनोरंजक व शिक्षाप्रद छोटी-छोटी कहानियाँ कहकर बच्चों को आनन्द विभोर बना देते।

इस साप्ताहिक समागम से विद्यार्थियों में साधुजनों के प्रति एक श्रद्धा का भाव और चरित्र-निर्माण की बातों के प्रति आकर्षण बढ़ा। वह इस बात से भली भांति जाना जा सकता है कि शहर में जहाँ कहीं भी हम जाते हैं और कहीं भी परिचित विद्यार्थियों की टोली मिल जाती है, तो बहुधा प्रणाम आदि शिष्टाचार के साथ वे पूछते हैं, आप हमारे विद्यालयों में फिर कब आयेंगे, हम चाहते हैं आप जल्दी ही फिर आयें।

छात्रों में फैशन जैसी चीज हमलोगों ने नहीं पाई पर छात्राओं में उसी फैशन की पराकाष्ठा देखी। कुछ एक कन्या विद्यालयों में जाने पर तो ऐसा लगा कि यह विद्यालय है या कोई शृंगारोत्सव! छात्राओं का क्या दोष? अध्यापिकाएं भी रेशमी, रंगीन और बहुमूल्य वस्तुओं में आवेष्टित रहती हैं। इस सप्ताह में जो नया अनुभव मिला वह यह है कि छात्रायें भी अब धूम्रपान करती देखी जाती हैं। छात्रों में धूम्रपान घटने की ओर लगा और छात्राओं में यह श्रीगणेश के रूप में पाया गया, फिर भी छात्राओं का बौद्धिक विकास, व्यवहार कौशल, उनके प्रगतिमूलक विचार आदि जो जानने को मिले वे अवश्य हर किसी को प्रभावित करनेवाले और नारी जाति के विकासोन्मुख भविष्य के सूचक थे। इण्डियन एज्यूकेशनल इंस्टीट्यूट की दो सौ छात्राओं में जब मुनिश्री ने समाज में चलने वाली ठहराव की प्रथा पर प्रकाश डाला तब समस्त छात्राओं के हृदय में एक उत्साह देखा गया। एक छात्रा ने मुनिश्री के प्रवचन के बीच में प्रश्न किया—"हम छात्रायें इस बात का संकल्प कर लें—हम ठहराव के साथ होने वाला विवाह नहीं करायेंगी।" मुनिश्री ने स्मित भाव से कहा—यदि आपमें इतना बल जागृत हो जाये तब कहना ही क्या? अन्त में छात्राओं ने ठहराव के साथ शादी न करने की शपथ ली।

अनुशासनशीलता भी छात्रों की अपेक्षा छात्राओं में अधिक देखी गई। छात्राओं में भी बड़ी छात्राओं की अपेक्षा छोटों में अनुशासनशीलता अधिक पाई गई। ऐसा भी अनुभव में आया कि स्कूल के विद्यार्थी कालेजों में जाकर उच्छृङ्खलता को बढ़ावा दे देते हैं। देखा गया है स्कूलों में अध्यापकों का प्रभाव विद्यार्थियों पर है, कालेजों में विद्यार्थियों का प्रभाव अध्यापकों पर। कहीं कहीं तो वातावरण इतना अनुत्साहपूर्ण मिलता है कि बेचारे अध्यापक विद्यार्थियों से डर कर श्वास तक नहीं खींचते।

सहशिक्षा के सम्बन्ध में जो अनुभव में आया उसे छिपाया भी कैसे जा सकता है। चारित्रिक दृष्टि से सहशिक्षा का प्रभाव कहीं भी सुन्दर अनुभव में नहीं आया।

राम नहीं रावण

कुछ लोग यह मांग कर रहे हैं कि देश के सभी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए। किन्तु यह ठीक नहीं। सत्ता एवं सम्पत्ति का एकत्रीकरण राम नहीं, रावण उत्पन्न करता है। राष्ट्रीयकरण का शब्द भले ही मीठा लगता हो पर वह बड़ा ही अहितकर है तथा दलीय तानाशाही को, जिसका सुनियोजित षड्यन्त्र चल रहा है। प्रोत्साहन देता है।

—गुरुजी

एक भावपूर्ण लघु कथा—

और इन्सान डटा रहा......

—सुश्री सुनीता अग्रवाल

निराश-सा वह सूनी पगडंडी पर बढ़ता चला जो रहा था—मन में नव-जीवन की एक आशा लिये।

तब ही अचानक उसका मार्ग आलोकित हो उठा—मार्ग में एक विचित्रता सी उत्पन्न हो गई।

वह विहँस उठा—नेत्र मुस्करा उठे—
जीवन अंगड़ाई लेने लगा।

एक आवाज गूँजी—'ओ आशा-निराशा में झूलनेवाले मानव! क्या तेरा मार्ग यही है? यह मार्ग तो आगे चलकर अत्यन्त बीहड़ एवं कण्टकाकीर्ण हो जायगा। इसे छोड़ दे।'

'नहीं—देवी! मैंने इस मार्ग का अनुसरण किया है। जबतक अपने लक्ष्य पर नहीं पहुंच जाऊँगा। निरन्तर बढ़ता ही रहूँगा। यह माना कि मार्ग आगे चलकर बीहड़ एवं कण्टकाकीर्ण है—किन्तु मानवीय आशा एवं दृढ़ता के सामने कोई बीहड़ता एवं कण्टकता खड़ी रह सकती है? दृढ़ निश्चय से जीवन में नई स्फूर्ति का संचार होता है। आशा उसे मार्ग दिखाती है—जीवन सुखमय बनता है। देवी, मुझे अपने निश्चय से मत डिगाओ।'

'मानव! तू जानता है—मैं कौन हूँ? मैं निराशा हूं? मुझ से मत उलझ' तेरी समस्त आशाओं पर मैं क्षणभर में पानी फेर सकती हूँ।'

'कोई बात नहीं, देवी! तुम सब कुछ करने में समर्थ हो। यदि तुम्हें मेरी आशाओं को नष्ट ही करना है—तो मैं तुम्हें रोक थोड़े ही सकूंगा। किन्तु फिर भी तुम्हें इतना अवश्य बता दूँ; मैं मानव हूं। मानव का कर्त्तव्य निराशा, कठिनाइयों और परेशानियों से ही जूझना है। इस जूझने में आशा ही सहायक होती है। मानव और आशा का इतना गहरा सम्बन्ध है कि हजार ईश्वर भी आकर इस सम्बन्ध को तोड़ना चाहें तो भी इस सम्बन्ध का विच्छेद नहीं हो सकेगा। ज्यों-ज्यों आशायें दलित होंगी—त्यों-त्यों मानव उसका पल्ला मजबूती से पकड़ता जायेगा।'

[यदि दुनिया के निरीह मानव के पास इन दो अक्षरों का जादू नहीं होता, तो आज इस धरापर दो टांगवाले इस जीवन का कोई भी चिह्न नहीं होता। आशा के इस शब्द के सहारे वह ऊँचे-ऊँचे पर्वत पार कर जाता है...और....]

'मानव! इतना घमण्ड मत कर। मेरी शक्ति अपार है।'

'देवी,! मैं सब-कुछ मानता हूँ। किन्तु आज तुम मुझे मेरे पथ से विलग नहीं कर सकती।'

'क्यों?'

'मैं मानव हूं। आशा मेरी संगिनि है। इस मार्ग की एक-एक ठोकर मुझे आशा का सन्देश दे रही है। इस मार्ग का एक-एक वृक्ष अपनी मौन वाणी से मुझे आशा तक पहुँचने का साहस दे रहा है। इस मार्ग पर देवी! तुम स्वयम् भी आशा तक पहुँचने के मेरे निश्चय को और भी अधिक दृढ़ बना रही हो।'

'नहीं! नहीं! मैं तुम्हारे निश्चय को दृढ़ क्यों बनाने लगी? अरे जा, ओ क्षुद्र बुद्धि मानव! तू मुझे बनाने की कोशिश कर रहा है। मेरे सामने बड़े-बड़े घुटने टेक चुके हैं—तू किस खेत की मूली है। देख, अब भी समय है—लौट जा, अन्यथा मुँह की खानी पड़ेगी।'

'नहीं, देवी! मुझे अपने मार्ग पर बढ़ना ही है।'

उसी समय प्रचण्ड वेग से आँधी चल पड़ी। मार्ग पर चलना दूभर हो गया। वह पथिक उस प्रचण्ड वायु-वेग में भी किसी-न-किसी प्रकार आगे बढ़ता ही गया।

निराशा को अपनी हार होती प्रतीत हुई। उसने पुनः मानव के अन्तःकरण को खटखटाया—'अरे इन्सान! अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है, लौट जा, आशा का पल्ला छोड़ दे। यह आँधी-तूफान तेरे लौटते ही फौरन बन्द हो जायेगा।'

'नहीं। नहीं, देवी! मैं बढूंगा, आगे बढूंगा।'

'कैसे?'

'आशा का पल्ला पकड़कर।'

'आशा! आशा!! इस आशा ने तो मेरे कानों को दीमक-सी लगा दी है। अच्छा मानव! मैं एक शर्त पर हार मानने के लिये तैयार हूँ। तू मुझे आशा का रहस्य समझा दे।'

'देवी! आशा वे दो-अक्षर हैं, जो जीवन को सुखमय बनाये रखते हैं। यदि दुनिया के निरीह मानव के पास इन दो अक्षरों का जादू न होता, तो आज इस धरा पर दो टाँगवाले इस जीव का कोई भी चिह्न शेष नहीं होता। आशा के इस शब्द के सहारे वह ऊँचे-ऊँचे पर्वत पार कर जाता

संगठन के चौराहे से—

आन्दोलन की प्रवृत्तियां दिन-प्रतिदिन प्रगति के पथपर

[श्री प्रतापसिंह बैद]

गत २५ अगस्त को अणुव्रत समिति के एक विशेष कार्य को लेकर देहली, बोलारम व बनारस जाना हुआ। देहली का कार्य करके एक दिन के लिये सरदारशहर में अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी के दर्शन करने का भी सौभाग्य प्राप्त किया।

देहली में मुनिश्री नगराजजी व मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी के कार्यक्रम को देखकर आन्दोलन के कार्य की दृष्टि से काफी प्रेरणा मिली। मुनिश्री सभी सम्प्रदाय तथा जाति के छात्र-छात्राओं में नैतिक जागरण का कार्यक्रम चला रहे हैं। दूसरे विद्यार्थी अणुव्रत सप्ताह का उद्घाटन कार्यक्रम भी देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। डा० श्री कैलाशनाथ काटजू ने उद्घाटन करते हुए कहा—"हमारे देश का सौभाग्य है कि यहाँ बड़े-बड़े महात्माओं ने जन्म लिया। भगवान महावीर यहाँ हुए। बुद्ध यहाँ हुए। उनके उपदेश जीवन के लिये बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। आचार्यश्री तुलसी जो कर रहे हैं—मुनि जी जो कर रहे हैं, उन नियमों को जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई है। आज विद्यार्थी बच्चे हैं पर वे कल गृहस्थ बनेंगे, देश के आदर्श नागरिक बनेंगे। आज यदि उनके जीवन में ये सुसंस्कार उतरें तो उनकी जिन्दगी सुधर जायगी, उनका जीवन सीधा, सादा और सुखी होगा। विद्यार्थियों के लिये बनाये गये ये नियम उनके लिये बड़े उपयोगी हैं।" इस प्रकार देहली में श्री मोहनलालजी कठौतिया के पास पाँच दिन के सहवास और उनके मार्ग-दर्शन में काम करने का आनन्द प्राप्त करके बोलारम चला गया।

साथियों के कार्य से प्रेरणा पाने व अणुव्रत-भावना के रचनात्मक रूप के प्रत्यक्ष दर्शन की उत्कंठा लिये बोलारम पहुँचा। समिति के अध्यक्ष भाई पारसजी से पुराना व नया ३ वर्षों से सम्बन्ध है ही। बम्बई में पंचम अणुव्रत अधिवेशन पर जब वे गये थे तो उन्होंने "अणुव्रत साधना मंदिर" की एक योजना-कार्यकर्त्ताओं के सामने रक्खी थी। उन्होंने कहा था "अणुव्रत-आन्दोलन में विशेष सक्रियता लाने के लिये अहिंसक समाज की रूपरेखा बनानी पड़ेगी तथा इसके माध्यम से कुछ कार्यकर्त्ता भी अहिंसक समाज के रचनात्मक काम में जुट जायेंगे तो मुझे बड़ी खुशी होगी। पहिले कार्यकर्त्ताओं को स्वयं तपना होगा, तभी तो तेज निकल पायेगा।" इसी को लक्ष्यकर उन्होंने व श्रद्धेय मिश्रीमलजी ने वहाँ समिति के विधान की १२वीं धारा के अन्तर्गत सम्बन्धित संस्था के रूप में 'साधना मन्दिर' के नाम से कार्यक्रम प्रारम्भ किया, जहाँ इस समय ये प्रवृत्तियाँ चल रही हैं:—खादी उत्पादन, आधुनिक घानी केन्द्र, अखाद्य तेल व साबुन उद्योग, घरेलू दियासलाई उद्योग, धान कुटाई व हाथ चक्की, बुनियादी तालीम, हाई स्कूल, संगीत विद्यालय, व्यायाम शिक्षण केन्द्र व खादी ग्रामोद्योग भंडार। इस प्रकार वहाँ सभी विभागों में ५०-६० भाई बहिन डटकर कार्य कर रहे हैं। यहाँ के खादी उत्पादन विभाग में ऐसी दो बहिनों को, जो पहिले वेश्या थीं, काम करते हुए व उनके बदले हुए जीवन को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। सबेरे ७॥ बजे से ९ बजे तक शारीरिक श्रम का कार्यक्रम चलता है, इसके पश्चात् 'गीता प्रवचन' का पाठ तथा अणुव्रत-प्रार्थना होती है। तीन रोज तक इन कार्यक्रमों में भाग लेकर बड़ी खुशी हुई।

आचार्यश्री तुलसी की सुशिष्या साध्वीश्री सोहनांजी का चातुर्मास कार्यक्रम भी इस वर्ष इसी नगर में हैं और आध्यात्मिक कार्यक्रम बड़े ही सुव्यवस्थित ढङ्ग से चल रहा है।

बोलारम प्रवास की यह बात भी उल्लेखनीय है कि भाई मिश्रीमलजी पर्दा प्रथा को ठीक नहीं समझते। उनका कहना है कि यह बहिनों के ज्ञान पर अज्ञान का पर्दा लगा हुआ है। इसी दृष्टि से उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जबतक यहाँ की पाँच बहिनें पर्दा नहीं उठा लेंगी मैं भोजन नहीं करूंगा। उनकी इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुनकर बड़ा भारी हर्ष हुआ और अन्त में पाँच बहिनों के पर्दा उठा लेने पर उनकी प्रतिज्ञा सफल हुई।

बोलारम की मधुर स्मृतियों को समेटे बनारस आने का कार्यक्रम बना और यहाँ सर्वश्री दादा धर्माधिकारी, विमला बहिन, लक्ष्मीनारायणजी एवं जमनालालजी के सम्पर्क में आकर व भूदान तथा सर्वोदय साहित्य के प्रकाशन आदि की व्यवस्था सम्बन्धी जानकारी प्राप्तकर आनन्द हुआ।

इस प्रकार सोचे हुए सभी कार्यों को निपटाकर और अणुव्रत-आन्दोलन की रचनात्मक व प्रचारात्मक प्रवृत्तियों के साक्षात् दर्शन करते हुए १४ दिन के प्रवास से वापस कलकत्ता लौट आया।

है, गहरी और दुर्गम खाइयों में उतर जाना है। ऊँची, हवा से बातें करनेवाली अट्टालिकाओं का निर्माण कर लेता है। मानव के पग-पग पर आशा साथ निभाती है—साथ चलती है—निराशा में ढाढस बढ़ाती है।'

'अच्छा! कुछ और?'

'हाँ, देवी! सच तो यह है कि आशा तुम्हारे भी साथ थी।'

'किस प्रकार?'

'तुमने मुझे मेरे निश्चय से डिग जाने की आशा ही में तो मेरे मार्ग को कठिनतर करने का प्रयास किया था।'

अबतक प्रचण्ड वायु-वेग रुक चुका था। वह अपने पथ पर पुनः चल पड़ा—हंसता मुस्कराता-सा।

एक विचारणीय प्रश्न !

जागरण तो तब हो जब नीति की भित्ति हो। क्या आपको नहीं लगता कि बहुत सी भित्तियाँ टूट चुकी हैं ?

क्या नीति की कल्पनाएं वही रहेगीं जो सनातन सम्मत, मनुस्मृति सम्मत या हिन्दू, बौद्ध-जैन-ईसाई-मुस्लिम धर्म-शास्त्रों पर आधारित होंगी ? याकि युगानुसार उनमें परिवर्तन करना आवश्यक है ? यह परिवर्तन कहाँ से जागेंगे ? व्यक्ति से, समूह से या संस्था से ?

—प्रभाकर माचवे

[माचवेजी ने "अणुव्रत" के पाठकों के विचारार्थ उपरोक्त प्रश्न उठाया है। अतः इस विषय पर पाठक व विद्वान अपने विचार सहर्ष प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं। इस अंक में श्री वक्काणी के विचार प्रकाशित किये जा रहे हैं। —सम्पादक]

माचवे जी का यह कथन उचित ही है कि नीति की भित्ति के बिना 'जागरण' नहीं हो सकता। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि नीति से क्या मतलब लिया जाए ? संक्षेप में नीति की व्याख्या यह हो सकती है कि जिसके द्वारा समाज में स्थित भ्रष्टाचार, दुराचार, व्याभिचार आदि बुरे आचारों का नाश होकर समाज की उन्नति हो सके, उसे नीति कही जाए।

यह बात भी हमें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है कि नीति की बहुत-सी भित्तियाँ टूट चुकी हैं। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि अब जागरण होना असंभव है ; क्योंकि नीति की भित्तियाँ भले ही पर्याप्त मात्रा में टूट गई हों किन्तु नीति की नींव अब भी मजबूत हालत में है। उस पर नई भित्तियाँ बनाई जा सकती हैं। नव जागरण हो सकता है।

युग में परिवर्तन होता जा रहा है। भौगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांप्रदायिक आदि बातों के कारण यदि नीति की कल्पना में भी थोड़ा बहुत परिवर्तन कर दिया जाए तो अनुचित न होगा। किन्तु यदि कोई यह कह उठे कि नीति की कल्पना में आमूल परिवर्तन होना चाहिए तो वह परिवर्तन न तो उस व्यक्ति को लाभदायी सिद्ध होगा न समाज को। फिर राष्ट्रको तो लाभदायी हो ही कैसे सकता है ?

जितने भी धर्मशास्त्र हैं, फिर चाहे वे सनातन सम्मत हों, मनु सम्मत हों या हिन्दू-बौद्ध-जैन-ईसाई-मुस्लिम सम्मत हों, वे सभी उच्चतम तत्त्वज्ञान से लबालब भरे पड़े हैं। यदि इन तमाम धर्म-शास्त्रों का सूक्ष्म-निरीक्षण किया जाए तो यही दिखाई देगा कि सब शास्त्र विश्व के तमाम मानवों की उन्नति चाहते हैं। लेकिन मानव की प्रगति चाहनेवाले उन धर्मों के मार्ग भिन्न-भिन्न हैं और इसी कारण से ओछी बुद्धिवाले मनुष्य अपना व्यक्तिगत उल्लू सीधा करने के लिए दूसरे धर्मों को अक्सर बुरा बताने का प्रयत्न करते हैं। संक्षेप में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि प्रत्येक धर्म में बताई हुई नीति की कल्पनाएं अच्छी ही हैं। यदि उनके अनुयायियों द्वारा उनका पालन योग्य रीति से न होता हो तो उन धर्मशास्त्रों का क्या कसूर ? और इसी दृष्टि से अब नीति की कल्पनाएं कुछ प्रमाण में बदलनी पड़ेंगी क्योंकि जब युग ही बदल रहा है तब नीति की कल्पनाएं वैसे ही किस प्रकार रह सकती हैं ? जिस तरह मिठाईवाला बच्चों को चीनी की चाशनी से भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे खिलौने बना देता है उसी प्रकार नीति के भी भिन्न-भिन्न प्रकार बना देने चाहियें। किन्तु एक बात न भूलें, वह यह है कि नीति का अन्तरंग धर्मशास्त्रों में बताए गए तत्त्वों के अनुसार ही हो, चाहे नीति का बहिरंग कैसे भी रहे।

जिस प्रकार राजकपूर 'श्री ४२०' में कहता है कि मेरी पतलून इङ्गलिस्तानी, टोपी रूसी और जूते जापानी होने पर भी दिल हिन्दुस्तानी है उसी प्रकार नीति का बहिरंग भले ही बदला जाए, कोई चिन्ता नहीं, किन्तु इसका अन्तरंग तो शतप्रतिशत धर्मशास्त्रों में बताए हुए तत्त्वों के अनुसार ही होना चाहिए।

इस परिवर्तन को जगाने के लिए व्यक्ति और संस्था दोनों के ही सहकार्य की आवश्यकता है। एक व्यक्ति कभी भी अकेला कुछ नहीं कर सकता जैसे कि घास का तिनका, किंतु यदि अनेक तिनकों को संगठित कर उसका रस्सा बनाया जाए तो मदोन्मत्त हाथी को भी उससे बन्दी बनाया जा सकता है। ठीक इसी तरह अनेक व्यक्तियों से सुसंगठित संस्थाओं द्वारा ही नीति की कल्पनाओं का परिवर्तन हो सकता है।

—निहालचन्द आनन्दजी वक्काणी

—×—
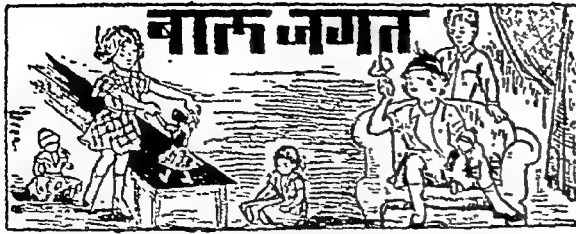
बात करने का ढंग

[श्री नथमल नाहटा]

पुराने समय की बात है कि एक जंगल में एक महात्मा रहता था। वह दिन-रात अपना सारा समय हरि-भजन में ही व्यतीत करता था। परन्तु इस तरह का हरिभक्त होते हुए भी दोनों नेत्रों से विहीन था।

संयोगवश एक दिन एक राजा शिकार खोजते हुए उसी जगह आ पहुँचा, जहाँ महात्मा ध्यान लगाये बैठा था। राजा ने महात्मा से पूछा—क्या इधर से कोई शिकार गया है? महात्मा ने जवाब दिया—आहट तो मालूम हुई थी, दाहिने तरफ जाइये। राजा आगे बढ़ गया। कुछ समय बाद राजा का मन्त्री भी वहीं पर आ पहुँचा और महात्मा से पूछा—महात्मा जी! इधर से कोई हिरण गया है? महात्माजी बोले—एक जानवर जाने की आवाज तो मालूम हुई थी। दाहिने तरफ जाइये, राजाजी भी इधर गये हैं। मन्त्री आगे बढ़ गया।

कुछ समय बाद एक सवार आ पहुंचा, जो राजा का नौकर था। सवार ने महात्मा से पूछा—ओ अन्धे! इधर से कोई जानवर या मनुष्य गया है? महात्माजी सोचकर बोले कि राजा और मन्त्री शिकार को खोजते आगे गये हैं, तू सवार होकर भी पीछे रह गया। इतना सुनकर सवार भी चला गया।

कुछ समय बाद राजा, मन्त्री और सवार तीनों एक जगह पर मिले तो महात्मा की बात एक-दूसरे से कहने लगे और तीनों आदमी बड़े आश्चर्य में पड़ गये कि साधु अन्धा होते हुए भी हम लोगों को कैसे पहचाना कि ये तीनों राजा, मन्त्री और सवार हैं। इस बात को समझने के लिये ये तीनों व्यक्ति उतावले हो गये और चलकर महात्मा से पूछने का विचार किया।

थोड़ी देर बाद तीनों आदमी महात्मा के आश्रम के सन्निकट पहुँचे। महात्मा के समीप जाकर राजा ने महात्मा को प्रणाम किया और पूछा—महात्माजी! आपने हम तीनों को कैसे पहचाना कि यह तीनों राजा, मन्त्री व सवार हैं।

महात्मा ने आशीर्वाद देते हुए कहा—महाराज! यह सब बातों से। राजा—सो कैसे? साधु बोला—जो जितना बड़ा या बुद्धिमान आदमी होता है उसकी बोली में उतनी ही नम्रता तथा शीतलता होती है और बिना बुद्धिवाला आदमी घमण्ड में चूर रहता है।

—

मजेदार कहानियाँ

[*श्री हाथीमल हिरावत*]

एक काजी ने किताब में पढ़ा कि जिस आदमी का सिर छोटा और दाढ़ी बड़ी होती है, वह एक नम्बर का बेवकूफ तथा मूर्ख होता है। काजीजी ने यह पढ़कर फौरन आइना उठाया। देखकर सोचने लगे—मेरा सिर छोटा और दाढ़ी बड़ी जान पड़ती है, तो क्या मैं बेवकूफ हूँ? अच्छा, दाढ़ी छोटी कर डालनी चाहिये फिर देखें कौन मुझे बेवकूफ कहेगा।

इतना सोचकर काजीजी कैंची ढूंढ़ने लगे, लेकिन उस समय कैंची न मिली, तब काजीजी अपने मन में सोचने लगे। 'कोई हर्ज नहीं' दीये से थोड़ी दाढ़ी जला डालने से भी काम चल सकता है। बस, उन्होंने एक हाथ से दाढ़ी पकड़ी और दूसरे से दीया। दाढ़ी फक-फक करके जलने लगी। अब आग हाथ के पास पहुंची तब तो काजीजी 'जोर से चिल्ला उठे कि दरअसल मैं बेवकूफ हूँ।

—o—

गिनती-गीत

[*श्री अभयकुमार*]

एक-दो, एक-दो।
प्रभु! हमें मंगल वर दो॥

× × ×

तीन-चार, तीन-चार।
आपस में सब करें प्यार॥

× × ×

पांच-छै, पांच-छै।
हमें न हो किसी का भय॥

× × ×

सात-आठ, सात-आठ।
याद करें अपना पाठ॥

× × ×

नौ-दस, नौ-दस।
हमारा प्यारा भारतवर्ष॥

—o—
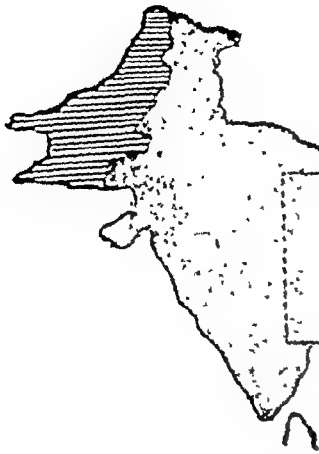
अणुव्रती बनने की प्रेरणा

● सुजानगढ़ (डाक से) आजकल यहाँ मुनिश्री कानमलजी अणुव्रत प्रचार-कार्य कर रहे हैं। अब तक ६० प्रवेशक अणुव्रती और २० अणुव्रती बन चुके हैं। इस तरह का और भी प्रयास जारी है।

अणुव्रत विचार-परिषद्

● उज्जैन (डाक से) स्थानीय अणुव्रत विचार-परिषद् का चतुर्थ अधिवेशन शान्ति निवास, नयापुरा में मुनिश्री सागरमलजी के तत्त्वावधान में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। प्रमुख वक्ता के रूप में नगरपालिका के सदस्य श्री रामचरण गुप्ता के बोलने के उपरान्त मुनिश्री ने आचरण-पक्ष की मजबूती पर बल दिया। आयोजन में नगरपालिका के अध्यक्ष श्री हिरवे आदि प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे।

आत्म-निर्माण-सप्ताह

● श्री डूँगरगढ़ (डाक से) १६ अगस्त से २३ अगस्त तक साध्वी श्री गुलाबांजी के सान्निध्य में यहां 'आत्म-निर्माण-सप्ताह' मनाया गया जिसमें साध्वी श्री ने सप्ताह भर भाई-बहिनों को अणुव्रतों की प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप १८ अणुव्रती, १५० प्रवेशक अणुव्रती और २५० बहिनें एक साल के लिये अणुव्रती बनीं। २५ भाई भी प्रवेशक अणुव्रती बने।

'आत्म-निर्माण-सप्ताह' के पूर्णाहुति-समारोह में 'अणुव्रतों के महत्त्व' पर साध्वी श्री गुलाबांजी, चन्द्रकलाजी, बीकानेर विभाग अणुव्रत-समिति के संयोजक श्री सुगनलाल माल, श्री दुलीचन्द श्यामसुखा, बहिन आशाकुमारी पुगलिया, रतन पुगलिया व आशा बाई डागा ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये। इस प्रकार 'आत्म-निर्माण-सप्ताह' का कार्यक्रम सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

अणुव्रत-अध्यापक-गोष्ठी

● कुर्हा (डाक से) गत १ सितम्बर शनिवार को यहां एक अणुव्रत-अध्यापक-गोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें बालमंदिर, मराठी-शाला, अंग्रेजी स्कूल के २० अणुव्रती अध्यापक उपस्थित थे। मराठी स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री धर्माजी गावंडे एवं श्री राजाराम M. D. S. B. के भाषण के उपरान्त मुनिश्री पुष्पराजजी ने शिक्षण के सम्बन्ध में अपना सारगर्भित भाषण दिया।

अणुव्रत समिति की स्थापना

● बालोतरा, राज० (डाक से) यहाँ श्री नरसिंहराज भंसाली एडवोकेट के संयोजकत्व में ११ सदस्यों की एक समिति का निर्माण किया गया जो आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित राष्ट्रव्यापी अणुव्रत-आन्दोलन के व्यापक प्रचार एवं जीवन-शुद्धि के विभिन्न कार्यक्रमों की योजना बनाकर जनता के समक्ष इस संदेश को फैला सके और विभिन्न वर्गों व स्थानों में अणुव्रत-प्रेरणा परिषद् की व्यवस्था कर सके।

२२ अगस्त को स्थानीय रेल्वे स्टेशन मास्टर श्री रूपराम की प्रेरणा पर 'समिति' के तत्त्वावधान में प्लेटफार्म पर साध्वीश्री नगीनाजी का "मानव एवं मानवता" विषय पर महत्त्वपूर्ण प्रवचन हुआ, जिसमें साध्वीश्री ने मानवता के तीन अङ्ग सत्य-निष्ठा, प्रामाणिकता एवं नैतिकता की विशद व्याख्या करते हुए उपस्थित जनता को अहिंसा व सत्य के राजपथ पर चलने का आमंत्रण किया। उपस्थिति भी काफी रही।

खानदेश का अणुव्रत सम्मेलन

कुर्हा, खानदेश (डाक से) ८ सितंबर, अणुव्रत प्रेरणा दिवस के अवसर पर पश्चिमी तथा पूर्वीय खानदेश का अणुव्रत सम्मेलन मुनिश्री पुष्पराजजी के तत्त्वावधान में प्रारम्भ हुआ और ८-९-१० सितंबर तीन दिन तक इसके कार्यक्रम चलते रहे।

मनमाड, दौंड, साक्री, शहादा, चोराला, धूलिया, अमलनेर, जलगांव, भुसावल, जालना आदि आदि २८ गांवों के लगभग २५० अणुव्रती प्रतिनिधि इकट्ठे हुए।

अणुव्रत प्रेरणा विषय पर लगातार ३ दिन तक मुनिश्री के सुन्दर व शिक्षाप्रद प्रवचन हुए। जिनसे समाज के मन पर अच्छा असर पड़ा और समाज के हृदय में परिवर्तन की खलबली दीख पड़ती थी।

व्याख्यान में लगातार करीब ५०० की उपस्थिति रही। अणुव्रत प्रेरणा दिवस के शुभ अवसर पर २९ प्रवेशक और तीन अणुव्रती बने।

हरिजन सम्मेलन

● कुर्हा, भुसावल (डाक से) यहाँ शीघ्र ही एक हरिजन सम्मेलन होनेवाला है। जिसमें श्री के० रा० वानखेड़े M. L. A. प्रमुख वक्ता के रूप में भाग लेंगे।

विद्यार्थी अणुव्रत प्रचार सप्ताह

● कुर्हा भुसावल (डाक से) २ अक्टूबर को विद्यार्थी अणुव्रत प्रचार सप्ताह प्रारंभ होगा जिसमें १०-१५ हजार विद्यार्थी व ४०० अध्यापक भाग लेंगे। मुनिश्री पुष्पराजजी के कुर्हा आगमन से जैन एवं जैनेत्तर जनतामें नई क्रांति नया आकर्षण व नयी भावनाका संचार हुआ है। और गांवमें नया वातावरण व नयी जागृति हुई है।

शोक समाचार

अणुव्रत समिति के प्रमुख कार्यकर्त्ता एवं भूतपूर्व सह-संयोजक श्री जयचन्दलाल दफ्तरी की पूज्य माताजी का लम्बी बीमारी के बाद गत १८ सितम्बर की रात को स्वर्गवास हो गया।

उनकी रात-दिन लगातार सेवा-सुश्रुषा करके दफ्तरी जी ने मातृ-भक्ति का जो आदर्श प्रस्तुत किया है, सचमुच वह सबके लिये अनुकरणीय है।

अणुव्रत परिवार दिवंगत आत्माके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि भेंट करते हुए शोक-सन्तप्त परिवार के साथ सहानुभूति प्रकट करता है।

आवश्यक सूचनाएं

● आगामी विशेषांक की छपाई शुरू हो जाने से इस बार केवल २४ पृष्ठ ही दिये जा रहे हैं।

● मुनिश्री नगराजजी द्वारा लिखित "अणुव्रत जीवन-दर्शन" का शेषांश 'विशेषांक' के पश्चात् यथावत् प्रकाशित होगा।

● जिन ग्राहकों का वार्षिक शुल्क इस अंकसे समाप्त हो चुका है वे कृपया शीघ्र ही नये वर्ष के लिये अपना चन्दा भेज दें।

आवश्यकता

अणुव्रत समिति के केन्द्रीय व शाखा कार्यालय में हिन्दी की विशेष योग्यता प्राप्त मैट्रिक व ग्रेजुएट ८ भाई-बहिनों की तुरन्त आवश्यकता है। न्यूनतम स्वीकार्य वेतन का उल्लेख करते हुए प्रार्थी अपने प्रमाण-पत्रों सहित यथाशीघ्र मन्त्री, अणुव्रत समिति, ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१ को आवेदन करें।

सरदारशहर (राज०) में

आगामी १२, १३, १४ अक्टूबर को
अणुव्रत समिति द्वारा आयोजित

सप्तम अणुव्रत सम्मेलन

की तैयारियाँ शुरू हो गई हैं

इस अवसर पर पहुंचनेवाले सज्जनों से निवेदन है कि वे अपने आगमन की सूचना यथाशीघ्र कार्यालय में भेज दें जिससे व्यवस्था सुविधाजनक हो सके।

सम्मेलन के कारण समिति का केन्द्रीय कार्यालय २५ सितम्बर से १५ अक्टूबर तक सरदारशहर (राजस्थान) रहेगा। अतः भविष्य में इसी हिसाब से पत्र-व्यवहार करें।

—मंत्री, केन्द्रीय कार्यालय, कलकत्ता

मैं क्या देखना चाहता हूँ ?

मेरी समझ में अणुव्रत आन्दोलन का प्राथमिक प्रचार काफी हो चुका है। प्रचार की प्रमुखता देने की अब आवश्यकता नहीं है। फूलमें सुगन्ध होगी तो भँवरा अपने आप दौड़ा आयेगा। अणुव्रत के अनुरूप आदर्श अगर अणुव्रतियों में है तो जनता अपने आप उनमें आकर्षित होगी। मेरी भावना को साकार करने का काम अणुव्रतियों का है। अगर एक आदर्श अणुव्रती बनेगा तो एक परिवार आदर्श बनेगा, एक आदर्श परिवार बनेगा तो एक राष्ट्र आदर्श बनेगा। ऐसे आदर्श अणुव्रती हीं नहीं, आदर्श ग्रामके ग्राम देखना चाहता हूँ।

—आचार्य तुलसी

हिन्दे सूगर कं० लि० ९, रामकुमार रक्षित लेन द्वारा प्रसारित।

परन्तु वे बदल न सके !

इन दिनों बहुत-से लोग क्राँति का नाम लेते हैं, परन्तु ऐसे लोग यह नाम लेते हैं, जिन्हें नाम लेने का कोई हक नही है। वे समझते हैं कि हम जोर जबर्दस्ती से क्राति करेंगे! इतना हीं नहीं, बल्कि उन्होंने क्रान्ति का अर्थ ही खूनी क्राँति कर लिया हैं। मान लीजिये कि उस गांव में आग लग गई और सारा गांव जल गया, तो क्या वह क्राँति होगी? जब तक मनमें क्राँति नहीं होती है, तब तक बाहर क्राँती होती ही नहीं है। मानसिक परिवर्तन को ही क्राँति कहते हैं।

एक जमाने में चोरी करने वाले के हाथ काटे जाते थे। लेकिन विचारों का परिवर्तन हुआ और यह सजा रद्द हुई। अब जेलों में भेजतें हैं। आगे जाकर लोग कहेंगे, उसे जेल भेजकर उसके बीबी-बच्चों को भूखा मारना अच्छा नहीं है। उसे किसी आश्रम में भेजकर जमीन तोड़ने का काम देना चाहिये। इस प्रकार विचार-परिवर्तन होगा और वही टिकेगा भी।

अभी इंगलैंड की पार्लमेंट ने प्रस्ताव किया है कि फांसी की सजा रद्द की जाय। हम लोग समझते हैं कि इंगलैण्ड हिंसक है और हम हिन्दुस्तानी बड़े अहिंसक हैं। परन्तु वहाँ पर प्रस्ताव हो भी गया और यहाँ के लोग अभी उस बारे में डावांडोल हैं। तो, वहाँ का लोकमत आगे बढ़ा हुआ है। एक जमाने में किसी पुरुष की एक से ज्यादा पत्नियाँ होना भूषण माना जाता था। आज अगर किसी की एक से ज्यादा पत्नी हो, तो वह लज्जित होता है। यह मानसिक क्राँति है।

इस तरह जहाँ मन बदलता है, वहाँ क्राँति होती है और मन मार-पीट कर नहीं बदला जा सकता है। वह तो विचार से बदला जा सकता है। यहाँ पर असंख्य राजा-महाराजा हुए परन्तु उन्होंने लोगों का मन नहीं बदला। लोगों के मन को तो बदला है—यहाँ के सन्तों ने।

—आचार्य विनोबा

मैसर्स सोहनलाल पचीसिया एण्ड को० ९ रॉयल एक्सचेंज प्लेस कलकत्ता-१ द्वारा प्रसारित।

कृपया माल मंगाते व सम्पर्क स्थापित करते समय "अणुव्रत" का उल्लेख अवश्य करें।

लेखकों से !

पहले से स्वीकृत रचनाओंके आधिक्यके कारण उनके क्रमानुसार प्रकाशन में विलम्ब हो जाना स्वाभाविक है। अतः रचना की स्वीकृति पहुंचने पश्चात् प्रकाशन के सम्बन्ध में बार-बार पूछे या लिखे गये अनेक पत्रों का इच्छा रहते हुए भी उत्तर दिया जाना असंभव है।

आशा है इस असमर्थता व विवशता के लिये हमारे लेखक बन्धु क्षमा करेंगे। —सम्पादक

अणुव्रत-आन्दोलन

सत्य-अणुव्रत

सच्चं लोगम्मि सारभूयं [जैन]
यम्हि सच्चञ्चे धम्मो च सो सुची [बौद्ध]
अहमनृतात् सत्यमुपैमि [वैदिक]

सत्य में मेरी निष्ठा है। सत्य को मैं त्याज्य मानता हूं। गृहस्थ-जीवन में सम्पूर्ण असत्य से बचना मेरे लिए सम्भव नहीं, इसलिए मैं निम्न व्रतों को ग्रहण करता हूं —

१—क्रय-विक्रय में माप-तौल, संख्या, प्रकार आदि के विषय में असत्य नहीं बोलूंगा।
२—जान बूझकर असत्य निर्णय नहीं दूंगा।
३—असत्य मामला नहीं करूँगा और न असत्य साक्षी दूंगा।
४—व्यक्तिगत स्वार्थ या द्वेषवश किसी का मर्म (गुप्त बात) प्रकाश नहीं करूँगा।
५—सौंपी या धरी (बन्धक) वस्तु के लिए ना नहीं करूँगा।
६—जालसाजी नहीं करूँगा—
क—जाली हस्ताक्षर नहीं करूँगा। ख—झूठा खत या दस्तावेज नहीं लिखाऊँगा।
ग—जाली सिक्का या नोट नहीं बनाऊँगा।
७—वंचनापूर्ण व्यवहार नहीं करूँगा—
क—मिथ्या प्रमाण-पत्र नहीं दूंगा। ख—मिथ्या विज्ञापन नहीं करूँगा।
ग—अवैध तरीकों से परीक्षा में उत्तीर्ण होने की चेष्टा नहीं करूँगा।
घ—अवैध तरीकों से विद्यार्थियों के परीक्षा में उत्तीर्ण होने में सहायक नहीं बनूँगा।
८—स्वार्थ, लोभ या द्वेषवश भ्रमोत्पादक और मिथ्या संवाद लेख व टिप्पणी प्रकाशित नहीं करूँगा।

श्री प्रतापसिंह बैद द्वारा अणुव्रत समिति ३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता-१ से प्रकाशित एवं
रेफिल आर्ट प्रेस ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित (३००० प्रतियां)